प्रकाशक का निवेदन

ऊंझा फार्मसी लि० के संस्थापक स्व. रसवैद्य नगीनदास छगनलाल शाह ने आयुर्वेद शास्त्र की सैकडो पुस्तको का मंथन करके भारत–भैषज्य–रत्नाकर नाम की एक अपूर्व पुस्तक ५ भागो मे प्रकाशित की। इस पुस्तक मे अकारादि क्रमानुसार रस, गुटिका, आसव, अवलेह, घृत आदि, अलग २ पुस्तको के, १० हजार शास्त्रीय पाठो का सग्रह है। इसकी हिन्दी टीका स्व. वैद्य पं. गोपीनाथ गुप्त भिषग्रत्न ने की थी, अतः इस प्रकार यह पुस्तक मूल श्लोको और हिन्दी टीका सहित प्रकाशित हुई।

वैद्य समाज मे यह पुस्तक बहुत सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है और यह इतनी ही उपयोगी भी सिद्ध हुई है। वर्तमान काल मे इसके सब भाग नहीं मिल सकते और उन्हे यदि प्रकाशित भी किया जाय तो वैद्य समाज और प्रत्येक वैद्य को अवश्य ही अधिक खर्च करना पडेगा, इसलिए हम भारत–भैषज्य–रत्नाकर के अनुभव सिद्ध प्रचलित प्रयोगो तथा अन्य अनेक प्रयोगों का निर्वाचन करके भैषज्य–सार–संग्रह नाम की पुस्तक प्रकाशित कर आपके कर कमलो में समर्पित कर रहे है। हमे आशा है कि यह पुस्तक आयुर्वैदिक फार्माकोपिया का काम देगी।

इसमें वर्णित सभी प्रयोग उच्च कक्षा के हैं, अतः स्वभाविक ही सिद्धि देनेवाले हैं।

इस पुस्तक का सम्पादन कार्य कविराज हरस्वरूप शर्मा आयुर्वेदाचार्य–धन्वन्तरि ने भली प्रकार किया है, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। एन. एम. प्रिंटिंग प्रेस, अहमदाबाद वालो ने इस पुस्तक का भलीभांति मुद्रण किया है, अतः इसके लिए हम उनके भी आभारी है।

इस पुस्तक मे वर्णित प्रयोग ऊंझा फार्मेसी लि. मे बनते हैं और ये सभी लाभकारी सिद्ध हो चुके हैं।

इस पुस्तक में जो त्रुटिया या भूले रही हो उनके लिए हम क्षमा चाहते हैं और आशा करते हैं कि भूलों की सूचना आप हमे अवश्य देंगे कि जिससे दूसरी आवृत्ति मे हम उन्हे सुधार सकें।

चैत्र शुक्ल १३
महावीर जयंती,
५–४–१९५५.

निवेदक
मैसर्स श्री नगीनदास वैद्य एण्ड सन्स.
मैनेजिंग एजन्टस,
ऊंझा फार्मसी लि., ऊंझा.

लेखक के दो शब्द

अमोघ, अगाध और अलौकिक आयुर्वेद के वास्तविक ज्ञान से तो वस्तुतः वे ही विभूषित है जिन्होंने सर्वस्व का त्याग कर जीवन के अधिकांश को गुरु चरणो मे व्यतीत करते अनंत शास्त्रो का मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया है. तदपि इसका कल्याणकारी वह स्वरूप जो संसार के मानसिक और शारीरिक क्लेशों को अहर्निश दूर करने मे सक्रिय है, सभी को प्रत्यक्ष है और वह है इसका औषध शास्त्र। औषधों के विस्तृत रम्य—स्थान, जल, थल और पर्वतों की रम्य स्थलियां, मानवों के नित्यप्रति के विहार स्थल है। केवल उनकी उपादेयता, उनका परिचय और उनके पारस्परिक मिश्रण का ज्ञान रोगों से छुटकारा पाने का सहज उपाय है। इन उपायो की सूझ आयुर्वेद के आचार्यों ने अनेक वनस्पति, खनिज, जान्तव और यौगिक शास्त्रों में निचोड़ रूप मे भर दी है, परन्तु उन दीर्घजीवी बुद्धचागारों की ये साधारण सूझ भी आज के अल्पजीवि, अल्पबुद्धि और बहुधन्धी पुरुषों के लिए महाकाय लगती है, फिर भी बहुमूल्य जीवन को सुरक्षित रखना आवश्यक है और यह कार्य जीवनरक्षा साधन के ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है, अत शास्त्रकारों के बृहत् भण्डारों से प्रसिद्ध और बहु प्रयुक्त औषधे लेकर सरल भाषा मे ग्रन्थरूप मे सग्रह अनिवार्य प्रतीत होता है, यह मेरा इस दिशा में एक प्रयास है, प्रयत्न यथाशक्ति किया है, आशा है पाठक इसे अपनावेगे।

युग के परिवर्तन के साथ २ औषधों के स्वरूपों, उनके क्रियाभेदो और उनके अनेक विधि मिश्रणों मे जो २ परिवर्तन होते रहे है और उनका जिसप्रकार चिकित्सको ने उपयोग किया है तथा शरीर पर उनकी जो क्रियाएं होती है उन सबका संक्षेप मे पुस्तकाकार में निबंधन का अभाव भी दीर्घकाल से खलता प्रतीत होता था। इस अभाव को दूर करने की प्रेरणा ऊंझा फार्मेसी लि० के संचालकों ने मुझे दी और उनकी इस प्रेरणा से मै, अपने जैसे आयुर्वेद विद्यार्थियों के हित के लिए, औषधो के सर्व सामान्य विवरण को एकत्रित करने मे संलग्न हो गया, अतः मुझे प्रेरणा रूप मे सहायभूत होनेवाले ऊंझा फार्मेसी लि० के संचालक और इस पुस्तक के प्रकाशक श्री भोगीलाल नगीनदास शाह तथा वसंतलाल उत्तमचंद शाह मेरे लिए सर्वप्रथम धन्यवाद के पात्र है और उनसे भी अधिक इस फार्मेसी के आद्य संस्थापक स्व. रसवैद्य नगीनदास छगनलाल शाह, कि जिन्होंने वर्षों परिश्रम करके भारत भैषज्य रत्नाकर जैसे ग्रन्थागार में आयुर्वेद की सभी प्रकार की औषधो का बृहत् रूप

से संग्रह किया, इस लिए कि मैने लगभग सभी औषधों को इस ग्रन्थ मे से ग्रहण करके यहां अपने ढंग से लिखा है, का विशेष आभारी हूं।

मुख्यतः उन गुरूजनो का, कि जिनके सदुपदेशो से मैने इस ज्ञान का यत्किंचित अश प्राप्त किया है और जिनके प्रदर्शित मार्ग पर मै नित्य चलकर ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयत्न करता रहता हूं, मैं बहुत ही ऋणि हूं।

दृश्य और अदृश्य, अनेक शक्तियो ने मुझे इस ग्रन्थ के निर्माण मे सहायता प्रदान की है, उन सबका मै हृदय से कृतज्ञ हू और विशेषतः उन परम वंद्य शास्त्रकारों का मे कभी ऋण नहीं चुका सकता कि जिनकी बहुमूल्य सूझ मैने यहां पर संकलित की है।

इस पुस्तक के लेखन तथा प्रूफरीडिंग काल मे मुझे दो व्यक्तियो से विशेष सहायता प्राप्त हुई है (१)श्री कैलाशनाथ नैथानी, व्याकरण–साहित्याचार्य और (२) श्री जगदीशचन्द्र शर्मा "विशारद", इन महानुभावो का मै हृदय से आभार मानता हूं।

पाठक कृपया मुझे पुस्तक मे रही भूलो की सूचना देते रहे जिससे मै भविष्य मे अपनी भूलो का सुधार कर सकू।

अहमदाबाद,
मिति–पौष शुक्ला
तृतीया, भौमवार
२०११

विनीत
हरस्वरूप शर्मा

भूमिका

अव्यक्त की सृष्टि मे सर्वोपरि स्थान मानव का है। इसका कारण यह है कि सृष्टा के समान ही वह उसकी रंगभूमि को अनेक नए रूप देकर अपने निर्माता के प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हुआ स्वयं विविध सर्जन क्रियाओं मे निमग्न हो जाता है। ऐसे उपयोगी प्राणी का सृष्टि के सभी जीव अधिक से अधिक मूल्य आंकते है और अपनी सर्व कल्याणमयी क्रियाओं और भावनाओं से उसके दीर्घ जीवन की वांच्छा करते है। सृष्टा को भी यही वांच्छित है। आदि काल से ही उसने मानव को दीर्घजीवि वनाए रखने के लिए अनेक विवेकमयी क्रियाओं का आश्रय लिया और मानव को सर्वदा दीर्घजीवन प्रदान करे, ऐसे ज्ञान का प्रचार किया। ज्ञान के जितने भी साधन आदि कर्ता ने हम तक पहुंचाए है और जिनका बुद्धिशालियो द्वारा नित्य निर्माण होता है वे सभी मानव को दीर्घजीवि वनाए रखने के मार्ग सुझाते है।

जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपादेयता प्रत्येक जीवन के कल्याण तक सीमित है। यह कल्याण कौन कैसे करता है यह जीवधारियो के ज्ञान का विषय है। ज्ञान मन, इन्द्रिय और आत्मा के निकटतम सम्पर्क से उत्पन्न होता है। आत्मा ज्योतिर्मय है, यह अव्यक्त की सर्वश्रेष्ठ कृति है एवं अविनाशी, अविभाज्य और उसी की भांति अव्यक्त और अनंत ज्ञानमयी तथा शक्तियो का अपूर्व भण्डार है। मन जीवात्मा के साथ सतत रहनेवाला एक अदृश्य पदार्थ है। इन्द्रियां पंचभौतिक—शरीर के साररूप संज्ञावाही स्थान है। शरीर आकाश, वायु, ज्योति, जल और पृथ्वी इन पंचभूतो का विधानपूर्वक का संयोग है। मन, आत्मा और शरीर के इस संयोग को प्राणी कहते है। ये तीनो पदार्थ सभी प्राणियो मे होते है, भिन्नता केवल सत्वादि गुणो के प्रकार और पंचभूत यौगिक सार अर्थात् इन्द्रियो की ज्ञानग्राही प्रखरता या जडता मे है। सभी प्राणी पंचेन्द्रिय नहीं होते। शरीर की स्थूलता और क्षीणता भूतो के संयोग पर आश्रित है। जो प्राणी आकाश-भूत प्रधान है वे प्रायः अदृश्य होते है और कभी २ युक्तिप्रयुक्तियो का आश्रय लेने पर अन्वीक्षण यंत्र द्वारा दृश्य भी हो जाते है। वायुप्रधान प्राणियों मे वायु शक्ति का आधिक्य होता है। वे वायु की भांति ऊपर, नीचे, सर्वत्र विचर सकते है और दृश्यादृश्य रूप में विद्यमान रहते है। तेज प्रधान प्राणियो मे ऊष्मा की प्रधानता होतीहै। इनके शरीरो से संसार के कल्याणाकल्याण के लिए ऊष्माप्रधान द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। जलप्रधान प्राणी प्रकृति से सौम्य होते है। ये सौम्य भाव और सौम्य द्रव्यो के सम्वाहक होते है। मानव सभी पृथ्वीभूत प्रधान है। सभी मानवों मे यह तत्व, समान उपकरण होते हुए भी, मात्रा में भिन्न होता है और सभी मानव एक समान उपकरण से निर्मित होते हुए

भी भौतिक निर्मायक अनुपातों में भिन्न २ होते हैं। मानवों मे भी कुछ व्यक्ति आकाश प्रधान, कुछ वात प्रधान, कुछ तेज विशिष्ट, कुछ जल प्रधान और अधिकतर ये पृथ्वी भूत प्रधान होते हैं।

मानव के निर्माण काल मे ही, पंचभूतों का, विभिन्न अनुपातों मे. किसी अदृश्य रासायनिक क्रिया द्वारा, इसप्रकार संयोग होता है, कि मन, आत्मा और पञ्चमहाभूतों के इस संयोग से उत्पन्न होती हुई देह मे, धारक, चालक और पोषक द्रव्यों का स्वतः ही निर्माण हो जाता है। ये द्रव्य अपने निर्मायक तत्वों के सार रूप होते है। आकाश और वात का सार रूप वात, आकाश, वात और तेज का सार रूप पित्त तथा आकाश, वात, तेज और जल का सार रूप कफ बनता है। पृथ्वी तत्व देह के प्रत्येक अंग का मुख्य तत्व होता है। पंचभूतों के संयोग से उत्पन्न हुए ये वात, पित्त और कफ समावस्था में शरीर को स्वस्थ, सक्रिय और पुष्ट रखते है, विषमावस्था मे ये ही रोगों के कारण बन जाते है। रोग जीवन के मूल का छेदन करनेवाले होते है। रोगो से सुरक्षित रहने के लिए मानव को जीवन के विविध तत्वों का ज्ञान और उन तत्वों मे विषमता होने पर, समता उत्पन्न करने की विवेक शक्ति आवश्यकीय होती है। आयुर्वेद ज्ञान के इन दोनों तत्वों का विशाल भण्डार है। सृष्टि की उपादेयता, मानवो की वांच्छाओं के प्रकार, उन वांच्छाओं की तृप्ति के साधन, सतासत् वांच्छाओ के भेद, तृष्णा, लोभ, क्रोध आदि से दूर रहने के उपाय और शरीर के दोष, धातु और मलों को सम रखने का ज्ञान तथा उनके विषम होने पर उनको सम करने के विविध उपाय आदि अनेक प्रकार के मानवोपयोगी ज्ञान का यह संचय है।

मानव की त्रिविध वांच्छाओं (प्राणैषणा, धनैषणा और परलोकैषणा) के शास्त्र ने चार विभाग किए है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारो पदार्थों की प्राप्ति के लिए शरीर सर्वत्र उपयोगी होता है। शरीर की आंशिक विकृति भी, इन पदार्थों की प्राप्ति मे बाधक सिद्ध होती है। इन चारो पदार्थों को प्राप्त करने के लिए दीर्घजीवन अनिवार्य होता है और क्योंकि आंशिक विकृति भी जीवन को अनुपयोगी बना देती है अतः विकृति उत्पन्न ही न हो पहले तो यही इच्छनीय है। आयुर्वेद का स्वस्थवृत्त मानव की इस इच्छा की तृप्ति के सम्पूर्ण साधनों से परिपूर्ण है। 'किन क्रियाओं के करते निरोग रहा जा सकता है और किन क्रियाओं से दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है', इन विषयो पर आयुर्वेद विशद प्रकाश डालता है। परन्तु मानव मानव है और मानव की सब से बडी निर्बलता उसका सत्य से विचलित होना है। किसी भी अंग की अधर्ममयी क्रिया विकृति को सहज ही जन्म दे सकती है। बुद्धि का साधारण सा दोष भी विकारो का मूल बन जाता है और ऐसी विचलित अथवा विकृत दशा मे पडा हुआ मानव भी अपनी इच्छाओं की तृप्ति चाहता है और यह तभी सम्भव है जब शरीर स्वस्थ हो, अतः अपनी वांच्छाओं की पूर्ति के लिए, कारणवशात् रुग्ण हुआ मानव स्वस्थ होना चाहता

है, यह उसकी दूसरी इच्छा है। आयुर्वेद मानव को विकृति से शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा पाने का बोध कराता है। यह केवल स्वस्थ रहने के मार्गों को ही नहीं सुझाता, परन्तु इसके साथ २ जीवन की आंगिक और व्यापी क्रियाओ का ज्ञान भी देता है।

शरीर के अंग प्रत्यंग की क्रिया उनकी दुष्क्रियाओं से सर्वथा भिन्न होती है। शरीर की सक्रियाएं उसकी स्वस्थता की बोधक है जबकि उसकी दुष्क्रियाएं उसकी रुग्णावस्था की द्योतक है। शरीर की विकृति से होनेवाली दुष्क्रियाए अथवा दुष्क्रियाओ से होनेवाली अस्वस्थता ये दोनों ही व्याधित अवस्थाएं है। इन व्याधित अवस्थाओ को शास्त्रकारों ने रोगों का नाम दिया है। इन रोगों और इसके उत्पादक कारणों को दूर करने की क्रिया का नाम शास्त्रकारों ने चिकित्सा दिया है। चिकित्सा की आवश्यकता शरीर को सुखी और मानव को समृद्धिशाली बनाए रखने के लिए उपयोगी सिद्ध होती है। शास्त्रकारो ने चिकित्सा के वैद्य, रोगी, भेषज और परिचारक या परिचारिका ये चार पाद बताए है। प्रत्येक पाद अपने २ विशिष्ट गुणों को लेकर क्रियाएं करता है, परन्तु चिकित्सा सफल होनी तभी सम्भव है जव सब पाद एक ही साथ क्रियाएं करें। एक पाद का भी सगुण न होना अथवा सम्पूर्णतया क्रिया न करना विकृति को परिवर्द्धित कर सकता है और वर्द्धित विकृति या तो स्थान संश्रित हो जाती है या दोष प्रकोप रूप में शरीर के अन्य भागों पर सतत आघात करते हुए विविध प्रकार की दुष्क्रियाओं को उत्पन्न कर देती है। जहां ये व्याधियां स्थान संश्रित हो जाती हैं वे अंग दूषित हो जाते है और जहां ये दोष रूप मे व्याप्त रहती है वहां की क्रियाओं में दोष आ जाते हैं। व्याधियां मानव के लिए या तो प्राणघातक सिद्ध होती हैं या उसे जीवित रहते भी धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष मे से किसी की भी प्राप्ति के अयोग्य बना देती है। इन व्याधियों से शरीर को बचाए रखने के लिए आयुर्वेद ने अपने सर्वतो मुखी उपदेशों के पश्चात् भौतिक द्रव्यो का भिन्न २ अथवा संगठित रूप में प्रयोग बताया है और ये द्रव्य व्याधिनाशक होने के कारण औषध या भैषज्य कहे जाते है। जैसे पूर्व कहा जा चुका है, औषध, चिकित्सा के चार पादों में से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। इन भौतिक योगों का निर्माण इन (१) जङ्गम, (२) उद्भिद और (३) पार्थिव, तीन प्रकार के पदार्थों से होता है। जिस व्याधि मे जिसप्रकार के औषध द्रव्यों का उपयोग आवश्यक है, उसका सुचारु रूप से प्रयोग करने का विधान और युक्तियां शास्त्रकार ने विस्तारपूर्वक बताई हैं। औषध के संयोग के इन विधानों और निर्माणो की इन युक्तियो को औषध शास्त्र का नाम प्रदान किया गया है।

औषध शास्त्र, संसार के सम्पूर्ण दृश्यादृश्य पदार्थो का सामान्य स्पर्श करते हुए निर्मल गंग तरंग की भांति आगे बढता है और जिसप्रकार विविध क्षेत्रो मे प्रविष्ट होकर गंगा विस्तृत

रूप धारण करती है, उसीप्रकार विश्व कल्याण की भावनाओ से ओतप्रोत हुआ यह शास्त्र औषध त्रिवेणी का अमृतमय संगम लिए कहां, कैसे और किन कारणो से संयुक्त या विभक्त, एकाकी या बहु मिश्रित औषधियों और उनके उपयोग आदि का वर्णन करता, उसमें से सारमय पदार्थों को चुन २ कर उपयोगी स्वरूप मे इसप्रकार एकत्रित करता है, जिसप्रकार देवों ने क्षीरोदधि के मंथन के बाद अमृत के घट और अन्य द्रव्यो को एकत्र किया था।

शरीर दश्यादश्य द्रव्यो से निर्मित है। जिन द्रव्यो मे संयोग का अभाव रहता है अर्थात् जो द्रव्य अपने सूक्ष्म शरीर तक ही सीमित रहते हैं वे प्राय: अदश्य हैं और जिन द्रव्यों का भूतो के संयोग के साथ निर्माण हुआ है वे द्रव्य दश्य है। शरीर मे व्याप्त अदश्य तत्वों मे होनेवाली अदश्य व्याधियो की औषधियां भी अदश्य ही है। वे क्या हैं, उनकी क्रिया कैसे होती है यह मनोविज्ञान का विषय है। यहां हमारा विषय भौतिकवाद तक ही सीमित है। यहां हम ऐसे द्रव्यो की चर्चा करने बैठे है कि जो दश्य हैं, जिनके गुणावगुणों को, जिसप्रकार पूर्वजों ने प्रत्यक्ष करके देखा है, उसीप्रकार हम भी देख सकते हैं। ये द्रव्य कहां, कैसे और किन विधानो को लेकर काम मे आते है, यह द्रव्य-गुण का विषय है। इन द्रव्यों को किसप्रकार संशोधित, परिमार्जित और परिपक्व रूप मे प्रयोग मे लाना चाहिए, किनका परस्पर का संयोग किन अंशो और किन मात्राओं में कहां उपयोगी है और उस मिश्रण की उपयोगिता इन द्रव्यों के मिश्रण से अधिक कैसे हो जाती है तथा उनके सम्पूर्ण मिश्रण के पश्चात् ये द्रव्य किस रूप को ग्रहण करते है और उनका निर्माण, उनकी मात्रा, उनका उपयोग, उनके गुण और शरीर पर होनेवाली उनकी क्रियाओं का विषय **भैषज्य-सार-संग्रह** मे संक्षिप्त रूप मे वर्णित है।

विविध द्रव्यों के सशोधन, संश्लेषण और संविधानमय क्रियाकल्पो को शास्त्रकार ने औषधशास्त्र नाम दिया है। औषध के अन्य अनक पर्याय हैं, यथा-भेषज, भैषज्य, अगद, जायु, जैत्र, आयुर्योग, गदाराति, अमृत, आयुर्द्रव्य आदि। भैषज्य की परिभाषा सामान्यत: यह है कि जिस द्रव्य के प्रयोग से वैद्य व्याधि का विनाश करे वह औषध है। प्रयोग विधान से औषध दो प्रकार की होती है (१) संशोधन औषध और (२) संशमन औषध। शोधन रूप मे वस्ति द्वारा प्रयोग मे आनेवाली अथवा वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादि क्रियाएं करनेवाली अर्थात जो कुपित दोषों को शरीर से बाहर निकाले ऐसी औषध का नाम संशोधन औषध है।

जो दोषों को उसके प्रकोप कारणों सहित, अपने गुणों की शामक शक्ति द्वारा, दूर करती है, उसे संशमन औषध कहते है। द्रव्यों के सयोग और निर्माण के विधान से औषध के अनेक प्रकार है, यथा-रस, कुप्पीपक्व, भस्म, गुटिका, गुग्गुल, चूर्ण, लेप, क्वाथ, घृत, मल्हम, अवलेह, पाक, आसव, अरिष्ट, शर्बत, सार, प्रवाही, घन, तैल, अंजन और क्षार इत्यादि। इन औषधियों

के प्रयोग क्षेत्र कहीं २ सर्वथा समान होते हैं, अन्तर केवल निर्माण के प्रकार और उनके स्वरूप में है, और ये अन्तर लोक प्रकृति की विविधता के अनुरूप प्रयोग मे लाये हुए प्रतीत होते है। जिन द्रव्यों का कषाय रूप में सेवन किया जाता है वे ही चूर्ण, अवलेह, अरिष्ट, गुटिका आदि रूप में भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

इन भिन्न भिन्न औषध–स्वरूपो द्वारा औषध के गुणो को अल्प और दीर्घकाल तक अविनष्ट रखने का प्रबन्ध भी किया गया है। किन्हीं २ औषधो मे, उनके स्वरूप परिवर्तन के साथ २ तीक्ष्णता और मन्दता, ऊष्णता और शैत्य, रुक्षता और स्नेह आदि गुणों मे भी परिवर्तन हो जाते है। यथा–चन्दन का चूर्ण तिक्त, शीतल, रुक्ष, आल्हादक और लघु होता है। इसकी शरीर पर क्रिया धीमी होती है। कषाय रूप में यही शीघ्र क्रियाकर हो जाता है और कुछ अधिक तिक्तता युक्त प्रतीत होता है। इन दोनो रूपो मे इसके गुणों को दीर्घ काल तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। अवलेह रूप में यही चन्दन नाममात्र को तिक्त, रुचिकर और मधुर प्रतीत होता है। इस रूप में इसके गुण कुछ अधिक समय तक रक्षित रहते है, परन्तु क्रिया इस रूप मे भी शीघ्र नहीं होती। आसव या प्रवाही सार स्वरूप में (जो आसव की भांति निर्मित हुए हों) यह किंचित ऊष्ण, अम्ल और तिक्त होता है। इसकी क्रिया शीघ्रतर और प्रत्यक्ष फलदायी होती है। तैल रूप में यह और भी अधिक सगुण रहता है और इसकी क्रिया स्थाई तथा तत्काल होती है। मल्हम रूप मे इसका प्रलेप होते ही यह क्रिया दिखाता है और इसके गुणों की भी अनुभूति होती है, परन्तु यह अनुभूति और ये क्रियाएं क्षणिक होती है। सारांश मे द्रव्यो के ये स्वरूप शास्त्रकारों की उच्च और विचारशील दृष्टिशक्ति की महत्ताएं है। चूर्ण रूप मे ये द्रव्य केवल अधिक से अधिक तीन मास तक, कषाय या फांट स्वरूप मे ये एक दिन से अधिक नहीं चल सकते, गुटिका रूप मे इनका जीवन ६ मास का होता है, अवलेह स्वरूप में ये दीर्घकाल तक अर्थात ६ से १२ मास तक काम मे आ सकते है, परन्तु जितना ही इनका जीवनकाल इस रूप में बढता जाता है उतने ही ये द्रव्य तीक्ष्ण और अम्लीय बनते जाते है। आसवारिष्ट स्वरूप मे द्रव्यों का जीवन निरंतर वृद्धि की ओर होता है। ये जितने ही अधिक समय के उपरांत प्रयोग में लाए जाते हैं उतने ही अधिक सक्रिय और शक्तिशाली सिद्ध होते है। इस स्वरूप में शीतवीर्य द्रव्यो में भी कुछ ऊष्णता आ जाती है। मद्य तो आसवारिष्टों मे उनके निर्माण के अनुसार सभी मे न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होता ही है। जितने अधिक समय तक आसव रक्खे जाते है उतना ही अधिक उनमे मद्योत्पादन होता है और उनकी तात्कालिक क्रिया मद्य की तीक्ष्णता और व्यवायिता के गुणों पर आश्रित होती है। घृत और तैल रूप में द्रव्या

की शक्ति एक वर्ष से अधिक नहीं रहती, वैसे तो केवल घृत जितने पुराने होते है, उतने ही लाभकारी कहे जाते है । तैल रूप में भी औषध के गुण सम्भवतः वर्ष पर्यन्त ही रहते है । गुग्गुल स्वरूप में द्रव्यो के गुण अधिक से अधिक १ से १॥ वर्ष तक रहते है ।

औषध के दीर्घजीवि दो ही स्वरूप है–(१) रस और (२) आसवारिष्ट । आसवारिष्ट का जीवन उनमें उत्पन्न होनेवाले मद्यो पर आश्रित है । यदि आसव रूप ग्रहण करने के लिए रक्खे हुए द्रव्य में कारणवशात् मद्य की उत्पत्ति न हो तो वह मिश्रण औषध नहीं बनता, वह केवल औषध का विकार है, इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए । रसों की क्रियाएं उनके प्राकृतिक गुणों पर अवलम्बित है । रस, धातु और रत्न आदि द्रव्य, यदि उनका विनाश न किया जाय या उनके स्वरूपो मे परिवर्तन न किया जाय तो वे सर्वदा एक ही रूप में, एक ही वर्ण मे और एक ही प्रकार से पडे रहते है । औषध स्वरूप ग्रहण करने से पूर्व इन द्रव्यो को अनेक दशाएं पार करनी पडती है । ये अवस्थाएं उनके संशोधन, परिमार्जन और मारण आदि की है । मृतप्रायः रस, धातु और रत्नो का मूल्य उनके पूर्व मूल्य से कहीं अधिक हो जाता है और भस्म होने के पश्चात ये अचिंत्य शक्तिवाली औषधे बन जाती हैं । इन स्वरूपों में या इनके मिश्रणवाले स्वरूपो मे ये औषधियां, जितने अधिक समय के पश्चात् काम मे लाई जाती है, उतनी ही उपयोगी सिद्ध होती है । वस्तुतः आसवारिष्ट और रसों को उनके निर्माण के एक मास के पश्चात् तक प्रयोग में नहीं लाना चाहिए ।

औषधो के निर्माण के लिए औषध निर्माण ज्ञान प्रथम आवश्यक होता है । प्रत्येक औषध के किस अंग या अंग का प्रयोग होता है, यह औषध निर्माता ही जानते है । इसके अतिरिक्त भी द्रव्यों के विभिन्न अगो के भी अधिकतर नितान्त भिन्न गुण होते है । यदि यह आवश्यक ज्ञान औषधि निर्माता को न हुआ तो वह जिस रोग के लिए अपनी औषध का निर्माण कर रहा है, सम्भवतः वह अपनी अज्ञानता के कारण, उससे नितान्त भिन्न गुणवाली औषध बना सकता है ।

औषध निर्माण की क्रिया के लिए, औषध निर्माण में काम आनेवाले प्रत्येक द्रव्य के प्राप्ति स्थान का और उसके परिमार्जन की क्रिया का ज्ञान बहुत आवश्यक है । बहुत से द्रव्यो मे उनके ही समान रूप, वर्ण और गंधवाले वैकारी द्रव्य इसप्रकार मिश्रित रहते हैं जैसे वे उन्हीं के अंग हो, यदि इनको निकाले बिना ही द्रव्यों का प्रयोग कर लिया जाय तो औषध भी वैकारी बनती है, अतः औषधों को स्वच्छ और वैकारी द्रव्य विहीन करके प्रयोग मे लाना चाहिए ।

स्वच्छ, धौत और एक २ करके एकत्रित करने के पश्चात् औषध-द्रव्यो के संयोग के

लिए उनके विषय मे शास्त्रकार का आदेश पुनः २ जान लेना चाहिए। अनेक बार प्रत्यक्ष करके निर्माण कला में पाण्डित्य प्राप्त करनेवाले भी कभी २ औषध निर्माण में भूल कर जाते हैं और यह भूल उन्हें तभी ज्ञात होती है जब औषध की क्रियाएं, उससे पूर्व शास्त्रादेश का पालन करते निर्माण की हुई औषध से भिन्न होती है। चूर्ण के द्रव्यों के प्रत्येक द्रव्य का भिन्न २ चूर्ण करके शास्त्र मे बताई हुई मात्रा के अनुसार परस्पर मिश्रित कर चूर्ण बनावे। भिन्न २ प्रकृति के द्रव्यों को एक ही साथ मिलाकर चूर्ण बनाने से इच्छित औषध प्राप्त नहीं होती, क्योंकि कुछ द्रव्यों का शीघ्र चूर्ण हो जाता है और कुछों का चूर्ण बनते अधिक समय लगता है। जिन द्रव्यों का चूर्ण शीघ्र हो जाता है वे प्रत्येक चोट के साथ उडते है और अपने कठिन साथियों के चूर्ण होने तक वे पर्याप्त मात्रा में वायु मार्ग ग्रहण करने के कारण इच्छित मात्रा से कम हो जाते है, अतः ऐसी अवस्थाओं मे भेषज का शास्त्रोक्त स्वरूप नहीं आ पाता और न वे शास्त्रोक्त गुणों से युक्त ही रहती हैं।

आसवारिष्ट के निर्माण में क्वाथ का निर्माण, द्रव्यों का मिश्रण, घटकों का संधान और उनके परिपाक काल का ज्ञान इतना ही होना आवश्यक है जितना इन द्रव्यो के निर्वात सिद्धि का ज्ञान। वात पूर्ण स्थान मे, ऐसे घटों के अन्दर कि, जिनमे सूक्ष्म छिद्र भी हो, यह औषध पूर्ण परिपक्व नहीं होती और उसमें कषाय रस की उत्पत्ति हो जाती है तथा-औषध में वे गुण नही आने पाते जो वास्तव में उसमें होने चाहिएं।

रस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, विष,उपविष आदि के निर्माण म इन द्रव्यों का प्रथम संशोधन और तत्पश्चात सम्मूर्च्छन, इस क्रम से कार्य करना चाहिए। अशुद्ध द्रव्यों का औषध रूप मे प्रयोग नहीं किया जा सकता, वे विषैली क्रिया करते है। संशोधन से इनके विषैले द्रव्य नष्ट हो जाते है और तत्पश्चात सरल रूप में प्रयुक्त होनेवाले ये द्रव्य अमृतमयी क्रिया करते हैं। इसीप्रकार समस्त औषध प्रकारों का, शास्त्र के विधि-विधानो को जानकर, ध्यानपूर्वक निर्माण करना चाहिए।

विधिपूर्वक किया हुआ औषधियों का उपयोग सर्वदा श्रेयष्कर सिद्ध होता है। यदि इनका प्रयोग यथामात्रा और यथोक्त रोगो पर किया जाय तो निश्चित ही ये शास्त्रोक्त गुणधर्मो के अनुसार क्रिया करती है।

औषधियों का उपयोग चिकित्सकों द्वारा होता है, अतः चिकित्सको को औषधियों की अन्तर्बाह्य क्रियाओं, मिश्रणो, उपयोगो और गुणधर्मो आदि का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

चिकित्सक औषधियों का प्रयोग रोग निवारण के लिए करते है अत· जिसप्रकार उनको औषध का सर्वाङ्गी ज्ञान आवश्यक है उसीप्रकार रोग का परिचय भी उनके लिए आवश्यक

है। औषध अनंत हैं। चिकित्सा दोषो के कल्प विकल्पों का निर्णय होने पर ही की जा सकती है, और दोषो के निवारण के लिए औषधियो के कल्प विकल्पो का ज्ञान आवश्यक है, अतः औषधियों के प्रयोग–ज्ञान से पूर्व सर्वदा विकार का ज्ञान आवश्यक होता है। यदि विकारो के कल्प विकल्पो का चिकित्सको को आवश्यक ज्ञान नहीं होता तो औषधो के प्रयोग में सिद्धि नहीं मिल सकती। अतः चिकित्सक को औषधो के ज्ञान से पूर्व रोगो का ज्ञान आवश्यक है।

रोग शरीर और मन में होनेवाले विकार हैं। मन अप्रत्यक्ष है। रज और तम मन के विकार है। इनकी चिकित्सा ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि आदि औषधो से की जाती है। शरीर अनेक द्रव्यो के समुदाय का नाम है। इनमें रस, रक्तादि धातुएं; वात, कफ, और पित्त आदि दोष, मल, मूत्र, स्वेदादि मल, शिरा, लसिका, धमनी, कण्डरा, अस्थि, मर्म, रध्र, ग्रन्थि, और आशय आदि अनेक प्रकार के द्रव्य भरे हैं। किस द्रव्य मे किन कारणो से विकार उत्पन्न हो सकता है, यह, शरीर का सम्पूर्ण ज्ञान हो, तभी जाना जा सकता है, अतः रोगो का ज्ञान शरीर के ज्ञान पर आश्रित है, इसलिए चिकित्सक के लिए जिसप्रकार औषध ज्ञान अनिवार्य है, उसीप्रकार रोग ज्ञान और शरीर ज्ञान भी आवश्यक है। शरीर पांचभौतिक संयोग है। किस भूत का किस अश में संयोग होकर किस रोग की उत्पत्ति हुई है और यह विकार भूतो के किन संयोगो के वृद्धि या ह्रास से हुआ है, यह ज्ञान भी चिकित्सक के लिए अन्य ज्ञान की भांति ही उपयोगी सिद्ध होता है। सारांश मे औषधियों का विशाल से विशाल भण्डार हो, और उनका प्रयोग करनेवाले अनंत वैद्य हो तथा उनसे लाभ उठानेवाले असंख्य रोगी भी हो परन्तु यदि वैद्यो को सम्पूर्ण आयुर्वेदीय ज्ञान न होगा तो रोगी रुग्ण रहेंगे और औषधियां निष्प्रयोजन सिद्ध होगी।

× × × ×

औषध द्रव्यो की प्राप्ति, उनके भेदों के अनुसार, प्राणियो में से, वनस्पति द्रव्यों मे से और खानो मे से, होती है। यदि द्रव्यो के स्वरूपो का परिचय निर्माताओ या चिकित्सको को नहीं होगा तो औषधो का निर्माण कभी भी सत्य स्वरूप मे नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक विभाग की प्रत्येक औषध का उत्पत्ति स्थान, उसका स्वरूप, उसके भेद और उसके ग्रहण करने के समय का ज्ञान भी चिकित्सको को आयुर्वेद के ज्ञान के समान ही आवश्यक है। जहां औषधियो को पूर्णतया पहिचान कर हस्तगत किया जाय, और उनका निर्माण शास्त्रादेश का पालन करते हुए किया जाय तथा उनका प्रयोग भैषज्य और शरीर शास्त्र के ज्ञाताओं द्वारा हो, तो औषधियां अवश्य फलवती होती हैं, परन्तु औषधियो की क्रियाओ की

भी सीमाएं होती हैं । रोगों की असाध्यावस्था मे औषधि काम करे अथवा न भी करे। यह भी देखा गया है कि रोग के प्रारम्भ से ही दोषो की गति इतनी तीव्रता पूर्वक बढती है कि श्रेष्ठ और निश्शंक श्रेयष्कर औषधि का प्रयोग भी बढती व्याधि का निरोध नहीं कर सकता। ऐसी सभी अवस्थाओ मे औपधि ससार नहीं है यह नहीं मान बैठना चाहिए। असाध्यो को शास्त्रकारो ने बहुत छान बीन के बाद असाध्य कहा है। उनका साध्य होना संभव नहीं है। दोषो का समूह रूप मे प्रकोप तथा उनकी वैकारी क्रिया से विकृत मलो और धातुओ के विकारों का निरोध इतना सरल नहीं होता कि औषधो की कोई भी मात्रा उन्हे रोक सके। यह वेग बढते हुए ज्वारभाटे के समान होता है। शनैः २ औषधियों की क्रिया द्वारा इसका संशमन होता है और जहां औषधियो की तीव्र और शक्तिशाली कियाएं भी उनकी वृद्धि को नही रोक पाती, वहां रोग नहीं परन्तु रोगी का विनाश हो जाता है, अतः औषधियो की शक्ति सीमित है यह स्वत· ही सिद्ध हो जाता है।

चिकित्सक निदान करने मे पूर्ण मनोयोग देता है, और जहां तक सम्भव होता है युक्ति, तर्क, प्रमाण और आप्तोपज्ञान के परिपूर्ण योग द्वारा रोग को जानने का प्रयत्न करता है, तदपि कहीं २ भूल होनी सम्भव है। रोग के निदान मे भूल रोग के विनाश का अवरोध करती है, अनिश्चितज्ञान—रोग पर प्रयोग मे लाई हुई सहस्रबार निश्चित रूप से बनाई हुई औषध भी निष्फल हो जाती है। रोग के कारण कुछ हों और चिकित्सा किन्हीं अन्य कारणों की होती हो, तब प्रमादवश चिकित्सक चिकित्सा करने में पूरी सावधानी नहीं वर्तते, यह भासित होता है। वे केवल नाडी को पकड कर सब कुछ बताने और जानने की चेष्टा करते हैं। मान ले कि नाडी द्वारा बहुत कुछ जान भी लिया जाय तदपि रोग ज्ञान के लिए शास्त्रादेश का पालन न करना शास्त्र के तद्विषयक नियमों का उल्लंघन करना है। शास्त्रकार रोग को जानने के ६ उपाय बताते है। ५ प्रकार पंचेन्द्रियों के योग द्वारा और ६टा प्रश्न द्वारा। नाडी स्पर्शप्रकार मे यहां भी आ जाती है परन्तु श्रवण, घ्राण (गंध लेना), आस्वादन, दर्शन और प्रश्न ये नाडी मे नहीं समाते। जो शास्त्र के इन रोग ज्ञान उपायो का आश्रय नहीं लेते वे चिकित्सा करने में बहुधा भूल करते है। नव्य चिकित्सकों ने आयुर्वेद के इन ज्ञानोपायों को अपने विज्ञान में समा लिया है और उन्होने इस ज्ञान को यहां तक बढाया है कि वे जिह्वा का काम अमुक औषध के संयोगों से लेते है। जहां नेत्रों की पहुंच नहीं है वहां अन्वीक्षण यंत्र और एक्स रे (स्क्रीनिंग या फोटो) का प्रयोग करते है। श्रवण के लिए श्रवण यत्र (Stethoscope) सर्वत्र प्रचलित है। आयुर्वेद मे पहले काम मे आनेवाले ऐसे ही अनेक यंत्रादि अन्य विज्ञानवादी काम मे लाते है, परन्तु मौलिक रूप से जिस संसार के सर्वोच्च चिकित्सा विज्ञान ने इसकी शोध की, अधिकतर

उस विज्ञान का आश्रय लेकर चिकित्सा करनेवाले इनके उपयोगों से अपरिचित से हैं। विष्ठा, थूक, पूय, रक्त और अन्य शरीर मे उत्पन्न होनेवाले और विकृत होनेवाले पदार्थों के रस की परीक्षा के लिए, अथवा विकृत रसोत्पादन की परीक्षा के लिए अथवा उनके विप आदि के ज्ञान के लिए जिह्वा का प्रयोग न किसी चिकित्सक ने पहले किया होगा और न अब भी यह सम्भव है। आज भी शास्त्र मे इनकी परीक्षा के अनेक विधान है। उनका आश्रय लेकर अवश्य किसी निर्णयात्मक ज्ञान तक पहुंचा जा सकता है। रोग ज्ञान के इन उपायो का आश्रय न लेने से भी निदान ज्ञान मे भूल होनी सम्भव है। ऐसी परिस्थिति में भी औषधियां यदि शास्त्रोक्त गुणधर्ममयी क्रिया न करें तो वहां औषध का दोष नहीं है, रोग ज्ञान का दोष है।

संक्षेप मे औषध महत्व के उपयोगी द्रव्यो के वे तत्व है जिनका समीचीन उपयोग प्राणियों के विकारों का विनाश करता है, यदि विकारों का यह ज्ञान सत्य हो और औषध द्रव्यों का युक्तिपूर्वक उपयोग किया गया हो। अधूरा औषध ज्ञान और अधूरा शरीर और शरीर विकार ज्ञान ये दोनो ही वैकारी सिद्ध होते है।

× × × ×

सृष्टि में सभी द्रव्य परस्पर उपयोगी है और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए तथा एक प्राणी दूसरे प्रणी के लिए औषध समान है—केवल उपयोगिता की ज्ञानधारा उनके आंशिक तत्वों का विश्लेषण करके उपयोगी—अनुपयोगी द्रव्यों का निर्णय करती है। यह ज्ञान संसार के सभी द्रव्यों के उत्पादक, पोषक और विनाशक तत्वों के ज्ञान में समाया हुआ है। जिसप्रकार के द्रव्य से जिसकी उत्पत्ति होती है, उसी द्रव्य के गुणों से अधिकतर वह द्रव्य परिप्लावित रहता है। पोषक द्रव्यों से हमारा तात्पर्य्य उन द्रव्यों से है कि जिनका अंतर्वाह्य संयोग प्राणियो की वृद्धि का कारण है, चाहे वह आहार रूप मे प्रयोग मे आते हों अथवा मर्दन, दर्शन, श्रवण, घ्राण, और स्पर्श रूप मे। विनाशक द्रव्य वे है, जिनके सयोग से द्रव्य मे और द्रव्य के वर्तमान स्वरूप में सम्पूर्ण भिन्नता आ जाती है, किन्तु द्रव्यों के तत्वों का विनाश नही होता, कारण कि द्रव्य के अणु और परमाणु तत्व अविनष्ट रहते हैं, जबकि नाशक तत्वों का आघात द्रव्यों के यौगिक स्वरूप का विनाश अवश्य करता है।

संसार सम्पूर्ण यौगिक निर्माण है—प्रत्येक क्षण में होनेवाले आन्तर्वाह्य परिवर्तन इसे आघात पहुंचाते हैं—इन आघातों से सुरक्षित रहने और आघात होने पर उससे बचने के मार्ग आयुर्वेद विस्तृत रूप से वर्णन करता है—इन आघातों के अवरोधक और उपद्रवों के नाशक द्रव्यों को औषधि और इस शास्त्र को औषध शास्त्र कहते हैं।

———o———

भैषज्य-सार-संग्रह

मान-प्रमाण

गुरु और लघु रूप मे द्रव्यों के अनेक कल्प विकल्प है। प्रत्येक कल्प विकल्प को भार शब्द प्रदान किया जाता है। किसी भी वस्तु के निर्माण मे द्रव्यों के निश्चित प्रमाण के भार को ग्रहण करके मिश्रण किया जाता है। यदि मान का ध्यान न रख या प्रमाण पूर्वक योजना न कर द्रव्य का निर्माण किया जाय तो प्रथम तो उनमें वे गुण नही आ सकते कि जो आने आवश्यक है और दूसरे जितनी भी बार उनका निर्माण होता है उतनी ही बार उनके स्वरूपों और गुणो मे भिन्नता होनी सम्भव है, अत. औषध निर्माण के लिए मान-ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना उनका प्रयोग ज्ञान। इस प्रकार माप तोल कर निर्मित किये हुए द्रव्य समान गुण और समान स्वरूप वाले होने के कारण प्रयोग कर्ताओं को अधिक प्रिय होते है और इस प्रकार के समान गुण और स्वरूपो के द्रव्यों का निर्माण करने वाली रसायन शाला लोकप्रिय हो जाती है। समान गुण और स्वरूपवाली औषध का निर्माण ही प्रमाणायोजन (Standardisation) कहा जाता है।

पूर्वजो की भांति आज के शासक भी यही चाहते है कि औषधियां श्रेष्ठ और समान गुणधर्म और प्रमाणवाली हों, पूर्वजो ने इसीलिए मान-मर्यादा का आयोजन किया था। यही आयोजन प्रमाणित रूप मे हम तक आ रहा है। समयानुसार तथा राजाओं की नीति-रीति के अनुसार इन मानों मे परिवर्तन भी होते आए है।

आजकल की भांति प्राचीनकाल मे भी दो प्रकार के मान थे। (१) मागध और (२) कलिंग। चरकाचार्य के अनुयायी मागध मान का उपयोग करते थे जबकि सुश्रुताचार्य के अनुयायी कलिंग मान का प्रयोग करते थे।

वर्तमान इम्पीरियल और मेट्रिक मान

ब्रिटिश औषध निर्माण प्रणाली मे उपयुक्त मानो का परिवर्तन सतुलन (Converting equivalence):—

इम्पीरियल ग्रेन	मेट्रिक मिलिग्राम	इम्पीरियल ग्रेन	मेट्रिक मिलिग्राम
१/२००	.३	१/४०	१·५
१/१००	६	१/३२	२
१/६४	१	१/२५	२·५

इम्पीरियल ग्रेन	मेट्रिक मिलिग्राम	ग्रेन	सेन्टीग्राम
१/२०	३	१	६
१/१६	४	२	१२
१/१०	६	३	२०
१/८	८	४	२५
१/५	१२	५	३०
१/४	१६	८	५०
१/२	३०	१०	६०

इम्पीरियल ग्रेन	मेट्रिक डेसिग्राम	ग्रेन	ग्राम
३	२	१५	१
५	३	३०	२
८	५	४५	३
१०	६	६०	४
१५	१०	१२०	८
२०	१२	१५०	१०
३०	२०		
६०	४०		

मात्राएं (Volumes)

मिनिम	सेन्टिमिल	मिनिम	डेसीमिल मिल
१/२	३	२०	१२
१	६	३०	१८
२	१२	६०	३६

मिनिम	डेसीमिल	मिनिम	मील
५	३	१५	१
१०	६	३०	२
१५	१०	४५	३

२	द्रंक्षण	= १ कर्ष, सुवर्ण, अक्ष, बिडालपदक, पिचु, पाणितल।
२	कर्ष	= १ पलार्द्ध, शुक्ति, अष्टमिका।
२	पलार्द्ध	= १ पल, मुष्टि, प्रकुञ्च, चतुर्थिका, बिल्व, षोडषिका, आम्र।
२	पल	= १ प्रसृत, अष्टमान
४	पल	= १ कुडव, अञ्जलि
२	कुडव	= १ मानिका
४	,,	= १ प्रस्थ
४	प्रस्थ	= १ आढक, घट, अष्टशराव, पात्री, पात्र, कंस।
४	आढक	= १ द्रोण, कलस, घट, उन्मान, अर्मण।
२	द्रोण	= १ सूर्प, कुम्भ
२	सूर्प	= १ गोणी, खारी, भार।
३२	,,	= १ वाह
१००	पल	= १ तुला

उपरोक्त मान शुष्क द्रव्यों के लिये बतलाया गया है। द्रव (तरल—पतले) और आर्द्र (तुरन्त के उखाडे हुवे गीले) पदार्थों का मान इससे दो गुना होता है।

जिस स्थान मे "तुला" अथवा "पल" शब्द लिखा हो वहां आर्द्र और द्रव पदार्थों का मान भी द्विगुण नहीं होता।

साधारणत. ३२ पल का प्रस्थ* होना है परन्तु वमन विरेचन और शोणित मोक्षण (फस्त) मे १३॥ पल का प्रस्थ माना जाता है।

कालिङ्ग (सुश्रुतोक्त) मान

अब पल कुडवादि नाम से मान की व्याख्या करते है—

१२ मध्यम धान्यमाष	= १ सुवर्ण मापक
१६ सुवर्ण मापक	= १ सुवर्ण
अथवा	
१२ मध्यम निष्पाचा (लोबिया)	= १ सुवर्ण मापक
१९ सुवर्णमापक	= १ धरण
५/६ धरण (१६ मापक)	=† १ कर्ष
४ कर्ष	= १ पल
४ पल	= १ कुडव
४ कुडव	= १ प्रस्थ
४ प्रस्थ	= १ आढक
४ आढक	= १ द्रोण
१०० पल	= १ तुला
२० तुला	= १ भार

यह मान शुष्क द्रव्यों के लिए है। आर्द्र और द्रव पदार्थों के लिए इससे द्विगुण मान समझना चाहिए।

---

* यह द्रव पदार्थके प्रस्थके सम्बन्धमे कहा गया है, क्योंकि शुष्क द्रव्योंके मानमे १ प्रस्थ=४ कुडव=१६ पलका होता है।

† १ धरण अर्थात १० मापकका अर्द्धतृतीय (आधा और तीसरा भाग) $9\frac{1}{2}+6\frac{1}{3}=15\frac{5}{6}$ होता है अर्थात १६ मापक से कुछ कम होता है अत इसे पुरे १६ मापक मान लेने में कोई विशेष अन्तर नहीं आ सकता।

चरक और सुश्रुतके मानकी परस्पर तुलना

चरकोक्त मान मे २ द्रंक्षण=४ शाण = १२ मापक या (१२×३२=) ३८४ धान्यमाषक का कर्ष माना गया है और सुश्रुतोक्त कर्ष मे १६ सुवर्ण मापक=(१६×१२=) १९२ धान्य माषक होते है, इससे सिद्ध होता है कि चरकोक्त मान सुश्रुतोक्त मान से दो गुणा है।

मानसार

शाण, कोल, कर्ष, शुक्ति, पल, प्रसृत, कुडव, शराव, प्रस्थ, अर्द्धाढक, आढक, अर्द्ध-द्रोण, द्रोण, सूर्प, गोणी और खारी का मान उत्तरोत्तर द्विगुण होता है यथा, शाण से कोल दो गुना, कोल से कर्ष दो गुना और कर्ष से शुक्ति दो गुनी इत्यादि।

माष, शाण, कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण और गौणी का मान उत्तरोत्तर चार गुना होता है।

शुष्कार्द्रद्रव्यभेद से मान

क्यो कि शुष्क द्रव्य गीले द्रव्यो की अपेक्षा अधिक गुरु एवं तीक्ष्ण होते है अत' आर्द्र (गीले) द्रव्यो का मान शुष्क की अपेक्षा द्विगुण ग्रहण करना चाहिए अर्थात् शुष्क द्रव्यो के स्थान मे गीले द्रव्य काम मे लाए जायं तो लिखित परिमाण से दो गुने लेने चाहिएं।

कितने ही विद्वानो का मत है कि यदि औषधि का परिमाण कुडव से कम हो तो गीले द्रव्य द्विगुणमात्रा मे नहीं लेने चाहिएं परन्तु विद्वद्वर्य श्री कविराज गङ्गाधरजी कवि-रत्न के मतानुसार यह मत अनार्प एव युक्तिविरुद्ध तथा अमान्य है।

वर्तमान तोल तथा प्राचीन तोल की परस्पर तुलना.

चरकीय मान.	(अ)	वर्तमान मान.
(३ रत्ती = १ वल्ल)	.. .	३ रत्ती
×१० रत्ती = १ माषा	..	१। माषा = १० रत्ती
३ माषक = १ शाण	.	३।।। ,, = ३० रत्ती=पांच आनेभर
(४ माषा = १ निष्क)		५ माषा
२ शाण = १ द्रक्षण		७।। ,, = दस आनेभर
२ द्रक्षण = १ कर्ष	.	१५ ,, = १। तोला
४ कर्ष = १ पल	.	५ तोले = १ छटांक
४ पल = १ कुडव	.	४ छटांक = १ पावसेर

× यद्यपि चरक और सुश्रुत मे रत्तीका जिक्र नही है परन्तु सभी विद्वान इस विषयमें सहमत है कि चरकोक्त माषा १० रत्ती का माषा है एव विद्वद्वर्य चक्रपाणीजीने लिखा है कि तोलने पर चरकोक्त माषा १० रत्ती के बराबर सिद्ध होता है।

(अ)

चरकीय मान			वर्तमान मान.
४ कुडव	= १ प्रस्थ		१ सेर = (८० तोले)
४ प्रस्थ	= १ आढक	. .	४ ,,
४ आढक	= १ द्रोण	.	१६ ,,
२ द्रोण	= १ सूर्प	....	३२ ,,
२ सूर्प	= १ भार	. . ...	६४ ,,
३२ ,,	= १ वाह		१०२४ ,, = (२५ मन २४ सेर)
१०० पल	= १ तुला	...	६। सेर

(ब)

शार्ङ्गधरोक्त मागधमान	वर्तमान मान
८ सर्सों = १ यव	
४ यव = १ रत्ती	१ रत्ती
६ रत्ती = १ माषक	. ६ रत्ती
४ माषा = १ शाण	३ माषा
२ शाण = १ कोल	६ माषे ($\frac{1}{2}$तो)
२ कोल = १ कर्ष	१ तोला
२ कर्ष = १ शुक्ति	२ तोला
२ शुक्ति = १ पल	४ तोला
२ पल = १ प्रसृत	८ तोला
२ प्रसृत = १ कुडव	१६ तोला

शार्ङ्गधरोक्त मागधमान	वर्तमान मान
२ कुडव = १ शराव	३२ तोला
२ शराव = १ प्रस्थ	६४ तोला
४ प्रस्थ = १ आढक	३ सेर १६ तोला
४ आढक = १ द्रोण	१२सेर६४तोला+
२ द्रोण = १ सूर्प	२५ सेर ४८ ,,
२ सूर्प = १ द्रोणी	५१ सेर १६ ,,
४ द्रोणी = १ खारी	२०४सेर६४ ,,
२००० पल = १ भार	१०० सेर
१०० पल = १ तुला	५ सेर

वर्तमान आपेक्षिक मान

१ धान = १ चावल=(a grain of paddy)
४ धान = १ रत्ती = ($1\frac{7}{8}$ grains)
६ रत्ति = १ आना= $11\frac{1}{4}$ grains
८ रत्ति = १ माषा = 15 grains=1gram
१६ आना = १ तोला = 180 grain
१ रुपया = १ तोला
५ तोला = १ छटाक=2 ounces (approx.)

१६ छटाक = १ सेर=८० तोला 32oz(approx).
१ काच = $\frac{1}{4}$छटांक=4FL.drams ,,
१ छटांक= $\frac{1}{16}$ सेर =2 FL ozs ,,
१ पाव = $\frac{1}{4}$ सेर =8 FL. ozs ,,
१ सेर = २ पौंड=32 FL ozs ,,
१ मन = 82 पौंड 2 ozs
१ टन = २७ मन

* १ सेर = ८० तोला।

द्रव्य ग्रहणविधि

शास्त्र की किसी द्रव्य के ग्रहण करने की जैसी आज्ञा हो उसी के अनुसार ग्रहण करना चाहिए और जहां शास्त्र ने मौन धारण किया हो वहां परिभाषा अनुसार कार्य करना चाहिए ।

साधारण विधि

साधारणतः धन्व (मरु भूमि और जाङ्गल देशके लक्षणों से युक्त) देश मे उत्पन्न हुई विकार रहित, कीटादि रहित, वीर्ययुक्त औषधि उत्तर दिशा एवं पवित्र स्थान से ग्रहण करनी चाहिए ।

निषिद्धऔषधि

देवालय, बमी, कुएं के पास, रास्ते और स्मशान में उत्पन्न हुई तथा असमय (बेमौसम) और तरुमूल मे उत्पन्न हुई, उचित परिमाण से ह्रस्व अथवा अधिक दीर्घ और पुरानी तथा जल, अग्नि और कीडों से विकृत औषधि फलदायक नहीं होती ।

स्थानभेद से गुणभेद

विन्ध्याचल आदि पर्वत आग्नेय गुण वाले और हिमालयादि सौम्य गुणवाले है अतएव इनमे उत्पन्न होनेवाली औषधियां भी यथा क्रम आग्नेय और सौम्य गुणवाली होती है । चिकित्सा के समय यह बात अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिए ।

कालभेद से द्रव्यग्रहण

समस्त कार्यों के लिए रसयुक्त औषधियां शरद् मे ग्रहण करनी चाहिएं परन्तु वमन और विरेचन की औषधियां वसन्त ऋतु के अन्त में ग्रहण करनी चाहिए ।

चतुरवैद्य का कर्तव्य है कि औषधियो के मूल शिशिर ऋतु में, पत्र ग्रीष्म ऋतु मे, छाल वर्षा मे, कन्द वसन्त में, दुग्ध शरद् ऋतु मे, सार हेमन्त ऋतु में और फल एवं फूल जिस ऋतु में उत्पन्न हों उसीमें ग्रहण करें ।

निम्न द्रव्य आर्द्र ही प्रशस्त है

निम्न लिखित द्रव्य सदैव आर्द्र अवस्था मे लेने चाहिए एवं इनका परिमाण द्विगुण न करना चाहिए:—

वासा, नीम, पटोल, केतकि, खरैटी, पेठा, शतावर, पुनर्नवा, कुडेकी छाल, असगन्ध, पूतिगन्धा (गन्धप्रसारिणी), नागवला, पियावांसा, गूगल, हींग, अद्रक और ईख से बने हुए कठिन पदार्थ (राब, मिश्री इत्यादि)।

पुरातन प्रशस्त हैं

गुड, शहद, धान्य, पीपल और वायविडङ्ग ।

द्रव्यांगग्रहण

खदिरादिवृक्षो का सार, निम्बादि की छाल, दाडिम आदि के फल और पटोल आदि के पत्र काम मे लाये जाते है ।

वट आदि वृक्षो की त्वचा. विजयसार आदि का सार, तालिशादि के पत्र और त्रिफलादि के फल ग्रहण किये जाते हैं ।

जिन वृक्षों की जड अधिक मोटी हो उनकी छाल और जिनकी जड बारीक हो उनके समस्त अङ्ग काम मे लाने चाहिएं।

पुनरुक्त द्रव्यग्रहण

यदि किसी योग मे एक ही औषधि दो बार लिखी हो तो उसे द्विगुण परिमाण में लेनी चाहिए।

विशेष ज्ञातव्य

यदि किसी प्रयोग मे कोई औषधि रोगी के लिए हानिकारक हो तो उसे निकाल डालना चाहिए। इसीप्रकार यदि कोई औषधि रोगी के लिए हितकारी हो तो वह योग में न होने पर भी डाली जा सकती है।

सामान्य द्रव्य ग्रहण

यदि स्पष्ट वर्णन न हो तो पात्र का अर्थ मिट्टी का पात्र, उत्पल का नीलोत्पल और शकृद्रस का अर्थ गाय के गोबर का रस समझना चाहिए, पत्र चन्दन से लाल चन्दन, सर्षप से सफेद सरसों, लवण से सेंधानमक और मूत्र, दूध तथा घी से गोमूत्र, गोदुग्ध और गोघृत समझने चाहिएं।

दूध, मूत्र और पुरीष (गोबर) पशु का आहार पचजाने पर ग्रहण करने चाहिए।

चूर्ण, स्नेह, आसव और अवलेह में प्रायः सफेद चन्दन और कषाय तथा लेप में प्रायः लाल चन्दन का व्यवहार किया जाता है।

अनुक्तप्रकारक परिभाषा

यदि समय न बतलाया गया हो तो प्रातः काल, औषधि का अङ्ग न कहा हो तो मूल, भाग न बतलाया हो तो समान भाग, पात्र न कहा गया हो तो मिट्टी का पात्र और द्रव पदार्थ का नाम न बतलाया गया हो तो जल तथा तैल का नाम न कहा हो तो तिल का तैल ग्रहण करना चाहिए।

बदले के द्रव्य या अभाव में लिए जानेवाले द्रव्य

अप्राप्त द्रव्य	प्रतिनिधि
मधु	पुराना गुड
पुराना गुड	नये गुड को चार प्रहर धूप मे सुखाकर ले
दूध	मूंग या मसूर का यूष
खांड	मिश्री
लौह	मण्डूर
सिद्धार्थ (सफेद सरसों)	साधारण सरसों
शालि चावल	साठी चावल
दाख	खम्भारी के फल
दाडिम	वृक्षाम्ल
सौराष्ट्र मृतिका	पङ्कपर्पटी
तगर	शीहलीजटा
कपूर	सुगन्धित मोथा
कस्तूरी	गन्धशटी
कोकिलाक्ष	गोखरू के बीज

विविध परिभाषा

पुटपाकविधि

कभी कभी पुटपाक-विधि द्वारा द्रव्यों का स्वरस निकाला जाता है अतएव यहां पुटपाक की विधि लिखी जाती है ।

औषधि को कूटकर जामुन या वड के पत्तों में लपेटकर उसे रस्सी आदि से कसकर मजबूत बांध दे और उसके ऊपर दो अंगुल या एक अंगुल मोटा मिट्टी का लेप करके (सुखाकर) अग्नि मे पकावे। जब ऊपर वाली मिट्टी का रग लाल हो जाय पुटपाक सिद्ध समझें ।

षडङ्गपरिभाषा

शृतशीतादि पेय जल बनाने के लिए षडङ्ग परिभाषा का प्रयोग किया जाता है । वह इस प्रकार है-१। तोला औषधियो को १ सेर पानी मे पकाकर आधा शेष रक्खे । यह जल प्राय: पीने और पेयादि बनाने के लिए व्यवहृत होता है ।

क्षीरपाकविधि

औषधि से ८ गुना दूध और दूध से चार गुना पानी मिलाकर इतना पकाना चाहिए कि दूध बाकी रह जाय ।

कल्कक्वाथ का निर्देश

यदि शास्त्र मे कल्क या क्वाथ न बतलाया हो अर्थात् केवल यह लिखा हो कि अमुक औषधियों से घृत या तेल आदि सिद्ध कर लिया जाय और यह न लिखा हो कि इन ओषधियों का कल्क डाला जाय या क्वाथ तो वहां इन ओषधियों का कल्क और क्वाथ दोनों लेने चाहिये ।

आसवारिष्ट द्रव्यग्रहण विधान

यदि अरिष्ट के पदार्थों का परिमाण न वतलाया गया हो तो ३२ सेर द्रव (जलादि) पदार्थ में ६। सेर गुड, गुड से आधा शहद और गुड का दसवां भाग प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण डालना चाहिए ।

तण्डुलोदक (ज्येष्ठाम्बु)

कूटकर बारीक किए हुवे चावल ५ तोला लेकर चार गुने पानी मे भिगोदें (जब चावल नरम हो जाय तो पानी नितार लें) यह पानी तण्डुलोदक कहलाता है ।

उष्णोदक (सुखोदक)

पानी को पकाकर आठवां, चौथा अथवा आधा भाग शेष रक्खे या केवल उबाल लें तो उसका नाम 'उष्णोदक' होगा ।

लाक्षारस

लाख को कपडे में बांधकर दोलायन्त्र की विधि से छ: गुने पानी मे पकाकर २१

बार छान लिया जाय तो उस पानी का नाम "लाक्षारस" होगा ।

क्षारोदक

गुल्म आदि रोगों में जो पीने के लिए क्षारजल बनाया जाता है उसकी विधि यह है कि क्षार को छः गुने (किन्हीं किन्हीं के मतानुसार चार गुने) पानी में घोलकर उसे २१ बार उबालें ।

कट्वर

दही के सार (घृत) युक्त तक्र का नाम 'कट्वर' है ।

शुक्त

कन्द, मूल, फलादि तथा तेल और नमक को द्रव पदार्थ (काञ्जी आदि) में डालकर आसव की तरह सन्धान करके रक्खें । इस क्रिया से जो पदार्थ तैयार होता है उसको 'शुक्त' कहते है ।

मस्तु

दही में दो गुना पानी डालकर बनाए हुवे तक्र का नाम मस्तु है ।

तुषाम्बु

उडद के छिलको को भूनकर उनमे जौ का चूर्ण मिलाकर यथोचित परिमाण पानी में भिगोकर आसव की तरह सन्धान करके रक्खें जब पानी खट्टा हो जाय तो निकाल ले । इसका नाम "तुषोदक" है ।

काञ्जी

कुटे हुवे धान और मूली के टुकडे आधा आधा सेर लेकर सबको ४ सेर पानी में आसव की तरह सन्धान करके रक्खें । जब खट्टा हो जाय तो निकाल ले । इसका नाम "काञ्जी" है ।

चुक्र

मस्तु, गुड, शहद और काञ्जी को उत्तम स्वच्छ बर्तन में भरकर सन्धान करके ऋतु अनुसार समय तक (ग्रीष्म और शरद् ऋतु मे ३ दिन तक, वर्षा में ४ दिन, वसन्त में ६ दिन और शीतकाल में ८ दिन तक) अनाज के ढेर मे दबाकर रक्खे ।

इस प्रकार जो अम्ल द्रव तैयार होता है उसका नाम "चुक्र" है ।

चुक्रमे—गुड १ भाग, शहद २ भाग, काञ्जी ४ भाग और मस्तु ८ भाग होना चाहिए ।

आरनाल

कच्चे या पक्के तुष रहित गेहुंओं को सन्धान करने से जो पदार्थ तैयार होता है उसका नाम "आरनाल" है इसके गुण "सौवीर" नामक सुरा के समान है ।

पाचन द्रव्य परिमाण

पाचन तैयार करने के लिए १० रत्ती वाले मापे के हिसाब से २ तोला (२॥ तोला) औषधि को १३ गुने (आधा सेर) पानी मे

पकाकर चौथाई (१० तोला) बाकी रखना चाहिए।

अन्नादि साधन

जिन औषधियो के क्वाथ से यवागु आदि बनाने हो उन सबको १ अञ्जली (२० तोले) लेकर कूटकर ४ सेर पानी मे पकावे, जब एक सेर पानी बाकी रहे तो उतारकर छान ले, इस पानी से यवागु आदि बनाने चाहिएं।

अन्न पांच गुने पानी (दवाओं के क्वाथ) में, विलेपी चार गुने में और मण्ड १४ गुने में तथा यवागु छः गुने पानी मे पकानी चाहिए।

मण्ड में कण बिलकुल नहीं रहता, पेया मे कुछ कण रहता है, यवागु मे कण बहुत अधिक होता है और विलेपी मे पानी बहुत कम होता है।

भावना विधि

भाव्य द्रव्य (जिस द्रव्य को भावना देनी हो वह) के बराबर क्वाथ्य द्रव्य (जिन चीजो की भावना देनी हो वे चीजे) लेकर आठ गुने पानी मे पकावे जब आठवां भाग बाकी रहे तो उतारकर छान ले।

जिस चीजमे भावना देनी हो उसमे यह क्वाथ इतना डालना चाहिए कि दोनों चीजे मिलकर पतली हो जायं।

मन्थ

सत्तू मे घी और ठंडा पानी डालकर मथे। पानी इतना होना चाहिए कि सत्तू न बहुत पतला हो जाय और न बहुत गाढा रहे।

तर्पण

धान की खीलों के सत्तू में ज्वरनाशक फलों के रस, शहद और खांड मिलाकर उसे द्रव पदार्थ में मिलावे। इसका नाम 'तर्पण' है।

दधि कूर्चिका

दही के साथ पकाए हुवे दूध का नाम "दधि कूर्चिका" है।

तक्र कूर्चिका

तक्र के साथ पकाए हुवे दूध का नाम "तक्र कूर्चिका" है।

सुरादि के लक्षण

सुरा के सबसे ऊपर वाले स्वच्छ भाग का नाम 'प्रसन्ना' है। उससे नीचे के कुछ गाढे भाग को "कादम्बरी" कहते है। कादम्बरी से गाढे भाग को 'जगल' और उससे गाढे भाग को 'मेदक' कहते है।

सुरा के सारहीन भाग (फोक) का नाम "बक्कस" और सुराबीज का नाम 'किण्व' है।

ताल और खजूर के रस से बनी हुई सुरा को "वारुणी" कहते है।

तक्र

यदि दही मे चौथाई भाग पानी डालकर मथा जाय तो "तक्र"; आधा पानी डालकर मथा जाय तो 'उदश्वित्' और विना पानी डालेही दही को मथ लिया जाय तो 'मथित' तैयार होता है।

शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	दर करती है	को दूर करती है
३	८	इसलिए अधिकतर	इसलिए इसकी अधिकतर
३	१८	फिर उसमें पीपल	फिर पीपल
६	९	दाषो	दोषों
६	९	ओषधियों	औषधियो
७	३	जिसके कारण से श्लेष्म	जिस कारण से श्लेष्म
७	२४	उष्ण	ऊष्ण
८	१०	गोलियों	गोलियां
९	३	चाहिए	चाहिएं
९	१४	माणिक्यभस्म, स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म	माणिक्यभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रक सत्व भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रौप्यभस्म
९	२३	दार्बल्य	दौर्बल्य
११	१४	यथामक्र	यथाक्रम
११	२२	हिङ्गल	हिङ्गुल
१२	२	आमदाष	आमदोष
१८	२५	उष्णवात	ऊष्णवात
१९	१२	आंवला	आंवला
२०	१२	क्षाभ	क्षोभ
२१	२३	कृतघ्न है	कृतघ्न हैं
२५	६	हें	हैं
२५	१०	कालिमिर्च	कालीमिर्च
२५	२६	ह	है
२८	२२	अपेक्षा	उपेक्षा
३०	१२	दानो	दोनों
३४	३	क्रिया	विक्रिया
३५	८	निम्ल	निम्न

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३५	१८	किजी	किसी
४१	२	दाषनुसार	दोषानुसार
४२	८	बलवुद्धि, वर्द्धक	बलवुद्धि वर्द्धक
४७	२२	शराच	शरात्र
४७	२३	निकल	निकाल
४८	१६	माग	भाग
५०	१२	नष्ट हो जाता है	नष्ट हो जाते हैं
५०	१५	वालरो.	बालरो.
५२	२०	करले	करेले
५३	७	आषानुलोमक	दोषानुलोमक
५६	१	विषदाष	विषदोष
५६	३	और	ओर
५६	२१	श्राव	स्राव
५७	२४	तैलिया	तेलिया
५९	२	जिनमे	जिनमें
५९	२	अम्त्र	अन्त्र
६२	२	जल से साथ	जल के साथ
६२	२२	पापल	पीपल
६३	१२	कालिमिर्चे	कालीमिर्च
६४	९	रक्तापत्त	रक्तपित्त
६५	२१	हिङ्गल	हिङ्गल
६६	४	द्रव्यों	द्रव्यों
६६	१४	इन्द्रजा	इन्द्रजौ
६६	२७	प्रन्येक	प्रत्येक
६८	१	चिकने	चिकने
६८	२२	वद्धक	वर्द्धक
७०	२०	मृ	मूत्र
७०	२९	मुल्हटी	मुल्हैठी

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
७१	१३	मृङ्गाकवत्	मृगाङ्कवत्
७२	२२	हा	हो
७९	१४	ाघसनेवाले	घिसनेवाले
८०	२७	वच्छन	वच्छनाग
८०	२८	पार और गंधक	पारे और गंधक
८६	१	स्वस्स	स्वरस
८८	१३	आषधि	औषधि
९३	३	अजार्ण	अजीर्ण
९३	५	य	या
९३	२४	करती है । जिससे	करती है, जिससे
९४	७	गोली	गोला
९४	८	पकावो	पकावें
९६	१०	त्रिनेत्र	त्रिनेत्राख्य
१००	१४	पिष्टी	पिट्ठी
१००	२१	बलपुष्टिकर देनेवाली	बल पुष्टि को देनेवाली
१०२	२२	दीपिनी	दीपनी
१०३	६	इससे सेवन से	इसके सेवन से
१०४	३०	रोगिजो	रोगियों
१०७	२	हृदज	हृदय
११२	१५	विष	विषज
११५	९	१—१ भाग लेकर	१—१ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग लेकर
११६	१४	पञ्चाण	पञ्चबाण
११९	१	व्योस	व्योष
१२४	८	श्लेष्थकला	श्लेष्मकला
१२५	४	अङ्गल	अङ्गुल
१५१	२५	श्लैष्मिक	श्लैष्मिक
१५२	५	वृहत्पूर्ण चन्द्रोदय रस	वृहत्पूर्ण चन्द्र रस

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१५८	६	भूतभरव	भूतभैरव
१६१	२२	रसान	रसायन
१६५	१	यथा दाषानुपान	यथा दोषानुपान
१६८	२३	दाष	दोष
१७३	८	रत्ता	रत्ती
१७३	२६	को यकृत् शोथ दूर करके	को और यकृत् शोथ को दूर करके
१७३	२७	प्रभाव का हटाकर	प्रभाव को हटाकर
१७५	५	हा कर	होकर
१७७	७	ताथा	तथा
१७८	१०	भश्म	भस्म
१९२	१३	भिटते	मिटते
१९२	२७	दाषानुलोमक	दोषानुलोमक
२००	४	विध	विधि
२०६	२०	सत्त	सत या सत्व
२०८	१३	आक्षेपत्न	आक्षेपघ्न
२०८	१६	द्रारा	द्वारा
२१०	७	प्रवालभस्म और	और प्रवालभस्म
२१६	१२	वान्तिहद्र रस	वान्तिहृत् रस अथवा वान्तिहृद्रस
२१७	४	यह	इसका
२१९	५	हा	ही
२२८	१७	आमज्वर	आम
२२८	२२	शक्रवल्लम रस	शक्रवल्लभ रस
२३५	३	लकुठार रस	शूलकुठार रस
२३८	२६	अम्लापत	अम्लपित्त
२४५	१७	श्वाश	श्वास
२४५	२३	उन्पन्न	उत्पन्न
"	२३	बहार	बाहर
२४६	२०	पाञ्चो	पांचों

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२४७	१७	अग्निवद्धक	अग्निवर्द्धक
२४७	२८	अङ्गो	अङ्गों
२४८	१६	औ	और
,,	२३	वनालें	बनाले
२५२	२	वनावें	बनावें
,,	११	प्रवल	प्रबल
२५४	१८	धतूरे का बीज	धतूरे के बीज
,,	२०	वनालें	बनालें
२५५	५	शंखभस्म १६ लें	शंखभस्म १६ भाग लें
,,	२०	स्त्रस्थ	स्वस्थ
,,	२३	पाश्वो	पार्श्वो
,,	२७	कोष्ठ वद्धता	कोष्ठबद्धता
२५७	२९	प्रविष्ठ	प्रविष्ट
२५९	२१	आ रहे है	आ रहे है
२६१	१४	२ रो ४	२ से ४
२६२	२९	वैगन	वैगन
२६४	१६	अनुवन्धियो	अनुबन्धियो
,,	१८	सत्य जाता है	सत्य हो जाता है
,,	३०	वैषभ्य	वैषम्य
२६५	८	वेल	बेल
,,	९	वारीक	वारीक
,,	२५	अनुवम्धियों	अनुबन्धियों
२६६	९	अग्निवद्धक	अग्निवर्द्धक
२६७	२०	दौर्वल्य	दौर्बल्य
,,	२६	खिडिया मिट्टी	खडिया मिट्टी
२६८	१४	सैकडो	सैकडो
,,	२५	सदस	सदृश
२७०	२८	होती है	होती है

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
२७१	१२	होनेवाले	होनेवाले
,,	२७	रोगों	रोगो
२७२	१७	सेवत्र	सेवन
,,	२२	द्र्व्य तथा	द्रव्य तथा
२७३	२७	बनावे	बनावें
,,	२८	(शाखोक्त)	(शास्त्रोक्त)
२७४	१४	अवस्ओं	अवस्थाओं
,,	२०	भलिभांती	भलीभांति
२७५	४	वाल्ह	वाल्ह
२७६	११	सेबन	सेवन
२७७	२२	व्रण	व्रण
२७९	१७	अङ्गो	अङ्गो
,,	२४	रोगो	रोगों
२८०	२३	अग्निमांद्य	अग्निमांद्य
२८२	११	मूत्रासंधारक	मूत्रसंधारक
२८३	२३	अड	जड
२८५	३	सत्त	सत् या सत्व
,,	१८	खोल	खील
२८७	११	पिडीत	पीडित
,,	१२	षचनक्रिया	पाचनक्रिया
२९०	७	मानवो	मानवो
२९२	६	रो	से
२९३	२५	संरकृत	संस्कृत
२९४	१८	खरके	करके
२९५	९	गन्क	गन्धक
,,	२४	वर्गद	वरगद
२९६	१०	वन्द	वन्द
३००	१०	धोटें	घोटे

पृष्ठ सख्या	पंक्ति सख्या	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१२	धोटकर	घोटकर
३०१	२०	पूर्ण चन्द्रोदय	पूर्ण चंद्रोदय
,,	२९	तिव्राग्नि	तीव्राग्नि
३०३	२३	द्व्य	द्रव्य
३०४	१२	गिश्रित	मिश्रित
,,	२०	कीया	किया
३०७	१९	भलिभांत	भलीभांति
,,	२०	धृतकुमारी	घृतकुमारी
३१४	४	वार	बार
,,	२२	वढती है	बढती है
३१५	३०	प्रवल	प्रबल
३१७	१०	तीव्र	तीव्र
,,	२०	लौहे	लोहे
३२०	६	ओर	और
३२१	२७	वडे सम्पट	बडे सम्पुट
३२३	२४	सुख जाने	सूख जाने
३२४	१२	पत्र	पात्र
३२७	१०	प्रकर	प्रकार
३२८	९	चाहीये	चाहिए
,,	२२	बन्ध	बन्द
३२९	२६	वष्ट	नष्ट
३३२	२३	गन्धाम्ल	गन्धकाम्ल
३३३	६	द्रव्य	द्रव
,,	२४	विषर्स	विसर्प
३३४	२०	तैहार	तैयार
३३६	६	सर	खर
३३९	७	औद	और
३४२	२०	यशादभस्स	यशादभस्म

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३४४	४	जपाकुसुम	जवाकुसुम
३४५	२१	४ प्रहर की	४ प्रहर तक
३४८	११	आगाशय	आमाशय
,,	१२	पाचक क्रिया	पाचन क्रिया
३४९	७	विष	विप
,,	२१	वनाई	वनाइ
३५०	१	पारदभरम	पारद्भस्म
३५१	४	ताम्रभरम	ताम्रभस्म
,,	८	तीव्र	तीव्र
३६१	१	माषा	माशा
३६३	२०	भरम	भस्म
३६४	११	श्लक्षण	श्लक्ष्ण
,,	२१	प्रवालभरम	प्रवालभस्म
,,	२७	किटाणु विकार	कीटाणु विकार
३६५	१०	प्रवालभश्म	पवालभस्म
३६६	११	बातानुलोमक	वातानुलोमक
३६८	१९	श्वेतकूष्ठ	श्वेतकुष्ठ
३७०	११	मण्डूभस्म	मण्डूरभस्म
,,	१६	धोटकर	घोटकर
३७२	७	वच्चो	वच्चो
,,	१५	गिलाकर	मिलाकर
३७३	१४	दीर्धकाल	दीर्घकाल
,,	१९	फुक्फुस	फुफ्फुस
३७६	२०	रोग को नष्ट होते है	रोग को नष्ट करती है
३७९	१७	होनवाली	होनेवाली
३८०	२८	श्लेश्मकलाएं	श्लेष्मकलाएं
३८५	१८	तीव्राग्नि	तीव्राग्नि
३८६	५	भरम	गरम

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३८९	७	कमशः	क्रमशः
३९६	२१	स्निग्ध	स्निग्ध
३९९	४	हिंगुल	हिंगुल
,,	१५	दृड	दृढ
,,	२१	नो	तो
४०६	२४	सेवक	सेवन
४०७	७	अभ्रकभस्ग	अभ्रकभस्म
४०९	३	द्रब्यों	द्रव्यो
,,	९	औप	औषध
,,	१०	हास	ह्रास
४१०	१२	चूण	चूर्ण
४११	२१	वहार	बाहर
४१६	१९	श्लैष्म	श्लेष्म
,,	१९	श्लेप्म	श्लेष्म
४२३	२२	(यूतानी . .)	(यूनानी.)
४२४	५	इस सबका	इन सबका
४२७	२७	श्लेज्म	श्लेष्म
४३६	१	उदर की कृमि	उदर के कृमि
,,	१	उदार विकार	उदर विकार
४३७	१	मुन्नका	मुनक्का
४३९	५	उस्मे	इसमे
४४०	२६	विकृति बिहीन हो जाती है। अर्थात्	विकृति . . . है, अर्थात्
४५१	१३	पिडीत	पीडित
४५८	९	छिल	छील
,,	२६	कारणां	कारणो
४६०	७	धी	घी
४६२	१४	तिजरी	तिजारी
,,	२२	वारोक	बारीक

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
४६३	१५	हानी	हानि
,,	१५	पुरा	पूरा
४६६	२६	सैम्धव	सैंधव
४६९	२७	भौक्तिक भस्म	मौक्तिक भस्म
४७०	१०	विकरो	विकारो
४७२	२८	निकने लगने	निकलने लगते
४७५	११	[रसतन्तसार	[रसतन्त्रसार
४७८	७	शिरो वज्र रशः	शिरो वज्र रसः
,,	२०	शिलाजत्वादी बटी	शिलाजित्वादि वटी
४८०	२४	ओज आदि विकारो को	ओज आदि विकारो के
४८४	१	वी	घी
,,	२४	हिलाता रेहें	हिलाते रहे
४८७	४	उदाहण	उदाहरण
४९०	१२	दीर्धकाल	दीर्घकाल
४९५	२३	(१ घडे ये भरे,	(१ घडे मे भरे
४९८	५	अवाशण्ट	अवशिष्ट
,,	१४	रक्तव क	रक्तवर्धक
,,	१५	विकारां	विकारो
५०१	४	विकारों को लिए	विकारो के लिए
५०३	१३	दोता है	होता है
५०४	१६	औघध	औषध
,,	२४	किर	फिर
५१२	१६	कण्ठ	कुष्ठ
५१४	९	सूखा	सुखा
५१७	६	प्रस्वेद	प्रस्वेद्
५१७	८	घण्टां	घण्टों
५१८	अंतिम	नीकल	निकल
५२१	१२	यह	यदि

पृष्ठ संख्या	पंक्ति सख्या	अशुद्ध	शुद्ध
५२५	अंतिम	प्रदिप्त	प्रदीप्त
५२६	१४	अजवायम	अजवायन
५२७	८	सांठ	सोंठ
,,	१६	दाडिमाष्टक चूण	दाडिमाष्टक चूर्ण
५३१	२२	मालीश	मालिश
५३२	२५	पीवं	पीवें
५३३	१	पीत्त	पीत
५३३	१९	वृहन्नायिका चूर्ण	बृहन्नायिका चूर्ण
५३४	१७	भंगरे	भांगरे
५३६	२२	मिश्रि	मिश्रित
५३८	९	प्रस्वद	प्रस्वेद
५४१	५	विकर	विकार
,,	२५	छाल	छाछ
५४६	२	उसके	उसको
५४७	१७	मिश्रणां	मिश्रणो
,,	२४	आमशोशक	आमशोषक
५५२	१७	ऐसी परिस्थिति किसी	ऐसी परिस्थिति में किसी
,,	१९	डिजियेलिस	डिजिटेलिस
,,	२२	उतेजक	उत्तेजक
५६१	२	कद्दाना	कद्दुदाना
५६२	१३	श्लेश्मज्वर	श्लेष्मज्वर
५६६	६	क्याथ	क्वाथ
,,	२२	पटोलादि क्वाथ (भा. भै. र.)	पटोलादि क्वाथ (भा. भै. र. —३७६०)
,,	२५	मुल्हैठी से पूर्व मुनक्का और पढिए	
५६७	२४	ओर	और
५६८	८	वृहन्मंजिष्टा क्वाथ	वृहन्मञ्जिष्टा क्वाथ
,,	२६	होने है	होते हैं

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
५६८	२७	पक्षाधातादि	पक्षाघातादि
५६९	२५	आर्दित	अर्दित
५७४	१०	धी	घी
५७५	अंतिम	घत	घृत
५७६	६	घत	घृत
५७७	१	अर्न्तन्तु	अन्तर्तन्तु
५८१	१४	वृहत् शतावरी घृत	वृहत् शतावरी घृत
५९१	१७	शरीर पोषक के आगे "ग्रह" और जोडिये	
५९७	२५	आयुवद्धक	आयुवर्द्धक
५९९	२७	ओर	और
६००	२८	तावे	तांवे
६०५	२	फुक्फुस	फुफ्फुस
६१३	४	त्रिफलापाक (२५२७)	त्रिफलापाक (भा भै र. २४२९)
६१७	२०	धातु क्षाण हो	धातु क्षीण हो
६२१	२१	लगाव	लगावे
६२२	३	गड्ढो	गड्ढा
६२२	७	वायु को प्रवेश	वायु का प्रवेश
,,	८	आसवारिष्टा का	आसवारिष्टो को
६२३	४	फूलो को	फूलों का
६२४	१२	मुटामांसी	मुरामांसी
६२५	२१	सकती है	सकता है
६३०	१०	श्वेत	श्वेत
,,	१२	सुगधवाला	सुगधवाला
६३१	३	आर रक्तवर्द्धयुक्त है	और रक्तवर्द्धक है
,,	१३	औपध है	औपध है
[illegible]	२२	मृनिका	मृतिका
[illegible]	१०	होते है	होते हैं
[illegible]	२४	सम्पन्न	सम्पन्न

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
६५४	१५	वात दाह	वात, दाह
६५५	१७	१८॥। गुड	१८॥। सेर गुड
६५७	२८	ऐसा करने के	ऐसा करने से
६५८	२८	धातुशोषक	धातुपोषक
६६२	२४	श्वास क्षय	श्वास, क्षय
६७८	१४	कै०र और दुष्ट व्रण	कैसर और दुष्ट व्रणों को
६९३	१२	शरीर को सुरक्षित	शरीर सुरक्षित
६९७	२४	जिस तैल मे	जिन तेलो में
७१२	१३	अतिबला (कंघी)	अतिबला (कंघ)
७१५	१५	८० तोले	८० तोले,
७१७	१३	शौर	और
७२२	६	वृहद विष्णु तैल	वृहत् विष्णु तैल
७२९	३	इसना	इसका
७३७	७	सुराक्षत	सुरक्षित
७५०	१३	शला	शलाका
७५७	२	शास्त्रानुशास्त्र	शस्त्रानुशास्त्र
७५८	८	छानकर	छनकर
,,	१९	औषण्ड	औषण्या
७६३	१८	मृत्रल	मूत्रल
७६५	२३	८८	८
,,	२७	आमनाशफ	आमनाशक
७६६	६	अंशों गे	अंशो मे
,,	८	सेबन	सेवन
,,	१०	होता है	होती है
,,	१२	होता है	होती हे

सङ्केत सूची

अग्नि	अग्निमांद्य	कर्ण.	कर्णरोग	त.	तरङ्ग
अर्श. चि.	अर्श चिकित्सा	काम.	कामला	तर.	तरङ्ग
अजी. चि.	अजीर्ण चिकित्सा	कु.	कुष्ठ	त्वग्दो.	त्वग्दोष
अति.	अतिसार	कु. चि.	कुष्ठ चिकित्सा	ध्व. भं.	ध्वज भंग
अनु. त.	अनुपान तरङ्गिणी	कुरं. चि.	कुरण्ड चिकित्सा	नपुंसका.	नपुंसकामृत
अपस्मा.	अपस्मार	कृ.	कृमि	न. मृ.	,,
अ. पि.	अम्लपित्त	कृ. रो.	कृमिरोग	ना. व्र.	नाडी व्रण
अरु.	अरुचि	क्ष. चि.	क्षय चिकित्सा	ना. रो.	नासारोग
अर्बु.	अर्बुद	क्षय.	,, ,,	ने. रो.	नेत्ररोग
अवलेहा.	अवलेहाधिकार	क्षु. रो.	क्षुद्ररोग	ने.	,,
अश्म.	अश्मरी चिकित्सा	क्षुद्र.	,,	पट.	पटल
आ. वा.	आमवात	खं.	खण्ड	प्र.	प्रथम
आ. वे. प्र.	आयुर्वेद प्रकाश	ग. गं	गलगण्ड	परि.	परिशिष्ट
आ. वे. सं.	आयुर्वेद संग्रह	ग. नि	गदनिग्रह	पाका.	पाकाधिकार
आसवा.	आसवाधिकार	गं. मा.	गण्डमाला	पां. चि	पांडु चिकित्सा
उ.	उल्लास	गु. चि.	गुल्म चिकित्सा	प्रमे.	प्रमेह चिकित्सा
उ. अ.	उत्तरखण्ड, अध्याय	ग्र अ.	ग्रहणी अधिकार	प्र. चि.	प्रमेह चिकित्सा
उ. ख.	उत्तर खण्ड	च.	चरक	प्र. वि.	प्रथम विलास
उ. चि.	उदर चिकित्सा	च. द.	चक्रदत्त	प्ली.	प्लीह चिकित्सा
उन्मा.	उन्माद	च. पा.	चक्रपाणी	प्ली. चि.	,, ,,
उप.	उपदंश	च. सं.	चरक संहिता	बा. रो.	बालरोग
उरु.	उरुस्तम्भ	चि. अ.	चिकित्सा स्थान. अध्याय	बाल	,,
उल्ला.	उल्लास			भग.	भगन्दर
औप. मे.	औपसर्गिक मेह	चूर्णा.	चूर्णाधिकार	भग्न.	भग्नाधिकार
क. अ.	कल्पस्थान, अध्याय	छ. चि.	छर्दि चिकित्सा	भा.	भा.
अं. वृ.	अण्डवृद्धि	ज्व. चि.	ज्वर चिकित्सा	भा प्र.	भाव प्रकाश
कफ. रो.	कफरोग	ज्वरा.	ज्वरातिसार चिकित्सा	भै. र.	भैषज्य रत्नावली

म. खं.	मध्यम खण्ड
मदा.	मदात्यय
मसू. चि.	मसूरी चिकित्सा
मिश्राधि.	मिश्राधिकार
मु. रो.	मुखरोग
मुख.	„
मू. कृ.	मूत्र कृच्छ्र
मूत्रा.	मूत्राघात
मेद.	मेदोरोग
यो. त.	योग तरंगिणी
यो. चि.	योग चिन्तामणि
यो र.	योग रत्नाकर
यो. व्या.	योनिव्यापद्
र. अ.	रसायन अधिकार
रक्ताति.	रक्तातिसार
र. खं.	रसायन खण्ड
र. च.	रस चण्डांशु
र. चि.	रस चिन्तामणि
र. पि.	रक्तपित्त
र. प्र. सु.	रस प्रकाश सुधाकर
र. मं.	रस मङ्गल
र. यो. सा.	रस योग सार
र. र.	रस रत्नाकर
र. र. स.	रस रत्नसमुच्चय
र. रा. सुं.	रस राज सुन्दर

र. स. क.	रस संकेत कलिका
र. सा.	रस सागर
रसे. चिं.	रसेन्द्र चिन्तामणि
र. सा. सं.	रसेन्द्र सार संग्रह
रसा. सा.	रसायन सार
रा नि.	राजनिघण्टु
रा. य.	राजयक्ष्मा
रो.	रोग
वं. से.	वंगसेन
वा. चि.	वायु चिकित्सा
वाजी.	वाजी करण
वा. र.	वातरक्त
वा. व्या.	वात व्याधि
वि.	विलास
वि. ज्व.	विषम ज्वर
विष	विषाधिकार
विस.	विसर्प
वी. स्त.	वीर्यस्तम्भन
वृ नि.	वृहन्निघन्टु रत्नाकर
वृ. नि र	„ „
वृ यो त.	वृहद्योगतरङ्गिणी
वै क. द्रु.	वैद्यकल्पद्रुम
वै जी.	वैद्य जीवन
वै. श. सिं.	वैद्यकशब्दसिन्धु
व्र. चि.	व्रण चिकित्सा

व्र. शो.	व्रण शोथ
व्या. यो. सं.	व्यासयोग संहिता
शा. ध.	शारङ्गधर
शा नि. भू.	शालिग्राम निघण्टु भूषण
शि. रो.	शिरोरोग
शिरो.	„
शु. मे.	शुक्रमेद
शू.	शूल
श्ली.	श्लीपद
श्वा.	श्वास
श्वा. का.	श्वास कास
सन्नि.	सन्निपात
संग्रह.	संग्रहणी
सं. चि.	„ चिकित्सा
सु. सं.	सुश्रुत संहिता
सू. अ.	सूत्रस्थान, अध्याय
सो. रो.	सोम रोग
स्त्री. रो.	स्त्री रोग
स्थौ.	स्थौल्याधिकार
स्व. भं.	स्वरभङ्ग
हा. सं.	हारीत संहिता
हिक्काचि.	हिक्का चिकित्सा
हि. श्वा.	हिक्का श्वास
हृ. रो.	हृद्रोगाधिकार

विषयानुक्रमणिका

भैषज्य-सार-संग्रह

रस प्रवेशिका

प्राचीन काल से ही रस अगम्य महिमामय माने जा रहे है। रसायन क्रिया का करने-वाला होने के कारण रस सर्वश्रेष्ठ औषध गिना गया और गिना जाता है। शरीर में व्याप्त हो तथा सम्पूर्ण धातुओ में प्रविष्ट होकर यह द्रव्य शरीर में नवता उत्पन्न करता है और यही इसकी रासायनिक क्रिया है। अपनी इस रासायनिक क्रिया के लिए रस औषधियां सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है।

जिस प्रकार अनेक खाद्यो के परिपाक के पश्चात् शरीर संचालक और पोषक रस धातु उत्पन्न होती है और शरीर के लिए वह सबसे अधिक मूल्यवान सिद्ध होती है, उसी प्रकार खनिज द्रव्यों की जननी, भूमि, के गर्भ से अनन्त द्रव्यो का सारभूत तत्व रसेन्द्र उत्पन्न होता है। रसायन क्रिया की आत्मा होने के कारण इसे रस नाम दिया गया है; और क्योकि यह रस सब धातुओं का सार है अतः उपादेयता और गुणगरिमा की दृष्टि से इसका मूल्य सर्वोच्च अंकित हुआ है। क्योकि रस अर्थात् पारद सब खनिज द्रव्यों का सार भूत है अतः सम्पूर्ण धातुएं इसमे अपने तत्वो की उपस्थिति के कारण सम्पूर्णतया समा जाती है।

रस की उत्पत्ति के विषय में प्राचीनाचार्य्यों के अनेक मत रहे है, परन्तु मेरा मत तो यही है कि यह भूगर्भ का सर्वश्रेष्ठ द्रव्य है। पृथ्वी में यह कब, कहां से और कैसे आया इसकी खोज करना सृष्टा की खोज करने के समान ही है। सम्भवतः पृथ्वी के निर्माण काल मे ही पृथ्वी के जो २ भाग पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गए, उन भागो में रस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न जैसे सारभूत जटिल द्रव्यो की उत्पत्ति हुई और अनंत वर्षो के पश्चात् जिन स्थानो पर इन धातुओं का संग्रह हुआ वहां अथवा उन धातुओं से किसी दिशा मे कुछ दूरी पर सम्पूर्ण धातुओ का सार एकत्रित हो गया। यही सार कालान्तर मे धरा स्थल को फोडकर अवनि पर आ गया और किसी रसायनाचार्य्य को सहज ही प्राप्त हो गया। उस आचार्यने इसकी परीक्षा करके इसे उपयोग में लिया। क्योंकि यह धातुओं का सार है और अशुद्ध दशा मे इसमें उन धातुओं के अघुलनशील परिमाणु व्याप्त थे अतः रसायनाचार्य्य को इसकी अनेक आभाओ ने विस्मित कर दिया और उसने अपनी शोधक बुद्धि का प्रयोग करते इसको गहन दृष्टि से युक्ति प्रयुक्तियो द्वारा देखा तो इसमें नाग, वंग, वह्नि, मल, चापल्य, गरल, गिरि और असह्याग्नि नाम के आठ

दोषो को पाया, और क्योंकि इस प्राकृत रस का स्वरूप अंतर्सुनील, वहिरूज्वल मध्याह्न सूर्य के प्रकाश की भांति, धूम्र, पाण्डुर और चित्र विचित्र दर्शनवाला था अतः उसने इस रूपवाले पारद को अशुद्ध कहकर पुकारा, सत्य का एक ही स्वरूप होने के कारण तथा तात्विक द्रव्य में विस्मयोत्पादक विविधताओं के अभाव के कारण, और फिर उस महान आचार्य ने उपरोक्त आठ दोषो को अपने विलक्षण ज्ञान द्वारा इस रस में से बाहर निकाला और देखा कि पारद बिल्कुल निर्दोष है और इसका वर्ण सम्पूर्ण उज्ज्वल है। इसप्रकार के शुद्ध पारद को रसायनाचार्य ने अनेक प्रकार से औषधरूप मे प्रयुक्त किया और जहां भी इसका प्रयोग किया वहां सम्पूर्ण सफलता पाई। यह भयंकर से भयंकर रोगों का नाश करनेवाला सिद्ध हुआ। क्षीणकायो ने इसके सेवन से बलिष्ट और ओजस्वी शरीर प्राप्त किए, अस्वस्थो को इसने स्वस्थ किया; स्वस्थों में इसके सेवन से शक्ति, ओज, तेज, वर्ण, बल और बुद्धि आदि की वृद्धि हुई। सारांश में जहां भी इसका प्रयोग किया गया वहां यह सफल औषध मिली।

प्रत्येक शोधक की भांति, पारद के प्रथम शोधकर्ता रसायनाचार्य्य ने भी इसको अनेक रूप दिए और प्रत्येक धातु, उपधातु, रस, उपरस आदि के साथ मिश्रित कर इसके स्वरूपों को देखा और जिस २ प्रकार जिन अवस्थाओं मे यह भिन्न २ प्रकार के उद्बोधन करता गया वैसे ही रसायनाचार्य भी उनके उल्लेख करता गया। इसप्रकार पारद के अष्ट संस्कार, अष्टादश संस्कार, गंधक के साथ इसके अनेक प्रकार से जारण, पारद मारण और पारद का विविध द्रव्यो के साथ अनेक प्रकार के मिश्रणो का प्रादुर्भाव हुआ। पारद के संस्कारों का वर्णन कुप्पीपक्व रसायन प्रकरण मे दिया गया है।

ज्ञान उत्पन्न होने के बाद एक स्थान पर स्थित नहीं रहता। रसायनाचार्य्य ने अपनी शोध का चारो ओर प्रचार किया। सम्भवत: यह जानने के लिए कि वह अपनी क्रियाओं मे कहां तक सत्पथ पर है और अन्य इस विषय में क्या जानते है और उनकी शोध कहां तक पहुंची है, रसायनाचार्य ने अन्य कुशल आचार्यों को अपनी शोध बताई और अन्यों का इस विषय पर परामर्श लिया।

आयुर्वेद शास्त्र मे अनेक रसतंत्रो के नाम है। सम्भवतः इस रस द्रव्य के प्रथम शोधकाचार्य्य भगवान शंकर होंगे। रसतंत्रकारो के नाम सम्भवतः इसप्रकार है: श्री शंकर, नन्दीश्वर, भैरव, ब्रह्मा, विष्णु, दत्तात्रेय आदि देवता, तत्पश्चात् अगस्त, कपिल, भालुकि, व्याडि, मत्त, माण्डव्य आद महर्षि, चन्द्रसेन, लंकेश, विशारद, भाष्कर, सुरसेन, रत्नकोप, स्वछंद भैरव, मंथान भैरव, काक चण्डीश्वर, नरवाहन, कपालिक, रसेन्द्र तिलक,

सुरानंद, यशोधन, गोमुख, नरेन्द्र, मैथिल, स्कंद और भागवत्गोविन्दपाद प्रभृत्ति प्राचीन रस सिद्ध तथा नागार्जुन, भैरवनाथ, सोमनाथ, सिद्धनाथ, आदित्यनाथ, चर्पटीनाथ, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि रसतंत्र के प्रसिद्ध आचार्य हुए और सबने आदि आचार्य के ज्ञान से लाभ उठाकर, रस को अनेक रूप रूपान्तर देकर तथा इसे अन्य अनेक द्रव्यो में मिश्रित कर प्रयोग मे लाने का प्रयास किया अथवा प्रयोग में लाकर उसके गुण कर्मों का ज्ञान प्राप्त किया। इन सिद्धो ने अपनी सिद्धियो को, अनेक रसग्रन्थों के रूप में, विश्व कल्याण की भावनाओं से प्रेरित होकर, अपने अनुयायि रसायनाचार्य्यों तक पहुंचाने का प्रयत्न किया। ये ग्रंथरत्न अनेक है यथाः—रसेन्द्रसंहिता, दत्तात्रेयसंहिता, अगत्स्यसहिता, नासत्यसंहिता, गोरक्ष संहिता, रुद्रयामलतंत्र, महारसायनतंत्र, कामधेनुतंत्र, दत्तात्रेयतंत्र, सिद्ध लक्ष्मीश्वरतंत्र, लम्पटतंत्र, स्वच्छन्दभैरवतंत्र, मंथानभैरवतंत्र, काकचण्डीश्वरतंत्र, हरीश्वरतंत्र, महादेवतंत्र, नागार्जुनतंत्र, वालतंत्र, चंद्रसेनसिद्धांत, लंकेशसिद्धांत, कपिलसिद्धांत, ब्रह्मसिद्धांत, रसरत्नाकर, रसरत्न-प्रदीप, रसपारिजात इत्यादि असंख्य रसग्रन्थो का निर्माण हुआ। इनमें से कई लभ्य है और कितनो के केवल अब नाम मात्र ही अवशिष्ट रह गए है।

उपरोक्त रसायनाचार्य्यों और रसग्रन्थ निर्माताओ के नामों को देखने से प्रतीत होता है कि रसतंत्र का चिकित्सा के अन्य अंगों के साथ ही प्रचार हुआ। आर्ष ग्रन्थो में भी कहीं २ रसों का वर्णन मिलता है, परन्तु वे अर्थात् चरक—सुश्रुत आदि इन औषधों का विशेष वर्णन नहीं करते। इससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीनकाल में दो प्रकार के काय-चिकित्सक थे। (१) वे जो मानवो को यथासाध्य सात्विक औषधें देकर उनको स्वस्थ रखते थे और (२) रसायन द्रव्यों के प्रयोग कर्ता। पहली श्रेणी के चिकित्सको में ब्रह्मा, इन्द्र, अश्विनीकुमार, भरद्वाज, पुनर्वसु आत्रेय, भगवान धन्वन्तरि और इनके शिष्यो का समावेश होता है। ये चिकित्सक वृन्द रस चिकित्सा को हेय दृष्टि से नहीं देखते थे, परन्तु, सम्भवतः, उनके ये विचार थे कि पृथ्वी के सात्विक गुणो से उत्पन्न होनेवाले औषध द्रव्य अधिक सौम्य और सरलतया प्रयुक्त किए जानेवाले द्रव्य है, वे सरलता से संसार के अनेक स्थलों पर प्राप्य है, उनको कहीं भी आरोपित किया जा सकता है; इन द्रव्यो के औषध निर्माण में किसी प्रकार का विशेष व्यय और परिश्रम नहीं होता। ये औषध द्रव्य मानव निर्माण के तत्वों के अधिक समीपवर्ति है और इनके अधिक मात्रा में सेवन से भी किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है। इसके अतिरिक्त इन महापुरुषों की यह भी धारणा थी कि जो सर्वसाधारण को समानतया प्राप्त हो और जिनको, अधिक उपयोगिता के कारण, देश के प्रत्येक स्थल पर आरोपित करके अनेक बाग, वाटिका और वनस्थलियो की स्थापना की जा सके

तथा जो देश को हराभरा कर दे ऐसे औषध द्रव्य का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही देश के लिए अधिक हितकर होगा, कारण कि वनस्पति द्रव्य केवल औषध रूप में ही काम नहीं आते अपितु इनके फल, मूल, फूल, त्वक, पत्र आदि मानवो तथा अन्य प्राणियों के लिए अनेक प्रकार से उपयोगी हैं। कई तो आहार रूप में भी काम में आते है। फलों के स्वादिष्ट और रक्तवर्धक रसो का सेवन मानवो मे सौम्यता और नवता की उत्पत्ति करता है। इन औषधियों मे अधिकतर रस पाए जाते है और शरीर के वर्द्धन, पोषण और निर्माण में ये अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। प्रत्येक ऋतु इन औषध तत्वो में ऋतु अनुसार परिवर्तन करके नवीन तत्वो का संचार करती है और प्रति वसंत ये अपनी वर्षभर की जीर्णता से मुक्त हो जाते है। ऐसे अनेक कारणो को लेकर ये चिकित्सक सदा अनेक प्रकार से जन कल्याणकारी औषध द्रव्यो का उपयोग ही अधिक प्रशंसनीय मानते थे।

रस और धातु द्रव्यों के विषय मे सम्भवतः इनकी मान्यता यह रही होगी कि ये द्रव्य पृथ्वी के केवल तेजस् सार है और इनमें तेज अंश का ही आधिक्य है। यह तेज अंश अपनी तेज वृत्ति के कारण शरीरो मे राजसिक और तामसिक दोषो की वृद्धि कर सकते है और ये दोष मानवों के पारस्परिक कल्याण के वाधक है तथा इनकी प्राप्ति और इनके निर्माण में वहुत परिश्रम करने पडते है और सम्भवतः वनस्पति द्रव्यों की भांति ये द्रव्य प्रचुर मात्रा मे लभ्य भी नहीं है। इनका उपयोग केवल राजसिक और तामसिक वृत्ति के लिए ही अधिक किया जाता है।

उन महापुरुषों के इन विचारो का पोषण, तत्कालीन पृथ्वी की अधिक उर्वरता और औषध द्रव्यो मे रसों की प्रचुरता तथा वानस्पतियो की रस-धातु औषधों के समान क्रिया और उपादेयता आदि, करते थे।

दूसरी ओर रसायनाचार्य थे। रस की प्राप्ति के बाद उन्हें यह ज्ञात करने की आवश्यकता प्रतीत हुई कि पारद की इस तीक्ष्णता और उग्रता को कम करने के लिए किन द्रव्यों का प्रयोग किया जाय। यह हम पहिले ही कह चुके है कि पृथ्वी के, सूर्य तेज से अतिपरिपक्व भागों मे स्वर्णादि धातुओं का निर्माण हुआ और पारद इन धातुओं का तेजस् सार है अतः पृथ्वी और इन धातुओं के सौम्य सार द्रव्य पारद की उग्रता का संशमन कर सकते है, आचार्यों ने शीघ्र ही यह भी जान लिया, अतः उन्होंने गंधक, स्वर्ण गैरिक, काशीस, कांक्षी, ताल, शिला, अंजन और कंकुष्ट इन आठ द्रव्यों को रस निर्माण के लिए योग्य समझा और इन्हें उपरस की संज्ञा दी। इनमें से स्वर्णगैरिक में लोहांश विशिष्टता, काशीस में रूपान्तर लोहांश, अंजन मे शीशकादि धातु अंश मिश्रण और पृथ्वीतत्व इन

सभी मे न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान है, अतः धातु और पृथ्वी के गुणोयुक्त होने के कारण ये द्रव्य रस की तीक्ष्णता का शोषण करने मे उपयोगी है। इन द्रव्यों के उपयोग से रस के संस्कार होते हैं।

युगों के परिवर्तनो के साथ २ पृथ्वी और पृथ्वी पर बसनेवाले प्राणियो के शरीर--तत्वो में क्षीणता आती गई। पृथ्वी मे उर्वरता और सौम्यता के गुणों का अभाव आने से औषध और अन्नादि के गुणो मे भी क्षीणता हुई और मानवों मे वैकारी भावो के कारण दिनोंदिन रोगो की वृद्धि होने लगी, इसलिए मध्यकाल के चिकित्सकों को वनस्पति द्रव्यो के उपयोग के साथ २ रस औषधियो का उपयोग भी अनिवार्य रूप से करना पडा। यहां से तान्त्रिक युग प्रारम्भ हुआ। अनेक रसायनाचार्यों ने नवीन २ संशोधन करके रस औषधो के मिश्रण शोधे और अनेक रस तत्र कर्ताओ ने अपनी रस विषयक शोधों का ग्रन्थ रूप में निर्माण किया। यह काल कब तक फलाफूला यह नहीं कहा जा सकता परन्तु ऐसा लगता है कि बौद्ध काल के पश्चात् इन औपधियो के प्रचार का कुछ अवरोध हो गया। यही कारण है कि अनेक ग्रंथकर्ता, रसतत्राचार्य, सिद्ध और उच्च कोटि के तंत्रकारो के नाम है परन्तु उन तंत्रो के दर्शन नही होते। ये कहां गए, इसकी शोध करनी आवश्यक है। हो सकता है, किन्हीं प्राचीन वंश वैद्यों के यहां इन रस ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतिलिपि लभ्य हो जाय। अब भी रस वैद्यों का अभाव नहीं है, परन्तु वे इस विषय मे जो जानते है उसका प्रचार नहीं चाहते। यह रसशास्त्र के लिए एक प्रकार की क्षति है। इस तांत्रिक काल से वनस्पति वैद्य और रस वैद्य एक हो गए और रसों मे वनस्पतियों का मुक्तहस्त प्रयोग होने लगा। इसीलिए प्रायः प्रत्येक रस औषध के निर्माण मे एक या अनेक वनस्पति औषध का भावना रूप में प्रयोग किया जाता है। कहीं ये भावनाएं खनिज द्रव्यो के दोषो के नाश के लिए होती है, कहीं ये उनकी अति उग्रता का संशमन करने के लिए दी जाती है और कही ये उनके गुणों का वर्द्धन करने के लिए प्रयोग मे लाई जाती है। यह वनस्पति रस संयोग मध्यकालीन पंडितोंने बडे ही विचार पूर्वक और शोध के बाद मालूम किया प्रतीत होता है। वे यह तो जानते ही थे कि खनिज द्रव्यो के गुणो में परिवर्तन नहीं होते परन्तु वे इससे भी अजाने नहीं थे कि पृथ्वी में गुणो के अभाव के साथ २ वनस्पति द्रव्यो और अन्य औषध तत्वों में भी अवश्य गुणो का अभाव हो जाता है। यही कारण था कि उन्होने इस अत्युपयोगी सम्मेलन को सुखावह समझा, इसीलिए प्रायः प्रत्येक रस औषध मे एक या अनेक वनस्पति औषधों को मिश्रित किया गया है या उनका निर्माण करते उन्हें वनस्पति औषधों से परिभावित किया गया है।

औषधो का यह मिश्रण बडा ही विस्मय कारक है। कृतयोग्य पुरुषो की उन्नत विचार शक्ति और सारगर्भित निर्णय इतने परिपूर्ण है कि किसी को संशय करने का साधारण सा अवकाश भी नहीं है। एक रोग के अनेक वैकारी कारण और अनेक अनुबन्धि हो सकते है, अतः उस रोग की चिकित्सा तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण वैकारी कारणो का विनाश किया जाय और रोग के साथ होने वाले सभी अनुबन्धियो को भी साथ ही में मिटा दिया जाय। इन औषधों के निर्माताओ ने अपनी बहुमुखी विलक्षण वृत्ति का उपयोग करते हुए औषधों का ऐसा निर्माण किया है कि एक २ औषध अपने गुण धर्मों का पूरेपूरा पालन करे। रोग, रोग के कारण और रोग के अनुबन्धियों का एक ही औषध से, एक ही साथ विनाश, उसके प्रशस्त सम्मिश्रण पर आश्रित है। प्रत्येक द्रव्य दोष, दूष्य और रोग विरुद्ध हो और परस्पर रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव में अविरुद्ध हों ऐसे द्रव्यों का ऐसा संयोग साधारण बुद्धि से नही होता और न साधारण शोध ही इनके लिए पर्याप्त होती है। जितना ही इस विषय पर चिंतन करने बैठते है, उतना ही अधिक इस औषध सम्मिश्रण को एक विचित्र समस्या पाते है। ऐसी समस्या को इतनी सरलतापूर्वक जिन महापुरुषो ने हल किया है वे अनेकश· वंद्य है। इसमे कोई शंका नहीं है कि औषधो के जितने मिश्रण पूर्वाचार्यों की प्रणाली से हमे प्राप्य हैं, वे अद्भुत हैं। यह इन औषधो की क्रिया की ही महत्ता है कि आयुर्वेद आज भी अनंत विनाशक आघातो को सहता और यदाकदा लुप्त प्रायः सा दीखता भी उसी अनिंद्य रूप मे प्रचलित है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि आयुर्वेद का औषध शास्त्र अनंत है। इसमे एक एक रोग के लिए अनेक प्रमाणित और शक्तिशाली औषधियां विद्यमान है। ऐसा कोई भी रोग नहीं है कि जिसकी औषध आयुर्वेद मे न हो। यह दूसरी बात है कि हम इतने तत्वचिंतक और विचारशील नहीं है कि उनकी वास्तविक शक्ति से लाभ उठा सके। प्रत्येक औषध कही २ विविध अनुपानों के साथ प्रयोग मे लाई जाती है और अनुपानों के साथ उसकी प्रयोग विधि भी भिन्न भिन्न होती है। इसप्रकार के अनुपानों का भेद यह स्पष्ट करता है कि औषधों के विविध द्रव्यो के साथ का मिश्रण भिन्न कल्प का निर्माण करता है और ऐसा सम्मिश्रण औषधि को भिन्न क्रियामयी बना देता है। जिस प्रकार रसायनाचार्यों और वनस्पति वैद्यों के भिन्न २ समुदायों ने अपने २ शास्त्र का अनेक शोधो के साथ परिवर्द्धन किया और प्रत्येक ने अनेक कल्प विकल्प युक्त औषधों का निर्माण किया, उसीप्रकार मध्यकाल के पश्चात् रस-वैद्य और वनस्पति-वैद्यो के एकत्रित समुदाय ने रस-वनस्पति औषध मिश्रणो को अमित संख्या और अपरिमित स्वरूपों में निर्मित किया। इन्हीं निर्माणों को आज हम

रस औषध स्वरूपो मे यथावश्यक क्रिया और गुण के लिए प्रयोग में लाकर कीर्ति सम्पादन करते है और आर्तों का कष्ट निवारण करते है।

रस

इन औषध तत्वों में सर्वोपरि स्थान पारद-को दिया गया है और यह अकेला ही रस नाम से पुकारा जाता है।

उपरस

गन्धक, काशीस, गैरिक, कांक्षि, ताल, सिला, अंजन और कंकुष्ठ ये आठ उपरस है।

साधारण रस

कंपिल्ल, चपल, गौरिपाषाण, नवसादर, कपर्द, वह्निजाल, हिंगुल और मृदारसिंग ये आठ साधारण रस हैं।

धातु

स्वर्ण, रजत, ताम्र, वंग, नाग, यशद और लौह ये सात धातुएं है।

उपधातु

स्वर्णमाक्षिक, तारमाक्षिक, तुत्थ, कांस्य, पित्तल, सिन्दूर और शिलाजतु ये सात उपधातुएं है। स्वर्णमाक्षिक स्वर्ण की, तारमाक्षिक रजत की, तुत्थ ताम्र की, कांस्य ताम्र और वंग की, पित्तल यशद और ताम्र की, सिन्दूर शीशे की और शिलाजतु लौह की उपधातु मानी गई है।

जिसप्रकार उपरस और साधारण रसो में रस के गुणों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश है, उसीप्रकार उपधातुओं मे धातुओ के गुण न्यूनाधिक मात्रा मे विद्यमान रहते है।

महारत्न

जिसप्रकार रस, उपरस, धातु, उपधातु, वानस्पतिज और जान्तव द्रव्य औषध निर्माण में उपयोगी है, उसीप्रकार रत्न और उपरत्न भी अन्य औषधो के मिश्रण की भांति ही कहीं मिश्रणों के साथ और कही अकेले, चिकित्सकों के नित्य काम मे आनेवाले पदार्थ हैं। कुछ रत्न और उपरत्न खनिज है और कुछ समुद्र लभ्य। हीरा, वैक्रान्त, माणिक्य, पुष्पराग, नीलम, पद्मराग, गोमेद आदि खनिज रत्न हैं जबकि मुक्ता, विद्रुम आदि समुद्र लभ्य है। मुक्ता मुक्ता—शुक्तियों से प्राप्य है। प्रवाल समुद्र में इतस्ततः होनेवाला पदार्थ है।

शब्द शास्त्र के आचार्यों ने रत्नों को उनके रमणीय अथवा आकर्षक होने के कारण यह नाम दिया है। महारत्न ९ है। (१) हीरक, (२) माणिक्य, (३) मुक्ता, (४) पुष्पराग, (५) नीलम, (६) तार्क्ष्य, (७) वैदूर्य, (८) गोमेद और (९) विद्रुम। ये रत्न क्रम-पूर्वक नवग्रह रत्न भी माने जाते है।

क्षुद्र-रत्न अथवा उपरत्न

वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, राजावर्त, पीरोज़क, स्फटिक, मुक्ता-शुक्ति, शंख और कांच उपरत्नों के नाम से प्रसिद्ध है।

औषध निर्माण मे अति उपयोगी इन द्रव्यो का यथास्थान शोधन, मारण, प्रयोग, मात्रा आदि का उल्लेख किया गया है। कूपीपक्व प्रकरण मे पारद और उसके निर्माणों का वर्णन है। भस्म प्रकरण मे धातु, उपधातु, उपरस, रत्न और उपरत्नों का शोधन, मारण और गुणधर्म आदि का उल्लेख है।

विष-उपविष

जिनके दर्शन, भक्षण, स्पर्श और गन्ध से मानवो या प्राणियों को विषाद हो जाय या वे मूर्च्छित हो जाएं या उनमे अनेक वैकारी लक्षणों की उत्पत्ति हो जाय अथवा उनकी मृत्यु हो जाय ऐसे द्रव्यो का नाम विष है अर्थात जीवन के नाश करनेवाले द्रव्यों का नाम विष है। ये विष दो प्रकार के होते है। (१) कृत्रिम और (२) प्राकृतिक। स्थावर और जङ्गम ये प्राकृतिक विषों के भेद है। गर कृत्रिम विष है। कृत्रिमतया अथवा खाद्यादि के विग्रह से होनेवाले विष का नाम गर है। कृत्रिम विषो का आयुर्वेद में प्रयोग साधारणत: कहीं देखने में नहीं आता अतः इसका विशेष वर्णन नहीं किया जा रहा है। खनिज और औषध मे रहनेवाले विष को स्थावर विष कहते है। इनके ५५ भेद है जबकि जङ्गम विष असंख्य होते है, क्योकि जङ्गम विष सर्पादि जन्तुओ मे रहता है। इन विषों की उत्पत्ति के विषय मे अनेक प्रकार की लोकोक्तियां प्रचलित है।

अधिष्ठान भेद से स्थावर विष के १० भेद हैं (१) कन्द, (२) सार, (३) निर्यास, (४) पुष्प, (५) मूल, (६) फल, (७) त्वक, (८) दल, (९) क्षीर और (१०) खनिज। ये मूलादि भेद से ५५ है यथा:-मूलविष आठ, पत्रविष पांच, फलविष बारह, पुष्प विष पांच, त्वक-सार-निर्यासविष सात, क्षीरविष तीन, धातुविष दो और कन्द विष तेरह होते है। द्रव्यों और स्थानों से ये स्थावर विष प्राप्त हो सकते है। स्थावर विष के

प्रकारान्तर से दो भेद होते है । (१) विष और (२) उपविष । विष में वत्सनाभ इत्यादि और उपविप में विषतिन्दुक इत्यादि सम्मिलित किए जाते है ।

विष

विष के ९ भेद होते है (१) हलाहल, (२) कालकूट, (३) शृंगक, (४) प्रदीपन, (५) सौराष्ट्रिक, (६) ब्रह्मपुत्र, (७) हारिद्र, (८) सक्तुक और (९) वत्सनाभ । इनमें पहले ८ विषो का प्रयोग कहीं नहीं देखा गया है । वत्सनाभ ही अधिकतर प्रयोग में आता है।

वत्सनाभ

यह पर्वतीय स्थानों पर होता है और विशेषकर गढवाल, काश्मीर और नैपाल में उत्पन्न होता है । यह कन्द दीर्घमूल और स्थूल होती है । वत्सनाभ काला, कपिश और पाण्डुर तीन वर्ण का होता है । इनमें क्रमपूर्वक वत्सनाभ के गुण उत्तम होते है । वत्सनाभ का प्रयोग बिना शुद्ध किए कभी भी न करना चाहिए । अशुद्ध वत्सनाभ का प्रयोग करने से दाह, मोह, हृदरोध और मृत्यु तक सम्भव है । वत्सनाभ के शोधन में, सुन्दर गुणसंम्पन्न वत्सनाभ के छोटे २ टुकडे करें और इन टुकडों को पत्थर या मिट्टी के पात्र में रक्खे एवं गोमूत्र से परिप्लावित कर पात्र को ३ दिन तक तीव्र अग्नि पर उबालें । पात्र में नित्य नवीन गोमूत्र का प्रवेश कराते रहें। उपरोक्त कथित समय के अंनतर द्रव्य को सुखालें ।

अथवा

दोलायंत्र विधि से वत्सनाभ के छोटे २ टुकडों को बांधकर गोमूत्र में पकावे । १—२ याम तक इसप्रकार इनका स्वेदन करने से यह शुद्ध हो जाता है । इसीप्रकार गोदुग्ध में भी वत्सनाभ का स्वेदन करने से यह शुद्ध हो जाता है । वत्सनाभ कटु, तिक्त, ऊष्ण, कषाय, योगवाही और उत्कृष्ट रसायन है । यह त्रिदोषनाशक है एवं विशेषकर कफ वात का नाश करता है । यह अग्निवर्द्धक, शीतनाशक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, अग्निमांद्य नाशक, प्लीहोदर रोगों का नाश करनेवाला है । वातरक्त, श्वास, कास, अर्श, ग्रहणीरोग, गुल्मरोग, कुष्ट, पाण्डु, ज्वर, आमवात, तिमिर, रात्र्यांधता, अभिष्यंद, नेत्रशोथ, कर्णशोथ, कर्णशूल, शिरःशूल, ग्रधृसि, कटिवेदना आदि रोगों का नाशक है तथा आखु या चूहे के विष की औषध है ।

वत्सनाभ का सेवन बाल, वृद्ध, रोगी या रोगिणी, गर्भिणी, अतिक्षीण यक्ष्मापीडित, क्रोधी, भ्रांत, हृदौर्बल्य आदि से पीडित को नहीं कराना चाहिए ।

उपविष

विष-तिन्दुक

विषतिन्दुक के अनेक पर्याय है। यथाः—कुचिला, तिन्दुक, कारस्कर, कुपाक, विषमुष्टि आदि।

विषतिन्दुक के बीजों का ही चिकित्सार्थ प्रयोग किया जाता है। यह वृक्ष कोंकण, बंग और दक्षिण भारत मे विशेषकर होता है। विपतिन्दुक के बीजों का, दोलायंत्र विधि से, ३—४ घण्टे गोदुग्ध में शोधन करने से यह शुद्ध हो जायगा। यह कटु, तिक्त, आग्नेय, दीपन, उग्र वीर्य, तीक्ष्णसार, कामोदीपक, अम्लपित्त प्रशमक, मूत्रल, क्षुधावर्द्धक, पाचक, श्लेष्मनाशक, बलवर्द्धक, मेदनाशक, रुचिकारक और सारमेह अर्थात् पागल कुत्ते के विष का नाशक है।

विषतिन्दुक का प्रयोग ग्रहणी रोग, उन्माद, आध्मान, अजीर्ण, आमाशय शूल, हृदौर्बल्य, श्वास, फुफ्फुस विकार, अर्धांगवात, अर्दित, नाडी दौर्बल्य, मांशपेशी शोष, मांशपेशी काठिन्य, पक्षाघात, स्पर्शाभाव, मदात्यय, नाडीशूल, अनिद्रा, अर्श, राजयक्ष्माजन्य निशास्वेद आदि मे हितकर है।

अहिफेन

अहिफेन को भी शुद्ध करके प्रयोग मे लाना चाहिए। अहिफेन को अदरक के रस की सात भावना देने से यह शुद्ध हो जाता है। यह निद्राजनक, संग्राही, वेदनानाशक, सन्निपात नाशक, वमिनाशक तथा अतिसार नाशक है। इसके सेवन से आमाशय का व्रण, मांसार्बुद वेदना, मद्यपानोत्थ शोथ, आमाशयिक शूल, अंगों की अतिक्रिया—दोष, विसूचिका, प्रवाहिका, उन्माद, रजःशूल, अस्थिभग्नव्यथा, शुष्क कास, गर्भस्राव, राजयक्ष्मा, निशास्वेद, अंत्र और फुफ्फुसीय रक्तस्राव, अति कफ प्रवृत्ति, कण्ठ कण्डू, कास, नाडी, धमनि, हृदय की तीव्र गति आदि नष्ट होते है। हृद्रोगियों को इसका सेवन विचारपूर्वक कराना चाहिए क्योंकि यह हृदय की गति को मंद करती है। विशेषतः बाल, वृद्ध, मधुमेह पीडित, वृक्कशोथी और जिनके हाथ पैर शीतल हो जाते हों, ऐसे व्यक्तियों को इसका प्रयोग नहीं कराना चाहिए।

जयपाल (जमाल गोटा)

जयपाल का शोधनः—बाह्य त्वचा को निकालकर और दो टुकडे करके उसकी हरिद्रावर्ण जिह्वा को निकाल ले तथा एक पोटली में बांधकर, दोलायंत्र विधि से गोदुग्ध मे तीन

बार स्वेदन करे। यह तिक्त और रेचक है। इसके सेवन से जलोदर, नव ज्वर, कृमि और वातश्लेष्म का नाश होता है एवं वमन और पित्त को वृद्धि होती है। वृश्चिक दंश विष की यह औषधि है।

धतूरे के बीज

धतूरे के बीजों का शोधन, उनको एक पोटली में बांधकर दोलायंत्र विधि से गोदुग्ध में एक याम तक पकाकर तत्पश्चात् गरम जल में धोकर और सुखाकर, करें।

यह कटु और ऊष्ण है। यह शोथ, कृमि, कुष्ट, ज्वर, त्वक्दोष और कण्डू का नाश करता है। इसके अति प्रयोग से भ्रम और मोह विकार उत्पन्न होते है।

धतूरे का उपयोगः—श्वास संशमन, कफ शोषण, आक्षेपोन्माद हरण, हर्षवर्द्धन, अभिष्यंदि प्रशमन, कर्णशूलनाशन लसिकाग्रन्थिशोथ नाशन, कृमिदंतव्यथा हरण, आमवात प्रशमन, स्तनदोष नाशन, प्रलाप हरण आदि अनेक विकारो पर इसका प्रयोग किया जाता है।

भांग

भांग, भंगि, माकुलानि, मादनि, मादिका, मातुलि, विजया, वह्लादिनी, तंद्राकारिणी, आदि भांग के पर्याय है।

भांग का क्षुप सर्वत्र भारत में उत्पन्न होता है। इसके पत्तों और बीजों का औषध निर्माण हित उपयोग किया जाता है।

भांग का शोधन उसके पत्तो को पानी में कुछ काल रखकर एवं मथकर सुखाने और गोघृत में अच्छी तरह से भूनने से होता है।

अथवा

इसीप्रकार सूखी हुई भांग को कीकर की छाल के क्वाथ में आधे घण्टे तक पकाकर एवं सुखाकर गोदुग्ध में पीसकर प्रयोग में लावें।

यह तिक्त, लघु, तीक्ष्ण, ग्राही, कफनाशक, दीपक, पाचक और मदोत्पादक है। इसका प्रयोग अधिकतर कामोद्दीपन के लिए किया जाता है। स्वप्नमेह नाशन और शुक्र स्तम्भन के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। भांग के सेवन से निद्रा आती है एवं धनुस्तंभ, अन्त्रशूल, वृक्कशूल, पित्तशोषजन्य शूल, अजीर्ण, अतिसार, उन्माद, वृक्कशोथ और व्यथा का नाश होता है। भांग आमाशय को बल देनेवाली और मूत्रल है। इसके सेवन से अर्श,

व्रणमेह, नाडी दौर्बल्य, रजः शूल, आमाशयोत्थ शूल, यक्ष्मा–कास, वस्ति आक्षेप, दारुण आक्षेप, संक्रामक कास, शीर्ष व्यथा, मस्तिष्क स्राव या गर्भस्राव में होनेवाला रक्तप्रदर, रक्तस्राव आदि का नाश होता है।

भांग का उपयोग २ से ४ रत्ति की मात्रा में करना चाहिए।

गुंजा

रक्ता, रक्तिका, ताम्रिका, कृष्णचूडिका, उच्चटा, शीतपाकी, अरुणा, भिल्लभूषणिका, चूडामणि, शिखण्डी, कृष्णला, काम्भोजी आदि रत्ति के पर्याय है।

गुंजा के पत्र, पत्ररस, मूल एवं बीजों का औषध हेतु प्रयोग किया जाता है। विष केवल इसके बीजो में ही होता है अतः शोधन के पश्चात् ही इसके बीजों का प्रयोग करना चाहिए। अशुद्ध गुंजा वामक, तीव्र रेचक और भयंकर विष है।

गुंजा के नए बीजो के चूर्ण को दो तह वाले कपडे में रखकर पोटली बनालें और दोलायंत्र विधि से दो याम तक गोदुग्ध मे इसको पकावे। इसीप्रकार इसको कांजी में पकाकर शुद्ध किया जा सकता है।

गुंजा बीज कामोद्दीपक, उरुस्तंभनाशक और बलवर्धक होते है।

गुंजा ०॥ से १॥ रत्ति तक की मात्रा मे प्रयोग में लाएं।

भिलावा (भल्लातक)

भल्लातक, भल्लातः, तपनः, अरुष्करः अग्निकः कृमिघ्न और वातारि भिलावे के पर्याय है।

भिलावे के परिपक्व फल, जो जल मे डालने पर डूब जांय, को ही उपयोग में लाते है।

भिलावे का रस यदि त्वचा पर भी पड जाय तो दाह, व्रण, शोथ आदि उत्पन्न कर देता है, अतः अशुद्ध बीजो का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

भिलावे के फलों को ईंटो के चूर्ण के साथ पोटली में बांधकर, पोटली को घिसे एवं गरम पानी में डालकर, उसे फलों की त्वचा और तेल निकलने पर्यंत घिसते रहे और अन्त में नारियल के जल में पकाकर शोधन करे।

यह कटु, तिक्त, ऊष्ण, कृमिनाशक, रसायन और बल्य है। गुल्म, अर्श, ग्रहणीरोग, कुष्ट, आमवात, कफवातोदर, विबन्ध, आध्मान, शूल, श्वासादि रोगों को यह नष्ट करता है।

भल्लातक का १ से ३ रत्ति तक प्रयोग करे।

करवीर

हयारि, हयमारि, अश्वमारक, अश्वान्तक, अश्वहा, अश्वघ्न, मत्त, चण्डातक आदि कन्हेर के अन्य नाम है।

कन्हेर श्वेत, रक्त और पीत वर्ण के पुष्पो के भेद से तीन प्रकार की होती है। विप केवल कन्हेर की मूल मे होता है। कन्हेर की मूल या उसके रस के सेवन से मोह, दाह, भ्रम आदि विकार होते है। कन्हेर की मूल का वाह्य प्रयोग किया जाता है। इसका आन्तरिक प्रयोग कहीं देखा नहीं गया। वाह्य प्रयोग मे इसकी मूल को घिसकर प्रलेप रूप में व्रण पर लगाते हैं। इसके क्वाथ मे पक्व तैल को त्वक रोगो में मालिश के लिए प्रयोग में लाते है।

अर्क–क्षीर

रवि क्षीर, सूर्य क्षीर, रविदुग्ध, सूर्यदुग्ध आदि अन्य इसके पर्याय है।

यह स्निग्ध, तिक्त और ऊष्ण होता है। यह कुष्ट, गुल्म और उदर रोग नाशक है और रेचक तथा वामक है। इसके प्रलेप से गुदान्कुर, कृमिदन्त व्यथा आदि का नाश होता है।

रक्तचित्रक

रक्तचित्रक मूल को चूने के पानी में डुबाकर रखे और धूप मे सुखाले। इसप्रकार रक्तचित्रक मूल शुद्ध हो जाती है।

वृद्धदारुक

वृद्ध दारु के बीजो को दोलायंत्र विधि से एक याम तक गोदुग्ध मे पकाने से वे विशुद्ध हो जाते है।

निम्बु के बीज

अपामार्ग क्वाथ में दोलायंत्र विधि से निम्बु के बीजों को एक याम तक पकाने से वे विशुद्ध हो जाते है।

हींग

गर्म तए पर घी डालकर और उस पर हींग को डालकर भूनने से हींग का शोधन होता है।

वनस्पति औषध

वनस्पति औषधो की संख्या अनंत है। इन औषधियो का प्रयोग करने से पूर्व उन्हे निर्विकार करके धो लिया जाता है और यथा शास्त्रादेश इनका प्रयोग किया जाता है। शास्त्रकारों ने विभिन्न औषधियों के भिन्न २ ग्रहण काल लिखे है और कहीं २ तो नक्षत्रों तक का वर्णन मिलता है, परन्तु इन सब आदेशो का पालन आज सम्भव नहीं, तदपि जो औषधियां ६ मास तक पडी रही हों उनको प्रयोग मे नही लाना चाहिए। जहां तक हो सके परिपक्व, वीर्यवान वनौषधियो को ताजी २ लाकर औषधियों का निर्माण किया जाय। इन औषधियों के मूल, त्वक, सार, निर्यास, बाल, स्वरस, पल्लव, क्षार, क्षीर, फल, पुष्प, भस्म, तैल, कण्टक, पत्र, कंद, शुङ्ग और कोंपले (किसलयो) का प्रयोग होता है।

जान्तव द्रव्य

विष्ठा, मूत्र, चर्म, वीर्य, अस्थि, स्नायु, शृंग, खुर, नख, केश, लोम, रोचन इत्यादि जान्तव अथवा जङ्गम द्रव्य है। इनको शास्त्रादेश पालन करते ग्रहण करना और यथावश्यक शुद्ध करके प्रयोग में लाना चाहिए।

इन द्रव्यों के अतिरिक्त वायुमण्डल की वायु, जल, (जिसके अनेक भेद है), सूर्यांशु, चंद्रांशु और वृक्ष छाया, गृह छाया आदि अन्य द्रव्य है जिनका जाने अजाने औषधों मे प्रयोग होता है।

रस औषधों के निर्माण में उपर्युक्त सभी द्रव्यों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। इन द्रव्यों की प्रयुक्त मात्राएं, प्रयोज्य पदार्थ तथा निर्माण प्रकार शास्त्र मे सुष्ठुतया वर्णित हैं।

इस अर्थात् रस प्रकरण मे इन रस, उपरस, धातु, उपधातु के शोधन, मारण और परिपाक के पश्चात् होनेवाले उपयोग का निदर्शन है। इस प्रकरण मे सभी औषधो को यथावश्यक मात्रा मे शास्त्रादेश करते विविध धातु, उपधातु, रस, उपरस, रत्न, उपरत्न, विष और उपविषों के साथ विधानपूर्वक का मिश्रण करने का मार्ग और इस मिश्रण को किन २ वनस्पति औषधों के साथ किसप्रकार परिभावित करके उसको भिन्न स्वरूप और अपने यौगिक रूप से भिन्न गुण बनाया जा सकता है, इस विषय का उल्लेख है। वस्तुतः एक २ द्रव्य को लेकर उनके गुणधर्मों का वर्णन करना और तदनुसार उनका विविध रोगो पर उपयोग करना यह सरल है, परन्तु विविध द्रव्यो को समान तथा भिन्न मात्रा में अमुक विधानपूर्वक मिश्रित कर उसको अमुक औषध द्रव्यों से परिभावित कर उस मिश्रण के

गुणधर्मों का निरूपण करना और उसको अमुक रोगों के लिए उपयोगी सिद्ध करना तथा यौगिक पदार्थ की मात्रा और अनुपान की शोध करना यह साधारण कार्य नहीं है। जबकि इन औषधियों के आचार्यों द्वारा कथित योगो को देखकर और उनके गुणधर्मों पर दृष्टिपात कर यह प्रतीत होता है कि जो सिद्ध है और जो इस शोध कार्य मे आत्मसमर्पण कर देते हैं उनके लिए यह कार्य सर्वथा सरल है। कहीं औषध द्रव्य एक है केवल उनकी भावनाओं मे अन्तर है और कहीं भावनाएं एक ही प्रकार की है और उनके औषध द्रव्यों मे अन्तर है, परन्तु गुणधर्म की दृष्टि से ये औषधियां एक दूसरे से नितांत भिन्न है। इसप्रकार की भिन्नता मुख्यतः बुद्धिशालियों के लिए विशेष लक्ष्य का विषय है।

अन्य औषधियों के समान ही रस–औषधो की क्रियाएं रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव द्वारा होती हैं और किन्हीं २ अवस्थाओ में केवल उनकी आंतरिक अचिंत्य शक्ति के प्रभाव से सम्पादित होती है। अनुपान के मिश्रणीक सार लाला ग्रन्थि, आमाशय के रस, पक्वाशय के रस, अग्नि, वायु, श्लेष्म, रस, रक्तादि द्रव्यों द्वारा तीक्ष्ण या मृदु बनकर ये औषध द्रव्य यथा प्रभाव नाडी, शिरा, धमनी, कण्डरा, लसिका ग्रन्थि, कला, मांस, मज्जा, मेद, आशय, अस्थि, उपस्थि आदि स्थानो पर तथा मस्तिष्क, हृदय, फुफ्फुस, उदर, यकृद, प्लीहा, वृक्क, वीर्यग्रन्थि, मूत्राशय, शुक्राशय तथा यथेप्सित अंगों पर क्रिया करते है। कुछ रस औषधे ऐसी हैं जिनकी क्रिया अनेक निर्माण, मिश्रण और अनुपान के आधार पर केवल मस्तिष्क पर ही होती हैं। यथा–निद्राकारक औषधियां,–निद्रोदय रस आदि। कुछ रस औषधें ऐसी हैं जिनकी क्रिया हृदय पर ही होती है। यथा–हृदयार्णव रस, अर्जुनाभ्र रस आदि। कुछ ऐसी है जो श्वास संस्थान पर ही प्रभाव डालती है। यथा–श्वास–कास चिन्तामणि, श्वास कुठार, स्वर्णभूपति रस, शृंगाराभ्रक रस आदि। कुछ ऐसी हैं जिनकी क्रिया श्लेष्मकलाओं पर होती है। यथा–कफ चिन्तामणि, श्लेष्म–शैलेन्द्र, वृहत कस्तूरी भैरव, लक्ष्मी बिलास आदि। कुछ ऐसी हैं जिनकी क्रिया अग्निवर्धन तक ही सीमित है। यथा–अग्निमुख लौह, अजीर्ण कण्टक रस, अग्नितुण्डी वटी, विषतिन्दुक आदि। कुछ ऐसी हैं जो मूत्रल है। यथा–त्रिविक्रम रस, गोक्षुरादि गुग्गुल, चंद्रप्रभा, पुनर्नवादि गुग्गुल इत्यादि। कुछ ऐसी हैं जिनकी क्रिया पित्त निस्सरण की होती है। यथा–पुनर्नवादि मण्डूर, यकृद्प्लीहारि लौह, महामृत्युंजय लौह, पुनर्नवादि क्वाथ इत्यादि। कुछ ऐसी हैं जिनकी क्रियाएं अण्डग्रन्थियो पर ही होती है। यथा–अष्टावक्र रस, माणिक्य भस्म, सिद्ध मकरध्वज, कस्तूर्यादि वटी। कुछ ऐसे हैं जिनकी क्रियाएं एक ही साथ मांस, कण्डरा, और नाडियां पर होती हैं। यथाः–महायोगराज गुग्गल, महावात विध्वंसक रस, वातकुलांतक

रस आदि। कुछ ऐसी है जिनकी क्रिया पाचन संस्थान के विकारों द्वारा उत्पन्न होने वाले विकृत द्रव्यों के शोषण और पाचक रसवाही ग्रन्थियों के दोषों की नाशक होती है। यथा–वसंत कुसुमाकर, वृहत् वंगेश्वर, वसंततिलक, वसंतमालती आदि। कुछ योग ऐसे हैं जिनकी क्रिया दाहनाशक है। यथा चन्दनादि चूर्ण, चंदनादि लौह, पित्तान्तक लौह, महापित्तान्तक लौह आदि। कुछ औषध ऐसी है जो रक्तरोधक है, यथा–रक्तपित्त कुठार रस आदि। सारांश यह है कि शरीर मे जितने अंग, जितनी क्रियाएं, जितने दोष, धातु, मल, शिराएं, धमनिया, मर्म और विभिन्न आशय इत्यादि है उन सब पर रसायन रूप मे और विकार प्रशमक रूप में काम करने वाले विविध प्रकार के अनेक रस शास्त्र मे विद्यमान है। सम्भवतः रोगों की संख्या से कहीं अधिक औषधियां आयुर्वेद शास्त्र अनत वर्षो पूर्व निर्मित कर चुका है और शास्त्रकारों के नियमो का ज्ञान, विज्ञान, तर्क, युक्ति आदि को यथा व्यवस्थित प्रयोग करके आज भी अनेक नवीन औषधों का आविष्कार और निर्माण हो सकता है।

औषधियां चाहे जङ्गम प्रधान हों या उद्‌भिद प्रधान हों अथवा पार्थिव प्रधान हो सबके निर्माण में विशेष विचारणीय यह है कि कहीं भिन्न रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव की औषधियों का संयोग तो नहीं हो रहा है, कहीं अयोग्य मिश्रण तो नहीं है, कहीं वैकारी संयोग तो नहीं हो रहा है, कहीं हितकारक के स्थानपर अहितकारक द्रव्यों का निर्माण तो नहीं हो गया है। ऐसा होने से औषधों की क्रिया न शास्त्र कथित गुणधर्म के अनुरूप होगी और न वे हितकर ही होंगी। औषधों का संयोग एक ऐसी क्रिया है कि जिसको बुद्धि पूर्वक करने से विष अमृत का काम करने लगते है और विचार विहीन तथा अयुक्त संयोग सुन्दर, सगुण और कल्याणकारी औषधों के मिश्रण को भी विष बना देता है। अतः औषध निर्माताओं को औषध के निर्माण के पूर्व जिसप्रकार द्रव्यों को स्वच्छ, निर्विष और निर्विकार करके ग्रहण करना चाहिए, उसीप्रकार औषध मिश्रण को भी अनेक तर्क वितर्क और विवेकमयी क्रियाओं का आश्रय लेते हुए करना चाहिए।

जिसप्रकार औषधों के निर्माण मे सावधानी की पूर्ण आवश्यकता है उसीप्रकार उनके प्रयोग मे भी बुद्धि की सतर्क उपस्थिति अनिवार्य है। कभी किसी रोग के लक्षणों और कारणों के अनुरूप अनेक औषधियों को मिश्रित कर प्रयोग मे लाना आवश्यक प्रतीत होता है, ऐसी परिस्थिति मे जिन मिश्रणो का एकीकरण करना हो उनके दोष, गुण, रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव, परस्पर मिश्रण योग्यता, क्रिया की समानता आदि का पूर्ण अध्ययन करना चाहिए। जहां इन विषयों को गौण रूप दिया जाता है वहां औषधियो का उपयोग जिस दृष्टि से किया जाता है, कभी २ अंशतः और कभी पूर्णतः ही, वह सिद्ध नहीं होता।

चिकित्सकों का ध्येय सर्वदा एक ही होता है और वह है पीडितो के विकार प्रशमन का। यह क्रिया तभी सम्भव है जब औषधियां अपनी क्रिया तात्विक मार्गो को लेकर करती हों और यह तभी सम्भव है जब औषधियो के मिश्रण और अनुपान विचार पूर्वक निश्चित किए गए हो।

रस–औषधियों में कभी गुणों का अभाव नहीं होता। ये जितनी ही पुरातन होती जाती है उतनी ही उनमें अधिक गुण की वृद्धि होती है।

रसों की शक्ति अचिंत्य है, जहां अन्य समस्त औषधियां निष्प्रयोजन सिद्ध होती हैं वहां रस अपने अनन्य प्रभाव से चिकित्सकों तक को आश्चर्य मे डाल देते हैं। रसों के सेवन से वृद्धावस्था का निरोध, रोगो का बहिष्कार और स्वस्थ शरीरों में शक्ति का संचार होता है।

कहीं २ लोगों का अनुमान है कि रसों का ४० वर्ष से पूर्व सेवन करना अहितकर है परन्तु वस्तुतः उनकी यह मान्यता सम्पूर्णतया निर्मूल है। संसार के निर्माण, द्रव्यों के संयोग और उनके पारस्परिक सम्बन्धो पर विचार करने से स्वभाविक ही यह सिद्ध होता हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु पांच भौतिक है और रोग शरीरो में उन भूतों की वृद्धि या ह्रास से होता है। जिन द्रव्यों का औषध रूपमे सेवन किया जाता है वे उन भूतो के वृद्धि या ह्रास के विनाश के लिए होती है और जब चिकित्सा भूतों को समान अवस्था मे रखने तक सीमित है तब सभी गुणकारी द्रव्य सभी अवस्थाओ मे सिद्ध होते है। फिर रसों की तो बात ही क्या है? भली प्रकार शोधे, मारे और प्रयुक्त किए हुए रस सर्वश्रेष्ठ रोगनाशक, स्वास्थ्यवर्द्धक, और जरारोधक क्रिया करते है। ये सभी के लिए समान उपयोगी हैं केवल निर्माताओं को यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि शास्त्रादेशानुसार रसों का शोधन और मारण होता है या नही।

भैषज्य-सार-संग्रह

प्रथम प्रकरण

रस औषध

अगस्तिमृतराजो रसः [भा. भै. र. २३२]

[यो. र., र. रा. सु, र. चं । ग्रहण्या, वृ यो. त., त. ६७]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारा, गंधक और हिंगुल प्रत्येक १—१ भाग, धतूरे के बीज २ भाग तथा शोधित अफीम २ भाग। पारे और गन्धककी कज्जली बनाकर अन्य द्रव्योंका सम्मिश्रित वारीकचूर्ण उसमे मिलादे। इस मिश्रणको ७ दिन पर्यन्त भांगरे के रसमे घोटे।

[भावना के लिये स्वच्छ काले भांगरेका पञ्चाग लेकर उसको कूटकर उसमे से रस निकाल कर प्रयोगमे लावे। काला भांगरा रस कर्म के लिये श्रेष्ठ माना जाता है।] भली भान्ति घुटकर तैयार होने पर १—१ रत्ति की गोलियां बनाले, और छाया मे सुखाकर सुरक्षित रखले।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक।

अनुपानः—(१) घृत और काली मिर्च के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से प्रवाहिका (मरोडा) को रोकता है।

(२) जीरे और जायफल के चूर्ण के साथ देने से छओं प्रकार के अतिसारो मे हितावह है।

(३) त्रिकटु चूर्ण और मधु के साथ प्रयोग किया जाय तो वमन, उदरशूल, कफ और वातविकार, अग्निमान्द्य और अनिद्रा आदि रोगो को मिटानेमे श्रेष्ठ काम करता है।

संक्षिप्त विवेचनः—यह औषध पाचक, दीपक, आमशोषक तथा वेदनान्तक है। इसके प्रयोग से उदरस्थ दीर्घकालीन आमविष का नाश होता है तथा आम द्वारा शिथिल हुई उदर श्लेष्मकलाओं मे नवीन क्रिया—शक्ति का संचार होता है। अफीम और धतूरे का योग जहां वेदना, आक्षेप और उग्रता का नाश करता है वहां कज्जली का योग आमपाचक, शोषक, शूलनाशक, विषनाशक और रसायन होने के अतिरिक्त, ग्रहणी तथा अन्त्रगतशोथ, व्रण, क्षत

आदि विकारों का नाश करता है। सम्पूर्ण योग जन्तुघ्न है और आम द्वारा होने वाले विकारों को शीघ्रता से मिटाने की सामर्थ्य रखता है।

अग्निकुमारो रसः [भा भै. र. २३७]
(र र. रसे चिं)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध सुहागा, सत्काशित पारद, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक १।-१। तोला, शुद्ध विष ३॥। तोला, कौडीभस्म, सज्जीखार, पीपल और सोंठ १।-१। तोला, काली मिर्च १० तोला। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे, अनन्तर अन्य पदार्थो का चूर्ण उसमे मिलावे। इस मिश्रण को छ-सात बार निम्बु के रसमे घोटे। छायामे शुष्क करके १-१ रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक जल के साथ दे।

ग्रन्थोक्त गुण धर्मः—यह रस विषूचिका, उदर शूल, अग्निमांद्य और अजीर्ण रोगको मिटाता है।

सं. विः—यह रस दीपक, पाचक, आमशोषक, शोधक, मूत्रल और विषनाशक है। यह दूषिविष का नाश करने मे बहुत सुन्दर क्रिया करता है। आमविष द्वारा होने वाले विकारों को यह अपने शोषक, शोधक और पाचक गुण द्वारा मिटाता है, और अन्त्रगत अग्निमांद्य जन्य विकारो का नाश करता है। यह वातानुलोमक, क्षोभनाशक, जंतुघ्न और कफवातघ्न है। इसका प्रयोग स्रोत शोधन के लिये श्रेष्ठ है।

अग्नितुण्डी (रसः) वटी [भा भै. र ९८]
(भै. र। अ. मा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, यवक्षार, चीतामूल, सैंधानमक, जीरा, संचल नमक, वायविडङ्ग, सामुद्रलवण और शुद्ध सुहागा, प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले, तथा कुचला सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, तदनतर कुचले का चूर्ण और अन्य द्रव्यो का चूर्ण उसमे मिलावे। इस मिश्रण को जम्बीरी निम्बु के रस की छ से आठ भावनाये दे। भली भान्ति घुटकर तैयार होने पर १-१ रत्ती की गोलियां बना ले, और छाया शुष्क करके शुद्ध कांच पात्र मे भरले।

मात्राः—१ से २ रत्ती। जल के साथ।

ग्रन्थोक्त गुणधर्मः—अग्निमान्द्य के लिये उपयोगी है।

सं. वि.—अग्नितुण्डी वटी परमोपयोगी औषध है। अग्निमान्द्य तथा महास्रोत की अन्य विकृतियोंमे, जिनमे खाद्य पदार्थों का परिपाक न होता हो और रस न बनकर आम ही बनता हो वहां यह औषध पाचन क्रिया द्वारा अङ्गों की विकृति दूर करती है। दोषोका शोषण करती है। और आमाशय, पक्वाशय, यकृत्, क्लोम, प्लीहा आदि अङ्गो की शिथिलता दूर करती है। वाताध्मान के लिये यह अत्युत्तम औषध है। आम द्वारा अन्त्र मे होते हुए आक्षेपो का इसके प्रयोग से शीघ्र नाश होता है। इसकी क्रिया अजीर्ण द्वारा होनेवाले यकृत्, प्लीहा, वृक्क आदि के शोथो पर बहुत ही सराहनीय होती है।

अग्नितुण्डी मे ५० प्रतिशत कुचला पडता है, इसलिये अधिकतर क्रिया कुचले के गुणों के आधार पर होती है। कुचले का कफज अन्त्रशोथ और अग्निमान्द्य पर, जिसके साथ आध्मान, वातशूल, आमसंग्रह और अन्त्र की सकोच प्रसार क्रिया मन्द हो जाती है, प्रयोग बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है। मांस पेशियों की शिथिलता, गात्रकम्प, आमजन्य प्रलाप, आमजन्य नाडियो के अवसाद आदिमे अग्नितुण्डी सर्वथा फलप्रद सिद्ध होती है। पक्षाघात के प्रभावको दूर करने मे इसकी सहायता युक्ति युक्त है। यह अन्त्र के शोथ और क्षोभ का नाश करती है।

अग्निमुखो रसः [भा. भै र. २७१]

(यो र., अजी. । र का. धे., बृ यो त । त. ७१)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध वच्छनाग १—१ भाग लेकर अदरक के रसमे घोटकर कज्जली बनावे, फिर उसमे पीपल, इमली और अपामार्ग के क्षार तथा यवक्षार, सज्जीखार, सुहागे की खील, जायफल, लौंग, सोंठ, काली मिर्च, हैड, बहडा और आंवला १—१ भाग लें, तथा शंखभस्म, पांचोनमक, हींग और जीरा २—२ भाग लें। सबको यथा क्रम चूर्ण करके मिलावे। अनन्तर मिश्रित चूर्ण को छ सात भावना निम्बु के रस की दे, और तैयार होने पर १—१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करले।

मात्राः—१ से २ रत्ती। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह रस पाचन करता है, जठराग्निको दीपन करता है और अजीर्ण, शूल, विषूचिका, हिचकी, गुल्म (वायुका गोला) और मोह (मूर्च्छा) को शीघ्र नष्ट करता है।

सं. वि.—यह औषध व्यवायी, विकाशी, रसायन और आग्नेय गुण विशिष्ट है। इसकी वात कफनाशक क्रिया निर्विवाद बहुत ही प्रशंसनीय और उच्च कोटि की है। इसके प्रयोग से यकृत् के वातकफ के प्रभाव से शिथिल हुए कोषो मे नवजीवन का सञ्चार होता है और वे अपने कार्य मे अविरुद्ध संलग्न हो जाते है। पित्त अच्छी मात्रा मे उत्पन्न होता है और

अपक्व रस शीघ्र पचकर रक्त की वृद्धि करता है। यकृत् की शिथिलता के कारण रक्त मे जो रञ्जन का अभाव आ जाता है, वह इसके प्रयोग से शीघ्र दूर हो जाता है। उदर की कलाओं के स्रोत, पित्त का संयोग पाते ही शुद्ध और कार्यरत हो जाते है। संपूर्ण महास्रोत जो वातकफ के सञ्चय और प्रकोप के कारण जडता और शून्यता का अनुभव करता है वह इसके प्रयोगसे नवता अनुभव करते हुए सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध सशक्त और पोषक द्रव्यो से परिप्लावित कर देता है। इसका प्रयोग अन्त्र को शुद्ध और सक्रिय रखता है।

अग्निमुखलोहम् [भा भै र २७३]
(भै. र. । अर्श)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—निसोत, चीता, निर्गुण्डी, थूहर, मुण्डी की जड, प्रत्येक ४०–४० तोले ले। सबको अधकुटा करे। ३२ सेर जल मे पकावे। आठ सेर रहने पर छान ले और फिर पकावे। गाढा (घन) होने पर उतार ले। ठण्डा होने पर उसमे वायविडङ्ग १५ तोले, त्रिकुटा ३॥। तोले, और त्रिफला २५ तोले, प्रत्येक का बारीक चूर्ण मिलावे। तदनन्तर इसमे शिलाजीत ५ तोले, मनसिल या वैकंकत से भस्म हुवा तीक्ष्ण लौह ६० तोले, घी, मधु और खाण्ड प्रत्येक १२० तोले, सबको मिश्रित कर भलिभांति आलोडित करे और गोली बनाने लायक घन होने पर २–२ रत्ती की गोलिया बनाले।
मात्राः—१ से २ गोली प्रात सायं मधुमे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अर्शनाशक। इसके सेवन से मन्दाग्नि शीघ्र कालाग्नि के समान तीव्र हो जाती है। यह पाण्डु, शोथ, कुष्ठ, तिल्ली, उदररोग, अकाल मे बालो का पकना, आमवात, और गुदभ्रंश का नाश करता है।

पथ्यः—इसके सेवन काल मे कालशाक, कुष्माण्ड, कर्कटी, कर्कन्धू, कर्कोटिक, कुलिङ्ग, करमर्द, कतक, कसेरु और काञ्जी का सेवन नही करना चाहिये।

सं. वि.—अग्निमुख लोह मुख्यत अर्शरोगनाशक विशिष्ट औषध है। जितनी शक्ति के साथ यह अर्श का संशमन करती है उतनी ही शक्ति के साथ यह तज्जन्य अन्य अनेक रोगो का नाश करती है।

अग्निमुख लोह आमाशय संकोच, संकीर्णता और शिथिलता को दूर करता है। आध्मान का नाश करता है। हिक्का, वमन, अरुचि, दाह, शोथ, आमाशयशूल और अन्य अनेक वात–प्रतिलोम द्वारा होनेवाले विकारो को मिटाता है। अर्शमे दोष प्रतिलोम होते है, उनके अनुलोमन मे इसकी क्रिया शीघ्र लाभप्रद होती है। यह शोथघ्न, वायुनाशक, रेचक,

पाचक, आमशोषक, वातानुलोमक, शक्तिवर्धक, मूत्रल और दोषनाशक है, अतः स्वभावतः इसका प्रयोग अर्श और अर्शरोग के उपद्रवो मे लाभप्रद सिद्ध होता है।

अग्निरसः [भा भै. र २७४]
(र र. स. । अ १३)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, पीपल ३ भाग, हरीतकि चूर्ण ४ भाग, बहेडा ५ भाग, अडूसा ६ भाग। प्रथम पारे गन्धककी कज्जली बनावे। अनन्तर अन्य द्रव्यो के बारीक चूर्ण उसमे मिलावे। जब सब द्रव्य भलिभांति मिश्रित हो जाय, तब उसे कीकर (बबूल)की छाल के क्वाथ की २१ भावना देकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक। मधुके साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—कासनाशक (खांसी को मिटाता) है।

सं. वि.—वातज कासमे जिसमे कास नलिकाओ के अन्दर रूक्षता आनेसे कर्कश ध्वनि उत्पन्न होने लगती है, अथवा कासकी ऐसी दशा मे जिसमे रूक्ष, शीत, कषाय आदि द्रव्यो के सेवन करने से दुर्बलता के कारण और परिश्रम आदि से वायु की वृद्धि हो जाती है और हृदय, पार्श्व तथा वक्षमे आक्षेप भी होने लगते है, इस औषधि का सेवन विशेषतः लाभप्रद होता है। यह औषध वायुनाशक, कण्ठ और मुख के शोष को दूर करने वाली, वायु का अनुलोमन करने वाली तथा वातावरुद्ध यन्त्रो से वायु को निकालकर उनमे स्निग्धता पैदा करके कासविकार को दूर करने वाली है।

काली खांसी (कुत्ता खांसी whooping cough) मे इसका प्रयोग बहुत लाभ प्रद सिद्ध हुआ है। बच्चोकी सभी प्रकार की खांसी में इसको सरलता से मधु के साथ मिलाकर बच्चो को चटा सकते है, अथवा सैन्धव, हींग और पीपल मिलाकर इसको पानी के साथ दे सकते है। यह पाचक और वायु नाशक भी है।

अग्निसंदीपनो रसः [भा भै र. २७६]
(र रा सु । भै र। अजी)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, काली मिर्च, पांचो नमक, यवक्षार, सज्जीक्षार, सुहागे की खील, सफेद जीरा, काला जीरा, अजवायन, वच, सौंफ, भुनीहुई हींग, चीते की छाल, जायफल, कूट, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, इलायची, इमलीकाक्षार, चिरचिटे का क्षार, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, वङ्ग भस्म, लौंग और हरड का चूर्ण, प्रत्येक१—१ भाग ले तथा अम्लवेतस २

भाग और शंख भस्म ४ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर लौह, अभ्र और वङ्ग भस्म उसमें मिलावे और फिर अन्य सब द्रव्यों को उसमें मिलाकर उसको पञ्चकोल के क्वाथ, चीतेके क्वाथ, चिरचिटे के क्वाथ और खट्टे लोनियां के क्वाथ या रस की ३–३ भावनाये पृथक् पृथक् देवें। और अन्तमें निम्बु की २१ भावनायें देकर २–२ रत्तीकी गोलिया बनाकर छाया शुष्क करके रखे।

मात्रा—२–से ४ रती।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—इसके सेवन से अग्निवृद्धि होती है। अजीर्ण, अग्निदीपन, और उदरगुल्म आदिका शीघ्र नाश होता है।

सं. वि.—तीनोंही दोषों को संशमन करने वाली औषधियों के योग से बनी हुई यह औषध उदर के अनेक रोगों के लिये हितावह है। इसके सेवन से पाचक अग्नि बढती है। आम का शोषण होता है। वायु का अनुलोमन होता है और जठर के दोषों से एकत्र हुये विषों का संशोधन होता है।

यह पाचक, दीपक, वातानुलोमक, आम शोषक, अग्निवर्धक, यकृत, प्लीहा और ग्रहणी के दोषों को दूर करके रक्त की वृद्धि करने वाली सुन्दर औषध है। इसका सेवन प्रात साय जल मे मिलाकर करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा अन्त्र की शिथिलता मिटती है।

अग्निसूतरसः [वै सा. सं]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कौडी भस्म १ भाग, शंख भस्म २ भाग, शुद्ध पारद तथा गन्धक की सम भाग मिश्रित कज्जली १ भाग और कालीमिर्च ३। भाग ले। कज्जली मे अन्य सब द्रव्योंका सूक्ष्म मिश्रित चूर्ण मिलाकर निम्बु के रस की ७ भावना दे। तदनन्तर ३–३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१–१ गोली। दिन मे २–३ बार। छाछ या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—इसके सेवन से अग्निमान्द्य, ग्रहणी, उदरशूल, अजीर्ण और प्रमेह आदि रोग नष्ट होते है। क्षय मे शर्करा और घृतके साथ मिलाकर देने से यह लाभकारी होता है। संग्रहणी मे पीपल और मधु मिलाकर दे।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, शोधक, आमपाचक, अग्निवर्द्धक और अन्त्र शैथिल्यनाशक है। इसके सेवन से आम, कफ और वात द्वारा उत्पन्न हुये विकार नष्ट होते हैं तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

दीर्घकाल से आमकी होती हुई वृद्धिद्वारा अन्त्रमें जो आम दोषो का संग्रह होजाता है, वह इसके सेवन से शीघ्र नष्ट होता है, तथा आमाशय, ग्रहणी और पक्वाशय की श्लेमकलाओं मे आम, कफ और वात द्वारा जो उग्रता उत्पन्न हो जाती है और जिसके कारण से श्लेष्म कलाये अनावश्यक क्षुब्ध और दुष्ट रसोकी उत्पत्ति करती हैं, इस औषध के सेवन से कलाओं की इस क्रिया मे शीघ्र संशोधन होता है और यथावश्यक पाचक रसोकी उत्पत्ति होती है। अन्त्र मे उत्पन्न हुए यकृत्, प्लीहा, संयुक्त शिरा तथा उदर कला के विकार "अग्निसूतरस" के सेवन से नष्ट होते हैं।

अजीर्णकंटको रसः [भा. भै. र. २७९]

(भै. र. ; रसे. चि. म । अ. ९, यो. र. । अजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध वच्छनाग और शुद्ध गन्धक प्रत्येक १–१ भाग, कालीमिर्च ३ भाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। अनन्तर वच्छनाग का बारीक चूर्ण मिलाकर घोटें। तत्पश्चात् कालीमिर्च का चूर्ण डालकर भलीभांति मिश्रित करले। इस मिश्रण को २१ भावना कटेली के रस की दे, और जब गोली बनाने लायक लुगदी हो जाय तब २–२ रत्ती की गोलियो बनाकर छाया शुष्क कर के रक्खे।

मात्राः—३ रत्ती। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—यह सद्य जठराग्नि वर्धक, विषूचिका, अजीर्ण और वातरोग नाशक है।

सं. वि.—यह रस वातज अग्निमान्द्य के लिए उत्तम औषध है। आजकल मानवो के प्रकृति दोष के कारण और अन्नजल मे पोषक तत्वो के अभाव के कारण शरीरो मे रूक्षता, शक्तिहीनता और शिथिलता प्रायः अधिकतर मिलती है। वायु रूक्ष और लघु गुण से प्रकुपित होकर प्रथम उदरविकार उत्पन्न करता है और रस के साथ प्रवाहित हो सम्पूर्ण अङ्गो को वातदोष विशिष्ट कर देता है।

अजीर्ण कंटक रस वायु द्वारा उत्पन्न अग्नि की मन्दता को, वायु को संशमन करके और अपने उष्ण, तीक्ष्ण गुणो से पित्त की वृद्धि करके वातज अग्निमान्द्य तथा वात गुल्म आदि विकारो को दूर करता है। अग्नि वृद्धि करके दुष्ट मल को बाहर फेकता है और अपक्व अन्न का पाचन करता है। आम दोष का अग्नि वृद्धि के साथ साथ पाचन हो जाता है। इस प्रकार यह रस मन्दाग्नि मे प्रशस्त कार्य करता है।

अजीर्ण बल-कालानलो रस : [भा. भै. र. २८०]
(र रा. सु. । अजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १०-१० तोले, लोहभस्म, ताम्रभस्म, हरताल, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध नीले थोथे की भस्म, वङ्ग भस्म, लौंग, सुहागे की खील, दंतिमूल और निसोत ५-५ तोले । अजमोद, अजवायन, सज्जीक्षार, यवक्षार, पांचो नमक २॥-२॥ तोले । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तदनंतर उसमें अन्य द्रव्यो का मिश्रण करे । मिश्रणको भलि प्रकार बारीक बनाकर अदरक के रस की २१, पञ्चकोल के क्वाथ की १०, गिलोय के रस की १०, इस प्रकार क्रम पूर्वक भावनायें दें । तदनन्तर इसमे सब द्रव्यों के वजन से आधे वजनका कालीमिर्च का कपडछन चूर्ण मिलाकर गोली बनाने लायक लुगदी तय्यार होने पर २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छायामे सुखाकर रख ले ।

मात्राः—२-से ४ रत्ती । जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—बहुत समय से नष्ट हुई अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये यह अत्युत्तम औषध है । यह रस आमवात तथा तज्जन्य अन्य रोगों को नष्ट करता है । इसका प्रयोग तिल्ली, पाण्डु, प्रमेह, अफारा, प्रसूतिका रोग, ग्रहणी विकार, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, क्षय, अम्लपित्त, शूल, भगन्दर, अर्श, ज्वर आदि रोगो पर हितावह होता है ।

सं. वि.—दुष्ट दोषो द्वारा प्रकुपित वात और कफ का नाश करने मे यह औषध अतुल क्रिया करती है। अग्नि संदीपन करके रस रक्त आदि मे प्रविष्ट आम दोषों का शोषण करती हुई आमवात के विकारो को दूर करती है। इसके सेवन से आम और रक्त द्वारा होने वाले संधियो के विकार, गले के विकार, आमाशय शोथ, यकृत् तथा प्लीहावृद्धि और पुरातन प्रतिश्याय तथा शीतका नाश होता है। इसका प्रयोग यकृत् के आवर्ण के शोथ, शूल, जडता आदि पर बहुत ही लाभप्रद होता है, अपि च फुफ्फुसावर्ण की जडता, रूक्षता, शिथिलता तथा तद्गत वात द्वारा एकत्रित हुये जल का शोषण करने मे यह औषध विशेष लाभप्रद है। अग्निप्रदीप्त करके वायु का नाश करती है। इसका प्रयोग वक्ष और उदर के सभी वायु रोगो पर लाभप्रद सिद्ध होता है।

० अजीर्णारि रस : [भा भै र. २८१]
(वृ . नि. र. । अजी)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध, गन्धक प्रत्येक ५-५ तोले, हेड १० तोले, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, सेंधानमक, १५-१५-तोले, भांग २० तोले।

प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। इस कज्जली मे अन्य पदार्थों का मिश्रित बारीक चूर्ण मिलावे। इस मिश्रण को निम्बु के रस की भावना दे और धूप में सुखाले। इस प्रकार ७ भावना देनी चाहिये। २–२ रत्ती की गोली बनाले. गोलियों को धूप मे सुखाकर प्रयोग करें।

मात्राः—४–से ६ रत्ती तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—यह आहारका पाचन करता है; और मलो की शुद्धि करता है।

सं. वि.—"अजर्णारि रस" कोष्ठ शोधक, पाचक और दीपक है। जठराग्नि की वृद्धि करता है और मल का शोधन करता है। आम के शोषण करने के लिये इसमे त्रिकटु का योग अच्छा काम करता है। मन्दाग्निके कारण वायुकी विकृति से हिक्का और उर्द्धगत वात विकारों को शान्त करता है। इसमे विजया (भांग) का योग अग्निवर्धन मे विशेष काम करता है. यह ध्यान मे रखने की बात है।

७ अनङ्गविलास रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्र भस्म, हीरा भस्म, मोती भस्म, हरताल भस्म, वैक्रान्त भस्म, सूर्यकान्तमणि भस्म, माणिक्य भस्म, स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, प्रत्येक समान भाग ले तथा इन सबके बराबर पारद तथा उतना ही गन्धक ले। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् अन्य औषधो को मिलाकर भली प्रकार खरल करे और लाल कपास के फूलों के रसकी भावना देकर सुखाकर इसे आतशी शीशी मे भरलें, आतशी शीशी पर ७ कपड मिट्टी करे और बालुका यन्त्रमे उसे तीन दिन पकावे, जब यन्त्र स्वांगशीतल हो जाय तो तलस्थ और कण्ठस्थ दोनों स्थानो के द्रव्य लेकर एकत्र घोटे और उसमे काली मिर्च, कपूर, वंशलोचन, जावित्री, लौंग, और कस्तूरी १–१ तोला मिलाकर पानके रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१–१ गोली। पानमे रखकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वीर्यक्षीणता, नपुंसकता, दार्बल्य आदि रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध श्रेष्ठ वाजीकरण तथा रसायन है। इसके सेवन से नवीन और पुरातन सभी प्रकारके शारीरिक विकार दूर होते है, विशेषतः यह वीर्यकी वृद्धि करके प्रतिलोम क्षय, शोष, नपुंसकता, अकाल जरा, शरीरक्षीणता, वलिपलित आदि रोगों का नाश करती है। तथा सम्पूर्ण धातुओ की वृद्धि करके शरीर मे नवता उत्पन्न करती है।

७ अर्जुनाभ्र रसः [भै. र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१०० से अधिक पुट दी हुई अभ्रक भस्म १० तोले ले और इसे अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ की १ के पश्चात् अन्य इस प्रकार २१ भावना दे, अन्तिम भावना पूर्ण होने पर औषध को, जब तक सूक्ष्म चूर्ण न हो जाय तब तक, खरल करे। तैय्यार होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ४ रत्ती तक। मधु, घृत, दूध अथवा अर्जुन के वृक्षकी छाल के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—सम्पूर्ण हृदय रोगों के लिये यह औषध श्रेष्ठ है।

सं. वि.—अभ्रक भस्म शीतवीर्य, शरीर पोषक, वात, पित्त और क्षय नाशक, बुद्धि—बल और आयु वर्द्धक तथा शरीर के किसी भाग के तन्तुओं में अन्तर्गत शोथ को दूर करती है।

अर्जुनः—हृदय रोगों के लिये एक प्रसिद्ध औषध है। क्षीण और अवसाद होते हुये हृदयको शीघ्र ही तत्काल लाभ करने वाली है। हृदयकी अधिक धडकन मे इसका सेवन हृन्नाडियों को शक्ति प्रदान करके स्वस्थ करता है। वात और पितज हृद्रोगों मे अर्थात् हृच्छूल, हृन्मांसशूल, हृन्मांसकृच्छ्रता, हृत्कपाट विकार, महाधमनी सकीर्णता तथा प्रसार, हृद्दाह, हृन्मांस शोथ, और उर्द्धगत रक्तपित्त मे इसका प्रयोग बहुत ही हितावह सिद्धहोता है।

"अर्जुनाभ्र रस":—उच्चकोटिकी अभ्रकभस्म को अर्जुन के क्वाथ की २१ भावना देकर तैयार किया जाता है। यह औषध, स्निग्ध, सौम्य, पोषक, शक्ति वर्द्धक, वात—पित्त द्वारा उत्पन्न होने वाले हृन्मांस, हृत्कपाट, महाधमनी और फुप्फुस धमनियों के वात—पित्तज शोष, शोथ और अवरोध को नष्ट करता है।

आधुनिको का मत है कि "हृच्चाप (H.B P.)की वृद्धि मे अर्जुन का प्रयोग करने से रोगकी वृद्धि होती है"। दोषका अंगांश विचार करके औषधकी योजना करने पर यह सम्भव नहीं हो सकता कि वात—पित्त द्वारा उत्पन्न हुये रक्त चाप की वृद्धि मे यह हानि कारक हो, तोभी उनकी उक्ति का विरोध न करते हुये, मै केवल यही व्यक्त करना चाहता हूं कि अभ्रक, हृद्य, पोष्य और दोषानुलोमक है। शीतवीर्य और नाडियो का पोषण करता है। अर्जुन के योग द्वारा रक्तचाप की वृद्धि को दूर करने और हृदय को भविष्य के विकारो के आक्रमण से सुरक्षित रखने के लिये यह एक श्रेष्ठ औषध है।

अपूर्व मालिनी वसन्त [भा. भै र. २९१]

(यो. र । वि. ज्व)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वैक्रान्तमणिभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्ण-माक्षिक भस्म, चांदी भस्म, वङ्ग भस्म, प्रवाल भस्म, पारद भस्म, लोह भस्म, शुद्ध सुहागा

तथा शंख भस्म। प्रत्येक समान भाग ले। यथा क्रम खरल में डालते जांय और मर्दन करते जांय। ऐसा करने से सभी द्रव्य एक दूसरे के साथ भली प्रकार मिल जायेंगे। अनन्तर शतावरी के रस की ७ भावनाये दे। फिर हल्दी के रस की ७ भावनायें दे, गाढा होने पर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले और चांदनी मे रखकर सुखावे।

मात्राः—१ से २ रत्ती।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अनुपानानुसार–१—पीपल और मधु मिलाकर चाटने से जीर्णज्वर तथा धातुगतज्वर का नाश करती है।

२—गिलोयसत्व और मिश्री के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग मे लाभप्रद है।

३—बिजौर निम्बु की जड के रस म देने से यह रस पत्थरी को नष्ट करता है।

सं. वि.—यह षड्रस युक्त औषध मधुर, अम्ल, लवण रस द्वारा वायु, कषाय, मधुर, तिक्त द्वारा पित्त, कषाय कटु, तिक्त के योग से कफ, इस प्रकार तीनो दोषो का संशमन करती है। पुष्टिकर, क्षयघ्न, श्वास, कास, ज्वर, कुष्ठ आदि रोगो को नाश करने वाली तथा पाचक, अग्नि-वर्द्धक, संतापनाशक, मेधा, स्मृति, वीर्य और ओज को बढाने वाली है। यह सभी धातुओकी यथामक्र वृद्धि करती है। प्रमेह, मधुमेह आदि रोगो मे इसकी क्रिया हरिद्रा और शतावरी की भावना से शीघ्र गुणकारी होती है। मधुमेह मे होनेवाले उपद्रवो पर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। वृक्कतंतुक्षय तथा वृक्कगत शोथ के कारण होनेवाले सर्वाङ्गशोथ तथा मूत्रदाह इत्यादि रोगो में यह हितावह है। अनतिप्रवृद्ध अश्मरी (पथरी) को भेद करके मूत्रमार्ग द्वारा निकालने के लिये बिजौरे निम्बु के रस के साथ इसका प्रयोग करना हितकर है वस्तिगत दोषो का शोधन करने में इसकी क्रिया प्रशस्त होती है।

अभयनृसिंहो रसः [भा. भै र. २९२]

(भै. र. । अति)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गल, शुद्ध मीठा तेलिया, त्रिकुटा, जीरा, सुहागेकी खील, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा और अभ्रक भस्म। प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग ले। मण्डूर भस्म सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर अन्य द्रव्यो का मिश्रण करें और निम्बु के रस की भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—२ से ८ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—मधु और जीरेके चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से ज्वर युक्त अथवा ज्वर रहित त्रिदोषज अतिसार, संग्रहणी और अन्य सब प्रकार के अतिसारो का नाश होता है।

सं. वि.—इसके सेवन से दीर्घ कालसे शिथिल अन्त्र, यकृत् और प्लीहा शीघ्र सक्रिय हो जाते है। ग्रहणी गत आमदोष का शोषण करने के लिये इसका प्रयोग स्तुत्य है। आम दोष द्वारा जहां दीर्घकाल से ज्वर आता हो वहां इसका प्रयोग निर्भय हो कर करने से सदा लाभ होता है। यह पाचक वातानुलोमक, विषघ्न, आमशोषक, ज्वरघ्न और रक्तवर्धक है।

अभ्रक कल्प [भा भै. र. ३०७]

(आ. वे. प्र. । अ. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—निश्चन्द्र अभ्रक भस्म, आमला, त्रिकुटा, और वाय-विडङ्ग, सब द्रव्य समान भाग लेकर भांगरे के रस अथवा पानी मे २ पहर घोट कर २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखालें।

मात्रा तथा शास्त्रोक्त गुणधर्मः—१–१ गोली प्रतिदिन वर्षभर तक सेवन करे। फिर दूसरे वर्ष २–२ गोली वर्षभर तक प्रतिदिन खावे और तीसरे वर्ष ३–३ गोली प्रतिदिन वर्षभर तक खावे। इस प्रकार १०० पल अभ्रक कल्प सेवन करने से मनुष्य वज्रकाय (गर्व दोष रहित, प्रसन्नवर्ण और सशक्त इन्द्रियो युक्त) हो जाता है।

तीन मास मे क्षय, श्वास, पांचो प्रकार की खांसी, हृदय का शूल, ग्रहणी, अर्श, आमवात, शोष, पाण्डु तथा १८ प्रकार के कुष्ठो का नाश होता है। परन्तु पथ्य सेवन करना अत्यावश्यक है। इस कल्प को पूरे ३ वर्ष तक सेवन करने से शरीर अत्यन्त बलिष्ठ हो जाता है।

अभ्रकादि वटी [भा. भै. र. ११५]

(वृ. नि र.; भा. ४. स. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, त्रिकटु, सुहागे की खील, लोह भस्म, अजमोद, अफीम। इनमे से प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। अभ्रक भस्म सम्पूर्ण द्रव्यो के बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले और इसमे अभ्रक भस्म तथा लौह भस्म मिलाकर भली प्रकार घोटे। तदनन्तर अन्य द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करे। इस मिश्रण को चीते की छाल के क्वाथ मे १ पहर तक घोंटे और लुगदी होने पर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती तक। पानी के साथ, अथवा छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—चारो प्रकार की संग्रहणी को मिटाती है।

सं. वि.—अहिफेन (अफीम) का योग स्पष्टतया इस योग को अतिसारावरोधक सिद्ध करता है। इसके साथ साथ आमशोषण, पाचन, और दीपन गुणो का इस औषधि के

अन्दर समावेश है। अन्त्र की शिथिलता को दूर करने मे. आमाशय की श्लेष्म कला के शोथ को मिटाने के लिये, ग्रहणी के शोथ, शूल तथा शोषण और अन्त्र की निष्क्रियता मे इसका उपयोग श्रेयष्कर है।

अमृतकला निधि [भा. भै. र ३१४]

(वृ. नि. र.; ज्वरे)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध वच्छनाग २ भाग, कौडी भस्म ५ भाग, कालीमिर्च ९ भाग। सब द्रव्यो का बारीक चूर्ण बनाकर मिश्रित करके जल के साथ घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह ज्वर, पित्त, कफ और अग्निमान्द्य का नाश करता है।

सं. वि.—यह रस अग्निवर्द्धक, अन्त्राक्षेपनाशक, वातानुलोमक और आम पाचक है। अजीर्ण द्वारा होनेवाले सामान्य ज्वर मे इसका प्रयोग अत्यन्त हितावह है। वातकफज अन्त्र दोष मे अमृतकलानिधि रस का सेवन सर्वथा स्वस्थावस्था प्रदान करता है। विषम खाद्य द्वारा अन्त्र दोष मे भी इसका प्रयोग उपादेय है।

अमृताङ्कुर लोहम् [भा. भै. र. ३२१]

(भै. र., र. र., कुष्ठा । रसे. चि । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रससिन्दुर ५ तोला, लोह भस्म ५ तोला, ताम्र भस्म ५ तोला, भिलावा, गन्धक, अभ्रक भस्म और गूगल ५—५ तोला, हैड, बहेडा २॥—२॥ तोला, आमला ८ तोला २ मासा, घी १ सेर, त्रिफले का काथ २ सेर। सब द्रव्यो को भली भांति मिश्रित करके घृत सहित त्रिफलाक्काथ मे मिलावे और लोहे के बर्तन मे इसको पकावे। इसके पाककी विधि लोहे के पाक के समान है।

मात्रा और सेवन विधि—१—१ रत्ती। लोहेके दण्डे से मधु और घृत के साथ मर्दन करके सेवन करे और ऊपर से नारियल का पानी पीवे।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ, वलिपलित, पाण्डु, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, कृमि, शोथ, पथरी, शूल, अर्श, वातव्याधि, क्षय, श्वास आदि रोगो का नाश होता है तथा यह शुक्र वृद्धि, अग्निसंदीपन, बल, बुद्धि और कान्ति की वृद्धि करता है।

अपथ्य—अम्लरसयुक्त शाक और स्त्री प्रसङ्ग।

पथ्य—शालिचावल, शाठीचावल, घी, मूंग, शहद, गुड और दूध।

सं. वि.—यह औषध रक्तवर्धन, आमशोषण, अग्निमान्द्य और वर्णदोष के लिये उपयोगी है। इसके सेवन से यकृत् के विकार शान्त होते हैं। रक्त में लालिमा की वृद्धि होती है। उपर्युक्त व्याधियों में इसका प्रयोग वस्तुत स्तुत्य है।

अमृतमञ्जरी रसः [भा भै. र. ३१७]

(र सा. स. । कासे)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गुल, शुद्ध वच्छनाग, पीपल काली मिर्च, सुहागे की खील और जावित्री प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर भली प्रकार मिश्रण करके जम्बीरी निम्बु के रसमे खरल करे। तैयार होने पर १-१ रत्ती की गोलिया बनाले।

मात्रा:—१ से ३ गोली तक। अदरक के रस के साथ अथवा उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—इसके सेवन से दारुण सन्निपात, मन्दाग्नि, अजीर्ण और आमवात रोग नष्ट होते हैं। गरम जल के साथ सेवन करने से सब प्रकारके रोग शमन होते है। इससे पांच प्रकारकी खांसी, श्वास सर्वाङ्गपीडा, जीर्णज्वर और क्षय की खांसी दूर होती है।

सं. वि.—यह औषध शीघ्र ही साम दोषों को निराम करती है। कफ का शोषण करती है और उदर गत वात, अजीर्ण और अग्निमान्द्यादि रोगों को शीघ्र मिटाती है। इसका सेवन बहु दोष युक्त सन्निपात के अन्दर बहुत ही उत्तम सिद्ध होता है। आन्त्रिक सन्निपात मे इसका सेवन गरम पानी के साथ करने से आध्मान नहीं होता। ज्वर धीरे धीरे उतरता जाता है और अन्य विकार नहीं बढने पाते।

अमृतार्णवो रसः [भा. भै. र. ३२४]

(र. रा. सु । श्वा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सस्कारित पारद, शोधित गन्धक, लोहभस्म, सुहागे की खील, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु, त्रिकुटा, गिलोय, पद्माख, मधु और शुद्ध विष प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। अनन्तर विष के बारीक चूर्णको कज्जलीमे मिलाकर एकीकरण पर्यन्त मर्दन करे। पश्चात् लौहभस्म, टकण और तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो के बारीक चूर्ण को मिलाकर जब तक सब एकत्वभाव प्राप्त करे तब तक घोटे। और गोली बन सके ऐसी लुगदी बनने पर २-२ रत्ती की गोलिया बनाकर छाया मे सुखाकर शीशियो मे रक्खे।

मात्रा:—दिन मे १ से ३ गोली पर्यन्त चूसे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---श्वास और खांसी में इसका प्रयोग होता है ।

सं. वि.---अमृतार्णव रस के सेवन से श्लेष्म का विलयन होता है । कण्ठ और गले की श्लेष्मकलाओ का तनाव दूर होता है । कण्ठ के स्रोत विशुद्ध और नासिका की रूक्षता दूर होती है । मुख की दुर्गन्ध. कषायता और विरसता दूर होती है । जीर्ण तौन्सिलप्रदाह (Tonsillits), कण्ठशोष और शुष्ककास नष्ट हो जाते है और लालाग्रन्थियां पुनः अपनी स्वस्थ क्रिया करने लगती है ।

अमृतार्णव रस की गोलियां मुखमें रखकर चूंसी-जाती है, अत इनका कण्ठ के साथ सतत सम्पर्क रहता है, इससे कण्ठ स्रोतों का विशोधन सुचारु रूप से होता है और जीर्णतमक श्वास विकार शीघ्र मिट जाता है तथा विकृत् कण्ठ श्लेष्म कलाये स्वास्थ लाभ करती है ।

अमीर रसः [र स. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रसकपूर, हिङ्गुल, ढालचिकना और सुन्हरी गोटा प्रत्येक वस्तु समान भाग लेकर एकत्र खरल करके जल के योग से १/२—१/२ रत्ती की गोलियां बनावे ।

मात्राः—१—१ गोली । मक्खन मे रखकर दांत और गले का स्पर्श न हो इस प्रकार निगल जाएं ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सम्पूर्ण लक्षणो युक्त फिरङ्ग रोग नष्ट होता है । फिरङ्गजन्य अन्य विकारों मे भी इसका सेवन लाभप्रद सिद्ध होता है ।

अम्लपित्तान्तको रसः [भा. भै. र. ३२७]

(र. रा. सु. । अम्ल. । रसे. चिं. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---रससिन्दुर, अभ्रकभस्म और लौहभस्म समान भाग लेकर, सब के बरावर हरड मिलाकर चूर्ण करे ।

मात्राः---४ रत्ती । मधु मिलाकर चाटे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---अम्लपित्त की शान्ति करता है ।

सं. वि.---अम्ल पित्तान्तक रस एक मात्र शोधक, दाहनाशक, पित्तनाशक, मधुर-विपाकी, क्षोभघ्न और अन्त्र कलाओ के शोथ को दूर करनेवाला ही नहीं है, अपितु इसके सेवन से यकृत् और प्लीहा के विकार भी शान्त होते है । अग्नि की वृद्धि होती है । रसरक्त का शोधन, धातुगतज्वलन की शान्ति और विदाह के कारण होनेवाले शिरोरोग का नाश होता है । इसके सेवन से उदर की सभी श्लेष्म कलाये निर्विष होकर शरीवर्द्धक रसों की उत्पत्ति करती है । इसका सेवन उर्द्ध और अधोगत दोनो ही अम्लपित्त विकारों मे किया जाता है ।

अर्द्धनारीनाटेश्वरो रसः [भा. भै. र. ३३३]

(र. रा. सु. । सन्नि)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--जमाल गोटे की छाल, अङ्कोल, तेजपत्र, परवल, अजमोद और मेथी। सब को समान भाग लेकर चूर्ण करके इसमे आधा भाग शुद्ध नीलाथोथा मिलावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसका नस्य लेने या देने से बेहोशी, सन्निपात, अत्यन्त निद्रा, तन्द्रा, मस्तिष्क पीडा, श्वास, खांसी, प्रलाप और उग्र कफ का नाश होता है।

सं. वि.--यह सुन्दर शिरोविरेचनीय औषध है। इसके सेवन से जीर्ण प्रतिश्याय कण्ठघुर्घर, मस्तिष्क पर ठण्डी की असर आदि रोग नास मात्र से मिट जाते हैं।

अर्द्धाङ्गवातारि रसः [भा. भै. र. ३३४]

(र. र, र. चं. । वा. व्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध पारा २५ तोला, शुद्ध गंधक २५ तोला, ताम्रभस्म ५ तोला. इन सबको नागरवेल के पान के रस और जम्बीरी निम्बु के रस मे घोटकर मूसा मे रखकर मुख बन्द करके लघु पुट मे फूंक दे। फिर निकाल कर इस रस मे त्रिकुटे का चूर्ण मिलाकर रखे।

मात्रा:--२-२ रत्ती। मधु से।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--अर्द्धाङ्ग वात पर प्रयुक्त होता है।

सं. वि.--साधारणतः नाडियों की दुर्बलता के कारण होनेवाले अर्द्धाङ्ग वातमे इसका प्रयोग सराहनीय है। रक्तचापकी वृद्धिके कारण होनेवाले अर्द्धाङ्गवात मे इसका प्रयोग लाभप्रद होता है।

अर्शःकुठारो रसः [भा. भै. र. ३३७]

(र. र. स., यो. त ; का. धे-)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला, ताम्रभस्म और लौहभस्म १५-१५ तोला। त्रिकुटा, कलिहारी, दन्ती, पीलु, चीता, प्रत्येक १०-१० तोला. जवाखार और सुहागे की खील २५-२५ तोले. सेन्धानमक २५ तोला, गोमूत्र २ सेर, थूहर का दूध २ सेर। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर पात्र मे भरकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब गाढा होजाय तब २-२ रत्ती की गोलिया बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। छाछ के साथ, या अनार के रस या जिमीकन्द के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अर्शनाशक।

सं. वि.—यह औषध वातज अर्श के लिये बहुत उपयोगी है। वायु द्वारा शुष्क मल अन्त्र को कठिन कर देता है, गुदवलियों मे शुष्कता उत्पन्न कर देता है और गुद मार्ग को सङ्कीर्ण कर देता है। वलियों के अन्दर सतत शुष्कमल की चुभन से अथवा जीर्ण कोष्ठबद्धता के कारण अङ्कुर उत्पन्न हो जाते है। ये अङ्कुर, तोद, दाह, रूक्षता, चुभन, शूल, आदि उत्पन्न करते हैं इन सब रोगों को नष्ट करने के लिये अर्शकुठार रस अच्छा काम करता है।

अर्शकुठार तीव्र रेचक है। वातनाशक है और अन्त्र तथा गुद वलियों के शोथ, शुष्कता और तोद आदि वलियों पर शुष्कमल द्वारा होनेवाले विकारों को दूर करता है।

अभ्रचोली (अभ्रकंचुकी) रसः [भा. भै. र. ३४४]

(र. रा. सुं. । श्वासे)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, परिशोधित विष, त्रिकटु, त्रिफला, शुद्ध हरताल और शुद्ध जमालगोटा। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। अनन्तर अन्य द्रव्यों का मिश्रण करे। औषधि के मिश्रित होने पर भांगरे के रस की २१ भावना दे और १—१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके रक्खे।

मात्राः—१—१ गोली।

अनुपानतरङ्गिणी के मतानुसार आमयिक प्रयोगः—

(१) मूली के रस के साथ या अदरक के रस और पीपल तथा शहद के साथ सेवन करने से वातजशूल, क्षय, खांसी और श्वासका नाश होता है।
(२) मस्तु के साथ सेवन करने से अजीर्ण का नाश करता है।
(३) चावल के पानी के साथ लेने से विष का नाश करता है।
(४) तिलपर्णी में घिसकर यदि आंख मे लगाया जाय तो पित्ताभिष्यन्द चक्षुरोग का नाश करता है।
(५) खांड के और जीरे के साथ सेवन करने से पित्तज्वर को नाश करता है।
(६) देवदारु, वच और कुष्ठ के क्वाथ के साथ सेवन करने से अस्थिगत—वायु रोग को नाश करता है।

(७) जायफल के चूर्ण के साथ मिलाकर देने से रक्तार्श का नाश करता है।
(८) सर्पविष मे इसका निम्बु के रस मे घोटकर प्रलेप किया जाता है। अथवा सिरस के रस मे या घी अथवा नागरमोथे के रस मे पीसकर लेप करने से भी सर्पविष का नाश करता है।
(९) तुलसी के रस के साथ इसका ज्वर मे प्रयोग करते है।
(१०) दैनिक ज्वर मे घीकुमार के रस मे देना लाभप्रद है।
(११) दाह युक्त पित्तज्वर मे आंवले के रस या क्वाथ मे देने से लाभप्रद होता है।
(१२) मन्दाग्नि मे इसका प्रयोग कसौन्दी के रस और सुहागे के साथ करते हैं।
(१३) वायुगोले के अन्दर इसका प्रयोग थूहर के दूध या निर्गुण्डी के रस के साथ करना चाहिये।
(१४) अजवायन के क्वाथ के साथ लेने से यह दारुण सन्निपात नाशक है।
(१५) वातव्याधि मे इसका प्रयोग बकरी के दूध तथा गोघृत के साथ करते हैं अथवा भांगरे की जड का रस, अजमोद और भांग के साथ अथवा त्रिफला या असगन्ध के चूर्ण और शहद के साथ इसका प्रयोग वायु के रोगों को दूर करने मे किया जाता है।
(१६) एरण्ड तेल के साथ यह विरेचक है।
(१७) अदरक के रस के साथ घिसकर लगाने से बिच्छु के काटे को आराम करता है।
(१८) भांगरे के रस मे देने से स्वेद और चम्पा के रस मे देने से शरीर की दुर्गन्धि को दूर करता है।
(१९) आंवला और मिश्री के साथ खाने से यह पित्त का नाश करता है।
(२०) त्रिफला और एरण्ड के साथ खाने से उदर रोगों को नाश करता है अथवा मकोय के रस के साथ सेवन करने से भी यह उदर रोगों को मिटाता है।
(२१) भांगरे की जड के रस या प्याज के रस के साथ दिये जाने से यह शोथ नाशक है।
(२२) करंजवे की जड की छाल के रस के साथ देने से यह कृमिरोग नाशक है।
(२३) जीरे और शहद के साथ खाने से उष्णवात का नाश करता है।

अश्विनिकुमारो रसः [भा. भै. र. ३४८]
(अनु. त.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिकुटा, त्रिफला, अफीम, शुद्ध मीठातेलिया, पीपला मूल, लौंग, जमालगोटा, शुद्ध हरताल, सुहागे की खील, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा। प्रत्येक

द्रव्य १।-१। तोला लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्य मिश्रित करे। पश्चात् यथाक्रम उसको आधे-आधे सेर गायके दूध गोमूत्र और भांग के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१-१ गोली। यथानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—अनुपान भेद से अनेक रोगों का नाश करता है।

सं. वि.—श्वास, कास, वातशूल, आमातिसार, वाताध्मान, शरीरदुर्गन्धि, कृमि, रक्तदोष, कफजमेह आदि अनेक रोगों मे इसका प्रयोग "अभ्रकञ्चुकी" वत् किया जाता है। यह आमदोष नाशक, वेदनान्तक, कृमिघ्न और वातनाशक है।

अष्टादशाङ्ग लोहम् [भा. भै. र. ३५४]
(भा. प्र. । पाण्डु)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, गिलोय, कुटकी, परवल, धमासा, पित्तपापडा, नीम, त्रिकुटा, चीता, हरड, बहेडा, आंवला और वायविडङ्ग। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले और बारीक चूर्ण बनालें। तदनन्तर घी और मधु मिलाकर गोलियां बनाकर रख लें।

मात्राः—३-३ रत्ती। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—हलीमक, सूजन, प्रमेह, संग्रहणी, श्वास, खांसी, रक्तपित्त, अर्श, जीभ का रुकजाना, आमवात, व्रण, वातगुल्म, कफजविद्रधि, श्वेत कुष्ठ आदि का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पित्तशामक, दाहनाशक, विषघ्न और मूत्रल है। इसके सेवन से पित्तजन्य उदर रोगो का नाश होता है। यह ज्वरघ्न और रक्तवर्धक औषधियो के योगसे बनी हुई है। यह औषध वायु द्वारा उर्धगत पित्त के विकारों को संशमन करने मे सुचारु काम करती है। यह रक्त में पित्तद्वारा होनेवाले विकारों को शान्त करके त्वचा के दोषो को मिटाती है। इसका प्रयोग यकृत् शोथ, यकृत् वृद्धि, यकृत् तन्तुगत क्षोभ, तथा अन्य यकृत् के पित्तद्वारा होनेवाले विकारों को यथा पाण्डु, हलीमक, कामला तथा ज्वर, दाह और रञ्जन के अभाव से होनेवाले विकारो को शान्त करती है। दूषित पित्तद्वारा वृक्क मे होनेवाले विकार को मूत्रद्वारा निकाल कर यह आमवात, शिरोवेदना, चक्षुदाह आदि रोगो को नाश करती है।

अर्कलोकेश्वरो रसः [भ. भै. र. ३२८]
(र. सं. क ४ उल्ला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—५ तोले शुद्ध पारद को आक के रसमे बार बार खरल करे। १० तोले शुद्ध गन्धक और ४० तोले बडे शंख की भस्म के मिश्रण को चीते

के क्वाथ की ३ भावना देकर शुष्क होने पर पारद मे मिलावें। तदनन्तर २॥ तोले सुहागे की खील को उक्त मिश्रण के साथ मिला दे। फिर उसको सुखाकर शराव सम्पुट में फूंक दे। सम्पुट के स्वांगशीतल होने पर औषधि को निकाल कर पीस कर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—२ से ४ रत्ती तक। काली मिर्च के चूर्ण और घी के साथ मिलाकर खिलावें।

पथ्य:—दही, भात तथा रात्रिके समय गुड मिश्रित भांग खिलावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—इसके सेवन से संग्रहणी रोग का नाश होता है। इससे बढ़कर संग्रहणी रोग की दूसरी औषध नही है।

सं. वि.—यह औषध पित्त, विष और कीटाणुओ के दोष से उत्पन्न हुये ग्रहणी रोग के लिये अत्युत्तम है। क्यो कि यह कृमिघ्न है, अत: रक्तशोधक, विषनाशक और श्लेष्मकलाओं मे दूर तक प्रविष्ट हुये दोष का नाश करनेवाली है। मल को पाचन करके निकालना और पित्तका संशमन करना इसका मुख्य धर्म है।

ग्रहणी में होनेवाले दाह, क्षोभ, आध्मान आदि विकार इसके सेवन से शीघ्र दूर हो जाते है, और अन्न पाचन मे यह बहुत सहायभूत होती है।

दीर्घकालीन दोषो से उत्पन्न हुई ग्रहणी मे क्षत, शोथ तथा अन्य पित्तज विकार इसके सेवन से नष्ट हो जाते है और रस रक्त आदि मे प्रविष्ट हुवा दोष मिट जाता है।

उदर मे दुष्टजल, दुष्ट, अपक्व, क्वथित, अन्नसंग्रह, सतत दाह आदि से उत्पन्न हुये कीटाणु, और विष, जिनसे कीटाणुज तथा विषज संग्रहणी का जन्म होता है, जिसे आधुनिक "एमेबिक" और "बैसिलरी" [Amaebic and Bacillary Dysentery] डीसेन्ट्री कहते है, वह इस औषध के सेवन से मिट जाती है।

यह पित्त का संशमन करनेवाली औषध है, और पित्त का अधिक निस्सरण, ग्रहणी का मुख्य कारण होता है। अत वात-कफ दोषों का पाचन करती हुई यह औषध पित्त का संशमन करती है और इस प्रकार ग्रहणी के लिये यह एक सुन्दर औषध सिद्ध हुई है।

७ अर्केश्वरः [भा. भै र. ३३०]

(र. रा. सु., र. सा. सं । रक्तपित्त.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म और स्वर्णमाक्षिभस्म समान भाग लेकर सबको गिलोय और सुगन्धवाला के रसकी २१ भावना देकर शराव सम्पुट मे रखकर फूंक दे। तदनन्तर अडूसा, शहद और विदारी कन्द के रस मे घोटकर (शास्त्रोक्त ४-४ रत्ती) १-१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा:—१–१ गोली। वासा के रस और मधु के साथ अथवा दोषोचित अनुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रक्तपित्त का तत्काल नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शामक गुण द्वारा रक्त का अवरोध करती है और उर्द्ध और अधोगत रक्तपित्त में प्रयुक्त की जाती है। यह औषध शोधक, आमनाशक, रक्तशोधक, दाहनाशक, पित्तशामक और कफ–वात नाशक है।

अचिन्त्यशक्ति रसः [रसतन्त्र सार]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध सोमल, शुद्ध हरताल और शुद्ध हिंगुल १–१ तोला एकत्र मिलाकर करेले के १॥ सेर रस मे खरल करके सरसो के बराबर (१/२–१/२ रत्ती की) गोलियां बनावे। (करेले के रस को थोडा थोडा मिलाकर शोषण कराना चाहिये।)

मात्रा:—१ से २ गोली। दिन मे २ बार बलाबल देखकर देवे।

अनुपान और उपयोग—इस रसायन को श्वसनक सन्निपात (Pneumonia), फुफ्फुसशोथ, श्वास, कास, कफ, ज्वर और सन्निपात आदि मे शर्करा के साथ देने से सत्वर चमत्कारिक लाभ होता है।

भोजन मे केवल दूध ही दे, अन्य भोजन न देना चाहिये। रोग का वेग शान्त होने पर थोडे दिनो तक प्रात सायंशृंगभस्म और अभ्रकभस्म १–१ रत्ती मिलाकर शहद, घृत और शक्कर या केवल घृत के साथ चटाना चाहिये। श्वसनक सन्निपात के समान ही यह रसायन विषम ज्वरो मे भी अच्छा लाभ पहुंचाता है। सतत, एकाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक इन सब पर इसका सत्वर प्रभाव पडता है। पाली के ज्वर मे १ दिन मे ही ३ समय औषध सेवन करने पर बहुधा रुक जाते है। ज्वर रुक जाने पर भी ४–६ दिन इस रसायन का सेवन करते रहना चाहिये। अनुभव करने पर यह रस वस्तुत अचिन्त्य शक्तिशाली ही सिद्ध हुवा है।

यह रस हमे सुजानगढ के स्वर्गीय यतीजी महाराज के शिष्य पण्डित नारायणदत्तजी ज्योतिर्विद कलकत्ता निवासी से प्राप्त हुवा है। हम उनके नितान्त कृतज्ञ है।

[रसतन्त्र सार से उद्धृत]

अश्मरीकण्डनो रसः [भा. भै. र. ३४१]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ढाक, केला, तिल, करेला, जौ, इमली, चिरचिटा और हल्दी इनमे से प्रत्येक का क्षार १६–१६ भाग, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १–१ भाग तथा लोहभस्म २ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर खरल करे।

मात्रा—४ रत्ती से १/४ तोला तक। रोग और रोगी के बलाबल अनुसार दही या वरने की छाल के क्वाथ के साथ सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पथरी और शर्करा का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, मूत्रल, भेदक, दाहनाशक, क्षोभनाशक, दोषानुलोमक तथा वृक्क, वृक्कनलिका और वस्ति मे स्थित और अवरुद्ध अश्मरी को भेद कर निकाल देती है। यह क्षारों का योग है, और अश्मरी नाश करने के लिये अत्यन्त प्रबल है।

अन्त्रशोषान्तक रसः [र. यो. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—निम्बु का रस, सुहाजने का स्वरस अथवा क्वाथ, मौलसरी की छाल, चिरायता, गिलोय, शतावरी, अर्जुन, त्रिफला, विदारीकन्द, बला, असगन्ध, मूसली, वायविडङ्ग आदि द्रव्यो के क्वाथ अथवा स्वरस की भावना देकर तैयार की हुई (अर्थात् कान्तपाषाण के चूर्ण को उपरोक्त प्रत्येक द्रव्य की भावना देकर शराव सम्पुटों मे बन्द करके अग्नि द्वारा भस्म करे] कान्तपाषाण भस्म १ भाग, नागभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १/२ भाग, स्वर्णभस्म १/२ भाग, ताम्रभस्म १/२ भाग, लोहभस्म १/२ भाग, खर्परभस्म १/२ भाग और २¾ भाग शुद्ध गन्धक ले। सब द्रव्यों को भलीभान्ति एकत्र खरल करें, सुहाञ्जने तथा घृतकुमारी के रस की ३०-३० भावना देकर गोला बनाकर उसे शराव सम्पुट मे बन्द करे और वाराह पुट मे फूंक दे। इस को तीस पुट दे। और तय्यार होने पर सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। मधु शर्करा अथवा मक्खन के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अन्त्रशोष, फुफ्फुसशोथ, जीर्णज्वर, धातुक्षय, दुःसाध्य संग्रहणी, राजयक्ष्मा का श्वास, गुल्म, अरुचि और अतिसार आदि नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, दोषानुलोमक, वात-पित्त शामक, शोथनाशक, आम पाचक ज्वरनाशक, शक्तिवर्द्धक, अग्निवर्द्धक और उदर मे होनेवाले व्रण और व्रणशोथ को नष्ट करती है।

इसके सेवन से उदरच्छदा कला का उग्र अथवा पुरातन शोथ नष्ट होता है। यह क्षय दोषनाशक, वस्तिशोधक और अनुलोम अथवा प्रतिलोम क्षय को नाश करती है। यह फुफ्फुस के विकारो मे भी प्रयुक्त की जाती है।

अन्त्रशोषान्तको रसः [र. त.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मनसिल के योग से भस्म किया हुवा नाग २ तोला और कान्तपाषाण भस्म २ तोला, सुवर्णभस्म, यशदभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म

प्रत्येक १-१ तोला। उपरोक्त सब द्रव्यों से प्रमाण मे आधी गन्धक लेकर सब द्रव्यों को भलीभान्ति मिश्रण करके इस योग को घृतकुमारी के रस मे मर्दन करे और तीन बार बाराह पुट दे। प्रत्येक बार घृतकुमारी के रस मे घोटें और शराव मे रखकर पुट दे। अन्तिम बार चूर्ण करके शीशी मे भर कर रख दे।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः— अन्त्रशोष का नाश करनेवाला है। ग्रहणी दोषों को दूर करता है। पुरातन अजीर्ण को नष्ट करता है और आन्त्रिक क्षय को मिटाता है। दीर्घकाल से हुई अरुचि का नाश करता है और अतिसार को, भले ही वह अन्त्रशोप के कारण होता हो, दूर करता है। आध्मान को दूर करता है। वायुगोला और तिल्ली रोग को मिटाता है। जीर्णज्वर नाशक और शक्तिवर्द्धक है। इसका प्रयोग बल, कालादि को ध्यान मे रखकर करना चाहिये।

अभ्रक हरीतकीः [भा. भै. र. ११४]
(र. रा सु.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अभ्रकभस्म १। सेर, लोहभस्म २५ तोला, शुद्ध गन्धक २५ तोला, सोनामक्खी भस्म ३।।। सेर, हरीतक ६। सेर, आमला १२।। सेर, इन सबको एकत्र चूर्ण करके जम्बीरी निम्बु, भांगरा, पुनर्नवा, पातालगरुडी, भिलावा, चीता, हाथीसुण्डी, कलिहारी, दूधी तथा जलकुम्भी के रस मे १-१ दिन खरल करके शहद और घृत मे मिलाकर चिकने पात्र मे सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—४ से ६ रत्ती तक। जल अथवा मधु और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—यह त्रिदोपज अर्श का नाश करती है।

सं. वि.—यह औपध शोधक, दाहनाशक, पित्तशामक, वातानुलोमक, आम-कफनाशक शोथनाशक और आक्षेपनाशक है।

इसके सेवन से सभी प्रकार के अर्श नष्ट होते है। यह रक्तरोधक, पाचक, दोषानुलोमक और कफ-मेद नाशक है।

आखुविषान्तको रसः [यो. र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, परिशोधित गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, त्रिकटु चूर्ण और कुटकी, प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बनावे। तदनन्तर इसमे अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलावें। मिश्रणको पुनर्नवा के रस की ७ भावनायें दे। तय्यार होने पर २-२ रत्ती की गोलियां बनावे। छायामे सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। दिन मे ३–४ वार गोमूत्र मे मिलाकर खिलावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से आखु अर्थात् चूहों के विषका नाश होता है।

मं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक, शोधक, दाहनाशक, दोषानुलोमक, सहज वात–पित्तान्तक, मूत्रल, आमनाशक और अजीर्ण तथा आध्मान नाशक है।

आखुविष मे सारे शरीर के अन्दर आक्षेप जैसा अनुभव होता है, वेदना होती है, विष की मात्रा यदि अधिक प्रमाण मे प्रविष्ट हुई हो तो सम्पूर्ण शरीर मे ग्रन्थियां उत्पन्न हो जाती हैं। यह विष अधिकतर शरीर की सम्पूर्ण श्लेष्मकलाओं द्वारा शरीर मे प्रसृत होता है और जहां श्लेष्मकलाओ का समुदाय होता है वहीं अधिक प्रमाण मे ग्रन्थियां अथवा ग्रन्थिशोथ उत्पन्न करता है। ज्वर, कोष्टवक्रता, नेत्रदाह, अरुचि आदि अनेक लक्षण होते है।

आखुविषान्तक रस उपरोक्त सभी विकारों को नष्ट करता है और यदि इसका दीर्घकाल तक सेवन किया जाय तो रोग सदा के लिये निर्मूल हो जाता है। इस रोग मे कभी वेदना रुक रुक के होती है। शरीर श्यामवर्ण हो जाता है। अत अशत रोग विनाश के लिये औषध का दीर्घकाल सेवन हितावह है।

आनन्दभैरवो रसः [भा. भै. र. ४३८]

[भै. र., वृ नि. र. । अति.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—परिशोधित हिङ्गुल, कालि मिर्च, सुहागे की खील, शुद्ध मीठा तेलिया और पीपल। सब द्रव्य समान भाग ले। महीन चूर्ण करे। या तो जल के साथ घोटकर गोलियां बना ले अथवा चूर्ण को ही प्रयोग मे लावे।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक। कूडे की छाल के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से त्रिदोषज अतिसार का नाश होता है।

पथ्यः—दही, भात, बकरी की दही तथा तक्र और प्यास लगने पर शीतल जल पियें। रात्रि के समय भांग घोटकर छान के पिवें तो अतिसार मे अधिक हितकारक होता है।

आनन्दभैरवो रसः [भा. भै. र. ४४०]

(र रा. सु. । श्वासे)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद, शोधित गन्धक दोनों को समान भाग लेकर कज्जली बनावें और भांगरेके रस की एक भावना दे। अनन्तर इसमे शुद्ध हिङ्गुल, शुद्ध मीठा तेलिया, त्रिकटु चूर्ण, सुहागे की खील और पीपल प्रत्येक द्रव्य पारे के बराबर लें और सम्पूर्ण मिश्रण को बिजौरे निम्बु के रस मे खरल करके गोलियां बना ले। गोलियां २–२ रत्ती की बनावे।

मात्राः—१ से ३ रत्ती । मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा, गुल्म, संग्रहिणी, सन्निपात और घोर अपस्मार का नाश करता है ।

सं. वि.—यह त्रिदोषशामक, पाचक, दीपक और वातानुलोमक है । अजीर्ण द्वारा होनेवाले कास, और श्वास मे यह अधिक लाभप्रद है । इसके सेवन से भली प्रकार पाचन होकर दस्त होता है ।

आनन्दोदय रसः [भा. भै. र. ४४२]

(भै. र. । पाण्डु)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध मीठा तेलिया, प्रत्येक १—१ भाग, कालि मिर्च ८ भाग सुहागे की खील ४ भाग । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, तदनन्तर उसमे अन्य द्रव्य मिलावे और खट्टे अनार के रस की यथाक्रम ७—७ भावनाये दे । लुगदी तय्यार होने पर २—२ रत्ती की गोलियां बनावे ।

मात्राः—२ रत्ती । पान के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—पान मे रखकर सायंकाल के समय सेवन करने से वातश्लेष्मज रोग (वात और कफ के विकार), मन्दाग्नि, संग्रहणी, ज्वर, अरुचि और पाण्डु का नाश होता है । इसके सेवन से गुरु अन्न, अम्ल तथा उड़द आदि जीर्ण होते है ।

सं. वि.—यह आमनाशक, दीपक, पाचक और आक्षेप नाशक है । इसके सेवन से जीर्णाग्नि की वृद्धि होती है और यह रुचिप्रद और दाहनाशक है ।

आमवातारि रसः [भा. भै. र. ४४५]

(भै. र. । आ. वा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग, शुद्ध गुग्गुल ५ भाग । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें । फिर यथाक्रम अन्य द्रव्यो के चूर्ण मिलावे । तदनन्तर इस मिश्रण को अरण्ड के पत्तों के रस मे घोटकर या तो २—२ रत्ती की गोलियां बनाले अथवा चूर्ण करके रख ले ।

मात्राः—२ से ६ रत्ती तक । अरण्ड तेल और गरम जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—आमवात का नाश करता ह ।

पथ्यः—दूध मूंगादि पदार्थों का उपयोग बन्द रक्खे ।

सं. वि.—यह द्रव्य आमनाशक, पाचक और अग्निवर्द्धक है । इसके सेवन से आमविष का नाश होता है । दोषों का संशमन होता है और उदरगत आम आदि विकार

विरेचन होकर निकल जाते है। यह सर्वाङ्ग वेदना का नाश करता है, और शरीरकी शिथिलता तथा जकडे पन का नाश करता है।

आरोग्यवर्द्धिनी गुटिका (रस) [भा. भै. र. ४४८]
(र. र. स. । अ. २०)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म, प्रत्येक १–१ भाग, त्रिफला २ भाग, शुद्ध शिलाजीत ३ भाग, शुद्ध गुग्गुल ४ भाग चीतामूल ४ भाग और कुटकी सबके बराबर। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, फिर इसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर भलीभान्ति घोंटे। तदनन्तर इसको २ दिन तक नीम के पत्तों के रसमे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—२ से ४ गोली तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मण्डलकुष्ठ, अन्य सर्व प्रकार के कुष्ठ तथा वातज, पित्तज और कफजज्वरादि का नाश होता है। इन्हे ज्वर आने के ५वे दिन से सेवन कराना चाहिये। ये गोलियां पाचनी, दीपनी, पथ्या, हृद्या (हृदय के लिये हितकारिणी), मेदनाशक, मलशोधक, अत्यन्त क्षुधावर्धक तथा अन्य सब प्रकार के रोगो को नाश करनेवाली है।

सं. वि.—श्री नागार्जुन योगी द्वारा बनाई हुई यह औषध परम पाचक, विषनाशक, रक्तवर्द्धक, रक्तशोधक, रक्तदोषो से होनेवाले विकारो को नाश करनेवाली, दाहनाशिका और अग्निवर्द्धक है। इसके प्रयोग से वातज हृदयरोग, हृदयशूल, वक्षशूल, वातज फुफ्फुसावर्ण विकार तथा अज्ञातकारण से शरीर शोष आदि विकार दूर होते है।

आनन्द रसः [भा. भै. र ४४१]
(बृ. नि र. । अति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जायफल, सेधानमक, शुद्ध हिङ्गुल, कौडीभस्म, सोठ का चूर्ण, शुद्ध मीठा तेलिया, धतूरे के बीज और पीपल का चूर्ण। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। भली प्रकार घोंटे। पानी के साथ घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्राः—१–१ रत्ती। खांड के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्म—इसके प्रयोग से उदरगत वायु, कफज शूल, आमातिसार, ग्रहणी विकार और सूखारोग (सूखिया मसाण] का नाश होता है।

सं. वि.—यह जीर्ण वात, कफ और अजीर्ण के लिये सुन्दर औषध है। दीर्घकाल तक आम के होने से शिथिल हुये अन्त्र की विकृति को दूर करती है। उपान्त्रशोथ और अन्त्र शैथिल्य को मिटाती है। पेट की वायु के लिये अच्छी औषध है।

आमवातेश्वरो रसः [भा. भै. र. ४४६]

[भै. र. । आ. वा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक २॥ तोला, ताम्रभस्म २॥ तोला, शुद्ध जीरा १। तोला । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे । फिर उसे पीसकर पञ्चकोल के क्वाथ मे घोटे और धूप मे सुखा दे । इसी प्रकार पञ्चकोल के क्वाथ की २० भावना और गिलोय के रस की १० भावना देकर इसमे सुहागे की खील सबके बराबर, बिडलवण सुहागे से आधा, काली मिर्च का चूर्ण बिडलवण के बराबर, तिन्तडीक के बीज १। तोला, दन्ती १। तोला, त्रिकुटा, त्रिफला और लौंग प्रत्येक ७॥-७॥ मासा मिलाकर सब द्रव्यो को खरल करे ।

मात्राः—२ से ६ रत्ती तक । जल के साथ या यथा रोग ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह रस अत्यन्त अग्निवर्द्धक है और आमवात के लिये अत्यन्त उपयोगी है । इसके सेवन से अनावश्यक स्थूलता दूर होती है और कृशता नष्ट होकर शरीर सुडौल हो जाता है । यह अनुपान भेद से सभी रोगो पर प्रयुक्त की जाती है । साध्य हो या असाध्य भयङ्कर आमवात का यह नाश करती है । अत्यधिक भोजन करने के बाद इसमे से ४ रत्ती दवा खा ली जाय तो यह सबको पचा देती है । इसके समान अग्निसन्दीपन गुल्म, अर्श, ग्रहणी, शोथ, पाण्डु और उदररोग नाशक अन्य औषधि नहीं है ।

अनुपानः—मधुर, कषाय और लवण रस से युक्त पदार्थ ।

सं. वि.—अपथ्य द्वारा अन्यान्य उदर रोगों से पीडित, अन्त्र के शोथ गुल्म, व्रण, अजीर्ण, वायु के अनेक भेद [गैस आदि के रोगो] से परिपीडित आजकल के क्षीण कायियो लिये यह औषध असमान गुणकारिणी है ।

आरोग्य सागरो रसः [भा भै. र. ४४९]

[र. र. स । अ. १९]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला दोनो की कज्जली करले । उसमे स्वर्णमाक्षिक भस्म १० तोला, शुद्ध हरताल ५ तोला, शुद्ध मन्सिल ५ तोला, अभ्रकभस्म ५ तोला, स्फटिकमणिभस्म १। तोला मिलाकर खरल करके मूषा मे भरकर उसका मुख ३॥। तोला वजनी ताम्बे के शुद्ध पत्र से बन्द कर दे । एव उसके उपर मजबूत कपड मिट्टी करके उसे सुखाले और अरने उपलो की अग्नि मे गज पुट लगा दे । जब स्वांगशीतल हो जाय तो निकाल कर खरल करे और उसमे शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल तथा शुद्ध मन्सिल का चूर्ण पारे के बराबर मिलाकर वराह पुटमें फूंके। इसी प्रकार १० पुट दे।

हर पुट मे गन्धक, हरताल और मन्सिल मिलाते रहें। इसके बाद उसमें सबके वजन से २० वां भाग वैक्रान्त भस्म मिलाकर घोटकर कपडछन करके चान्दी की शीशियो [करण्ड] मे भरकर रक्खें।

मात्राः—१-१ रत्ती। मिर्च और घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पाण्डु, अरुचि, गुदरोग, वातव्याधि, पित्तज और कफज रोग, गुल्म, अफारा, सूजन, श्वास, मस्तक पीडा, वमन, अत्यन्त अग्निमान्द्य, भयङ्कर उदावर्त, नाना प्रकार के ज्वर और अन्य अनेक रोगों का नाश होता है।

इच्छाभेदी रसः [भा. भै र. ४६३]
[रसा. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हिङ्गुल मे से निकाला हुवा पारा, सोठ, चित्रक, काली मिर्च, प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोला लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावे, बादमें अन्य द्रव्यो के चूर्णो को मिलादे। इस मिश्रण मे ६ तोले निशोथ का चूर्ण और १२ तोले शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण मिलावे और इसका भली प्रकार मर्दन करे, इस मिश्रण को चित्रक के क्वाथ की ३ से ७ तक भावना दे और २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा—१ से २ गोली। ताजे पानी के साथ या धारोष्ण दूध के साथ बलाबल देखकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कैसा भी क्रूरकोष्ठ मनुष्य क्यो ना हो जुलाब अवश्य होता है।

सं. वि.—यह प्रसिद्ध तीव्र विरेचक औषध है। आधुनिक युग मे क्षीण शरीरो मे मन्दाग्नि के कारण वात की वृद्धि पाई जाती है, कहीं २ वायु उर्ध्वगत हो जाती है और आमाशय आदियो को विकृत करती है, कहीं अधोगत होकर उदरस्थ निम्न भागो को आलोडित करती है और आमदोष, संग्रहिणी, अतिसार आदि अनेक प्रकार के विकार पैदा करती है। इसका प्रयोग ऐसे समय मे देश, काल, आत्म्य, सात्म्य, अग्निबल आदि की अपेक्षा करके ही करना युक्ति युक्त हो सकता है। मेरी दृष्टि से क्षीणाग्नि शरीरो मे अग्निवृद्धि करके साधारण रेचक द्रव्यो का उपयोग करना लाभप्रद है।

० इन्दुशेखरो रसः [भा भै. र. ४७१]
(भै. र. । स्त्री. रो)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध शिलाजीत, अभ्रकभस्म, रससिन्दुर, प्रवालभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म और शुद्ध हरताल प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके भांगरा, अर्जुन, निर्गुण्डी (संभालु), वासा, स्थलपद्म, कमल और कूडे की छाल के

यथालभ्य रस या क्वाथ की यथाक्रम भावना दे। तदनन्तर २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके रक्खें।

मात्राः—१ से २ गोली। यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस औषध को यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से गर्भिणी स्त्री का घोर ज्वर, श्वास, खांसी, शिरोवेदना, रक्तातिसार, संग्रहिणी, वमन, अग्निमान्द्य, आलस्य, दुर्बलता आदि रोगोका नाश होता है।

सं. वि.—गर्भावस्था मे प्रथम दिन से अन्तिम दिन तक अरुचि, अनिद्रा, वमन, अतिसार, उदरदाह, ज्वर, रक्तहीनता, मूत्रदाह आदि अनेक विकारो की उत्पत्ति हो जाती है। यथा दोष औषध सेवन से विकार शान्ति हो जाती है। इन्दु शेखर रस केवल अनुपान भेद से इन सभी विकारो मे प्रयुक्त किया जाता है और गर्भिणी को पुष्ट, निरामय औरनिरालस्य रखता है। यह निर्विकार रागुण औषध है।

उपदंश कुठारः [भा. भै. र. ५३५]

(वृ नि र., । उपदंश)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मुर्दासिंह १ तोला, कूठ १ तोला, नीलाथोथा ६ मासे इन सब द्रव्यो को भलीभान्ति मिश्रण करके इसे अदरक के रस मे घोटे और १–१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। रोग बलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस औषध को अदरक के साथ सेवन करने से उपदंश का नाश होता है।

पथ्य—मधुर और अम्ल रस तथा मछली और दूध एवं पेठा नहीं खाना चाहिये।

उदयभास्करः [भा. भै. र. ५१७]

(वृ नि. र. । पाण्डु]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, ताम्रभस्म ८ भाग, शुद्ध शिलाजीत ३ भाग, शुद्ध हरताल २ भाग, त्रिकुटा ४ भाग, शुद्ध मीठा तेलिया २ भाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर निर्गुण्डी, अदरक और जयन्ती के रस मे क्रमशः ७–७ भावना दे और धूप में सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ रत्ती। सोठ, कालीमिर्च, पीपल का चूर्ण और अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन उपरोक्त अनुपान के साथ करने से पाण्डु, कामला, सूजन, मन्दाग्नि, सन्निपात ज्वर, प्रमेह, तिल्ली जलोदर, ग्रहणी, कुष्ट और धनुर्वात का नाश होता है।

पथ्य—साठीचावल, नवनीत, तक्र और शालीचावल।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, पाचक और दीपक है। यह आमदोष का नाश करती है। दूषित पित्त का शोषण करती है और क्षीण पित्त की वृद्धि करती है। वात और पित्त द्वारा होनेवाले उदर विकारों में इसका उपयोग बहुत लाभदायक है। यह मूत्रल और दोषानुलोमक है।

उदयादित्यो रसः [भा. मैं र. ५२०]
[र र स । अ. २०]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा ५ तोले और शुद्ध गन्धक १० तोले लेकर दोनों की कज्जली बनावे और इसे १ दिन घीकुमार के रस में घोटे। इस लुगदी का गोला बनाकर उसे एक हांडी में रक्खे और उसके ऊपर पारे से ३ गुने प्रमाण का शुद्ध ताम्बे का वर्तन (कटोरी आदि) ऊलटा करके ढक दे। (कटोरी आदि की सन्धि को चिकनी मिट्टी आदि से बन्द करके) उसके चारों ओर राख भरकर उसे चूल्हे में चढावे। अब इसके नीचे २ पहर तक तीव्र अग्नि जलावे और इस क्रिया को करते हुये ताम्र के वर्तन के उपर थोडा थोडा गोवर का पानी डालते रहे। इसके बाद हांडी के स्वांगशीतल होने पर ताम्बे के पात्र सहित औषधि को निकाल कर उसे पीस ले और फिर काकोदुम्बरिका, चीता, त्रिफला, अमलतास, बायविडङ्ग और बावची के बीज के क्वाथ में १–१ दिन घोटे।

मात्रा और सेवन विधि—खैर के क्वाथ में समान भाग बावची का चूर्ण मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। लुगदी सी बनाने पर इस लुगदी को ६ या ९ रत्ती लेकर २ रत्ती उदयादित्य रस मिलाकर चाटे और ऊपर से आक का दूध या त्रिफले का क्वाथ पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उदयादित्य का उपरोक्त प्रमाण से प्रयोग करने पर तीसरे या ७ वे दिन कोढ के स्थान पर छाला पड जायगा, उसके उपर नीली, चोटली, कसीस, धतूरा, हसपादी, सूरजमुखी और चांगेरी समान भाग लेकर सबको पीसकर ७ दिन तक लेप करे। इससे निस्संदेह साध्यासाध्य श्वेतकुष्ट अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध प्रयोग करके अनुभव करने योग्य है। औषधियों के योग, प्रयोग विधान और पश्चात् लेप इत्यादियों की क्रिया उच्च कोटि की होने से यह अवश्य शत प्रतिशत लाभप्रद सिद्ध होगी।

उदरारि रसः [भा. भै. र. ५२५]

(र. र. । उदर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, ताम्र भस्म, लौहभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मन्सिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध शिलाजीत, और सुहागे की खील, सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण करके संभाल, त्रिकुटा, भांगरा, चीता, आक और नीम के रस मे क्रमशः १–१ दिन घोटे।

मात्राः—१–१ रत्ती। यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह उदर रोगो के लिये उत्तम उपयोगी औषध है।

सं. वि.—यह रेचक, पाचक, आमशोधक और वातनाशक औषध है। इसके सेवन से उदरगत दोषो द्वारा होनेवाले विकार शान्त होते हैं। यह रेचक और दोषानुलोमक है।

उन्मत्ताख्यो रसः [भा. भै. र ५२९]

(र. सं. क., उ. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और त्रिकुटा समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर १ दिन तक धतूरे के रस मे खरल करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके नस्य लेने से सन्निपात रोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शीतद्वारा होनेवाले तथा रूक्षता से उत्पन्न वायु द्वारा होनेवाले प्रतिश्याय और पृति नस्य मे भी सफलता पूर्वक प्रयुक्त की जा सकती है।

उन्माद गजकेसरी रसः [भा. भै र ५३१]

(र. र. सुं । उन्मा)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मन्सिल और धतूरे के बीज। प्रत्येक द्रव्य समान ले। सबका चूर्ण बनाकर वच के क्वाथ और ब्राह्मी के रस की ७–७ भावनाये देकर रक्खे।

मात्रा और सेवन विधि—इस रस को २ से ४ रत्ती लेकर घी के साथ चाटे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसका सेवन उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद और ज्वर मे किया जाता है।

सं. वि.—यह औषध तीव्र वायु द्वारा होनेवाले नाडी विप्लव को दूर करती है। मस्तिष्क की शिथिलता जडता तथा विप्लवता को दूर करती है।

उन्माद गजाङ्कुशः [भा. भै. र. ५२२]

(भै. र. । उन्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारे को तीन तीन दिन तक धतूरा, जलपीपल और कुचले के रस में क्रमशः तिर्यक्पातन करे। तदनन्तर समान भाग गन्धक उसमें मिलाकर उसकी टिकिया बनावे। इन गोलियों को धूपमे सुखाने के बाद अग्नि में गरम करे। तत्पश्चात् उसमे समान भाग धतूरे के बीज, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध मीठातेलिया मिलाकर तीन दिन तक खरल करे।

मात्राः—२ से ३ रत्ती।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रज और तम से होनेवाले दोषोन्माद और भूतोन्माद अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते हैं।

उदरामय कुम्भकेशरी रसः [भा. भै. र. ५२३]

(र. सा. सं. । प्ली)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, त्रिकुटा, सुहागे की खील, सज्जीखार, जवाखार, पीपलामूल, चव, चीता, पाञ्चोंनमक, अजवायन और हींग। सब द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलावे। तदनन्तर तेजधूपमे निम्बु के रस की ७—७ भावनायें दे और २—२ रत्ती की गोलियां बनावे (पाठानुसार १—१ मासे का योग है, परन्तु हमे यह मात्रा आधुनिक काल के अनुरूप बहुत बडी मालूम होती है, अतः २—२ रत्ती का प्रमाण दिया है।)

मात्राः—२ से ४ रत्ती। जल तथा देवदारु के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस औषध को देवदारु के क्वाथ के साथ सेवन करने से व्रणजन्य रोग, जिगर, कृमि, अग्रमांस, कमठ, तिल्ली, जलोदर, अग्निमान्द्य, गुल्म, आमरोग और अम्लपित्त का नाश होता है।

सं. वि.—इस औषध का प्रयोग, अन्त्रों के किसी भाग मे होनेवाले व्रणमे, किये जाने पर शीघ्र लाभ होता है, दुष्ट पूय द्वारा क्षुब्ध जीर्णव्रण के नाश के लिये इसका प्रयोग युक्ति संगत है।

उन्मत्तभैरव रसः [भा. भै. र. ५२८]

(यो. र. । कासे)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध शिंगरफ और शुद्ध गन्धक समान भाग ले, इन सबकी कज्जली बनावे। उसमे गजपीपल, शुद्ध मीठातेलिया, सोंठ, धतूरे के बीज,

जायफल, जावित्री, लौंग, कालीमिर्च और अकरकरे का चूर्ण समान भाग मिलाकर ३ दिन तक अदरक के रस मे घोटें और ३–३ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—३–३ रत्ती। पीपल और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय, श्वास, और कफ रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पौष्टिक है। विभिन्न अनुपानों के साथ इसके सेवन से विविध स्थानों, धातुओं और ग्रन्थियों का पोषण किया जाता है। यह औषध क्षयरोग की सभी अवस्थाओं में शक्तिवर्धन के लिये देते रहने से रोगी अधिक क्षीणता से बचा रहता है और धीरे २ स्वास्थ्य लाभ करता है।

उन्मादभञ्जनो रसः [भा भै. र. ५३३]

(र. सा. सं. । उन्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चिरायता, कुटकी, कटेली, मूलैठी, इन्द्रजौ, चीता, खरेटी, पीपलामूल, खस, सुहांजने के बीज, निसोत, इन्द्रायण, वङ्गभस्म, चान्दीभस्म, अभ्रकभस्म और मूंगाभस्म। सब द्रव्य समान भाग लें। लौहभस्म सबके बराबर। सबका चूर्ण करके पानी मे घोटकर या तो २–२ रत्ती की गोलियां बनालें अथवा चूर्ण करके प्रयोग में लावें।

मात्राः—२ से ४ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से उन्माद, भूतोन्माद, अपस्मार, कृशता और दारुण रक्तपित्त का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध दाहनाशक, सहज रेचक, शोधक और विषनाशक है। इसका उपयोग ज्वर, उदरगत विष, वात, रक्तचाप की वृद्धि, नाडियो की विकृति, मस्तिष्क की अस्थिरता और वात तथा रज और तम द्वारा होनेवाले भ्रममे सफलता पूर्वक किया जाता है।

उदरघ्न रसः [भा. भै. र. ५२१]

(र. र. स. । १६ अ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म, त्रिकुटा, चीता, कूठ, मुसली, शुद्ध मीठा तेलिया और अजवायन। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर १–१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१ से २ रत्ती। रात को मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः— इसके सेवन से सब प्रकार के उदर रोगों का नाश होता है। यह औषध उदर रोगों को नाश करनेवाली, कृमिघ्न, आमशोषक, रेचक, दोषानुलोमक, विषनाशक, यकृत् प्लीहा की क्रिया को दूर करनेवाली और मूत्रल है।

सं. वि.— शास्त्रकारने इसका निर्देश उदर मे होनेवाले सभी रोगों पर किया है। उदररोग रक्तदोषज, द्वन्द्वज और त्रिदोषज, रक्तज, कृमिजन्य तथा आगंतुक सभी प्रकार के होते है। अष्टोदर रोग पर विचार न करके स्वाभाविक उदर की क्रियात्मक और रचनात्मक व्याधियों का सिंहावलोकन करे तो अन्त्र के प्रत्येक स्थल में उत्पन्न होनेवाले पाचक रसों की विकृति को प्रथम स्थान देना चाहिये। इन के अभाव मे वायु की वृद्धि होती हैं और इनकी अत्युत्पत्ति मे पित्त तथा कफ की बहुलता होती है तथा विविध प्रकार के आमजन्य और अम्लत्व युक्त रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वायु की प्रबलता से अनेक प्रकार के शूल, कोष्ठ बद्धता, मल शुष्कता और अन्त्रावरोध, आध्मान, उदावर्त आदि अनेक रोग हो जाते है। संक्षेप में "यह द्रव्य इन सब पर क्रिया करता है या नहीं" इसकी आलोचना करते हुये यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि यह वातनाशक, अग्निवर्धक, सहज रेचक और अन्त्र की शिथिलता को दूर करनेवाला है और अन्त्र को सक्रिय करके सभी पकार के विकारों को मिटाने में समर्थ है।

एकाङ्गवीर रसः [भा. भै. र. ५८५]

(वृ. नि. र. । वा व्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान— शुद्ध गन्धक, रससिन्दुर, कान्तलौह भस्म, वङ्गभस्म, सीसाभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, सोंठ, मरिच, पीपल। सब द्रव्य समान भाग लें। सबका चूर्ण करके त्रिफला, त्रिकुटा, संभालु, चीता, अदरक, सुहांजना, कूठ, आमला, कुचला, आक, धतूरा और अदरक के रस मे यथाक्रम २-२ भावनाये देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः— १ से ३ गोली तक। मधुके साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अर्धाङ्ग, गृध्रसी, विश्वाची, अपबाहुक आदि समस्त वातज रोगों का नाश होता है।

सं. वि.— यह योग वातनाडियों का पोषण करने मे बहुत ही प्रशस्त है, किसी भी स्थान मे वायु का प्रकोप हुवा हो अथवा किसी भी स्थान मे वातज व्याधि उत्पन्न हुई हो, इसका प्रयोग उसको सर्वथा निर्मूल करता है। यह विषनाशक, आमशोषक, रक्तवर्द्धक, मूत्ररेचक, व्रणनाशक, हृदयपोषक, कोष्ठशोधक, दोषानुलोमक तथा वातनाडी-उग्रता को दूर करनेवाला है। इसके सेवन से कण्डराओं, पेशियों, धमनियों, शिराओं और लसिकाओंमें

प्रकुपित वात उस स्थान से दूर हो जाता है। यह वायु द्वारा होनेवाले रक्तचाप की वृद्धि में प्रयुक्त किया जाय तो अवश्य लाभप्रद सिद्ध होता है।

एकादशायश रसः [भा. भै. र. ९१७३]
(र. चं.; र. र. । वृद्ध्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—लोहभस्म, शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हिङ्गुल, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, पुखराजभस्म, केसर, पीतलभस्म और सीसाभस्म १–१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियां मिलाकर खरल करे, तदनन्तर निम्न लिखित औषधियां के क्वाथ या रस की भावना देकर सुरक्षित रक्खे।

भावना द्रव्य—वायविडङ्ग, त्रिफला, हींग, अजवायन, सफेद जीरा, काला जीरा, सज्जीक्षार, जायफल, वच, काकडासिंगी, कालीमिर्चे, पीपल, गजपीपल, चव्य, धमासा, चीता और सोंठ।

मात्राः—२–२ रत्ती। उष्णजल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अण्डकोष की वायु, अन्त्रवृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, उरुमद्द और अण्डकोष के रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, शोषक, वात-कफनाशक, वीर्यदोषनाशक, क्षोभनाशक और मूत्रके विकार यथा मूत्रकृच्छ्र, वृक्कदाह, वृक्कशूल आदि का नाश करती है और अण्डवृद्धि के लिये बहुत ही उपयुक्त है।

इसके सेवन से अन्त्रवृद्धि, मेदज हो अथवा अन्य किसी प्रकार की, अवश्य धीरे २ नष्ट हो जाती है। समय अवश्य अधिक लगता है, परन्तु लाभ निश्चित होता है।

कनकसुन्दरो रसः [भा. भै. र. ९४३]
(रसे. सा. सं. । ज्वराति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध शिंगरफ, कालीमिर्चे, शुद्ध गन्धक, सुहागेकी खील, पीपल, शुद्ध मीठातेलिया और धतूरे के बीज। सब द्रव्य समान भाग ले। सबका चूर्ण बनाकर १ प्रहर तक भांग के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१ से २ गोली तक। छाछ, जल अथवा जीरे के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसको सेवन करने से संग्रहिणी, अग्निमान्द्य, ज्वर और प्रबल अतिसार का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध रोधक होने के अतिरिक्त पाचक, आमशोषक और अग्निवर्द्धक है। इसका सेवन पुरातन संग्रहिणी मे भी किया जाता है। क्षीणाग्नि मनुष्यों को, जिनको कालान्तर से अपक्व मल निस्सरण हो जाता है, दी जाय तो बहुत लाभप्रद सिद्ध होती है।

कफकुञ्जरो रसः [भा. भै र. ९५१]

(यो चि. म. । अ. ३)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सीसे की भस्म, शुद्ध पारा, काली मिर्च और शुद्ध मीठातेलिया। सब समान भाग ले। सबको एकत्र खरल करे। तदनन्तर देवदाली, कौंच और अकरकरे के रस की ७-७ भावनाये देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१ से २ गोली। अदरक के रस और पान के रस के साथ सेवन करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कफज और वातजरोग, उदरविकार तथा सन्निपात का नाश होता है।

सं. वि.—यह शोधक, कृमिघ्न, दोषानुलोमक और क्षोभ तथा शोथनाशक औषध है। इसके सेवन से उदर के वात कफज विकार शीघ्र नष्ट होते है।

कफकुठार रसः [भा. भै र. ९५२]

(र रा. सुं. । ज्व.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, त्रिकुटा, ताम्रभस्म और लौहभस्म समान भाग ले। कटेली के फल के रस, कुटकी के रस तथा धतूरे के स्वरस मे ३-३ पहर तक घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१-१ गोली पान मे रखकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह औषध श्लेष्मजज्वर नाशक है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, पाचक और विष नाशक है। आमाशयगत कफज विकारों मे इसका प्रयोग शीघ्र लाभप्रद सिद्ध होता है।

कफकेतु रसः [भा भै. र. ९५५]

(र. रा. सुं. । कास)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अकरकरा, शुद्ध मीठातेलिया और समन्दरफल १-१ भाग लें, कालीमिर्च २ भाग ले। इन सबको अदरक के रसमे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१ से २ गोली। गरम जल अथवा अदरक और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कफरोगो का नाश होता है। आमाशय और अन्त्र की शिथिलता, जडता और अति रसोत्पत्ति मे इसका सेवन युक्ति युक्त है।

कफचिन्तामणि रसः [भा. भै. र. ९६०]

(रसे. सा. स । कफ रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध शिंगरफ, इन्द्रजौ, सुहागे की खील, भांगरे के

बीज और काली मिर्च १–१ भाग ले तथा रससिन्दुर ३ भाग लेकर १ प्रहर पर्यन्त अदरक के रसमे घोटे। तदनन्तर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। अदरक और मधु अथवा पान के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज और कफज रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध मुखशोधक, कासनाशक, पाचक, और अग्निवर्द्धक है। कफ द्वारा होनेवाले गले के विकार यथा तौसिल वृद्धि, कण्डू, लालाग्रन्थिशोथ और कासनलिका अवरोध तथा शोथ और खांसी आदि रोगो पर इसका उपयोग लाभप्रद पाया गया है।

कर्पूर रसः [भा. भै. र. ९६५]
(भै. र. । अति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधाय—शुद्ध शिंगरफ, अफीम, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल और कपूर सब को समान भाग लेवे। तदनन्तर खरल करके पानी के द्वारा २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—अवस्थानुसार २ से ३ गोली तक। मधु, छाछ, जल तथा अन्य यथोचित अनुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरातिसार, अतिसार, छः प्रकार की संग्रहिणी और रक्तातिसार का नाश होता है।

सं. वि.—यह अतिसार, आमातिसार, प्रवाहिका और बालातिसार की प्रसिद्ध औषध है।

० कफकर्तरी

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जावित्री २ तोला, जायफल २ तोला, पुराना बांस ४ तोला, पुनर्नवामूल ४ तोला, कटेली के फल २ तोला और गांजे की भस्म २ तोला तथा अपामार्ग १ सेर। प्रथम अपामार्ग को कढाई मे डाले। तदनन्तर अन्य द्रव्यो को उसके उपर डाले और मन्दाग्नि से इन सब द्रव्यो की भस्म तैयार करले और तैयार होने पर खरल करके शीशीमे भरकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—२–२ रत्ती। पान मे रखकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—श्वास, कास, हिक्का आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध दीर्घकाल से आनेवाले श्वास और कास जिनमें वात प्राबल्य के कारण फुफ्फुस तथा कासनलिकाये शुष्क होकर संकुचित हो जाती है उनमें इसका सेवन बहुत ही उपयोगी है।

यह आक्षेपनाशक सरलतया कफको निकालनेवाली तथा सारक है।

० कल्पतरु रसः [भा. भै. र. ९६७]
(भा. प्र. । ज्व, र. रा सुं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १। तोला, शुद्ध गन्धक १। तोला, शुद्ध मीठा तेलिया १। तोला, मनसिल १। तोला, विमल (रूपामक्खी) भस्म १। तोला, सुहागे की खील १। तोला, सोंठ २॥ तोला, पीपर २॥ तोला और काली मिर्च १२॥ तोला ले। प्रथम पारद और गन्धक के अतिरिक्त अन्य द्रव्यो को बारीक पीस कर कपडछन करले और इसे अन्य बर्तन मे भरकर एक तरफ रख ले। खरल मे पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और उपरोक्त द्रव्यों के चूर्ण को इसमे मिलाकर २ प्रहर तक इसे घोटे। तदनन्तर अदरक के रस के साथ घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। अदरक के रसके साथ अथवा जल मे घोटकर पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह वात और कफज रोगो का नाश करता है। इसे अदरक के रस के साथ सेवन करने से वातकफज ज्वर, श्वास, खांसी, मुंह से पानी आना, शीत, अग्निमान्द्य और विषूचिका (हैजा) का नाश होता है। इसकी नस्य से कफ वातज शिर पीडा, अत्यन्त मोह और छींके रुकना आदि रोग नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध कफवात नाशक, अग्निवर्द्धक, दोषशामक, आमपाचक, ज्वरघ्न, कफघ्न और शीत को दूर करनेवाली है। इसका प्रयोग कफ द्वारा होनेवाले रोगो पर सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

कल्याण सुन्दरो रस [भा. भै र. ९७०]
(भै. र. । हृद्रोग.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रससिन्दुर, अभ्रकभस्म, चान्दीभस्म, ताम्रभस्म, सोनाभस्म और परिशोधित हिङ्गल। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। भलीभान्ति मिश्रित करे। मिश्रण को चीते के क्काथ मे १ भावना देकर हाथीशुण्डी के रस की ७ भावनाये दे। तदनन्तर १—१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। गरम पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से उरस्तोय (छाती के किसी भाग मे विशेष पानी का भर जाना यथा प्लुरिसी), हृद्रोग, वक्षजवात, छाती से खून पड़ना और फुफ्फुस रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह द्रव्य दोषशामक, विषनाशक, दाहनाशक, पोषक और श्लेष्मकलाओं के अन्दर होनेवाले एकज, द्वन्द्वज अथवा त्रिदोषज दोषो को दूर करनेवाला है। छाती के वातज

रोगों मे यथा वातफुफ्फुसावर्णप्रदाह, जलीय फुफ्फुसावर्णप्रदाह, हृदावर्णप्रदाह, श्वासकृच्छता, हृदावर्णकृच्छता आदि अनेक वायु द्वारा होनेवाले विकारों मे इसका प्रयोग किया जाता है।

कल्पलता वटी [भा. भै. र. ७४४]
(भै. र. । ग्रह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध शिंगरफ, धतूरे के बीज, प्रत्येक १२–१२ रत्ती, अफीम २६ रत्ती, सबको दूधमे पीस कर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इनका सेवन करने से और आहार, पान आदि में केवल दूध ही देने से तथा लवण और जल का त्याग करने से पुरानी संग्रहणी, दुस्साध्य शोथ, पुराना ज्वर और पाण्डु नष्ट होता है।

सं. वि.—यह योग संग्रहणी के लिये प्रसिद्ध और बहुत ही लाभप्रद है।

कस्तूरीभूषण रसः

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कस्तूरी, पीपल, दन्तीमूल, भांग के बीज, कपूर और काली मिर्चें। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर उसमे कपूर को मिश्रित करें और फिर कस्तूरी मिलावें। तत्पश्चात् अन्य सब द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण इसमे मिश्रित करके इसे ७ भावनाये अदरक के रसकी दे और तय्यार होने पर २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर प्रयोग मे लावे।

मात्राः—१ से २ गोली तक अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातकफज–मन्दाग्नि, पित्त–कफाधिक्य, घोर त्रिदोषज कास, श्वास, क्षय, उर्ध्वजत्रुगतरोग, शोथ और विषम ज्वर नष्ट होता है। यह सम्पूर्ण रोगनाशक वीर्य, ओज और बलको बढ़ानेवाली है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, सारक, पाचक, वात–कफ नाशक और कफ द्वारा उत्पन्न हुये उदरके अधिकतर रोगों को नाश करती है। उदरकी कलाओ को पुष्ट करके उनमे उत्पन्न हुये शोथको नाश करती है, और मन्दाग्नि नाश करके अजीर्ण द्वारा उत्पन्न हुये सर्वाङ्गशोथ को दूर करती है तथा दीर्घकाल से एकत्रित हुये आम और कफ को मल सहित अपने सारक गुणद्वारा निकाल देती है। इसके सेवन से प्रथम उत्तेजना होती है और अन्त मे नाडियों पर अवसाद का सा प्रभाव मालूम होता है, जिससे कफ द्वारा उत्पन्न होनेवाली शरीर–वेदना को शान्ति मिलती है।

कस्तुरी गुटिका [भा. भै. र. ७४६]
(नपुंसकामृत)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सुवर्णभस्म १ भाग, कस्तूरी २ भाग, चान्दीभस्म ३ भाग, केसर ४ भाग, छोटी इलायची ५ भाग, जायफल ६ भाग, वंगलोचन ७ भाग, जावित्री ८ भाग। प्रत्येक द्रव्य को उपरोक्त प्रमाण मे लेकर भलीभान्ति एकत्रित खरल करके ३–३ दिन तक बकरी के दूध और पानके रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१–१ गोली।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—(१) इसे मलाइ के साथ सेवन करने से शुक्र क्षय नष्ठ होता है।
(२) पान मे रखकर खाने से शैथिल्य (सुस्ती) नष्ट होता है।
(३) मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध पोषक, रक्तवर्द्धक, कण्ठशोधक, क्षुधावर्धक, संघातक, वीर्यवर्द्धक, रसायन तथा वाजीकरण है।

कम्पवातहरो रसः [भा. भै. र. ९६३]
(र. रा सुं. । वा. व्या)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा २५ तोला, ताम्बे की भस्म ५ तोला और शुद्ध गन्धक २५ तोला लेकर सबकी कज्जली करके जम्बीरी निम्बु और पान के रस मे घोटकर उसे ताम्बे के पत्रों पर लेप करदे। फिर शराव सम्पुट करके गजपुठ मे भस्म करें। इसके बाद इसे ५ प्रहर तक भूधर यन्त्र मे पकावे फिर चूर्ण करके उसके बराबर त्रिकुटे का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करे।

मात्राः—२ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन करने से अर्द्धाङ्ग वात और कम्पवात का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध हृद्य, आयुष्य, पोषक, वातनाडी शक्तिवर्धक, पाचक, दोषसंघात नाशक, उदरपोषक, अन्त्र शैथिल्य नाशक, नाडी उग्रता नाशक और मस्तिष्क की क्रिया शक्तिको बढानेवाली है। इसके सेवन से रक्तसचार–यंत्र, वातनाडी यंत्र और सम्पूर्ण शरीर को सक्रियता मिलती है।

काञ्चनाभ्र रसः [भा. भै. र. ९७२]
(र. र. । राज य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोने की भस्म, रससिन्दुर, मोतीभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म, हरीतकी चूर्ण, चान्दीभस्म, कस्तूरी और शुद्ध मन्सिल १।–१। तोला लेकर खरल करके पानी से २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। यथोचित अनुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इन्हें दोषानुसार यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से अनेक उपद्रव युक्त क्षय, खांसी, कफ, पित्त, २० प्रकार का प्रमेह और ८० प्रकार के वातज रोगों का अत्यन्त शीघ्र नाश होता है तथा बल, वीर्य की वृद्धि होती है और मेढ़ दृढ होता है। यह सुश्रुत प्रोक्त वाजीकरण उत्तम औषध है। इसके सेवन से काञ्चन के समान कान्ति और कामदेव के समान शरीर की कमनीयता हो जाती है। इसका सेवन प्रातःकाल करना चाहिये।

कामिनी विद्रावणो रसः [भा. भै. र. ९९०]

(भै. र. । वीर्यस्तम्भ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अकरकरा, सोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और चन्दन। प्रत्येक १।–१। तोला, शुद्ध हिङ्गुल और शुद्ध गन्धक ३–३ मासा और अफीम ५ तोला, सब द्रव्यों को भलीभान्ति मिश्रित करके ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शुक्रस्तम्भन होता है। यह कामिनी विद्रावक और वशीकरण है।

सं. वि.—यह औषध वाजीकरण उत्तेजक द्रव्यों के समूह से तैयार हुई है। अफीम के योग से स्तम्भन शक्ति परिपूर्ण है। ऐसी औषधियों का प्रयोग करते हुये रोगियों के बल और सात्म्य का अवश्य निरीक्षण कर लेना चाहिये। हृदय के रोगी, मस्तिष्क के रोगी और कोष्ठबद्धता के रोगियों पर ऐसी औषधियों का सेवन विचार पूर्वक किया जाय तो सङ्गत है। ऐसे द्रव्यों का सेवन करते हुये शरीर की पुष्टि की ओर ध्यान अवश्य देना चाहिये। घी, दूध और अन्य पौष्टिक पदार्थों का सेवन न करते हुये इन द्रव्यों का सेवन हेय गिनना ही ठीक है।

यह औषध अनुभूत है। वीर्यस्तम्भन के लिये इसकी उपादेयता सर्वथा अतर्क्य है।

कामदुधा रसः [भा भै. र. ९४८६]

(र यो. सा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गिलोय का सत ५ तोले तथा स्वर्णगैरिक और अभ्रकभस्म १।–१। तोला ले। तीनों को भलीप्रकार एकत्रित खरल करके सूक्ष्म मिश्रण बनावे।

मात्राः—३–३ रत्ती।

अनुपानः—(१) प्रदर मे गाय के दूध और राब के साथ या राब और चावलों के पानी के साथ।

(२) पित्तरोग में घी और राव के साथ अथवा गो दुग्ध और खांड के साथ।

(३) प्रमेह में पीपल के चूर्ण और मधु के साथ या चावलों के धोवन और राव के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे अनुपान भेद से बहुत से रोगोमे प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु प्रमेह मे यह विशेष उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध वात-पित्त, दाह और क्षय को नाश करनेवाली पोषक, शक्तिवर्द्धक, पित्तजशोथ नाशक तथा श्लेष्म-कला अन्तर्गत तन्तुशोथ को नाश करनेवाली, गर्भाशय का पोषण करनेवाली और बलबुद्धि, वर्द्धक तथा जीर्णज्वर नाशक है।

कामदुधा रसः [भा. भै. र. ९४८७]

(र. यो सा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मोतीभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, मुक्ताशुक्तिभस्म (मोती की सीप की भस्म), कौडीभस्म, शंखभस्म, गेरू और गिलोयका सत। प्रत्येक औषध समान भाग ले। सबको एकत्र खरल करके सूक्ष्म चूर्ण बना ले।

मात्रा—२-२ रत्ती। जीरे के चूर्ण और खांड के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जीर्णज्वर, भ्रम, उन्माद, पित्तरोग, अम्लपित्त और सोमरोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध दाहनाशक, शीतवीर्य, पोषक, रक्तशोधक, शरीरवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, बुद्धिवर्द्धक, हृद् दाहनाशक, हृदय पोषक, मस्तिष्क पोषक और वात-पितनाशक है।

इसको पित्तभूयिष्ठ सभी रोगो मे निस्संकोच प्रयुक्त कर सकते हैं। आधुनिक रूक्षोष्ण युग मे ऐसी शीत-स्निग्ध औषध सार्वजनिक उपयोग योग्य है।

कामधेनु रसः [भा. भै. र ९८३]

(भै. र. । शुक्रमेह)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, अभ्रकभस्म, सीसाभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, खपर्याभस्म और चान्दी भस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर कमल के रस मे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखाकर प्रयोग करे।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। कसेरू के स्वरस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह और विशेषकर शुक्र मेह, जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा का नाश होता है।

सं. वि.— यह औषध वीर्यक्षीणता के कारण होनेवाले क्षय मे विशेष लाभप्रद है।

प्रतिलोम क्षय मे इसका उपयोग वीर्य की वृद्धि करता हुवा अन्य धातुओ को यथाक्रम बढाता है। क्षय के सभी लक्षणो को दूर करता है। यह वीर्यवर्द्धक, वीर्यग्रन्थिपोषक और उत्तम रसायन द्रव्य है।

कामलाहर रसः [सिद्धयोग सग्रह]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, त्रिफला चूर्ण १६ तोला, यवक्षार ८ तोला, शुद्ध सज्जीखार ८ तोला और डमरूयन्त्र द्वारा उर्ध्वपातन किया हुवा नौसादर ८ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। उसमे अन्य द्रव्यो का मिश्रण करके सम्पूर्ण योग को ३ घण्टे खरल करे और सूक्ष्म चूर्ण होने पर प्रयोगार्थ शीशी मे भरकर रख ले।

मात्रा और अनुपानः—१–१ मासा। दिन मे ३ बार मक्खन निकली हुई छाछ के साथ।

उपयोग—कामला मे यह योग अच्छा लाभ देता है।

पथ्यः—रोगी को केवल मक्खन निकाली हुई छाछ और भात खिलावें तथा गन्ना, मौसमी, संतरे का रस और कच्चे नारियल का रस पिलावे।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

सं. वि.—यह योग शोधक, पाचक, भेदक, मूत्रल, पित्तशामक और क्षारीय होने के कारण पित्तका शोधक है। इसके सेवन से यकृत्प्लीहा के विकार, कामला, पाण्डु और पित्ताजीर्ण अवश्य शीघ्र नष्ट होते हैं।

कामाग्नि सन्दीपन रसः [भा. भै. र. ९८६]

(भै र. । ध्व. भं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिङ्गुल और शुद्ध मन्सिल। प्रत्येक ५–५ तोला लेकर अदरक, धतूरे के बीज, सफेद जयन्ती और भांगरे के रस की ७–७ भावनायें दे। तत्पश्चात् उसे सुखाकर कांचकी शीशी मे भरकर ६ दिन तक बालुकायन्त्र मे पकावें और शीशी के स्वांगशीतल होने पर औषध को निकाल ले तथा सूक्ष्म चूर्ण करके उसमें इलायची, जावित्री, कपूर, कस्तूरी, मिश्री, काली मिर्च और असगन्ध इनका समभाग मिश्रित चूर्ण औषध के बराबर मिश्रित करे।

मात्राः—२–२ रत्ती। नित्य प्रातःकाल दूध के साथ सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ओज, पुष्टि, बल और काम की वृद्धि होती है। यह अत्युत्तम रसायन और सभी इन्द्रियो को आनन्द देनेवाला है।

कालकूट रसः [भा. भै. र. ९४९९]
(र यो. सा , वै. चि । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध वत्सनाग १ भाग, शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध मनसिल ६ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, सुहागेकी खील ६ भाग, शुद्ध हरताल अथवा हरताल भस्म ९ भाग, चित्रकमूल ९ भाग, त्रिकुटा १२ भाग, त्रिफला १० भाग, शुद्ध हींग १ भाग और वच १ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर १-१ प्रहर अदरक, नीनागूल, जम्बीरी निम्बु, लहसन, मकोय, अर्कमूल, कलिहारी, धतूरे की जड, भंगरा, पान, अंकोलमूल, सुहाञ्जने की जड, पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ) और पञ्चमूल के रस या क्वाथ मे मर्दन करे। जब तैयार हो जाय तो १-१ रत्ती की गोलिया बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपरोक्त अनुपान के साथ इसका सेवन कराने से सगन्त ज्वर और सन्निपात का नाश होता है।

इसके खिलाने के बाद युक्तिपूर्वक स्नान कराना और शरीर पर चन्दन का लेप कराना चाहिये।

पथ्यः—दही, भात तथा खजूर के फल आदि और ताम्बूल चर्वण कराना चाहिये।

इस रस का निर्माण भगवान् महेश ने किया।

सं. त्रि.—यह औषध शोधक, विषनाशक, पाचक, स्वेदल, आक्षेपनाशक, अग्निवर्द्धक दोषानुलोमक, कफवातनाशक और स्वेद लाकर ज्वर नाश करने वाली है।

यह जीर्ण, त्रिदोषज तथा सन्निपातज ज्वर का नाश करती है। यह उग्र औषध है, अत: उग्र क्रिया करती है। इसके सेवन से दोष नष्ट हो जाते है तथा शरीर मे दाह होता है। दाह नाश के लिय सर्वाङ्ग मे चन्दन का लेप करना चाहिये तथा शीतलजल का उपचार करे।

० कालारि रसः [भा. भै. र. १००४]
(यो. चि । मिश्राधि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा ९ मासा, शुद्ध गन्धक १। तोला, शुद्ध मीठा तेलिया ९ मासा, पीपल ३॥। तोला, लौंग १ तोला, धतूरा ९ मासा, सुहागे की खील ९ मासा, जायफल, कालीमिर्च प्रत्येक १।-१। तोला और अकरकरा ९ मासा लेकर ३-३ दिन करीर, अदरक और निम्बु के रस मे घोटे।

मात्रा—१ से २ रत्ती। मधु अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे मर्दन, भक्षण और नस्य द्वारा सेवन करने से वातव्याधि और सन्निपात का नाश होता है।

सं. वि.—यह सद्य क्रियाकर योग है। ऐसी औषध अवश्य प्रत्येक सद्वैद्य को अपने पास रखनी चाहिये। इसका प्रयोग नस्य और मर्दन से भी किया जाता है, अत: यह बाह्य उपचार के लिये भी, ऐसी परिस्थिति मे जब रोगी चेतनाहीन हो, उपयुक्त है।

कालमेघनवायस [सिद्धयोग संग्रह]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, हैड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चित्रकमूल की छाल, प्रत्येक का कपडछन सूक्ष्म चूर्ण १—१ भाग, लोहभस्म या मण्डूर ९ भाग तथा कालमेघ के पञ्चाङ्ग का चूर्ण ९ भाग ले। सब द्रव्यो को एकत्र खरल करे। तदनन्तर मिश्रण को कालमेघ के स्वरस या क्वाथ की ७ भावना देकर तय्यार होनेपर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—३—३ रत्ती। जलके साथ।

उपयोग—जीर्ण विषमज्वर, ज्वरान्त दौर्बल्य, पाण्डुरोग और यकृत् वृद्धि मे इससे विशेष लाभ होता है। [सि. यो स से उद्धृत]

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, कृमिनाशक, ज्वरघ्न, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक तथा सहज रेचक है। इसके सेवन से वात—पित्त द्वारा उत्पन्न हुये उदर श्लेष्मकला, यकृत् और प्लीहा के विकार तथा अजीर्ण और रक्त हीनता आदि नष्ट होते है।

कासकर्तरी रसः [भा. भै. र. १००६]

(र. रा. सुं । कास)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, हैड ४ भाग, बहेडा ५ भाग, वासा ६ भाग लेकर चूर्ण करके उसे कीकर के रस की २१ भावनाये दे। चूर्ण करके प्रयोग मे लावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से खांसी का नाश होता है।

कास केशरी रसः [भा. भै. र. १००८]

(वृ. नि. र. । कासे.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गुल, कालीमिर्च, नागरमोथा, सुहागे की खील और शुद्ध मीठा तेलिया। प्रत्येक द्रव्य का समान भाग चूर्ण लेकर जम्बीरी निम्बु के रस मे घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से खांसी और श्वास का नाश होता है।

सं. वि.—यह वात कफ नाशक और अग्निवर्द्धक औषध है। इसके सेवन से वक्षगत वायु और कफ का संशोधन होता है और अङ्गो की पुष्टि होती है।

कासकुठार रसः [भा. भै. र. १००७]
(र. रा. सु । कासे ।

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गुल, कालीमिर्च, शुद्ध गन्धक, त्रिकुटा और सुहागे की खील बराबर २ लेकर चूर्ण करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे २ रत्ती की मात्रानुसार अदरक के स्वरस के साथ सेवन कराने से दारुण सन्निपात, अनेक प्रकारकी खांसी और शिरोरोग का नाश होता है।

मात्राः—२ रत्ती। मधु के साथ।

सं. वि.—यह औषध कण्ठ, कासनलिका, नासिका, स्वरादिशोधक है। वात और कफनाशक है, इसके प्रयोग से वक्षावरुद्ध वातकफ शीघ्र नष्ट होते है।

कास संहार रसः [भा. भै र. १०११ [
(र. सा सं । कास)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शंखभस्म, सुहागे की खील, लौहभस्म, कालीमिर्च, कूठ, तालीसपत्र, जायफल और लौंग। प्रत्येक का १।-१। तोला चूर्ण लेकर भलीभान्ति खरल मे मिश्रित करे। इसे मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी भेद), भांगरा, सभालू, मकोय, गूमा, शालपर्णी, ग्रीष्मसुन्दर (गीमा), भारंगी हरड और वासे के पत्तो के १।-१। तोला रस मे घोटकर ५-५ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१-१ गोली।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे वासा, सोंठ और कटेली के रस के साथ सेवन कराने से वातज, पित्तज, कफज और पुरानी खांसी, प्रबल श्वास और अरुचि का नाश होता है, तथा बल, वर्ण, सौन्दर्य, पुष्टि और कान्ति की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, दोषानुलोमक, कण्ठशोधक और अग्निसंदीपक है। इसके सेवन से विभिन्न स्रोतो मे अवरुद्ध दोषो का क्षय होता है।

कासारि रसः [भा भै. र. १०१४]
(र रा. सुं । कासे)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अभ्रकभस्म, रससिन्दुर, तीक्ष्ण लौहभस्म और ताम्रभस्म बराबर बराबर लेकर कसौंदी, त्रिफला, अगस्ति और अम्लवेतस के रस मे घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली । मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस के सेवन से पांचो प्रकार की खांसी नष्ट होती है ।

कारुण्य सागरो रसः [भा. भै. र. ९९२]

(रसे. सा. सं. । ज्वरातिसार.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और अभ्रकभस्म ४ भाग लेकर १ दिन पर्यन्त सरसो के तेल मे घोटकर सरसो के तेल मे १ प्रहर पकावे । इसी तरह १ दिन भांगरे की जड के रस में खरल करके १ प्रहर पर्यन्त भांगरे के रस मे पकावे । इसके बाद उसमे १–१ भाग सज्जीक्षार, सुहागे की खील, जवाखार, पाञ्चो नमक, शुद्ध मीठातेलिया, चीता, जीरा और बायविडङ्ग का चूर्ण मिलावे ।

मात्राः—२ से ४ रत्ती । उष्णजल अथवा यथोचितानुपान के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से ज्वर रहित, ज्वर सहित, शूल, रक्त और शोथ युक्त अतिसार, निरामातिसार, संग्रहणी और सन्निपातातिसार आदि समस्त अतिसारो का नाश होता है । यह अनुपान बिना भी सफलता देती है ।

सं. वि.—यह औषध रूक्ष, शीत और सूक्ष्म गुणो द्वारा प्रकुपित वायु, और अम्ल तथा उष्ण गुणों द्वारा प्रकुपित पित्त तथा आमदोषो का नाश करती है । कोष्ठाग्नि को स्थिर करके दोषों का नाश करती है । अन्त मे किसी प्रकार के विकारो को न छोडती हुई अतिसार को रोकती है ।

कालचक्रो रसः [भा. भै र. ९९६]

(र. रा. सुं. । यक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, सीसाभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध नीलाथोथा, और सुहागे की खील २–२ मासे तथा ताम्बे और शङ्ख की भस्म ८–८ मासा लेकर चूर्ण करके उसे ३६ मासा कौडियो मे भरकर उनका मुह सुहागे से बन्द करके शराब सम्पुट करके पुट लगा दें । फिर स्वाङ्गशीतल होने पर निकल कर आक के पत्तो के रस मे घोटकर शराब सम्पुट करके पुट लगावे । अन्तमे इसका चूर्ण करके इसमे समान भाग काली मिर्च का चूर्ण और इस सब द्रव्य से ४ गुना शुद्ध गन्धक मिलाकर खरल करके रक्खे ।

मात्राः—२ से ४ रत्ती । (शास्त्रोक्त मात्रा ५ मासा) । घी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपरोक्त मात्रानुसार २१ दिन तक घी के साथ सेवन करने से असाध्य (कष्टसाध्य) राजयक्ष्मा का अवश्य नाश हो जाता है ।

सं. वि.—यह द्रव्य जन्तुघ्न है। विषघ्न, रक्तदोषान्तक और दुष्ट दोषान्तक है। कीटाणुओं द्वारा होनेवाले यक्ष्मा में इसका प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होना चाहिये। यह औषधि रोगों की ऐसी अन्तिम अवस्थामें, जिनमें विषज और कीटाणुज विकारों का संशय होता है, प्रयुक्त की जाय तो अवश्य लाभप्रद सिद्ध होनी चाहिये।

नोटः—आधुनिक पद्धति द्वारा इसकी परीक्षा प्रयोगशाला में की जाय तो सम्भवत इसकी उपादेयता प्रसिद्ध, प्रचलित द्रव्यों से बढ़ जाय।

कालाग्नि रसः [भा. भै र ९९९]

(र र. । गर्ग.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागभस्म, नीलाथोथा भस्म, जीरा और सेंधानमक। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सबको मिश्रित करके कड़वी तोरी के रस में घोटे।

मात्राः—२-२ रत्ती। मधु और पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके खाने और लेप करने से भगन्दर का नाश होता है।

कासश्वास विधूननो रसः [भा. भै. र. १०१०]

(वृ. नि. र । कास)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, जवाखार ३ भाग, सौंचल (काला नमक) ४ भाग और कालिमिर्च ५ भाग लेकर चूर्ण बनावे।

मात्राः—३ से ४ मासे। मधु अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह पांच प्रकार की खांसी और पांच प्रकार के श्वासो का नाश करता है।

सं. वि.—यह औषध, कफ वात नाशक, अग्निवर्द्धक, कण्ठशोधक और आध्मान नाशक है।

कार्श्यहर लोहम् [भा भै र. ९९३]

(र रा. सु., रसे. सा. सं, । रसा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—श्वेत पुनर्नवा, दन्ती, असगन्ध, त्रिफला, त्रिकुटा, त्रिमद, (वायविड्ङ्ग, चीता, और नागरमोथा), शतावर और खरैटी के साथ लोहभस्म सिद्ध करे। लोहभस्म में इनका समान भाग चूर्ण मिलावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे भांगरे के रस के साथ सेवन करने से कृशता अवश्य नष्ट होती है। इसके समान समस्त रोगों का नाश करनेवाला दूसरा लोह नहीं है। यह दीपन, बल, वर्ण और अग्निवर्द्धक तथा अत्युत्तम वृष्य है।

सं. वि.—यकृत और प्लीहा की वृद्धि मे, अन्त्र की वातज तथा पितज शिथिलता में और जीर्ण अजीर्ण में इसका प्रयोग बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है।

किरातादि मण्डूर [भा. भै. र. १०१६]

(वृ. नि. र. । पाण्डु)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—चिरायता, देवदारु, नागरमोथा, गिलोय, कुटकी, पटोलपत्र, धमासा, पित्त पापडा, नीमकी छाल, त्रिकटु, चीता, त्रिफला और वायविडङ्ग। प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर भलीभान्ति चूर्ण बनाकर मिश्रित करे और सबके बराबर लौहभस्म इसमें मिलाकर घी और शहद के साथ २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—२ से ४ रत्ती।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे यथोचितानुपान के साथ निरन्तर सेवन करने से पाण्डु, हलीमक, सूजन, प्रमेह, ग्रहणी, श्वास, खांसी, रक्तपित्त, अर्श, उरूग्रह, आमवात, व्रण, गुल्म, कफज विद्रधि और श्वेतकुष्ठ का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध जीर्णज्वर, नवीनज्वर, कीटाणुज्वर आदि ज्वरो से होनेवाले प्लीहा तथा यकृत् विकारो को शान्त करती है। यह रक्तवर्द्धक और दोषानुलोमक है। ज्वर के बाद रक्तवृद्धि के लिये इसका उपयोग बहुत ही लाभप्रद होता है। वृक्कुम्पीप्रदाह में इसका प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होता है।

कीटमर्द रस [भा. भै. र. १०१८]

(र. र. स. । अ. २०; रसे. सा. सं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, अजमोद ३ भाग, बायविडङ्ग ४ भाग, शुद्ध कुचला ५ भाग और पलास पापडा (ढाकके बीज) ६ भाग, लेकर चूर्ण करें।

मात्राः—४ मासा। मधु तथा नागरमोथे के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से कृमि नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक, वातानुलोमक और अपथ्य के दोषों को दूर करनेवाली है।

कुब्जविनोद रस [भा. भै. र. १०१९]

(र. रा. सु । वा. व्या., र. चं. । वातरो)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हेड, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध हरताल, कुटकी, त्रिकुटा, बोल (मुरमुकी) और शुद्ध जमालगोटा बराबर २ लेकर चूर्ण करके भांगरे, थुहर (सेंड) और आक के स्वरस में घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से हृदयकी पीडा, पसली का दर्द, आमवात, आढयवात, कमर का दर्द और स्थौल्य (चरवी का बढ़ जाना) नष्ट होते हैं। यह अग्नि प्रदीप्त करता है।

सं. वि.—यह औषध दोषशामक, सहज रेचक, आमनाशक, वातानुलोमक, शूलनाशक, मेदनाशक और अग्निवर्द्धक है। इसके सेवन से आमदोष के क्षय के साथ साथ आम संग्रह द्वारा होनेवाले आमवातज, आमज तथा वातज विकार नष्ट हो जाता है। आमसंग्रह में इसका प्रयोग प्रशस्त है।

कुमार कल्याण रस [भा. भै. र. १०२०]

(भै. र. । बालरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लौह-भस्म और सोनामक्खीभस्म समान भाग ले। सबको एकत्र खरल करे। तदनन्तर घीकुमारी के रस मे घोटकर १/२ १/२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१/२ से २ गोली तक अग्निबलानुसार। मिश्रीयुक्त दूध मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे बालक की अवस्थानुसार मिश्रीयुक्त दूध के साथ सेवन कराने से ज्वर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक, ग्रहदोष, स्तन्यग्रहण न करना (दूध न पीना), कामला, अतिसार, दुबलापन और पाचन विकार आदि अनेक बालरोग नष्ट होते है।

सं. वि.—प्रायः देखा जाता है कि स्तन्य दोष के कारण, दांत निकलते समय और अन्न सेवन काल मे शिशुओं को पाचन विकार सताते है, इससे उनके पेट बड़े हो जाते है, यकृत्प्लीहा की वृद्धि हो जाती है और शरीर हाडपंजिर निकल आता है। और बच्चा दिनो दिन क्षीण बल, अग्नि और काय दीखने लगता है ऐसी स्थिति मे उसे सुपाच्य, अग्निदीपक, रक्तवर्द्धक, वर्णकारक, आमनाशक और अपथ्य दोषनाशक औषध देनी चाहिए। कुमार कल्याण बालकों के लिए सर्वश्रेष्ठ औषध है।

कुमुदेश्वर रस [भा. भै. र. १०२३]

(र. रा. सुं. । क्षय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म, रससिन्दुर, शुद्ध गन्धक, मोतीभस्म, शुद्ध पारा, सुहागे की खील, चान्दीभस्म और सोनामक्खीभस्म प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर एकत्र खरल करें। कांजी में घोटने के बाद गोला बनावे। तदनन्तर उसपर कपडमिट्टी करके सुखाने के बाद लवणयन्त्र मे एक रात पकावे अथवा लघुपुट देवें।

मात्राः—२–३ रत्ती। काली मिर्च के चूर्ण और घी मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से राजयक्ष्मा का नाश होता है।

सं. नि.—सभी द्रव्य शक्तिवर्द्धक, अग्निवर्द्धक, रक्तवर्धक, और दोषशामक है। अनुलोम या प्रतिलोम धातुओं के क्षय में इसका प्रयोग बहुत ही हितप्रद सिद्ध होता है। यह जन्तुघ्न भी है अत. सभी प्रकार के क्षयोंमे इस का प्रयोग निर्विवाद किया जा सकता है। इसका प्रयोग फुफ्फुस क्षय को बहुत शीघ्र दूर करता है, ज्वर तो कुछ दिन के प्रयोग से ही नष्ट हो जाता है। यह लेखक का अनुभूत योग है। इसके प्रयोग से जन्तुओ का नाश होता है, यह भी सिद्ध है।

कुर्स कहरुवा [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गिलेअरमनी, निशास्ता (गेहूं का सत्व) और गुलाब के फूल प्रत्येक १।–१। तोला, कहरुवा की पिष्टी और हब्बुलास प्रत्येक १।।।–१।।। तोला, केकडा (मीठे पानी का अन्तर्धूम जलाया हुवा), कुलफे के बीज, सफेदचंदन, लौकी (कद्दु) के बीज का मग्ज और ककडी (खीरा) के बीज का मग्ज प्रत्येक ३–३ तोला, गिलेमखतुम १ तोला, प्रवाल की पिष्टी, कतीरा, बंशलोचन और सादनज का (धोया हुवा) चूर्ण प्रत्येक १॥–१॥ तोला, बबूल (कीकर) का गोंद और मुल्हेठी का सत्त २–२ तोला तथा कपूर १॥ मासा ले। सबका बारीक कपडछन चूर्ण करके बिहीदाने के लुआब मे पीसकर ५–५ रत्ती की टिकिया बनाकर सुखाकर रख लेवे।

मात्रा और अनुपान—१–२ टिकिया। पेठे के ताजे निकाले हुये १० तोला रस से साथ दे।

उपयोग—यह योग उरःक्षत के रक्त को बन्द करने के लिये उत्तम है। इसके सेवन से कफके साथ मिलकर आता हुवा या अकेले खांसने से आता हुवा रक्त बन्द हो जाता है। [सि यो. स. से उद्धृत]

कुष्ठ कुठार रस [भा. भै. र. १०२५]

(र. रा. स. । अ. २०, रसे. चि. म. । ९ स्तवक, र. प्र. सु; । अ. १८; र. का. धे.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, गूगल, त्रिफला, शुद्ध कुचला, चीता और शुद्ध शिलाजीत । प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ५-५ तोला ले । करंजवे की गिरीका चूर्ण ०। सेर और ताम्रभस्म ०। सेर लेकर सबको शहद और घी मे मिलाकर चिकने वर्तन मे भरकर रख दे ।

मात्राः—(शास्त्रोक्त मात्रा ८ मासे)-२ से ४ रत्ती मधु मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे ८ मासे की मात्रानुसार सेवन करने से गलत्कुष्ट और अन्य सब प्रकार के कुष्ठो का नाश होता है ।

पथ्यः—घी, शहद और मिश्री एवं इसके अभाव मे गुड युक्त भात ।

यदि इसके सेवन से अत्यधिक ताप लगता हो तो पाताल गरुडी (कड़वी तोरी का भेद) की जड़, चोर होली और धनिये का चूर्ण १। तोला प्रमाण मे लेकर मिश्री मिलाकर खिलावे अथवा अत्यन्त ताप की शान्ति के लिए नागवला की जड़का चूर्ण शहद और घी मे मिलाकर चटावे ।

नोटः—इस प्रकार के प्रयोगो की सफलता आतुरालयो मे प्रयोग करने से शीघ्र जानी जा सकती है ।

कुष्ठ शैलेन्द्र रस [भा. भै र. १०३०]

(लोह) (र. र. । कुष्ठ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हरताल, कालीमिर्च, कूठ, कांच (या कांच लवण), सुहागे की खील, हल्दी, वच, संभालू, नीम और करले के बीज या पत्ते । प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला ले । गूगल १० तोला, बावची ५ तोला, शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला और त्रिफले के जल मे शुद्ध किया हुवा लोह चूर्ण १० तोला लें । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे । तदनन्तर अन्य द्रव्यो के चूर्ण को उसमे मिलाकर ६-६ मासे की गोलियां बनाले ।

मात्राः—२ से ४ रत्ती । गोमूत्र मे मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस के सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, खुजली, दाद, विद्रधि, गण्डमाला, गर्दभिका, तिल्ली, गुल्म, उदररोग, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, पाण्डु, और आमवातज शोथ का नाश होता है, एव मेधा, आयु और वल की वृद्धि होती है ।

काल, देश, आयु और अग्निवल का विचार करके इसकी मात्रा घटाई और वढाई भी जा सकती है ।

(१) वायु की प्रधानता मे सोंठ और गिलोय के तथा (२) पित्त की प्रधानता में पटोल पत्र के और मूंग के यूप अथवा पितपापडे के क्वाथ के साथ देना चाहिए। (३) कफ की प्रधानता में अंकोट के पत्तो के रस और पंवाड के रस के साथ देना चाहिए।

केवल वातिक या पैत्तिक रोगो मे गोमूत्र न देकर बकरी का दूध देना चाहिए।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, अपथ्य दोषनाशक, आमशोषक, अग्निवर्धक और वातानुलोमक है। दीर्घकाल से आमदोष तथा दुष्ट वायु द्वारा विकृत यकृत्, प्लीहा और अन्त्र को निरामय बनाती है और रक्त की वृद्धि करती है। यह रक्त दोषनाशक है।

कृमि कुठार रस [भा. भै. र. १०३८]

(र. रा. सुं. । कृमि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कपूर ८ भाग, इन्द्रजौ, त्रायमाणा, अजमोद, वायविडङ्ग, शुद्ध शिगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया और केशर। प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग लेकर चूर्ण करके १ दिन भांगरे के रस मे भलीभांति घोटे। फिर १ भाग ढाक के बीज मिलाकर मूसाकन्नी और ब्राह्मी के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१ से २ गोली अवस्थानुसार धतूरे के रस के साथ अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन कराने से ७ प्रकार के कृमि नष्ट होते है।

सं. वि.—यह योग दोषशामक, रक्त दोषनाशक, आमनाशक, दाहनाशक, उदर वातनाशक, कृमिनाशक तथा ज्वरघ्न है। दीर्घकाल तक कृमि विकार से पैदा हुई अन्त्र की शिथिलता और अन्त्र की वात नाडियो की विकृतावस्था को दूर करने के लिए यह बहुत ही उपयुक्त औषध है।

कृमिमुद्गर रस [भा. भै. र. १०४३]

(र. रा. सुं । कृमि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, अजमोद ३ भाग, वायविडङ्ग ४ भाग, शुद्ध कुचला ५ भाग और ढाक के बीज ६ भाग ले। सबका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण बनाले।

मात्रा तथा शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे ३ रत्ती की मात्रानुसार शहद मे मिलाकर चाटे और ऊपर से नागरमोथे का क्वाथ पिये। इसे ३ दिन तक सेवन करने से कृमि और उनसे उत्पन्न होनेवाले रोग नष्ट होते है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

सं. वि.—यह औषध कृमि, कास और आमनाशक तो है ही, इनके अतिरिक्त यह अन्त्र के आक्षेप को नाश करने में बहुत ही उपयुक्त है। जीर्ण–मल के अन्त्र मे पडे रहने

से अन्त्र मोडो पर जो क्षोभ द्वारा वायु उत्पन्न होती है, उसको स्थानभ्रष्ट करने और धीमे २ अन्त्रमोडों को सक्रिय करने में इस की क्रिया बहुत ही लाभप्रद होती है।

कृमिहर रस [भा. भै. र. १०४६]
(र. सा. सं. । कृमि)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोद, शुद्ध मनसिल, ढाकके बीज और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। तदनन्तर १ दिन देवदाली के रस मे घोंटे।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मिश्री युक्त शालपर्णी के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कृमिरोग नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, वातानुलोमक और सहज रेचक है। इसका सेवन करते अन्त्र में दूषित विषो का या आम का इकट्ठा होना कभी सम्भव नहीं हो सकता।

कृष्ण चतुर्मुख रस [भा. भै. र. १८८१]
(र. चि. म. । स्त ११, भै. र., र चं, रसे. सा सं., धन्व., र. रा सु. । वातव्या.; रसे. चि. म । अ. ८, र. का धे, आ. वे. प्र. । अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक ४–४ भाग तथा स्वर्णभस्म १ भाग लेकर कज्जली बनावे। फिर उसे १–१ दिन घृतकुमारी के रस, त्रिफला के क्वाथ, तुलसी के रस और ब्राह्मी के रस मे घोटकर गोला बनावे। इस गोले को अरण्ड के पत्तो मे लपेटकर अनाज के ढेर मे दवा दे और ३ दिन बाद निकालकर पानी के साथ घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली त्रिफला के चूर्ण और मधु के साथ अथवा अकेले मधु के साथ या यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वलि (शरीर की झुर्रियां), पलित (बाल सफेद होना), ११ प्रकार के क्षय, पाण्डु, प्रमेह, खांसी, शूल, मन्दाग्नि, हिचकी, अम्लपित, सब प्रकार के व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि अपस्मार, उन्माद, सब प्रकार के अर्श, त्वग्रोग आदि नष्ट होते है।

यह पौष्टिक, आयुवर्द्धक और स्त्रियो को सन्तान प्रद है।

सं. वि.—यह औषध उच्च कोटि की वातनाशक और रसायन है। इसके सेवन से जीर्ण शीर्ण रक्तवाहिनियो और संज्ञावाहिनियो के दोष दूर होकर उनमे नवीन शक्तिका संचार होता है जिससे रक्तचाप की वृद्धि आदि विकार नष्ट होते है। यह मस्तिष्क पोषक है तथा इसके सेवन से नींद आती है।

यह औषध उदर के वात–पित्तज विकारो के लिये बहुत ही हितकर है। दीर्घकाल के उदर व्रण मे यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है। पुरातन तथा नवीन अम्लपित्त मे जहां आमाशय या ग्रहणी मे व्रण अथवा शोथ की आशंका हो और कोथ यदा–कदा होता रहता हो, इस औषध का, पिप्पल्यादि लोह के साथ १ से २ रत्ती तक के प्रमाण में मिलाकर, त्रिफला और मधु के साथ अथवा श्वेत कूष्माण्ड और मधु के साथ सेवन कराने से अवश्य लाभ होता है।

यह भ्रम, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार आदि के लिये लाभप्रद है।

केसरादि (देवकुसुमादि) रस [आ. औ.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—केसर, रसकपूर, शर्करा, चन्दन, लौंग और जावित्री। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। एकत्रित खरल करके सूक्ष्म चूर्ण होने पर जल के साथ घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। घी के अन्दर रखकर अथवा कैपशल में भरकर अथवा मक्खन के बीच में रखकर मुख मे रखकर निगल जाये। मुख से इसका स्पर्श न होने दे इस प्रकार से इसे प्रयोग मे लावे।

उपयोग—फिरङ्ग, उपदंश, फिरङ्गजन्य आमवात तथा फिरङ्ग से होनेवाले अन्य विकारों में इसका उपयोग लाभप्रद होता है।

सं. वि.—यह औषध कीटाणुनाशक, विषनाशक, रक्तशोधक और जडतानाशक है।

क्रव्याद रस [भा. भै. र. १०५२]

(र. रा. सुं., र. र. स. । अ. १९; यो. र. । अजी. र. चं., रसे. चि. म. । ९ स्तवक.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला एवं तांबा और लौहभस्म २॥–२॥ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यो के चूर्ण को मिलाकर अग्नि मे पिघलाने के बाद अरण्ड के पत्तो मे ढाल दें और उसकी यथाविधि पर्पटी बनावे। तत्पश्चात् इसको लोहे के वर्तन मे रखकर पक्के जम्बीरी निम्बु के ६। सेर रस मे मन्दाग्नि पर पकावें। जब रस सूख जाय तो उसे पञ्चकोल, बिजौरा और अमलवेत के ६। सेर रस की भावना दे। तत्पश्चात् सबके बराबर सुहागे की खील, बिडलवण सुहागे से आधा और कालीमिर्च सुहागे के बराबर मिलाकर चणकाम्ल की ७ भावना दे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त मात्रा २ मासा) २ से ४ रत्ती। भोजन के बाद। सैन्धव मिश्रित छाछ के साथ। अधिक मात्रा मे किया गया भोजन इसके सेवन से २ प्रहर मे पच जाता है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कृशता, स्थूलता, विपदाप, परिश्रान्ति, आम, गुल्म, तिल्ली, संग्रहिणी, वायु, कफ, शूल, वातग्रन्थि और उदर रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह मल को पकाकर नीचे की ओर प्रवृत्त करता है।

० खञ्जनिकारि रस [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध कुचले का कपडछन चूर्ण, मल्लसिन्दूर और रौप्यभस्म सम भाग ले। प्रथम मल्लसिन्दूर को वारीक पीसे फिर उसमे अन्य सब द्रव्य मिलाकर अर्जुन वृक्षकी छाल के क्वाथ की ७ भावनाये देकर मूंग के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा ले।

मात्रा और अनुपान—२-२ गोली। सवेरे साम गाय के दूध या दशमूल के अनुपान से देवे।

उपयोग—अर्दित, खञ्जवात और पुराने पक्षाघात मे इससे अच्छा लाभ होता है।

[सिद्धयोग सग्रह से उद्धृत]

खर्पर रसायन [भा. भै. र. ११०५]
(र. र. स. । अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—खपरियाभस्म और कान्तिसारलौहभस्म को समान भाग लेकर वारीक चूर्ण करे।

मात्रा तथा सेवन विधि—इस चूर्ण को ८ गुंजा प्रमाण मे लेकर रात को लौहके पात्र मे त्रिफले के क्वाथ मे भिगो दे। प्रात काल इसे साधारण गरम करके इसमे तिल का तेल मिलाकर पिये। (तिल के तेल की मात्रा १ से २ तोले तक ली जा सकती है।)

शास्त्रोक्त गुणधर्मः— इसके सेवन से मधुमेह, पित्त, क्षय, पाण्डु, सूजन, गुल्म, रक्तगुल्म, प्रदर, सोमरोग, सब प्रकार के योनिरोग, विषमज्वर स्त्रियो का रज शूल (मासिक श्राव के समय होनेवाला शूल), खांसी, श्वास और हिचकी का नाश होता है।

खर्पर सत्व रसायन

इसके बनाने मे खर्पर भस्म की जगह खर्परसत्वभस्म का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग विधि गुण खर्पर रसायन के समान है।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक यथा दोषानुपान के साथ।

११९ गजकेशरी रस [भा. भै र. १५०१]
(वृ. नि र. । शू. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१ भाग शुद्ध पारद और २ भाग शुद्ध गन्धक लेकर एक प्रहर तक भलीभान्ति खरल करे। इस कज्जली को इसके ही समान वजनी ताम्र सम्पुट मे

बन्द करके उसे मिट्टी के शरावों मे ऊपर नीचे सेधानमक का चूर्ण रखकर वन्द करदे और कपड मिट्टी करके सूखने के बाद गजपुट मे फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर बाहर निकालकर ताम्रके सम्पुट (प्यालियो) सहित खरल कर लें।

मात्राः—२ रत्ती। पान मे रखकर। ऊपर से हींग, सोठ, कालीमिर्च, जीरा तथा वच का सम भाग मिश्रित १। तोला चूर्ण उष्ण जल के साथ सेवन करना चाहिए।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के असाध्य (कष्टसाध्य) शूल भी नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह सद्यः क्रियाकर योग है। यह औषध अन्त्र की कलाओ, पेशियों, ग्रन्थियो और वात नाडियों को, उदर मे प्रवेश करते ही, सक्रिय कर देती है और दोषो के किन्ही भी कारणो से होनेवाले शूल का नाश करती है। यह हृद्य है। छाती के दर्द मे भी समान लाभप्रद सिद्ध होती है।

गदमुरारि रस [भा. भै. र. १५०७]

(र. रा. सुं. । उ. खं. ज्व.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, त्रिकुटा, सुहागेकी खील, सोठका चूर्ण, हैडका चूर्ण और शुद्ध जमालगोटा। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। तदनन्तर पानी मे पीसकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—२ से ४ गोली जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस से ज्वर शीघ्र नष्ट होता है।

सं. वि.—यह आमनाशक, दोषानुलोमक और रेचक औषध है। आमाशय और पक्वाशय मे एकत्रित हुये दोषो को निकालने में यह शीघ्र क्रिया करती है।

गदमुरारि रस [भा. भै. र. १५०८]

(वृ. नि. र., र. का. धे. । ज्व. चि, र. चिं, म. । स्त. ११)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नाग (सीसा) भस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म १—१ भाग ले तथा शुद्ध मीठा तेलिया आधा भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर भलीभान्ति घोटे।

मात्राः—१ रत्ती। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—आमज्वर नाशक है।

सं. वि.—यह प्रबल आमशोषक औषध है। मल को साफ लाती है और उदर को परिशुद्ध कर देती है। इसके प्रयोग से आम का परिपाक होते ही ज्वर का नाश हो जाता है।

गर्भचिन्तामणी रस [भा. भै. र. १५५४)
(र. रा. सुं., र. सा. सं.; र. र. । सूतिका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, चांदीभस्म और लौहभस्म १।-१। तोला, अभ्रकभस्म ३ कर्ष (३।।। तोला) और कपूर, वंग भस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखरू, शतावर तथा खरैटी और कंघी की जड १।-१। तोला लेकर पानी में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावे ।

मात्राः—१ से २ गोली । दूध अथवा द्राक्ष के क्वाथ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सन्निपात और विशेषत गर्भिणी स्त्रियों में होनेवाला सन्निपात, गर्भिणी का ज्वर, दाह तथा प्रदर नष्ट होते है । गर्भिणी यदि इसका सेवन करती रहे तो प्रसूत रोग के होने की सम्भावना मिट जाती है ।

गर्भपाल रस [भा. भै. र. १५५७]
(र. चं. । स्त्री. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गुल, नागभस्म, वगभस्म, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, धनिया, जीरा, चव्य, मुनक्का और देवदारु १-१ तोला लेकर उसमे ¾ तोला लौहभस्म मिलावे । तदनन्तर सबको ७ दिन तक विष्णुक्रान्ता (कोयल) के रसमें घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावे ।

मात्राः—१-१ गोली । प्रात' सायं द्राक्ष के क्वाथ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—गर्भपाल रस को गर्भ के प्रथम मास से आरम्भ कराके नवम मास पर्यन्त सेवन कराने से गर्भिणी के समस्त रोग नष्ट हो जाते है ।

गर्भपीयूषवल्ली रस [भा. भै. र. १५५६]
(भै. र. । स्त्री; धन्वं. । सूति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, लौहभस्म, चांदी भस्म, सोनामक्खीभस्म, हरतालभस्म, बगभस्म और अभ्रकभस्म । प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले, प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे । तदनन्तर अन्य द्रव्यो के चूर्ण को उसमे मिलावे । तत्पश्चात् उस मिश्रण को क्रमशः ब्राह्मी, वासा (अडूसा), भांगरा, पित्तपापडा और दशमूल के रस या क्वाथ की पृथक पृथक ७-७ भावनाये दे, और तैयार होने पर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१-१ गोली । प्रात' सायं मधु तथा द्राक्ष के क्वाथ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस गर्भिणी के ज्वर, दाह, प्रदर और सूतिका रोगो को नष्ट करता है ।

सं. वि.—जिन गर्भिणियो मे रक्त का अभाव हो, या गर्भावस्था में रक्त का अभाव हो जाता हो, अथवा जिनमे मूत्रपिण्ड या अन्त्र में विष पाये जाते हो, उनको इस औषधि का प्रयोग अवश्य कराना चाहिये ।

इसके सेवन से मूत्र साफ आता है । रक्त की वृद्धि होती है । भ्रूण का पोषण होता है और किसी भी प्रकार की विकृति गर्भावस्था मे नहीं होने पाती ।

गर्भविनोद रस [भा. भै. र. १५५८]

(र. चं. । स्त्री. रो; र. रा. सुं., र. सा. स., र. र. । सूतिका; र. चिं. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिकुटा का चूर्ण ३ भाग (३॥। तोले), शुद्ध हिङ्गुल (शिंगरफ) ४ भाग (५ तोले), जायफल और लौंग ३—३ कर्ष (३॥।—३॥। तोला) तथा सोनामक्खी भस्म आधापल (२॥ तोले) लेकर सबको जल से घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१ से २ गोली । मधु अथवा दूध के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार नष्ट होता है वैसे ही इसके सेवन से गर्भिणी के रोग नष्ट होते हैं ।

सं. वि.—यह अरुचि, आध्मान, अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, कोष्ठबद्धता, मूत्रदाह, ज्वर, बेचैनी तथा रक्तहीनता आदि गर्भिणी के रोगों का नाश करता है ।

गर्भविलास रस [भा. भै. र. १५५९]

(र. चं; भै. र, धन्वंत.; र. र; र. र. स, र. का. धे. । सूतिका; र. चि. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध नीलाथोथा । सबको समान भाग लेकर ३ दिन तक जम्बीरी निम्बु के रस मे (रसकाम धेनु के लेखानुसार काञ्जी मे) घोटकर त्रिकुटे के क्वाथ की ३ भावनाये दे ।

मात्राः—४ रत्ती । पानी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसको सेवन करने से गर्भिणी का शूल, कब्ज, ज्वर तथा अजीर्ण रोग नष्ट होते है ।

नोटः—यदि इसमे नीले थोथे के स्थान पर स्वर्ण डाला जाय तो इसी का नाम "गर्भ चिन्तामणि" हो जाता है ।

सं. वि.—यह औषध विशेषतः वायुनाशक और अन्त्र शोधक है ।

गलत्कुष्ठारि रस [भा. भै. र. १५६१]

(रसे. चिं. म. । अ. ६., भा. प्र, र. चं., र. सा. सं., र. रा. सु. । कुष्ट.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, लौहभस्म,

शुद्ध गूगल, चीता, शिलाजीत, कुचला और वच १-१ भाग लें तथा अभ्रकभस्म और करञ्ज (करंजवे) की गिरी ४-४ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तदनन्तर अन्य द्रव्यो का चूर्ण उसमे मिलावे। इस मिश्रण को अच्छी तरह खरल करें।

मात्राः--४ रत्ती। (प्रातः सायं २-२ रत्ती) घृत और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कुष्ठ, किलास, वातरक्त, और पुराना जलोदर अवश्य नष्ट हो जाता है। यदि कर्ण, उंगली, नासिका आदि भी गल गई हो तो इसके सेवन से वे सब पुनः पूर्ववत् हो जाती है और सेवन करनेवाला कामदेव के समान कमनीय-कान्ति हो जाता है।

गगन सुन्दर रस [भा. भै. र. १४९१]
(रसे. चिं. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और अभ्रकभस्म ८ भाग ले। पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। उसमे अभ्रकभस्म मिलाकर घोट दें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त मात्रा ८ रत्ती) २ से ४ रत्ती तक मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसका ४० दिन पर्यन्त सेवन करने से ग्रहणी, क्षय, गुल्म, अर्श, प्रमेह और अन्य सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते है।

गगनपर्पटी [सि. यो. स.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, तदनन्तर उसमे अभ्रक भस्म मिलाकर १ दिन तक मर्दन करें और पर्पटी बनाने की विधि के अनुसार पर्पटी बनाले।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक। दिनमे २-३ वार दे।

अनुपानः—शहद, दूध, छाछ या मीठे दाडिम का रस।

उपयोगः—गगनपर्पटी मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, और पुराने ग्रहणी रोग मे विशेष गुणकारी है।

[सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

० गंगाधरो रस [भा. भै. र. १५००)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--मोथा, मोचरस, लोध, कुडे की छाल, बेलगिरी, धायके फूल, अफीम, गन्धक और शुद्ध पारद। प्रत्येक द्रव्य समान भाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो का बारीक चूर्ण मिलाकर खरल करें।

मात्राः--१ से २ रत्ती। गुड युक्त तक्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसका १ मास तक सेवन करने से सभी प्रकार के अतिसार और ग्रहणी रोग नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—इस पर विचारपूर्वक अर्थात् सात्म्यासात्म्य को जानकर तक्र और भात का पथ्य देना चाहिये। अतिसार और संग्रहिणी के लिये यह औषध वस्तुतः प्रशस्त है।

गण्डमालाकण्डन रस [भा. भै. र. १५०३]

(बृ. नि. र; र.चं; यो. र. । गण्ड., बृ. यो. त. । त १०९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १। तोला, शुद्ध गन्धक ०।।। तोला, ताम्रभस्म २ तोला, मण्डूर भस्म ३।।। तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल २।।–२।। तोला, सेधानमक ०।।। तोला, कचनार की छाल का चूर्ण १५ तोला और शुद्ध गूगल १५ तोला ले। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्य मिलाकर गाय के घी मे भलीभान्ति घोटे।

मात्राः-(शास्त्रोक्त मात्रा–३ मासा) २ से ४ रत्ती। कचनार की छाल के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस का सेवन करने से गण्डमाला की गांठ नष्ट होती है।

गन्धक रसायनम् [भा. भै. र. १५२३]

(आ. प्र. । अ. २, बृ. नि. र. । वा. व्या, वै. र. । वाजी, बृ. यो त । त. ११२; यो. र. । रसा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक को गोदुग्ध की ३ भावना तथा दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, गिलोय, हैड, वहेडा, आमला, सोंठ, भांगरा और अदरक मे से प्रत्येक के रस या क्वाथ की ८–८ भावना देकर उसमे समान भाग मिश्री मिलाकर प्रयोग मे लावे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त मात्रा १। तोला) ४ से ८ रत्ती। प्रातः सायं दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से धातुक्षय, प्रमेह, अग्निमान्द्य, शूल, उदररोग, १८ प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते है।

सं. वि.—इस गन्धक रसायन को वमन, विरेचन द्वारा देह शुद्धि करके प्रयोग मे लाना चाहिये और इसके सेवन काल मे लवण, अम्ल शाक, सब प्रकार की दाले, स्त्री प्रसंग और घोडे इत्यादि तथा साइकिल पर चढना त्याग देना चाहिये।

इसका प्रयोग सभी प्रकार के मनुष्य निस्संकोच कर सकते है। यह बिल्कुल निर्विकार सगुण औषध है।

गुञ्जा जीवन रस

(र. त. । तरङ्ग. २४)

द्रव्य तथा निर्माण विधान–शुद्ध चौटली (गुजा के बीज) १½ तोला, रससिन्दुर १½ तोला, शुद्ध भांग ३ तोला । तीनो द्रव्यों को खरल करके जल के साथ घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बना ले ।

मात्राः—१ से २ गोली । जल से साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—बल, वीर्य बढानेवाली और कामोद्दीपक औषध है ।

सं. वि.— यह औषध वस्तुतः निर्दिष्ट विकारो मे अच्छा काम करती है ।

गुञ्जाभद्र रस [भा. भै. र. १५६४]

(वृ. नि र, यो र., धन्व. । उरूस्त.; रसे चि. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, चौटली (गुंजा), शुद्ध मीठा तेलिया, नीम की निबौली और भांग प्रत्येक ४–४ मासे और जमाल्गोटा १ मासा लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले । तत्पश्चात् अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर चमेली, बिजौरा, धतूरा और मकोय के रस मे १–१ दिन खरल करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः--१ से २ रत्ती । घी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह उरुस्तम्भ के लिये श्रेष्ठ औषध है ।

गुणमहोदधि रस [भा. भै. र, १५६६]

(र. चि. म. । स्त. ११, भै. र. । कास.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, दालचीनी, ताम्रभस्म, वंगभस्म और अभ्रकभस्म १–१ भाग तथा तेजपात, मिर्च, पापल, मोथा, बायविडङ्ग, नागकेसर, रेणुका (संभाळ के बीज), आमला और पीपलामूल, प्रत्येक २–२ भाग लेकर वारीक चूर्ण वनाकर गजपीपल के क्वाथ मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१ से ३ गोली । मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से खांसी, श्वास, भगन्दर, हृदय और पसली का शूल, कणरोग, कपालिक (दन्तरोग विशेष), संग्रहिणी, ८ प्रकार के उदर रोग, ३० प्रकार के प्रमेह और चतुर्विध अश्मरी (पथरी) रोग नष्ट होते है और शरीर काञ्चन के सदृश तेजोमय हो जाता है।

सं. वि.—इस त्रिलोक विख्यात गुणमहोदधि रस के सेवन काल मे किसी प्रकार के अन्नपान, धूप, मार्गगमन, मैथुनादि से परहेज करने की आवश्यक्ता नही है । यथेच्छ आहार विहार किया जा सकता है ।

गुडादि मण्डूर [भा. भै. र. १२६१]

(र. का. धे, भा. प्र., यो. र., वं. से. । शूल., वृ. यो. त. । त. ८५)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गुड, आमला और हैड का चूर्ण ५–५ तोले लेकर इसके साथ १५ तोले मण्डूर मिलावे और ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक (शास्त्रोक्त १। तोला) घी और मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—भोजन के आदि, मध्य और अन्त मे इसका सेवन करने से अन्नद्रवशूल, जरद् पित्त और परिणाम शूल नष्ट होते है।

गुल्मकालानल रस [भा. भै. र. १५६९]

(र. रा. सुं, धन्व; रसा. स., भै. र. । गुल्म., रसें. चिं. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, लौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध वरकी हरताल और शुद्ध गन्धक २–२ तोले तथा मोथा, कालिमिर्च, सोंठ, पीपल, गजपीपल, हैड, वच और कूट का चूर्ण १–१ तोला तथा यवक्षार १० तोला लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले, तत्पश्चात् अन्य औषधियों को मिलाकर खरल करें और फिर पित्तपापडा, मोथा, सोंठ, अपामार्ग और पाटा के क्वाथ की पृथक् पृथक् भावना देकर चूर्ण करले।

मात्रा—१ से २ रत्ती (शास्त्रोक्त मात्रा ४ रत्ती) हैड के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस के सेवन से पित्तज, कफज, सन्निपातज और विशेषतः वातजगुल्म का नाश होता है।

गुल्मकुठार रस [भा. भै. र. १५७०]

(यो. र.; वृ. नि. र. । गुल्म.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—नागभस्म, बंगभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म और ताम्रभस्म सबको बराबर २ लेकर जम्बीरी निम्बु के रस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। मधु, अदरक, जवाखार और सज्जीखार के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से आमाजीर्ण, गुल्म, हृच्छूल, पार्श्वशूल और उदर शूल का नाश होता है।

सं. वि.—इस औषध का सेवन हृन्मांसशूल, हृन्नाडीशूल, फुफ्फुस और श्वासनलिकाक्षेप तथा अन्य कफस्थानगत शूलो मे किया जाता है।

गुल्ममदेभसिंह रस [भा. भै र. १५७४]

(वृ. नि. र. । गुल्म.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, कौडीभस्म, ताम्रभस्म, शंख-

भस्म, शुद्ध मीठातेलिया, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, मुण्डलौहभस्म, नागभस्म, शुद्ध हिंगुल और सुहागे की खील, प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर तथा गोमूत्र में शुद्ध किया हुवा पुराना मण्डूर सबसे ३ गुना लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले, तत्पश्चात् अन्य औषधियों का चूर्ण मिश्रित करले। इस मिश्रण को त्रिफले के क्वाथ तथा भांगरे और अदरक के स्वरस में पृथक् पृथक् घोटकर सुखाले; और फिर त्रिफला, गिलोय, वासा और पुनर्नवा के ८ गुने रसमे पृथक पृथक अग्नि पर पकाकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः--१ से २ गोली। रोगानुसार अनुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसके सेवन से ज्वर, पाण्डु, तृष्णा, रक्तपित्त, गुल्म, क्षय, खांसी, स्वरभङ्ग, अग्निमान्द्य, मूर्च्छा, वातादि अष्टमहाव्याधि और पित्त विकार आदि समस्त रोगों का नाश होता है।

ग्रहणी कपाट रस [भा भै. र. १५९५]

(र. रा सुं., र. का धे, र. चं। ग्र; यो. त.। त. २२, वृ. यो. त.। त. ६७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध अफीम ४ भाग, शुद्ध गन्धक १० भाग, शुद्ध पारा २ भाग, कौडीभस्म ७ भाग, शुद्ध वच्छनाग विष १ भाग, कालीमिर्च ८ भाग तथा धतूरे के बीज २० भाग लेकर महीनचूर्ण करके प्रयोग मे लावे।

मात्राः--२ रत्ती। मधु मिलाकर जीरे के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसके सेवन से भयङ्कर अतिसार और ग्रहणी तथा आम नष्ट होकर अग्निप्रदीप्त होती है।

ग्रहणीवज्रकपाट रस [भा भै र. १५९७]

[र. चं., र. सा. सं., यो. र., र रा. सुं.। ग्र.; रं मं. ।अ. ६; रसे. चि म.।अ. ९, र. का. धे.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान--चांदीभस्म, मुक्ताभस्म, स्वर्णभस्म और लौहभस्म १-१ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग और शुद्ध पारद २ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके कैथ के रस मे घोटे और फिर इसे हिरण के सींग मे भरकर उसके ऊपर कपड मिट्टी करके मध्यपुट मे फूंक दे और स्वांगशीतल होनेपर कपडमिट्टी को अलग करके सीग सहित पीस ले। तत्पश्चात् उसे खरैटी के रस की ७ भावना और चिरचिटा, लोध्र, अतीस, मोथा, धाय के फूल, इन्द्रजौ और गिलोय के क्वाथ की ३-३ भावना देकर चूर्ण करके प्रयोग मे लावे।

मात्राः--२ से ४ रत्ती (शास्त्रोक्त मात्रा २ मासा) मधु और काली मिर्च के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--यह "ग्रहणीवज्रकपाट रस" अग्निसदीपक और सब प्रकारके अतिसार तथा सग्रहिणी रोग नाशक है।

ग्रहणीगजकेशरी रस [भा. भै. र. १६०६]

(वृ. नि. र; यो. र; र. चं, वै. र । सग्र.; वृ. यो. त. । त. ६७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रकभस्म, हिङ्गुल, लौहभस्म, जायफल, वेलगिरी, मोचरस, शुद्ध मीठा तेलिया, अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल, धाय के फूल, भांग, हैड, कैथका गूदा, नागरमोथा, अजवायन, चीता, अनारदाना, सुहागे की खील, इन्द्रजौ, धतूरे के वीज और राल । सब द्रव्य समान भाग ले तथा अफीम इन सबका चतुर्थांश ले । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले । तत्पश्चात् उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर धतूरे के पत्तों के स्वरस में खरल करके २--२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१ से ३ गोली । अवस्थानुसार जायफल के पानी अथवा छाछ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रक्तशूल और आमसंयुक्त संग्रहणी, पुराना अतिसार और पीडा युक्त भयङ्कर विषूचिका नष्ट होती है ।

सं. वि.—यह औषध पाचक, संग्राहक और आमशोषक है । इसकी रोधक क्रिया सद्य होती है । इसका अवस्थानुसार मात्रा मे सेवन सभी को, ग्रहणी, अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार विषूचिका, प्रवाहिका आदि रोगो मे तथा अन्त्र शिथिलता मे जिसमें आम अधिक बनता हो और ८--१० दिन के अन्तर से तीव्र अतिसार हो जाता हो अथवा ग्रहणी के ऐसे विकार मे जहां ग्रहणी मे ग्रहण करने की शक्ति का विनाश हो गया हो या दीर्घकालीन ग्रहणी विकार के कारण ग्रहणी की क्रियाशक्ति मन्द हो गई हो, लाभप्रद होता है ।

नोटः—वैद्यरहस्य मे इसका नाम "ग्रहणीकपाट" है ।

ग्रहणिकामदवारणसिंह रस [भा. भै. र. १५८८]

(वृ. नि. र., र. सा. सु. । सग्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध गन्धक, संस्कारित पारद, शोधित हिङ्गुल, चीता, अभ्रकभस्म, सुहागे की खील, जावित्री, शुद्ध धतूरे के बीज, अतीस, त्रिकटु, जंगी हैड (पीली हैड) की भस्म, अजवायन, विष, वेलगिरी. इन्द्रजौ, कैथ के फूल का गूदा, नागरमोथा, सेमल का गोद और अफीम । उपरोक्त सब द्रव्यो को समान भाग लेकर धतूरे के पत्तो के रस मे खरल करके १--१ रत्ती की गोलियां बनाले और छायाशुष्क करके प्रयोग मे लावे ।

मात्राः—१ से ३ गोली तक । मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस रस का सेवन करने से ज्वरयुक्त दुश्चिकित्स्य संग्रहिणी, दुष्ट विषूचिका, अग्निमान्द्य, शूल, अनेक प्रकार के गुल्म, उत्कट पाण्डुरोग और रक्त संयुक्त आमातिसार नष्ट होता है ।

सं. वि.—"ग्रहणिकामदवारणसिंह रस" अत्युत्तम औषधियो के योग से बनी हुई ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका तथा इनके द्वारा होनेवाले अन्य विकारो को निवारण करनेवाली श्रेष्ठ औषध है।

द्रव्यो के सिंहावलोकन से यह दीपक, पाचक, रोचक, आमशोषक, दोषानुलोमक, रुचिकर और परिपूर्ण रोधक है। इसके प्रयोग से जीर्णकाल से उत्पन्न होते हुए आमका शोषण होता है और अन्त्र तथा आमाशय की शिथिलता दूर होती है।

ग्रहणी गजेन्द्र वटिका [भा भै. र. १६०९]

(भै र., र. चं; र सा. सं, र. र। ग्रहणी चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शंखभस्म, सुहागे की खील, हींग, तालीसपत्र, नागरमोथा, धनिया, जीरा, सेंधानमक, धाय के फूल, अतीस, सोंठ, घरका धुवा हर्र, शुद्ध भिलावा, तेजपत्र, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, नेत्रबाला, वेलगिरी और मेथी। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनालें। तदनन्तर उसमें अन्य द्रव्यो का भलिभान्ति किया हुवा चूर्ण मिलावे और इस मिश्रण को इन्द्रजा के क्वाथ मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१ से २ गोली तक (शास्त्रोक्त मात्रा २ मासा) बकरी के दूध के साथ। इसकी मात्रा अग्निवलानुसार न्यूनाधिक भी की जा सकती है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अनेक प्रकार का ग्रहणी रोग, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कण्डू, कुष्ट, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिरोग का नाश होता है। यह बल, वर्ण और अग्नि का बढानेवाली है तथा दीर्घ काल तक सेवन करने से आयु की वृद्धि करती है।

सं. वि.—यह दीपक, पाचक, रोधक, आमशोपक, दोषानुलोमक और अग्निवर्द्धक है। अन्त्र की शिथिलता, आमज अग्निमान्द्य और शिथिल कोष्ठ आदि पर इसका सेवन उत्तम लाभकारी सिद्ध होता है।

० चक्रिका रस [भा भै र. १८६८]

(र. रा सुं. । भै. र । ज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध धतूरे के बीज, कालीमिर्च, शुद्ध हरताल और स्वर्णमाक्षिकभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। उसमे अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर दन्तिमूल के क्वाथ मे घोटकर १–१ रत्ती की टिकडियां बनाले।

मात्राः—१–१ रत्ती। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस साध्य असाध्य १३ प्रकार के सन्निपातो का नाश करता है।

सं. वि.—यह दोषानुलोमक और शोधक है। वातनाशक और उग्र ज्वरघ्न औषध है। नवीन और पुरातन सभी प्रकार के ज्वरो मे इसका प्रयोग किया जाता है।

चण्डेश्वर रस [भा. भै. र. १८७८]

(भै. र., र. रा. सुं., वै. क. द्रु. । ज्वरा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद, शोधित गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया और ताम्रभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर १ प्रहर तक भलीभान्ति खरल करें। तत्पश्चात् इसे अदरक और संभालू के रस की पृथक पृथक ७–७ भावना देकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ रत्ती। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे मात्रानुसार अदरक के रस के साथ लेने से तत्क्षण ज्वर नष्ट हो जाता है। यह रस वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज आदि समस्त ज्वरो का नाश करता है। इसके सेवन मे यदि गर्मी लगे तो शीतल जल से स्नान करना चाहिये, अगर प्यास लगे तो दूध पिलाना चाहिये और आम तथा कटहल के फल खाने चाहिये। चन्दन तथा अगर का शरीर पर लेप कराना चाहिये।

चतुर्मूर्ति रस [भा. भै. र. १८८२]

(यो. र. । ग्रह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, चीता, तेजपात, विदारी कन्द, रेणुका, मोथा, इलायची, पीपलामूल, नागकेसर (अथवा केसर), हैड, बहेडा, आंवला, त्रिकुटा और ताम्रभस्म समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और भस्म तथा अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर खरल करे।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे संग्रहिणी और पाण्डु मे मधु के साथ, तथा अतिसार, क्षय, कास, प्रमेह और विषमज्वरो मे रोगोचित अनुपानो के साथ व्यवहार मे लाना चाहिये।

चर्मभेदी रस [भा. भै. र. १९१२]

(र. का. धे., र. रा. सुं. । क.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, ताम्रभस्म १ भाग और शुद्ध वच्छनाग चौथाई ($\frac{1}{4}$) भाग लेकर कज्जली बनावे। तत्पश्चात् उसे घृत

[कृ]ने किये हुए लौह पात्र में मन्दाग्नि पर पिघलाकर केले के पत्ते पर ढालकर विधिवत् पर्पटी बनाये। इसे ३ दिन तक बावची के तेलमें घोटकर रक्खे।

मात्राः--(शास्त्रोक्त मात्रा १ मासा) २ से ४ रत्ती। त्रिफला, बावची, खैरसार और अमलतास की जड का चूर्ण १।-१। तोला लेकर शहद और घी में मिलाकर पीना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसके सेवन से ४० दिन मे चर्मकुष्ठ का नाश हो जाता है।

चतुर्भुज रस [भा. भै. र. १८७९]
(र. सा. सं., र. रा. सुं. । उन्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--पारदभस्म(अभाव में रससिन्दुर)२ भाग तथा स्वर्णभस्म, मनसिल, कस्तूरी और हरतालभस्म १-१ भाग लेकर सबको घृतकुमारी के रस में ३ दिन घोटकर गोला बनाकर उसे अरण्ड के पत्ते मे लपेटकर अनाज के ढेर में दबा दें, और फिर ३ दिन तत्पश्चात् निकालकर चूर्ण करके प्रयोग मे लावे।

मात्राः--१ से २ रत्ती। त्रिफला और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसे यथा अग्निवल मात्रानुसार त्रिफले के चूर्ण मे और मधु के साथ सेवन करने से बलि (चेहरे की झुर्रियां) तथा पलित (बालो का सुफेद होना), अपस्मार, ज्वर, कास, शोथ, अग्निमान्द्य, क्षय, हस्तकम्प, शिरकम्प, गात्रकम्प आदि विशेष रोगो तथा वात, पित्त और कफ से होनेवाले अन्य रोगो का अवश्य नाश होता है।

अन्य औषधियो से पञ्चकर्मद्वारा और अन्य औषधियो द्वारा जो रोग नष्ट नही होते हो उन सबका यह इस प्रकार नाश करता है जैसे वृक्षो को बिजली नाश करती है। यह "चतुर्भुज रस" भगवान् महेश्वर द्वारा आविष्कृत हुवा।

सं. वि.--उन्माद, अपस्मार और ज्ञानतन्तुओ की निर्बलता मे इसका प्रयोग सर्वदा सफल पाया गया है। यह उत्तम पोषक और शरीर तथा मस्तिष्क वर्द्धक है।

चतुर्मुख रस [सि यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, लोहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग और स्वर्णभस्म १/४ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। उसमे अन्य भस्मे मिलावे और तदनन्तर उसे ग्वारपाठा, ताजी गिलाय, त्रिफला, नागरमोथा, ब्राह्मी, जटामांसी, लौग, पुनर्नवा और चित्रकमूल की छाल इनके यथालाभ स्वरस या क्वाथ मे १-१ दिन मर्दन करके १ गोला बनाकर उसे धूप मे सुखाले। जब गोली सूख जाय तब उस पर एरण्ड के पत्ते लपेट कर सूत से बांध दे और बडी धान्य की कोठी

मे दाव कर रहने दें। ३ दिन बाद गोले को कोठी से निकालकर ऊपर के एरण्ड पत्र को हटाकर खरल मे अच्छी तरह पीसकर शीशी मे भरकर रखलें।

मात्राः–१ रत्ती।

अनुपानः—त्रिफला चूर्ण १॥ से ३ मासा और शहद ½ से १ तोले मिलाकर दिन में २ बार (प्रातः सायं) दे।

उपयोगः—राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, अपस्मार, उन्माद, भ्रम (चक्कर आना), मूर्च्छा, प्रमेह, वातरोग, दिल और दिमाग की कमजोरी आदि मे इस योग का अच्छा उपयोग होता है। [सि. यो स. से उद्धृत]

चन्द्रकला रस [भा. भै. र. १८८५]

(वृ. नि. र । मूत्र. कृ.: र. र. स. । उ. खं., अ. १३., यो. र. । दाह; र. चं. । र. पि; र. रा. सुं. । दाह)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म। प्रत्येक १–१ तोला तथा गन्धक ६ तोला। इन सबकी कज्जली बनाकर फिर इसे नागरमोथा, दाडिम, दूर्वा, केतकी की कली, सहदेवी, घीकुमार, पित्त पापडा, रामशीतला और शतावर के रस मे १–१ दिन पृथक २ घोटे। फिर उसमे इलायची का सत्व, पित्तपापडा, खस, माधवीलता, सफेद चन्दन और सारिवा का समान भाग मिश्रित चूर्ण सबके बरावर मिलाकर द्राक्षादिगण की औषधियों के क्वाथ की ७ भावनाये दे। तदनन्तर इसका गोला बनाकर पत्तो मे लपेट कर अनाज के ढेर मे दाव दे, फिर ७ दिन बाद निकालकर, पीसकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर प्रयोग मे लावे।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। दूध तथा द्राक्ष के क्वाथ अथवा कषाय के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह "चन्द्रकला रस" समस्त पित्तज और वातपित्तज रोगो का नाश करता है तथा आन्तरिक और वाह्य दाह शान्त करता है। इसका प्रयोग ग्रीष्म (ज्येष्ठ, आषाढ), और शरद् (आश्विन और कार्तिक) मे विशेष उपयोगी है।

सं. वि.—यह रस घोर सन्ताप, ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा, स्त्रियो का अधिक रक्तस्राव होना, ऊर्ध्वाधो रक्तपित्त, विशेषतः रक्तवमन और समस्त मूत्रकृच्छ्रो का नाश करता है।

इसके सेवन से महातापज ज्वर का नाश होता है, परन्तु अग्निमान्द्य नही होता।

चन्द्रकान्त रस [भा. भै र १८८८]

(र. सा. सं, र. रा सुं, र चं । गिरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दूर), अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण

लौहभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर सबको १ दिन स्नुही (सेंड) के दूध मे घोटकर प्रयोग मे लावे।

मात्रा:—२ रत्ती (शास्त्रोक्त मात्रा १ मासा) लौह पात्र मे रखकर मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको सेवन करने से १ सप्ताह मे सूर्यावर्त आदि शिरोरोग नष्ट हो जाते है।

चन्द्रशेखर रस [भा. भै. र. १८९५]

(र का धे. । कुष्ट.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद १ भाग और शोधित गन्धक २भाग लेकर उनकी कज्जली बनाले। कज्जली को सर्पाक्षि, शंखपुष्पी, गोजिहा, खिरनी, नील का पौधा, ढाक की छाल, रुद्रन्ती (रुद्रवर्न्ती), अगस्ति, नीम, मकोय, कोयल और मोथे के स्वरस या क्वाथ मे १-१ दिन तक खरल करे (अर्थात् लोह खरल तुषाग्नि पर रखकर उसमे कज्जली डालकर इनके रसो के साथ पृथक पृथक घोटे।), इसके पश्चात् लोह की कढाई मे थोडा घी लगाकर उसे आग पर रखकर उसमे इस कज्जली को पिघलावे और पिघल जाने पर इसकी पर्पटी तैयार करे और उसमे शुद्ध गन्धक का चूर्ण और स्वर्णमाक्षिकभस्म प्रत्येक पर्पटी के बराबर मिलाकर उसे सहदेवी, विदारीकन्द, हस्तिकन्द, गिलोय और मुंडी के स्वरस तथा दशमूल के क्वाथ मे १ दिन घोटकर गोलियां बनाले, तदनन्तर वन्दाल का पञ्चाङ्ग और इन्द्रायण का पञ्चाङ्ग छाया में सुखाकर चूर्ण करे। वह चूर्ण तथा त्रिफला और बावची का चूर्ण समान भाग मिलाकर अलग रक्खे।

मात्रा:—रस की गोली २ रत्ती। चूर्ण की १॥ मासा गोलियां खाकर ऊपर से पुरुष के मूत्र के साथ चूर्ण खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके उपरोक्त विधि से सेवन करने से शतारुष्क और गलत्कुष्ठ नष्ट होते है।

० चन्द्रसुधा रस [भा. भै. र. १८९६]

(रसा. सा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णसिन्दुर, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, बङ्गभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, और भीमसेनी कपूर। प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर मर्दन करे, नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, नेत्रबाला, सोंठ, इन द्रव्यो के क्वाथ की उपरोक्त मिश्रण का ३ भावना देकर छायाशुष्क करके प्रयोग के लिये रक्खे। तत्पश्चात् भुनी हुई पीपल, मुनक्का, इलायची के बीज, मूल्हटी इनको समान भाग लेकर कूट-छानकर चूर्ण बनाकर अलग पात्र मे रक्खें।

मात्राः—२ रत्ती रस के साथ १ तोला उपरोक्त चूर्ण, १ तोला मधु और मिश्री मिलाकर चाटें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके चाटने से घोर तृष्णा (भयङ्कर प्यास), ज्वर, दाह, मूर्च्छा, हिचकी, वमन, ग्लानि, अरुचि आदि रोग नष्ट होते है।

इसका सेवन करते हुये भोजन में धानकी खीलोका पतला दलिया खाये। यदि मीठा बनाकर खाने की इच्छा हो तो मिश्री डालकर पियें।

चन्द्रामृत रस [भा. मै. र. १९००]
(र. र.; र. का. धे. । रा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और सेंधानमक १ भाग लेकर कज्जली करके समी और श्वेता (कोयल) के पत्तो के रस में घोटकर गोला बनालें। इस गोले को नागरवेल के पत्तों मे लपेटकर १ दिन पाताल यन्त्र में पकाये। स्वांगशीतल* होनेपर निकाले, चूर्ण करके प्रयोग के लिये रखले।

मात्राः—३ रत्ती। पान के साथ सेवन करे। मूल पाठ मे लिखा है कि इसके अनुपान "मृङ्गाकवत्" है।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—१ मास तक उपरोक्त अनुपान से सेवन किया जाय तो राजयक्ष्मा रोग का विनाश करता है।

चन्द्रामृत लोह [भा. मै. र. १९०२]
(र. सा. सं., र रा. सुं.; धन्वं. । कास.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिकटु(सोठ, मिर्च, पीपल), त्रिफला (हैड, बहेड, आंवला), धनिया, चव, जीरा, और सेंधानमक, प्रत्येक १—१ भाग ले तथा मनसिल से भस्म किया हुवा लौह सबके बराबर ले, सबको एकत्र खरल करके (शास्त्रानुसार ९—९ रत्ती की) २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—प्रातःकाल १—१ गोली। लाल कमल या नीलकमल के रस अथवा कुलथी के रस के साथ सेवन करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके प्रयोग से वातज, पित्तज, विषज, रक्तयुक्त, नीरक्त और

---

* मूल पाठ मे "उर्ध्वलग्नं त ग्राह्य" अर्थात् उपर लगे हुये रस को ग्रहण करें यह लिखा है और इसी पाठ में ऊपर "पाच्य पाताल यन्त्रके" ऐसा निर्देश किया है। परन्तु पाताल यन्त्र में पकाने से रस ऊपर नही लग सकता अत या तो 'पाताल यन्त्र" की जगह "वालुका यन्त्र"का उपयोग किया जाय तो ऊर्ध्वलग्न लिया जा सकता है अथवा ऊर्ध्वलग्न की जगह स्वाङ्गशीतल लें तो निर्विवाद निराकरण हो जाता है।

त्रिदोषज आदि अनेक प्रकार की खांसी, श्वास, ज्वर, दाह, भ्रम, तृष्णा, शूल और जीर्णज्वर का नाश होता है। रुचि, जठराग्नि और बल, वर्ण की वृद्धि होती है।

इस रस का आविष्कार श्रीमान् "चन्द्रनाथ"ने किया है।

चन्द्रांशु रस [भा भै. र. १९०३]

(र. चं.; भै. र. । स्त्री रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, वंगभस्म और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर घृतकुमार के रस मे घोटे और २—२ रत्ती की गोलियां वनाले।

मात्रा:—१ से २ गोली। जीरे के क्राथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जरायु दोष, योनीशूल, योनीकण्डु, योनीविक्षेप, और स्मरोन्मादरोग नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध स्त्रियों के गुप्त रोगो को दूर करने के लिए प्रयुक्त की जाती है।

चन्दनादि लोह [भा. भै. र. १७०२]

(भै र., र. चं; र. सा. सं, र. र., र. रा. सु. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लाल चन्दन, नेत्रवाला, पाठा, खस, पीपल, हैड, सोंठ, नीलोफर, आंवला, नागरमोथा, चीता और वायविडङ्ग प्रत्येक द्रव्य १—१ भाग लेकर वारीक चूर्ण वनाकर मिश्रित करे और सवके वरार लौहभस्म लेकर भलीभान्ति मिश्रीत करके रक्खे।

मात्रा:—२ से ४ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त विषमज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—दीर्घकाल से पित्त वृद्धि के कारण अथवा यकृत् और प्लीहा की वृद्धि के कारण होनेवाले ज्वरो मे "चन्दनादि लौह" का सेवन कराया जाय तो ज्वर का नाश और रक्त की वृद्धि होती है। यदि इसके सेवन से कोष्ट वद्धता की आशंका हो तो त्रिफला अथवा द्राक्ष के क्राथ का सेवन कराये, नहीं तो अभयादि क्राथ और मधु के साथ "चन्दनादि लौह" और भी अच्छा काम करता है। इस अनुपान के साथ सेवन कराने से यकृत् और प्लीहा की वृद्धि और शिथिलता दूर होती है। सहज कारणो से होनेवाले शरीर दाह मे भी हरीतकि और चन्दन के क्वाथ के साथ इसका सेवन लाभप्रद होता है।

चण्डभास्कर रस [भा. भै. र. १८७१]

(वृ. यो त., त. १०५)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया प्रत्येक

५–५ मासे लें, सुहागे की खील ४ तोला २ मासे और जमालगोटा ८ तोला ४ मासे ले। सबको एकत्र खरल करें और संभालू के रस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।
मात्राः—१ गोली। गुड में मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस के सेवन से सूजन, उदररोग, अर्श, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, कृमिरोग, पुरातन ज्वर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, व्रण आदि अनेक रोगो का नाश होता है।
नोट—यह रस विरेचक है। बालक, वृद्ध, गर्भिणी और निर्बल को नहीं देना चाहिये।

चण्डभैरव रस [भा. भै. र. १८७३]
(र. र. । उन्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म १ तोला ८ मासे, पारदभस्म (अभाव में रससिन्दुर) ५ मासे, सुहाञ्जने के बीज और मीठा तेलिया प्रत्येक २ तोला १ मासे लेकर एकत्र खरल करें, तत्पश्चात् इस मिश्रण को १ दिन गोखरू और देवदाली के रस मे घोटकर गोला बनालें। इस गोले को १ दिन गन्धक के तेल मे पकाकर चूर्ण करके रख ले।
मात्राः—२ से ३ रत्ती। ब्राह्मी–घृत के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब भूतग्रह नष्ट होते है।

चन्द्रसूर्यात्मक रस [भा. भै. र. १८९८]
(भै. र.; र. सा. सं, धन्वं, र. रा. सुं. । पाण्डुकामला)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक ५–५ तोले, तथा शंखभस्म, सुहागे की खील और कौडीभस्म २॥–२॥ तोले और गोखरू के बीजों (फलों) का चूर्ण ५ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले, तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों को निकालकर घोटे। तदनन्तर इस चूर्ण को वाष्पयन्त्र पर स्वेदित करे–एक पात्र में पानी भरे और उसके मुख पर कपडा बांधकर आग पर चढा दे, उपरोक्त रस को एक कपडे की पोटली में बांधकर पात्र के कपड़े के ऊपर रखकर थोडी देर स्वेदित करे। तदनन्तर उसमें पटोलपत्र, पित्तपापडा, भारंगी, विदारीकन्द, सौफ, गिलोय, ब्रह्मदण्डी, वासा, मकोय, इन्द्रायण, पुनर्नवा (सांठी), भांगरा, शालिञ्चशाक और गूमा का २॥–२॥ तोला रस डालकर घोटने के बाद २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।
मात्राः—१ से ३ गोली। मांड (चावल का मांड), मदिरा या अन्य आसव, मूंग का यूष, गिलोय, त्रिफला, वासा के क्वाथ या स्वरसादि मे से यथा रोगानुसार प्रयोग मे लावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से हलीमक, पाण्डुरोग, कामला, जार्णज्वर, विषम-ज्वर, रक्तपित्त, अरुचि, शूल, तिली, जिगर, अफारा, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधि, शोथ, मन्दाग्नि,

श्वास, कास, हिचकी, उल्टी, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दाद, खुजली, व्रण, अपची, दाह, तृष्णा, उरुस्तम्भ, आमवात और कटिग्रह आदि रोग नष्ट होते हैं।

चन्द्रोदय रस [भा. भै. र. १५०६]

(वृ. नि. र. । प्रमे)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, वङ्गभस्म, छोटी इलायची का चूर्ण और शिलाजीत। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले, तदनन्तर अन्य औषधि मिलाकर केले के अर्क में घोटे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। मधु, घृत, दूध या मलाई के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, कामला और पित्त का नाश होता है।

सं. वि.—यह प्रसिद्ध औषध है।

चातुर्थिकारि रस [भा. भै. र. १९१८]

(र. सा. सं.; र. च.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हरताल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा, शंखका चूर्ण और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें और घीकुमार के रस में घोटकर टिकियां बनालें। तदनन्तर उन्हे सुखाकर सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर उसे निकाले और घृतकुमारी के रस मे घोटकर १-१ वल्ल (शास्त्रोक्त) २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। कालीमिर्च और घी मिलाकर खाने के बाद तक्र का सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शीतज्वर और विशेषतः चातुर्थिक ज्वर (चौथे दिन आनेवाला ज्वर) का नाश होता है।

चिन्तामणि चतुर्मुख रस [भा. भै. १८८१]

(र. चि. म. । स्तव, ११, भै. र., र. चं.; र. सा. सं., धन्व.; र. रा. सुं. । वा. व्या.; रसे. चिं. म. । अ. ८., र. का. धे.; आ. वे. प्र. । अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म और अभ्रकभस्म। प्रत्येक ४-४ भाग तथा स्वर्णभस्म १ भाग लेकर कज्जली बनाले और उसे १-१ दिन घृतकुमारी के रस, त्रिफला के क्वाथ और तुलसी एव ब्राह्मी के रस मे घोटकर गोला बनावे। इस गोले को अरण्ड के पत्तों मे लपेटकर अनाज के ढेर मे दवा दे और ३ दिन पश्चात् निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करके सब रोगों मे व्यवहार मे लावें।

मात्राः—१–१ रत्ती। त्रिफला और मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वलि(झुर्रियां), पलित (बालो का सुफेदहोना), ११ प्रकार का क्षय, पाण्डु, प्रमेह, कास, शूल, मन्दाग्नि, हिक्का, अम्लपित्त, व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि, अपस्मार सब प्रकार के अर्श, चर्मरोग आदि नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पौष्टिक, ओजप्रद, आयुवर्द्धक और स्त्रियों के लिये सन्तानप्रद है। इस द्रव्य के सेवन से रक्तचाप की वृद्धि, उन्माद, अनिद्रा आदि रोगों मे लाभ होता है।

चिन्तामणि रस [भा. भै. र. १९३२]

(यो. र.; र. रा.सुं. । यक्ष्मा., वै. क. द्रु. । स्क. २.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, वैक्रान्तभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, लौह-भस्म, मोतीभस्म, शुद्ध गन्धक और स्वर्णभस्म। प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। अनन्तर अन्य भस्मो का मिश्रण करके उसे अदरक के स्वरस, भांगरे के रस, चीते के क्वाथ तथा गाय और बकरी के दूध की पृथक पृथक ३–३ भावनायें देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। मधु और पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर चाटें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अर्श, क्षय, कास, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डु, प्रमेह, विषमज्वर तथा वायु का नाश होता है।

यह रस पार्वती जी द्वारा निर्मित है।

चिन्तामणि रस [भा. भै. र. १९३४]

(र. चं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सुहागे की खील ३ भाग, सोठ का चूर्ण ४ भाग, काली मिर्च ५ भाग, हैड का चूर्ण ६ भाग और शुद्ध जमालगोटा ७ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। अनन्तर अन्य द्रव्यो का मिश्रण करे और भांगरे का रस मिलाकर तथा घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। गुड के साथ मिलाकर ऊपर से बार बार उष्ण जल का सेवन कराते रहे और उष्ण जल से पेट का सेक करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इससे विरेचन होकर आम निकल जाता है और अजीर्ण, ज्वर, जलोदर, कामला, सूजन, शूल, पाण्डु और उदररोगोका नाश होता है।

चैतन्यभैरव रस [भा. भै. र १९४२]

(र. का. धे. । ज्वर., र. सं. क. । उ. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मनसिल और हरताल समान

भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियां मिलाकर निम्बु के रस में भलीभान्ति घोटें और सबके बराबर ताम्र के बारीक पत्तों को लेकर उनपर उसका लेप करके उन्हे कपडमिट्टी की हुई १ हांडी मे रक्खे और उनके ऊपर शराब रखकर सन्धि को गुड चूने से बन्द करले। इसके बाद उस हांडी में कपडछन्न की हुई राख दाब २ कर भरे और उसके ऊपर शराब रखकर कपडमिट्टी कर दे। जब कपडमिट्टी सूख जाय तो हांडीको चूल्हे पर चढाकर २ प्रहर (मतान्तर से ८ प्रहर) की अग्नि दे। तत्पश्चात् हांडी के स्वांगशीतल हो जाने पर उसके भीतर से औषध को निकालकर उससे चौथा भाग शुद्ध मीठा तेलिया और कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर देवदाली के रस में घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सभी प्रकार के सन्निपात और शीत नष्ट होते हैं तथा शीत से पीडित होकर यदि रोगी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर भी गया हो तो उसकी भी मूर्च्छा जाती रहती है एवं तन्द्रा नष्ट होती है।

यदि इसके सेवन से दाह हो तो शीतोपचार करना चाहिये।

छर्द्यन्तक रस [भा. भै. र. १९६१]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर) ५ तोले, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, वङ्गभस्म, मोतीभस्म प्रत्येक १।-१। तोले और लौहभस्म ११। तोले, अभ्रकभस्म २२॥ तोले तथा शुद्ध गन्धक ४५ तोले लेकर सबको ३ दिन तक जम्बीरी निम्बु और अदरक के रस मे घोटे। फिर ७ दिन आंवले के रसमे घोटने के पश्चात् उसे अन्धभूषा मे बन्द करके ३ प्रहर तक बालुकायन्त्र मे मृदु, मध्य और तीव्राग्नि पर पकावे। जब यन्त्र स्वांगशीतल हो जाय तो उसमें से औषध निकालने के बाद बारीक चूर्ण करके कपडे मे छान कर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—३-३ रत्ती। (५-५ मासे) जीरा, अजवायन, सोठ, मिर्च, पीपल, हैड, बहेडा, आंवला, कालाजीरा, वायविडङ्ग और दालचीनी इन सब द्रव्यो का मिश्रित चूर्ण ५ मासे की मात्रा मे उपरोक्त रस के साथ मिलाकर जल के साथ सेवन करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अम्लपित्त, रक्तपित्त, वमन, गुल्म, अरुचि, कष्टसाध्य आमवात, जी मचलाना, हृदय की पीडा और सम्पूर्ण लक्षणो युक्त राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है।

सं. वि.—यह मुख को साफ रखनेवाला, हितकर और सभी के लिये अमृत के समान स्वास्थ्य रक्षक है।

जयमङ्गल रस [भा. भै. र. २१०३]

(धन्वं.; र. रा. सु.; वै. र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हिङ्गुल से निकाला हुवा पारा, शुद्ध आमलासार गन्धक, सुहागेकी खील, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, सोनामक्खीभस्म, सेंधानमक और काली मिर्च का चूर्ण १–१ भाग ले। स्वर्णभस्म १६ भाग तथा कान्तलौहभस्म और रौप्य (चांदी) भस्म ८–८ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् सबको एकत्र घोटकर धतूरे के रस, हार सिंगार के पत्तो के रस, दशमूल के काथ और चिरायता के काथ की ३–३ भावनाये देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१–१ गोली। जीरे के चूर्ण और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—इसके सेवन से महाघोर जीर्णज्वर, बहुत पुराना ज्वर तथा साध्य, असाध्य, एकदोषज, द्विदोषज, सन्निपातज, विषमज्वर, मेदगतज्वर, मांसगतज्वर, अस्थिगतज्वर, मज्जागतज्वर, अन्तर्गत, बहिर्गत और सब प्रकार के ज्वर तथा शुक्रगतज्वर नष्ट होते है। इसके उपयोग से अन्य समस्त रोग भी नष्ट होकर बल और पुष्टि की वृद्धि होती है।

यह भगवान् शिव निर्मित "जयमङ्गल" रस है। यह समस्त प्रकार के ज्वरो मे सफल प्रयोग मे आनेवाली प्रसिद्ध औषध है।

जयमङ्गल रस [भा. भै. र. २१०५]

(रसे. मं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक, विमल (रौप्यमाक्षिक)भस्म, कान्तलोहभस्म, पीतलभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म, हीराभस्म, स्वर्णभस्म और वङ्गभस्म। प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग ले तथा पारा १२ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले, तत्पश्चात् उसमे उपरोक्त सब औषधियां, वांझककोडे की जड, संभालू के पत्ते, मुलैठी, शुद्ध वच्छनाग, सुहागे की खील, बीजाबोल (सुरसुकी), चीतामूल, कलिहारी की जड, कृष्णमरिच, सोंठ, पीपल और अतीस का समभाग मिश्रित चूर्ण उपरोक्त औषधियों के बराबर मिलाकर, महुवे के फूलों के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे खिलाने, नस्य देने और अञ्जन कराने से वैद्यों द्वारा त्यक्त, चेतनाहीन सन्निपात रोगी और विषमज्वररोगी शीघ्र ही लाभ प्राप्त करते है।

सं. वि.—जय और मङ्गल को देनेवाले इस रस की क्रिया शरीर के कण कण पर

दोषनाशक, शक्तिवर्द्धक, विषनाशक, आक्षेपनाशक, वातानुलोमक, रसरक्तादि धातुवर्द्धक, नाडिविक्रियानाशक, रक्तपरिभ्रमण सहायक, हृद्य, मेध्य, वृष्य, आयुष्य और परम रसायन होती है। क्षयरोग के लिए वास्तविक चिकित्सा में इसका प्रयोग करना ही चाहिए। यह सौम्य, शरीर बल और ओज वर्द्धक है।

जयसुन्दर रस [भा. भै. र. २१०८]

(र. चं. । स्त्री., र. र स. । अ. २२ ख. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म, चान्दीभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकसत्व भस्म, वैक्रान्तभस्म १—१ टंक (५—५ मासे) तथा शुद्ध पारद २० टंक और शुद्ध गन्धक ४० टक लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यों का चूर्ण उसमें मिलाकर उस मिश्रण को लक्ष्मणा और दुपहरिया के फूलों के रस में घोटकर और सुखाकर १—१ अङ्गुल मोटी कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर उसका मुंह ताम्बे के पत्र से बन्द कर दे। तत्पश्चात् पृथ्वी में १ गड्ढा खोदकर उसमें इस शीशी को रख दे। शीशी के ऊपर मिट्टी चढाकर गजपुट लगा दे। पुट में जो उपले लगाये जांय वे हल्के, अर्थात् ४ मासे से १ तोले वजनवाले होने चाहिये। जब स्वांगशीतल हो जाय तो शीशी को निकालने के बाद औषध को उसमें से निकाल ले और चूर्ण करके लक्ष्मणा के रस की ७ भावना देकर शीशी में भरकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्रा:—१—१ रत्ती (अश्वगन्धा और गोखरू का चूर्ण १—१ मासा, मिश्री १ मासा तथा ताम्रभस्म १ रत्ती) इन सबका मिश्रित चूर्ण १ मासा या यथा अग्निबलानुसार दूध या जल के साथ सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— उपरोक्त अनुपान के साथ ३ मास तक इस औषधि का सेवन कराने से वन्ध्या स्त्री पुत्रवती हो जाती है।

सं. वि.—डिम्ब कोषों का शोथ, गर्भाशय की अन्तरबाह्य विकृति और अङ्गाङ्ग की नाडियों के दोषों को दूर करने के लिए यह औषध प्रसिद्ध है। श्लेष्मकलाओं के विविध कारणों से होनेवाले विकारों में इसका प्रयोग प्रशंसनीय होता है। इसकी क्रिया वन्ध्यत्व नाशक होती है।

जलोदरारि रस [भा. भै. र. २११३]

(र. का. धे । उदर., र. सा. सं., र. चं., र. मं., यो र., र. रा. सु. । उदर.; वृ. यो. त. । त. १०५, र. चि. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, ताम्रभस्म और हल्दी का चूर्ण १—१ भाग

तथा शुद्ध जमालगोटा सबके बराबर ले। सबको १ दिन पर्यन्त थोहर (सेहुड) के दूध मे घोटकर चूर्ण बनाले।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ५ मासा) २ से ४ रत्ती। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से विरेचन होकर जलोदर रोग नष्ट होता है।

यदि दस्त बन्द न हों और बन्द करने की आवश्यकता हो तो दही—भात खिलाना चाहिये। अन्यथा आम निकलजाने के पश्चात् मूंग का यूष और भात खिलाना चाहिये।

सं. वि.—यह तीव्र विरेचक औषध है और पेट में मरोड लाकर के दस्त लाती है। यदि वेदना अधिक होती हो तो गर्म जल द्वारा सेक करनी चाहिये।

जवाहर मोहरा [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जवाहरपिष्टी २ तोला, पन्नापिष्टी २ तोला, मुक्तापिष्टि २ तोला, प्रवालपिष्टी २ तोला, संगेयशवपिष्टी ४ तोला, कहेरुवा की पिष्टी २ तोला, चान्दी के वर्क १ तोला, सोने के वर्क २ तोला, दरियाई नारियल का चूर्ण ४ तोला, रेशम कतरा हुवा २ तोला, मृगशृङ्गभस्म ४ तोला, जदवार (निर्विषी) का चूर्ण २ तोला, कस्तूरी १ तोला और अम्बर २ तोला ले। न घिसनेवाले अच्छे पत्थर के खरल मे सब पिष्टियां और चूर्ण डाले, उसमें सोने और चान्दी के वर्क १—१ करके डाले, औषध को मर्दन करते जांय और वर्क मिलाते जांय। इस प्रकार क्रमशः १—१ वर्क डाले। जब सब वर्क मिलजांय तब उसमें उत्तम अर्क गुलाब थोडा थोडा डालकर १४ दिन मर्दन करे। पन्द्रहवे दिन उसमे कस्तूरी और अम्बर मिलाकर फिर १ दिन गुलाब के अर्क मे मर्दन करें और तैयार होने पर १—१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखाकर शीशी मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा और अनुपान—१—१ गोली। दिन मे २—३ बार शहद या खमीरे गावज़बान में मिलाकर चटावे और ऊपर से दूध या केवडे, वेदमुश्क का काढ़ा अथवा गावज़बान के फूलों का अर्क पिलावे।

उपयोग—यह हृदय को बल देनेवाला उत्तम योग है। दिल की गभराहट, हृदय की धडकन, हृदय की दुर्बलता के कारण थोडा सा चलने पर दम भरजाना आदि लक्षणो में इससे अच्छा लाभ होता है। [सिद्धयोग सग्रह से उद्धृत]

सं. वि.—यह औषध सौम्य, पौष्टिक, हृद्य, बल्य, वात—पित्तशामक तथा दाहनाशक, शरीर पोषक और रसायन है।

दीर्घकाल के प्रयोग से शरीर के अङ्गो मे आई हुई शिथिलता के कारण जो शरीर मे दौर्बल्य हो जाता है वह इसके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाता है तथा शरीर में कोमलता,

स्निग्धता, चपलता और प्रफुल्लता आदि शैशव और यौवन कालीन गुणों में वृद्धि हो जाती है। शरीर के पोषण के लिये तथा हृन्मांसकृच्छ्रता, वक्षदाह, हृन्मांस उष्मा तथा हृद्गत पित्त और वात प्रकोप को दूर करने के लिये यह औषध प्रशस्त है।

जातिफलादि ग्रहणीकपाट रस [भा. भै. र. २११६]

(र. सा. सं. । ग्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जायफल, सुहागे की खील, अभ्रकभस्म और धतूरे के बीज प्रत्येक १–१ भाग ले तथा अफीम २ भाग लेकर सब द्रव्यों को गन्धप्रसारणी के पत्तों के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। अवस्थानुसार अथवा यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे विविध अनुपानों के साथ सामग्रहणी, पक्वग्रहणी, रक्तग्रहणी, शूल सहित ग्रहणी तथा अतिसार आदि रोगो मे सेवन कराना चाहिये।

पथ्यः—दही और भात।

जीर्णज्वरांकुश रस [भा. भै. र. २१२१]

(यो. र., बृ. नि. र.; र. चं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभावमे रससिन्दुर), अभ्रकभस्म, सीसाभस्म, ताम्रभस्म, कान्तलौहभस्म, वैक्रान्तभस्म, हिङ्गुल, सुहागे की खील, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग और कूठ। सब द्रव्य समान भाग ले। इन सबको ३–३ दिन तक त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, भांगरा और संभालू के रस मे घोटकर सुखाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १ मासा) २ से ३ रत्ती। यथारोग, यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको जीर्णज्वर, क्षय, अग्निमान्द्य, कास, पाण्डु, हलीमक, उदररोग, अर्दित, ग्रहणी, अर्श, अनेक कारणों से होनेवाली अरुचि आदि रोगों पर प्रयोग करते है।

सं. वि.—यह कान्ति, तेज, बल और वीर्य की वृद्धि करके शरीर को पुष्ट करता है।

जीर्णज्वरारि रस [भा. भै. र. २१२३]

(र. र. स । उ. ख. अ. १२, र. रा. सुं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सीसाभस्म, बङ्गभस्म, खपरियाभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, शुद्ध पारा, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध जमालगोटा और शुद्ध हरताल (हरताल भस्म)। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो को मिलाने के बाद बड़के दूध मे घोटकर सबका १ गोला बनाले, उस गोले को

सुखाने के बाद हांडी में रक्खें और हांडी का मुह बन्द कर दे। उस हांडी को चूल्हे पर चढावें और नीचे से दीपक के समान अग्नि को ४ प्रहर तक सुलगायें रक्खे। हांडी के स्वांङ्गशीतल हो जाने पर उस गोले को निकाल ले। तदनन्तर भांगरे के रस और अदरक के रस में ३–३ वार घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—जीर्णज्वर के लिये श्रेष्ठ औषध है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, अग्निदीपक, दोषानुलोमक और विषनाशक है। इसके सेवन से किसी स्थान पर कफज अथवा वातज शोथ होने से होनेवाला ज्वर नष्ट होता है।

ज्वरकुञ्जरपारीन्द्र रस [भा. भै. र. २१३१)

(भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर १। तोला, उससे आधी अभ्रकभस्म, चांदी-भस्म, सोनामक्खीभस्म, रसोत, खपरिया, ताम्रभस्म, मोतीभस्म, प्रवालभस्म, लौहभस्म, शिलाजीत, स्वर्णगैरिक, मनसिल, शुद्ध गन्धक और शुद्ध नीलाथोथा। प्रत्येक २॥–२॥ तोला लेकर सबको खरल करके ३–३ दिन तक सत्यानाशी की जड, गिलोय, पुनर्नवा, अरनी, कटसरैया, कूडे की छाल, पटोल, कुटकी, सुदर्शना, कलिहारी, करञ्ज, मालकंगनी, शालपर्णी और प्रसारणी के के रस मे पृथक पृथक भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां वनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। पान मे रखकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस अत्यन्त अग्निवर्द्धक, असंख्य रोग नाशक है और विशेषत' सतत, सन्तत, एकाहिक, त्र्यहिक और चातुर्थिक आदि समस्त ज्वर और कास, श्वास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और सर्वोपद्रव सहित क्षय नष्ट करता है।

सं. वि.—यह अन्त्र शिथिलता, आमरोग, यकृत्प्लीहा निष्क्रियता और दुष्ट अन्त्र द्वारा होनेवाले और विषो के संग्रह से उत्पन्न हुये आन्त्रिक ज्वरो में पान के रस के साथ घोटकर पिलाने से सद्य फल दिखाता है।

ज्वर धूमकेतु [भा. भै. र. २१३७]

(र. सा. सं. । ज्वर. । रसे. चि. म. । अ. ९. । भै. र., र. चं.; वै. क. द्रु.; र. का. धे., भा. प्र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, समुद्रफेन, शुद्ध हिङ्गुल और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली वनालें। अनन्तर अन्य द्रव्यो का चूर्ण उसमें मिलाकर ३ प्रहर तक अदरक के रस मे घोटें और तैयार होनेपर ३–३ रत्ती की गोलियां वनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपरोक्त अनुपान के साथ इसका सेवन कराने से नवीनज्वर नष्ट होता है।

सं. वि.—यह विषनाशक, आमशोषक, स्वेदल और ज्वरघ्न है।

ज्वरमुरारि रस [भा. भै. र. २१५०]
(भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध हिंगुल। प्रत्येक द्रव्य १–१ कर्ष (१।–१। तोला), लौंग आधा कर्ष, काली मिर्च ५ तोले, शुद्ध धतूरे के बीज १० तोले और निसोत १ कर्ष (१। तोला)। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तदनन्तर अन्य द्रव्यों का बारीक चूर्ण मिलाकर भलीप्रकार मिश्रित करके दन्तिमूल के क्वाथ की ७ भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१–१ गोली। यथा रोगोचितानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अत्यन्त विष्टम्भ और अजीर्णयुक्त ज्वर, सर्वांगग्रहण (समस्त शरीर का जकडा जाना), गुल्म, आमवात, अम्लपित्त, कास, श्वास, क्षय, सर्वदोषज उदररोग, गृध्रसी, सन्धि और मज्जागत वायु, भयङ्कर शोथ, यकृत्, प्लीहा, पुरानी वातव्याधि और १८ प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते है।

सं. वि.—इस औषध का प्रयोग किसी स्थान मे व्रण, शोथ, क्षोभ, विद्रधि आदि से होनेवाले ज्वरो मे किया जाता है।

ज्वर संहार रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कुटकी, नीमकी अन्तर्छाल, कुष्ठ, नागरमोथा, सफेद सरसो, इन्द्रजौ, सुहागे की खील, लालचन्दन, अतिविष और ममेरी प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर सबका सूक्ष्म चूर्ण बनावें। इस चूर्ण से आधा रससिन्दुर लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके उसको उसमें मिलावे और मिश्रण को अदरक, तुलसी और निर्गुण्डी के रस की ३–३ भावना देकर पिष्टी तैयार होनेपर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से नवीनज्वर, जीर्णज्वर, सर्दी और कास रोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध सहज रेचक, आमपाचक, कफवातानुलोमक, पित्तशामक,

दाहनाशक, अतिसार, संग्रहिणी, अन्त्राक्षेप, अन्त्रक्षोभ, शैत्य, शैथिल्य और विविध प्रकार के ज्वरो का नाश करनेवाली है।

अन्त्र के आमजशोथ के कारण तथा अन्त्र में आम सञ्चित होने के कारण उत्पन्न हुये विविध प्रकार के कृमि और दाह आदि नष्ट होते है।

ज्वरशूलहर रस [भा. भै. र. २१५३]

(र. रा. सुं.; भै. र.; रसे. चि. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारद और गन्धक को समान भाग लेकर कज्जली बनावें। उसे ३—४ कपडमिट्टी की हुई हांडी मे रखकर उसके ऊपर उतने ही वजन की शुद्ध ताम्बे की कटोरी ढकदे और जोड को गुड चूने से अच्छी तरह बन्द करके, सुखाकर, हांडी को चूल्हे पर चढादे और उसके नीचे २ प्रहर तक पैर के अंगूठे के बराबर मोटी लकडी जलावें। तत्पश्चात् हांडी के स्वांगशीतल हो जाने पर उसमें से कटोरी सहित समस्त औषध को निकाल कर पीस ले और प्रयोग मे लावे।

मात्राः—२ से ३ रत्ती। पानमे रखकर दे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे उपरोक्त अनुपान के साथ देने से समस्त ज्वर नष्ट होते है तथा जीरा और सैंधानमक के चूर्ण को पानी में पीसकर रोगी के मुंह के अन्दर लेप करके उपरोक्त अनुपान के साथ इसको दिया जाय तो तुरन्त पसीना आता है, और चातुर्थिक आदि विषमज्वर, नवीनज्वर और साधारण सन्निपात आदि रोग नष्ट होते है।

ज्वरमातङ्ग केसरी रस [भा. भै. र. २१४८]

(भै. र., र. रा. सुं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद, शुद्ध गन्धक, हरताल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, त्रिकटु, हैड, यवक्षार, सज्जीखार, सैन्धव, नीम के बीज, कूचला के बीज और चीता। प्रत्येक १—१ मासा तथा धतूरे के बीज और वच्छनाग २—२ मासा ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् अन्य औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण उसमे मिलाकर उस मिश्रण को संभालू के रस मे अच्छी तरह घोटे और तैयार होने पर १॥—१॥ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक। उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर, आम, अजीर्ण, पाण्डु, कामला, उदररोग आदि का नाश होता है तथा यह अग्निवर्द्धक, मेद और दोषनाशक है।

इसका आविष्कार भगवान् लोकनाथ ने लोकहित के लिये किया है।

ज्वरांकुश रस [भा. भै. र. २१६६]

(भै. र.; वृ. नि. र.; र. रा. सुं. । ज्वर.; आयु. वि. । अ. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध पारा, शुद्ध वच्छनाग और शुद्ध गन्धक १-१ भाग, धतूरे के बीज ३ भाग, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) १२ भाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यो का चूर्ण उसमे डालकर खरल करके अदरक के रस के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। जम्बीरी निम्बु की मज्जा अथवा अदरक के रस के साथ अथवा मधु और अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के ज्वर नष्ट होते है।

सं. त्रि.—यह दीपक, पाचक, स्वेदल और आमशोषक है। इसके सेवन से दोषो का शीघ्र पाचन होकर ज्वर का नाश होता है। यह शोधक है।

ज्वरारि रस (भा. भै. र. २१७२]

(र. चं, र. रा. सु. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारा, गन्धक, कसीस, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), अतीस, हर्र और चम्पक की छाल समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, तत्पश्चात् अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर १ दिन तितली के रसमे घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१ से २ गोली। अदरक के रस, तुलसी पत्र के स्वरस अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन कराने से घोर नवीनज्वर, वातज, पित्तज और कफजज्वर, उपद्रव सहित सन्निपातज्वर, जीर्णज्वर तथा विपमज्वर का नाश होता है।

ज्वरार्यभ्र [भा. भै. र. २१७६)

(र. चं., र. सा. स., र रा. सुं., भै. र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध वच्छनाग सत्र १-१ भाग ले तथा धतूरे के बीज २ भाग और त्रिकटु ५ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर अदरक के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां वनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। यथा दोपानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते है। वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, सन्निपातज्वर, विपमज्वर, धातुगतविषमज्वर, प्लीहा, यकृत् गुल्म, अग्रमांस, शोथ, हिचकी, श्वास, कास, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोग निस्सन्देह नष्ट होते है।

ज्वराशनि रस [भा. भै. र. २१७७]

(र. सा. सं., भै. र.; र. चं., धन्वं. । ज्व.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद, परिशोधित गन्धक, सैन्धव, परिशीलित वच्छनाग और ताम्रभस्म प्रत्येक १–१ भाग, लौहभस्म ५ भाग और अभ्रकभस्म १० भाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और उसमे अन्य औषधियो के सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करें। इसे लौह खरल मे लौह मूसली से संभालु के रसमे घोटकर उसमे कालीमिर्च का चूर्ण पारे के बराबर अर्थात् १ भाग मिलाकर घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। पान मे रखकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर विशेषतः दारुणज्वर, कास, श्वास, घोर विषमज्वर, वमन, धातुगत परम दाह और त्रिदोषज्वर नष्ट होते है।

ज्वालानल रस [भा. भै. र. २१८०]

(र. का. धे. । अ. १३.; र. सा. सं. । अजी]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—तीनों खार (सज्जीखार, यवाखार और सुहागा), शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोठ), प्रत्येक १–१ भाग। इन सबके बराबर घी मे भुनी हुई भांग और उससे आधी सुहाञ्जने की जड की छाल। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। अनन्तर अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिश्रित करके उस मिश्रण को ३–३ दिन भांग, सुहांजना, चीता और भांगरे के रस की धूप मे भावना दे। तैयार होने पर इसका एक गोला बनाले और सम्पुट मे बन्द कर के लघुपुट मे फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर उसे निकालकर अदरक के रस की भावना दे। तदनन्तर ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। मधु मे चाटकर ऊपर से सोठ के चूर्ण को गुड मे मिलाकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अजीर्ण, अतिसार, ग्रहणीरोग, अग्निमान्द्य, कफ, ह्ल्लास (जी मचलाना), वमन, आलस्य और अरुचि का शीघ्र नाश होता है।

डामरेश्वराभ्र रस [भा. भै. र. २२०६]

(भै. र. । हिक्का.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म ५ तोले और मोरपङ्ख के अग्रभाग की भस्म ५ तोले लेकर एकत्र मर्दन करे, मिश्रण को भारङ्गी, धतूरा, गिलोय, वासा, कसौन्दी,

वकायन, चव्य, पीपलामूल और चीतामूल के ५–५ तोले स्वरस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भयङ्कर हिक्का, कास, श्वास, उदरविकार, पुरातन प्रमेह, पाण्डुरोग, गलरोग, मोह, शोथ, नेत्ररोग, मुखरोग, राजयक्ष्मा, पीनस, विषदोष, वल्क्षय, गण्डमाला, वमन, भ्रम, दाह, तिल्ली, शूल, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र और वातज, पित्तज तथा कफज रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस हिक्का तथा श्वास रोग मे विशेष गुणकारी है।

तरुणानन्द रस [भा भै. र. २५५९]

(र सा. सं., धन्वं, र. रा. सुं. । कास । रं. चिं. । स्त. ११.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा २ कर्ष (२॥ तोला) और २ कर्ष शुद्ध गन्धक लेकर पत्थर के खरल मे घोटकर कज्जली बनाले, फिर उसमे बेलपत्र, अरनी, अरलू, खम्भारी, पाढल, बला, मोथा, पुनर्नवा, आंवला, बडीकटेली, वांसे के पत्ते, विदारीकन्द और शतावर का १–१ कर्ष (१।–१। तोला) स्वरस डालकर घोटे। तदनन्तर १२॥ तोले वासे का स्वरस मिलाकर फिर घोटे, उसमे ५ तोले अभ्रकभस्म, १। तोला कपूर, १।–१। मासा जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीसपत्र, इलायची और लौंग का चूर्ण मिलाकर विदारीकन्द के रस मे घोटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। नारियल के रस अथवा दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से राजयक्ष्मा, भयङ्कर क्षय, उरःक्षत, ५ प्रकार का कास, श्वास, स्वरभङ्ग, अरुचि, कामला, पाण्डु, हलीमक, तिल्ली, जीर्णज्वर, तृष्णा, गुल्म, सामग्रहणीदोष, अतिसार, शोथ, कुष्ठ, भगन्दर आदि रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस रसायन, वीर्यवर्द्धक, नेत्रों के लिए हितकारी और पौष्टिक है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सैकडो स्त्रियो के साथ रमण करे तो भी शुक्रक्षय नहीं होता और बलबुद्धि का ह्रास नहीं होता।

इसे २ मास तक सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है। यह वीर्य को पुष्ट करके ज्वर को नष्ट करता है।

इसे नारियल के पानी के साथ सेवन करने से रसायन के गुण प्राप्त होते है। दूध के साथ सेवन करने से वीर्य की वृद्धि होती है।

तक्रमण्डूरम् [भा. भै. र. २५५५]

(भै. र. । शोथे)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गोमूत्र मे शुद्ध किया हुवा ४ पल (२० तोले) मण्डूर लेकर उसे वेलपत्र, काला और सफेद भांगरा, अरनी, पुनर्नवा और तालमखाने के रस मे १–१ दिन घोटकर उसमे ८ पल (४० तोला) गोमूत्र थोडा थोडा डालकर घोटे ।

मात्राः—१० रत्ती । तक्र के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस के सेवन से पाण्डु और शोथ अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते है ।

सं. वि.—इसे सेवन कराते समय तक्र के साथ ही आहार दे और तक्र ही पिलाये एवं जल वन्द करदे ।

तरुणज्वरारि रस [भा. भै. र. २५५७]

(र. प्र. सु. । अ. ८.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध नीलाथोथा और शुद्ध मनसिल । प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो के चूर्ण को उसमें मिलालें । इस मिश्रण को त्रिफला के रस में भलीभान्ति घोटकर गोला वनाले । इस गोले को सुखाने के वाद सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें । पुट के स्वांगशीतल होजाने पर उसमें से औषधि को निकाल लें, तत्पश्चात् आक (अर्क) और सेहुड (थूहर) के दूध तथा दन्तीमूल के क्वाथ की ७–७ भावनाये दे ।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १ मासा) २–२ रत्ती । ४ मासे कालीमिर्च का चूर्ण और ६ मासे गुड के साथ औषधि को मिश्रित करके नागरवेल के २ पानों के साथ खावे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शीतपूर्व और दाहपूर्व द्वयाहिक, तिजारी आदि ज्वर नष्ट होते है ।

इसे ज्वर आने के समय से २–३ घण्टे पहले खिलावे ।

सं. वि.—यह औषध रेचक है अतः क्षीण, बाल और गर्भिणी को नहीं देनी चाहिये ।

तारकेश्वर रस [भा. भै. र. २६१४]

(रसें. सा. सं., र. चं., र. रा. सुं., धन्वं. । मूत्राघात, रसे. चिं. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर), अभ्रकभस्म और शुद्ध गन्धक । प्रत्येक समान भाग लेकर भलीभान्ति मिश्रित करे । तदनन्तर उसको १ दिन मधु में घोटकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १। मासा)। १–१ गोली मधु मिलाकर चाटे, ऊपर से गूलर के पक्के फूलों का रस १। तोला मधु मिलाकर पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बहुमूत्ररोग नष्ट होता है।

ताम्र पर्पटो [भा. भै. र. २५६९]

(वृ. नि. र., यो. र.; र. चं. । कास)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक द्रव्य ३–३ भाग तथा शुद्ध वच्छनाग १ भाग, सबको घोटकर कज्जली बनाले। तदनन्तर उसमे थोडा गोघृत मिलाकर लुग्दी बनाले और उसे लोह पात्र मे रखकर निर्धूम अग्निपर पिघलाकर भूमिपर गोबर बिछाकर उसके ऊपर आक (अर्क) के पत्ते फैलाकर उनपर पिघले हुये द्रव्य को डाल दे और तुरन्त ही फिर आक के पत्तो से उसे ढककर ऊपर से गोबर फैला दें। स्वांगशीतल होने पर औषधि को निकाल ले। तत्पश्चात् औषधि का सूक्ष्म चूर्ण करके रक्खें।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। पीपल और मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस औषधि को ३ सप्ताह तक सेवन करने से राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है।

इसे अदरक के रस के साथ देने से सन्निपात ज्वर, पीपल के क्वाथ के साथ देने से सब प्रकार के पाण्डुरोग, अरण्ड के तेल के साथ देने से सब प्रकार के शूल, घीकुमार के रस के साथ देने से वातज तथा पित्तजरोग, बावची के रस के साथ देने से सब प्रकार के दाद, त्रिफला और मधु के साथ देने से सब प्रकारके प्रमेह, खदिर के क्वाथ के साथ देने से १८ प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते है।

इसका आविष्कार श्रीमान् मन्थान भैरवजीने लोककल्याण के लिये किया।

तालकेश्वर रस [भा. भै. र २६५६]

(र. चि. म । स्त. २ कुष्ठ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध हरताल १–१ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर सबकी कज्जली करके उसे १ दिन घृतकुमारी के रस मे घोटे। अनन्तर उसमे उसी के बराबर बावची का चूर्ण मिलावे और फिर काकोदुम्बर (कठूमर), चीता, त्रिफला, अमल्तास की छाल, बावची और वायविडङ्ग समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर ८ गुने पानी में ८ वां भाग शेष रह जाय इस प्रकार पकावे फिर यह क्वाथ, खैर का क्वाथ और केले की जड का रस बराबर एकत्रित करके उसमे २४ घन्टे उपरोक्त कज्जली को मन्दाग्नि पर पका ले और गाढा करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १। तोला) १ से २ गोली तक। त्रिफला के कषाय के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इन गोलियों के सेवन से तीसरे दिन श्वेतकुष्ठ के स्थान पर छाला पडकर वह नष्ट हो जाता है।

इस औषध के सेवन काल मे प्यास लगने पर त्रिफला का क्वाथ देना चाहिये।

नोटः—जब छाला पड जाय तो उसे फोडकर पानी निकाल दे और उस स्थान पर घाव के आराम होने तक घी या कोइ साधारण मल्हम लगाते रहें।

ताण्डवारि लौहम् [भा. भै. र. २५६१]

(आ. वे. वि. । उत्त. अ. ५९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—देवदारु १ भाग, हींग ४ भाग, कपूर १६ भाग, यशदभस्म ६४ भाग और लौहभस्म २५६ भाग लेकर सबको १—१ दिन भांगरे के रस और कुचले के क्वाथ तथा अर्जुन की छाल के रस मे घोटकर ६—६ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। जल अथवा अर्जुन की छाल के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ताण्डव रोग नष्ट होता है।

सं. वि.—ताण्डव रोग—यह रोग अत्यधिक हर्ष शोकादिक से मन में उद्वेग होनेके कारण होता है। इसमें मनुष्य नाचता सा चलता है, हाथ पैरों को नचाता है और मुट्ठी से किसी भी वस्तु को पकडने और मुंह में किसी वस्तुको देने मे असमर्थ होता है।

ताम्रकल्प [भा. भै. र. २५६६]

(रसे. चिं. । अ. ९, रसे. सा. सं., र. रा. सुं. । प्लीहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—बहेडा, पारद और गन्धक २॥—२॥ तोले तथा ताम्रभस्म सबके बराबर लेकर कज्जली करके उसे जम्बीरी निम्बु के रस, हुल हुल के रस तथा पीपल और मोचरस के क्वाथ की तेजधूप मे १—१ भावना दे, अर्थात् १ द्रव्य का रस डालकर धूपमे रख दे और सूखने के बाद अन्य द्रव्य का रस डाल दे। इस प्रकार उपरोक्त स्वरसों की भावना देकर उसे जम्बीरी निम्बु के रस मे पत्थर के खरल मे घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—इसे १ गोली से आरम्भ करके प्रतिदिन १—१ गोली बढाते हुए खाना चाहिए। इस प्रकार १० गोली तक पहुंच जाने पर फिर १—१ गोली घटानी चाहिये और १ गोली पर पहुंचकर फिर १—१ गोली बढानी चाहिये। इस प्रकार यथाक्रम वृद्धि और ह्रास द्वारा इसका प्रयोग रोग के नष्ट होने तक करें। इसे मधु के साथ ले।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अम्लपित्त, हरेक प्रकार की ग्रहणी, विषमज्वर,

पुराना ज्वर, तिल्ली, प्लीहा, दुस्साध्य यकृत् विकार, अग्रमांस, शोथ, कांस्यक्रोड, कमठ, उदररोग और अन्य अनेकों रोग नष्ट होते है ।

यह धातु वृद्धिकर, वीर्यवर्द्धक, बल और वर्णवृद्धिकर है । इसके सेवन से भूख जल्दी लगती है ।

औषध खाने के पश्चात् मुख शुद्धि के लिये चूना लगा हुवा पान खाना चाहिये और औषध पचने पर घृत युक्त दूध-भात खाना चाहिये ।

ताप्यादि लोह [रसतन्त्र सार ५९]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हैड, बहेडा. आमला, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रक-मूल, वायविडङ्ग प्रत्येक २॥-२॥ तोले, नागरमोथा १॥ तोला, पीपलामूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी और चव्य १-१ तोला, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिकभस्म, रौप्यभस्म और लौहभस्म प्रत्येक १०-१० तोले, मण्डूरभस्म २० तोला और मिश्री ३२ तोला ले । फिर सबको यथाविधि खरल करके रक्खे ।

नोटः—मूल ग्रन्थ में शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिकभस्म, रौप्यभस्म और लौहभस्म मूल से १-१ तोला लिखी है । परन्तु गुण विवेचन मे मूल ग्रन्थकार ने, इस औषधि में शिलाजीत ज्यादा परिमाण मे है, ऐसा लिखा है । अत इन औषधियो को आवश्यकतानुसार १०-१० तोले लिखा है ।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक । दिन में २ समय मूली के रस अथवा गोमूत्र के साथ । नये बालग्रह में अरण्डी के तेल के साथ । जीर्ण बालग्रह रोग मे ब्राह्मी के रस के साथ ।

वक्तव्यः—मूल मराठी ग्रन्थकारने मात्रा १ से ३ रत्ती लिखी है, किन्तु अनेक रोगियो को इतनी कम मात्रा से लाभ नही पहुंचता । उनको १ मासा या इस से अधिक देनी पडती है ।

उपयोगः—यह औषध शीतज्वर के बाद होनेवाला पाण्डु, स्त्रियो के पाण्डुरोग, हृदय की निर्बलता, थोडा थोडा सूजन, भोजन के बाद अफारा, रजोदर्शन की अनियमितता, छोटे बच्चों को मिट्टी खानेसे होनेवाला पाण्डु, कृमिजन्य पाण्डु, अरुचि, वमन, यकृत् के ऊपर में होनेवाला मांसार्बुद आदि रोगो का नाश करती है । इस रसायन के योग से रक्तकण की वृद्धि होकर अभिसरण क्रिया सुधरती है और हृदय आदि इन्द्रियां बलवान बनकर अनेक रोग नष्ट होते हैं ।

ताप्यादि योग [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णमाक्षिकभस्म, लौहभस्म, वायविडङ्ग, शिलाजीत, बड़ी हैड के छल का कपडछन चूर्ण । प्रत्येक १-१ भाग ले सबको १ दिन एकत्र खरल करके शीशी में सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—५ रत्ती चूर्ण को १॥ मासे शहद और १। तोले गाय के घी के साथ मिलाकर दें।

उपयोगः—इस योग से क्षय और पाण्डु रोगो मे अच्छा लाभ होता है।

[सिद्ध योग सग्रह से उद्धृत]

सं. वि.—यह औषध पाचक, दाहनाशक, कृमिनाशक, दोषानुलोमक, मूत्रदोषनाशक और रक्तवर्द्धक है।

इसके सेवन से वीर्य, ऊष्मा अथवा वास्ति दोषो के कारण उत्पन्न हुये पाण्डुरोग, क्षय और यकृतविकार आदि नष्ट होते हैं।

तारामण्डूर [भा. भै. र. २६३३]

(र. का. धे.; वं. से., यो. र., र. चं.; र. र., ग. नि.; च. द., वै रह.; भै. र.; वृ. मा. । शूला.; यो. त. । त. ४४, वृ. यो. त. । त. ९५. ।

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वायविडङ्ग, चीता, चव्य, हर्र, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च और पीपल। प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। मण्डूर का शुद्ध चूर्ण ९ भाग, गोमूत्र ३६ भाग और गुड ७२ भाग लेकर, चूर्ण योग्य औषधियो का चूर्ण करके सबको एकत्र करें। तदनन्तर मन्दाग्नि पर पकाने के बाद जब वह गाढा हो जाय तो उसे आग पर से उतार लें। तत्पश्चात् (शास्त्रोक्त आधा कर्ष ७॥ मासे) ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः--१ से ४ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इन्हे भोजन के आदि, मध्य और अन्त मे सेवन करने से पक्तिशूल, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, अग्निमान्द्य, अर्श, ग्रहणिदोष, कृमिरोग, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त और स्थूलता का नाश होता है।

इनके सेवन काल मे शुष्क शाक, विदाही, अम्ल और कटु पदार्थों का सेवन नही करना चाहिये।

सं. वि.—यह पक्तिशूल और साधारण शूल मे विशेष उपयोगी है।

तृप्तिसागर रस [भा. भै. र. २७०४]

(र. रा. सुं. । अति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव में रससिन्दुर) १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और निश्चन्द्र अभ्रकभस्म ४ भाग ले। इन सबको १ दिन सरसो के तेल मे घोटकर २ शरावों में बन्द करें। शरावो के ऊपर ४-५ कपडमिट्टी करके सुखाकर १ प्रहर तक वालुका यन्त्र मे पकायें। स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसमे से औषध को निकालकर १ प्रहर तक कनेर के रस में घोटकर उपरोक्त विधि से १ प्रहर वालुका यन्त्र में पकाये।

स्वाङ्गशीतल होने पर उसमे से औषध को निकाल ले। तदनन्तर उसमे यवक्षार, सज्जीखार, सुहागा, पाञ्चोनमक, चव्य, चीता, स्याहजीरा (काला जीरा), सुफेद जीरा और वायविडङ्ग का समान भाग मिश्रित चूर्ण उसके बराबर डाले।

मात्राः--(शास्त्रोक्त १ मासा) ४-४ रत्ती। साधारण गरम जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सन्निपातजअतिसार और सज्वर ग्रहणी नष्ट होती है।

तृष्णाभ्रंश रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, कपूर, शिलाजीत, सुगन्धवाला, कालीमिर्च और मिश्री। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमे अन्य द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करे और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—२ से ३ रत्ती तक। मन्दोष्ण जल के साथ।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वर, बहुमूत्र, प्लेग और तृष्णा के संशमन के लिये यह अच्छी औषध है।

त्र्यूषणादि लौह [भा. भै. र. २७८८]

(र. सा. सं., र. रा. सु. । शोथ; रसे. चि. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौहभस्म तथा त्रिकुटे का चूर्ण और यवक्षार समान भाग मिलावे।

मात्राः—२ से ६ रत्ती त्रिफला के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह लौहभस्म शोथनाशक, रक्तवर्द्धक, दाहनाशक और यकृत् तथा वृक्क के विकारो मे सुचारु रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

सं. वि.—त्रिकटु वातनाशक, आमशोषक, कफघ्न और अग्निवर्द्धक है। मन्दाग्निजन्य शोथ को नाश करने मे यह युक्तियुक्त क्रिया करता है। यवक्षार दाहनाशक, वातप्रशमक, मूत्रल और अम्लनाशक है।

यह योग अजीर्णज, यकृत्जन्य, उदरच्छदाकला विकारजन्य तथा विशेषतया वृक्कदोषज शोथ का नाश करता है। यह मूत्रल है। दाह तथा अन्य वातपित्त विकारो को दूर करता है।

त्रिपुरभैरव रस [भा. भै. र. २७३६]

(भा. प्र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) १ भाग, सोठ २ भाग, पीपल ३ भाग, कालीमिर्च ४ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग और शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) ६ भाग, लेकर सबको अदरक के रसमे घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। यथा बल काल और देशापेक्षया।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेप, हृद्दौर्बल्य, अजीर्ण और विबन्ध नाश करनेवाली है। ज्वरों की ऐसी अवस्था मे जहां अधिक काल से सामविकार ज्वर उत्पन्न करता हो अथवा कुछ २ दिन रह २ कर सामदोषो के सञ्चय होने पर ज्वर का आवेग आक्षेप सहित या आक्षेप रहित होता हो, यह औषध बहुत शीघ्र स्वास्थ्यप्रद होती है।

बच्चो के ज्वरमे जहां अधिक उष्मा के कारण हृदय की गति अधिक होने से तथा वात-नाडियों की उग्रता के कारण आक्षेप आने लगते है, ज्वर की ऐसी अवस्थाओ मे इसका उपयोग रोग और रोगी के बलानुसार तुलसीपत्र के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ कराया जाय तो ज्वर शीघ्र उतर जाता है और बच्चा बाल पक्षाघात की भयङ्कर पीडा से बच जाता है।

बच्चो के सभी प्रकार के ज्वरों में आक्षेपघ्न होने के कारण इसका प्रयोग हितावह है।

त्रिपुरसुन्दर रस [भा. भै. र. २७३८]

(भै. र.। आमाशय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मोतीभस्म और स्वर्णभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सबको ७ दिन तक घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के स्वरस में घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त आमाशय रोग नष्ट होते है। बल, वीर्य और मेद की वृद्धि होती है तथा शरीर सौम्य बनता है।

आमाशय–रोगो मे शीघ्र पचने और पुष्ट करनेवाला आहार सेवन करना चाहिये तथा दुर्जर आहार का त्याग करना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध वात, पित्त और कफ तीनो ही दोषो का शंसमन करनेवाली होने के कारण आमाशय की श्लेष्मकलाओ का पोषण करके पाचक रसो का उद्रेक यथावश्यक मात्रा मे करती है। जिससे आमाशय मे क्षोभ, दाह, शोथ, शूल आदि विकार नही हो पाते और उदर के अन्य भागो को भी यथाविधि पोषण मिलता है।

मेरे मतानुसार इसका सेवन आमाशय के उन २ विकारो पर करना अधिक लाभप्रद होगा, जिनमे आमाशयकलाओं मे शुष्कता आजाती हो, नाडियां की गति विक्षिप्त हो जाती हो और आमाशय मे व्रण, दाह, शोथ, शूल के उपद्रव मिलते हो।

यह औषध विशिष्ट पोषक होने से अन्त्र और आमाशय के क्षय विकारो मे विशेषतया प्रयुक्त करनी चाहिये।

त्रिभुवनकीर्ति रस [भा भै. र २७५५]

(बृ. नि. र; र. चं.; यो. र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गुल (शिगरफ), शुद्ध वच्छनाग, त्रिकुटा, सुहागे की खील और पीपलामूल। प्रत्येक का समान भाग वारीक चूर्ण लें। तदनन्तर इस मिश्रत चूर्ण को तुलसी, अदरक और धतूरे के रस की ३—३ भावना देकर १—१ रत्ती की गोलियां वनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली। यथा दोष वलानुसार। अदरक के रस के साथ मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से समस्त प्रकार के ज्वर और १३ प्रकार के सन्निपात का नाश होता है।

सं. वि.—यह नवीन ज्वरो के लिये प्रसिद्ध औषध है। इसके सेवन से समस्त ज्वर आराम होकर शीघ्र नष्ट होते है। यह स्वेदल है तथा वात और कफ के विकारो को शान्त करती है। इसका सेवन आमवातज्वर मे वहुत ही सफल होता है।

त्रिमूर्ति रस [भा. भै. र २७५६]

(बृ. नि. र., यो. र. । मेदो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लौहभस्म को समान भाग ले। तत्पश्चात् तीनो की कज्जली बनाकर उसे १—१ दिन संभालू के पत्तो के रस और मूसली क क्वाथ मे घोटकर (शास्त्रोक्त १—१ मासे) की गोलियां वनाले। (२) २—२ रत्ती पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ, कालीमिर्च, हर्र, वहेडा, आमला, सेंधानमक, समुद्रलवण, विडलवण, काचलवण, सञ्चलनमक और बावची समान भाग लेकर चूर्ण कर ले।

मात्राः—१—१ गोली। लोध्र के चूर्ण और मधु के साथ खाकर ऊपर से उपरोक्त १ मासा चूर्ण पानी के साथ ले।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मेद, शोथ, अग्निमान्द्य, आमवात और कफविकार नष्ट होते है।

सं. वि.—मेद के शोषण के लिये यह औषध और यह अनुपान दोनो ही युक्ति और तर्क की दृष्टि मे उच्च कोटि की औषधियां है। "त्रिमूर्ति रस" आमशोषक, दोषानुलोमक, रक्तशोधक, रक्तवर्द्धक और विषनाशक है। इसका उपरोक्त चूर्ण के साथ सेवन, धातनाशक, आमपाचक, मेदनाशक, वातप्रशमक और विषनाशक होता है।

त्रिविक्रम रस [भा. भै. र. २७५९]

(र. सा. सं.; यो. र., र. चं.: रसें. सा. सं.; धन्व., र. र. । अश्मरी.; र. चिं. । स्तव. ११; शा. सं. । मं. अ. १२; रसे. चिं. । अ. ९, वृ. यो. त. । त. १०२; यो. त. । ता. ५०: र. प्र. सु. । अ. ८; र. स. क । उल्ला. ५)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म को समान भाग बकरी के दूध मे मन्दाग्नि पर पकावे । दूध के सूखजाने के बाद उस द्रव्य को ले ले । शुद्ध पारा और गन्धक भी ताम्रभस्म के बराबर ले । तदनन्तर तीनों की कज्जली बनावे । कज्जली को १ दिन पर्यन्त संभालू के पत्तों के रस में घोटकर गोला बनालें, गोली बनाने के बाद सुखाले । तत्पश्चात् उस गोले को सम्पुट मे बन्द करके वालुका यन्त्र मे रखकर १ प्रहर तीव्राग्नि पर पकावो । स्वांगशीतल होनेपर उस यन्त्र से औषधि को निकालकर पीस ले ।

मात्राः—२ रत्ती । बीजौरा निम्बु की जड को पानी में पीसकर उसके साथ सेवन करावे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शर्करा और अश्मरी नष्ट होती है ।

सं. वि.—यह द्रव्य मूत्रल, विषनाशक और पोषक है ।

त्रिनेत्र रस (द्वितीय) [र. यो. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म तथा अभ्रकभस्म । प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर कज्जली बनावे और फिर उसमें अभ्रकभस्म मिलाकर भलीभान्ति घोटे । तदनन्तर अर्जुन की छाल के क्वाथ की १ के पश्चात् अन्य इस प्रकार धूप मे २१ भावना दे । भलीभान्ति पिष्टी तैयार होनेपर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले । घर्म शुष्क करके सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१ से २ गोली तक । दिन में १—२ बार यष्टि मधु और अश्वगन्धा के चूर्ण मे मिलाकर मधु मिश्रित करके चाटें ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से वातज—पित्तज, कफज. त्रिदोषज अथवा कृमिज हृद्रोग नष्ट होते हैं ।

सं. वि.—यह औषध रसायन, विपाक मे मधुर, शोधक, पोषक, दाहनाशक, वात—पित्त क्षयनाशक, संज्ञावाहिनी पोषक, व्रणनाशक, शोथनाशक, हृद्य, वल्य, और वृष्य है । इसके सेवन से आमाशय मे एकत्रित वात—पित्त—कफज और सन्निपातज दोष नष्ट होते हैं । आमाशय की दिवार और श्लेष्मकलाओ का पोषण होता है । हृदय की विषम गति सम होती है तथा अन्तर्बाह्य हृदय के आवरण, श्लेष्मकलायें, महाधमनी कपाट और फुफ्फुस धमनियां निर्विकार होकर स्वस्थ क्रियारत होती हैं ।

त्रिफला लौह [भा. भै. र. २७५१]
(र. सा. सं. । अजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, मिश्री, पीपल. और अपामार्ग (चिरचिटे) के बीजो का चूर्ण १–१ भाग ले तथा लोहभस्म इन सबके बराबर लेकर एकत्र खरल करें।

मात्राः—४ से ६ रत्ती। घी, मधु और मिश्री के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भस्मक रोग नष्ट होता है।

सं. वि—यह औषध दाहनाशक, पित्तशोषक और आमाशय, ग्रहणी तथा अन्त्र मे होनेवाले वातपित्तज और पित्तजरोगो के लिये अत्युपयोगी है।

त्रिनेत्रारक रस [भा. भै. र. २७३१]
(भै. र. । शोथ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सुहागा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, लौहभस्म और शुद्ध पारद। सब द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तत्पश्चात उसमे अन्य द्रव्यो को मिलाले और १ दिन पर्यन्त अदरक के रस मे घोटकर गोला बनाले। गोले को सुखाने के बाद सम्पुट मे बन्द करके लघुपुट मे फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर औषधि को निकाल ले और पीसकर रख ले।

मात्राः—१ से ४ रत्ती। अरण्डमूल और अपामार्ग के ५ तोले क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से असाध्य शोथ भी नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—उदर विकारो के कारण होनेवाले शोथो मे इसका उपयोग प्रशस्त है।

त्रिफलादि मण्डूरम् [भा. भै. र. २७४२]
(र का. धे. । अधि. ११)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिफला, गिलोय, भांगरा, काला भंगरा, अडूसा (वासा) शतावर, मुण्डी, बला (खरैटी), पटोल, पित्तपापडा, भारङ्गी, चीरायता, नीम की छाल और ब्राह्मी। इन सब के क्वाथ या स्वरस की पुराने मण्डूर की भस्म को १–१ भावना दे तदनन्तर उसे आठ गुने त्रिफला के क्वाथ मे पकावे। क्वाथ के सूखने पर मण्डूर का चूर्ण करले और उसमे उसीके बराबर, मिश्री तथा हर्र, बहेडा, आंवला, त्रिकुटा, मोथा, वायविडङ्ग जीरा, अजवायन, मुलैठी, धनिया, दालचीनी, तेजपात, इलायची, और नागकेसर का समान भाग मिलाहुवा चूर्ण मण्डूर से चौथाई मिलाकर चिकने पात्रमे भरकर रख ले।

मात्रा—४ से ५ रत्ती। घी, मधु और मिश्री के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अम्लपित्त नष्ट होता है।

त्रिकट्वादि लौह [भा. भै. र. २७०९]

(वृ. नि. र. । क्षय,; वै. क. द्रु. । स्क. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिकुटा, (सोंठ, मिर्च, पीपल), हर्र, बहेडा, आमला, इलायची, जायफल और लौंग १–१ भाग ले और तीक्ष्णलौहभस्म ९ भाग ले। इन सबका यथाविधि चूर्ण बनालें।

मात्राः—४–४ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन करने से कास, श्वास, क्षय, प्रमेह, पाण्डुरोग, भगन्दर, ज्वर, अग्निमान्द्य, शोथ, मूर्च्छा और ग्रहणी का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, उदरपोषक व्रण और शोथ प्रशमक, यकृत्, प्लीहा विकार प्रशमक, क्षोभनाशक तथा रक्तवर्द्धक है।

त्र्यम्बकाभ्र [भा. भै. र. २७७९]

(भै. र. । स्वरभेद.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१ पल (५ तोले) निश्चंद्र अभ्रकभस्म मे कटेली, बला, गोखरू, घृतकुमारी (ग्वारपाठा), पिप्पलीमूल, भांगरा, वासा, बेरीके पत्ते, आमला, हल्दी और गिलोय में से प्रत्येक का ५–५ तोले स्वरस मिलाकर भलीभान्ति घोटकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक। जल अथवा मधु के साथ)

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और अधिक बोलने या बुरे पानी के उपयोग से स्वरभङ्ग तथा खांसी, श्वास, उरोग्रह, यकृत्, हिक्का, तृष्णा, कामला, अर्श, ग्रहणी, ज्वर, अनेक प्रकार का शोथ, क्षय, अर्बुद और अन्य कितने ही रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह अद्भुत गुणकारी त्र्यम्बकाभ्र अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्द्धक), अग्निवर्द्धक और रसायन है।

त्रैलोक्य चिन्तामणि रस [भा. भै. र. २७६४]

(र. चं.; र. सा. सं., र. रा. सुं., धन्वं; आ. वे. वि. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हीराभस्म, स्वर्णभस्म और चांदीभस्म १–१ भाग ले। तीक्ष्णलौहभस्म ३ भाग तथा अभ्रक और रससिन्दुर ६–६ भाग लेकर सबको पत्थर या लोहे के चिकने खरल में घृतकुमार (ग्वारपाठा) के रस मे मर्दन करके १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सैकडो अन्य योगों से परित्यक्त रोग भी अच्छे हो जाते है। इसके प्रयोग से सम्पूर्ण रोग नष्ट होते है तथा मनुष्य बुढापे से मुक्त होकर सुख प्राप्त करता है।

सं. वि.—यह औषध अनुलोम और प्रतिलोम दोनों क्षयों मे तथा फुफ्फुसक्षय, अन्त्रक्षय और हृदयवृद्धि, हृदयस्फीति तथा हृद्तोद मे सामान्यत: अच्छा काम करती है। ज्वर की ऐसी अवस्थाओं में जहां सन्निपातिक लक्षण प्रकट हो गये हों अथवा आक्षेप आदि विकारों की सम्भावना हो तथा अभिन्यासज्वर, आन्त्रिक सन्निपात, मस्तिष्कक्षय आदि मे इसका उपयोग परम हितावह है।

क्षीणकाय, क्षीणवीर्य और क्षीणमेधा व्यक्तियों के लिये इसका उपयोग सर्वथा हितपूर्ण है। यह औषध पौष्टिक, रसायन, वलवीर्यवर्द्धक, वर्णकारक, अग्निसंदीपक और कान्तिवर्द्धक है।

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस [भा. भै. र. २७६५]

(र. रा. सुं.; भै. र., र. चं., यो. र. । राजय., वृ. यो. त. । त. ६७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, हीराभस्म, चांदीभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, मोतीभस्म, शंखभस्म, प्रवालभस्म, हरतालभस्म और शुद्ध मनसिल। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली वनाले, तदनन्तर अन्य द्रव्यों को मिलाकर सवको ७ दिन चीते की जड के क्वाथ मे और ३-३ दिन आक के दूध, संभालू के रस, सूरण (जिमीकन्द) के रस और सेहुड (सेड, थोहर) के दूध मे घोटकर लुगदी बनालें। तत्पश्चात् उस लुगदी को पीले रग की कौडियों मे भर दे और सुहागे को आक के दूध में पीसकर उससे उन कौडियो का मुंह वन्द करदे। तदनन्तर उन्हे शराव सम्पुट मे वन्द करके गजपुट मे फूंक दे। उनके स्वांगशीतल होने पर निकालकर पीसकर उसमे उसके वरावर पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर) और उससे चौथाई वैक्रान्तभस्म मिलादें। तत्पश्चात् उसे सुहांजने की जड की छाल के क्वाथ की ७ भावना, चित्रकमूल के क्वाथ की २१ भावना और अदरक के रस की ७ भावना देकर वारीक चूर्ण वनाले। तदनन्तर उसमे उसका चतुर्थांश सुहागा, शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) और कालीमिर्च मे से प्रत्येक का चूर्ण तथा लौंग, सोंठ, हर्र, पीपल और जायफल में से प्रत्येक का महीन चूर्ण वच्छनाग का चतुर्थांश मिलाकर सवको १ दिन निम्बु और अदरक के रस मे घोटकर (शास्त्रोक्त ४-४ रत्ती की) व्यवहारार्थ १-१ रत्ती की गोलियां वनावे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ४-४ रत्ती) १ से २ रत्ती। पीपल और मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कास, क्षय, श्वास, वातव्याधि, पाण्डु, शूल, ग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, तिल्ली, जलोदर, अश्मरी, तृषा, शोथ, हलीमक, उदररोग, भूतोन्माद, भगन्दर, ज्वर, अर्श, कुष्ठ आदि रोगों का नाश होता है। यह "त्रैलोक्य चिन्तामणि" रस साध्यासाध्य रोगों का नाश करता है।

सं. वि.—विविध अनुपानों के साथ सेवन करने से यह समस्त रोगों को नष्ट करता है। अग्नि बढाता है। बलवृद्धि करता है। तेजकी वृद्धि करता है। वीर्यवर्द्धक ह। विष का नाश करता है और शरीर को पुष्ट बनाता है। नियमपूर्वक इसको खाते रहने से मृत्यु (अकालमृत्यु) का नाश होता है। पलित (बालो का सुफेद होना) नहीं होता। यह मानस शरीर को भी पुष्ट करता है।

शास्त्रोक्त विधिपूर्वक बनाया हुवा "त्रैलोक्य चिन्तामणि रस" उपरोक्त गुणों युक्त होता है, इसमे कोई सन्देह नहीं है। इसका सेवन भयङ्कर से भयङ्कर रोग की दुष्ट से दुष्ट अवस्था मे उग्रदोष प्रकोप विचार के अनन्तर उपयुक्त अनुपान के साथ किया जाय तो परिणाम अवश्य सुखद आता है।

यह प्रसिद्ध औषध है। अधिक विवेचन ऐसी प्रसिद्ध औषधियों के लिये अनावश्यक है।

त्रैलोक्यडम्बर रस [भा. भै. र. २७६८]

(यो. र.; र. सा. सं.; र. रा. सुं., र. का. धे. । ज्वर.; र. चिं. । अ. ९; र. र. स. । अ. १२)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, पीपल, शुद्ध जमालगोटा, कुटकी, हर्र, निसोत और शुद्ध कुचला। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् उसमे अन्य औषधियो का बारीक चूर्ण मिलाकर १ दिन पर्यन्त सेहुंड (थोहर] के दूध में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१-१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह नवीन ज्वरनाशक है। यह औषध रेचक है। इसका सेवन कोमल कोष्ठवाले को, बच्चो को, गर्भिणी और वृद्धो को या तो नही कराना चाहिये अथवा तो सद्वैद्य अवस्था का विचार करते हुये प्रयोग करें।

सं. वि.—क्रुर कोष्ठवाले नवीन ज्वर के रोगियों पर इसका प्रयोग निस्संकोच करना चाहिये।

दन्तोद्भेद गदान्तक रस [भा. भै. र. ३१९१]

(भै. र.; र चं. । बाल.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोठ, अजमोद, अजवायन,

हल्दी, मुलैठी, देवदारु, दारुहल्दी, वायविडङ्ग, इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, कचूर, काकडासिंगी, विडनमक, अभ्रकभस्म, शंखभस्म, लोहभस्म और सोनामक्खीभस्म। प्रत्येक द्रव्य का वारीक चूर्ण समान भाग लेकर सबको दूधमे घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

प्रयोग विधि—इन्हे पानी या दूध मे घिसकर बालक के मसूडो पर घिसने से दान्त निकलने के समय होनेवाले रोग यथा ज्वर, आक्षेप आदि नष्ट होते है तथा दान्त शीघ्र निकल आते है।

सं. वि.—अधिकतर आजकल बच्चो को दान्त निकलते हुये बहुतसी पीडाये सहन करनी पडती है। हरे, नीले पीले दस्त, वमन, ज्वर, आक्षेप आदि, ये सब न हो इस लिये और दान्त सुखपूर्वक निकले इसलिये भी इस औषध का वारीक चूर्ण, मधु, पानी या दूध मे मिलाकर जब बच्चे की ९ मास की अवस्था होने आये तब से मसूडो पर उंगली से लगाना चाहिये।

दरदादिपुट पाक (वटी) [भा. भै. र. ३१९३]

(वृ. नि. र. । ज्वरातिसार)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिङ्गुल (शिंगरफ) १ भाग, अफीम १॥ भाग और सुहागे की खील आधा भाग ले। सबको पीसकर पिष्ठी बनावे और फिर उसे जायफल के भीतर भरकर उसके ऊपर गेहूं के आटे का अच्छा मोटा लेप कर दे और उसे उपलो (कण्डों) की निर्धूम अग्नि मे दबा दे। जब आटे का रंग भली प्रकार लाल हो जाय तो जायफल को निकालकर पीसकर १-१ रत्ती की गोलिया बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। गाय के दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरातिसार, अग्निमान्द्य, निद्रानाश और अरुचि का नाश होता है।

सं. वि.—यह बलपुष्टि करदेनेवाली औषध है।

दरदेश्वर रस [भा. भै. र. ३१९६]

(र. का. धे. । अधि. ३२, वृ. यो त. । त. ४३)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—५ तोला शुद्ध शिंगरफ (हिंगुल) और १ पल (५ तोला) शुद्ध गन्धक लेकर दोनों को घोटकर कज्जली बनाले। तदनन्तर उसे लोहे के खरल में डालकर मन्दाग्नि पर पिघलावे। तत्पश्चात् उसे अग्निसे उतारकर तब तक घोटे जब तक वह कज्जल के समान न हो जाय। तदनन्तर उसमे ५ तोले हरताल मिलाकर ३ दिन तक घोटे और फिर उसे कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी मे भरकर उसका मुंह बन्द करके ६ दिन तक बालुकायन्त्र

में पकावे। शीशी के स्वांगशीतल हो जाने पर उसमे से औषध को निकालकर बारीक चूर्ण करके रक्खें।

मात्राः—१–१ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय, कास और इनके अनुवन्धि रोगो का नाश होता है।

दुग्धवटी [भा. भै. र. ३२१३]
(भै. र.; धन्व. । शोथ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) और अफीम १२–१२ रत्ती, लौहभस्म ५ रत्ती तथा अभ्रकभस्म ६० रत्ती लेकर सबको दूध मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। यथा अग्निवलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—नाना प्रकार के शोथ, ग्रहणीरोग, विषमज्वर, अग्निमान्द्य, पाण्डुरोग आदि रोगो का इसके सेवन से नाश होता है।

पथ्य—केवल दूध।

परहेज—नमक और जल तब तक न दे जब तक रोग समूल नष्ट न हो जाय।

दुग्धवटी [भा. भै. र. ३२१२]
(भै. र. । शोथ।)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध मीठा तेलिया (वच्छनाग), शुद्ध धतूरे के बीज और शुद्ध शिंगरफ (हिङ्गुल) समान भाग ले। तदनन्तर तीनो को १ प्रहर तक धतूरे के पत्तों के रस में घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः—१–१ गोली। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अनेक प्रकार के शोथ, पाण्डु और कामला रोग नष्ट होते हैं।

पथ्य—दूध–भात अथवा दूध रोटी अथवा दूध मिलाहुवा दलिया आदि।

परहेज—नमक और जल का त्याग करना चाहिये। प्यास मे दूध ही पिलावे।

दुर्जलजेता रस [भा. भै. र. ३२१५]
(वृ. यो. त. । त. ६२; र. चं.; वै. रह., यो र., वृ. नि. र. । ज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध वच्छनाग २ भाग, कौडीभस्म ५ भाग और कालीमिर्च का चूर्ण ९ भाग लेकर सबको अत्यन्त महीन खरल करके कपडे से छान ले। तदनन्तर उसको अदरक के रस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—२-२ गोली। प्रात सायं जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से दुग्ध्जल के विकार से उत्पन्न हुये ज्वर, अजीर्ण, अफारा, कब्ज, शूल, श्वास, खांसी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

भोजन के पहले सोंठ, गुड़ और हैड की चटनी खाने से, वा अदरक और जवाखार का चूर्ण गरम पानी के साथ पीने से भिन्न २ देशों के पानी का असर नहीं होता। अर्थात् देश देश के पानी नहीं लगते।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक और नवीन तथा जीर्णज्वर नाशक श्रेष्ठ औषध है। इसका प्रयोग मलेरिया में अच्छा काम देता है। भाद्रपद और अश्विन के अन्दर जब मलेरिया ज्वर का प्रकोप साधारणतया सर्वत्र और विशेषतया आनूप प्रदेशोंमे होता है, तब इसका प्रयोग प्रत्येक प्राणी १-१ गोली की मात्रा मे जल के साथ करता रहे तो कोष्ठ शुद्ध रहता है, दोष का सचय नहीं होता और ज्वर के आक्रमण का भय नहीं रहता।

धातुज्वराङ्कुश रस [भा. भै. र. ३३२६]

(नि. र., बृ. नि. र. । ज्वर. ।

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया), सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला और कूठ। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कजली बनाले। फिर उसमें अन्य द्रव्यों का बारीक चूर्ण मिलाकर ३-३ दिन भांगरा, अदरक और संभालू के रस मे घोटकर १-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। यथोचित अनुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अजीर्ण, वायुजन्यकास (खांसी), सर्वधातुगतज्वर आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह दीपिनी और रुचिवर्द्धिनी औषध है।

धात्रीलौह [भा भै. र. ३३३१]

(र. का. धे., बृ. मा.; च. द., ग. नि. । शूला.; बृ. यो. त. । त. १२२; भै. र. र. र. । शूल, र. चं., र. सा. स.; र. ग. सुं. । पित्तरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—आमले का चूर्ण ८ पल (४० तोले), लोहभस्म ४ पल और मुलैठी का चूर्ण २ पल लेकर सबको ७ दिन तक गिलोय के क्वाथ की भावना देकर धूप मे सुखावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। घी और मधु के साथ। भोजन के आदि मध्य और अन्त में।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—भोजन के आदि मे सेवन करने से पित्त और वातज अन्न पानादि से होनेवाले रोग नष्ट होते है, भोजन के मध्य मे सेवन करने से विष्टम्भ नष्ट होता है तथा आहार विदग्ध होकर दाह नहीं करता। भोजन के अन्त मे सेवन करने से अन्नपानगत विकार नष्ट होते है अर्थात् यह अपथ्य दोष का नाश करता है।

इससे सेवन से कष्टसाध्य शूल, अम्लपित्त और कफपित्तज रोग नष्ट होते है। यह "धात्री लोह" आंखो को हितकारी, पलितनाशक, पाण्डु कामला नाशक, रक्तवर्द्धक और शोधक है।

सं. वि.—दुष्ट अन्नपानादि द्वारा होनेवाले पित्तज, वातपित्तज और वातज अम्लपित्त मे इसका सेवन घी, मधु और मिश्री के साथ सर्वदा उपयोगी पाया जाता है। इसके सेवन से कोष्ठबद्धता नहीं होती। अन्न सुखपूर्वक पचता है और मलशुद्धि यथा सम्भव यथेच्छ होती है। यह रक्तवर्द्धक, यकृत् और अन्त्र के विकारों को नाश करनेवाली औषध है।

धातुबद्ध रस [भा. भै. र. ३३२७]

(र. र.; धन्व. । रसाय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल या सीसाभस्म, सोनामक्खी या लोहभस्म और अभ्रकभस्म १—१ भाग लें तथा शुद्ध पारा इन सबके बराबर लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले और उसमे उपरोक्त औषधें तथा पारे का चौथा भाग सुहागे की खील मिलाकर १—१ दिन, हारसिंगार या करेले के रस तथा द्रवन्ती और चौलाइ के रस मे घोटे। फिर उसमे उसका आधा भाग मण्डूरभस्म मिलाकर १ दिन तक घोटे। तत्पश्चात् उसमें उपरोक्त औषधियो का रस मिलाकर धूप मे रख दे। (रस इतना डालना चाहिये कि वह औषध से २—३ अंगुल ऊपर आ जाय)। तदनन्तर उस समस्त औषध का गोला बनाकर सुखाले और (उसे वटादि के पत्तो मे लपेटकर) उसपर समान भाग मिश्रित हर्र और मिट्टी को पानी मे पीसकर लेप कर दे फिर उसपर १ अंगुल मोटी कपडमिट्टी करके सुखाले। इसे मूषा मे बन्द करके १।। घडी तक तीव्राग्नि मे पकावे और स्वाङ्गशीतल होनेपर रस को निकालकर पीस लें।

मात्राः—१—१ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह धातुबद्ध रस समस्त रोगो को नष्ट करता है।

नयनामृत लौह [भा. भै. र. ३६८०]

(र. सा. सं.; वृ. मा. । नेत्र)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, काकडासिंगी, कचूर, रास्ना, अतीस, मुनक्का, नीलकमल, काकोली, मुलैठी, कंघी, नागकेसर, छोटी कटेली और बडी कटेली का चूर्ण १—१ भाग, लौहभस्म ९ भाग और अभ्रभस्म ९ भाग सबको एकत्र मिलाकर १—१ दिन त्रिफला के क्वाथ, तिल के तेल और भांगरे के रस में घोटकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१—१ गोली। मधु अथवा दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

सं. वि.—यह औषध रक्तवर्द्धक, शोधक, रोचक, पुष्टिकारक और वातकफनाशक है। इसके सेवन से यकृत् की क्रिया बढती है और दूषित पित्त का संशोधन होकर पाचक, आलोचक, व्यञ्जक आदि पित्तो का पोषण होता है।

नवग्रहीराज शिरोभूषण

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीला सोमल, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, गोदन्तीभस्म, शुद्ध तुत्थ, शुद्ध मनसिल और खर्परभस्म, प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर उसमे हिंगुल और तदनन्तर सोमल का मिश्रण करे। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को उसमे मिलावें फिर उसे कटेली के पत्तो के रस मे घोटकर (सूखने पर) कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी मे भरे और वालुकायन्त्र मे ४ प्रहर पर्यन्त मन्दाग्नि पर पकावें। शीशी के स्वांगशीतल हो जाने पर निकालकर घोटे और करेले के पत्तों के रस के साथ घोटकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्रा:—१ से २ रत्ती तक। मधु अथवा यथा दोषानुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सर्वाङ्ग, एकाङ्ग और अर्धाङ्ग तथा पक्षाघात नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, आक्षेपनाशक, विषनाशक, दाहनाशक, रक्तवर्द्धक, दोषानुलोमक, आमशोषक, वातनाडीपोषक और रक्तचाप को यथा स्थिर रखनेवाली है।

इसके सेवन से शरीर के विविध विभागो मे होनेवाले मांसपेशी और कण्डराओ के संकोच प्रसार विकार तथा नाडीदौर्बल्य के कारण होनेवाली क्रियामन्दता या क्रियाशैथिल्य शीघ्र नष्ट हो जाती है।

जिन वातप्रधान मानवो के हाथ पैर मे शिथिलता हो जाती हो अथवा धडकन पैदा हो जाती हो ऐसे रोगियों को इसका सेवन बहुत ही लाभप्रद है।

नवज्वरेभसिंह रस [भा भै. र. ३६०७]

(भै. र.; बृ. नि. र.; वै. क. द्रु., र. चं., र सा. सं., र. रा सुं, र. का. धे. । ज्वर.; र. मं. । अ. ७; रसे. चि. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, कालीमिर्च, सोंठ और पीपल १—१ भाग तथा शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) आधा भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले तत्पश्चात उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर २ दिन तक खरल करके २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नवीनज्वर, धातुगतज्वर और संग्रहणी—विकार नष्ट होते हैं।

नवायस चूर्ण [भा. भै र. ३६०८]

(यो. चि. । अ. ३, च स. । चि. अ. २०, ग नि. । चूर्णा; यो त. । त. २५, बृ. यो. त. । त. ७४; र. का. धे. । प्रमे, भै. र.; र. चं, वं. से., भा. प्र., बृ. नि र; वै. र, धृ मा.; च द, र र., र. रा. सुं.; यो. र.; सु. सं । पाण्डु चिकि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चीता। प्रत्येक द्रव्य १—१ भाग ले तथा लोहभस्म ९ भाग ले और सबको एकत्र खरल करे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १८ रत्ती) २ से ६ रत्ती तक। मधु और घी के साथ अथवा छाछ या गोमूत्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से पाण्डुरोग, शोथ, हृद्रोग, उदररोग, कृमिरोग, कुष्ठ, भगन्दर, अग्निमान्द्य, अर्श, अरुचि आदि रोग नष्ट होते है।

यदि कफ का प्रकोप हो तो अदरक के रस के साथ सेवन कराना चाहिये।

सं. वि.—यह द्रव्य रक्तवर्द्धक, शोधक, प्लीहा—यकृत्‌रोग नाशक और अग्निवर्द्धक है। वातपित्तज उदर के विकारो मे इसका सेवन, जहां यदा—कदा अतिसार की अवस्था हो जाती हो अथवा क्षोभ के कारण आमाशय की विदग्धता उत्पन्न हो जाती हो, बहुत हितकर होता है।

नष्टपुष्पान्तक रस [भा. भै. र. ३६१३]

(र. चं. । स्त्री. रो)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, वंगभस्म, सुहागेकी खील, चांदीभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म। प्रत्येक द्रव्य ५—५ तोले ले। प्रथम पारे और

गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर भलिगन्ति घोटें। तदनन्तर उसे गिलोय, त्रिफला, दन्ती, हारसिंगार, कटेली, मकोय, हल्दी, तालीसपत्र, वेनकीगोग, गोखरू, वासा और खरैटी में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ की पृथक् पृथक् ३-३ भावनायें दे। तत्पश्चात् सेंधानमक, मुलैठी, दन्तीमूल, लौंग, वंशलोचन, रासना और गोखरू का १-१ शाण (५-५ मासे) चूर्ण उक्त औषध में मिलाकर उसे १-१ दिन जयन्ती और तुलसी के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नष्ट आर्तव, नष्ट शुक्र, वीर्यदाह और योनि के क्लेद इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

नागरस [भा. भै. र. ३६२२]

(र. चं.; यो र. । कास.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौंग, जायफल, जावित्री, कालीमिर्च और पीपलामूल का चूर्ण तथा नागभस्म १।-१। तोला ले, कस्तूरी और केसर ५-५ मासे लेकर सबको अदरक के रस मे घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कफ, क्षय, श्वास, कास और उदरशूल नष्ट होते हैं। इसका विभिन्न अनुपानों के साथ सेवन कराने से अनन्य रोगों का भी नाश होता है।

नागवल्लभ रस [भा भै. र. ३६२६]

(यो. र. । मेह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कस्तूरी, दालचीनी और सुहागे की खील १।-१। तोला तथा केसर, शिंगरफ और पीपल २॥-२॥ तोला एव अकरकरा जावित्री, जायफल और शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) ५-५ तोला ले। सबके चूर्ण को ३ दिन पान के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। मधु और अदरक के रसमे अथवा पान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह, कास, क्षय और कफस्थानगत वातजरोग नष्ट होते हैं।

नागार्जुनाभ्र रस [भा भै. र. ३६३४]

(र. चं.; र. रा. सुं., र. सा. सं.; धन्वं. । हृद्रोग. रसे. चि. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सहस्रपुटी वज्राभ्रक भस्म को ७ दिन अर्जुन की छाल के रसमे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया से सुखालें।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से हृद्रोग (हृदज की अधिक धडकन, हृदय अवसाद या हृद्गति की मन्दता), सब प्रकार के शूल (हृन्मांसशूल, फुफ्फुसावर्णशूल, महाधमनिशूल तथा हृत्कपाटशूल, वातजहृद्शूल आदि), अर्श, हृल्लास, छर्दी, अरुचि, अतिसार, अग्निमान्द्य, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, विषमज्वर आदि हृद्रोगानुबंधि रोग नष्ट होते है। यह बल वीर्य की वृद्धि करता है और रसायन है।

सं. वि.—इस औषध का जिन जिन रोगो पर सेवन का शास्त्र ने निर्देश किया है वे अधिकतर सभी हृद्रोग से सवधित है अर्थात हृदरोग अनुवंध्य और अन्य सब अनुबन्धी है। हृद्रोग की किसी भी परिस्थिति मे जहां रक्तहीनता के कारण पोषणाभाव से रोग उत्पन्न होते हों, प्राणाभाव से हृद्विह्वल होता हो, हृन्मांस वायु द्वारा प्रस्फुटित होकर वेदना उत्पन्न करता हो, हृदावर्णों के बीच वायु भरकर हृद्तोद उत्पन्न करता हो अथवा हृदय का शोथ हो उन समस्त विकारों पर यह औषध प्रशस्त है।

नागेन्द्र गुटिका [भा. भै. र. ३६३६]
(र. र., र. का. धे. । मेह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सीसाभस्म, अगर, दारुहल्दी, अङ्कोल–फल, आमला और बहेडे की मींग १–१ पल (५–५ तोले) लेकर सबको धतूरे के फल के रस मे घोटकर शास्त्र के विधान से १०० गोलियां बनाले। व्यवहारार्थ १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। छाछ के साथ खाकर ऊपर से हल्दी और गिलोय का ५–५ मासे मिश्रित चूर्ण मधु में मिलाकर चाटना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है।

नारसिंह रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—नागभस्म ४ भाग, वंगभस्म ३ भाग, शुद्ध पारद ७ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध वच्छनाग ४ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमे अन्य द्रव्यो को मिश्रित करे। मिश्रण को भलिभान्ति खरल करके भांगरे, चित्रकमूल और अदरक के रस की १–१ भावना दे और पिट्टी तैयार होने पर गोला बनाकर उसे सुखावे। सूख जाने पर उसे शराव सम्पुट मे बन्द करके और शराव सम्पुट पर ७ कपडमिट्टी करके २ प्रहर बालुकायन्त्र मे पकावे। शराव सम्पुट के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसमें से औषध निकालकर प्रयोग मे लावें।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। यथा रोगानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से राजयक्ष्मा, बहुमूत्र, विद्रधि, श्वास, कास, विषमज्वर, सूतिकारोग, सततज्वर, शूल, सब प्रकार के प्रमेह और पाण्डु रोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, पाचक, रोचक, रात्रिस्वेदनाशक, मेहनाशक, आक्षेप-नाशक, वात-कफज विकारनाशक तथा विष और कीटाणुनाशक है। इसके सेवन से उदर के किसी भी भाग मे उत्पन्न हुये व्रण तथा श्लेष्मकला शोथ नष्ट हो जाते हैं। शरीर की शिथिलता, वीर्यक्षीणता और वक्ष के किसी भी अवयव मे वातज और कफज विकार इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं।

नाराच रस [भा. भै. र. ३६४४]

(भै. र, धन्व., र. का. धे., यो. र. । उदरा., र. मं. । अ. ७, रसे. चि. । अ. ९; वृ. यो. त. । त. १०५, शा. सं. । म. ख. अ. १२; यो. त. । त. ५३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, सुहागे की खील और कालीमिर्च का चूर्ण १-१ भाग, शुद्ध गन्धक, पीपल और सोंठ २-२ भाग तथा शुद्ध जमालगोटा इन सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर खरल करे और पानी के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। चावल के धोवन के साथ अथवा तण्डुलोदक के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से विरेचन होकर गुल्म, प्लीहा और अन्य उदररोग नष्ट होते हैं।

नारायण ज्वराङ्कुश रस [भा. भै. र. । ३६४६]

(र. चं, यो. र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध सोमल (संखिया), शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया), शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, सोठ, मिर्च, पीपल, कौडीभस्म, भांग, धतूरे के शुद्ध बीज और सुहागा। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर ३ दिन पर्यन्त अदरक के रसमें घोटकर १-१-रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१/२ से १ गोली तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शीतज्वर, सन्निपात, विषूचिका, विषमज्वर आदि रोग अति शीघ्र नष्ट होते है।

इस औषध को खिलाने के बाद रोगी को वस्त्र उढ़ादे। यह स्वेदल है अतः पसीना आकर ज्वर नष्ट हो जाता है।

इसके सेवन काल मे यथिच्छा पथ्य दे सकते है यथा दधि, ठण्डा पानी इत्यादि ।

नारीमत्तगजाङ्कुश रस [भा. भै. र. ३६५२]

(वृ. यो. त । त १४७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा (अभावमे रससिन्दूर या चन्द्रोदय) १ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, सीसाभस्म ३ भाग, अभ्रकभस्म ४ भाग, वङ्गभस्म ५ भाग, तीक्ष्णलौह (फौलाद) भस्म ६ भाग, चांदीभस्म ७ भाग, मनसिल ८ भाग और स्वर्णमाक्षिकभस्म ९ भाग तथा शुद्ध अफीम सबसे आधी ले। सबको एकत्र खरल करे । तत्पश्चात् धतूरे और भांग के पत्तो के रस, लौग के क्वाथ, कचनार के स्वरस, पीपल के क्वाथ दोनो प्रकार की मुण्डी के रस, नागबला (गंगेरन) के रस और केसर के पानी में ३–३ दिन पृथक पृथक घोटकर (३–३ रत्ती की गोलियां बनाले । यह शास्त्रोक्त मात्रा है) १–१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । केसर और लवङ्ग के चूर्ण मे मिलाकर खावे अथवा पान मे रखकर सेवन करे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेहादि रोग नष्ट होते है तथा अनन्त रमणी रमण की शक्ति उत्पन्न होती है ।

सं. वि.—इस औषध को सेवन करते हुये अम्ल आदि पदार्थों का त्याग करना चाहिये यह औषध वाजीकरण और रसायन है ।

नाग रसायन [भा. भै. र. ३६२४]

(र. र. स. । उ. खं. अ. ५)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सीसाभस्म ४ भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म २ भाग, ताम्रभस्म, विमलभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रक–सत्वभस्म और स्फटिकमणिभस्म १–१ भाग ले। सबको १ दिन पर्यन्त त्रिफला के क्वाथ मे घोट ले। तत्पश्चात् टिकिया बनाने के बाद सुखाकर उन्हे शराव सम्पुट मे बन्द करके ३० अरने उपलो की अग्नि मे फूंक ले। इसी प्रकार त्रिफला के क्वाथ मे घोट घोटकर ३० पुट दे । अन्तिम पुट देकर उसका बारीक चूर्ण करे और इस चूर्ण मे इसके बराबर सोठ, मिर्च, पीपल और वायविडङ्ग का मिश्रित चूर्ण मिलाकर प्रयोगार्थ रक्खे ।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ३–३ रत्ती) १–१ रत्ती मधु तथा घृत मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ८० प्रकारके वातरोग और विशेषत: धनुर्वात का नाश होता है तथा यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त कफरोग, सब प्रकार के मूत्ररोग, श्वास, कास, क्षय, पाण्डु, शोथ, शीतज्वर, ग्रहणीरोग, आमदोष, दुस्साध्य अग्निमान्द्य और सब प्रकार के जलविकार नष्ट होते है ।

सं. वि.---यह औषध रसायन है अर्थात् इसके सेवन से शरीर के प्रत्येक अवयव मे नवता उत्पन्न होती है। रस से लेकर शुक्र पर्यन्त सब धातुओं की वृद्धि होती है और समस्त दुष्टजलज विकार नष्ट होते है।

नागसुन्दर रस [भा. भै. र. ३६३४]

(र. रा. सुं. । अति. । र. र. स. । उ. खं. अ. १६)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---सीसाभस्म, शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म और शुद्ध गन्धक आधा-आधा पल (२॥-२॥ तोले) लेकर बारीक कज्जली बनाले। तत्पश्चात् २ पल राल को पिघलाकर उसमे इस कज्जली को मिलाकर खरल करे और उसमें उसके बराबर करञ्जबीज, सेधानमक, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल, सफेद जीरा, काला जीरा, हर्र, भांग और लौहभस्म का समान भाग मिश्रित चूर्ण मिलाकर सबको वकायन की छाल, बावची की जड, नागबला (गंगेरन) और गिलोय के रस की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा---१-१ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---इसके सेवन से अनेक प्रकार के अतिसार, गुदभ्रंश आदि रोग नष्ट होते है।

नित्यानन्द रस [भा. भै. र. ३६५२]

(र. का. धे । अधि. ६, र. चं., भै. र.; र. सा. सं.; र. र., र. रा. सुं. । श्लीपदा.; रसे. चि अ ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---हिंगुलोत्थ (शिंगरफ से निकाला हुवा) पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, कांसीभस्म, वङ्गभस्म, शुद्ध हरताल. शुद्ध तूतिया, शङ्खभस्म, कौडीभस्म, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा और आमलेका चूर्ण, लोहभस्म, वायविडङ्ग, पाञ्चोनमक (सेंधा, सञ्चल, विडनमक, सामुद्रलवण, कांचलवण), चव, पीपलामूल, हाऊबेर, वच, कपूर, पाठा, देवदारु, इलायची, विधारा (अभाव मे निसोत), निसोत, चीता और दन्ती का चूर्ण। सब द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो को यथाक्रम मिश्रित करके हैड के क्वाथ की १ भावना देकर (शास्त्रोक्त ५-५ रत्ती) १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा---१-१ गोली। शीतल जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---इसके सेवन से कफवातज और रक्त, मांस, मेद तथा धातुगत श्लीपदरोग, अर्बुद, गण्डमाला, पुरानी अन्त्रवृद्धि, वातपित्तज और वातकफजरोग, अर्श, कृमिरोग आदि नष्ट होते है। यह अग्नि और बल की वृद्धि करता है।

इस रस का आविष्कार श्रीमद् "गहननाथ" ने किया। "नित्यानन्द" रस श्लीपद-व्याधि का नाश करता है, संसार का कल्याण करता है और अण्डवृद्धि रोग का नाश करता है। रक्तपित्तज आदि रोगो को देखकर पथ्य का सेवन कराना चाहिये।

निद्रोदय रस [र. तं. । त. २४]

द्रव्य तथा निर्माण विधान---शुद्ध अफीम, वंशलोचन तथा रससिन्दुर। प्रत्येक ६—६ मासे और आमले का चूर्ण १ तोला लेकर सबको एकत्र खरल करे। भलिभान्ति मिश्रण होने पर भांग के रस अथवा क्वाथ की ३ भावनाये दे। गोली बनाने योग्य लुगदी तय्यार होनेपर २—२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१—१ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अनेक प्रकार के रोगो से दुखित पुरुषों को निद्रा लाकर सुख पहुंचाती है।

सं. वि.---यह औषध संज्ञावाहिनियों की क्रिया को सामयिक नष्ट कर देती है, संवेदना नष्ट होने से रोगी वेदना का अनुभव नहीं करता और क्यों कि अफीम निद्राकारक है अत इसके सेवन से रोगी इसका प्रभाव रहने तक सुखपूर्वक सोता है। वंशलोचन, रससिन्दुर और धात्री के योग के साथ बनी होने के कारण यह औषध हृदय, मस्तिष्क और यकृत् आदि अवयवो पर अफीम के दुष्ट प्रभावो को नहीं होने देती।

नीलकण्ठ रस [भा. भै. र. २६६२]

(र. चं. । ज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, सुहागा और नीलाथोथा समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करे, तत्पश्चात् ३ घडी तक देवदाली (बिन्दाल) के रस मे घोटकर ६—६ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—आधी से १ गोली तक। बलाबलानुसार। मिश्री या खांड के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वमन होकर ज्वर का नाश होता है तथा पित्तादिरोग, ज्वर, श्वास, हिचकी, कास आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—इस औषध का प्रयोग करते हुये देश, काल, बल, आत्म, सात्म रोगी की आयु, दोषप्रकोप आदि का भलीप्रकार निर्णय करलेना सर्वदा लाभप्रद होता है। यह उग्र वामक औषध है अतः सावधानी से प्रयोग कराना चाहिये।

नृपतिवल्लभ रस [भा. भै र ३६६४]

(भै. र.; र. सा. सं; र. रा. सुं., र. च; ध. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची,

सुहागे की खील, शुद्ध हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म। प्रत्येक को १-१ पल (५-५ तोले) ले, तथा कालीमिर्च २ पल ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तत्पश्चात् उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन पर्यन्त बकरी के दूध या आमले के रसमे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः--१-१ गोली। जल अथवा मधु अथवा यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसके सेवन से (शास्त्रादेशानुसार शुद्ध होकर भगवान् सूर्य का दर्शन करके १८ गोली नित्य यथोचित अनुपान के साथ सेवन करे) अग्निमान्द्य, आमदोष, विषूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठिला, यकृत्, पाण्डु, कामला, हृच्छूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल, आनाह (अफारा), ८ प्रकार के शूल, कास, श्वास, आमवात, श्लीपद, शोथ, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, अम्लपित्त, गृध्रसी, कृमिरोग, कुष्ठ, दाह, वातरक्त, भगन्दर, उपदंश, अतिसार, ग्रहणी, अर्श, प्रमेह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, जीर्णज्वर, पाण्डु, तन्द्रा, आलस्य, भ्रम, दाह, विद्रधि, हिक्का, जडता, गद्गदता, मूकता, मूढता, स्वरभेद, ब्रध्न, अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि, विसर्प, उरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, अरुचि, तृषा, कर्णरोग, नासारोग, मुखरोग, दन्तरोग, पीनस, शून्यवात, शीतपित्त, स्थावरादि विष तथा वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज और सान्निपातिक अन्त्ररोग नष्ट होते हैं। यह औषध बल, वर्ण को बढानेवाली, आयु और वीर्य को बढानेवाली, कामशक्ति को बढानेवाली, बुद्धिवर्द्धक, शरीर मे पर्याप्त शक्ति उत्पन्न करके मनोरथसिद्ध करनेवाली है। स्वस्थ पुरुष इसका सेवन करे तो उसकी आयु बढती है और रोगी सेवन करे तो उसके रोग नष्ट होते हैं। इस रसका प्रयोग करने से मनुष्य बुद्धिमान होता है।

सं. वि.--नृपतिवल्लभ रस वस्तुतः पाचक, पोषक, अग्निवर्द्धक, वात, पित्त, कफ नाशक और शक्तिप्रद है। इस रस की मुख्य क्रिया अन्त्र को निरोग बनाने की है। यह संग्राही है, वातमोक्षण कराती है, अग्नि बढाती है और आमका शोषण करती है। इस प्रकार अपने गुणो द्वारा यह सभी प्रकार के उदररोगो को दूर करती है। भले ही वे एकदोषज हो, द्वदोषज हो अथवा सन्निपातज हों।

सग्रहणी मे इस औषध का प्रयोग बहुत हितकर है और अन्त्र मे किसी भी प्रकार की विकृति अथवा रोग की पश्चात् अवस्था मे होनेवाले विकार अपने पाचक आदि गुणो के कारण यह नहीं होने देती।

उदर की शिथिलता, अजीर्ण, संग्रहणी आदि रोगों के अनेक अनुबन्धि रोग तथा भगन्दर,

अर्श, आनाह, गुल्म, प्लीहा, यकृत, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि अनेक रोग तथा आमाशय मे वातावरोध के कारण होनेवाले रोग यथा हृच्छूल, पृष्ठशूल, कटिशूल आदि तथा क्षुद्रान्त्र मे वात प्रकोप के कारण होनेवाले पार्श्वशूल आदि सम्पूर्ण विकारो को नष्ट करके यह औषध उनके सभी अनुबन्धियों का नाश करती है और जठराग्नि की प्रदीप्ति द्वारा रस रक्तादि की वृद्धि करके शरीर को पुष्ट, कान्तिमान और आयुष्मान् करती है ।

नृसिंह पोटली रस [भा. भै. र. ३३६५]

(र. रा. सुं., वृ. नि. र. । अति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारे और गन्धक को समान भाग लेकर कज्जली बनाकर पीली कौडियो के भीतर भर कर उन्हे शराब सम्पुट मे बन्द करके उसके ऊपर गोबर का लेप करदे । तदनन्तर उसे तीव्राग्नि पर तब तक पकाये जब तक वे भस्म न हो जांय । स्वाङ्गशीतल होनेपर उस मे से औषधि को निकालकर कौडियो सहित पीस ले ।

मात्राः—१ से २ रत्ती । गोघृत मे मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरातिसार, दुर्जय अतिसार, सब दोषों से होनेवाली ग्रहणी, जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्णज्वर आदि का नाश होता है ।

पञ्चवक्त्र रस [भा. भै. र. ४२६५]

(र. र. स. । अ. १२; र. रा. सुं.; वृ. नि. र. । ज्वरा.; र. प्र. सु. । अ. ८, र. चिं.; र. चं.; वृ. यो. त.; भा. प्र.; वै. र., भै. र., र. र. स., शा. ध., र. सा. सं.; यो. र. । ज्वर. ।)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध विष (मीठा तेलिया), शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, सुहागे की खील और पीपल । सब द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन पर्यन्त धतूरे के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाने के बाद छायाशुष्क करे ।

मात्राः—१–१ गोली । मधु के साथ चटाकर ऊपर से आक की जड के छाल के क्वाथ मे त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण सेवन करावे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सन्निपात, कफ आदि रोग नष्ट होते है । अग्नि की वृद्धि होती है ।

इस रस का मधु के साथ प्रयोग करने से कफ रोग नष्ट होते है और आक की जड के क्वाथ के साथ लेने से अग्नि की वृद्धि होती है ।

पथ्यः—दही–भात । यदि अधिक सन्ताप हो तो मस्तक पर शीतल जल का कपडा बांधलें। यदि अग्नि बहुत बढ जाय तो यथेष्ट घृत का सेवन कराये ।

पञ्चसायक रस [भा. भै. र. ४२६७]
(वृ. यो. त. । त. १४७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध हिंगुल, समन्दर शोख, शुद्ध अफीम, जावित्री, जायफल, अकरकरा, वटपत्री (पाषाणभेद की एक जाति), कौंचके बीज और तालमखाना। प्रत्येक का समान भाग महीनचूर्ण एकत्र करके उसे भांग, सेमल की मूसली, काले धतूरे के बीज, सौंफ, पोस्त, मुलैठी और पान मे से जिनका स्वरस मिल सके उन के स्वरस की और शेष के क्वाथ की पृथक पृथक १-१ भावना देकर उसमें चौथाई भाग (पारदभस्म से चौथाइ) कपूर मिलाकर घोटकर रक्खे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ६ रत्ती) २-२ रत्ती मधु और त्रिफला के क्वाथ के साथ।

पथ्यः—यथासात्म्य दूध।

अपथ्यः—अम्लवर्ग।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे सायंकाल के समय सेवन कराना चाहिये। इसके सेवन से अनेक स्त्रियों से रमण करने की शक्ति प्राप्त होती है।

पञ्चामृत चूर्ण [भा. भै र. ४२८०]
(र. र. अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म १-१ मासा लेकर कज्जली बनाले उसे जम्बीरी निम्बु के रस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—आधी-आधी गोली। त्रिकटु चूर्ण मिलाकर उष्णजल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निमान्द्य नष्ट होता है।

पंचामृत पर्पटी (चन्द्रोदय युक्त)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पूर्णचन्द्रोदय रस, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण तैयार करें और पर्पटी बनाने की विधि से पर्पटी बनाकर ठण्डा होनेपर खरल करके प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—१-१ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अजीर्ण, आमसंग्रह, अतिसार, संग्रहणी, आमशूल, वातकफज अर्श, यकृत्-प्लीहा, वात और कफज अन्त्रकला शोथ, शैथिल्य और वात निस्सरणावरोध रोग दूर होते है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, पाचक, शोधक, रसायन, शूलघ्न, शोथघ्न, आम

तथा वातघ्न और आम के कारण शिथिल हुई उदर की श्लेष्मकलाओ मे एकत्रित दोषो का शोषण करके उनको स्वस्थ करती है और पाचक रसो की यथावश्यक उत्पत्ति करती है। संग्रहीत आम, मेद और विषादियो का नाश करने के लिये इस औषधि का उपयोग लाभप्रद होता है।

यह रक्तवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, पोषक और आमदोष नाशक है।

पंचामृत पर्पटी रस [भा. भै. र. ४२८३]

(वै. जी. । वि. ५; बृ. नि. र. । ज्वराति., यो र. । ग्रह.; र. रा. सुं. । अतिसा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म और शुद्ध पारा प्रत्येक १–१ भाग लेकर सबकी कज्जली बनालें। फिर कज्जली को लोहे के पात्र मे, जिसके तले पर घी लगाया हुवा हो, डालकर बेरी की लकडी की मन्दाग्नि पर पिघलावे। जब भलिभान्ति पिघल जाय तो गौ के ताजे गोबर को जमीन मे डालकर उसके ऊपर केले का पत्ता बिछाकर पत्ते पर पिघली हुई कज्जली डाले और उसके ऊपर दूसरा केलेका पत्ता ढककर उसके ऊपर गोबर बिछादें। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तो उक्त प्रकार से तैयार हुई औषध (पर्पटी) को निकालकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ३ रत्ती। मधु के साथ अथवा हींग, सैन्धव और जीरे के साथ अथवा जीरे के साथ और यथा रोगानुपान से।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से संग्रहणी, राजयक्ष्मा, अतिसार, ज्वर, स्त्रीरोग, पाण्डु, विष, अम्लपित्त, अर्श और अग्निमान्द्य का नाश होता है।

इसे संग्रहणी मे भुनीहुई हींग, जीरा और सेंधानमक के साथ तथा पाण्डुरोग और विषरोग मे जीरे के साथ देना चाहिये।

पंचामृत पर्पटी रस [भा. भै. र. ४२८४]

(भै. र., र. चं., र. सा. सं, र. र. । ग्रह, र. रा. सुं. । अति., रसे. चि म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक ८ तोला, शुद्ध पारद ४ तोला, लोहभस्म २ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला और ताम्रभस्म ½ तोला लेकर सबको लोहे के खरल मे लोहे की मूसली से घोटकर कज्जली बनावे और फिर लोहे की कढाई मे थोडा सा घी डालकर उसमें इस कज्जली को बेरी की लकडी की मन्दाग्नि पर पकावे। जब कज्जली पिघल जाय उसे गाय के ताजे गोबर पर केले का पत्ता बिछाकर फैला दे और उसके उपर दूसरा पत्ता ढककर उसे गोबर से दबा दे। जब स्वांगशीतल हो जाय तो निकालकर पीस ले।

मात्राः—२ रत्ती से प्रारम्भ करके चार दिन तक प्रति दिन २-२ रत्ती बढाकर ८ रत्ती तक बढाये और उसके बाद २ रत्ती के क्रमानुसार घटाते हुए अन्तिम मात्रा तक आजांय। १ सप्ताह इसे मधु और घृत के साथ लोहपात्र मे खरल करके सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अनेक प्रकार की संग्रहणी, अरुचि, दुष्ट अर्श, छर्दि, पुरातन अतिसार, ज्वर, रक्तपित्त और क्षय का नाश होता है।

यह अत्यन्त वृष्य, वलि-पलित और नेत्ररोग नाशक तथा अग्निदीपक है। इसके सेवन से रोगी का शरीर पुनः नवीन हो जाता है।

पर्पटी का मृदु, मध्य और खर ३ प्रकार का पाक होता है। मृदु, मध्य पाक मे पारा दिखलाई देता है और खर पाक में नहीं दिखाता। मृदु पाक पर्पटी अच्छी तरह नहीं टूटती, मध्यमपाक पर्पटी को तोडने से चांदी की सी चमक दिखाई देती है, और खर पाक पर्पटी को तोडने से कुछ कुछ ललाई दीख पडती है।

मृदु और मध्यम पाक पर्पटी सेवनोपयोग्य होती है परन्तु खर पाक विष के समान त्याज्य है।

पञ्चबाण रस [भा. भै. र. ४२६१]

(वृ. यो. त. । त. १४७; यो. त. । वाजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, नाग (सीसा) भस्म, लौहभस्म, शुद्ध गन्धक, वङ्गभस्म और कौडीभस्म। प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तदनन्तर उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर उसे ३ भावना गाय के दूध की, २१ भांग की, ७ धतूरे के रसकी तथा ७-७ भावना लौग, जायफल, केसर, कङ्कोल, अकरकरा, गजपीपल और सफेद चन्दन के क्वाथ की एवं १ भावना कस्तूरी की देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। मधु अथवा दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है और पुरुषत्व बढ़ता है। यह इन्द्रियो की क्षीणता को नष्ट करके लिङ्गकोष को प्रवृद्ध और दृढ करके अनेक स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति उत्पन्न करती है।

पञ्चलोह रसायन [भा. भै. र. ४२६३]

(यो. र.; वृ. नि. र. । प्रमेह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म १ भाग, कान्तलौहभस्म २ भाग, सीसाभस्म ३ भाग और वङ्गभस्म ४ भाग लेकर सबको १-१ प्रहर ताड, नल, वाराहीकन्द,

शतावर और लाल चन्दन मे से जिनका स्वरस मिले उनके स्वरस मे और शेष के क्वाथ मे पृथक पृथक घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१–१ गोली। मक्खन के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके नित्य प्रात.कालके सेवन से समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है, तथा अर्श, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कामला, पाण्डु, शोष, अपस्मार, क्षय, क्षत और जिसमे खून निकलता हो ऐसी खांसी आदि रोग नष्ट होते है।

पथ्य:—शालीचावल, पल्वल, चौलाई, वथुवा, मछली, मूंगका यूष और कच्चे केले।

सं. वि.—वातज, पित्तज और कफज प्रमेहो के भेद तत्तद्दोषवर्द्धक द्रव्यो के सेवन से परिवर्द्धित होते है और प्रतिकूल द्रव्यो के सेवन से नष्ट होते है। यह रसायन, आम, कफ, वातनाशक है। अग्निवर्द्धक है। पुष्टिकर और पित्तप्रशमक है। इसके सेवन से तीनो ही दोषो द्वारा होनेवाले प्रमेह शान्त होते है। इसी प्रकार अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, मूत्रपिण्ड, वस्ती और गुदवली प्रर प्रतिघात करनेवाले दोषो से उत्पन्न रोग नष्ट होते है। यह औषध वस्तीगतवात, कफ और पित्त तीनो दोषो को यथास्थिर करके अनुलोमन करती है और इस प्रदेशके सभी अवयवो के विकारो को मिटाती है। वात आदि द्वारा होनेवाले अपस्मार को यह वात परिशोधन से मिटाती है।

पञ्चानन रस [भा. भै. र. ४२७३]

(र. र. स. । अ. १९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कान्तलोहभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, चान्दीभस्म और अभ्रकभस्म १।–१। तोला ले तथा शुद्ध पारे और गन्धक की कज्जली इन सब के बराबर लेकर सबको एकत्र मिलाकर घोटे। तत्पश्चात् उसमे २॥ पल (१२॥ तोले) शुद्ध स्वर्णमाक्षिक चूर्ण मिलाकर भलीभान्ति घोटे। तत्पश्चात् १ मूषा मे १० तोले हरताल का चूर्ण बिछाकर उसके ऊपर उक्त कज्जली को रक्खें और फिर उसके ऊपर १० तोले शुद्ध मनसिल का चूर्ण बिछा दे। इस मूषा को बन्द करदे और ऊपर से कपडमिट्टी करके सुखाले और रात को गजपुट मे फूंक दे। सम्पुट के स्वाङ्गशीतल होनेपर उस मे से कज्जली निकाल कर पीस ले। तदनन्तर १। तोले शुद्ध पारे और १। तोले शुद्ध गन्धक की कज्जली बनाकर उपरोक्त चूर्ण मे मिलाकर १ दिन जम्बीरी निम्बु के रस मे घोटे और टिकिया बना सुखाकर उसे सम्पुट मे बन्द करके वराहपुट मे फूंक दें। इसी प्रकार १० आंच लगावे। प्रत्येकवार कज्जली मिलाकर जम्बीरी के रसमे घोटनी चाहिये। इसके पश्चात् १। तोले हरताल को ५ तोले शुद्ध पारद मे मिलाकर घोटने के वाद कज्जली बनाले और इसे पूर्व निर्मित औषध मे मिलाकर १ दिन निम्बु के रस मे घोटे और टिकिया बनाकर सुखाकर उन्हे सम्पुट मे वन्द करके वराहपुट

मे फूंक दे । इसी प्रकार हरताल और शुद्ध पारद की कज्जली मे १० पुट दे । तत्पश्चात् उसमे उसका १६ वां भाग वैक्रान्तभस्म मिलाकर सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१-१ रत्ती । हैड, सूरणकन्द (जिमीकन्द), सोठ और घी मे मिलाकर चाटें । इन चारो द्रव्यों की मात्रा ३-३ मासा होनी चाहिये ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के पाण्डु, यक्ष्मा, उदररोग, हलीमक, वातव्याधि, मलावरोध, कुष्ट, संग्रहणी, ज्वरातिसार, श्वास, कास, अरुचि, सव प्रकार के कफ की व्याधियां, गलरोग, मन्दाग्नि, प्रमेह, गुल्म आदि दुस्साध्य रोग नष्ट होते है ।

इसके सेवन कालमे बेल से परहेज रक्खे । बाकी सव पदार्थों को ग्रहण कर सकते है ।

पाण्डूपंचानन रस [भा. भै. र. ४३१८]
(भै. र.; र. चं. । पाण्डु,)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म ५-५ तोले, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा, आमला, दन्तीमूल, चव, काला जीरा, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, निसोत, मानकन्द, इन्द्रजौ, कुटकी, देवदारु, वच और नागरमोथा का चूर्ण १।-१। तोला, इन सव चीजो से २ गुना शुद्ध मण्डूर का चूर्ण लेकर इन सवको ८ गुने गोमूत्र मे पकावें और जब वह गाढा हो जाय तो उसे ठण्डा करके ३-३ रत्ती की गोलियां वनाले ।

मात्राः—१-१ गोली । प्रातः सायं उष्ण जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से हलीमक, शोथ, पाण्डु, उरुस्तम्भ, प्लीहा यकृत् और गुल्म का नाश होता है । यह औषध रसायन है तथा बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करती है ।

सं. वि.—पाण्डुपञ्चानन रस यकृत् के विकारो के लिये बहुत गुणकारी औषध है । यह पाचक, रेचक और दोषानुलोमक है । ऐसे ही गुणो युक्त द्रव्य वर्द्धित यकृत् को सुधारने मे अच्छा काम करते है । यकृत् तथा उदर द्वारा उत्पन्न हुई सर्वाङ्ग तथा एकाङ्ग शोथ इसके सेवन से शीघ्र नष्ट होती है । ऊपर के दोषो का नाश करने मे अपने रेचक और अनुलोमक गुणो द्वारा यह इतनी ही सफल है । अन्त्र के अन्दर शुष्कमल और वात के अवरोध से तथा तत्तत्स्थानगत वातनाडियो की विकृत् अवस्था से होनेवाले उरुस्तम्भ को यह अनुलोमक और रेचक गुण से मिटाती है । यह रक्तवर्द्धक और रक्तशोधक है ।

पाण्डुगजकेशरी रस [भा. भै. र. ४३१४]
(रसे चिं. म । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, मण्डूर और लोहभस्म । प्रत्येक १-१ भाग तथा शुद्ध शिलाजीत सव से आधो ले । सवको मिश्रित करके ८ गुने गोमूत्र मे पकावें । पक चुकने पर उसमे पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोठ), देवदारु, नागरमोथा,

त्र्योस (सोंठ, मिर्च, पीपल), हैड, वहेडा, आमला, और वायविडङ्ग का चूर्ण प्रत्येक का आधा आधा भाग मिलाकर सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १। तोला) ४–४ रत्ती । छाछ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पाण्डु, ग्रहणी, मन्दाग्नि, शोथ, अर्श, हलीमक, उरुस्तम्भ, कृमिरोग, प्लीहा और गलरोग का नाश होता है ।

सं. वि.—इस द्रव्य के सेवन काल मे स्वल्पाहार अर्थात् लघुभोजन करना चाहिये । यह औषध मूत्रल, रेचक, दोषानुलोमक, पाचक और रोचक है । यह औषध दोषों का सशमन करके रक्तवृद्धि करती है । इसका सेवन वृक्क के द्वारा होनेवाले पाण्डु और शोथ मे सफलतापूर्वक कर सकते हैं ।

पार्वती रस [भा. भै. र. ४३९४]

(रसे. सा. सं र. रा. सुं । मुख , रसे. चि. म.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध शिंगरफ, महुवे के फूल, गिलोय, सेमल की मूसली, द्राक्षा, धनियां, चिरायता, भांगरा, तिल, मूंग, पटोल, पेठा (कुम्हडा), सेंधानमक, कालानमक, मुलैठी और धनिये की अन्तर्धूमदग्ध (बन्द बर्तन मे बनाई हुई) भस्म समान भाग ले । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे । तदनन्तर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर पानी से भलीभान्ति घोंटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें ।

मात्राः—१–१ गोली । जल के साथ मिश्रित करके ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मुखरोग, पुराना पित्तज्वर, तिमिररोग और तृष्णा का नाश होता है ।

पानीयभक्त वटी [भा. भै. र. ४३२५]

(भै. र.; र. चिं., र. रा. सुं ; र. चं., वं. से.; र. का. धे. । रसायन)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—निसोत, चीता, नागरमोथा, हैड, वहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल । प्रत्येक १–१ भाग, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ½–½ भाग तथा लोहभस्म, अभ्रकभस्म और वायविडङ्ग २–२ भाग ले । प्रथम पारे औष गन्धक की कज्जली बनाले फिर उसमें अन्य औषधियों का कपडछन चूर्ण मिलाकर १ दिन त्रिफला के क्वाथ मे घोटकर ४–४ रत्ति की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । प्रातःकाल काञ्जी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पक्तिशूल, त्रिदोषज अम्लपित्त, वमन, हृदयशूल, पसली की पीडा, वस्ति, कुक्षि और गुदा का दर्द, खांसी, श्वास, कुष्ठ, आमजन्य ग्रहणीविकार, यकृत्–प्लीहा, उदररोग, विष्टम्भ, यक्ष्मा, आमजन्य दुर्बलता और अग्निमान्ध का नाश होता है ।

सं. वि.—यह औषध दोषानुलोमक, पाचक और भेदक है। इसके सेवन से उदर में वात, पित्त अथवा कफ द्वारा होनेवाले विकार शान्त होते हैं। अपथ्य दोष को नाश करने के लिये इसका सेवन बहुत हितकारक है।

पाशुपत रस [भा. भै. र. ४३९५]

(यो. र., वृ नि. र., र. सा. सं., र. रा. सुं. । अजीर्ण.; यो. त. । त. २४; र. चिं. म. । स्त. ११.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, तीक्ष्णलौह-भस्म ३ भाग और शुद्ध वच्छनाग ६ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले फिर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन चीतामूल के क्वाथ में घोटे और फिर धतूरे के बीजों की भस्म ३२ भाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग और इलायची ३-३ भाग, जायफल और जावित्री आधा-आधा भाग, समान भाग मिश्रित पाञ्चोनमक २॥ भाग तथा सेहुड (थूहर), आक, अरण्ड मूल, तिंत्तिडीक अपामार्ग (चिरचिटे) और पीपलवृक्ष का क्षार, हर्र, जवाखार, सज्जीक्षार, भुनी हुई हींग, जीरा और सुहागे की खील १-१ भाग लेकर सबका बारीक चूर्ण बनाकर उसको उपरोक्त कज्जली मे मिलाकर सबको १ दिन पर्यन्त निम्बु के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। भोजन के बाद ताल्मूली के रस और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह दीपक, पाचक, हृद्य और शीघ्रही फलदायिनी औषध है। इसके सेवन से विषूचिका शीघ्र नष्ट होती है।

(१) ताल्मूली के रस के साथ सेवन करने से यह उदररोगों को नाश करती है।
(२) मोचरस के साथ प्रयोग मे लाने से अतिसार का नाश होता है।
(३) संग्रहणी विकार में सेधानमक मिश्रित छाछ के साथ इसका प्रयोग करना चाहिये।
(४) शूलरोग में संचलनमक, पीपल और सोंठ के मिश्रित चूर्ण को मिलाकर इसको खावे।
(५) अर्शरोग मे यह छाछ के साथ दी जाती है।
(६) पीपल के चूर्ण के साथ पाशुपत रस का सेवन राजयक्ष्मा नाशक है।
(७) सोंठ और संचलनमक के मिश्रित चूर्ण के साथ इसका सेवन वातरोगनाशक है।
(८) बूरा और धनिये के साथ पाशुपत रस उपयोग मे लाया जाय तो पित्तरोगों को नाश करता है।
(९) पीपल और मधु के साथ मिश्रित करके इस औषध का सेवन कफरोगो के नाश के लिये किया जाता है।

सं. वि.—यह योग शोधक, पाचक, दीपक, संग्राहक, आमपाचक, वातनाशक,

पित्तशामक और कफप्रशमक औषधियो के मिश्रण से बना है। पारे और गन्धक के रसायन और पाचक गुणों के अतिरिक्त इसमे लोह रक्तवर्द्धक, चित्रक पाचक और जातिफल धूर्तबीजादि रोधक हैं। वैसेही थूहर का दूध, लवण और क्षार भेदक है। रोधक और भेदक के योग से बनी हुई यह औषध अन्त्र क्रिया शिथिलता को दूर करने मे सम्पूर्ण सफल है इसमें कोई संशय नही है। भोजन के बाद इसका सेवन, जिन आमाशयो मे रुक्षता के कारण क्लेदक कफका उद्रेक ही नही होता वहां यह आमाशय की श्लेष्मकलाओं को शीघ्र सक्रिय करके कफ उत्पन्न करता है और खाद्य घोल को भलीभान्ति मिश्रित करने मे सहायक होता है। पाचक द्रव्यों के योग द्वारा पाचक गुणों से पाचकाग्नि की अभिवृद्दि करता है। यकृत् और प्लीहा के कोषो को पुष्ट करके उनमे क्रिया सामर्थ्य का योग देता है। अन्त्र के किसी भी भाग मे रुक्ष अथवा शीतगुणद्वारा प्रकुपित वायु अथवा संचित वायु इसके तीक्ष्ण और उष्ण गुणों के सामने द्रुत गति से नष्ट हो जाती है।

सारांश मे उदर मे होनेवाले विकारो के लिये यह औषध पाशुपतास्त्र के समान ही कल्याणकारी है। मै इसका उपयोग सर्वदा जीर्ण संग्रहणी, शिथिलांत्र, आमद्वारा शिथिल प्लीहा और यकृत्, संग्रहणी और आमज अग्निमान्द्य आदि पर विशेष रूप से करता रहा हूं।

पाषाणभेदी रस [भा. भै. र. ४३९७] (पाषाण वज्र रस)

(रसे. चि. म. । अ. ९, र. सा. सं., र. रा. सुं.; धन्वं., भै. र.; वृ. नि. र.; यो. र., र. चं. । अश्म.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, इन दोनों की कज्जली को श्वेत पुनर्नवा के रस की ३ भावना देकर शराव सम्पुट में बन्द करके १ दिन पर्यन्त भूधर यन्त्र मे पकावे। यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होनेपर औषध को निकाल लें, तदनन्तर उसमे उसके बराबर पाषानभेद चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह घोटकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १ निष्क–४ मासे) २ से ३ रत्ती। श्वेत पुनर्नवा के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अश्मरी नष्ट होती है।

सं. वि.—यह औषध उत्कट मूत्रल है। यह औषध कफज अश्मरी के नाश के लिये सुन्दर उपाय है। पुनर्नवा के क्वाथ के साथ इसका सेवन इसके मूत्रल गुण को और भी बढा देता है। इस औषध का सेवन वातज अश्मरी मे कुल्थी के क्वाथ के साथ और पित्तज अश्मरी मे पित्तपापडे के रस या क्वाथ के साथ लाभप्रद सिद्ध होता है।

प्रतापलङ्केश्वर रस [भा. भै. र. ४४४२]

(वृ. यो. त. । त. १४२., यो. र., र. चं. । सूतिका.; यो. त. । त ७५)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध

वच्छनाग का चूर्ण १-१ भाग, कालीमिर्च का चूर्ण ३ भाग, लोहभस्म ४ भाग, शंखभस्म ८ भाग और अरने उपला की भस्म १६ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर उसमे अन्य द्रव्यों का वारीक चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र घोटकर सुरक्षित रक्खे।
मात्रा:—१ से ३ रत्ती तक। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन प्रसूतिवात और अनिलदन्तबन्ध (वायु द्वारा दान्तों तथा मसूडों का जकडा जाना) मे अदरक के रस के साथ हितकर होता है। वातरोग, कफरोग और अर्श मे इसका सेवन शुद्ध गूगल, गिलोय का रस, अदरक का रस और त्रिफले के क्वाथ के साथ किया जाता है। सन्निपातज्वर और उग्रज्वर मे इसका सेवन अदरक के रस के साथ करना उपयुक्त है।

यथोचित अनुपान के साथ पथ्य पालन पूर्वक सेवन करने से यह समस्त प्रकार के अतिसार और ग्रहणिविकार को नष्ट करता है।

सं. वि.—आहार-विहार द्वारा दूषित अन्त्रों मे न आजकल शक्ति ही पाई जाती है और न उनके अन्दर पोषक रसों की उत्पत्ति ही होती है, उनके अभाव मे रूक्ष गुण द्वारा वायु प्रकुपित होकर सम्पूर्ण अन्त्रों को अवरुद्ध कर लेती है। जिससे वातशूल, वातगुल्म, विबन्ध, उदावर्त, यकृत्-प्लीहावृद्धि, आक्षेपक आदि अनेक प्रकार के उदररोग एक मात्र सम्भव ही नहीं होते किन्तु मिलते भी है। ऐसी अवस्था मे पारा, अभ्रक, गन्धक, वच्छनाग, कालीमिर्च, लोहभस्म, शंखभस्म और वनउपलोंकी भस्म का यह रासायनिक मिश्रण, वातानुलोमक, आक्षेप-नाशक, तीक्ष्ण, ऊष्ण और मार्दवकर होने के कारण वायु को दूर करके अन्त्र मे पाचक रसों की उत्पत्ति करता है। अपथ्य दोष का नाश करता है तथा जल और आहार-विहार के कुसेवन से उत्पन्न हुए सभी प्रकार के सूतिकाओं के विकारों को नष्ट करके उदरच्छदाकला और सम्पूर्ण शरीर को पुष्ट, निर्विकार और सक्रिय करता है।

प्रदरारि रस [भा. भै. र. ४४५०] (प्रदररिपु)

(र. चं.; वैद्य. र., यो. र. । प्रदर., वृ. यो. त. । त. १३५, वृ. नि. र. । स्त्री. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और सीसाभस्म १-१ भाग तथा रसौत ३ भाग और लोध्र का वारीक चूर्ण ६ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमे अन्य औषधियों का वारीक चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन वासा (अण्डूसा) के रस मे घोटकर (शास्त्रोक्त ६-६ रत्ती) व्यवहारार्थ २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।
मात्रा:—१-१ गोली। दिन मे ३ बार मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से दुस्साध्य प्रदर भी नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध श्लेष्मकलाओ का पोषण करती है। शिथिल श्लेष्मकलाओं का पोषण करके उनको यथा स्थानस्थित कर देती है और दुष्ट स्रावों को दूर करती है।

प्रदरान्तक रस [भा. भै. र. ४४४९]

(भै. र.; र. चं., रसे. सा. सं. । र. र, र. रा. सुं. । प्रदरा.; रसे. चि. म. । अ. ९)

शास्त्रोक्त गुणधर्म—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, बङ्गभस्म, चांदीभस्म, खपरियाभस्म और कौडीभस्म प्रत्येक ५—५ मासे लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर अन्य औषधियो को मिलाकर मिश्रण को १ दिन ग्वारपाठा (घीकुमार) के रस मे घोटकर ३—३ रत्ती की गोलियां बनालें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से असाध्य प्रदर भी नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध शोषक, संकोचक, वातनाशक, रक्तवर्द्धक, दाहनाशक, अन्त्र तथा गर्भाशय की कलाओं का पोषण करनेवाली, श्लेष्मकला शैथिल्य, श्लेष्मकला शोथ और श्लेष्मकला उग्रता को नाश करनेवाली है।

प्रदरारि लोह [भा. भै. र. ४४५१]

(भै. र., धन्व. । क्षीरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—६। सेर कूडे की छाल को ३२ सेर पानी मे पकावे और ४ सेर पानी शेष रहने पर उसे छानने के बाद पुनः पकाकर गाढा करें और फिर उसमे मजीठ, मोचरस, पाठा, वेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल और अतीस का चूर्ण तथा अभ्रकभस्म और लोहभस्म ५—५ तोले मिलाकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—(शास्त्रोक्त २ मासे) १ से ४ गोली तक। कुश के काथ के साथ अथवा चावल के धोवन के साथ अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से श्वेत, लाल, काला और पीला दुस्साध्य प्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, देहशूल, और शरीर की (प्रदर द्वारा होनेवाली) पीडा नष्ट होती है। यह आयुवर्द्धक, पुष्टिकर, बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाली है।

सं. वि.—जरायु चारो तरफ से इस प्रकार घिरा हुवा है जिस प्रकार समुद्र के बीच का १ टापू समुद्र से घिरा रहता है। इसके पार्श्वस्थित अङ्गो के विकार शीघ्र इसे विकृत कर सकते है। गुदा के विकारो से भी इस पर शोथ, रूक्षता और दाहादि हो सकते है। पेट और मूत्राशय के विकार भी इसकी कलाओ को विकृत कर सकते है। नितम्बो की विकृति भी इसको पीडा पहुंचा सकती है और योनिमार्ग के दोष भी इसे दूषित कर सकते है। ऐसी परिस्थिति मे गर्भाशय की श्लेष्मकलाये, जिनमे प्रकृति से ही चिकना पदार्थ इसको क्लेदित

रखने के लिये उत्पन्न होता रहता है, बाह्य और आन्तरिक दोषों से शीघ्र दुष्ट होकर यथादोष विविध प्रकार के पदार्थों का वहन करने लगती है जिनके वर्ण श्वेत-कफदोषज, नील-वात दोषज और पीत पित्तविकारजन्य तथा रक्तजन्य होते है। प्रदर रोग को मिटाने के लिए गर्भाशय की श्लेष्मकलाओं के आन्तरिक विकारों को मिटाना नितान्त आवश्यक है, अतः चारों तरफ से गर्भाशय को घेरनेवाले यन्त्रो के विकार दूर हों यह अनिवार्य है।

"प्रदरारि लोह" रोधक, शोधक, संग्राहक और पोषक औषधों का योग है अतः यह उदरच्छदाकला, उदर, गुदवली, मूत्राशय आदि सभी स्थानो से कफ-पित्त-वातज विकारों को शान्त करता है और जरायु सहित सभी स्थानों की श्लेष्मकलाओं के शोथ का नाश करता है और दुष्ट स्रावों को दूर करता है।

प्रमदानन्दो रस [भा. भै. र. ४४५६]

(वृ. यो त. । त. १४७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, जायफल, शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ), सुहागे की खील, कौडीभस्म, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध धतूरे के बीज और सोंठ का बारीक चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलाकर १-१ प्रहर निम्बु, धतूरा और भांगरे के रसमे घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखाने के बाद सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१-१ गोली। मिश्री अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे मिश्री के साथ सेवन करने से भयङ्कर प्रमेह, ग्रहणी, कफ-वात शूल और मधुप्रमेह का नाश होता है। इसके सेवन से वीर्य और कामशक्ति की वृद्धि होती है। यह रस भृगुमुनि द्वारा निर्मित हुवा है।

/ प्रमदेभाङ्कुश रस [भा. भै. र. ४४५७]

(वृ. यो. त. । त. १४७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारे को १ मास तक रात दिन निरन्तर धतूरे के तेल मे और १० दिन लाल चीते के तेल मे पकावे। अग्नि इतनी होनी चाहिये कि जिससे १ अहोरात्रि मे ५ तोला तेल जल जाय। तत्पश्चात् उस शुद्ध पारे मे उसका अष्टमांस सोनेका वर्क मिलाकर इतना घोटे कि वह पारे मे मिलजाय। फिर उसमे पारे के बराबर गन्धक मिलाकर कज्जली बनावें और उसे आतसी शीशी मे डालकर मकरध्वज बनाने की विधि के अनुसार १२ प्रहर बालुकायन्त्र मे पकावे। बाद के बिल्कुल शीतल होजाने पर उस मे से शीशी को निकाल ले। तदनन्तर शीशी को सावधानी से तोडकर उसमें से सिन्दुर के समान लाल रंग के रस को निकाले।

इसे पीसकर ३ दिन पोस्त के डोढे के काथ मे, ३ दिन भांग के बीजो के तेलमें और १ दिन जायफल के तेल मे एवं १—१ दिन तालमखाने और विदारी कन्द के रस मे घोटकर गोला बनावें और उसे अरण्ड आदि के पत्तों में लपेटकर भूमि मे गड्ढा खोदकर उसमें रखदे, तथा गोले पर २ अङ्गुल मिट्टी चढा दें और फिर उसपर २ अरने उपले रखकर उनमे आग लगादें।

तदनन्तर उसके स्वाङ्गशीतल होनेपर उसे निकालकर पीसले और उसमे अभ्रकभस्म, वैक्रान्तभस्म, जावित्री और लौग २—२ भाग, सीसाभस्म ३ भाग, चांदीभस्म, कान्तलोहभस्म, शुद्ध वच्छनाग, केसर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वङ्गभस्म, अफीम और स्वर्णमाक्षिकभस्म आधा—आधा भाग मिलाकर सबको १ प्रहर शंखपुष्पी के रस में और ३—३ दिन विदारीकन्द, त्रिफला, वासा, पान, बला (खरेंटी), सेमल की मूसली, कौच की जड, गोदुग्ध, लज्जालु, केले की जड, सौंफ, घृतकुमारी, अजमोद, गोरखमुण्डी, नागबला, मुलैठी और हाथी के मूत्र मे घोटकर गोला बनावे। तदनन्तर उसे कपडे मे बांधकर दोलायन्त्र विधि से १ दिन पोस्त के डोढे के काथ मे पकावे। तदनन्तर उसे २—२ दिन समुद्र शोष के तेल, धतूरे के बीजों के तेल, गांजे के बीजों के तेल और जायफल के तेल मे घोटकर गोला बनावे और उस पर तीन कपडमिट्टी कर के पूर्ववत् गड्ढे मे रखकर २ उपलो की अग्नि में स्वेदित करे, स्वाङ्गशीतल होने पर उसे गड्ढे से निकालकर खस, त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात), अगर, कस्तूरी, केतकी, हारसिंगार और कमल के स्वरस या काथ में ३—३ दिन घोटकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ६—६ रत्ती) २—२ रत्ती। लौङ्ग, मिश्री और शहद मिलाकर ऊपर से दूध पिलावे।

पथ्यः—इसके सेवन काल मे अम्ल पदार्थों का सेवन न करे तथा दूध अधिक पिलावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस त्रिदोषनाशक, कामिनी मदभञ्जक, वशीकरण, अत्यन्त स्तम्भक और वाजीकरण है।

इसके सेवन करनेवाले पुरुष स्त्री समागम करनेपर भी बल हीन नहीं होते। यदि इसका सेवन करके पुरुष स्त्री समागम नहीं करता तो वीर्य नेत्रो पर विकृति उत्पन्न करता और उस पुरुष के नेत्र बिगड जाते है। इसे सेवन करने से न कभी अङ्गों में शिथिलता आती है और न कमर टूटती है तथा शरीर स्वर्ण के समान दीप्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यह रस सब प्रकार के प्रमेहों का नाश करता है। यदि इसे नपुंसक पुरुष सेवन करे तो वह भी अत्यन्त बलशाली सन्तान उत्पन्न करने मे समर्थ होता है। यदि इसे वृद्धा स्त्री सेवन करे तो वह भी युवती के समान हो जाती है।

इसके अतिरिक्त यह रस गर्भाशय के वातज और कफज रोगो को भी नष्ट करता है।

प्रमेह गजकेसरी रस [भ. भै. र. ५६७३]

(भै. र., रसे. सा. सं., र. चं., र. रा. सुं. । प्रमेह, रसे. चि. म. । अ, ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वङ्गभस्म, सुवर्णभस्म, कान्तलोहभस्म, रससिन्दुर, मोती भस्म या पिष्टी तथा दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेसर का चूर्ण समान भाग ले। सबको एकत्र मिलाकर घृतकुमारी के रस मे घोटकर (शास्त्रोक्त २ मासे) २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। दूध के साथ। ऊपर दूध–भात खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—जिस तरह सिह हाथी का नाश करता है वैसेही यह प्रमेह का नाश करता है। इसके ३ दिन के सेवन से शुक्र मेह मिटता है और पुरातन प्रमेह और मधु मेह का नाश करने के लिये भी यह प्रशस्त औषध है।

सं. वि.—वङ्ग वीर्यदोषो को हरनेवाली लब्ध प्रतिष्ठ औषध है, इसी प्रकार स्वर्ण–मस्तिष्क पोषक, रसायन, वाजीकरण, बल–वर्ण वर्द्धक. शक्तिप्रद, श्लेष्मकला शक्तिवर्द्धक तथा वृक्क और त्वचा का पोषण करनेवाली औषध है। रक्तवर्द्धन, शोथ नाशन, और उदर शैथिल्य नाशन के लिये कान्तलोह प्रशंसनीय है। मोती शीतवीर्य द्वारा शरीर के किसी भी भाग मे किसी भी प्रकार के वातपित्तज,, तथा नाडीजन्यविकार को शान्त करता है और शरीर मे स्थित दूषितदाह का नाश करता है। अन्य पदार्थ समशीतोष्ण वीर्य, वात–पित्त–कफ नाशक और बल–वर्ण कान्तिवर्द्धक तथा वीर्यवर्द्धक है। यह औषध योगवाही होने के कारण शरीर को पुष्ट करती है, ग्रन्थियों की उत्तेजना का नाश करती है। शुक्रनाडी, अण्डग्रन्थि, शुक्रनलिका तथा शुक्र कोषो की उत्तेजना को दूर करके इन अङ्गों को स्वस्थ करती है।

इनका प्रयोग तीनो ही दोषो से होनेवाले विविध प्रकार के प्रमेहों मे सफलतापूर्वक अनुपान भेद से किया जाता है।

प्रमेह चिन्तामणि

द्रव्य, निर्माण प्रकार, मात्रा, शास्त्रोक्त गुणधर्म तथा संक्षिप्त विवेचन उपर्युक्त "प्रमेह गजकेशरी रस" के सदृश है।

प्रवाल पंचामृत रस [भा. भै. र. ४६६८]

(वृ. नि र.; र. चं.; यो. र. । गुल्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—प्रवालभस्म २ भाग, मोतीभस्म, शंखभस्म, मुक्ताशुक्ति भस्म और कौडीभस्म। प्रत्येक १–१ भाग ले। सबको एकत्र मिलाकर मिश्रण के बराबर आक का दूध डालकर १ दिन घोटे और फिर उसे यथा विधि शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। सम्पुट के स्वाङ्गशीतल होनेपर उस मे से भस्म को निकालकर पीसकर रक्खे।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक। प्रात सायं मधु अथवा जल अथवा निम्बु के स्वरस और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से आनाह, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, खांसी, श्वास, अग्निमान्द्य, कफ और वातजरोग, अजीर्ण, उद्गार (डकारे), हृद्रोग, ग्रहणीविकार, अतिसार, प्रमेह, मूत्रदोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि अनेक रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध उदर के वातज रोगो के लिये बहुत ही उत्तम है। इसके सेवन से दीर्घकालीन वातदोष नष्ट हो जाते है। अन्त्रश्लेष्मकला की रूक्षता नष्ट होती है। यकृत् और प्लीहा के दोषों मे यह इतना ही लाभप्रद तथा सहज रेचक है। वायुनाशक अन्य औषधियों की अपेक्षा ऐसी अन्त्रपोषक, अन्त्रदोषनाशक औषधियों का सेवन बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

प्रचण्डभैरव रस [भा. भै. र. ४४३६]

(र. र.। अपस्मार.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, कसीस, शुद्ध पारद, शिंगरफ, महुवे के फूल, गिलोय, सेभल की मूसली, धनियां, चिरायता, देवदारु, तुम्बुरु, तिल, मूंग, पटोल, मुनक्का, पेंटे की भस्म, पियावांसा, घीकुमार, भारङ्गी, खरैटी और कंधी सब द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले फिर उसमे अन्य द्रव्यों का बारीक चूर्ण मिलाकर सबको आवश्यकतानुसार घी और शहद मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली। घी और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से छर्दी, अपस्मार, उन्माद, वातरोग, कास, श्वास, क्षय, हिक्का, अर्श, प्रमेह, पित्तज्वर, अरुचि, तिमिर, नेत्ररोग, गलरोग और कर्णस्तम्भ आदि रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह योग शीतवीर्य, मधुरविपाकयुक्त, प्रभावशाली, वातनाडीपोषक, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि धातुओ में वातकफ द्वारा नाडीउग्रता या नाडीशिथिलता जन्य विकारसृष्टि का नाश करता है और तत्तद्धातुगुणवर्द्धन करके शरीर मे सौम्यता, पुष्टि और धैर्य आदि उत्पन्न करता है। शरीर के अङ्गो को रज तम से निर्मुक्त रखकर शारीरिक और मानसिक दोषों की उत्पत्ति से मानव को बचाता है। बल–वर्ण और इन्द्रियों को प्रसन्न रखता है। समअग्नि, समधातु और सम–मल क्रिया उत्पन्न करने मे शरीर को पूर्ण योग देता है। अत इसके सेवन से मानसिक और मानसिक रोगों के अनुबन्धी रोगों का नाश होता है।

प्रतिश्याय हर रस [भा. भै. र. ४४४७]

(रसेन्द्रमं. । प्रतिश्याये)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१ भाग शुद्ध पारा और १ भाग शुद्ध गन्धक की कज्जली मे १ भाग तुलसी का चूर्ण मिलाकर उसे कोयल के रस, पीपल तथा सोंठ के क्वाथ मे ३–३ दिन तक घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां वनालें ।

मात्राः—१–१ गोली । उष्ण जल अथवा तुलसी के क्वाथ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रवृद्ध नासिका रोग नष्ट होता है ।

सं. वि.—यह औषध कफनाशक, श्लेष्मकला शोथनाशक और कफ को छुडानेवाली है। इसका प्रयोग प्रतिश्याय, प्रतिनस्य, कफज्वर आदि रोगों मे यथादोषानुपान किया जाता है ।

प्रमेहवद्ध रस [भा. भै. र. ४४६४] (प्रमेहवज्र रस)

(शा. ध. । म ख. अ. १२; र. र. स.; र. म., र. का.; र. प्र. सु., वृ. नि. र.; र. रा. सुं. । प्रमेहा., वृ. यो त. । त. १०३)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, कान्तलोहभस्म, मुण्डलोहभस्म, शिलाजीत, सोनामक्खीभस्म, शुद्ध मनसिल, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, अङ्कोल के बीज, कैथ और हल्दी, सब द्रव्य समान भाग ले । प्रथम कूटने योग्य औषधियों का चूर्ण बनाले फिर सबको एकत्र करके भंगरे के रस की २० भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां वनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । मधु के साथ चाटकर ऊपर से बकायन के ६ बीज, चावल ५ तोले को भलिभान्ति मिलाकर और उसमे १० मासे घी मिलाकर पीवे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से यह रस समस्तविध प्रमेहों का नाश करता है ।

सं. वि.—इस योग की सभी औषधे प्रमेहो के कारणो को दूर करनेवाली है । श्लेष्मकलाओं के दोष, मेदवृद्धि, शुक्रतारल्य और उदरगत आम तथा वात का नाश करनेवाली है। यह समशीतोष्ण, वीर्य–कफ–मेद–वातनाशक, अग्निवर्द्धक औषध प्रमेह के सभी प्रकारों मे परम हितकर होती है । यह योग प्रशस्त और सफल है ।

प्राणेश्वर रस [भा. भै. र. ४४८२]

(भै. र, र. रा. सुं., रसे. सा. सं., र का. धे. । ज्वरा., रस. मं. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद, परिशोधित गन्धक और शुद्ध वच्छनाग । प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले तदनन्तर उसमे अभ्रक और वच्छनाग का चूर्ण मिलाकर सबको तालमूली के रस मे घोटकर सुखाने के

बाद आतसी शीशी में, जिसपर ७ कपडमिट्टी की गई हो, भरदे और शीशी के मुख पर भी कपडमिट्टी करके सुखादें। शीशी को गड्ढे मे रखकर पुट लगादें और उसके स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी में से औषध को निकालकर १ दिन पर्यन्त खरल करें। तत्पश्चात् सफेद और काला जीरा, हींग, सज्जीखार, टंकण (सुहागा), फिटकरी, गूगल, पाञ्चोनमक, यवक्षार, अजवायन, कालीमिर्च और पीपल। प्रत्येक औषध पारे के बराबर लेकर सबको एकत्र करके इनका क्वाथ बनावे और इस क्वाथ को उपरोक्त द्रव्य मे डालकर ७ भावना देकर धूपमें सुखाकर बारीक चूर्ण करके रख लें।

मात्राः—२–२ रत्ती। पान मे रखकर। नवीन ज्वर मे पान मे रखकर खाने के बाद ऊपर से गरम पानी पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सन्निपात का प्रकोप, शीतज्वर, दाह पूर्वज्वर, गुल्म, त्रिदोषजशूल और प्रचण्ड ताप शान्त होता है।

इस रस के ऊपर रोगी की इच्छानुसार भोजन देना चाहिये और शरीर पर चन्दन का लेप करना चाहिये।

प्राणेश्वर रस [भा. भै. र. ४४८१]

(र. र. स. । उ. अ. १८) (सर्वाङ्ग सुन्दर रस)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक तथा अभ्रकभस्म १–१ भाग लेकर तीनों को तालमूली के रसमे घोटकर कल्क बनावे और उसे कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर उसके मुखपर खडिया का डाट लगाकर उस पर भी कपडमिट्टी करके सुखादे। तदनन्तर शीशी को गड्ढे में रखकर भूधर पुट मे पकावे और फिर स्वाङ्गशीतल होनेपर उसमें से औषध निकाल लें। औषध को पीसने के बाद उसमें सुहागा, सज्जीक्षार, यवक्षार, पाञ्चोनमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, भुनीहुई हींग, गूगल, इन्द्रजौ, भांग, चीता, अजमोद और अजवायन का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलावें और उपरोक्त रसमें उसके बराबर यह चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १ मासा) २–२ रत्ती। पान मे रखकर खावे। इसे प्रातःकाल खाकर ऊपर से १–२ चूल्लु गरम पानी पीना चाहिये। इसे दिनभर में केवल एक ही बार पिलावें। दो बार भूलकर भी न दे। यदि प्यास न लगे तो भी २४ घण्टों मे १ बार शीतल जल अवश्य पिलाना चाहिये।

पथ्यः—इसके सेवन काल मे शाक, खटाई और दाल नहीं खानी चाहियें। दिन में सोने से भी बचना चाहिये। शरीर पर तेल मालिश और ब्रह्मचर्य का पालन करना हितावह है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ८ प्रकार के गुल्म, वायु, परिणाम शूल, सन्निपात-ज्वर, प्लीहा, कामला, पाण्डु, मन्दाग्नि और ग्रहणी रोग का नाश होता है।

यदि सन्निपात रोगी अचेतन हो तो इस रस का अधिक सेवन न करायें।

सं. वि.—यह औषध उदरगत तथा अन्य मार्ग प्रतिष्ठित वायु का अनुलोमन करती है। आम का शोषण और दोषों का विलयन करती है। यह विशेषतया वातविशिष्ट रोगों में फलदायक है। आध्मान, आन्त्रिक सन्निपात, जीर्ण ग्रहणी, उदरच्छदाकला आमज शोथ और उदरगत वात के अन्य अनुबन्धि रोगो मे इस की क्रिया बहुत ही अच्छी और स्वास्थ्यप्रद होती है। यह आमजन्य उदर रोगों के आम का शोषण करके निरहरण करती है। अन्त्र में वायु (साम अथवा निराम) से होनेवाले विकारों मे यह औषध बहुत ही गुणकर है।

प्राणवल्लभ रस [भा. भै. र. ४४७८]

(र. चं. । गलगण्ड., रसे. सा. स. । प्लीहा.; रसे. चि. म. । अ. ९. र. चं. । गुल्मा., रसे. सा. सं. । गुल्मा.; भै. र. । गुल्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौहभस्म. ताम्रभस्म, कौडीभस्म, तुत्थभस्म, भुनी हुई हींग, त्रिफला, थूहर का मूल, यवक्षार, शुद्ध जमालगोटा, सुहागे की खील और निसोत। प्रत्येक द्रव्य ५–५ तोले ले। कूट छानकर चूर्ण बनाले और फिर सबको एकत्र करके १ दिन बकरी के दूध मे घोटकर (शास्त्रोक्त ४ रत्ती) २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१–१ गोली। पानी अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कामला, पाण्डु, अफारा, श्लीपद, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, हलीमक, अपची,, वातरक्त, खुजली, विस्फोटक और कुष्ठ का नाश होता है।

कामला रोग से पीडित रोगी के लिये इससे अच्छी कोई औषध नहीं है।

सं. वि.—यह औषध वात–पित्तशामक, वातानुलोमक, रेचक और शोधक है। यह विषनाशक और पित्तशामक औषध है।

प्राणदापर्पटी [भा. भै. र ४४७५]

(वृ. यो. त. । त. ७६, वृ. नि. र., यो. र.. र. चं. । क्षय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सीसाभस्म, वङ्गभस्म तथा कालीमिर्च और शुद्ध वच्छनाग का चूर्ण १–१ भाग तथा शुद्ध गन्धक ७ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर उसमे अन्य औषधे मिलाकर सबको भलीभान्ति खरल करे। तदनन्तर एक लोहे की कढाई मे थोडा सा घी लगाकर उसमें इस

कज्जली को डालकर वेरी के कोयलों की मन्दाग्नि पर पिघलावें और फिर भूमि पर गाय का गोबर फैलाकर उसपर केले का पत्ता बिछावे एवं उसके ऊपर इस पिघली हुई कज्जली को फैलादें। तदनन्तर उसके ऊपर केले का पत्ता ढकदे और उसको गोबर से ढकदें। थोडी देर बाद जब वह बिल्कुल ठण्डा हो जाय तो पर्पटी को उठालें।

मात्राः—१ से ४ रत्ती। यथारोगानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पाण्डु, अतिसार, ग्रहणी, ज्वर, अरुचि, खांसी, यक्ष्मा, प्रमेह और अग्निमान्द्य का नाश होता है। इसके अतिरिक्त उचित अनुपानों के साथ देने से यह समस्त रोगों का नाश करती है।

सं. वि.—यह औषध स्वेदल, मूत्रल, व्रणशामक, शोथनाशक, अग्निबर्द्धक और मूत्र में आनेवाले क्षारों का नाश करती है।

मेरी दृष्टि से इसका प्रयोग वृक्कशोथ, वृक्कनलिका शोथ, मूत्रघात, वस्तिशोथ, वस्तिवात आदि रोगो पर करना चाहिये। यह उदरच्छदाकला के शोथ मे बहुत उपयोगिता पूर्वक प्रयुक्त की जाती है।

प्राणनाथ रस [भा. भै. र. ४४७६] (प्राणत्राण रस)

(वृ. नि. र. । क्षय,, र. र., र. का. धे. । क्षय)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—५ तोले त्रिफले के क्वाथ को एक मिट्टी के शराब मे डाल्दें, उसमें ५ तोले लोहभस्म डालकर मन्दाग्नि पर पकावे। सारे रस के सूख जाने पर लोहभस्म को खरल में डाल दे और उसमे ५ तोला सोनामक्खी का चूर्ण मिलाकर १० तोले भांगरे के रस और ५—५ तोले त्रिफला और भारङ्गी के रस मे घोटे। तदनन्तर इसका १ गोला बनाकर उसे शराब सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंक दें। पूर्वोक्त विधि से उसे तीनो रसों की ३—३ पुट दे। तत्पश्चात् उसमे ५—५ मासे पारे और बङ्ग की भस्म तथा १० मासे शुद्ध गन्धक और २० मासे कौडीभस्म मिलाकर पूर्वोक्त तीनो रसो मे घोटकर गजपुट मे फूंक दे। पुट के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसमें से औषध को निकालकर उसमे ३५ मासे कालीमिर्च का चूर्ण तथा ५० मासे तुत्थभस्म और इतना ही सुहागा मिलाकर भली प्रकार घोटकर रक्खें।

मात्राः—२—३ रत्ती। यथा रोगानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से दुस्साध्य राजयक्ष्मा, शोथ, उदररोग, अर्श, ग्रहणी, ज्वर और गुल्म का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध जन्तुघ्न, विषघ्न, गरविष नाशक, आमनाशक, कृमिनाशक और

विष, कृमि तथा जन्तुओ द्वारा होनेवाले विकारो को नष्ट करती है। जन्तुजन्य उदररोग, ग्रहणी, शूल, राजयक्ष्मा आदि रोगो में इसका उपयोग सुखावह होता है।

—पिप्पल्यादि लोह [भा. भै. र. ४४११]

(भै. र.; र. रा. सुं., र. चिं.; र. चं.; र. सा. सं.; धन्वं. । र. र. । हिक्काश्वासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, आमला, द्राक्षा (मुनक्का), वेरकी गुठली की गिरी, शहद, मिश्री, वायविडङ्ग और पोखर मूल १—१ भाग तथा लोहभस्म ८ भाग लेकर चूर्ण योग्य द्रव्यों का चूर्ण बनाकर सबको एकत्र मिलावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भयङ्कर वमन, हिक्का और तृष्णा ३ दिन में अवश्य शान्त होते है।

सं. वि.—यह मिश्रण वात, पित्त और कफ तीनोही दोषों का अनुलोमक है। पीपल, आमला, द्राक्षा, मधु आदि जितने भी द्रव्य है सभी कण्ठशोधक, आमाशय उत्तेजना नाशक तथा स्वाभाविक ही पाचक है। इसके दीर्घ काल के सेवन से आमाशय, ग्रहणी, क्षुद्रान्त्र तथा बृहदन्त्र मे होनेवाले व्रणो का नाश होता है। यह औषध सभी के लिये उल्टी, हिचकी और तृष्णा मे समान उपयोगी है।

पित्तपाण्ड्वारी रस [भा. भै. र. ४४०२]

(र. रा. सुं.; र. का. धे. । पाण्डु.; र. र. स. । अ. १९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म ४ भाग, लोहभस्म ८ भाग तथा चीतामूल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला औ कूडे की छाल का चूर्ण १—१ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर मधु के साथ घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको प्रात' काल सेवन करने से पित्त पाण्डु का नाश होता है।

पित्तान्तक रस [भा. भै. र. ४४०८]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, मुण्डलोहभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हरतालभस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। अनन्तर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर भलीभान्ती घोटने के वाद उसको मुलैठी, द्राक्षा (मुनक्का), गिलोय, शैवाल (सिरवाल) पाठा, और क्षीरविदारी के स्वरस की १—१ भावना देकर ३—३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। मिश्री मिला हुवा दूध या मुलैठी के क्वाथ या शीतल जल में मिली हुई सुगन्धवाला के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पित्तज्वर, क्षय, दाह, तृषा, परिश्रान्ति और शोष रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—इससे पूर्व भी एक पित्तान्तक रस आ चुका है। दोनों पित्तान्तक रसों के अन्दर जैसा मिश्रण मे भेद है वैसा ही उनकी क्रिया में भी अन्तर है। यह पित्तान्तक रस पोषक, मूत्रल, दाहनाशक, शोफनाशक और पित्तद्वारा उत्पन्न हुये वृक्क, हृदय और फुफ्फुसावर्ण के शोथों को नाश करता है। हृदयावर्ण मे अधिक परिश्रम के कारण अथवा अधिक अनावश्यक चिन्तन के कारण दाह का जो संचय प्रतीत होते हुये हृदय को उद्विग्न और अधिक गतिमय कर देता है उसको दूर करके यह औषध हृदय का पोषण करनेवाली सिद्ध होती है। पूर्वलिखित "पितान्तक रस" अधिकतर अन्त्र के क्षोभ, विष तथा खाद्य आदि विकारो के दोष से उत्पन्न हुये दाह का नाश करता है और पित्तज अग्निमान्द्य को दूर करके उदर क्रिया को सम करता है। यह पित्तान्तक रस हृदय, मस्तिष्क आदि महापिण्डो के श्रम, क्लम, भ्रान्ति तथा उदर दोषादि के विकारो से उत्पन्न हुए पित्तको शान्त करके उन अङ्गो की पुष्टि करता है।

पित्तान्तक रस (पित्तभञ्जी रस) [भा. भै. र. ४४०७]

(र. सा. सं.; र. चं.; र. रा., सुं. । पित्तरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जायफल, जावित्री, जटामांसी, कूठ, तालीसपत्र, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म। प्रत्येक १–१ भाग तथा चांदीभस्म ८ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर पानी मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

नोटः—यदि इस योग मे स्वर्णमाक्षिक के स्थान मे स्वर्णभस्म डाल दी जाय तो इसी का नाम "महा पित्तान्तक रस" हो जाता है।

मात्राः—१–१ गोली। मक्खन और मिश्री के साथ अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कोष्ठ और शाखाओ मे आश्रित दुष्टपित्त, शूल, अम्लपित्त, पाण्डुरोग, हलीमक, अर्श, भ्रान्ति और वमन का शीघ्र नाश होता है। यह पित्तान्तक रस "काशी राज" द्वारा निर्मित हुवा है।

वक्तव्य—यह औषध यकृत्, प्लीहा, क्लोम आदि ग्रन्थियो मे आश्रित दुष्ट पित्त का नाश करती है और सम्पूर्ण अवयवों को सक्रिय करके उनके अनिच्छित ऊष्मा को दूर करती है। सभी पित्तज विकारो मे इसका उपयोग विविध अनुपानो के साथ हितकर होता है। दीर्घ काल से अवरुद्ध ऊष्मा के कारण द्वादशांगुल भाग की श्लेष्मकलाये शिथिल होने से सतत

उदर मे दाहसा मालूम पडता है। इस अवस्था में इसका उपयोग घी, मधु और शर्करा के साथ किया जाय तो ग्रहणीगत विकार नष्ट होता है और शरीर को वृद्धि प्राप्त करने का अवकाश मिलता है।

पियूषवल्ली रस [भा. भै. र. ४४१७]

(भै. र.; र. सा. सं., र. रा. सुं. । ग्रह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, चान्दीभस्म, लौहभस्म, सुहागे की खील, रसौत, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लौंग, सफेद चन्दन, नागरमोथा, पाठा, जीरा, धनिया, मजीठ, अतीस, लोध, कूडे की छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, जायफल, सोंठ, वेलगिरी, शुद्ध धतूरे के बीज, अनार की छाल, लज्जालु, धाय के फूल और कूठ। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यो का बारीक चूर्ण मिलाकर काले भांगरे की १ भावना देकर बकरी के दूध मे घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। वेलकी गिरी की राख और उसके समान गुड के मिश्रण मे मिलाकर चटावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सर्वविधातिसार और पुरानी अथवा नवीन संग्रहणी का नाश होता है। यह औषध आमका पाचन करती है और अग्नि को दीप्त करती है।

सं. वि.—यह रस शोधक, रोधक, पाचक, आमशोषक, वातानुलोमक, कफ—पित्त प्रशामक तथा अग्निवर्द्धक है। दीर्घकाल से पीडित संग्रहणी रोगी यदि शान्तिपूर्वक इसका पर्याप्त समय तक उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करता रहे और आहार—विहार मे सतर्क रहे तो उसका पेट निरामय हो कर वह पूर्ववत् स्वस्थ हो जाता है।

प्लीहारी रस [भा भै. र. ४४८७]

(भै. र. । प्लीहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा और आमला १—१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा सबसे आधा ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियो का बारीक चूर्ण मिलाकर सबको १ प्रहर केसू के फूलो के रसमे घोटकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अर्श, गुल्म, शूल, कफजशोथ, उदावर्त, वातशूल, श्वास, कास, ज्वर, समस्त उदररोग, आमवात तथा कफविकार नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, सहज रेचक, वातपित्तशामक, अग्निवर्द्धक और पाचक है। उदर में वात–कफ द्वारा होनेवाले विकारों को दूर करने के लिये यह औषध श्रेष्ठ है। यह यकृत् और प्लीहा के विकारों को जो दीर्घकालीन आमजन्य विकारों से अथवा विष-विकारों से उत्पन्न हुये हों उनके कारणों का नाश करके, नष्ट करती है।

प्लीहाशार्दूल रस [भा. भै र. ४४७४]

(भै. र., र. रा. सुं.; रसे. सा. सं. । प्लीहा.; रसे चिं. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोठ, मिर्च और पीपल १–१ भाग, ताम्रभस्म ५ भाग तथा मनसिल, कौडीभस्म, तुत्थभस्म, भुनी हुई हींग, लोहभस्म, रूहेडे की छाल, यवक्षार, सुहागे की खील, सेधानमक, विडनमक, चीतामूल और धतूरे के बीज १–१ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियों का महीन चूर्ण मिलाकर सबको ३–३ दिन निसोत, चीता और पीपल के क्वाथ तथा अदरक के रस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। पीपल के चूर्ण और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्लीहा, अग्रमांस, यकृत्, दुस्साध्य गुल्म, आमाशय के रोग, उदररोग, शोथ, विद्रधि, अग्निमान्द्य और ज्वर का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस आमशोषक, अग्निवर्द्धक और दोषानुलोमक है। इसके प्रयोग से कफ–वातज उदर, आमाशय, यकृत्, प्लीहा आदि स्थानों के विकार–औषधि के तीक्ष्ण, ऊष्ण, सारक वातानुलोमक, शोथनाशक और शोधक गुणो द्वारा शीघ्र नष्ट होते है। यह कलाओं की उत्तेजना को दूर करने मे श्रेष्ट काम करता है।

प्लीहान्तक रस [भा. भै. र. ४४८५]

(भै र. । प्लीहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, चांदीभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, मोतीभस्म, शुद्ध हिंगुल, पोखरमूल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध गूगल, सोंठ, मिर्च, पीपल, रास्ना, शुद्ध जमालगोटा, हर्र, बहेडा, आमला, कुटकी, दन्तीमूल, विंडालडोढा, सेधानमक, निसोत और जवाखार। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। फिर उसमें जमालगोटा और गूगल डालकर थोडा थोडा अरण्डी का तेल डालते हुये अच्छी तरह घोटे। जब गूगल कज्जली मे मिलजाय तो अन्य समस्त चीजों का बारीक चूर्ण मिलाकर आवस्यकतानुसार अरण्डी का तेल डालकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। दोषानुसार। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ८ प्रकार के उदररोग, पाण्डु, आध्मान, विषमज्वर, अजीर्ण, आम, कफ, क्षय सब प्रकार के शूल, कास, श्वास, शोथ और विशेषत प्लीहा रोग का नाश होता है।

सं. वि.—"प्लीहान्तक रस" भेदक, शोधक, आमपाचक, श्लेष्मपाचक, दोषशामक, वातानुलोमक और रसधातुगतविकारों को दूर करता है। अधिक रस संग्रह द्वारा उदर, उदरच्छदाकला, आमाशय, उदरग्रन्थियां तथा आमाशय—श्लेष्मकलाओं मे होनेवाले रसज विकारों को यह औषध शोषक और भेदक गुणो द्वारा शीघ्रातिशीघ्र दूर करती है।

ताम्रभस्म, अभ्र, लोह चांदी, मुक्ता, हिंगुल आदि द्रव्य ग्रन्थिगत शोथ, रसज उदरशोथ, आमजन्य सर्वाङ्गशोथ आदि रस तथा किट्टज विकारो को दूर करके रस का रक्त में परिणमन करने मे सहायभूत होते है तथा मेद और मेद द्वारा होनेवाले अन्य विकारों को दूर करके यकृत् और प्लीहा जैसी शरीर पोषक ग्रन्थियो को सुस्थित कर सक्रिय बनाते है। यह औषध रक्तवर्द्धक, जन्तुघ्न, कृमिघ्न, और शरीर पोषक है।

पुरन्दर वटी [भा. भै. र. ४४२३]

(र. चं.; र. सा. सं.; र. रा. सु., धन्वं. । कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१ भाग शुद्ध पारद तथा २ भाग शुद्ध गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमें सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा और आमले का १—१ भाग चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन पर्यन्त बकरी के दूध मे घोटकर ३—३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१—१ गोली। अदरक के रस के साथ मिलाकर उसे चाटने के बाद ऊपर से ठण्डा जल पियें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कास और श्वास रोग नष्ट होते है और विशेषतः अग्नि की वृद्धि होती है। इसे निरन्तर अधिक समय तक सेवन करने से वृद्ध भी सशक्त तरुण की तरह शक्तिशाली बन जाता है।

पुष्पधन्वा रस [भा. भै. र. ४४२५]

(भै. र.; यो र. । रसायनवाजी., आ. वे. वि. । अ ६९, वृ. यो. त. । त. १४७, यो. त. । त. ८०)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, सीसाभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, बङ्गभस्म, शुद्ध धतूरे के बीज, विजयसार, मुलैठी, सेंमल की मूसली और पान समान भाग लेकर सबका यथाविधि चूर्ण बनाकर रक्खें।

मात्राः—२ से ३ रत्ती। घृत, मधु और मिश्री युक्त दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से बल और आयु की वृद्धि होती है तथा सैकडों स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति प्राप्त होती है।

वक्तव्य—यह औषध वाजीकरण और रसायन है। इसका सेवन वीर्यवर्द्धक, अग्निवर्द्धक, बलवर्द्धक और आयुवर्द्धक है। यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग मे नवता का संञ्चार करती है और शिथिल हुये अङ्गो को भी सशक्त करती है।

पूर्णचन्द्र रस [भा. भै. र. ४४३१]

(र. चं.; र. र. स.; रसे. चि. म.; धन्वं.; र. रा. सु.। वाजीकरणा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, असगन्ध और गिलोय १—१ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। उसमे अन्य दोनों औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन मुलैठी के क्काथमे घोटे और फिर उसमें १—१ भाग क्षुद्रशंख (घोंघा), मोती और मण्डूर की भस्म मिलाकर १ दिन विदारीकन्द के रस मे घोटकर गोला बनावे और एक दिन भूधर यन्त्र में पकाकर स्वाङ्गशीतल होनेपर निकालने के बाद १ प्रहर पान के रस में घोटकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। मधु और घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पुष्टि होती है तथा वीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है।

(१) इसे पित्तरोग, पित्तग्रहणी और अर्श में प्रायः बोल के चूर्ण के साथ सेवन कराते हैं।

(२) स्त्रियों के रोगों में इसका प्रयोग शाल्मली की छाल के रस के साथ अथवा शिलाजीत और मिश्री के मिश्रण के साथ किया जाता है।

(३) शरीर की कृशता को दूर करने के लिये इसका सेवन शुद्ध गन्धक, अश्वगन्ध और मुलैठी को दूध में पकाकर उसके साथ किया जाता है। इसी प्रकार शरीर की कृशता को दूर करने के लिये इसको खिलाकर मुलैठी, अश्वगन्ध, पीपल का चूर्ण, घी और शहद के मिश्रण को चटाना चाहिये। मोती और शंख की भस्म में मधु, घी और शाल्मली का गोद मिलाकर चटावे।

वक्तव्य—यह औषध पाचक, पोषक और शरीरवर्द्धक है। इसका सेवन आमवात, वीर्यक्षीणता, खाद्याभावजन्य कृशता आदि रोगों में शीघ्र बल, वीर्य और शक्तिवर्द्धक क्रियायें करता है। मस्तिष्क की नाडियों की दुर्गति में इसका उपयोग नाडियों का पोषण करता है, मस्तिष्क को सतेज करता है और शरीर परिश्रान्ति के कारण होनेवाले शरीर के दाह और आलस्य को दूर करके शरीर की कान्तिको बढाता है।

फिरङ्गारि रस [भा. भै. र. ४५३७]
(भा. प्र. । म. खं. फिरङ्गरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और कत्था १-१ कर्ष (१।-१।) तोला लेकर तीनो की कज्जली बनावे । तत्पश्चात् उसमे आधा-आधा कर्ष हल्दी, केशर, छोटी इलायची, दोनों जीरे, अजवायन, सफेद और लाल चन्दन, पीपल, वंशलोचन, जटामांसी और तेजपात का चूर्ण मिलाकर सबको भलीभान्ति खरल करे और फिर उसमें १०-१० तोले शहद और घी मिलाकर उसे सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—(शास्त्रोक्त आधा कर्ष) ६-६ रत्ती अथवा यथारोग अग्निबलानुसार ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से फिरङ्ग (Syphilis-आतशक) के व्रण तथा अन्य प्रकार के पुराने और नये व्रण भी अवश्य नष्ट हो जाते है ।

इसको खाते हुये मुख के अन्दर शोथ नहीं होता (छाले नहीं पडते) ।

पथ्यः—इसका प्रयोग करते हुए २१ दिन पर्यन्त लवण का त्याग करना चाहिये ।

वहुमूत्रान्तक रस [भा. भै. र. ४७३५]
(सि. भै. म. मा. । प्रमेह चिकि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—बीजबन्द, तालमखाना, मुलैठी का सत्त, वंशलोचन, सतबिरोजा, सालममिश्री, सीप की भस्म, मूंगाभस्म, वहेडे और हर्र की गुठली की मज्जा (मींगी), शिलाजीत, छोटी इलायची के बीज तथा बङ्गभस्म समान भाग लेकर सबका बारीक चूर्ण बनाकर उसे शहद मे घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें ।

मात्राः—१-१ गोली । जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वहुमूत्ररोग का नाश होता है ।

सं. वि.—यह औषधयोग शामक है । शरीर तन्तु अन्तरगत दाह को दूर करता है । वृक्क का पोषण करता है । मूत्राशय और मूत्रमार्ग की कलाओं का विकार दूर करके उनका पोषण करता है । क्लोम ग्रन्थिदाह को दूर करता है ।

वंगाष्टकम् [भा. भै. र. ६९१२]
(भै. र. । प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, चान्दीभस्म, खपरिया, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म १-१ भाग तथा बङ्गभस्म ७ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर खरल करे, मिश्रण को शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे पकावे और उसके स्वाङ्गशीतल होनेपर औषध का निकालकर पीसकर सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—२–२ रत्ती। हल्दी चूर्ण मिश्रित मधु के साथ चाटकर ऊपर से आमले का रस पियें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, आमदोष, विषूचिका, विषमज्वर, गुल्म, अर्श, मूत्रातिसार, पित्त और सोमरोग का नाश होता है तथा वीर्यवृद्धि होती है।

सं. वि.—यह योग अन्त्र को शक्ति देनेवाला, उसकी क्रिया को स्वस्थ करनेवाला, अन्त्र के शोथ–आम–शूल–वातावरोध आदियों को दूर करनेवाला है तथा विशेषतः यह श्लेष्मकला के विकारो को दूर करता है। सम्पूर्ण अन्त्र में प्रसृत श्लेष्मकलाओं में आहार–विहार के कारण शीघ्र विकार उत्पन्न हो जाते हैं. वैसे ही उदरच्छदाकला में उदर के वायु, आम, कफ दोष के कारण विविध प्रकार के विकारों की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे अन्त्र शिथिल होकर वस्ति को या तो उत्तेजित करते है अथवा निष्क्रिय बना देते है। इन दोनो ही अवस्थाओ में प्रमेह, अर्श, आमदोष. विषूचिका, विषमज्वर, सोमरोग, वीर्यविकार आदि की उत्पत्ति होती है। यह रस श्लेष्मकलाओं के शोथ, व्रण, निष्क्रियता आदि विकारो को दूर करके उपरोक्त रोगों को दूर करता है। प्रमेह की किसी भी दशा में यह औषध लाभप्रद सिद्ध होती है।

वंगेश्वर रस [भा. भै. र. ६९१७]

(र. चं. । प्रमेहा.; वैद्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म और बङ्गभस्म १–१ भाग तथा सेंधानमक २ भाग लेकर तीनों को एकत्र घोटकर शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे।

मात्राः—१–१ रत्ती। यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के प्रमेह, अग्निमान्द्य, कफ और श्वासरोग का नाश होता है तथा वीर्य और कामशक्ति की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध सौम्य, दोषघ्न और अन्त्र को दोषों से मुक्त रखनेवाली है। इसके सेवन से हृदय, मस्तिष्क ग्रन्थी, वीर्यप्रणालि और वीर्यग्रंथी का पोषण होता है।

बालसञ्जीवनी रस [रसतन्त्र सार]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, जावित्री, लौंग, सबको समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर जायफल आदि का बारीक चूर्ण मिलाकर खरल करें।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। माता के दूध या मधु के साथ।

उपयोगः—यह रसायन बालको के ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जुकाम, अपचन, मन्दाग्नि आदि रोगों में अति लाभदायक है। कब्ज हो तो पहिले उदर शुद्धि करे तत्पश्चात् "बाल सञ्जीवनी रस" देवे। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

बालरस [भा. भै. र. ४७४३]

(र. सा. सं.; धन्वं.; भै. र.; र. चं.; र. रा. सुं.; र. र. । बालरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ५ तोले, शुद्ध गन्धक ५ तोले और सोनामक्खीभस्म २॥ तोले लेकर तीनो की कज्जली बनावें। तत्पश्चात् उसे लोहे के खरल में काले भांगरे और सफेद भांगरे तथा भंभाड़ के रस एवं मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, हुलहुल, पुनर्नवा, मण्डूक पर्णी और कोयल के रस की १-१ भावना देकर उसमें २॥ तोले कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर १ प्रहर पत्थर के खरल में घोटे और आधी-आधी रत्ती की गोलियां बनाकर धूप में सुखाकर रखलें।

मात्राः—१-१ गोली। माता के दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बच्चों के सन्निपातज्वर तथा कासादि अनेक रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शोथनाशक, मस्तिष्क पोषक, उदर तथा यकृत्-प्लीहादि विकारों का नाश करनेवाली, ज्वर, कास तथा श्वासघ्न है।

बालार्क रस [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध खपरिया अथवा यशदभस्म, प्रवालभस्म या पिष्ट, हरिण या सांभर के सींग की भस्म, शुद्ध हिंगुल, गोरोचन, कचूरे का चूर्ण और केशर। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले और एकत्र खरल करें। तत्पश्चात् उसे ब्राह्मी के स्वरस में १ दिन मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियां बनावें और छाया मे सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा और अनुपानः—१-१ गोली। दिन मे २-३ वार। मधु या जल के साथ।

उपयोग—बालको के कास और कफ के विकार, अतिसार, कृमिविकार, ज्वर, वमन और आक्षेपक मे इसका प्रयोग करें। [सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

बालार्क रस [भा. भै. र. ४७४५]

(वृ. नि. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान— पारदभस्म १ भाग, शुद्ध हिंगुल २ भाग और जमालगोटा ३ भाग लें। सबको दन्ती के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। मा के दूधमे अथवा अवस्थानुसार यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से आधे दिन मे ही किसी भी दोष से प्रकुपित हुवा ज्वर नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध रेचक है। बचो को प्रयोग कराते हुये उनकी अवस्थानुसार

देश, काल, बल, आत्म्य, सात्म्य देखकर प्रयोग कराना चाहिये। ज्वर की उग्रावस्था मे इसकी जितनी कम मात्रा दी जायेगी उतनी ही अधिक लाभप्रद होगी।

बालज्वराङ्कुश रस [भा. भै. र. ४७४१]

(बृ. नि. र. । बालरों.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, वङ्गभस्म और चांदीभस्म १—१ भाग, ताम्रभस्म और फौलादभस्म (तीक्ष्णलौहभस्म) तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेडा और कसीस-भस्म २—२ भाग लेकर सबका बारीक चूर्ण बनाकर उसको पान के रस की कई भावना देकर (शास्त्रोक्त ३—३ रत्ती की) १—१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गर्भिणी तथा बालकों के सब प्रकरार के ज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पोषक, शोधक, पाचक और आमशोषक है। गर्भिणी की ऐसी दशामें कि जब आध्मान, अरुचि और वमन आदि प्रथम ३ मासो के अन्दर होते हों और इन्हीं के कारण ज्वर हो जाता हो तो इसका प्रयोग अम्लत्वनाशक, वातनाशक और दोषा-नुलोमक होने से उपरोक्त सभी विकारों का संशमन करता है।

बालरोगान्तक रस [र. यो. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा ४० तोला, शुद्ध गन्धक ४० तोला और स्वर्णमाक्षिकभस्म २० तोला लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और उसमें सूक्ष्म स्वर्णमाक्षिकभस्म मिश्रित करके भलीभान्ति खरल करें तथा मिश्रण को श्वेत भृङ्गराज, निर्गुण्डी, काकमाची, ग्रीष्मसुन्दर, सूर्यावर्तक और सफेद कोयल के क्वाथ अथवा रस की पृथक पृथक भावनाये देकर ½—½ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः—१—१ गोली। मधु अथवा मातृ दुग्ध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बालकों के साधारणतः सभी उदर विकार नष्ट हो जाते है और वे निरोगी बन जाते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, आमपाचक, विषनाशक, शोषनाशक, यकृत्—प्लीहा विकार नाशक, रक्तवर्द्धक और शरीरवर्द्धक है। इसके सेवन से शरीर के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार का मृदु अथवा उग्र शोथ हो तो शीघ्र नष्ट हो जाता है।

बालवसन्त रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णमाक्षिकभस्म ४ तोला, शुक्तिभस्म ८ तोला,

रससिन्दुर १२ तोला, श्वेतमिर्च १६ तोला, जहरमोहराखटाई १० तोला, खर्परभस्म ३२ तोला। सब द्रव्यो को एकत्र खरल करके उसमें १० तोला मक्खन मिलाकर पुन: खरल करें फिर इसे निम्बु के रस के साथ घोटे इस प्रकार निम्बु की ५ भावना दें और तैयार होनेपर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखालें।

मात्राः—१-१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बालको के होनेवाले अजीर्ण, अफारा, वमन, अतिसार, अशक्ति, शोष और ज्वर आदि नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध दाह, क्षोभ, उत्क्लेश, आमाशय शोथ और खाद्यविदग्धता आदि नष्ट करती है। इसके सेवन से बच्चों के दान्त विना आपत्ति के निकल आते है और किसी प्रकार का उदर विकार नही होने पाता। बाल शोष और दौर्बल्य के लिये यह औषध अप्रमेय है।

बालयकृदरि लोह [भा. भै. र. ४७४२]

(आ. वे. वि. । बालरो., अ. ८०)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सहस्रपुटी अभ्रकभस्म, पारदभस्म, जम्बीरी के बीज, अतीस, सरफोके की जड, लालचन्दन और पखानभेद समान भाग लें। सबका महीन चूर्ण बनाकर उसे गिलोय के रसमे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। मधु से साथ या स्तन्य से।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बालको के कष्टसाध्य यकृत्-ज्वर, प्लीहा, शोथ, विबन्ध, पाण्डु, कास, मुखरोग और उदररोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शीतवीर्य और मधुरविपाक है। इसके सेवन से अपथ्य द्वारा उत्पन्न हुए उदर के विकार, अनावश्यक ऊष्मा, आध्मान, यकृत्-प्लीहा वृद्धि, अजीर्ण आदि अनाहार, अत्यल्पाहार, विषमाहार द्वारा उत्पन्न हुए रोग शीघ्र दूर हो जाते है तथा रक्त की पर्याप्त वृद्धि होती है।

बालसूर्योदय रस [र. यो. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१ भाग शुद्ध पारद, २ भाग शुद्ध हिंगुल, ३ भाग शुद्ध गन्धक, ८ भाग खर्परभस्म, २० भाग नागभस्म और इन सबसे ४ गुणी अभ्रकभस्म लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और तदनन्तर अन्य द्रव्यो को यथाक्रम अर्थात् हिंगुल, खर्परं, नाग और अभ्रक को कज्जली मे मिलाते जांय और मर्दन करते जांय। जब सब द्रव्यो का भलीभान्ति मिश्रण तैयार हो जाय तो घीकुमार के रस की भावना दें और शराव

सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। अन्त में अदरक के रस की भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। दूध, घी और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जीर्णज्वर, सन्निपात, पाण्डु, ज्वर, अरुचि, भगन्दर, अर्श, मूत्रदाह, अपस्मार, भ्रम, उन्माद, कामला, वमन, क्षय, धातुगतज्वर १३ प्रकार के सन्निपात, ८० प्रकार के वातरोग और २० प्रकार के कफरोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध अग्नि के समान गुणकारी है और सभी प्रकार के वात–कफज विकार इसके सेवन से निस्संदेह दूर हो सकते है। यकृत्–प्लीहा विकारजन्य अन्त्र शैथिल्य, वात–कफ–आमजन्य अजीर्ण, उदरशूल, अर्श आदि उदररोग तथा रजोगुण और तमोगुण से होनेवाले मानसिक रोग तथा अपस्मार और वातप्राबल्य से उत्तेजित नाडीविकार नष्ट होते हैं।

वास्तव मे इतने सुन्दर योग से तैयार की हुई यह शतपुटी अभ्रकभस्म अमृत के समान लाभदायी, वात–कफ–क्षयनाशक और धातुगत विकारों को नष्ट करनेवाली है।

आहार दोष के कारण कभी २ सम्पूर्ण धातुओं मे अग्नि की मन्दता के कारण जडता उत्पन्न हो जाती है, जिस से शरीर की वृद्धि रुक जाती है। मनुष्यका शरीर श्यामवर्ण पडने लगता है। ओज क्षीण हो जाता है और इन्द्रियां चैतन्य हीन होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में इस रस का सेवन बहुत ही हितावह होता है। एक मास अथवा इससे अधिक सेवन करनेवाला मनुष्य वीर्यवान्, ओजवान् और बुद्धिमान हो जाता है।

ब्राह्मी वटी [सि. यो. सं.]
(वातरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, संगेयशब की भस्म या पिष्टी, अकीक की भस्म या पिष्टी, माणिक्य की भस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय, प्रवाल की भस्म या पिष्टी, कहरुवे की पिष्टी, सोने की भस्म या वर्क, मोती की भस्म या पिष्टी प्रत्येक ६–६ मासा। जायफल, लौंग, कूठ, जावित्री, स्याहजीरा, छोटी पीपल, दालचीनी, अनीसून, असगन्ध, अकरकरा, धनिया, वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, शंखाहुली, श्वेत चन्दन, सौंफ, तेजपात, नागकेसर, रुमीमस्तगी, पीपलामूल, चित्रक के मूल की छाल और कुलिञ्जन प्रत्येक ४–४ मासा तथा कस्तूरी, अम्बर, ब्राह्मी, निशोथ और केशर प्रत्येक १॥–१॥ तोला ले। प्रथम चन्द्रोदय, केशर, कस्तूरी और अम्बर को खूब महीन पीसले और उसमे अन्य भस्मे तथा पिष्टियां मिलाकर १–१ करके वर्क मिलावें। सोने के वर्क अच्छी तरह मिलजाने पर अन्य द्रव्यों का कपडछन चूर्ण मिलाकर एक दिन ब्राह्मी के स्वरस में मर्दन करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके रक्खें।

मात्रा:—१ से २ गोली तक। आवश्यक्तानुसार दिन में २—३ वार देवे।

अनुपान और उपयोग—सन्निपात ज्वर मे प्रलाप हो तो तगरादि क्वाथ के अनुपान से, अपतन्त्रक और आक्षेपक मे मांस्यादि क्काथ के अनुपान से, संतत ज्वर में शहद में मिलाकर, वातरोगों मे दशमूल के क्काथ के अनुपान से, हृदय की दुर्वलता मे खमीरे गावज़वान के साथ मिलाकर, भ्रम (सिर मे चक्कर आने) मे द्राक्षादि चूर्ण के साथ इसका प्रयोग करे। दिल और दिमाग की कमजोरी और उनसे होनेवाले लक्षण मे इससे अच्छा लाभ होता है।

[सि. यो सं से उद्धृत]

बुभुक्षुवल्लभ रस [भा. भै. र. ४७४८]

(रसा. सार.। अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, रससिन्दुर, शंखभस्म, शीपभस्म, कौडीभस्म, सुहागे और फिटकरी की खील १—१ भाग तथा पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता और सोंठ) का चूर्ण इन सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको बिजौरे निम्बु के रस में घोटकर (शास्त्रोक्त १—१ मासे की) ३—३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१ से ३ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—मिताहारी मनुष्य इसका सेवन करे तो उसे अजीर्ण नहीं होता।

सं. वि.—अपथ्य सेवन करनेवाले और अधिक खानेवाले तथा पोषण विहीन पदार्थों का सेवन करनेवाले सभी को वातज उदर विकार न्यूनाधिक मात्रा मे होते है। यह औषध वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, आमशोषक और पाचक है। अपथ्य दोषों का इसके सेवन से शीघ्र नाश होता है। आज के दुष्ट युग में जहां आहार—विहार ही दूषित नहीं है किन्तु अन्न भी दूषित है, इस औषध का सर्व सामान्य प्रयोग हितावह है।

बृहत्कस्तूरी भैरव रस [भा. भै. र. ७१०८]

(भै. र., र. चं.; र. रा. सुं.; रसे. सा. सं.। ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धाय के फूलों का चूर्ण, कौंच के बीजों का चूर्ण, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, मोतीभस्म, प्रवाल (मूंगा) भस्म, लोहभस्म, पाठा, वायविडङ्ग, नागरमोथा, सोंठ और सुगन्धवाला, इनका चूर्ण एवं, शुद्ध हरताल, अभ्रकभस्म और आमले का चूर्ण समान भाग ले। तदनन्तर सबको एकत्र मिलाकर आक के पत्तों के रस में खरल करके १—१ रत्ती की गोलिया बनाले।

मात्रा:—१—१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर यथा द्वन्द्वज्वर, विषमज्वर, भौतिकज्वर, काम ज्वर, अभिचारजनित ज्वर, शुक्रगतज्वर या शुक्रदोषो से होनेवाले ज्वर इत्यादि नष्ट होते है।

इसे वेलगिरी. जीरे के चूर्ण तथा मधु के साथ देने से आमातिसार, संग्रहणी और ज्वरातिसारनष्ट होते है. इसके अतिरिक्त यह रस अग्नि को दीप्त करता है। कास, प्रमेह, हलीमक, नवीन और जीर्णज्वर और द्विकालिक (दिन मे २ बार आनेवाला ज्वर), सततज्वर, एकाहिक, द्वाहिक, त्र्याहिक, चौथैया तथा पञ्चाहिक (पांचवे दिन आनेवाला), षष्ठाहिक (छटे दिन आनेवाला), पाक्षिकज्वर और मासिकज्वर आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह एक प्रसिद्ध औषध है। सभी प्रकार के वात-कफज विकारों में इसका उपयोग सर्वदा सन्तोषकारक होता है। यह औषध जन्तुघ्न और विषघ्न है। यह वातानुलोमक और कफपाचक है। इसका सेवन करने से वृद्धिगत दोष रुकते है, यही नहीं अपितु परिवर्द्धित दोष शीघ्र परिपक्व होकर नष्ट हो जाते हैं। इस रस का सेवन न्युमोनिया (Pneumonia) इन्फ्युएञ्जा (Influenza), आमवातज्वर (Rheumatic Fevers), पीनस तथा अन्य वात-कफज विकार चाहे वे कोष्टाश्रित वा शाखाश्रित ही क्यो न हों, सभी पर यह यथा दोषानुपान शीघ्र लाभ देता है।

यह योगवाही औषध है। कीटाणुजन्य विकारों पर यथा क्षय (T. B.), आन्त्रिक सन्निपात (Typhoid Fevers) आदि रोगो पर कीटाणुनाशक द्रव्यों के संयोग तथा कीटाणुनाशक रासायनिक संमिश्रण के कारण यह अवश्य सफल होती है। यह औषध पोषक, शोधक, ज्वरघ्न, शरीरवर्द्धक तथा वात कफनाशक है।

वृहन्नृपतिवल्लभ रस [भा. भै. र. र. ५५६५] (नृपवल्लभ)

(महाराजनृपति वल्लभः)

(रसे. सा. सं.; भै. र. । ग्रह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, पीपलामूल, अजवायन, दालचीनी, ताम्रभस्म, सोंठ, सुहागे की खील, सेंधानमक, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनिया, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, काकडासींगी और कपूर १-१ मासा, भुनीहुई हींग २ मासे, कालीमिर्च ४ मासे, जावित्री, लौग और तेजपात्त ८-८ मासे, शंखनाभि की भस्म और वायविडङ्ग ४-४ मासे, शुद्ध वच्छनाग २ मासे, छोटी इलायची ९९ मासे और बिडनमक ३२ मासे लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर बकरी के दूध मे घोटकर (शास्त्रोक्त ४-४ रत्ती की) १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से आनाह, संग्रहणी, अग्निमांद्य, आमयुक्तप्रवृद्ध संग्रहणी, कृमिरोग, पाण्डु, छर्दी, अम्लपित्त, हृदयरोग, गुल्म, उदररोग, भगन्दर, पित्तज अर्श, सोमरोग, ८ प्रकार के शूल, अजीर्ण, विष्टम्भ, विसर्प, दाह, विलम्बिका, अलसक, प्रमेह, समस्त कुष्ट, खांसी, शोष, शोथ, ज्वर और मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है। इसका सेवन यथा दोषानुपान कराना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, अग्निदीपक, दोषानुलोमक और विशेषतया वातानुलोमक, रुचिकारक और संग्राही है। इसके सेवन से ग्रहणीगत व्रण, शोथ, दाह, वातविष्टम्भ, वातशूल तथा ग्रहणी के अन्य रोग नष्ट होते है।

वृहद् वंगेश्वर रस [भा. भै. र. ६९२१]

(रसे. सा. सं.; र. रा. सुं., र. चं.; भै. र.। प्रमेहा.; रसे. चिं. म.। अ. ९; धन्वं.। प्रमेहा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वङ्गभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, चांदीभस्म, कपूर और अभ्रकभस्म १।–१। तोला तथा स्वर्णभस्म और मोतीभस्म ३॥।–३॥। मासे ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर भांगरे के रसमे खरल करें और १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। गाय अथवा बकरी के दूध या दही के साथ। यथा दोष बलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २० प्रकार के साध्य अथवा असाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुस्थज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वात, पित्त और कफजन्य ग्रहणीरोग, आमदोष, अग्निमान्द्य, अरुचि, सोमरोग, बहुमूत्र, अनेक प्रकार का मूत्रमेह, मूत्रातिसार आदि रोगों का नाश होता है तथा क्षीण पुरुष पुष्ट हो जाते है।

यह रस ओज, तेज, कामशक्ति, बल, वर्ण, रुचि और शुक्र की वृद्धि करता है। यह औषध बालक से लेकर प्रौढ मनुष्य तक को सेवन कराई जा सकती है।

सं. वि.—श्रम, अपतर्पण, मिथ्यायोग, अयोग आदि कारणों द्वारा शरीर के विविध अङ्गो मे रूक्ष गुण द्वारा वायु प्रकुपित होकर उन अङ्गो की शक्ति का ह्रास कर देता है और क्षोभ उत्पन्न करके उनको अनुचित क्रियारत कर देता है। वात के साथ अन्य दोष भी यथा सम्भव विकृत हो जाते है और प्रमेह, मधुमेह, बहुमूत्र, रक्तपित्त आदि वस्तिगत विकार, बस्ति वात प्रधान स्थान होने से, उत्पन्न हो जाते है। ऐसी विषम विचलित परिस्थिति में वृक्क, क्लोम, मूत्रनलिका, शुक्रग्रन्थि, शुक्रनाडी इत्यादि की क्रिया सुधारकर यथामार्ग ला सके ऐसी

औषध उपयोग में लानी चाहिये। "वृहद्वंङ्गेश्वर रस" वातनाशक, अग्निवर्द्धक, दोषानुलोमक, योगवाही, शरीर पोषक और ग्रन्थियो को सक्रिय करनेवाला है। अतः उपरोक्त दोषो को दूर करने के लिये यह श्रेष्ठ है।

वृहल्लोकनाथ रस [भा. भै. र. ६३७४]

(भै. र.; र. रा. सुं.; रसे. सा. सं. । प्लीहा.; रसे. चिं. म. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली बनावें और उसमे १ भाग अभ्रकभस्म मिलाकर १ दिन तक घीकुमार के रस में घोटे। तदनन्तर उसमें २—२ भाग ताम्रभस्म और लोहभस्म मिलाकर सबको मकोय के रस में घोटकर गोला बनाकर सुखालें। तत्पश्चात् २ भाग शुद्ध गन्धक और २ भाग कौडी का चूर्ण लेकर दोनो को एकत्र मिलाकर निम्बु के रस मे खरल करके उसके २ मूषा बनाकर सुखालें और उनमे उपरोक्त गोला वन्द करके उसे २ शरावो में बन्द करदे और जोड को मिट्टी, राख और सेधानमक के पानी मे पिसे हुये चूर्ण से बन्द करके धूप मे सुखादे एवं उस पर कपडमिट्टी करके सुखाकर गजपुट मे पकावे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तो सम्पुट में से औषध को निकालकर (कौडी की मूषा सहित) पीसकर सुरक्षित रक्खें। (भैषज्य रत्नावली के अनुसार गन्धक और कौडी की मूषा न वनाकर ८ भाग कौडी का चूर्ण डालना और साधारण शराबो मे बन्द करना चाहिये।)

मात्राः—(शास्त्रोक्त ६—६ रत्ती) २—२ रत्ती गोमूत्र अथवा मधु और पीपलचूर्ण अथवा जीरेका चूर्ण और गुड अथवा गुड और हरीतकि अथवा तीनो मे से किसी एक के साथ खाकर ऊपर से गोमूत्र पीवें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से यकृत्, प्लीहा, शोथ, वाताष्ठिला, कमठी, प्रत्यष्ठिला, कांस्यक्रोड, अग्रमांस, शूल, भगन्दर, अग्निमान्द्य और खांसी का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध कटु उष्ण है। अग्निवर्द्धक, आमशोषक, दोषशामक तथा वातानुलोमक है। इसके प्रयोग से अन्त्र के दोष नष्ट होते है, दूषित वात, पित्त और कफ निर्दोष होकर अन्त्र में सक्रियता उत्पन्न करते है। रस पोषक गुण विशिष्ट उत्पन्न होता है और सत्वयुक्त रक्त मे परिणमन होता है। यकृत् और प्लीहा के दुष्ट कोषों मे नवता उत्पन्न होती है। यकृत्—प्लीहा स्वस्थ होते है और सम्पूर्ण उदर की श्लेष्मकलाये, उदरच्छदाकला, आमाशय, ग्रहणी, क्षुद्रान्त्र और वृहदन्त्र, वस्ति और गुदवलियां सभी संस्कृत कोष्ठ से परिष्कृत होकर निरोग होते है। इससे कोष्ठ और तत्पार्श्व वर्ती अङ्गों में होनेवाली कोष्ठरोगानुबन्धि विकृतियां शान्त होती हैं।

यह औषध अन्त्र के वात, पित्त और कफजन्य सभी विकारों को दूर करती है।

बृहत्सुवर्णमालिनी वसन्त

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सुवर्णसिन्दुर ३० तोला, स्वर्णभस्म ४॥ तोला, अभ्रक भस्म ९ तोला, प्रवालभस्म ९ तोला, गोरोचन ३ तोला, नागभस्म ६ तोला, वङ्गभस्म ९ तोला, मुक्ताभस्म १२ तोला, यशदभस्म ३३ तोला, श्वेतमिर्च २४ तोला, पीपल ३ तोला, कस्तूरी ३ तोला, केशर ३ तोला और मक्खन २० तोला ले। सब द्रव्यो को सूक्ष्म चूर्ण करके एकत्रित खरल करें और निम्बु के रस की भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।
मात्रा:—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय, श्वास, जीर्णज्वर, अम्लपित्त, पुरातन अजीर्ण, प्रमेह, दौर्बल्य, शोष, वातोदर, रात्रिस्वेद आदि रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, रसायन, वात–पित्त–क्षय नाशक, ज्वरघ्न, दाहघ्न, रात्रिस्वेदघ्न, बहुमूत्र नाशक, पोषक, वीर्यवर्द्धक, चक्षुष्य, वृष्य और आयुष्य है।

इसके सेवन से आन्त्रिक विषज, अन्त्रज, कोथज, शोथज और श्लेष्मकला संकोच अथवा शैथिल्य जन्य आदि विकार नष्ट होते है। अन्त्र क्षय के लिये यह औषध बहुत ही लाभप्रद है। कोष्ठ दोष के कारण अथवा कोष्ठ शैथिल्यभावजन्य विष संग्रह के कारण अथवा कोष्ठाश्रित पित्तधरा कला के शोथ, व्रण अथवा प्रकोप के कारण उत्पन्न हुये अम्लपित्त, यकृत्, प्लीहा विकार और जीर्ण तथा विषमज्वर शीघ्र नष्ट होते है।

बृहत्वातगजाङ्कुश रस [भा. भै. र. ६९८३]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; धन्वं.; र. रा. सु.। वातरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, कान्तलोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, सोठ, खरैटी, धनिया, कायफल, हर्र, शुद्ध वच्छनाग, काकडासिंगी, पीपल, कालीमिर्च और सुहागे की खील। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक को कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर सबको मुण्डी और संभालू के रस मे १–१ दिन घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनावे।
मात्रा:—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से साध्यासाध्य समस्त वातज रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध तीक्ष्ण, ऊष्ण, अग्निवर्द्धक, आक्षेपनाशक, वातानुलोमक, रक्तवर्द्धक, रक्त के सम्पूर्ण वातदोषों को दूर करके १३ प्रकार की अग्नि की वृद्धि करती हुई शाखाओ और कोष्ठस्थित विकृत वायु को दूर करती है। अनावश्यक मेद का शोषण करके शरीर के सम्पूर्ण अवयवो मे से निष्क्रियता का नाश करती है और वातनाडियो को पुष्ट करके हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस आदि सभी अङ्गो का पोषण करती है तथा सक्रिय बनाती है।

बृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज रस [भै. र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा ४० तोला, शोधित सूक्ष्म स्वर्णपत्र (सोने के वर्क) ५ तोला और शुद्ध गन्धक ८० तोला ले। प्रथम सोने के वर्कों को पारद मे भलीप्रकार खरल करके मिश्रण करे। तदनन्तर उसमे गन्धक मिश्रित करके घोटे और बारीक कज्जली बनावे। इस कज्जली को लाल कपास के फूलो के रस और घृतकुमारी के रस की भावना दे, जब शुष्क हो जाय तो कज्जली को कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी मे भरकर उसे सिकता यन्त्र मे क्रमशः अग्नि देते हुये जब तक रक्तकमल के समान न हो जाय तब तक पकावे। जब कुप्पी स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसमे से औषध को निकालकर खरल करे और उसमे १।–१। तोले जायफल, कालीमिर्च, केसर और कस्तूरी मिश्रित करें। यही "चन्द्रोदयमकरध्वज रस" का निर्माण प्रकार है।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १–१ मासा) १ रत्ती से २ रत्ती तक। पान में रखकर सेवन करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मनुष्य इतना वीर्यवान हो जाता है कि सैकडो रमणियों के गर्व को खण्डन कर सकता है।

पथ्यः—घी, खडी, दूध, मृदुमांस, उडद की खीर आदि।

सं. वि.—यह औषध रसायन वाजीकरण, मेध्य, बल्य और शरीरवर्द्धक है। इसके सेवन से क्षीणवीर्य पुरुषो मे पुन शक्ति का सञ्चार होता है। प्रत्येक अङ्ग जो शक्ति विहीन होकर निष्क्रिय हो जाता है, वह इसके सेवन से नवशक्तिमयी क्रिया करता है। यह शरीर की प्रत्येक ग्रन्थि के उपयोग मे आता है।

जहां स्त्री अथवा पुरुष क्षीणता द्वारा निर्बल मन और मस्तिष्क होकर भ्रम अथवा भ्रान्ति से पीडित हो वहां इसका दिन मे ३ बार १ या २ मास सेवन बहुत ही हितावह होता है।

बृहत्वातचिन्तामणि रस [भा. भै. र. ६९८५]

(भै र., धन्वं. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म ३ भाग, रौप्यभस्म और अभ्रकभस्म २२ भाग, लोहभस्म ५ भाग, प्रवालभस्म तथा मोतीभस्म ३–३ भाग और पारदभस्म ७ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर घृतकुमारी के रस मे खरल करके (शास्त्रोक्त ३–३ रत्ती) १–१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः—१–१ गोली। यथाविधि अनुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से वातज और

पित्तज रोग नष्ट होते है तथा वृद्ध पुरुष भी तरुण के समान हो जाता है यह सिद्धफल अनुभूत औषध है।

सं. वि.—यह औषध शीतवीर्य, मधुरविपाक, स्निग्ध, वृष्य, आयुष्य, वर्ण्य, बल्य, विषहर, रुचिकर, दीपक, आमरोगनाशक, त्रिदोषशामक, विशेषतः मधुर और स्निग्ध गुणों द्वारा—रूक्ष और शीत द्वारा प्रकुपित—वायु का नाश करती है और सर्वाङ्ग की रूक्षता को स्निग्धता मे परिणत करके रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेधा, अस्थि और शुक्र मे से दुष्ट वात द्वारा विकृत अंशों को दूर करके उनका पोषण करती है। अन्त्र की कलाओं को सक्रिय करती है तथा शरीर वर्द्धक, पाचक और विषनाशक अन्त्र के स्रावो को उत्पन्न करती है।

आधुनिक युग मे अधिकतर वायु के रूक्ष गुण द्वारा रोगो की उत्पत्ति होती है। आहार-विहार सभी वातल है। सत्वहीन खाद्य, चित्तभ्रान्ति, मनोव्यथा, अकल्याणकारी भावनाये और क्रियायें सभी वातदोष पोषक और वातप्रकोपकारक कारण उत्पन्न होकर शरीरों मे वातजविकार उत्पन्न करते है। इन सभी के लिये भले ही वह क्षय हो अथवा पक्षाघात अथवा अन्य अपतर्पण द्वारा होनेवाली व्याधियां हो, इसका प्रयोग लाभप्रद है।

वृहत्सर्वज्वरहर लौह [भा. भै. र. ८१६४]

(भै. र.; र. रा. सु.; धन्वं. । ज्वरा. ।

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म १० तोले, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक २॥-२॥ तोले तथा हर्र, बहेडा, आमला, सोठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, हल्दी, दारुहल्दी और चीतामूल १।-१। तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर उसमें अन्य औषधियो का बारीक चूर्ण मिलाकर अदरक के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१-१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातिक, विषम, भूतोत्थ और १-१ मास बाद आनेवाला, पाक्षिक (१५-१५ दिन बाद आनेवाला), "अथवा प्रतिवर्ष नियम से आनेवाले तथा अन्य समस्तविध ज्वर और प्लीहारोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, कृमिघ्न, दाहनाशक, रक्तवर्द्धक, स्वेदल और दोषशामक है।

वृहत्सूतिकाविनोद रस [भा. भै. र. ८२७२]

(भै. र., र. रा. सुं., रसे. सा. सं., र. र. । स्त्रीरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोठ १ भाग, कालीमिर्च २ भाग, पीपल ३ भाग,

अभ्रकभस्म आधा भाग, जावित्री २ भाग और शुद्ध तूतिया २ भाग लें। सबको एकत्र मिलाकर १ प्रहर संभालू के रस में घोटकर सुखाकर रक्खें।

मात्राः—२–२ रत्ती। मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन करने से सूतिका रोग का नाश होता है।

सं. वि.—सूतिका के शरीर मे रूक्षता बढकर रक्त मे वायुदोष मिश्रित हो जाते है और गर्भाशय (नाभिके निम्न भाग) मे वस्ति के दोनों ओर और वस्ति के ऊपर दोष एकत्रित हो जाते है। जिससे नाभि, वस्ति और उदर मे शूल उत्पन्न होते है। ऐसी परिस्थिति मे पिप्पली लवण, सोंठ, मिर्च अथवा चतुर्जात, त्रिकटु आदि द्रव्यो का सेवन रक्तगत तथा कोष्ठगत वायु को दूर करता है और प्रसूता के गर्भाशय का शोधन करके वस्ति पार्श्वों को स्वस्थ कर देता है।

यह औषध त्रिकटु, चतुर्जात और अभ्रक आदि द्रव्यों का रोगनाशक, अग्निवर्द्धक और विषनाशक संयोग है। निरोग अवस्था मे भी सूतिका को इसका सेवन सर्वथा लाभप्रद सिद्ध होता है।

वृहत् सोमनाथ रस [भा. भै. र. ८२९२)

(रसे. सा. सं.; र. रा. सु.; धन्वं. । सोमरोगा.; रसे. चि. म. अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—परिभद्र (फरहद) के रस में [कई दिन तक) खरल किया हुवा शुद्ध पारद और मूषाकर्णी के द्वारा शोधित गन्धक १–१ भाग लेकर कज्जली बनावें और फिर घृतकुमारी के रस में खरल की हुई लोह भस्म ४ भाग तथा अभ्रकभस्म, बङ्गभस्म, रौप्यभस्म, खपरिया, स्वर्णमाक्षिकभस्म और स्वर्णभस्म आधा २ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर १–१ दिन घृतकुमारी और मण्डूक पर्णी के रस में खरल करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सोमरोग, २० प्रकार का प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्र-कृच्छ्, मूत्राघात अनेक प्रकार के दोष युक्त मधुमेह, अस्थि मेह, इक्षु मेह, लाला मेह, और वातिक, पैतिक और श्लैष्मिक सोमरोग का तथा बहुमूत्र का नाश होता है।

सं. वि.—औषध का मिश्रण और रसादिक संयोग वस्तुतः मधुमेह और प्रमेह के विकारों को दूर करनेवाला है।

इसकी शरीर पर क्रिया वृहदन्त्र से प्रारम्भ होकर होती है अर्थात् वस्तिगत क्षोभ, शोथ. अपानवात विकृति, कफ और पित्त का वस्ति में (दूषित रूप से) प्रवेश आदि विकारों को

यह अपने शोधक, पोषक, मूत्रल, शामक, दाह नाशक और अन्तरतन्तुगत त्रिदोषज, द्वन्द्वज और पृथक् दोषजन्य विविध प्रकार के शोथो को दूर करता है, जिससे तृष्णा, नाडियों की अस्थिरता, क्लोम की दाह, वृक्क की विक्रिया आदि विकार शीघ्र शान्त होते है।

प्रमेह और इसके अनुबन्धि रोगों मे इसका प्रयोग बहुत ही लाभप्रद है।

बृहत्पूर्णचन्द्रोदय रस [भा. भै. र. ४४३४]

(र रा. सुं., धन्वं., र चं., र. र., र. सा. सं., भै. र. । वाजीकरणा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान——शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक २॥-२॥ तोले, लोहभस्म और अभ्रकभस्म ५-५ तोले, चान्दी और वङ्गभस्म २॥-२॥ तोले, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, जायफल, लौंग, इलायची, भांगरा, जीरा, कपूर, फूलप्रियङ्गु और नागरमोथा प्रत्येक १।-१। तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मिश्रण को ग्वारपाठा, त्रिफला, केमुक (केऊआ) के रस की पृथक् पृथक् १-१ भावना देकर अरण्ड के पत्तो मे लपेटकर अनाज के ढेर में दाब दे और फिर २४ घण्टे बाद पत्तो मे से औषध को निकालकर पानी के साथ खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः——१-१ गोली। प्रात सायं पान मे रखकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अष्ठिलिका, खांसी, श्वास, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृच्छूल, पित्तजशूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, पुरातन संग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डु, प्रमेह और वातरक्त का नाश होता है। यह रस बल्य, रसायन और वाजीकरण है तथा इसके सेवन से मेधा और वाकशक्ति की वृद्धि होती है तथा मनुष्य अत्यन्त बलवान, कान्तियुक्त और रूपवान हो जाता है।

यह रस पुत्रहीन स्त्री तथा दुर्बल, क्षीण, अल्पवीर्य वृद्ध पुरुषो के लिये अत्यन्त हितकारी है। ओज, तेज और काम शक्तिको बढाता है।

इसके अभ्यास से पलित रोग नष्ट होता है और वृद्ध पुरुषों मे तरुणों के समान स्त्री प्रसङ्ग करने की शक्ति उत्पन्न होती है। यह श्रेष्ठ रसायन, शीघ्र फल देनेवाला, अनुभूत प्रयोग राजाओं के सदैव सेवन करने योग्य है।

बृहत् शतावरी मण्डूरम् [शा. भै. र. ७५६७]

(भै. र. । शूला. र. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—तपा तपा कर त्रिफले के क्वाथ मे बुझाया हुवा भस्मीभूत मण्डूर ४० तोले, शतावर का रस १ सेर, दही १ सेर, दूध १ सेर, आमले का

रस १ सेर और घी आधा सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें और पाक तय्यार हो जाने पर उसमें जीरा, धनिया, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपल और हर्र का ३॥–३॥ मासे चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—२ से ६ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से त्रिदोषज शूल, दारुण अम्लपित्त, अरुचि, वमन, कास और श्वास का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध वात पित्त नाशक है। यकृत्शूल, यकृदावर्ण शूल, पित्तजशूल और अधोर्व्वगत अम्लपित्त मे इसका प्रयोग विशेष हितावह है। इतना ही नहीं अपितु यकृत् कोश–शोथ मे इसका प्रयोग शीघ्र ही बहुत लाभप्रद होता है। यह औषध पित्तशामक, वातनाशक, पाचक, आमशोषक, दोषानुलोमक और उदरगत पित्तजन्यशोथ नाशक है, इसी लिये उदर में होनेवाले पित्तज विकारों में यह निश्शंक बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होती है। यह मूत्रल है और यकृत् शूल तथा शोथ द्वारा होनेवाले कास, श्वास अथवा पित्त प्रकोप से होनेवाले श्वास, कास मे यह रोग कारणनाशक होने से लाभप्रद सिद्ध होती है। पित्तज खाद्य दोष के कारण होनेवाले यकृत् विकारो में "बृहत् शतावरी मण्डूर" को सफलता पूर्वक प्रयोग में लाना चाहिये।

बृहच्चिन्तामणि रस [भा. भै. र. ७१०२]

(रसे. सा. सं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, चांदी भस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध हरताल, खपरिया, कांसीभस्म, वङ्गभस्म, प्रवाल (मूंगा) भस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध कसीस, शुद्ध मनसिल, सुहागे की खील और कपूर समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर भारंगी, वासा (अडूसा), संभालु, पान, जयन्ती, करेला, पटोल (परवल), भांग, पुनर्नवा (विसखपरा) और अदरक के रस की पृथक् पृथक ७–७ भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, द्वन्द्वज, विषम और धातुगत आदि हर प्रकार के ज्वर तथा कास, श्वास, शोथ, पाण्डु, हलीमक, प्लीहा, अग्रमांस और यकृत् रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पोषक, विषनाशक, शोषनाशक, दोषशामक, दाहनाशक और धातुगत दोषों को नाश करनेवाली है। यह शोधक है अतः खाद्य दोष द्वारा उत्पन्न हुये आमाशय, ग्रहणी, क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र के विकारो को नाश करती है। मेद का शोषण करती

है और मेद द्वारा होनेवाले यकृत्-प्लीहा विकारों को शीघ्र मिटाती है। उदर के अन्यभागों में होनेवाले मेद को भी यह पचा लेती है। धातुओं मे मेद, आमदोष, विष, कीटाणु आदियों के विकारों से होनेवाले दाह, ज्वर, ग्रन्थिपाक, क्षीणता आदि रोगो को यह नाश करती है। पुराने मलेरिया और उदर श्लेष्मकला के दोषों से होनेवाले पुराने ज्वर मे इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होता है। यह कीटाणु और कीटाणुविष नाशक है।

बृहत्काञ्चनाभ्र रस [भा. भै. र. ७१०९]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. रा. सुं.; धन्वं., र. र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म. रससिन्दुर, मोतीभस्म, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, प्रवाल (मूंगा) भस्म, वैक्रान्तभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, कस्तूरी. लौंग. जावित्री और एलवालुक समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर घृतकुमारी और काले भांगरे के रस तथा बकरी के दूध मे ३-३ दिन खरल करके (शास्त्रोक्त ४-४ रत्ती) १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय, कास, श्वास, २० प्रकार के प्रमेह और त्रिदोष से हानेवाले अन्य रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह कहना अत्युक्ति न होगा कि शरीर के सभी अङ्गो का, पार्थिव वहुला होनेके कारण यह औषध विशेष पोषण करती है। प्रत्येक द्रव्य का पृथक २ अवलोकन करे तो स्वभावतः यह स्पष्ट होगा कि इस औषध के सेवन से भयङ्कर क्षीण रोगी भी सशक्त हो सकता है। फिर सम्पूर्ण योग का भावनाओ सहित एकत्रित गुणो युक्त विचार करे तो रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, शुक्र आदि सभी धातुओं के वर्धन पोषण और रोगनाशन मे यह औषध विशेष लाभप्रद होगी। किसी भी प्रकार के शारीरिक और मानसिक कारण से शरीर मे आई हुई विषमता को यह रस रसायन, वात-पित्त क्षय नाशक, वुद्धिवर्द्धक, धातुवद्धक, अनुसंधातक और श्लेष्मकला, नाडी, रक्तनलिकाओं के शोथ तथा संकोच को नाश करनेवाला है।

बृहद् यकृदरि लौह [भा. भै. र. ५८२६]

(भै. र. । प्लीहयकृ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म और सोंठ, मिर्चे, पीपल, कुटकी, त्रायमाणा, अतीस, पाठा, नीम की छाल, हर्र, चीतामूल, पित्तपापडा और नागरमोथा इन सबका चूर्ण १-१ भाग तथा लोहभस्म सबसे आधी (७॥ भाग) लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर सबको मिलाकर १ दिन गिलोय के क्वाथ में घोटे और ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्लीहोदर, यकृत्, गुल्म, एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पाक में कटु और उष्ण है। पित्तसारक होने के कारण सहज रेचक, मूत्रल, वातनाशक, दाहनाशक, पाचक, अग्निवर्द्धक, आम, कफ और मेद नाशक है। इसका प्रभाव आमाशय पर विशेष यह पडता है कि दुष्ट आहार–विहार द्वारा क्षुब्ध आमाशय की अग्नि शीघ्र प्रकृतिस्थ हो जाती है और अन्त्र के पाचक रसों का स्वस्थावस्थावत् निस्सरण होने लगता है। यह प्लीहा और यकृत् के दोषों को शीघ्र दूर करती है। रक्त बढाती है और अन्त्र निष्क्रियता का नाश करती है।

बोलवद्ध रस [भा. भै. र. ४७५३]

(वृ. यो. त. । त. १०२; वै. र.; र. च. । अर्श; वृ. नि. र. । ग्रहण्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गिलोय का सत, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १–१ भाग लेकर कज्जली बनावें फिर उसमे ३ भाग बोल (हीरादोखी–खूनखराबा) का अत्यन्त महीन चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन पर्यन्त सेमल की छाल के रस मे घोटकर सुखाकर रक्खे।

मात्राः—९–९ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अम्लपित्त रोग मे मधु और शक्कर मिलाकर पियें। प्रमेह में मधु और पीपल के चूर्ण के साथ प्रयोग में लावे।

यह रस रक्तार्श, पित्तार्श, विद्रधि, रक्तप्रमेह, वातरक्त और रक्तप्रदर का नाश करता है।

सं. वि.—यह रस पर्याप्त मात्रा में नित्य प्रयोग किया जाता है। रक्तार्श, रक्तप्रमेह आदि में यह शीघ्र और सुखद फलदायक है।

रक्तप्रदर में इसका प्रयोग शर्करा मिश्रित चावल के मांड के साथ किया जाय तो अच्छा लाभ करता है। यह शीतवीर्य और मधुर विपाक युक्त रस है।

बोलपर्पटी रस [भा. भै. र. ४७५२]

(र. चं.; र. रा. सुं.; र. का. धे., वृ. नि. र.; यो. र. । रक्तपित्ता.; यो. र. । प्रदर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—समान भाग शुद्ध पारे और शुद्ध गन्धक की कज्जली बनाकर उसे घी चुपडे हुये लोह पात्र में डालकर बेरी की मन्दाग्नि पर पकाकर पिघलावे और फिर उसमे उसी के बराबर बोल (हीराढोखी–खून खराबा) का बारीक चूर्ण मिलाकर गाय के गोबर पर बिछे हुये केले के पत्ते पर फैलादें तथा उसके ऊपर दूसरा पत्ता ढककर उसे गोबर से दबा दे। थोडी देर बाद जब वह स्वाङ्गशीतल हो जाय तो पर्पटी को निकालकर पीसें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ६—६ रत्ती) २—२ रत्ती। मिश्री, मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रक्तपित्त, अर्श, रक्तस्राव और रक्त प्रदर नष्ट होते हैं।

सं. वि.—यह औषध रक्तावरोध के लिये विशिष्ट लाभप्रद है।

भगन्दरारि रस [भा. भै. ४९३७]
(र. का. धे. । अ. ४९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध हिंगुल १—१ भाग तथा कालीमिर्च का चूर्ण सबसे २ गुना लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले फिर उसमें अन्य औषधे मिलाकर सबको ३ दिन पर्यन्त चीते के क्वाथ मे घोटकर (शास्त्रोक्त ३—३ रत्ती) १—१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः—१—१ गोली। दिनमे २ या ३ बार। मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से यह औषध भगन्दर को नष्ट करती है।

सं. वि.—यह औषध जन्तुघ्न, विषघ्न, शोथघ्न, कोथघ्न, आमपाचक, शोषक, वात-कफनाशक, शोधक तथा शोषक है। रूक्ष गुणों द्वारा प्रकुपित वायु गुद, भग और वस्ति में संचित होकर उनके समीपवर्ती किसी स्थान मे आश्रित होकर प्रदाह उत्पन्न करता है, जिससे एक या अनेक पीडिका उत्पन्न होकर दोष के प्रकोप के साथ २ प्रदुष्ट स्राव वहन करने लगती है। इस प्रकार उत्पन्न हुये वात तथा वस्तिगत एकत्रित आमदोष उपरोक्त स्थानों मे क्षोभ उत्पन्न करने लगते है और क्लेदस्रावी पीडिकायें उत्पन्न हो जाती है, इस प्रकार के कफज भगन्दर को यह औषध अपने उपरोक्त गुणों द्वारा तीक्ष्ण—उष्ण होने से, वात—कफ का नाश करती है। रक्त की वृद्धि करके दूषित मांस मे प्रकुपित अथवा संचित दोष का नाश करती है।

भास्कर रस [भा. भै. र. ४९४८]
(भै. र. । अग्निमान्द्या.; र. रा. सु. । अजीर्णा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध वच्छनाग विष, शुद्ध पारा, हर्र, बहेडा, आमला, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुहागे की खील और जीरा १—१ भाग तथा लोहभस्म, शंखभस्म, अभ्रकभस्म और कौडीभस्म २—२ भाग तथा लौंग इन सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। पान मे रखकर चाबकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के शूल, विषूचिका और अग्निमान्द्य नष्ट होते है तथा सद्यः अग्निवर्द्धन होता है।

सं. वि—यह औषध आक्षेपनाशक, आमशोषक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक और अन्त्रशैथिल्य नाशक है।

इसका सेवन किसी भी प्रकार के अन्त्र के आक्षेप मे, चाहे वह गुल्म हो या शूल लाभप्रद होता है। अग्निवर्द्धन मे इस की क्रिया, अन्त्र रसो की उत्पत्ति के साथ २ होती है। यह कफ मेद नाशक तथा शरीर वर्द्धक है।

भुवनेश्वर रस [भै. र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सैन्धव, हैड, वहेडा, आमला, अजमोद, विल्व का अपक्व गर्भ और गृहधूम प्रत्येक द्रव्य २०—२० तोला ले और सब द्रव्यो का बारीक चूर्ण एकत्र मिश्रित करके मिश्रण को जल के साथ घोटकर ४—४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—२ से ४ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उदरशूल, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कोष्ठ वद्धता और उदरगत वात (गैस) मे इसका सेवन लाभदायी है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, आमपाचक, उदरशोधक और दोषानुलोमक है। यह दूषित और शिथिल अन्त्रकलाओं का संकोच करके उन्हे यथावत् स्थिर करती है। अधिक मात्रा मे उत्पन्न होनेवाले कफ अथवा खाद्य के अपरिपक्व कणो का पाचन करती है। उदर शैथिल्य के कारण उत्पन्न हुये दीर्घकालीन आम, कफ और वाताजीर्ण, जिसमे नाडियो के तन्तुओं मे भी शिथिलता हो गई हो, उनको यह तत्काल प्रयोग से दूर करती है। यह कोष्ठ वद्धता, अत्याक्षेप, जीर्णाजीर्ण आदि रोगो मे लाभप्रद है।

भूताङ्कुश रस [भा. भै. र. ४९६०]

(र. र.; र. रा. सुं. । कासा, यो. चिं. म. । अ. ७, र. र. स. । उ. अ. १३.; र. का. धे. । कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, कालीमिर्च का चूर्ण १० भाग, अभ्रकभस्म ४ भाग और शुद्ध वच्छनाग तथा धतूरे के वीजों का चूर्ण १ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर सबको निम्बु के रसमें घोटकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। दिन मे २—३ बार। मधु और बहेडे की छाल के चूर्णको मिश्रित करके।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से वातज कास नष्ट होता है।

सं. त्रि.—यह औषध आक्षेपघ्न, शोधक, पाचक, वातानुलोमक, कण्ठशोधक और श्लेष्मनाशक है। बच्चों के श्वसन कास (Whooping Cough), आक्षेपक कास और श्वास का नाश करती है।

ऐसे रोगियो मे जिनके शरीर कृश, वातल और श्वास मार्ग वातावरुद्ध हो इसका सेवन शीघ्र सम्पूर्ण लाभदायी सिद्ध होता है।

भूतभैरव रस (चण्डभैरव) [भा. भै. र. १८७२]

(र. का. धे. । अपस्मारा. ५; धन्वं. । अपस्मारा.; भा. प्र. । म. ख., र. रा. सुं.; रसे. सा. सं., र. र., यो र. । अपस्मारा.; वृ. यो. त. । त. ८८, वृ. नि. र. । उन्मादा.; यो. त. । त. ३९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर), ताम्रभस्म, हरताल भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल और रसौत। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर गोमूत्र में घोटकर गोला बनावे, गोले के ऊपर और नीचे उससे २ गुना गन्धक रखकर लोह के पात्र मे गन्धक के जल जाने तक पकावे।

मात्रा:--(शास्त्रोक्त ५--५ रत्ती) १ से २ रत्ती।

अनुपान:—हींग, कालानमक और कुष्ठ,का समान भाग मिश्रित १। तोला चूर्ण गोमूत्र मे मिलाकर उसमे थोडा सा घी मिलावे और औषधि खाकर इस मिश्रणको पीवे।

नोट:—कुछ ग्रन्थो मे, रसौत के स्थान मे स्रोतोऽञ्जन, गोमूत्र के स्थान मे मनुष्य मूत्र तथा सेवन विधि मे लिखा है कि इसमे से १ मासा रस घी के साथ मिलाकर चाटे और कालानमक मिलाकर पिलावे। इसे भूतोन्माद मे धतूरे के ५ नग बीजो को घी मे मिलाकर खिलाना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---इसके सेवन से भूतोन्माद,अपस्मार और भूतज्वर इत्यादि रोगों का नाश होता है।

भैरव रस (भैरवी पर्पटी) [भा. भै. र. ४९६९]

(र. रा. सुं. । श्वासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, कालीमिर्चे, सुहागे की खील, शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध मनसिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध पारद, शुद्ध वच्छनाग, चांदीभस्म और अभ्रक भस्म ५--५ तोले ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलावे। तत्पश्चात् ५--५ तोले केले की जड, चीतामूल और धतूरे की जड को पृथक पृथक कूटकर सबको ३ सेर पानी मे पकावे और ३ पाव पानी शेष रहने पर छानकर उसमे उपरोक्त रस को घोटकर १--१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से खांसी और श्वास तथा अन्य बहुत सारे रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध कफघ्न, आक्षेपघ्न, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, पोषक और कण्ठ शोधक है। इसके सेवन से कफ विना प्रयास शीघ्र निकल जाता है। हृदय तथा फुफ्फुस के दोष का शोषण होता है। श्वासनलिका, वक्ष और मांसपेशियां इनमे से किसी मे भी आक्षेप नहीं होने पाता और आमाशय तथा नाक मे किसी प्रकार की श्लेष्मकला विकृति उत्पन्न नहीं होती। श्वास की तीक्ष्ण अवस्था मे यथादोषानुपान अथवा गरम जल के साथ इसका प्रयोग शीघ्र सुखद होता है।

मदनानन्द मोदक [भा. भै. र. ५४९८]

(भै. र. । वाजीकरणा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म प्रत्येक १–१ तोला, अभ्रकभस्म ३ तोले, कपूर, सेंधानमक, जटामांसी, आंवला, छोटी इलायची, सोंठ, पिप्पली, कालीमिर्च, जावित्री, जायफल, तेजपात, लौंग, जीरा, कालाजीरा, मुलैठी, वच, कूठ, हल्दी, देवदारु, हिज्जल के बीज, सुहागा, भारंगी, सोंठ, नागकेसर, काकडासिंगी, तालीसपत्र, द्राक्षा, चित्रकमूल, दन्तीमूल, बला, अतिबला, दालचीनी, धनिया, गजपिप्पली, कचूर, सुगन्धवाला, मोथा, प्रसारिणी, विदारीकन्द, शतावर, मदार की जड, कौंच के बीज, गोखरू, विधाराबीज और भांग के बीज। प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १–१ तोला लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर शतावर के रस मे मर्दन करके सुखालें और पुनः बारीक चूर्ण करके उसमे इस चूर्ण से चतुर्थांश सेमल की मूसली का चूर्ण मिलावे। एवं इस सम्पूर्ण चूर्ण से आधा विशुद्ध भांग का चूर्ण डालकर एकत्र मिश्रित करके बकरी के दूध मे घोटकर सुखालें। तत्पश्चात् सम्पूर्ण चूर्ण से दुगुनी खांड को खांड से दुगुने (गायके) दूध मे घोलकर मन्दाग्नि पर पकावे। चासनी तैयार होने पर उपर्युक्त चूर्ण को डाल दें और भलीप्रकार आलोडन कर अग्नि से उतार ले। तत्पश्चात् दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, नागकेशर, कर्पूर, सेंधानमक और त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का चूर्ण (समान भाग मिश्रित-२ तोले) मिला दें। अन्त में उपयुक्त मात्रा मे घृत, मधु मिलाकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—२ से ४ गोली तक। रुद्राक्ष के बीज, तिल तथा घी (मिश्रित), अथवा खांड युक्त गोदुग्ध अथवा पायस (खीर) के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पूर्व शिव, इन्द्र, कामदेव, अग्नि तथा गणेश प्रभृति देवताओ को औषध निवेदन करे तथा अग्नि के मूल मन्त्र द्वारा औषध को अभिमंत्रित करके अग्नि के समर्पण करे। अग्नि मन्त्र यह है "ॐ ह्रीं गं सः अमृतं कुरु कुरु अमृते अमृतोद्भवाय नमः ह्रीं अमृतं कुरु कुरु अमृतेश्वराय स्वाहा। ॐ स्वाहा"।

इस प्रकार अभिमन्त्रण करके औषध को दूसरे पात्र मे रख दे जो पात्र या तो स्वर्ण का हो अथवा चांदी कांच वा मिट्टी का हो।

दूसरे दिन प्रातःकाल शुद्ध होकर शिव तथा पार्वतीजी की पूजा करे और उपरोक्त अनुपान के साथ औषध का सेवन करे।

संभोग के लिये औषध सायंकाल सेवन करें।

तीन सप्ताह तक इसका प्रयोग करने से मनुष्य कामान्ध हो जाता है (मनुष्य की कामवासना बहुत बढजाती है।)

इसके सेवन से वीर्यवृद्धि होती है एवं रति शक्ति बढ़ती है। इसके सेवन करनेवाले का रुप कामदेव के समान हो जाता है, स्वर कोयल के समान मधुर और गरुड के समान दीर्घ दृष्टि हो जाती है। इसके सेवन से वृद्ध पुरुष भी युवक के समान हो जाता है, एवं १०८ (२ मासे की मात्रानुसार) मोदक सेवन करने पर वह अमृत के समान हो सकता है। यह वीर्यवर्धक रसायन है।

इसके सेवन से अपस्मार, ज्वर, उन्माद, क्षय, वातव्याधि, कास, श्वास, शोथ, भगन्दर, अर्श, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, बहुमूत्र, प्रमेह, शिरोरोग, अरुचि तथा वातज, पित्तज, श्लेष्मज रोग नष्ट हो जाते है। इसके सेवन से जो स्त्री वन्ध्या, मृतवत्सा (जिसके बच्चे होकर मर जाते है) अथवा नष्ट पुष्पा भी हो वह बहुपुत्रा तथा जीवितवत्सा होती है। यह औषध सूतिका रोगों को नष्ट करती है और विविध रोगों की उत्कृष्ट औषध है।

मन्मथाभ्र रस (श्री मन्मथ रस) [भा. भै. र. ५५२०]

(भै. र., र. र. स. । वाजी)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और गन्धक २॥-२॥ तोले, अभ्रकभस्म २॥ तोले, कपूर ७॥ मासे, वङ्गभस्म ७॥ मासे, ताम्रभस्म ३॥ मासे, लोहभस्म १। तोला तथा विधारामूल, जीरा, विदारीकन्द, शतावर, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांग के बीज, सफेद राल और अजवायन सबका चूर्ण ५-५ मासे लेकर सबको एकत्र घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। मन्दोष्ण दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस अत्यन्त बलकारक और वाजीकरण है। इसके सेवन करनेवाला पुरुष १०० स्त्रियों के साथ सम्भोग करे तो भी न तो लिङ्ग शैथिल्य ही होता है और न वीर्य की क्षीणता और न बल का क्षय ही होता है।

इसे सेवन करने से वृद्ध १६ वर्षीय युवक के समान हो जाता है। दुष्ट प्रयोगों से उत्पन्न हुई नपुंसकता भी इसके सेवन से नष्ट हो जाती है। इसके सेवन से जठराग्नि इतनी प्रबल होती है कि मनुष्य लकडी भी पचा सकता है।

महाराजमृगाङ्क रस [र. यो सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पूर्णचन्द्रोदय ६ तोला, रौप्यभस्म २ तोला, मुक्ताभस्म ६ तोला, सौराष्ट्रीभस्म ६ तोला, केशर ६ तोला, माणिक्यभस्म २ तोला, शनिभस्म २ तोला, राजावर्तभस्म २ तोला, पन्नाभस्म २ तोला, वैक्रान्तभस्म २ तोला, प्रवालभस्म २ तोला, स्वर्ण माक्षिकभस्म २ तोला, शंखभस्म २ तोला, रीतिभस्म २ तोला, कपर्दीभस्म २ तोला, स्वर्णभस्म ३ तोला, ताम्रभस्म ६ तोला, कांस्यभस्म ६ तोला, पीतलभस्म २ तोला, मण्डूरभस्म २ तोला, लोहभस्म ४ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, वङ्गभस्म २ तोला, नागभस्म २ तोला, सफेद मिर्च १० तोला, कहरुवा लाल ६ तोला, कान्तलोहभस्म २ तोला, गोमेध भस्म ६ तोला और अफीमभस्म ६ तोला लें। प्रत्येक द्रव्य इस प्रकार लेकर यथाक्रम मिश्रित करते हुये सूक्ष्म खरल होने पर उसे आंवले, विदारीकन्द, मूसली, शतावरी, सेंभल मूसली और धतूरे के मूल की पृथक पृथक भावना देकर अन्त में २ तोला अम्बर के सूक्ष्म मिश्रण को उपरोक्त भावित औषध मे मिलाकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१-१ गोली। मधु, दूध अथवा पान के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जीर्णज्वर, क्षय, विषमज्वर, शोष, वीर्यक्षीणता आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पोषक, व्याधिनाशक, बल्य, वृष्य और रसायन है। इसके सेवन से दीर्घकाल से उत्पन्न हुये श्लेष्मविकार, वातविकार और इनके अनुबन्धि विकार शीघ्र नष्ट होते है।

महाकालेश्वर रस [भा. भै. र. ५५३७]

(भै. र. । कास.; र. चं. । श्वास.; र. का. धे । सन्निपात.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) तथा जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, शुद्ध धतूरे के बीज और जमालगोटे का चूर्ण १-१ भाग

एवं कालीमिर्च का चूर्ण ३ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर अन्य औषधियों सहित कज्जली को लोहे के खरल में लोहे की मसली से घोटकर भांग के क्वाथ की २१ भावनाये देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः--१-१ गोली। अदरक के रस के साथ। बच्चे और वृद्धों को आधी आधी गोली दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ५ प्रकार की खांसी, क्षय, श्वास, राजयक्ष्मा, सन्निपात, कण्ठरोग, अभिन्यासज्वर और मूर्च्छा का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, वातनाडीदोष नाशक, शक्तिप्रद विष नाशक, ज्वरघ्न और दोषानुलोमक है। दोषो की प्रसर और प्रकोपावस्था में इसका सेवन बहुत ही युक्ति युक्त हुवा करता है। शरीर के किसी भी भाग में आश्रित दोष, किसी भी प्रकार के प्रसर की अवस्था को प्राप्त होते, विभिन्न रोगों को उत्पन्न करते, श्लेष्मकला और वातनाडियों के तन्तुओं मे विषज क्रिया करते व्याप्त हों तो इस योग का उपयोग श्लेष्मकला के उस दोष को, दोषों का संशमन करके नष्ट करता है। मस्तिष्क क्षय, फुफ्फुस क्षय और हृदयावर्ण के क्षय मे इसकी उपयोगिता प्रशस्त है।

महाक्रव्याद रस [भा. भै. र. १०५२]

(र. रा. सुं., र. र. स. । अ. १९; यो. र. । अजी.; र. चं., रसे. चि. म. । ९ स्तव.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला तथा ताम्र और लोहभस्म २॥-२॥ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर अन्य औषधियों को मिलावे। फिर अग्नि पर पिघलाकर, अरण्ड के पत्र पर डालकर, यथाविधि पर्पटी बनावे। फिर इसे लोहे के बरतन मे पक्के जम्बीरी निम्बु के ६। सेर रसमे मन्दाग्नि पर पकावें। रसके सूख जाने पर उस द्रव्य को पञ्चकोल, बिजौरा और अमलवेत की ६। सेर रस की भावना देकर उसमें सुहागे की खील सबके बराबर, विडलवण सुहागे से आधा और कालीमिर्च सुहागे के (अथवा सबके) बराबर मिलाकर चणकाम्ल की ७ भावना दे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त मात्रा २ मासा) २ से ४ रत्ती। भोजन के बाद। सैंधव मिश्रित छाछ के साथ। अधिक मात्रा मे किया गया भोजन इसके सेवन से ३ प्रहर मे पच जाता है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कृशता, स्थूलता, विष-दोष, आम, गुल्म, तिल्ली, संग्रहणी, वायु, कफ, परिश्रान्ति, शूल, वातव्याधि और उदर रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह मल को पकाकर नीचे की ओर प्रवृत्त करता है।

महागन्धक [भा. भै. र. ५५३९]

(भै. र., र. सा. सं. । अतिसार,; र. रा. सुं. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१।-१। तोले शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली बनाकर उसे अत्यन्त मन्दाग्नि पर पिघलावे और फिर उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीमके पत्ते और छोटी इलायची के बीजो का १।-१। तोला चूर्ण मिलाकर सबको पानी की सहायता से घोटकर पङ्कवत् (लुगदी) बनाले और उसे दो सीपियो (मुक्तागृह) मे बन्द करके उस पर केले का पत्ता लपेटकर कुश से बाधकर उसके ऊपर मिट्टी का १ अंगुल लेप करदे। तदनन्तर उसको लघुपुट मे पकावे। ऊपरवाली मिट्टी के लाल होने पर उसे अग्नि से बाहर निकाल ले और ठण्डा होने पर उस के भीतर से औषध को निकाल कर पीसकर रक्खे।

मात्राः—२ से ६ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह औषध बच्चो के लिये बहुत उत्तम है और उनको अधिकतर रोगो के आक्रमण से सुरक्षित रखती है। इसके सेवन से ज्वर नष्ट होता है। अग्नि दीप्त होती है और बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

यह रस दुस्साध्य संग्रहणी, प्रवाहिका, वैद्यो से भी परित्यक्त सूतिका रोग, कास, श्वास, अतिसार और उपद्रव सहित बालरोगो को नष्ट करता है। यह वाजीकरण है और बालको और स्त्रियों के लिये विशेष उपकारी है।

इसके सेवन से बालको का अनिष्ट करनेवाले भूत, प्रेत, पिशाच, दानव, दैत्य आदि नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध बच्चो के हरे, पीले, फटे-फटे और दुर्गन्धियुक्त साम और निराम मल के विकार को दूर करती है। पाचनशक्ति बढाती है। अजीर्ण, आध्मान आदि विकारो से बालक को बचाये रखती है। इसके सेवन से न आमाशय मे कोई अजीर्ण आदि विकृति ही होने पाती है और न ज्वर, रक्तदोष, श्वास, कास, प्रतिश्याय और नेत्राभिष्यन्द आदि रोग ही उत्पन्न होने पाते है।

यह पाचक, कृमिनाशक, विष-वातघ्न, आमशोषक और पुष्ट रस की उत्पत्ति में सहायक होता है।

छोटे बच्चों को १ चतुर्थांश रत्ती की मात्रा मे यथा दोषानुपान या खाली मधु के साथ दिया जाय तो किसी प्रकार के कीटाणुजन्य, अजीर्णजन्य, भूतादिजन्य विकार उत्पन्न नहीं होने पाते और जिन बच्चो मे ऐसे विकार उत्पन्न हो जांय उनको यह १ से ६ रत्ती तक अवस्था-नुसार यथा दोषानुपान के साथ देने से बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है।

महामृत्युञ्जय रस [भा. भै. र. ५५५९]

(रसे. सा. सं.; र. रा. सु. । प्लीहा.; रसे. चि. म. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मनसिल, तुत्थभस्म, ताम्रभस्म, सेंधानमक का चूर्ण, कौडीभस्म, बावची का चूर्ण, विडलवण का चूर्ण तथा चीतामूल, हींग, कुटकी, जवाखार, सज्जीखार, कायफल, रसौत, जयन्ती और सुहागे की खील का बारीक चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर सबको १-१ दिन अदरक और गिलोय के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से यकृत्, गुल्म, उदररोग, अग्रमांस, प्लीहा, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि अनेक रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—क्योंकि यह औषध विषघ्न, भूतघ्न (कीटाणुनाशक), आमशोषक, पाचक, वातानुलोमक, अन्त्रक्रिया उत्पादक और श्लेष्मकलाओ को शक्ति देनेवाली है अतः इसके सेवन से उदरगतवात, आध्मान, अपचा, क्षोभ, विदाह आदि रोग मिट जाते है और वात-पित्त अथवा कफ के दोष से अन्त्र रस मे जो दोष रहता है उसका विनाश होता है। इससे शरीर का पोषण शुद्ध रस द्वारा होने लगता है। इसी प्रकार शुद्ध रक्त की उत्पत्ति होती है और शरीर की ग्रन्थियां तथा अन्य अवयवो को स्वस्थ रक्त द्वारा पुष्टि मिलती है।

प्लीहा और यकृत् के लिये यह बहुत उत्तम औषध है। परिवर्द्धित, संकुचित अथवा निष्क्रिय प्लीहा और यकृत् इसके प्रयोग से स्वस्थ अवस्था प्राप्त करते है।

महामृत्युञ्जय लोह [भा. भै. र. ५५६१]

(रसे. सा. सं.; भै. र., र. रा. सु. । प्लीहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म १-१ भाग, लोहभस्म २ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग तथा जवाखार, सज्जीखार और सुहागे की खील, विडलवण, कौडीभस्म, शंखभस्म, चीतामूल का चूर्ण, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरताल, कुटकी का चूर्ण, भुनी हुई हींग, रोहितक (रुहेडे) की छाल, निसोत, इमली की छाल, इन्द्रायण की जड, धव, अंकोट की जड, अपामार्ग (चिरचिटा), तालमूली, मल्लिका, हल्दी, दारुहल्दी, धतूरे के शुद्ध बीज, शुद्ध तूतिया, यकृन्मर्द (रूहेडामूला) और गिलोय के रस मे घोटकर १ कुडव (आवश्यक्तानुसार) शहद मे खरल करके (शास्त्रोक्त १-१ मासे की) २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। प्रातः काल यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्लीहा, उग्रज्वर, कास, विषमज्वर पुराना और वंशानुगत कठिन श्लीपद नष्ट होता है।

रोग संग्रह को नाश करने के लिये भगवान धन्वन्तरीने इस रस का आविष्कार किया।

सं. वि.—यह रस पाचक, आमशोषक, दोषानुलोमक, वात–कफ नाशक और अग्निवर्द्धक है। इसके सेवन से दीर्घकाल से होनेवाले अजीर्ण का नाश होता है। उदरकलाये निराम होकर पूर्ण क्रिया करती रहती है। यह रस अन्त्र शैथिल्य द्वारा क्षीग पाचक रसो की उत्पत्ति करते हुये विकार नाशन मे सहायभूत होता है और उदर के किसी भी भाग विशेष मे उत्पन्न होनेवाले वातज अथवा कफज शोथ को दूर करके नाभि स्थित संयुक्त–शिरा समूह को निर्विकार करता है, जिससे स्वस्थ रस और रक्त में खाद्य का परिणमन सुचारु रूप से होता है और यथावश्यक कफ पित्त की उत्पत्ति होकर प्लीहा और यकृत् स्वस्थावस्थावत क्रिया में संलग्न हो जाते है। यकृत्–प्लीहा के विकारो में यह रस अत्युत्तम काम करता है। यह उदर मे आध्मान, अजीर्ण, वातावरोध, वात सञ्चय और प्रकोप नहीं होने देता और दुष्ट वायु द्वारा कण्ठ में उत्पन्न होनेवाले कास, श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है और दोष का संशोधन करके उत्पन्न हुये विकारो का संशमन करता है। इस योग का प्रत्येक द्रव्य वातनाशक, शरीरपोषक, आमशोषक, विषनाशक और यकृत्–प्लीहा के विकारो को नाश करनेवाला है।

महालक्ष्मीविलास रस [भा. भै. र. ५५६९]

(रसे. सा. सं. । कफरो., रस. चि. म. । त. ११; रसें. चि. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वज्राभ्रकभस्म ५ तोले, शुद्ध गन्धक २॥ तोले, वङ्गभस्म १। तोला, शुद्ध पारद ७॥ मासे, शुद्ध हरताल ७॥ मासे, ताम्रभस्म ३॥। मासे, कर्पूरभस्म ७॥ मासे, जावित्री और जायफल ७॥–७॥ मासे तथा विधारे के बीज और धतूरे के बीज १।–१। तोले एवं स्वर्णभस्म ५ मासे लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर सबको भलीभान्ति घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अवस्थानुसार। यथा दोषानुपान अथवा पान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भयङ्कर सन्निपातज गलरोग, अन्त्रवृद्धि; अतिसार, ११ प्रकार के कुष्ठ, २० प्रकार के प्रमेह, पुरानी और वंशगत कफ–वातज श्लीपद, नाडीव्रण, भयङ्कर व्रण, अर्श, भगन्दर, कास, पीनस, क्षय, स्थूलता, शरीर की दुर्गन्धि, रक्तविकार, हर प्रकार के आमवात, जिह्वा स्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्ण–नासिका–अक्षि और मुख की जडता, समस्त प्रकार के शूल और स्त्री रोग नष्ट होते है।

इसकी १ गोली नित्य प्रातः काल खाकर उडद की पिट्ठी के पदार्थ, दूध, दही, मांडयुक्त भात, सुरा और सीधु सेवन करने से मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। वृद्ध पुरुष युवकों की प्रतिस्पर्धा करने लगते है। शुक्र क्षय और लिङ्ग शैथिल्य नहीं होता और केश सुफेद नही होते तथा नित्य प्रति सैकडो स्त्रियों से समागम करने की शक्ति आ जाती है एवं दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाती है। इसका आविष्कार महात्मा "नारद" ने किया।

सं. वि.—"महालक्ष्मीविलास" वातकफज विकारों के लिये बहुत ही उत्तम औषध है। इसका योग वात-कफ नाशक, कण्ठ शोधक, श्लेष्मकलाशोष नाशक, इन्द्रिय पोषक और इन्द्रियनाडी प्रसादक है।

मै इसका प्रयोग पिछले दस वर्षों से शिरःशूल, प्रतिश्याय, कण्ठरोग, कफज्वर, कफ-वातज्वर, फुफ्फुस दौर्बल्य के कारण होनेवाला रात्रिज्वर, श्लेष्मवातज वक्षशूल, श्लेष्मवातज दृष्टि दौर्बल्य, नासिका और कर्ण के शोथ और अन्य विकारों पर करता आया हूं। इसके अतिरिक्त इसे विविध औषध योगों के साथ अन्य अनेक रोगो में भी प्रयोग करता रहता हूं। मुझे इसके परिणाम सर्वथा यथेच्छ मिले है।

इसका वाजीकरण प्रयोग मैने अभीतक करके नही देखा। इसका कारण मेरी दृष्टि से आजकी क्षीण मानवशक्ति, निःसत्व खाद्य आदि और मनुष्यों की अस्थिरता है।

महाश्वासारि लोह [भा. भै. र. ५५८२]
(र. रा सु.; भै. र. । श्वास.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म २॥ तोला, अभ्रकभस्म ७॥ मासा, मिश्री २॥ तोला, शहद २॥ तोला, हर्र, बहेडा, आमला, मुलैठी, मुनक्का, पीपल, बेरकी गुठली की गिरी, वंशलोचन, तालीसपत्र, वायविडङ्ग, छोटी इलायची, पोखर मूल और नागकेसर का चूर्ण आधा आधा कर्ष (७॥-७॥ मासे) लें। सबको लोहे के खरल मे लोहे की मुसली से २ प्रहर घोटकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—२-२ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से एक दोषज, द्विदोषज, सन्निपातज, महाश्वास, ५ प्रकार की खांसी और रक्तपित्त (उर्द्धगत) नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, शोषनाशक, पोषक, कफ को छुडानेवाली और कण्ठ का शोधन करनेवाली है। इसका सेवन सभी प्रकार के श्वास कास मे विशेषतः जहां कफ निकलने मे बहुत मुस्किल होती हो अथवा फुफ्फुसगत व्रण हो, शोथ हो, घुर्घर शब्द अधिक होता हो, रोगी क्षीण काय और अग्नि-बल विहिन हो, ऐसी परिस्थिति में इसका सेवन करना अधिक लाभप्रद होता है।

महावात विध्वंसन रस [भा. भै. र. ७०००]

(रसे. सा. सं., र. चं., धन्वं., र. रा. सुं. । वातरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, अभ्रकसत्वभस्म २ भाग, कांसीभस्म ३ भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म ४ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग और शुद्ध हरताल ६ भाग ले। सब द्रव्यो को एकत्र घोटें। कज्जली तैयार होनेपर उसे ७ दिन तक अरण्डी के तेल में खरल करके गोला बनावें और उसे सुखाकर उसके ऊपर निम्बु के रस में पिसे हुये तिलो का आधा अंगुल मोटा लेप करके सुखालें एवं (उसे शराब सम्पुट मे बन्द करके) १२ प्रहर बालुका यन्त्र मे पकावे। उसके स्वाङ्गशीतल हो जाने पर निकालकर, पीसकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—२–२ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार की उदरपीडा, गलावरोध, अफारा, विषूचिका, अग्निमान्द्य, आमदोष, गुल्म, दुर्जयछर्दी, संग्रहणी, श्वास, कास, कृमिरोग, सर्वाङ्गशूल, मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार और त्रिदोषज शूल का नाश होता है।

इसका प्रयोग करते हुये रोगानुसार पथ्य देना चाहिये। इसका आविष्कार भगवान् नन्दीनाथने किया।

सं. वि.—रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, विशद, खर, चल आदि गुणों से वायु प्रकुपित होता है। वायु सर्व शरीरचारी है। ऐसे आहार–विहार से जिनका परिणाम रूक्ष शीतादि में आता हो वायु प्रकुपित होता है। जिस स्थान पर विशेष वायु सञ्चित होता है प्रथम वहीं पर विकार उत्पन्न करता है। अधिकतर खाद्य द्वारा विकृति वस्ति मे वस्तिवात स्थान होने से होती है, उसी प्रकार अधिक वायु के सेवन से जो भाग स्पर्श में अधिक आते हों उनमें वायु सञ्चित होकर प्रकुपित होता है।

"महावात विध्वंसन रस" का योग स्नेह्य है, अतः रूक्षता को नाश करता है। इसका मिश्रण आग्नेय है अतः शीत का संशमन करता है। यह औषध वातनाशक, दोषानुलोमक, अग्निवर्द्धक, अपथ्यनाशक और शरीर की जडता आदि रोगो का नाश करती है।

निर्वात स्थान मे रहते, वात–कफ बहुला द्रव्यों का सेवन न करते "वातविध्वंशन रस" का उपयोग करनेवाले भयङ्कर रोगी भी अवश्य स्वास्थ्य लाभ करते है।

महावातराज वटी [भा. भै. र. ६९९४]

(र. रा. सु. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, कान्तलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध

हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची, चीतामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा, आमला, भारङ्गी, पीपलामूल, गजपीपल, कूठ, जावित्री, जायफल, देवदारु, पोखरमूल, अम्लवेत, कचूर, हल्दी, दारुहल्दी, पद्माक, अनारदाना, निसोत, रास्ना, धमासा, गिलोय, दन्तीमूल, शुद्ध जमालगोटा और शुद्ध वच्छनाग १।–१। तोला तथा शुद्ध शिलाजीत १० तोला एवं जायफल, वंशलोचन, असगन्ध, चव्य, कंकोल, खस, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, संचलनमक और सामुद्रलवण १।–१। तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर अन्य समस्त औषधियों का वारीक चूर्ण मिलाकर संभालू, वासे (अडूसे), भांगरा, मकोय, अदरक, अरनी, सूरण (जिमीकन्द), धतूरे और पान के रस की ७–७ भावना देकर (शास्त्रोक्त ३–३ रत्ती) ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें। छाया शुष्क करके रक्खे।

मात्रा:—१–१ गोली। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से ८० प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकारके कफरोग, कास, श्वास, भगन्दर, कुष्ट, उरःक्षत, शूल, ज्वर, पाण्डु, गलग्रह, प्रमेह, रक्तपित्त, गुल्म और सग्रहणी का नाश होता है। "नन्दी" द्वारा परिकीर्तित "यह रस साध्यासाध्य रोगों का नाश करता है" यह भगवान् "शिव" कहते है।

सं. वि.—शुद्ध पारद से सामुद्रलवण पर्यन्त इस औषध के सभी द्रव्य रसायन, वात नाशक, अग्निवर्द्धक, विषनाशक, मूत्रल, शरीर पोषक, रक्तवर्द्धक और भेदक है। भावना के द्रव्य भी उतने ही वातघ्न है जितने योग के द्रव्य।

यह निश्शंक उच्च कोटि की सर्वरोगनाशक औषध है। यदि द्रव्य स्वच्छ, श्रेष्ठ और ससार प्रयोग मे लिये जांय और औषध का निर्माण यथाविधि रासायनिक क्रिया द्वारा किया जाय तो यह वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, कीटाणुज सभी प्रकार के विकारो को शान्त करनेवाली औषध बनती है। आजके वातल युग मे ऐसी औषध का प्रयोग सर्वथा वांच्छनीय है, यदि दोष, वल, काल, आत्म्य, सात्म्य आदि का निरीक्षण करते औषध का सद्वैद्यो द्वारा आज्ञाकारी रोगियों पर उपयोग किया जाय तो यह औषध किन्ही भी आधुनिक औषधियों से उच्चकोटि की शरीर रक्षक और स्वास्थ्य प्रद सिद्ध हो सकती है।

महोदधि रस [भा. भै. र. ५५९१]

(महोदधिवटी)

(र. सा. सं. । अजीर्ण.; र. चं. । अग्निमान्द्या., र रा. सु । अजीर्ण., र. मं. । अ. ६.; रसे. चि. म. । अ ९, भै. र. । अग्निमा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) १ भाग, शुद्ध पारद

१ भाग, जावित्री और सुहागे की खील २–२ भाग, पीपल ३ भाग, सोठ ६ भाग, शुद्ध गन्धक और कौडीभस्म २–२ भाग तथा लौंग ५ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली वनावें तदनन्तर अन्य औषधियों को मिलाकर सबको पानी के साथ घोटकर (शास्त्रोक्त १–१ मासा) २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नष्ट अग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है।

सं. वि.—यह औषध अग्निदीपक, दोषानुलोमक, कोष्ठशोधक, रुचिकारक, आमनाशक, और पाचक है। अग्नि संदीपन के लिये यह श्रेष्ठ औषध है।

महोषधिराजवङ्ग

द्रव्य तथा निर्माण विधान—४ तोले शुद्ध वङ्ग को तवे पर गरम करके पिघलावें और उसमें ४ तोला शुद्ध पारद मिलाकर शीघ्र ही खरल में डालकर मर्दन करें। फिर उसमें निम्बु का रस डालकर मर्दन करें और धो डालें। इस प्रकार ७ दिन तक निम्बु के रस में घोटे और धोवे तदनन्तर उसमे शुद्ध हरताल और शुद्ध मल्ल (संखिया) ४–४ तोला मिलाकर घृतकुमारी के रस में मर्दन करके टिकडी बनाकर सुखालें। सूखने पर टिकडियों को सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार प्रत्येक बार हरताल और सोमल उपरोक्त मात्रा में मिश्रित करके घृतकुमार के रस में घोटे, टिकडी बनावे, सुखावे और सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंकदें। इस प्रक्रिया को ७ बार करें, इससे अन्तमे जो मात्रा बनेगी वह मूल मात्रा ४ तोला ही रहेगी। यदि ७ पुट देनेसे वजन अधिक रह जाय तो उपरोक्त क्रिया का पुनरावर्तन करते हुये जब तक यथोक्त मात्रा मे न आजाय तब तक पुट दे और ४ तोला अवशिष्ट रहने पर उसमें शुद्ध हिंगुल ४ तोला मिलाकर गिलोय के स्वरस मे खरल करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार भी ७ पुट दें। फिर उसे आमले के स्वरस में घोटें, जब स्वरस सूख जाय तब और रस डालकर फिर घोटे। इस प्रकार १ सेर रस का परिपाक औषध मे हो जाने पर उसमें १ तोला शुद्ध हिंगुल, १ तोला शुद्ध हरताल और १ तोला शुद्ध सोमल डालकर, मिश्रित कर, घीकुमार के रसमें घोटें और घोटते घोटते २० तोला रस पचा दें। फिर टिकडियां बनावें, सुखावे और १ सेर शुद्ध गन्धक में टिकियों का जारण करें, फिर १ सेर गन्धक में दोलायन्त्र में तेल भरकर औषध को पकावे और इस प्रकार ३ बार करें। फिर साफ करके सूक्ष्म चूर्ण बनाकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ चावल से १ रत्ती तक। मधु या यथारोगानुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह और नपुंसकता नष्ट होती है तथा कान्ति, तेज, बल, वीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध श्रेष्ठ रसायन और वाजीकरण है। इसके सेवन से शरीर के अङ्गप्रत्यङ्ग में चमत्कारिक रासायनिक परिवर्तन होकर समस्त धातु, बल, वीर्य, स्मृति, ओज, मेधा और पौरुष की वृद्धि होती है। अण्डग्रन्थि, अन्त्रग्रन्थि, रजोग्रन्थि, हृदय, फुफ्फुस, आमाशय और पक्वाशय के विकारों को दूर करके उनका पोषण करती है तथा उनमें क्रियाशक्ति उत्पन्न करती है। इस औषध के सेवन से निस्संदेह क्षीण काय से क्षीणकाय पुरुष भी इच्छित शक्ति और यौवन को प्राप्त कर सकता है। वीर्य दोषों के लिये तो यह औषध अनुपम और आशु क्रियाकारी है।

मण्डूर वज्रवटक [भा. भै. र. ५४८५]

(रसे. सा. सं.; वृ. मा.; वं. से. । पाण्डु.; वै. र.; र. र.; धन्वं.; र. चं.; र. रा. सुं.; र. का. धे. । पाण्डु.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, पीपलामूल, चव, चीतामूल, सोंठ, कालीमिर्च, दारुहल्दी, हर्र, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग (पाठान्तर से हींग) और नागरमोथा। इनका चूर्ण १५-१५ तोले और शुद्ध मण्डूर सबसे २ गुना (३६० तोले) लेकर सबको ५७६० तोले (७२ सेर) गोमूत्र में पकावें जब अवलेह के समान गाढा हो जाय तो (शास्त्रोक्त १।-१। तोले के मोदक) ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पाण्डु रोग, अग्निमान्द्य, अरुचि, अर्श, संग्रहणी, उरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा, आनाह और गलरोग नष्ट होते है।

सं. वि.—वातनाशक, अग्निदीपक, कफशोषक, कृमिनाशक और वातानुलोमक है। यह योग, यकृत्, प्लीहा के विकारों का नाश करने के लिये श्रेष्ठ औषध है। अन्त्र की शिथिलता, अन्त्रक्षोभ, आम और वातजन्य अन्त्रदाह में इसका प्रयोग बहुत ही श्रेष्ठ है।

मण्डूर पर्पटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, मण्डूरभस्म १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे मण्डूरभस्म मिलाकर १ दिन मर्दन करें और तदनन्तर पर्पटी बनाने की विधि से पर्पटी बनाले।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक। दिन मे २-३ बार।

अनुपानः—जीरे का चूर्ण और छाछ अथवा दूध या फलों का रस।

उपयोगः—पाण्डुरोग, प्लीहा के रोग, शोथ, मन्दाग्नि तथा ग्रहणी रोग में मण्डूर पर्पटी का उपयोग करें।

[सि. यो. सं. से उद्धृत]

महापर्पटी रस [भा. भै. र. ५५५३]

(र. का. धे., प्रदर.; र. चिं. म. । स्तवक ७.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ४ मासे और शुद्ध गन्धक ८ मासे लेकर दोनों को एकत्र खरल करके बारीक कज्जली बनावें और १ लोहपात्र में घी चुपडकर उसमें कज्जली को डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। कज्जली के पिघल जाने पर उसे शीघ्रता से गाय के गोबर के ऊपर बिछे हुये केले के पत्ते पर फैलाकर उसे दूसरे कदली पत्र से ढक दें और उस पत्ते के ऊपर शीघ्र ही गो का गोबर डाल दें उसके स्वाङ्गशीतल होने पर पत्तों के बीच से पर्पटी को निकालकर पीस लें।

पूर्वोक्त विधि से बनी हुई पर्पटी १२ मासे और सोठ का चूर्ण, पीपल, मरिच, सेंधानमक, सञ्चल (कालानमक) नमक, सज्जी और विडनमक का चूर्ण एवं अभ्रकभस्म १–१ मासा लेकर सबको एकत्र खरल करके बहुत बारीक चूर्ण बनावे और एक पात्र में गन्धक पिघलाकर उसमें यह औषध भरकर सुरक्षित रक्खे। (पात्र के भीतर घी चुपडकर उसमें गन्धक पिघलाकर उसे चारो तरफ भलीभान्ति घुमावे जिससे कि गन्धक समस्त पात्रमें लिप्त हो जाय।)

मात्राः—१ से २ रत्ती। अग्निबलानुसार। काञ्जी अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अर्श, गुदपीडा, उदररोग, कामला, संग्रहणी, अग्निमान्द्य, स्थूलता, पाण्डु और कफज अजीर्ण का नाश होता है। इसे अन्य रोगो पर भी तत्तद्रोगनाशक औषधियो के साथ मिलाकर उचित अनुपान के साथ दे सकते है।

सं. वि.—यह औषध अन्त्रशोधक, अन्त्रक्रिया सञ्चारक, अन्त्रश्लेष्मकला दोषनाशक, वातघ्न, शूलघ्न, आमनाशक, दोषानुलोमक और मूत्रल है। इसके सेवन से वात द्वारा उत्पन्न हुए वस्तितोद, अन्त्र शैथिल्य, मूत्रप्रणालिका शैथिल्य तथा वातजन्य अन्य अन्त्रविकार, वस्तिविकार आदि नष्ट होते है। ऐसे उदर रोगो में जहां आम संग्रह होकर विकार उत्पन्न होते हो, मेद वृद्धि होती हो और शरीर शिथिल रहता हो, इसका प्रयोग बहुत ही उत्तम होता है।

मन्थानभैरव रस [भा. भै. र. ५५१७]

(र. रा. सु. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, कालीमिर्च का चूर्ण, पीपल का चूर्ण और सोठ का चूर्ण ५–५ तोले तथा शुद्ध वच्छनाग २॥ तोले ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर अन्य औषधियां को मिलाकर २ दिन पर्यन्त खरल करें।

मात्राः—२–२ रत्ती। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नवीनज्वर, भयङ्कर सन्निपात, शीतज्वर, दाहपूर्व-ज्वर, गुल्म और त्रिदोषज शूल नष्ट होते है। इसके सेवन काल में किसी विशेष पथ्य की आवश्यकता नहीं है।

इसको खाने के पश्चात् शरीर मे यदि दाह हो तो चन्दन का लेप करना चाहिए।

सं. वि.—यह औषध स्वेदल, ज्वरघ्न, विषघ्न, कीटाणुनाशक और भयङ्कर आमनाशक है। विशेषतः दुष्टवात, कीटाणु, दुष्टजल और विष द्वारा उत्पन्न हुये रोगों पर यह अधिक लाभ करती है।

महावन्हि रस [भा. भै. र. ५५७३]

(रसे. सा. सं. । उदर; र. र. स. । अ. १९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ४ भाग, शुद्ध हिंगुल ८ भाग, हल्दी ६ भाग, त्रिफला (हर्र, बहेडा, आमला) २ भाग, शुद्ध मनसिल ३ भाग, दन्तिमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल और जीरा ८—८ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको पृथक २ सात २ दिन जयन्ती के रस, सेहुड (थोहर) के दूध, भांगरे के स्वरस, चीते के क्वाथ और अरण्डी के तेल मे घोटकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—१ से २ रत्ती। अग्नि बलानुसार। उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे उपरोक्त अनुपान के साथ देने से विरेचन होकर समस्त उदररोग और मूलवातरोग नष्ट होते है।

इसे खिलाने के बाद विरेचन होने पर गरम छाछ को सेधानमक मिलाकर सायंकाल के समय पिलावे। शीतल जल नहीं देना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध भेदक, शोधक, वातानुलोमक, आमनाशक, अग्निवर्द्धक और उदर के किसी भाग में अन्त्रशैथिल्य, अन्त्रसंकोच, अन्त्रप्रसार, अन्त्रशोथ, अन्त्रदाह आदि से होनेवाले विकार को दूर करनेवाली है। उपान्त्रशोथ, जो शुष्क मल के अन्त्र में एकत्रित होने के कारण, आम, वात, विष तथा स्थानिक शोथ के कारण तथा धीरे २ वृद्धिगत स्थानिक क्षोभ के कारण होता है, उसमे इस औषधि की क्रिया शोथघ्न, विरेचक और क्षोभघ्न होने के कारण शीघ्र होती है। इसी प्रकार उदरशूल आदि में भी यह सफल क्रिया करती है।

मदेभसिंह रस [भा. भै. र. ५५००]

(र. चं. । पाण्डु.; यो. र. । गुल्म., पाण्डु.; र. रा. सुं. । पाण्डु.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कौडीभस्म, ताम्रभस्म, शंख-भस्म, शुद्ध वच्छनाग का चूर्ण, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, लोहभस्म,

मुण्डलोहभस्म, नाग (सीसा) भस्म, शुद्ध हिंगुल और सुहागे की खील १–१ भाग तथा गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ पुराना मण्डूर सबसे ३ गुना (४२ भाग) ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उनमें अन्य द्रव्य मिलाकर भलीभान्ति खरल करें। तत्पश्चात् उसे त्रिफला, भांगरा और अदरक के रस की पृथक पृथक १–१ भावना देकर सुखाले।

सूखने के बाद उसमे उससे ८ गुना त्रिफला क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे, जब वह क्वाथ जल जाय तो उतना ही (रस से ८ गुना) गिलोय का स्वरस या क्वाथ डालकर पुनः पकावे। इसी प्रकार भांगरे, वासे और पुनर्नवा के भी ८–८ गुने रस डालकर पृथक २ पकावे। अन्त में जब गाढा हो जाय तो १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। रोगोचितानुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन करने से ज्वर, पाण्डु, तृषा, रक्तपित्त, गुल्म, क्षय, कास, स्वरभङ्ग, अग्निमान्द्य, मूर्च्छा, वातव्याधि और अष्ट महारोग तथा समस्त पित्तरोग तथा मदात्यय का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपघ्न, वातघ्न, व्रणनाशक, आध्माननाशक और वातानुलोमक है। दीर्घकाल से उदर के किसी भाग में यदि वात, पित्त, कफ जनित व्रण हो तो वह इस औषध को मधु के साथ सेवन करने से मिट जाता है और श्लेष्मकलाओं का शोथ दूर हो जाता है। ग्रहणी में अन्त्रकलाओं पर सतत वाताक्षेपो के कारण प्रथम वातजशोथ उत्पन्न होता है और अनन्तर अन्य कारणों द्वारा शोथ व्रण में परिणत हो जाता है। ऐसी अवस्था में "मदेभसिंह रस" का पुनर्नवा मूल और सुंठी अथवा मधु के साथ, पित्त, वात और कफज दोषो में प्रयोग बहुत ही लाभप्रद होता है। वात द्वारा अन्त्र में आक्षेप के कारण मध्य पेशिकाओ का आक्षेप होकर अथवा हृदावर्ण पर वात के प्रभाव के कारण रोगी को मूर्च्छा होने लगती है, ऐसी परिस्थिति मे यह औषध वातानुलोमक तथा आक्षेपघ्न शक्ति के कारण वायु को स्थान भ्रष्ट करके अङ्गो को स्वस्थावस्था प्रदान करती है। इस प्रकार यह मूर्च्छारोग नाशक सिद्ध होती है। ऊर्द्धगत वात, कफ और पित्त को साथ लेकर यकृत्, फुफ्फुस, हृदय आदि स्थानों पर दुष्ट क्रिया करके वमन, पाण्डु, कास, स्वरभङ्ग, रक्तपित्त आदि रोगो की उत्पत्ति करता है। यह औषध उग्र वातनाशक, पित्त संशोधक और कफ पाचक होने के कारण, इन सब विकारो को यकृत्–शोथ दूर करके, आमाशय कलाओ के आक्षेप को मिटाकर, फुफ्फुस, हृदादि पर से वायु के प्रभाव का हटाकर, उपरोक्त रोगो का नाश करती है।

महाशार्दूल रस [भा. भै. र. ५५७९]

(रसे. सा. सं.; र. रा. सु. । सूतिका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध

पारद, शुद्ध मनसिल, सुहागे की खील, जवाखार और हर्र, बहेडे तथा आमले का चूर्ण ५-५ तोले, शुद्ध वच्छनाग ३।।। मासे, दालचीनी, इलायची, तेजपात, जावित्री, लौंग, जटामांसी, तालीसपत्र, स्वर्णमाक्षिकभस्म और रसौत २।।-२।। तोले लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर उसको गूमा और पान से रस की पृथक पृथक ७-७ भावना दे और अन्त मे जब थोडा द्रव्य शेष रह जाय तो ५ तोले कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर खरल करें।

मात्राः—१ से २ रत्ती। पान के रस और मधु के साथ अथवा जल मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वर, दाह, वमन, भ्रम, अतिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि और विशेषतः गर्भिणी स्त्री के रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध स्वेदल, मन्दाग्निनाशक, दोषानुलोमक, दाहनाशक, मूत्रल, विषघ्न और शरीरपोषक है। इसके सेवन से आमाशय मे संमूर्च्छित दोषो का विकार दूर होता है। अग्नि की वृद्धि होती है। आम दोष जो सर्वाङ्ग या एकाङ्ग व्यापी होकर शरीर के एकाङ्ग या सर्वाङ्ग में आमज विकार उत्पन्न करता है, इस औषध की क्रिया से शीघ्र नष्ट होता है। यह औषध शरीर को अन्त्र विष के दोषो से सुरक्षित रखती हुई शरीर का यथोचित पोषण करती है।

मणिपर्पटी रस [भा. भै. र. ५४६९]

(र. र. स. । उ. ख. अ. २४ नासारो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हीराभस्म, मरकत (पन्ना) भस्म, पुष्पमणि (पुखराज) भस्म, और नीलमभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गन्धक समान भाग लें। प्रथम पारे, गन्धक और हिंगुल की कज्जली बनावें और फिर उसे बेरी की अग्नि पर लोह पात्र मे पिघलाकर उसमे अन्य रसों की भस्में मिलादें एव गोबर के ऊपर बिछे हुये केले के पत्ते पर डालकर ऊपर से दूसरे केले के पत्ते को रखकर उसे गोबर से ढकदें। शीतल होजाय तब उसे निकालकर संभाले, तुलसी, सहजने की छाल, धतूरा, आक, चीता, सोंठ, मिर्चे, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, केला, तुलसी तथा अदरक के रस की ७-७ भावना देकर सुरक्षित रक्खें। (जिनके स्वरस न मिल सके उनके क्वाथ लिये जांय। भावना प्रत्येक रस की पृथक २ देनी चाहिये।)

मात्राः—आधी से १ रत्ती। यथाग्निबलानुसार। यथोचित अनुपान के साथ अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह औषध समस्त नासा रोगो को नाश करती है तथा पथ्यानुसार देने से अन्य समस्त श्लेष्मकलाओं में होनेवाले रोगों का नाश करती है।

सं. वि.—श्लेष्मकलाये कोमल तथा श्लेष्मप्रधान अवयव है। वातकोप द्वारा अथवा वात की रूक्षता द्वारा श्लेष्मकलाओ में शोथ हो जाता है। शोथ की विकृति से दाह उत्पन्न होकर विकृतक्लेद इन कलाओ अथवा ग्रन्थियों से निकलने लगता है, इससे कान, नाक, आंखे और गले की ग्रन्थियो मे शोथ और शैथिल्य उत्पन्न हो जाता है। लालागन्थियां अधिक क्षारीय हाकर परिवर्द्धित हो जाती है। कण्ठ शुष्क और आंखों के अन्दर क्षार का संगठन होने से मनुष्य नासा रोगो से पीडित होते हुये अन्य पन्चेन्द्रियो के विकारो से परिपीडित होने लगते है।

यह औषध वातनाशक, श्लेष्मग्रन्थि तथा कला पोषक और शरीर शक्तिवर्द्धक होने से इस प्रकार के सभी विकारो में श्रेष्ठ लाभ करती है।

हीरा, माणिक्य, नीलम आदि शक्ति प्रधान द्रव्य और हिंगुल, पारद और गन्धक आदि शोधक द्रव्यो के संयोग से बनी हुई यह औषध, किन्हीं भी श्लेष्मकलाओं के विकारों में यथा— अक्षि गोलक प्रदाह, घ्राणतन्तुशोथ (Sinusitis), पूतिनस्य (नजला), तथा गल ग्रन्थियों के शोथ के कारण होनेवाली वधिरता मे प्रयोग में आती है।

महावलविधानाभ्रकम् [भा. भै. र. ५५५४]

(वं. से. । रसाय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कज्जल के समान काले और स्निग्ध शुद्ध कृष्णाभ्रक में दूर्वा और मुण्डी की वहुत सी जडे मिलाकर कपडे की पोटली में बांधकर उसे पानी से भरे हुये पात्र में दोनों हाथो से अच्छी तरह मसले, यहां तक कि समस्त अभ्रक बारीक होकर पानी वाले पात्र मे आ जाय। अब ऊपर से पानी निथार दे और जो कीचड सी रह जाय उसे धूप मे सुखादें। इस प्रकार अभ्रक खूब बारीक कज्जल के समान हो जायगा।

तदनन्तर आक के वृक्षों को कूटकर उनका रस और दूध निकालें और इस दुग्धयुक्त अर्क रस मे उस अभ्रक को घोटकर यथाविधि २—३ पुट दे और अन्त में पत्थर पर बारीक पीसले।

(नोटः—अभ्रक निश्चन्द्र हो जाना चाहिये।)

अव यह अभ्रक चूर्ण १ पाव (२० तोले) लेकर उसे ४ गुने गोमूत्र मे मन्दाग्नि पर पकावें और फिर उसे ४ प्रहर पर्यन्त गोदुग्ध मे पकावे। जब गाढा हो जाय तो उसमे निम्नाङ्कित द्रव्यों का बारीक चूर्ण डाल देना चाहिये।

वायविडङ्ग १० तोले, त्रिकुटे का चूर्ण १० तोले, हर्र, बहेडे और आमले का चूर्ण १०—१० तोले, बांझ ककोडे की जड का चूर्ण ५ तोले तथा तगर, गजकणा (कन्द शाक

विशेष अथवा मूषाकर्णी), विधारामूल, लाल चीते की जड, तालमूली, लाल कनेर की जड, हपुषा, तेजपात, असगन्ध, शतावर, निर्मली के फल, पुनर्नवा, आक, अरणी, वलामूल (खरैटी की जड), कटेली, गिलोय, भांगरा, निसोत, भांग और काला भांगरा। प्रत्येक का चूर्ण ५—५ तोले डाले।

(नोटः—दूध इतना डालना चाहिये कि ४ प्रहर तक उसमे अभ्रक को पकाने के पश्चात् भी वह इतना पतला रहे कि उसमें उक्त समस्त चूर्ण आसानी से मिल सके।)

चूर्ण मिलाने के वाद शीतल होनेपर उसमे ४० तोले घी और शहद तथा मिश्रि ४०—४० तोले मिलाकर सबको पुनः पत्थर पर पीसकर चिकने पात्र मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त औषध प्रयोग विधान—इस औषध को उत्साह पूर्वक विनीत भाव से ग्रहण करना चाहिये और सेवन प्रारम्भ करने से पूर्व किसी योग्य वैद्य की देखरेख मे मृदु वमन, विरेचन द्वारा शरीर शुद्धि कर लेनी चाहिये।

प्रथम गुरु, अग्नि, अतिथि, सिद्ध, साधु और मान्यजनों का पूजन करके, घृत युक्त भात का भोजन करके, दीनभाव और ग्लानि को छोडकर दृढ संकल्प के साथ इसका सेवन प्रारम्भ करना चाहिये।

इसके सेवन काल मे इन्द्रियों को वश मे तथा मन को शान्त रखना चाहिये, परोपकार करना और क्रोध का त्याग करना चाहिये।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ८ मासे) ४—४ रत्ती। ठण्डे जल के साथ। श्रद्धा के साथ प्रातःकाल सेवन करे। औषधि की मात्रा प्रति सप्ताह थोडी २ बढाते हुये ६ मास तक सेवन करनी चाहिये।

पथ्यापथ्यः—नियमित भोजन करे। शाक, खटाई, दही, अत्यन्त तिक्त, कटु कषाय क्षार, अभिष्यन्दि, तीक्ष्ण, रूक्ष, वातकारक, विदाही और दुर्जर अन्न पान का त्याग करे। मद्यपान से परहेज करे। उच्च स्वर से अध्ययन न करे। अति शीतल पदार्थ न खांय। दिवास्वप्न का त्याग करे। द्वेष, तीक्ष्ण पवन, तेजधूप, रात्रि जागरण, चिन्ता, शोक, विषाद, अधिक व्यायाम, मदकारी और उन्मत्त करनेवाले पदार्थ और अनूपदेशज जन्तुओं का मांस तथा शीतल जलपान (वर्फ आदि) का त्याग करना चाहिये।

शिर वारी शाक, साठी के चावल, मूंग की धुली हुई दाल, सुपारी मुनक्का, पक्के आम, स्वादु और पक्के फल, उत्साह कारक पदार्थ, भूमि से ऊपर ग्रहण किया हुवा वर्षात का जल (अन्तरिक्ष सलिल) पथ्य है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त वातव्याधि और वलिपलित का नाश

होकर तेज, शौर्य, बुद्धि और वाक्शक्ति की अत्यन्त वृद्धि होती है। मदमत्त हाथी के समान बल आजाता है। सुकुमारता और उत्साह की वृद्धि होती है। शरीर षोडश वर्षीय युवक के समान सुन्दर हो जाता है और बहुत सी सन्तानें उत्पन्न करने की शक्ति प्राप्त होती है। आयु अत्यन्त दीर्घ हो जाती है। मुख की कान्ति चन्द्रमा के समान देदीप्यमान हो जाती है।

यह औषध शोष, यकृत्, अतिसार, प्लीहा, अपस्मार, सिध्म, यक्ष्मा, कास, श्वास, विसर्प, ग्रहणी, गुल्म, अश्मरी, शोथ, प्रदर, जलोदर, भस्मक, वमन, पामा, श्लीपद, प्रमेह, विबन्ध, भगन्दर, कुष्ठ, विषमज्वर, पाण्डु, कान, मुख, उदर, नेत्र, और मस्तक के रोग ताथा मूत्रकृच्छ्र एवं आमवात, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, वातजरोग, कफजरोग और पित्तजरोगों को शीघ्र नष्ट कर देती है।

यह "नागार्जुनोदित रसायन संहिता" से उद्धत औषध आलोचना सहित ली गई है। यह समस्त रोग नाशक है। इसका प्रयोग सम्पन्नों को कराना चाहिये।

माणिक्य रस [भा भै. र. ५५९८]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. चं.; धन्व. । कुष्ठ.)

(रस माणिक्य)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वंशपत्री (तबकी) हरताल को ७–७ या ३–३ बार पेंठ के रस, खट्टी दही और कांजी मे पृथक २ दोलायन्त्र विधि से पकाकर शुद्ध करें। तदनन्तर उसके चावल के समान बारीक टुकडे कर ले और एक मिट्टी के बर्तन में (नीचे सफेद अभ्रक बिछाकर उस पर) यह हरताल फैलाकर (उसके ऊपर दूसरा अभ्रक पत्र रख कर) पात्र को शराव से ढक दे तथा जोड को बेरी के कल्क से बन्द करदे। अब इस पात्र को (कण्डों की अग्नि पर) इतना पकावे की नीचे का भाग (तली) लाल हो जाय। इसके पश्चात् पात्र के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसमे से रसको निकालकर सुरक्षित रक्खे। यह रस माणिक्य के समान दीप्तिमान होता है।

मात्राः—१–१ रत्ती। घी और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से स्फुटित और गलित कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, व्रण, दुष्टव्रण, उपदंश, विचर्चिका, नासा और मुख के रोग, पुण्डरीक कुष्ठ, विस्फोटक और मण्डल कुष्ट का नाश होता है।

सं. वि.—"माणिक्य रस" एक मात्र शुद्ध हरताल ही से बनता है। हरताल कटु, कषाय, स्निग्ध है। यह कण्डू, कुष्ठ, मुखरोग, रक्तविकार, कफविकार, पित्त विकार और दुष्ट व्रणों का शोधक है। फिरङ्गज आमवात, पूयज आमवात, कुष्ठ, विषज सन्निपात, शरीरगत विषजन्य व्रण, शोथ इत्यादि रोगों में यह प्रशंसनीय क्रिया करता है।

सन्धि शोथ, ग्रन्थि शोथ, व्रणपाक आदि मे यथादोष अन्य औषधियों के मिश्रण के साथ भी दिया जाता है।

मार्तण्डेश्वर रस [भा भै. र. ५३०५]

(र. र. स. । अ. २१; र. चं, र रा सु. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१००–१०० तोले शुद्ध ताम्र और स्वर्णमाक्षिक को एकत्र मिलाकर सम्पुट मे बन्द करके गजपुट की अग्नि दे। इसी प्रकार ४ पुट देने के पश्चात् उसे पीसकर समान भाग शहद में घोटकर सम्पुट मे बन्द कर गजपुट की आंच दे। इसो प्रकार २० पुट शहद की और २० पुट शुद्ध गन्धक की दे। हरवार समान भाग गन्धक डालना चाहिये।

अब यह ताम्रभस्म ५ तोले, गन्धक द्वारा मारित पारद ५ तोले और हीरा भस्म ५ मासे लेकर सबको एकत्र खरल करके, अच्छी तरह घोटकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१–१ रत्ती। कालीमिर्च के चूर्ण और घी के साथ मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातादि अष्ट महारोग, श्वास कास युक्त क्षय, हलीमक, पाण्डु, भयङ्कर ज्वर और स्त्रियो का वन्ध्यत्व नष्ट होता है तथा अग्नि अत्यन्त. प्रदीप्त हो जाती है।

इसे सोठ, मिर्च, पीपल के चूर्ण और अदरक के रस के साथ सेवन करने से सन्निपात नष्ट होता है।

मुक्तापञ्चामृत रस [भा. भै. र. ५६०८]

(यो. र.; बृ. नि. र. । जीर्णज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मोतीभस्म ८ भाग, प्रवालभस्म ४ भाग, हिरनखुरीवंग (रांग) की भस्म २ भाग तथा शंख और सीप की भस्म १–१ भाग लेकर सबको एकत्र कूटकर २ प्रहर गन्ने के रस में खरल करके गोला बनावे और उसे सुखाकर शराब सम्पुट में वन्द करके लघुपुट में फूंक दें। इसी प्रकार गन्ने के रस और गोदुग्ध, विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावर, तुलसी या संभालू, और हंसपदी (लाल लज्जालू) के रस मे खरल करके ५–५ पुट दें। अन्तिम पुट के वाद सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ४–४ रत्ती) १ से ४ रत्ती। पीपल के चूर्ण में मिलाकर बहुत दिनों की व्याही हुई गाय के दूध के साथ सेवन करें और स्वल्प भोजन दे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जीर्णज्वर और क्षयादिरोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शीतवीर्य और मधुर विपाक है। इसके सेवन से वात–पित्त जन्य

विविध प्रकार के शरीर दाहादिदोष, ज्वर, दौर्बल्य और क्षय नष्ट होते है। यह औषध कैलसियम प्रधान है अतः कैलसियम के अभाव से होनेवाले क्षय आदि मे इसका प्रयोग बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है। दीर्घ कालीन पोषण के अभाव से उत्पन्न हुये अन्त्र दौर्बल्य में इसका प्रयोग पोषक और शोषनाशक सिद्ध होता है।

मुस्तादि योग [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नागरमोथा, पलाश (ढाक-टेसू) के सेके हुये बीज, वायविडङ्ग-छिलका निकाला हुवा, दाडिम की मूल या वृक्ष की छाल, करञ्जुये (कञ्जे) का मज्जा (मींगी) सेका हुवा, इन्द्रजव सेका हुवा, कमीला और किरमानी अजवान प्रत्येक १-१ भाग, अजवायन का सत्व और सेकी हुई हींग प्रत्येक ½-½ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, उसमे औषधियो का कपडछन चूर्ण मिलावे और उसे अनन्नास के पत्तो के रस मे १ दिन मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखाकर रखलें।

मात्राः—१ से २ गोली।

अनुपानः—१-२ गोली खिलाकर ऊपर से नागरमोथा, मूसाकानी, पलास के बीज, वायविडङ्ग, दाडिम के वृक्ष की छाल, अजवायन, दोने की पत्ती, किरमानी अजवायन, सुपारी, देवदारु, सहजने के बीज, हरडदल, बहेडादल, आंवला, खैर की लकडी का बुरादा, नीम की अन्तर्छाल और इन्द्रजौ समान भाग लेकर, सबको कूट छानकर, एक तोला द्रव्य को १६ तोला पानी मे पका, ४ तोला बाकी रहे तब छानकर पिलावे।

उपयोगः—मुस्तादि योग के सेवन से पेट के कृमि और कृमियो से होनेवाले उपद्रव दूर होते है। ७ दिन से २१ दिन तक इसका सेवन कराना चाहिये।

मुक्तापर्पटी रसः

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १० तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला और मुक्ताभस्म १० तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे मुक्ताभस्म मिश्रित करके भलीभाति घोटे तत्पश्चात् उसे घृतलिप्त लोहे की कढाई मे मन्दाग्नि पर गरम करे, उसके पिघल जाने पर पर्पटी बनाने की विधि से पर्पटी बनाले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मधु, दूध, तक्र, दधि अथवा बिल्व के गर्भ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अम्लपित्त, हृद्दाह, आमाशय शोथ, क्षोभ, ग्रहणी, पुरातन अन्त्र शैथिल्य और आन्त्रिक विकारो के कारण होनेवाले ज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध अधिक काल तक विकृत खाद्य के सेवन से उत्पन्न हुये अन्त्र-दाह, अन्त्रशोथ, अन्त्रव्रण, संग्रहणी और श्लेष्मातिसार का नाश करती है। शरीर में दाह के साथ साथ रक्त मे ऊष्मा हो तब इसका प्रयोग शोधक और पोषक होने के कारण सर्वदा लाभदायी सिद्ध होता है। यह रसायन और रस, रक्त आदि धातुवर्द्धक है।

मूर्च्छान्तक रस [भा. भै. र. ५६२४]
(र. चं. । मूर्च्छा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, शिलाजीत और लोहभस्म समान भाग लेकर सबको शतावर और विदारीकन्द के रस की पृथक पृथक १–१ भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से मूर्च्छा नष्ट होती है।

सं. वि.—यह औषध वातनाडी पोषक, रक्तवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक और शरीर शैथिल्य नाशक है। इसके सेवन से वातद्वारा अथवा वृक्क मे विष उत्पन्न होने के कारण होनेवाली रक्तचाप की वृद्धि (High Blood Pressure) अथवा अधिक वीर्यक्षीणता के कारण होनेवाली रक्तचाप की वृद्धि का नाश होता है। शर्करा जाने से उत्पन्न होनेवाली शरीर की शक्ति के ह्रास से होनेवाले हृद्दौर्बल्य मे यह विशेष लाभप्रद है। यह हृदय को सदैव पुष्ट रखती है और मूर्च्छा आदि से मनुष्य को सुरक्षित रखती है। दीर्घकाल तक अतिव्यवाय के कारण शरीर मे शोष हो जाता है, शरीर जीर्ण शीर्ण दीखने लगता है, ऐसी परिस्थिति में यह औषध अच्छा लाभ पहुंचाती है।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस [भा. भै. र. ५६२२]
(र. सा. सं.; र. चं. । मूत्रकृच्छ्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और जवाखार समान भाग लेकर कज्जली बनाले।

मात्राः—२ से ३ रत्ती। मिश्री युक्त तक्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग निस्संदेह नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, वातानुलोमक और मूत्रल है। इसका प्रयोग वस्तिगत अश्मरी और मूत्रप्रणालीगत अश्मरी मे किया जा सकता है। मूत्र की ऐसी अवरोध अवस्था में जहां उदरशोथ, आध्मान, यकृत्, प्लीहा आदि की वृद्धि के कारण मूत्र न होता हो, इसका प्रयोग लाभप्रद होता है।

मृगाङ्क रस [भा. भै. र. ५६३३]

(रसे. सा. सं., र. मं.; भै. र. । यक्ष्मा.; यो. त. । त. २७; र. का. धे. । क्षय.; र. चं.; र. रा. सुं. । राजयक्ष्मा.; बृ. यो. त. । त. ७६; यो. र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध स्वर्णपत्र २ भाग ले। दोनों को एकत्र मिलाकर घोटे। जब स्वर्ण पारद मे मिल जाय तो उसमे २ भाग मोती का चूर्ण और १ भाग (या ४ भाग) शुद्ध गन्धक एवं १ भाग सुहागा मिलाकर सबको काञ्जी में घोटकर गोला बनावे और उसे सुखाकर शराब सम्पुट मे बन्द करके सेधानमक के चूर्ण से भरी हुई हांडी में नमक के बीच मे रखकर ४ प्रहर पर्यन्त पाक करें। तदनन्तर जब हांडी स्वाङ्गशीतल हो जाय तब उसमें से औषध को निकालकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—१ से २ रत्ती तक। कालीमिर्च के चूर्ण या पीपल के चूर्ण तथा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से राजयक्ष्मा का नाश होता है।

पथ्य:—इसका सेवन करते हुये बैगन, बेल, तेल और करेला न खायें। स्त्री समागम का नाम भी न लें और ना क्रोध ही करें।

सं. वि.—यह औषध पोषक, सौम्य गुण विशिष्ट, शरीर वर्द्धक, अग्निवर्द्धक, दोषानुलोमक, श्लेष्महारक तथा शरीर शक्ति वर्द्धक है। यह राजयक्ष्मा रोग के लिये प्रचलित औषध है। मुक्ता और स्वर्ण का योग सौम्य, विषनाशक, दाहनाशक, क्षत–क्षय नाशक तथा शक्तिवर्द्धक है। टङ्कणक्षार, गन्धक और पारद शोधक और वात कफ नाशक है।

यह औषध सब प्रकार प्रशस्त है।

मृतप्राणदायी रस [भा. भै. र. ५६४२]

(बृ. नि. र. । सर्व ज्वराति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, शुद्ध वच्छनाग और धतूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें, तदनन्तर अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर १ प्रहर तक खरल करें और फिर उसे क्रमश: वच्छनाग तथा धतूरे के बीजो के क्वाथ की ३–३ एवं त्रिकुटे के क्वाथ की ५ भावना दें।

मात्रा:—१–१ रत्ती। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—नवीन ज्वर में अदरक के रस के साथ। ज्वर और अतिसार में मोथे के क्वाथ के साथ। ग्रहणी में मधु के साथ। अर्श में मिश्री के साथ। स्नायुगतवात में

त्रिकटु और चीते के क्वाथ के साथ एवं प्रकम्पवात, अपवाहुक, एकाङ्गवात, अपस्मार और उन्माद में मिश्री और धतूरे के ५-५ बीजो के साथ दे।

पथ्यः—दूध, खीर, दही, तक्र, भात और मिश्री।

मृत संजीवनी वटी [भा. भै. र. ५६५०]

(र. चं. । ज्वरातिसार; रसे. सा. सं.; भै. र. । ज्वरातिसार.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल और शुद्ध वच्छनाग १-१ भाग तथा शुद्ध हिंगुल २ भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर १ दिन जम्बीरी निम्बु के रस मे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। शीतल जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरातिसार, विषूचिका और भयङ्कर सन्निपात नष्ट होता है।

मृत्युञ्जय रस [भा. भै. र. ५६६२]

(भै र., र. रा. सु., धन्वं. । ज्वरा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सुहागे की खील ४ भाग, शुद्ध वच्छनाग (मीठाविष) ८ भाग, धतूरे के बीज १६ भाग, और त्रिकुटा (समान भाग मिश्रित सोंठ, मिर्च, पीपल) २२ भाग ले। प्रथम पारे और गन्ध की कज्जली बनावे तदनन्तर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर सबको धतूरे की जड के रस मे घोटकर (शास्त्रोक्त १-१ मासा) १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। अग्निबलानुसार। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के ज्वर नष्ट होते है। इसे वात-पित्त ज्वर मे नारियल के पानी और मिश्री के साथ दे। श्लेष्म-पित्त ज्वर मे शहद के साथ दे। सन्निपात ज्वर मे अदरक के रस के साथ दे।

सं. वि—यह औषध स्वेदल, मेदनाशक, पाचक, आमशोषक, दोषानुलोमक, विषनाशक और ज्वरघ्न है।

मृतोत्थापन रस [भा. भै. र. ५६५३]

(भै. र.; र. रा. सु. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और शुद्ध मनसिल, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध हिंगुल, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, शुद्ध हरताल तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म १-१ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे

और फिर उसमे अन्य औषधे मिलाकर सबको अम्लवेत, जम्बीरी, चाङ्गेरी (चूका), निर्गुडी और हाथी सुण्डी के रस मे ३—३ दिन घोटकर शराव सम्पुट मे वन्द करके भूधर यन्त्र में १ दिन अग्नि दे और फिर स्वाङ्गशीतल हो जाने पर औषध को निकालकर उसे २ प्रहर चीतामूल के क्वाथ में घोटकर आधी २ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१—१ गोली । हींग, सोठ, मिर्च, पीपल और अदरक के रस के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन कराने से मृतप्रायः काय सन्निपात रोगी भी स्वस्थ हो जाता है । इसमें दूध का पथ्य दे ।

सं. वि.—यह औषध उष्ण, तीक्ष्ण होने से भयङ्कर वातनाशक है अतः वातोल्वण तथा कफोल्वण सन्निपात मे, जहां रोगी तन्द्रा, मूर्च्छा अथवा आक्षेपावस्था में हो वहां यह औषध अच्छा काम करती है । शरीर क्षीणता के कारण दोषो के प्रकोप से होनेवाले सन्निपात मे इसकी क्रिया शरीर पोषक होती है ।

मेहमुद्गर रस [भा. भै. र. ५६७७]
(मेहमुद्गर वटिका)

(ग. र.; भै. र.; रसे. सा. सं.; र. चं. । प्रमेह.; रसे. चि म. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रसौत, वायविडङ्ग, देवदारु, वेलगिरी, गोखरू, अनार, चिरायता, पीपलामूल, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा, आमला और निसोत का चूर्ण आधा २ कर्ष (प्रत्येक ७॥—७॥ मासे) और लोहभस्म सबके वरावर तथा शुद्ध गूगल ५ तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर तथा आवश्यक्तानुसार घी डालकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्रा.—१—१ गोली । जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से साध्यासाध्य २० प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगतज्वर, हलीमक, रक्तपित्त और कफजग्रहणी, आमदोष, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि रोग नष्ट होते है ।

सं. वि.—यह औषध वस्तिविकार नाशक, वस्तिशोथ नाशक, दोषानुलोमक, अन्त्रवात नाशक, मूत्रल तथा अपानवात दोष नाशक है ।

मेघनाद रस [भा भै र. ५६६९]
(यो. र., र. चं. । रेचका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिंगुल, सुहागे की खील, सेंधानमक, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा, आमला, द्राक्षा (मुनक्का), वायविडङ्ग, हींग, चोरक और अजमोद १—१ भाग तथा शुद्ध जमालगोटा सब से आधा लेकर सबको जम्वीरी निम्बु के रस मे घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१–१ गोली। गरम जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से विरेचन होकर आम और कृमि निकल जाते है।

यह रस उदररोग, पाण्डु, शोथ, शोथोदर, जलोदर, विषमज्वर और अन्य समस्त ज्वरों मे प्रयोग किया जाता है।

पथ्यः—दही–भात।

मेहान्तक रसायन [वै. सा. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वङ्गभस्म, नागभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तलोह भस्म, शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील और यशद भस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर उसमे अन्य औषधियो का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करे और निम्बु के रस मे खरल करके गोला बनाकर शराब सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। सम्पुट के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर औषध को निकालकर उसका सूक्ष्म चूर्ण करे और उसमे कपूर, जावित्री, केसर, तज, तमालपत्र, इलायची के दाने, नागकेसर, सोंठ और जायफल सबका सम मिश्रित चूर्ण औषध के बराबर लेकर औषध मे मिश्रित करें और इसे नीम के रस के साथ खरल करें। तैयार होंनेपर चूर्ण करके शीशी मे भरले।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। शर्करा और मक्खन के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है तथा इसको नित्य सेवन करनेवाला सैकडों स्त्रियों से रमण करने की शक्ति प्राप्त करता है।

सं. वि.—यह औष रक्तवर्द्धक, शोधक, दोषानुलोमक, रस, रक्त आदि धातुओ को बढानेवाली और पोपक है। इसके सेवन से उदर और वस्ति मे किसी भी कारण से उत्पन्न हुई दाह, शोथ, क्षोभ, क्लोम आदि विकृतियां शीघ्र नष्ट होती है तथा वीर्यग्रन्थि, वीर्यप्रणालियां और वीर्यकोष के तन्तुओं का पोपण होता है और वीर्य, बल, वर्ण आदि की वृद्धि होती है।

मेहभैरव रस [भा. भै. र. ५६७६]
(र. रा. सु. । प्रमेह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग (मीठा विष), लोहभस्म, जावित्री, जायफल, समन्दरसोख, अफीम, खुरासानी अजवायन, चीता और लौग समान भाग तथा अभ्रकभस्म सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर सबको चीतामूल के क्वाथ की ७ भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रमेह, अर्श, ग्रहणी, शोथ, पाण्डु और शुक्रक्षय का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, शोधक, रक्तवर्द्धक, उदरकलाशोथ नाशक, वस्तिदोष नाशक, आक्षेपनाशक, दुर्गन्ध नाशक और वीर्य स्तम्भक है।

आम और कफ तथा वायु के अवरोध के कारण अन्त्रों मे शिथिलता, संकोच और जडता आ जाती है, इन्ही के कारण वात-कफज प्रमेहो का अधिकतर जन्म होता है। यह औषध वातानुलोमक, आमशोषक और कफपाचक है, अत जहां यह प्रवाहिका, अतिसार और संग्रहणी में उपयोगी है वहां वात-कफज प्रमेहो में भी इसका इतना ही मूल्य है। अफीम, विष, लोह और चीतामूल के योग से यह वस्ति पोषक, वस्त्याक्षेप नाशक तथा वस्तिशोथ नाशक है। बहुमूत्र मे यह बहुत गुणकारी है।

यकृत्प्लीहारि लोह [भा. भै. र. ५८२३]

(भै. र.; धन्व. । प्लीहयकृद्रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रक भस्म १-१ भाग, ताम्रभस्म २ भाग तथा शुद्ध मनसिल, हल्दीका चूर्ण, शुद्ध जमालगोटा, सुहागे की खील और शिलाजीत १-१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर सबको उसमें मिलाकर उसे दन्तिमूल, निसोत, चीता, संभाल्ह, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), अदरक और भांगरे के रस की पृथक पृथक १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पुरानी प्लीहा, यकृत, ८ प्रकार के उदर रोग, पाण्डु, कामला, शोथ, हलीमक, मन्दाग्नि और अरूचि का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध रेचक है। शोथ, आम, शूल, दाह, जडता, ग्रन्थिशोथ आदि रोगों का नाश करती है। वातनाडियों का पोषण करती है तथा दुष्ट पित्त की अभिवृद्धि के कारण होनेवाले उदर विकारों को मिटाती है। इसका सेवन करते भारी पदार्थ खाने अहितकर है।

यक्ष्मान्तक लौह [भा. भै. र. ५८२९]

(भै. र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रास्ना, तालीसपत्र, कपूर, मण्डूकपर्णी, मनसिल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीतामूल इनका चूर्ण १-१ भाग तथा लोहभस्म सबके बराबर लें तदनन्तर सबको एकत्र खरल करके रक्खें।

मात्राः—२-२ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वैद्यो से परित्यक्त और सर्व उपद्रव युक्त क्षय का भी नाश हो जाता है तथा यह रस कास, स्वरभङ्ग, क्षयकास और क्षतक्षय को भी नष्ट करता है और इसके सेवन से बल, वर्ण, अग्नि और पुष्टिकी वृद्धि होती है।

यक्ष्मारि लौह [भा. भै. र. ५८३०]

(भै. र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णमाक्षिकभस्म, वायविडङ्ग का चूर्ण, शिलाजीत, लौहभस्म और हर्र का चूर्ण तथा शहद और घी समान भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर सेवन करें।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रबल यक्ष्मा भी नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—आहार-विहार के दोषों के कारण शरीर मे सतत ऊष्मा की वृद्धि रहने से धीरे २ रसादि धातुओं मे क्षीणता आकर यक्ष्मारोग की उत्पत्ति हो जाती है। यह औषध इस प्रकार के दुष्ट ऊष्मा का नाश करती है, रसादि धातुओं का पोषण करती है तथा शरीर में सौम्यता उत्पन्न करती है। यह सौम्यगुण विशिष्ट औषध पोषक, शरीरवर्द्धक, कान्तिवर्द्धक, धातुवर्द्धक और शक्तिवर्द्धक है।

योगराज रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिफला, त्रिकटु, चित्रकमूल, वायविडङ्ग प्रत्येक ३-३ भाग, शुद्ध शिलाजीत, रौप्यमाक्षिकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म प्रत्येक ५-५ भाग और मिश्री ८ भाग लेकर, सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को एकत्र मिलाकर, मधु मिश्रीत करके लोहपात्र मे भरकर ६-७ दिन तक अनाज के ढेरमे दाबकर रक्खे। फिर निकालकर प्रयोग में लावे।

मात्राः—१/४ तोले से १ तोले तक। चाटकर ऊपर से दूध पीये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पाण्डु, कामला, विष, कास, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि, अर्श और अपस्मार नष्ट होते है तथा यह औषध रसायन है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, दोषानुलोमक, कृमिघ्न, दीपक, मूत्रल, प्रमेह नाशक, रक्तवर्द्धक, रक्तशोधक, कोष्ठबद्धता नाशक और शरीर पोषक है।

दुष्ट खाद्य द्वारा उत्पन्न हुये अन्त्र के वात-पित्तज विकार इसके प्रयोग से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। आमाशय, ग्रहणी और पक्काशय आदि मे होनेवाले व्रण, शोष आदि के लिये

यह सुन्दर औषध है। क्योंकि यह व्रणनाशक, रक्तशोधक और प्रशस्त रक्तवर्द्धक है अतः इसके सेवन से कुष्ठ आदि विकारों का नाश होता है।

यदि इसे दीर्घकाल तक सेवन करें तो यह रासायनिक क्रियाद्वारा बल, मेधा, आयु आदि बढाकर मनुष्य को सुन्दर और स्वस्थ बनाती है।

योगेश्वर रस [भा. भै. र. ५८४१]

(रसे. सा. सं.; र. रा. सुं. । प्रमेह.; रसे. चिं. म. अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, सीसाभस्म, कौडी भस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म १–१ भाग तथा छोटी इलायची, तेजपात, नागरमोथा, वायविडङ्ग, नागकेसर, रेणुका, आमला और पीपलामूल इनका चूर्ण २–२ भाग लें सबको १ दिन आमले के रसमे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह, बहुमूत्र, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, व्रण, अर्श और भगन्दर का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध अम्ल प्रधान होने से वायु नाशक है। वस्तिगत विकारों को दूर करती है। पाचक, अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक, अन्त्रशोथ, व्रणक्षोभ, शैथिल्य, वात–कफ दाह तथा मेदनाशक है। इसके सेवन से वस्तिविकार, मेद, कफ और अग्निमान्द्य द्वारा होनेवाले रोगों का नाश होता है। यह अम्लरस के अभाव से होनेवाले मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोगों में विशेष लाभप्रद है।

योगेन्द्र रस [भा. भै. र. ५८४०]

(धन्वं. । वातव्याधि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर २ भाग तथा स्वर्णभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म और वङ्गभस्म १–१ भाग ले, सबको १ दिन पर्यन्त घृतकुमारी के रस में घोटकर गोला बनावे और उसे (अरण्ड के पत्तो में लपेटकर) अनाज के ढेर में दबादे एवं ३ दिन पश्चात् निकालकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— यह योगवाही रस है और अनुपान भेद से समस्त रोगों को नष्ट करता है।

इसके सेवन से वातजरोग, पित्तजरोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, भगन्दर, अर्श, उन्माद, मूर्च्छा,यक्ष्मा, पक्षाघात, इन्द्रिय नाश, शूल और अम्लपित्त का नाश होता है।

इसे त्रिफला के क्वाथ, वंशलोचन और मिश्री के साथ सेवन करने से रोगी "कामदेव" के समान दीप्तिमान् हो जाता है। कृश पुरुषो को इसके सेवन काल मे रात्रि में गोदुग्ध पीना चाहिये। यह "योगेन्द्र रस" "कृष्णात्रेय" द्वारा निर्मित है।

सं. वि.—यह औषध आग्नेय गुण विशिष्ट होने के कारण वात द्वारा होनेवाले सभी रोगो को नाश करती है। वस्ति वात-प्रधान स्थान है। वस्तिगत मूत्राघात, बहुमूत्र, भगन्दर, अर्श आदि रोग इसके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं तथा यह औषध शरीरपोषक और अग्निवर्द्धक होने के कारण सर्वेन्द्रियो तथा वातनाडियो का पोषण करती है, जिससे इन्द्रियो की जडता, वातनाडियो की शिथिलता, धमनियो की निष्क्रियता और सर्वाङ्ग शून्यता नष्ट होती है। रक्तवर्द्धक, कान्तिवर्द्धक और वीर्यवर्द्धक तथा श्लेष्मकला पोषक होने के कारण यह अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, यक्ष्मा, पक्षाघात और इन्द्रियनाश आदि का नाश करती है। वातानुलोमक होनेके कारण यह शूल, और अग्निवर्द्धक होने से यह अम्लपित्त का नाश करती है। क्षीणकाय रोगियों के लिये यह श्रेष्ठ औषध है।

रक्तपित्त-कुल-कण्डन रस [भा. भै. र. ६०२७]

(रक्तपित्तकुठारो रसः)

(र. का. धे.; बृ. नि. र.; र. रा. सु.; यो. र.; र. चं. । रक्तपित्ता.; बृ. यो. त. । त. ७६; यो. त. । त. २३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवाल (मूंगा) भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सीसाभस्म और वङ्गभस्म १-१ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर चन्दन, कमल, मालिती की कलियां, वासे के पत्ते, धनिया, गजपीपल, सतावर, सेभल की छाल और वड की दाढी इनके क्वाथ या स्वरस तथा घी की पृथक पृथक १-१ भावना देकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—१-१ रत्ती। शहद और वासे के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस रक्तपित्त का नाश करता है। रक्तपित्त के लिये इससे उत्तम अन्य औषध नहीं है।

सं. वि.—शोधक, रोधक, रोपक, शीतवर्य, दाहनाशक और व्रणनाशक गुणों से यह औषध दोनों प्रकार के रक्तपित्त के लिये लाभकारी है। ऊर्द्धगत रक्तपित्त में नासिका, कर्ण, मुख आदि से उरः क्षत के कारण, रक्तचाप की वृद्धि के कारण अथवा यकृत् आदि में चोट के कारण अथवा फुफ्फुस मे क्षत के कारण कही से भी रक्त पडता हो, तो इसके सेवन से वह बन्द हो जाता है। इसी प्रकार अधोगत रक्तपित्त, अन्त्रक्षत, मूत्राशय क्षय, अर्श आदि के कारण गुदा या मूत्रमार्ग से अथवा जननेन्द्रिय से रक्त पडता हो तो इसके सेवन से बन्द हो जाता है।

यह रस शीत क्रिया द्वारा ही रक्त बन्द करता है ऐसी बात नही है क्योकि यह पारद, गन्धक, वङ्ग, नाग, स्वर्णमाक्षिक आदि पदार्थो का योग है और यह योग संघातक, रोधक और रोपक है अतः इसकी क्रिया ही रक्त रोधक है, यह सिद्ध होता है और यह क्रिया किसी भी अवयव में किसी भी प्रकार की अवांच्छनीय विकृति नहीं होने देती।

रत्नगर्भपोटली रस [भा. भै. र. ६०४१]

(भै. र.; र चं.; र. र.; र. रा. सुं, रसे. सा. सं.। राजयक्ष्मा; र. का. धे.। क्षय.; वृ. यो. त.। त. ७६; रसे. चि. म.। अ. ९; यो. त.। त. २७; वृ. नि. र.। क्षय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, हीराभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, सीसाभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, प्रवालभस्म, शंखभस्म और शुद्ध तूतिया (तुत्थ) समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर ७ दिन चीते के क्वाथ में घोटे और फिर उसे सुखाकर बडी २ कौडियों मे भरदे एव सुहागे को आक के दूध मे घोटकर उससे उन कौडियों का मुख बन्द करदे, तदनन्तर उनको शराब सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंकदे। पुट के स्वाङ्गशीतल होने पर उसमे से औषध को निकाल ले और फिर उसे (कौडी सहित) पीसलें और फिर उसे संभालू के रसकी ७ भावना, अदरक के रस की ७ भावना और चीते के क्वाथ की २१ भावना देकर सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ रत्ती। पीपल और कालीमिर्च के चूर्ण तथा घी और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से साध्यासाध्य हर प्रकार का यक्ष्मा रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यह रस अष्ट महारोग, कास, श्वास, ज्वर और अतिसार को भी नष्ठ करता है। यह रस योगवाही है।

सं. वि.—यथोचित पोषण न मिलने से शरीरो मे वायुदोष प्रकुपित होता है और अपने रूक्ष गुण द्वारा वायु शरीर तन्तुओ का संकोच करके उनमे संकीर्णता उत्पन्न कर देता है। जो स्थान शीघ्र विकृत हो सकते है ऐसे कोमल स्थानों पर अथवा मर्म स्थानों पर दुष्ट वायु की क्रिया अधिक होती है और प्रकुपित वात तत्स्थानगत दोष विशेष के साथ मिश्रित होकर वहां पर व्रण, शोथ, अवसाद, छिद्र आदि अनेक प्रकार के यथास्थान विकार उत्पन्न करता है। ये विकार त्रिदोषज होते है और क्षीण शरीरो मे होने से अथवा क्षीणता उत्पादक होने से क्षय के नाम से पुकारे जाते है। इनके साथ ज्वर आदि अन्य अनेक लक्षण भी होते है।

पोषणाभाव से होनेवाले इन रोगो मे पुष्टि ही सर्वश्रेष्ठ औषध है। "रत्नगर्भ पोटली रस" हीरा, रससिन्दुर, स्वर्ण, चांदी, ताम्र, सीसा, मोती आदि अनेक श्रेष्ठ, सौम्य, स्निग्ध और

पुष्टिप्रद द्रव्यों के योग से तथा प्रवाल, शंख, कौड़ी, चित्रकमूल, अदरक, संभाल्‌ आदि वात नाशक द्रव्यो के योगसे और तुत्थ जैसे कीटाणुनाशक योग से बना हुवा है, अतः शरीर का पोषण करने के अतिरिक्त यह दोषों का अनुलोमन और संशमन भी करता है। ज्वर आदि विकारों का नाश करता है और दोषो के सघात से होनेवाले कीटाणुओं का नाश करता है। यह क्षयनाशक श्रेष्ठ औषध है। इसका सेवन करते घी, दूध आदि पोषक द्रव्यों का सेवन आवश्यक है।

रत्नगिरि रस [भा. भै. र. ६०४२]

(र. म. । अ. ६; भै. र.; र. का धे.; र. रा. सु. । ज्वर.; रसे. चिं. म. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और स्वर्णभस्म ४–४ भाग, लोहभस्म २ भाग तथा वैक्रान्तभस्म १ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियों को मिलाकर सबको भांगरे के रसमे घोटकर पर्पटी के समान पकावे। (घृतलिप्त करछी मे मन्दाग्नि पर पिघलाकर, गाय के गोबर पर बिछे हुये केले के पत्ते पर डालदे और उसके ऊपर दूसरा केले का पत्ता रखकर उसे गोबर से दबा दें। शीतल होनेपर निकाल ले।) तदनन्तर उसे बारीक करके सहजने के रस, वासे के रस, सभालू के रस, चीते के क्वाथ, भांगरे और गोरखमुण्डी के रस तथा द्राक्षा, गिलोय, जयन्ती, अगस्ति, ब्राह्मी, पटोल और घृतकुमारी के रस की पृथक पृथक ३–३ भावना देकर शराव सम्पुट मे बन्द करे और फिर उस पुटको वालुका यन्त्र मे रखकर यन्त्र का मुख बन्द करदे तथा लघुपुट मे पकावे, शीतल होने पर उसमे से औषध को निकालकर पीसकर सुरक्षित रक्खे।
मात्रा:—१–१ रत्ती। पीपल और धनिये के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस योगवाही है। इसके सेवन से एक प्रहर मे नवीन ज्वर नष्ट हो जाता है।

सं. नि.—यह औषध पोषक, दोषनाशक, आमशोषक, पाचक, अग्निवर्द्धक, दाहनाशक और शक्तिप्रद है। इसके सेवन से नवीनज्वर शीघ्र मिट जाता है।

रत्नगिरि रस [र रा. सुं.]

इसमें और उपरोक्त रत्नगिरि रस में जहां मात्रा, शास्त्रोक्त गुणधर्म औ बनावट मे सम्पूर्ण समानता है वहां केवल अन्तर इतना है कि उपर्युक्त "रत्नगिरि रस मे स्वर्णभस्म का मिश्रण है और इसमें स्वर्णभस्म के स्थान में उतने ही प्रमाण मे स्वर्णमाक्षिकभस्म डाली जाती है।

रत्नभागोत्तर रस [भा. भै. र. ६०४४]

(र. र. स. । उ. ख. अ. २२, र. चं. । स्त्रीरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हीराभस्म ५ रत्ती, पन्नाभस्म ६ रत्ती, माणिक्यभस्म ७

रत्ती, पुखराजभस्म ८ रत्ती, नीलमभस्म ९ रत्ती, वैडूर्यमणिभस्म १० रत्ती, गोमेदमणिभस्म ११ रत्ती, मोतीभस्म १२ रत्ती और प्रवालभस्म १३ रत्ती तथा वैक्रान्तभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म और विमल (रौप्यमाक्षिक) भस्म ८१-८१ मासे (प्रत्येक ६॥। तोले) और समान भाग पारद और गन्धक की बनी हुई कज्जली सबसे ३ गुनी (६३ तोले १ मासे ३ रत्ती) लेकर सबको एकत्र मिलाकर २ दिन बकरी के दूधमे घोटें और फिर उसकी यथाविधि पर्पटी बनावें। (घृतलिप्त लोहपात्र मे औषध को पिघलाकर गोबर बिछे हुये केले के पत्ते पर फैलावें और उसके ऊपर दूसरा कदलीपत्र रखकर उसको गोबर से दबादें। स्वाङ्गशीतल होने पर उसे निकालने के बाद पीसलें।)

तदनन्तर इसे बांझ ककोडे की जड के क्वाथ मे खरल करे और शराव सम्पुट मे बन्द करके २० अरने उपलों की अग्नि मे पकावें। इसी भान्ति १६ पुट दे।

मात्राः—१-१ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस वन्ध्यत्व रोग को नष्ट करने के लिये अत्यन्त प्रभावशाली औषध है। यह रस पाचक, दीपक, रुचिवर्द्धक, वृष्य, गर्भिणीरोग नाशक, पाण्डु और योनिदोष नाशक तथा कामशक्ति और बुद्धिवर्द्धक है।

सं. चि.—वातप्रधान स्थान में स्थित गर्भाशय मे अधिकतर वात विकारों की उत्पत्ति होती है; जैसे कि गर्भाशय का स्थानभ्रष्ट होना, शुष्क हो जाना, उर्द्ववर्तित होना, संकुचित होना अथवा डिम्ब ग्रन्थियों का ह्रास, शोष, संकोच, शोथ आदि। "रत्नभागोत्तर रस" रत्नों से परिपूर्ण तथा अन्य, पोषक, शोधक, शक्तिवर्द्धक, शोथनाशक द्रव्यो के योग से बना हुवा है। यह गर्भाशय की श्लेष्म कलाओ का पोषण करता है। वायु के अन्य दोषों के कारण उत्पन्न हुये गर्भाशय के रोगो का भी नाश करता है। डिम्ब ग्रन्थियो के शोथ, दाह आदि विकारों को दूर करके शोणित का शोधन करता है, अत यह रस जरायु पोषक और स्त्रियो के गर्भाशय के विकारों को दूर करनेवाला है।

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त वस्तिस्थानगत अवयवो का पोषक होने के कारण यह रस वीर्यप्रणालिकाओ और वीर्यग्रन्थिओं का पोषण करता है। इस प्रकार यह कामशक्ति की जागृति उत्पन्न करता है।

वीर्य सर्व शारीरिक धातुओं मे श्रेष्ठ है। शरीर मे इसकी जितनी अधिकता रहेगी उतना ही शरीर शक्तिशाली और दिव्य रहेगा। शक्ति वृद्धि से वातनाडियों का पोषण होता है, उनमे स्थिरता आती है। स्थिर और सशक्त नाडियों की स्थिति से बुद्धि की वृद्धि होती है।

रस पर्पटी [भा. भै. र. ६०६४]
(र. चं., यो. र. । ग्रहण्य)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली बनाकर उसे घृतलिप्त लोहपात्र मे पिघलावे और गोवर विछे हुये केले के पत्ते पर फैलाकर उस पर दूसरा कदलीपत्र रखकर उसे गोवर से दवा दे। स्वाङ्गशीतल होनेपर निकाल लें।

मात्राः—१–१ रत्ती। मधु से साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका पथ्यपालन करने के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

सं. वि.—पर्पटियों का स्थान संग्रहणी, अतिसार, यकृदोदर, प्लीहोदर आदि उदर रोगों के लिये बहुत ऊंचा है। यह पर्पटी, मूत्रल, शोथघ्न, आमशोषक, दोषानुलोमक, वातनाशक, शक्तिवर्द्धक, अन्त्र–पाचक–रसोत्पादक, उदर अवयव पोषक आदि अनेक गुणों युक्त है। इसके सेवन काल में सभी वातकारक पदार्थों का वर्जन करना चाहिये।

इसके सेवन से आम द्वारा होनेवाले उदरविकार मिटते है। संग्रहणी, अतिसार और प्रवाहिका के लिये यह श्रेष्ठ औषध है।

रसेन्द्र गुटिका (बृहद्) [भा. भै. र. ६१२४]
(र. र. । कासा.; रसे. सा. सं.; र. रा. सुं., धन्वं. । कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध वच्छनाग, सुहागा, जवाखार, सज्जीखार, धतूर क बीज और कालीमिर्च का चूर्ण १।–१। तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर थोडी देर खरल करे। तदनन्तर उसमे जयन्ती, चीता, मानकन्द, घण्टकार्ण, ब्राह्मी (मण्डूकपर्णी), भांग, भांगरा, काला भांगरा, अपामार्ग (चिरचटा) और संभालू इनमे से प्रत्येक का स्वरस या क्वाथ १।–१। तोला मिलाकर खरल करें।

मात्राः—आधी रत्ती से दो रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ५ प्रकार की खांसी, भयङ्कर श्वास, कफ–वातज रोग तथा आनाह, मलावरोध, अग्निमान्द्य, अरुचि, उदररोग, पाण्डु और कामला का नाश होता है तथा बल–वर्ण की वृद्धि देती है। यह गुटिका रसायनी और वृष्या भी है।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, अग्निवर्द्धक, वातनाशक, दोषानुलोमक, आक्षेप-नाशक, शक्तिवर्द्धक और वात–कफनाशक है। इसके सेवन से श्वास, कास मे होनेवाले आक्षेपों का नाशक होता है और कफ जल्दी छूट जाता है। वायु का अनुलोमन होता है और उदर के दोष दूर हो जाते है।

रसराज [भा. भै. र. ६०८४]

(भै. र. । प्लीहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गन्धक योग से बनी हुई ताम्रभस्म २ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग तथा शुद्ध पारद १ भाग ले। सबको एकत्र मिलाकर जिमिकन्द के रस में खरल करे और फिर उसे शराव सम्पुट में बन्द करके लघुपुट मे फूंक दे। तदनन्तर पुट के स्वाङ्गशीतल होने पर उस में से औषध को निकालकर पीस लें।

मात्राः—आधी से २ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्लीहा, गुल्म, यकृत्, शूल और ज्वर नष्ट होते है तथा कान्ति और पुष्टि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह रस दीपन, पाचन, कृमिनाशक, सारक, लेखन, पित्त-कफ रोगो को नाश करनेवाला, ज्वरनाशक, व्रणरोपक और शूलनाशक है। इसके सेवन से यकृत्, शूल, प्लीहा आदि रोगों का नाश होता है।

रसराक्षस रस [र. यो. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, त्रिकटु, कालीमिर्चे, संचल नमक, प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को उसमे मिश्रित करके उसे कांचकुप्पी में भरकर बालुका-यन्त्र में ८ याम तक पकावे। जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय तो औषध को निकालकर, पीसकर उसमें उसके समान यवक्षार मिश्रित करे और भूमि आंवलो के रस की भावना देकर शुष्क होने पर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। चित्रकमूल के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सतत सेवन करने से अग्नि की वृद्धि होती है और परिमाणशूल नष्ट होता है।

रक्तारि रस [भा, भै. र. ६०३४]

(र. स. क. । उल्लास ४, र. का. धे. । व्रणा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और ताम्रभस्म ३ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके कज्जली बनावे और फिर उसे २१ दिन तक अदरक के रस मे घोटकर गोला बनाकर सुखालें तदनन्तर उसे अन्धमूषा मे बन्द करके गजपुट में पकावे।

मात्रा तथा प्रयोग विधान—१-१ रत्ती। सोंठ के चूर्ण और घी के साथ मिलाकर खावे और खांड का ठण्डा शरबत पीवें तथा अन्य प्रकार की शीत क्रियायें भी करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से स्थूल पुरुष कृश और कृश पुरुष स्थूल हो जाता है तथा अग्नि दीप्त होती है।

यह रस व्रण, नाडीव्रण और अभिघात से बहनेवाले त्रिदोषज रक्त को बन्द करता है और यकृत् तथा प्लीहागत रक्तस्राव को शान्त करता है एवं कुष्ठादि रोगों को उत्पन्न करनेवाले रक्तदोषों को नष्ट करके रक्त को शुद्ध रखता है।

सं. वि.—कज्जली और ताम्र के योग से बना हुवा यह रस दीपन, कृमिहर, रक्तशोधक, दोष पाचक, स्थौल्यनाशक, पाण्डुनाशक, व्रणरोपक, विषनाशक और रक्तावरोधक है।

रसामृत रस [भा. भै. र. ६११८]

(र. चं.; र. रा. सुं. । रक्तपित्ता.; धन्वं, रसे. सा. सं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म, शिलाजीत, सफेद चन्दन, गिलोय, मुनक्का, महुवे के फूल, धनिया, कुडे की छाल, इन्द्रजौ, धाय के फूल, नीम के पत्ते और मुलैठी १-१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे शिलाजीत तथा अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको भलीभान्ति मर्दन करके रक्खे।

मात्राः—४-४ रत्ती। मधु और खांड के साथ और ऊपर से धारोष्ण दूध पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे प्रातःकाल उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करने से पित्त विकार, अम्लपित्त और विशेषतः रक्तपित्त तथा सब प्रकार के ज्वरो का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस शीतवीर्य और मधुर अनुपान के योग से मधुर विपाक होने के कारण पित्तशामक है। पित्त द्वारा होनवाले उदर के अन्य विकारो को भी शान्त करता है। शीतल होने से ज्वरनाशक और रक्तावरोधक है। पित्तजन्य व्याधियो पर इसका प्रयोग सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

रक्तपित्तान्तक लौह [भा भै. र. ६०२९]

(भै. र. । रक्तपित्ता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—आमले और पीपल का चूर्ण १-१ भाग तथा लोहभस्म सबके बराबर लेकर सबको एकत्र मिलाकर रक्खे।

मात्राः—२ से ३ रत्ती। मिश्री मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रक्तपित्त और अम्लपित्तका नाश होता है।

सं. वि.:–आमला:–अनुलोमक, शोधक, रसायन, कषाय, अम्ल, मधुर, शीतल, लघु, दाह, पित्त, वमि, मेह, शोथनाशक; अम्ल होने से वायुनाशक, मधुर होने से पित्तनाशक और रूक्ष होने से कफनाशक है।

पिप्पली:—ज्वरघ्नी, वृष्या, तिक्तोष्णा, कटु तिक्ता, दीपनी; मारुत, श्वास, कास, श्लेष्म क्षयघ्नी होती है।

लोहभस्म:—रूक्ष, सुमधुर, पाक में तिक्त, वीर्यमें शीत, लेखन, नेत्र हितकर, बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, उदररोग नाशक, कफपित नाशक, वर्णकारक और मेधावर्द्धक होती है।

उपरोक्त द्रव्यों के गुणों के अनुसार यह औषध षड्रस युक्त है और मिश्री के योग द्वारा मधुर रस प्रधान बन जाती है अतः यह अम्लपित्त और रक्तपित्त को शान्त करनेवाली औषध है।

रक्तपित्तान्तक रस [भा. भै. र. ६०३०]

(धन्वं.; र. चं.; भै. र. । रक्तपित्ता., र. रा. सुं.; रसे. सा. सं. । रक्तपित्ता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, मुण्डलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध पारद, हरतालभस्म (या शुद्ध हरताल) और शुद्ध गन्धक समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर सबको मुलैठी, द्राक्षा (मुनक्का) और गिलोय के स्वरस या क्वाथ में पृथक पृथक १–१ दिन घोटकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा:—२–२ रत्ती। मिश्री और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भयङ्कर रक्तपित्त शीघ्र ही नष्ट होता है। यह ज्वर, दाह, क्षत, क्षीणता, तृष्णा, शोष और अरुचि को भी नष्ट करता है।

सं. वि.—इस औषध के सभी योग शीतवीर्य, रक्तरोधक और दाहनाशक है। सम्पूर्ण योग मधुर विपाक होने से शीत क्रिया करता है, इससे तन्तुओ मे से स्रवित रक्त शीघ्र बन्द होता है और स्राव स्थान की त्वचा या कला आदि शीघ्र संयुक्त होकर एक हो जाती है। इसके सेवन से किसी प्रकार के रक्तदोषो की उत्पत्ति नही होने पाती, ना ही शोथ होता है और अगर हो भी जाता है तो पाकावस्था को प्राप्त हुए विना ही स्वस्थ हो जाता है। यह औषध ऊर्ध्व और अधोगत दोनो ही प्रकार के रक्तपित्तो मे लाभप्रद है। इसके सेवन से मुलैठी, द्राक्षा आदि के योग के कारण कोष्ठ साफ रहता है और दोषों का अनुलोमन होता है।

रसाभ्रमण्डूर [भा. भै. र. ६११४]

(भै. र. । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म और शुद्ध पारद २॥–२॥

तोले, मण्डूरभस्म १० तोले, हर्र का चूर्ण १० तोले, शिलाजीत १। तोला और कान्तलोह भस्म ७॥ मासे ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियों को मिलाकर उसमे २–२ सेर काले और सफेद भांगरे तथा संभालू, मानकन्द और अदरक का रस डालकर धूप मे रख दे। रस के सूख जाने पर उसमे १।–१। तोला सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा आमला, चव और नागरमोथे का चूर्ण मिलाकर खरल करे।

मात्राः—१–१ रत्ती। मधु और घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सर्वदोपज एकाङ्ग तथा सर्वाङ्गशोथ, श्वास, कास, तृषा, मोह और छर्दी आदि उपद्रव युक्त शोथ तथा अम्लपित्त, ८ प्रकार का शूल, कामला, पाण्डु, कफ, कुष्ठ, अरुचि, ज्वर, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, ग्रहणीविकार और प्रवाहिका का नाश होता है तथा यह वातानुलोमक और अग्निवर्द्धक है।

सं. वि.—एकाङ्गशोथ यथा मुख या पैरो पर शोथ हो जाना, मुख पर शोथ अधिकतर वृक्क के विकारो से अथवा वस्ति के विकारो से होता है। पैरों पर शोथ हृदय के विकार से और फुफ्फुस के विकार से होता है। कटि पर शोथ यकृत् के विकार से होता है।

सर्वाङ्गशोथ या तो वृक्क सन्यास, हृदयवृद्धि, पुरातन कष्टप्रद श्वास या हृद्दौर्वल्य से रक्त परिभ्रमणाभाव या रक्ताभाव आदि रोगो की परिवर्द्धित अवस्था में या जलोदरादि उदर के भयङ्कर विकारो के कारण अथवा शरीर पर विषो के नाशक प्रभाव द्वारा होता है।

यह औषध शोथघ्न है, अत: देखना यह है कि यह किस २ प्रकार के शोथ को मिटाती है।

गन्धकः—रसायन, मधुर, पाक में कटु और ऊष्ण है। कण्डू, कुष्ठ, विसर्प, दद्रु आदि अनेक रोगो का नाश करती है। आम का शोषण करती है और विष नाशक है।

अभ्रकभस्मः—वात, पित्त और क्षय का नाश करनेवाली, बुद्धिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक और आयुवर्द्धक है तथा जिस योग के साथ दी जाय वैसी ही क्रिया करती है।

पारदः—यह असाध्य रोग में भी श्रेष्ठ माना गया है तथा द्रव्यान्तर में मिश्रित होकर सर्व रोग नाशक है। बल और आयु को देनेवाला है। यह रोगों से पार उतारता है इस लिये इसको "पारद" कहते है।

मण्डूरः—वृष्य, शीतवीर्य, रुचिकारक, दीपक, पित्तशामक, रक्तवर्द्धक, पाण्डु, कामला, शोथ, शोष, हलीमक, प्लीहा और यकृत्विकारनाशक है।

शिलाजीतः—तिक्त, विपाक मे कटु, मूत्रल, रसायन, बल्य, शोथ नाशक, पाण्डु, क्षय, श्वास, प्लीहा, ज्वर, दाह, अपस्मार, स्थौल्य, प्रमेह, मधुमेह, गुल्म, वातरक्त आदि रोगों का नाश करनेवाली है।

हैड, अदरक, भांगरा, त्रिकटु, नागरमोथा आदि वातनाशक, वातानुलोमक, दीपक, मूत्रल, और शोथनाशक है ।

उपरोक्त द्रव्यों के गुणो को देखें तो यह औषध मूत्रल, वातानुलोमक, यकृत्–प्लीहा विकार नाशक, आमनाशक और रक्तवर्द्धक है, अतः उदर और वस्तिदोषजन्य शोथ को नाश करती है, यह स्वाभाविक प्रतीत होता है। वृक्क रोग, यकृत्वृद्धि, वातोदर, प्लीहोदर आदि विकारो से होनेवाले शोथो मे यह विशेष लाभप्रद है ।

रसशार्दूल रस [भा. भै. र. ६०९२]

(रसे. सा. सं., र. रा. सुं. । सूतिका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, राजपट्ट (कान्त-पाषाण–चुम्बक) भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, कालीमिर्च का चूर्ण, जवाखार, हरताल (शुद्ध या भस्म), हर्र, बहेडा, आमला और शुद्ध वच्छनाग (मीठा विष) समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको गूमा और पान के रस की पृथक् पृथक ७–७ भावना देकर (शास्त्रोक्त ६–६ रत्ती) २–२ रत्ती की गोलियां बनालें ।

मात्राः—१–१ गोली। पान के रस में ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सूतिका को होनेवाले ज्वर, खांसी, अङ्गसंग्रह (शरीर का जकडा जाना), सूतिका रोग और जरायुशोथो का नाश होता है ।

स. वि.—यह औषध आक्षेपघ्न, हृद्य, रक्तवर्द्धक, वातनाशक, मूत्रल और दोषानुलोमक है, अतः वस्तिगत विकारो को दूर करने में सर्वथा समर्थ है। कटि, वंक्षण, नितम्बादि मे स्थित वायु को दूर करती है और शरीर को दोष रहित करके अग्निवर्द्धन करती है तथा शक्तिप्रदान करती है ।

रसपीपरी रस [आ. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान---शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोठ, मिर्च, पीपल, अतिविष, काकडासिंगी, नागरमोथा, मोचरस, जायफल, सुहागे की खील और छोटी इलायची। प्रत्येक औषध समान भाग ले। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर अन्य औषधियो का सूक्ष्म चूर्ण कज्जली मे मिलावे। तैयार होने पर उसमें पारद के प्रमाण की १/४ भाग कस्तूरी मिलाकर भली प्रकार घोटें और जल के साथ खरल करके ३–३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। स्तन्य के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बालकों के प्रतिश्याय, ज्वर, अतिसार, कास, अशक्ति आदि नष्ट होते है। बच्चों के सब प्रकार के रोगों मे यह प्रयुक्त की जा सकती है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, वात-कफनाशक, ज्वर-दाहनाशक, संग्राही, शोधक और आध्मान नाशक है। इसके सेवन से बालकों के वातज, पित्तज और कफजरोग नष्ट होते है।

रस शेखर [भा. भै. र. ६०९४]

(भै. र. । उपदंशा.; धन्वं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती लेकर दोनो को लोहपात्र मे डालकर नीम के डंडे से थोडा थोडा तुलसी का रस डालते हुये घोटें। जब दोनो एक जीव हो जांय तो उसमे २ रत्ती शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) मिलाकर उपरोक्त विधिसे तुलसी का रस डाल डालकर नीम के डडे से घोटे। सब द्रव्यों के भलिभान्ति मिलजाने पर उसमे जावित्री, जायफल, पारसी अजवायन (खुरासानी अजवायन) और अकरकरे का बारीक चूर्ण ३२-३२ रत्ती मिलाकर पुनः तुलसी का रस डालकर नीम के डंडे से घोटे और अन्त मे सबसे २ गुना कत्था मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। पानी के साथ। इन्हे सायंकाल देना चाहिये।

अपथ्यः—नमक और खटाई से परहेज रखना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गलत्कुष्ठ, विस्फोटक, गर्दभिका और उपदंश के व्रण नष्ट होते है।

रसादि गुटिका [भा. भै. र. ६१०३]

(र. रा. सुं. । वातरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ भाग लेकर कज्जली बनावे और फिर उसमें १ भाग शुद्ध हरताल तथा १-१ भाग जायफल, जावित्री, भांग के बीज, लौग, अजवायन, तूतिया की भस्म, सोठ, मिर्च और पीपल इन सब का चूर्ण मिलाकर २-२ प्रहर पान के रस और सौसन (एक यूनानी औषध) की जड के रस या क्वाथ मे खरल करके (शास्त्रोक्त ८-८ रत्ती) ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। प्रातः सायं मधु और पानी मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म- इसके सेवन से पक्षाघात रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध जीर्ण रक्तनलिकाओ को शक्ति देनेवाली है। परिश्रान्त नाडियो को शक्ति प्रदान करनेवाली है। रक्त के दोष को दूर करनेवाली तथा अग्निवर्द्धक, वात-कफ नाशक, रक्तदोष नाशक, वीर्यवर्द्धक और रोचक है। इसके सेवन से वात-कफ द्वारा होनेवाले

विकारो का संशमन होता है और शरीर की रक्तवाहिनियां और वातनाडियां सशक्त होती है। इसका प्रयोग रक्तचाप की वृद्धि से होनेवाले पक्षाघात मे करना लाभप्रद होगा। वृद्धावस्था के कारण जहां शरीर की धीरे २ शक्ति क्षीण होती जाती है वहां इसके प्रयोग से नवता का आभास होता है।

राजशेखर वटी [भा. भै. र. ६१३८]

(र. का. धे. । पाण्डु; र. चिं. म. । स्त. ९.

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव में रससिन्दुर) १ भाग, शुद्ध वच्छनाग (मीठा विष) २ भाग और शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरताल, कुटकी का चूर्ण तथा सोठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण १—१ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। उसमें सब औषधियो को मिलाकर खरल करके २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निमान्द्य, अनेक प्रकार का ज्वर, समस्त पित्त विकार, पाण्डु, उदर वृद्धि, शूल, कफ, वायु और अनेक दुष्ट रोग नष्ट होते है तथा अग्नि और बल की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपघ्न, आमशोषक, रक्तशोधक, पाचक, अग्निवर्द्धक और दोषानुलोमक है।

राजमृगाङ्क रस [भा. भै. र. ६१३२]

(भै. र , रसे. सा. सं. । राजयक्ष्मा.; र. मं. । अ. ६.; र. का. धे.; र. र. । यक्ष्मा.; यो. र., वृ. नि. र ; वै. जी. । राजयक्ष्मा. । र. चिं. म. । स्तवक ११; र. चं.; धन्वं. । राजयक्ष्मा.; यो. त. । त. २७, यो. चिं. म. । अ. ७.; बृ. यो. त. । त. ७६.; रसें. चि. म. । अ. ९; र. प्र. सु. । अ. ८; र. र. स । उ. खं. अ. १४; शा. सं. । उ. खं. अ. १२.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म ३ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग तथा शुद्ध मनसिल, हरताल और गन्धक २—२ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर सब द्रव्यो को एकत्र खरल करे और कौडियों मे भरदे। फिर सुहागे को बकरी के दूध में घोटकर उससे कौडियों के मुख को बन्द करके उसे शराव सम्पुट मे बन्द करे और सुखाने के बाद गजपुट में फूंक दें।

मात्राः—१ से २ रत्ती। पीपल और कालीमिर्च का चूर्ण तथा घी और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वात, पित्त, कफ अथवा त्रिदोष द्वारा उत्पन्न हुआ क्षय नष्ट होता है।

सं. वि.—देश, काल, आहार और विहार सभी मे कुछ न कुछ दोष आजाने से मानव शनैः शनैः क्षीण होते चले जा रहे है। किन्ही को अनुलोम क्षय होता है और किन्ही को प्रतिलोम क्षय। अपने कारणो से प्रकुपित दोष, अशक्त और विकृत स्थान मे दूसरो के साथ मिलकर रोग उत्पादक बनते है और नाना विध विकार समूह की सृष्टि करते है।

क्षय रोग का मुख्य हेतु आवश्यकतानुसार शरीर को पोषण न मिलना है। तृप्त शरीर यथेच्छ क्रिया कर सकते है और फिर भी सशक्त रह सकते है। ऐसी परिस्थिति मे प्रकुपित दोषों को प्रकृतिस्थ करे, क्षीण शरीर को पुष्ट करे और विकार समुह का नाश करे इसी प्रकार की औषधि ही क्षयरोग नाशक होने मे समर्थ है।

"राजमृगाङ्क रस" शोधक, दोषानुलोमक, क्षयनाशक, वल, वर्ण और अग्निवर्द्धक तथा विष और कीटाणुनाशक है। इसके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है और ज्वर, दाह, क्षीणता, कास, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, शोष, हस्त-पाद-तल दाह, वक्षशूल, फुफ्फुसावर्ण शूल तथा अन्त्रगत वात आदि अनेक क्षीणता जन्य विकार नष्ट होते है और शरीर पुष्ट बनता है। क्षयरोग के लिये यह औषध श्रेष्ठ है।

राजवल्लभ रस [भा. भै. र. ६१३६]

(प्रदीपन रसः)

(र. रा. सुं; र. का. धे, र. सा. सं. । अजीर्णा.; रसे. चिं. म. । अ. ९; र. मं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और चीते का चूर्ण ५-५ मासे तथा चुल्हिका लवण (नौसादर) २॥ मासे लेकर सबको एकत्र पीसकर रक्खे।

मात्राः—४ से ८ रत्ती तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निमान्ध का नाशक होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, दीपक, वात-कफ नाशक, आमशोषक, मूत्रल और जठर शैथिल्य नाशक है। इसके सेवन से आमाशय में अधिक उत्पन्न हुये श्लेष्म का शोषण होता है और सर्वदा तृप्ति अनुभव करनेवाला मनुष्य भी भूख का अनुभव करता है। यह कण्ठशोधक और श्लेष्मनाशक है।

रामवाण रस [भा. भै. र. ६१४९.]

(भै र. । अग्निमान्द्या., वृ. नि. र । अजीर्णा., र. चं. । अग्निमान्द्या., धन्वं., रसे. चि. म. । अ. ९; र. का. धे. । अरोचका.; रसे. सा. सं, वै. र. । अजीर्णा, वृ. यो. त. । त. ७१.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध वच्छनाग (मीठा विष), लौंग का चूर्ण और शुद्ध गन्धक १-१ भाग, काली मिर्च का चूर्ण २ भाग और जायफल का चूर्ण आधा

भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों को मिलाकर सबको इमली के फलों के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्नि शीघ्र ही दीप्त होती है और संग्रहणी तथा आमवात का नाश होता है।

(यह "रामबाण रस" रामबाण के समान संग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण, आमवातरूपी खरदूषण और अग्निमान्द्यरूपी दशानन का नाश करनेवाला है।)

सं. वि.—मुखशोधक, आक्षेपनाशक, वातनाशक, दोषानुलोमक और अम्लप्रधान होने से यह रस वायु का नाश करते हुये अग्नि की वृद्धि करता है।

राजावर्त्त रस [भा. भै. र. ६१४२]

(र. र. स. । उ. खं. अ. १४, र. चं; र. रा. सु । मदात्यय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—राजावर्त्त की भस्म, पारदभस्म (या रससिन्दूर), ताम्र भस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके थोडे घी में मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। मधु, घी और खांड के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के मदात्यय रोग नष्ट होते है।

सं. वि.:—राजावर्त्तः—मृदु, शीतल, कटु, स्निग्ध, पित्तघ्न।

ताम्रभस्मः—मधुर, कषाय, तिक्त, विपाक मे कटु, शीतल, कफहर, पित्तहर, विबन्ध, शूल, पाण्डु, उदररोग और गुल्म नाशक।

स्वर्णमाक्षिकः-मधुर, तिक्त, वृष्य, रसायन, चक्षुष्य, बस्तिरोग नाशक, कण्ठ, पाण्डु, प्रमेह, विष और उदररोग नाशक तथा अर्श, शूल, कण्डू और त्रिदोष नाशक।

पारदः—योगवाही और सर्व रोगघ्न है।

संयोग का विहङ्गावलोकन करते हुये यह स्पष्ट होता है कि यह रस कटु तिक्त रस प्रधान है, अतः पित्त–कफनाशक है, क्यो कि कटु रस मुखशोधक, अग्निवर्द्धक, भुक्तशोषक, नासिका स्रावक, चक्षु विरेचक, इन्द्रियस्फुटिकर, अलसक, शोथ–उदर्द–अभिस्यन्द–स्नेह–स्वेद–क्लेद–मलनाशक, रोचक, कण्डूनाशक, व्रण–कृमिनाशक, मांस विलेखक, रक्तसंघात नाशक, ग्रन्थि नाशक, श्लेष्मनाशक, लघु, ऊष्ण और रूक्ष होता है।

कफ और पित्त प्रायः मदात्यय रोग मे इस औषधि की क्रिया विषनाशक, पित्तशामक,

कफनाशक और वातानुलोमक होती है। दीर्घकाल से कफ और पित्तवर्द्धक मद्यो का सेवन करनेवाले पुरुषो को, होनेवाले विकारो में, इसका सेवन कराया जाता है।

रोहितक लोह [सि यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हैड का दल, बहेडा दल, आंवला, सोंठ, कालीमिर्चे, छोटी पीपल, चित्रक के मूल की छाल, नागरमोथा और वायविडङ्ग प्रत्येक १-१ भाग, रोहीडा के वृक्ष की अन्तर्छाल ९ भाग, इन सबका सूक्ष्म कपडछन चूर्ण बनाकर उसमे लोहभस्म या मण्डूरभस्म ९ भाग मिलाकर रोहेडा के वृक्ष की छाल के रस या क्वाथ की ७ भावनायें दें। छाया मे सुखाकर पीसकर रखलें।

मात्राः—३-३ रत्ती।

अनुपानः—दूध या छाछ।

उपयोग—यकृत् और प्लीहा की वृद्धि-शोथ, पाण्डुरोग और विषमज्वर में यह अच्छा लाभ देनेवाला योग है। [सि यो. सं से उद्धृत]

लघु वसन्त मालिनी रस [भा. भै. र. ६९७२]

(र. चं., यो र.; र. रा. सुं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—खपरिया (अभाव में यशदभस्म) २ भाग और काली मिर्च का चूर्ण १ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर मक्खन के साथ घोटे और उसमे निम्बु का रस डालकर इतना खरल करे कि उसकी चिकनाई जाती रहे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। पीपल के चूर्ण और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वर, जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, अतिसार, रक्तातिसार, रक्तविकार और पित्तजन्य घोर पीडा का नाश होता है।

पथ्यः—दूध, भात देना चाहिये।

यह रस प्रदर, रक्तार्श, नेत्रदोष और बालरोगों को भी नष्ट करता है। इसे गर्भिणी स्त्री को जयन्ती के रस के साथ देने से गर्भ पुष्ट होता है।

लक्ष्मीनारायण रस [भा. भै. र. ६३३२]

(भै. र. । स्त्रीरोगा., र. चं । वाता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध हिंगुल, कुटकी, पीपल, इन्द्रजौ, अभ्रकभस्म और सेधानमक समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके दन्तीमूल और त्रिफला के रस मे पृथक पृथक ३-३ दिन घोटकर (शास्त्रोक्त ६-६ रत्ती) २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से दोष, ज्वर, सन्निपात, विषूचिका, विषमज्वर, अतिसार, सग्रहणी, रक्तातिसार, आम, प्रमेह, शूल, सूतिका रोग और वातव्याधि का नाश होता है।

इसके सेवन काल मे यथेच्छ पथ्यभोजन, अभ्यङ्ग, स्नान, कर्पूर युक्त ताम्बूलभक्षण, पुष्पमाल धारण, हरिचन्दन लेपन और नारिकेलोदक पीना चाहिये। स्त्री सहवास भी इसके सेवन काल मे निषिद्ध नहीं है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, अग्निवर्द्धक, आक्षेपनाशक, पोषक, वातानुलोमक, अन्त्र शैथिल्य नाशक, मलशोधक, ज्वरनाशक और अन्त्रदोषनाशक है।

लक्ष्मीविलास [भा. भै. र. ६३३३]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. रा. सुं., र. चं., धन्वं.; र. र.। रसायना.; रसे. चिं. म.। अ. ८; बृ. यो. त.। त. १४७, धन्वं.। ज्वरा, न. मृ.। त. ५)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कृष्णाभ्रकभस्म ५ तोले, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद २॥-२॥ तोले, कर्पूर, जावित्री, जायफल, विधारे के बीज, भांग के बीज, विदारीकन्द, शतावर, नागवला (गंगेरन), अतिवला (कंघी), गोखरू के फल और हिज्जल बीज १।-१। तोला लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो का बारीक चूर्ण मिलाकर सबको पान के रसमे घोटकर (शास्त्रोक्त ३-३ रत्ती) २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। प्रतिदिन प्रातः काल पानी, छाछ, सुरा या सीधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भयङ्कर सन्निपात, वातज और पित्तज रोग, १८ प्रकार के कुष्ठ, २० प्रकार के प्रमेह, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, अर्श, भगन्दर तथा रक्तगत, मांसगत मेदोगत, धातुगत, पुरातन या वंशानुगत कफ-वातज श्लीपद, गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतिसार, आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्णविकार, नासाविकृति, मुखविकृति, कास, पीनस, राजयक्ष्मा, स्थूलता, दुर्गन्ध समस्तविध शूल, शिरदर्द और स्त्री रोगो का नाश होता है।

इसके सेवन से वृद्ध पुरुष कामदेव के समान रूपवान् और तरुणस्पर्धी हो जाता है।

इसके प्रभाव से न तो क्षय होता है न लिङ्ग शैथिल्य ही और ना ही केश सुफेद होते है।

इस रस के सेवन से दृष्टि शक्ति अत्यन्त बढजाती है और कामशक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि मनुष्य बहुत सी स्त्रियों से मदमस्त हाथी के समान समागम कर सकता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, रोचक, आमशोषक, कफनाशक, दोषानुलोमक, निद्राकर, वस्तिशोधक, विशेषतः वातस्थानगत कफनाशक और मेदनाशक है।

जिन रोगो मे इसको प्रयोग मे लाने को लिखा गया है अधिकतर वे कफ विशिष्ट रोग है अतः उन सभी रोगो में यह निश्शंक प्रशस्त लाभ करती है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग ऐसे रक्तचाप की वृद्धि में कि जो कफज हो, किया जाता है अर्थात् आमाशय के दोषों के कारण जहां रक्तचाप की वृद्धि हुई हो और शरीर शिथिल, मेदसी हो वहां यह औषध अत्यन्त लाभप्रद होती है। प्रातः सायं १-१ गोली गरम पानी के साथ मिलाकर पिलाने से, पुराना शिरोरोग, नजला, आंखो की कमजोरी, कानो की कमजोरी, फुफ्फुसावर्ण प्रदाह आदि रोगों में सफलता पूर्वक काम करती है।

लक्ष्मणा लोह [भा. भै. र. ६३३१]

(लक्ष्मणादि चूर्ण)

(भै. र. । वाजीकरणा.; न. मृ. । त. ३.; र. रा. सुं. । वाजीकर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लक्ष्मणा, हस्तिकर्ण, पलाश, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, नागरमोथा, चीतामूल, वायविडङ्ग और असगन्ध इनका चूर्ण १-१ भाग तथा लौहभस्म सबके बराबर लेकर सबको एकत्र खरल करें।

मात्राः—४-४ रत्ती। दूधके साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह लोह वृष्य, वाजीकरण, कृश मनुष्यो को बल देनेवाला और सर्व रोग नाशक है।

यदि कन्या ही कन्याये उत्पन्न होती हो तो इसके सेवन से पुत्रोत्पत्ति हो सकती है।

सं. वि.—लक्ष्मणाः—मधुरा, शीतला, वन्ध्यदोष नाशिका, रसायनी, बल्या और त्रिदोषघ्नी है।

हस्तिकर्णः—वृष्य, मेधा-आयु-बलवर्द्धक है।

अन्य सब प्रसिद्ध औषधियां है। योग वायुनाशक, वीर्यवर्द्धक, कृमिनाशक और शरीर पोषक तथा रक्तवर्द्धक है।

लवङ्गाभ्रक योग [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौंग, अतीस, मोथा, पाढ, बेलगिरी, धनिया, धाय के फूल, मोचरस, जीरा, लोध्र, इन्द्रजव, खस, राल, काकडासिंगी, सेंधानमक, सोठ, छोटी पीपल, खरेंटी की मूल, जवाखार, शुद्ध अफीम और रसौत १-१ भाग, अभ्रकभस्म ५ भाग तथा लौंग सबके बराबर ले। सबका सूक्ष्म कपडछन चूर्ण बनाकर नागरमोथे के स्वरस या क्वाथ की ३ भावनाये दें। ३-३ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखाकर रखले।

मात्रा, अनुपान और उपयोग—इसकी १-२ गोली जल के अनुपान के साथ दिन

मे ३–४ बार, सब प्रकार के अतिसार, ग्रहणी, प्रवाहिका और अम्लपित्त में देवें। यह योग ग्राही, दीपन, पाचन और स्तम्भन है। [सि. यो स से उद्धृत]

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, अग्निवर्द्धक, सग्राही, वातानुलोमक, अन्त्रशैथिल्य नाशक, अन्त्रदाह नाशक, रक्तरोधक और श्लेष्मकलान्तर्गत आम–कफ और वात शोथ नाशक है।

इसके सेवन से नूतन और पुरातन दोनों प्रकार की आम, वात, कफ औ आमवात द्वारा उत्पन्न हुई संग्रहणी, प्रवाहिका, अर्श, आम कफज अग्निमान्द्य और अन्त्रक्षोभ इत्यादि नष्ट होते है।

लीला विलास रस [भा. भै. र. ६३६९]

(भै. र., र. चं.; र का. धे.; र. रा. सुं., रसे. सा. सं. । अम्लपित्ता.; बृ. यो. त. । त. १२२, रसे. चिं. म. । अ ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म और लोहभस्म समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर मिश्रण को आमले और बहेडे के रस या क्वाथमे ३–३ दिन तक मर्दन करके थोडी देर भांगरे के रसमे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। घी, मधु और खांड के साथ अथवा घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से विविध प्रकार के अम्लपित्त, छर्दी, शूल युक्त हृद्दाह का नाश होता है।

दूध में पेठे का रस आमले का चूर्ण और मिश्री मिलाकर पीने से भी अम्लपित्त नष्ट होता है।

लोकनाथ रस [भा. भै. र. ६३७३]

(बृ. नि. र.; र. चं. । राजय., शा सं. । खं. २ अ. १२; यो. चिं. म. । मिश्रा.; र. प्र. सु. । अ. ८)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध बुभुक्षित पारद २ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली बनावे और फिर उसे ८ भाग कौडियो मे भरदे। तदनन्तर १ भाग सुहागे को गाय के दूध मे पीसकर उससे उन कौडियो का मुख बन्द करदे और फिर भीतर की तरफ चूना पुते हुये शरावो में ८ भाग शंख के टुकडे और इन कौडियों को भरकर उस पर उसी प्रकार का दूसरा शराव रखकर दोनो की सन्धि बन्द करदे और कपड मिट्टी करके सुखाले। तत्पश्चात् इस सम्पुट को १ हाथ गहरे गढे मे रखकर गजपुट की अग्नि दे और

उसके स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट मे से औषध को निकालकर कौडियां और शंख सहित पीस लेवे ।

मात्राः—२ से ६ रत्ती तक । वातज रोग मे २८ कालीमिर्चे मिलाकर घी के साथ । पित्तज रोग मे मक्खन के साथ और कफज रोग मे मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अतिसार, क्षय, अरुचि, संग्रहणी, कृशता, अग्निमान्द्य, कास, श्वास और गुल्म का नाश होता है ।

इस रस को खिलाने के बाद ३ ग्रास घृत युक्त भात खिलाना और रोगी को कुछ देर के लिये तकिया लगाये बिना लिटाये रखना चाहिये ।

इस पर अम्लरहित, घृतयुक्त अन्न और मीठी दही खिलाना चाहिये । सायंकाल भूख लगने पर दूध—भात और घी में पकाये हुये मूंगके वडे देने चाहिये । पिसे हुये तिल और आमले का या घृत का अभ्यङ्ग करने के पश्चात् मन्दोष्ण जल से स्नान कराना चाहिये । शरीर पर घृत की मालिश करनी चाहिये ।

अपथ्यः—इस रस के सेवन काल मे तेल, वेल, करेला, वैगन, मछली, इमली, व्यायाम, मैथुन, मद्य, हींग, सोठ, उडद, मसूर, पेठा, राई, क्रोध, काञ्जी, असमय सोना. कांसी के पात्र मे भोजन करना और ककारादि वर्ग के फल अथवा शाक [कूष्माण्ड (पेठा), ककडी, कलिङ्ग (तरबूज), करेला, कुसुम्भ, कक्कोडा; कालम्बी और काकमांची (मकोय)] का परित्याग करना चाहिये ।

इसे सेवन करने से पूर्व शुभनक्षत्र, शुभवार और पूर्णा तिथि (पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा) को लोकनाथ का पूजन करके कुमारी कन्या को भोजन कराना ओर दान देना चाहिये ।

यदि रस खाने के पश्चात् दाह हो तो मिश्री, गिलोय का सत्त और वंगलोचन एकत्र मिलाकर देना तथा खजूर, अनार, किसमिस और गन्ने की गण्डेरी खिलानी चाहिये ।

अरुचि मे धनिये के चावलो को घी मे भूनकर मिश्री मे मिलाकर खाना चाहिये ।

ज्वर मे धनिये और गिलोय का क्काथ पिलाना चाहिये ।

रक्तपित्त, श्वास, कास, कफ और स्वर क्षय मे खस और वासे के क्काथ मे मधु और खांड मिलाकर पिलाना चाहिये ।

निद्रानाश, अतिसार, ग्रहणी, मन्दाग्नि मे अग्नि पर भुनी हुई भांग का चूर्ण मधु मे मिलाकर रात को चाटे ।

शूल और अजीर्ण मे कालानमक, हैड और पीपल के चूर्ण को ऊष्ण जल के साथ दे ।

ज्वर, प्लीहा, वातरक्त, वमन और अर्श में पीपल का चूर्ण और शहद मे मिलाकर चटानी चाहिये ।

नासिकादि से रक्तस्राव होने मे अनार के फूलों के स्वरस या दूर्वा घास के स्वरस मे खांड मिलाकर उसकी नस्य देनी चाहिये ।

छर्दी और हिक्का मे वेर की गुठली की गिरी, पीपल और मोर के पङ्ख को भस्म का यथाविधि चूर्ण वनाकर मधु के साथ चटाना चाहिये ।

मृगाङ्क पोटली, हेमगर्भ पोटली, मुक्ता पोटली आदि में उपरोक्त विधि ही काम मे लानी चाहिये ।

लोहपर्पटी [भा. भै. र. ६३९६]

(भै. र.; र. चं.; र. र.; र. रा. सुं. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १–१ भाग लेकर दोनों की कज्जली वनावे और फिर उसमें १ भाग लोहभस्म मिलाकर सबको लोहे के खरल में घोटें । तदनन्तर उसे घृत लिप्त लोहे की करछी मे डालकर मन्दाग्नि पर पिघलावे और फिर उसे गाय के गोवर पर विछे हुये केले के पत्ते पर फैलाकर उस पर दूसरा कदली पत्र रखकर उसे गोवर से दवादें और थोडी देर वाद दोनों पत्तों के वीच से पर्पटी को निकालकर पीस लें ।

मात्राः—१–१ रत्ती । शीतल जल अथवा धनिया और जीरे का क्वाथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे १–१ रत्ती से प्रारम्भ करके १ सप्ताह २ सप्ताह या आराम होने तक सेवन कराना चाहिये । (जिस प्रकार यह क्रम पूर्वक बढाई जाती है उसी प्रकार १–१ रत्ती प्रतिदिन घटाई जाती है) ।

इसके सेवन से सूतिका रोग, ज्वर, कष्टसाध्य संग्रहणी, आम, शूल, अतिसार, पाण्डु, कामला, प्लीहा, अग्निमान्द्य, भस्मकरोग, आमवात, उदावर्त, १८ प्रकार के कुष्ठ अनेक प्रकार के विष विकार आदि रोग नष्ट होते हैं ।

इसे प्रातःकाल विधिवत् सेवन करना चाहिये तथा पथ्य पूर्वक रहना चाहिये ।

इसे अधिक काल तक निरन्तर सेवन करने से वलिपलित का नाश होता है तथा आयु वृद्धि होती है ।

पथ्यापथ्यः—इसके सेवन काल में लाल चावलों का भात खाना और शाक, विदाही पदार्थ, वात में रहना, धूपमे जाना, क्रोध, चिन्ता और मैथुन का त्याग करना चाहिये ।

लोह रसायन [भा. भै र. ६२६३]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मूसली, हर्र, बहेडा, आमला, खैर की छाल, वासा, निसोत, मुण्डी, संभालु, चीतामूल और थूहर की जड ५०–५० लेकर सबको एकत्र कूटकर ४० सेर पानी मे पकावे और जव १० सेर पानी शेष रहे तो छानकर उसमे ५० तोले

शुद्ध गूगल तथा ६० तोले तीक्ष्णलोहभस्म एव दो सेर पुराना घी एवं ४० तोले खांड मिलाकर ताम्र के पात्र मे मिलाकर पकावे। जब अवलेह तैयार हो जाय तो उसे अग्नि से नीचे उतार कर ठण्डा करके उसमे १ सेर मधु, १० तोले शिलाजीत तथा २॥ तोले इलायची और दालचीनी का चूर्ण, १० तोले वायविडङ्ग का चूर्ण तथा १०-१० तोले कालीमिर्च, सुरमा, पीपल, हैड, वहेडा, आमला और कसीस का चूर्ण मिलाकर स्निग्धपात्र मे भरकर सुरक्षित रक्खे।
मात्राः—४ से ६ रत्ती। (शास्त्रोक्त १-१ मासा) मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन शरीर शुद्धि के वाद करना चाहिये।

इसके सेवन से वात-कफ, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, भगन्दर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद, विविध प्रकार के विष, स्थूलता, मेद और वलिपलित का नाश होता है। यह रस वल्य, रसायन और उत्तम वाजीकरण है।

अपथ्यः—इसका सेवन करते केला, कन्द, काञ्जी, करौन्द, करीर, और करेला नहीं खाने चाहिये।

सं. त्रि.—यह औषध मेदनाशक, विषनाशक, वातनाशक, आमनाशक, आक्षेपघ्न, सहज रेचक, अग्निवर्द्धक, रूक्षतानाशक, रसायन, वल्य, वाजीकरण और श्रेष्ठ दीपक है। इसका सेवन करने से उदर की श्लेष्मकलाओ से निकलते दुष्ट श्लेष्म का नाश होता है। उत्तेजित श्लेष्मकलाओ की उत्तेजना दूर होती है, प्लीहा और ग्रन्थि मे विष मेद और कफ द्वारा हुई विकृतियां मिट जाती है। यह औषध उदर ग्रन्थियो के दाह को दूर करती है। स्थूलता का नाश करती है और वात-कफ प्रकोप के कारण फूली हुई विविध शरीर-ग्रन्थियो को स्वस्थ और निर्दोष वनाती है।

लोहाभ्र रसायन

द्रव्य तथा निर्माण विधान—२० तोले अभ्रकभस्म और २० तोले लोहभस्म को क्रमशः पृथक पृथक २० तोला पुरातन घृत, भटकटैया, अदरक, नीम की छाल, श्वेतपुनर्नवा महुवा और लघुपञ्चमूल के स्वरस या क्वाथ में घोट २ कर ७-७ पुट दे। यह अभ्रक और लोहभस्म २०-२० तोले और दूध तथा नारियल का पानी ४०-४० तोले लेकर खरल करे और मन्दाग्नि पर पकावे। जव जल उड जाय तव त्रिफला, त्रिकटु, चित्रकमूल, वायविडङ्ग, काला जीरा, जायफल, जावित्री, लौग, नागरमोथा और कङ्कोल, प्रत्येक का चूर्ण ४-४ मासे डालकर उसे मावे के समान मिलावे और जव तक वह मावा लाल न हो जाय तव तक इसे सेकते रहें। जव ठण्डा हो जाय तो उसमे ४० तोले मधु मिलावे और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।
मात्राः—४ रत्ती से ८ रत्ती तक। वर्धमान प्रयोग करना हो तो ८ मासे तक १-१

मासा बढाते हुये सेवन करें और फिर १—१ मासे का ह्रास करके न्यूनतम मात्रा पर आजांय ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके १ वर्ष के प्रयोग से समस्त व्याधियो से निर्वृत्ति मिल जाती है और १०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है ।

सं. वि.—यह औषध बुद्धिवर्द्धक, सर्वरोगनाशक, वीर्यवर्द्धक, आयुवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, वर्णकारक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक और प्रमेहनाशक है । इसका प्रयोग अजीर्ण, मेदवृद्धि, वातोदर, शरीर शैथिल्य, जीर्णज्वर, रक्ताल्पता और वात—पित्तज रोगो के लिये प्रशस्त है ।

वडवानल रस [भा. भै. र. ६९५३]
(रसे. सा. सं. । अजीर्णा, भै. र । अग्निमान्द्या.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पीपल, पाञ्चो नमक (सेधा, संचल, काचलवण, विडलवण, समुद्र लवण), कालीमिर्च, हैड, बहेडा, आमला, सज्जीखार, यवखार और सुहागा । सब द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर सबको संभालु के रस मे घोटक सुखाकर सुरक्षित रक्खें ।

मात्राः—६ रत्ती से १ मासा तक । जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवम से अग्निमान्द्य का नाश होता है ।

सं. वि.—यह रस शोधक, पाचक, अग्निदीपक, वातानुलोमक, सहजरेचक, शूलनाशक और जठरदाह नाशक है । यह अजीर्ण द्वारा होनेवाले आध्मान, गुल्म, आमशूल आदि विकारों में प्रयुक्त किया जाता है ।

वडवामुखी गुटिका [भा. भै. र. ६९५८]
(र. र. स. । उ. अ. १६)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, वायबिडङ्ग, कलिहारी की जड, सोंठ, मिर्च, पीपल, सुगन्धवाला, नीमके पत्ते, हल्दी, फिटकरी और शुद्ध वच्छनाग । प्रत्येक का चूर्ण समान भाग लेकर, सबको भलिभान्ति एकत्र मिलाकर, भांगरे के रस, कुचले के रस या क्वाथ और अदरक के रस की १—१ भावना देकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१—१ गोली । मधु और जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्नि शीघ्र ही दीप्त हो जाती है तथा यह गुटिका कास, श्वास, शूल, अग्निवैषम्य, गुल्म और शोथ को नष्ट करती है ।

सं. वि.—यह औषध, दीपक, पाचक, वातानुलोमक, आमशोषक, आक्षेपनाशक, पोषक, शोधक और यकृत् तथा दाह नाशक है ।

वसन्त कुसुमाकर रस [भ. भै. र. ६९६७]

(वृ. यो त. । त. ७६, भै. र. । रसायना., र. रा. सुं. । यक्ष्मा.; र. चं. । राजयक्ष्मा., यो र., भै. र. । प्रमेहा , नपुं. मृ. । त. ५; यो त. । त. २७; वृ. नि र.; रसे. सा. सं. । रसायना., र. र.; यो. र., वृ. नि. र. । यक्ष्मा , धन्वं. । वाजीकरण., प्रमेहा.; र. रा. सुं. । रसायना., र. र. स । उ. अ. १७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म २ भाग, चांदीभस्म २ भाग, वङ्गभस्म ३ भाग, नागभस्म ३ भाग, कान्तलोहभस्म ३ भाग, रससिन्दुर, अभ्रकभस्म. प्रवालभस्म और (पाठान्तर के अनुसार "हीराभस्म" भी है), ४–४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके गोदुग्ध, गन्ने का रस, वासे का रस, श्वेतचन्दन के क्वाथ, खस के क्वाथ, हल्दी के क्वाथ या स्वरस, केले की जड के रस, कमल के रस और चमेली के फूलों के रस की (पाठान्तर के अनुसार केसर के पानी की भी) पृथक पृथक ७–७ भावना देकर अन्त में कस्तूरी के पानी में घोटकर (शास्त्रोक्त २–२ वल्ल) १–१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१ से २ गोली । मिश्री, घी और मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस वलिपलितनाशक, मेधावर्द्धक, वाजीकरण, शक्तिवर्द्धक, प्रमेहनाशक, पुष्टिकर और परम वृष्य रसायन है । आयु की वृद्धि करता है और पुत्र प्राप्ति करने मे सहायक होता है । इसके सेवन से क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास, रक्तदोष और विष विकार का नाश होता है तथा मिश्री और चन्दन के साथ देने से अम्लपित्त आदि रोगों का नाश करता है । इसके अतिरिक्त यह श्वेत पाण्डु, शूल, मूत्राघात और अश्मरी का नाश करता है । यह रस योगवाही है । इसका सेवन करने से कान्ति और बल की वृद्धि होती है ।

सं. वि.—विधिपूर्वक बनाया हुवा "वसन्त कुसुमाकर रस" मधुमेह रोग को नाश करने मे सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ है । इसके सेवन से शीघ्र ही मधुमेह पीडित रोगी के शरीर मे से मधुमेह के विकार दूर होने लगते है । तृष्णा, अतिमूत्र, हाथ–पग की ऐठन, कटिवेदना, नेत्रशक्ति हीनता आदि सभी विकार यथाक्रम नष्ट होने लगते है ।

वसन्ततिलक रस [भा. भै. र. ६९६९ [

(भै. र. । कासा.; र. र. । मिश्रा., र. रा. सुं । रसायना., धन्व. । वाजीकर.; रसे. सा. सं । रसायना.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग, लोहभस्म ३ भाग, शुद्ध पारद ४ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, वङ्गभस्म २ भाग, मोतीभस्म ४ भाग और प्रवालभस्म ४ भाग, ले । सबको यथाविधि मिश्रण करके गोखरू के क्वाथ, वासे के रस तथा

ईख के रस की १–१ भावना देकर गोला बनाले और उसे मूषा मे बन्द करके लघुपुट मे पकावे। स्वाङ्गशीतल होनेपर मूषा मे से द्रव्य को निकालने पर उपरोक्त रसों मे घोटकर फिर लघुपुट दे। द्रव्य को घोटे और इसी प्रकार ७ पुट देने के पश्चात् कस्तूरी और कपूर के पानी की १–१ भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क करके सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कास, श्वास, पित्त, वायु, कफ, पाण्डु, क्षय, शूल, संग्रहणी, विष, प्रमेह, अश्मरी, हृद्रोग और ज्वरादि का नाश होता है। यह रस बल, वीर्य और आयु की वृद्धि करता है।

सं. वि.—शरीर वृद्धि के लिये इस रस का सेवन बहुत ही हितकर होता है।

वज्र वटी [भा. भै. र. ६९३६]

(भै र. । कुष्ठा.; रसे. चिं. म.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, चीते का चूर्ण और कालीमिर्च का चूर्ण १–१ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियां मिलाकर सबको काकोदुम्बरिका (कठूमर) के दूध तथा त्रिफले और त्रिकुटे के क्वाथ मे १–१ दिन घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पामा रोग नष्ट होता है।

वरुणाद्य लोह [भा. भै. र. ६९६३]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. चं., र. रा. सुं. । मूत्रकृच्छ्रा., रसे. चिं. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वरुणे की छाल और आमला १०–१० तोले, धाय के फूल ५ तोले, हरीतकी २॥ तोले, पृष्णिपर्णी १। तोला, लोहभस्म १। तोला और अभ्रकभस्म १। तोला लेकर सबको एकत्र खरल करें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ४–४ मासे) २ से ४ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह और विषमज्वर का नाश होता है।

यह औषध बल–पुष्टि को देनेवाली, वृष्य और आयुवर्द्धक है। इस "वरुणाद्य लौह" का निर्माण भगवान् "चरक" ने किया।

सं. वि.—यह औषध मूत्रल, शोथघ्न, दाहनाशक, वस्तितोदनाशक, वर्णकारक और वृक्कशोथ नाशक है।

वात कुलान्तक रस [भा. भै. र. ६९८१]

(रसे. सा. सं.; भै. र.; र. चं.; धन्वं. । अपस्मार.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान— कस्तूरी, शुद्ध मनसिल, नागकेसर, बहेडा, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, जायफल, इलायची और हींग । प्रत्येक १।–१। तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर थोडा सा पानी डालकर खरल करें और २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क करके रक्खें।

मात्राः—१–१ गोली । यथाव्याधि अनुपान के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उचित अनुपान के साथ सेवन कराने से घोर अपस्मार, मूर्च्छा और अन्य वातज रोगो का नाश होता है। अपस्मार के लिये इससे उत्तम दूसरी कोई औषध नहीं है । इस "वात कुलान्तक रस" का निर्माण पहेले ब्रह्माजी ने किया था ।

सं. वि.—यह योग इन्द्रियो की विकृत गति के कारण होनेवाले वातनाडियो के विकारो को अपने शीघ्र और आकर्षक गुणो से दूर करता है । वात–कफज अपस्मार के लिये यह औषध उत्तम है ।

वातगजेन्द्रसिंह [भा. भै. र. ६९८४]

(भै. र. । आमवाता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध पारद, परिशोधित गन्धक, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, सुहागे की खील, शुद्ध वच्छनाग, सेधानमक, लौग, हींग और जायफल । प्रत्येक द्रव्य समान भाग तथा त्रिसुगन्ध (दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची), त्रिफला (हैड, बहेडा, आमला) और जीरा प्रत्येक आधा २ भाग ले । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमें भस्मों को मिश्रित करके अन्य औषधियो का चूर्ण मिलावें और मिश्रणको घृतकुमारी के रस में घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—आधी से १ गोली । प्रातःकाल दूध के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से ८० प्रकार के वातजरोग, ४० प्रकार के पित्तज रोग और २० प्रकार के कफजरोगो का नाश होता है ।

ऐसे रोगियो के लिये, जो अभिघात, पक्षाघात, व्याधि, अवस्था, अति स्त्री प्रसङ्ग आदि कारणो से क्षीण हो गये हो अथवा जिनकी इन्द्रियो की शक्ति क्षीण होगई हो, वीर्यक्षय होगया हो तथा अग्नि क्षीण होगई हो, यह औषध वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, आयुकारक, खञ्जता, पङ्गुता, कुब्जता आदि रोगो को नष्ट करती है और उनके शरीरो में मांस की वृद्धि करती है ।

इस रस के सेवन से स्वस्थ मनुष्य अधिक स्वास्थ्य लाभ करते है और रुग्ण रोग से मुक्त हो जाते है । यह रोगनाशक उत्तम रस है ।

सं. वि.—यह औषध शोधक, दीपक, आयुवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, विषनाशक, शोषनाशक, दोषानुलोमक, वीर्यवर्द्धक और श्लेष्मकला तथा वातनाडियों की अनेक विकृतियो से होनेवाले अनेक विकारो को नष्ट करती है।

जिन औषधियों के योग से यह रस बना है वे सभी रक्तशोधक, शरीरवर्द्धक, वातनाशक, रसायन, बल्य और वृष्य है। रीतिपूर्वक बनाया हुवा यह रस अवश्य ही उदरदोष से होनेवाले वातजविकारो को, उनके अनुबन्धियो सहित, अपने सुन्दर रासायनिक मिश्रण द्वारा, मिटाता है और वायु के स्थान पर आये हुये पित्त और कफ रोगो को भी शान्त करता है।

यह रस आमशोषण करने के लिये तथा आमदोष का नाश करने के लिये अत्युत्तम है।

वातगजाङ्कुश रस [भा. भै. र. ६९८२]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. चं.; र. र. स. । उ. अ. २१, वृ. नि. र.; धन्वं.; र. रा. सुं. । वाता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर), लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, हैड, काकडासिंगी, शुद्ध वच्छनाग, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), अरनी की जड की छाल और सुहागा समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर मुण्डी और संभाळु के रस मे १–१ दिन घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—आधी से १ रत्ती तक। पीपल का चूर्ण मिलाकर खावें तथा ऊपर से जिंगिनी का क्वाथ पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से साध्य असाध्य सभी प्रकार के वातरोग नष्ट होते है। यह ७ दिन में दारुण सन्निपातज गृध्रसी को नष्ट कर देता है तथा इसके सेवन से क्रोष्टुक शीर्ष, अपवाहुक, मन्यास्तम्भ, उरुस्तम्भ और पक्षाघातादि रोग भी नष्ट होते है।

सं. वि.—जिन कारणो से वस्ति मे प्रकुपित वात, नाडियो की दुर्बलता और शरीर की अशक्ति के साथ विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करता है, यह उन सब कारणो का नाश करता है। किसी भी भाग विशेष का स्तम्भन वायु के दोष के बिना होता ही नहीं है। यह औषध वायु के इस प्रकार के विभिन्न स्थानगत सञ्चय को अपने ऊष्ण, स्निग्ध गुण द्वारा नाश करती है। यह पाचक, दोषानुलोमक, रक्तशोधक, विषनाशक और रक्तवर्द्धक है।

वातरक्तान्तक रस [भा. भै. र. ६९९०]

(भै. र. । वातरक्ता., र. चं., रसे. सा. सं., र. रा. सु., धन्वं., र. र. । वातरक्ता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, परिशोधित गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म,

शुद्ध हरताल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल, वायविडङ्ग, हेड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, समुद्रफेन, पुनर्नवा की जड, देवदारु, चित्रकमूल, दारुहल्दी और सफेद कोयल प्रत्येक का चूर्ण समान भाग लेकर पारद और गन्धक की बनाई हुई कज्जली मे मिलाकर भलीभान्ति घोटे और त्रिफले और भांगरे के रस की ३-३ भावना दे।

मात्रा:—(शास्त्रोक्त १।-१। तोला) २ से ४ रत्ती तक। नीम के पत्ते, नीम के फूल और नीम की छाल समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और उपरोक्त रस के साथ १ तोला यह चूर्ण तथा घी मिलाकर चाटे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अत्यन्त घोर, गम्भीर, साध्य, असाध्य और सब उपद्रवो से युक्त भी वातरक्त नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—बलवान कारणों से प्रकुपित वायु ऊष्ण द्रव्यों को खानेवाले मनुष्य के रक्त को दूषित करके स्वयं दुष्टरक्त मे प्रवेश करके वातरक्त नामक विकार को उत्पन्न करता है, जिसमे हस्त, पाद के अन्दर जलन, खुजली, शोथ, जडता, चमडी की कर्कशता, शिरा, धमनी, स्नायु मे निष्पन्दन और लाली युक्त काले दाग पडने लगते हैं।

ऐसे वातरक्त दोष के लिये रक्तशोधक और भयङ्कर वातनाशक औषध ही लाभप्रद हो सकती है। "वातरक्तान्तक रस" मनसिल, हरताल, गन्धक, पारद, गूगल आदि अनेक वात नाशक, रक्तशोधक द्रव्यो के योग से बना है। यह शरीर का पोषण करता है, दोषों का नाश करता है और रक्त परिभ्रमण की बाधाओ को दूर करते हुये शिरा और धमनियों मे उत्पन्न हुये विकारो को दूर करता है तथा रक्त का पोषण करता है। यह औषध विष, कीटाणु, कृमि तथा दोषनाशक है।

वात राक्षस रस [भा. भै. र. ६९९३]

(वृ. यो. त. । त. ९०)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव मे रस सिन्दुर), शुद्ध हिंगुल, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध वच्छनाग, ताम्रभस्म, सुहागे की खील और कान्तलोहभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले और एकत्र खरल करे। तदनन्तर त्रिकुटे के क्वाथ, घृतकुमारी के रस और पुनर्नवा के क्वाथ की १-१ भावना देकर सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—१-१ रत्ती। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह और आक्षेपकादि समस्त वातव्याधियां नष्ट होती है।

सं. वि.—यह रस आमशोषक, पाचक, दोषानुलोमक, अग्निवर्द्धक, आक्षेपनाशक,

शोधक और रक्तवर्द्धक है। कृशता, रूक्षता आदि दूर करने के लिये यह बहुत ही उपयुक्त औषध है।

वात विध्वंसन रस [६९९९]

(र रा. सुं. । वातरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, सुहागे की खील, शुद्ध गन्धक, पाषाणभेद, शुद्ध वच्छनाग, कौडीभस्म, शुद्ध हरताल और त्रिकुटे का चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियो को मिलाकर धतूरे के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले तथा छायाशुष्क करके प्रयोग में लावे।

मात्राः—१-१ गोली। मधु और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सन्निपात, वायु, कफ, शीत, अग्निमान्द्य, श्वास, संग्रहणी, शूल, और कास का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध अग्निवर्द्धक, शरीरवर्द्धक, आक्षेपनाशक, वातानुलोमक और रक्तदोष नाशक है।

वायु द्वारा होनेवाले पेट के विकारों पर इसका प्रभाव शीघ्र और अतीव हितकर पडता है।

वातारि रस [भा. भै. र. ७००३]

(वृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभावमे रससिन्दुर) १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध वच्छनाग ३ भाग, पीपल का चूर्ण ४ भाग और रेणुका का चूर्ण ३ भाग ले सबको एकत्रित करके खरल करें।

मात्राः—१-१ रत्ती। मधु अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त वातजविकार नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक, वातानुलोमक, आमशोषक, अग्निवर्द्धक और शरीर पोषक है। किन्ही भी कारणों से रूक्ष गुण द्वारा प्रकुपित वायु को नष्ट करने में "वातारि रस" समर्थ है।

/ वातेभ केसरी रस [सि. प्र. सं.]

बनावट—शुद्ध सोमल, कालीमिर्चे, लौंग, शुद्ध वच्छनाग, छुहारे की गुटली, जायफल और करीर की कोपले १-१ तोला तथा अफीम और मिश्री २-२ तोला ले। सबको यथाविधि मिला बड के दूध मे मर्दन कर सरसों के बराबर गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली। दिन मे २ से ३ बार देवे।

अनुपान और उपयोग—इस रसायन को श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) मे मिश्री के साथ देने से तत्काल लाभ प्रतीत होता है। श्वास, काम और कफप्रधान सन्निपात में शहद के साथ और मरणासन्न बेहोशी की अवस्था में १-१ रत्ती सफेद कत्था और अकलकरे के साथ देने से सत्वर कफ प्रकोप का शमन होकर बेहोशी और त्रिदोष निश्चय पूर्वक दूर होते है, एवं रोगी की रुकी हुई जबान खुल जाती है। हिचकी में मूली के बीज के साथ; अतिसार मे छोटी हरड, सौफ और जीरे के साथ, रक्तप्रदर में शहद या घी के साथ, शिर दर्द मे नकछिकनी के साथ नस्यरूप में, अफारे मे अदरक के रस के साथ सेवन और नाभि पर मूषक की मेगनी का लेप करने के लिये: एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि विषम ज्वर मे गुड के साथ, पित्तज्वर मे शक्कर के साथ, नपुंसकता मे दूध की मलाई के साथ, सुजाक मे गुलाब के गुलकन्द या शक्कर के शर्बत के साथ तथा वाजीकरण के लिये जायफल और कस्तूरी के साथ देने से यह रसायन अच्छा चमत्कार दिखाता है।

[सिद्ध प्रयोग सग्रह से उद्धत]

वान्तिहृद् रस [भा. भै. र. ७००८]

(र. चं.; यो. र.; र. का. धे. । छर्दि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म, शंखभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके कज्जली बनावे और उसे घृतकुमारी, धतूरा तथा चाङ्गेरी के रस को १-१ भावना देकर गोला बनावें और गोले को शराव सम्पुट मे बन्द करके उसपर ७ कपड मिट्टी करके भूधर यन्त्र मे पकावे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। अजमोद और वायविडङ्ग के चूर्ण के साथ शहद मिलाकर सेवन करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन करने से कृमि और (कृमिजन्य) वमन का नाश होता है।

वमन मे पीपल की छाल को जलाकर पानीमे बुझाकर यह पानी पीने को दे।

व्याधिगजकेशरी रस [भा. भै. र. ७१४२]

(र. चं.; वृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड, बहेडा, आमला और सुहागे खील। प्रत्येक द्रव्य ३।।।-३।।। मासे तथा शुद्ध जमालगोटा ५ मासे लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर भांगरे, मकोय और संभालू के रस मे ७-७ दिन खरल करके कालीमिर्च के समान (१-१ रत्ती की) गोलियां बनाले।

मात्राः—१–२ गोली। यथारोगानुपान से।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—(१) ८ प्रकार के ज्वरों को नाश करने के लिये इसे दूधके साथ देना चाहिये।

(२) ८० प्रकार के वातरोगों को नाश करने के लिये यह या तो सम्भालु के रस के साथ मिश्रित करके अथवा वथुवे के रस में मिलाकर सेवन किया जाता है।

(३) ४० प्रकार के पित्त विकारों को नाश करने के लिये यह औषध गुड के साथ सेवन की जाती है।

यह जैसे रोगनाशक अनुपान के साथ दी जायगी वैसे ही रोग को नाश करेगी।

सं. वि.—अधिकतर रोगों का मूल उदर है। आहार–विहार द्वारा दोषों का संचय उदर के किसी स्थान मे हो जाता है। वायु की ऐसी परिस्थिति मे जब वह ग्रहणी और आमाशय मे आकर सञ्चित और प्रकुपित होता है तो ग्रहणी और आमाशय के आक्षेप, शूल आदि विकार उत्पन्न होते है और इन रोगो के कारण हृदय के रोग, फुफ्फुसकला के रोग, फुफ्फुस के रोग, कण्ठरोग, मस्तिष्क के रोग तथा शिरा, स्नायु, धमनियो के विकार उत्पन्न होते है। इस प्रकार के पित्त और कफस्थानगत–वात विकार नाश करने के लिये और कफ स्थानगत–पित्त विकार नाश करने के लिए "व्याधिगजकेशरी रस" शोधक, पाचक, रक्तशोधक, आक्षेपनाशक, दाहनाशक और सहज रेचक होने के कारण, प्रशस्त है–क्यों कि यह दोषों का अनुलोमन करता है, दूष्यो को निर्विकार करके शरीर को पोषण योग्य बनता है और जिन जिन स्थानों में दोषों का प्रकोप हो उन उन स्थानों को सशक्त बनाकर दोषो का नाश करता है।

आज के युग मे अधिकतर मानवों मे दोषो की उपरिनिर्दिष्ट गतिविधि देखने में आती है। यदि न्यूनाधिक मात्रा मे देश, काल, बल को देखते हुये सभी रोगियो को "व्याधिगजकेशरी रस" का प्रयोग यथादोषानुपान कराया जाय तो मानवो के शरीर स्वस्थ रह सकते है।

विजयपर्पटी [भा. भै. र. ७०१८]

(भै. र.; र. चं. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, हीराभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, मोतीभस्म, ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म। प्रत्येक १–१ भाग और शुद्ध गन्धक ७ भाग लें। तदनन्तर सबको एकत्र खरल करके कज्जली तैयार करें और फिर पर्पटी बनाने की रीति से पर्पटी तय्यार करें।

मात्राः—१/२ से २ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कष्टसाध्य तथा बहुत वर्षों की पुरानी संग्रहणी, भयङ्कर पुराना आमशूल, अतिसार, प्रवाहिका, ६ प्रकार के अर्श, उपद्रव सहित राजयक्ष्मा, शोथ,

कामला, पाण्डु, प्लीहा, जलोदर, पक्तिशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, भ्रम, १८ प्रकार के कुष्ट, प्रमेह, विषमज्वर, ४ प्रकार के अजीर्ण, मन्दाग्नि और अरुचि का नाश होता है।

यदि बुद्धिमान् वृद्ध पुरुष भी इस पर्पटी का सेवन करे तो वह भी वलि पलित रहित कान्तिमान् होता हुवा १०० वर्ष की आयु प्राप्त करता है।

प्रातः काल २ रत्ती मात्रा के अनुसार इसका सेवन करने से कामशक्ति की अत्यन्त वृद्धि होती है और शरीर दृढ तथा बलवान होकर १०० वर्ष की वलि पलित रहित आयु प्राप्त करता है।

पुरातन समय में समस्त संसार को जरा व्याधि से पीडित देखकर "भगवान् शङ्कर" ने इसका आविष्कार वैसे ही किया जैसे—"भगवान् विष्णु" ने देवताओं का नाश होते देखकर अमृत का।

सं. वि.—पारद, वज्र, स्वर्ण, मौक्तिक, चांदी, ताम्र और गन्धक सभी उच्च कोटि के पदार्थ है। पारद त्रिदोष नाशक और बलप्रदान करनेवाले द्रव्यों में श्रेष्ट है। द्रव्यान्तर के साथ मिश्रित होकर यह सर्वरोग नाशक, बल और आयु का वर्द्धक होता है।

हीरकभस्म—षड्रसयुक्त, सर्व रोगनाशक, सर्व मलनाशक, सुखद, शरीर दृढकर और रसायन होती है।

सुवर्णभस्मः—मधुर, वृष्य, हृद्य, नेत्र्य, परममेध्य, रसायन, विषनाशक, कान्तिकर और पुंषवनोपयोगी होती है।

रजतभस्मः—शीत, स्निग्ध, मेध्य, विपाक मे मधुर, वर्ण्य, वात—कफनाशक, लेखन और वृष्य होती है।

मौक्तिकभस्मः—वृष्य, आयुष्य, मधुर, शीत, दीपक, दाहप्रशमक, अस्थि—दन्तपोषक, हृद्य, मेध्य, दन्तोद्भेद तथा ज्वरनाशक, अस्थिशोषनाशक, विषनाशक और देह-बल-बुद्धिवर्द्धक है।

ताम्रभस्मः—तिक्त, कटु, मधुर, ऊष्णवीर्य, अम्ल, स्निग्ध, विषनाशक, सारक, लेखन तथा पित्त—कफज भयङ्कर रोग नाशक है।

अभ्रकभस्मः—स्निग्ध, शीत, मधुर, आयुष्य, केश्य, वर्ण्य, रुचिकर, दीपक, बल्य, नेत्र्य, मेध्य, स्तन्यवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक और वीर्यवर्द्धक होती है।

ऐसे गुणयुक्त द्रव्यों के योग से बनी हुई औषध सर्वरोगनाशक, बल—वीर्य—बुद्धिवर्द्धक, त्रिदोष नाशक, रसायन और वाजीकरण होती है।

"विजयपर्पटी" अन्य पर्पटियों से अधिक रोग संहारक और शरीर वर्द्धक है। इसके सेवन से अन्त्र मे आम, विष, वात, पित्त, कफ और कीटाणुओं द्वारा होनेवाले शोथ, क्षय, शूल, व्रण,

संग्रहणी आदि विकार नष्ट होते है और यकृत्–प्लीहा तथा अन्त्रशैथिल्य मिट जाता है तथा रोगो द्वारा उत्पन्न हुई शरीर की कृशता रक्त और मांस की वृद्धि होने से शीघ्र नष्ट हो जाती है और मनुष्य सशक्त बन जाता है।

विजयपर्पटी (वैक्रान्त युक्त) [भा. भै. र. ७०१८]

इस पर्पटी में अन्य द्रव्य उपरोक्त "विजयपर्पटी" के समान हा होते हैं केवल "हीराभस्म" के स्थान पर "वैक्रान्तभस्म' प्रयुक्त की जाती है। इसके गुण और उपयोग पूर्वोक्त पर्पटी के समान ही है।

मात्राः—१/२ से २ रत्ती तक।

यह औषध सर्वसामान्य के लिये सब प्रकार से हितावह है।

विद्याधर रस [भा. भै. र. ७०४३]

(रसें. सा. सं.; भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वरा.; वृ. यो. त. । त. ५९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), कुटकी, सुहागे की खील, त्रिफला (हैड, बहेडा, आमला), निसोत, दन्तिमूल, आक की जड और शुद्ध वच्छनाग। प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग तथा शुद्ध जमालगोटा समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण मिला दे, तदनन्तर उस मिश्रण को कई दिन तक थूहर के दूध मे खरल करें और फिर दन्तिमूल के क्वाथ में घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। शीतल जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से आम, ज्वर, पाण्डु, गुल्म, संग्रहणी, अर्श, वातशूल, अजीर्ण, आमयुक्त कृमि, विबन्ध और प्लीहा रोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस तीव्र रेचक है। दीर्घकाल से एकत्रित हुये विविध प्रकार के आम आदि दोषो को अपनी भेदक क्रिया द्वारा बाहर निकाल देता है तथा आम, विष, वात, शुष्क मल आदि द्वारा उत्पन्न हुये शूल, गुल्म, मरोड, आक्षेप, यकृत्प्लीहोदर, आनाह, उदरच्छदा प्रदाह, जलोदर आदि भयङ्कर रोगों का नाश करता है।

इसका सेवन वृद्ध, बाल, और गर्भिणी स्त्री को बहुत विचार पूर्वक कराना चाहिये और यदि इसका सेवन उनको न कराया जाय तो अधिक युक्तियुक्त होगा।

विद्याधर रस [भा. भै. र. ७०४४]

(रसे. सा. सं.; धन्वं., र. रा. सुं., र. र.; वै. र., र. मं., र. चं. । गुल्मा; र. प्र. सु. । अ. ८; रसे. चिं. म. । अ. ९, शा. ध । ख २. अ. १२., र चिं म. । स्त. ११; वृ. यो. त. । त. ९८; र. का. धे. । उदर रो; र. र स. । अ. १८)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, ताम्र भस्म (पाठान्तर से स्वर्णभस्म) और शुद्ध पारद। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों को मिलाकर उस मिश्रण को १–१ दिन पीपल के क्काथ और थूहर के दूध मे खरल करके आधी २ रत्ती की गोलियां बनालें।
मात्राः—१ से २ गोली तक। मधु के साथ मिलाकर चाटे ऊपर से गोदुग्ध या गोमूत्र पीवें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गुल्म और प्लीहादि का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस सहज रेचक, शोधक, आमनाशक, दोषानुलोमक और अन्त्रशैथिल्य नाशक है। शूल, गुल्म, अजीर्ण, यकृत् और प्लीहा आदि के लिये बहुत ही उपयुक्त है। उदरगत दाह, व्रण, शोथ, कृमि, विष और पूय विकार मे थोडी मात्रा में इसका प्रयोग सभी प्रकार के रोगियों पर सभी अवस्था मे किया जा सकता है। यह दीर्घ कालानुबन्धि अम्लपित्त का नाश करता है।

विलासिनी वल्लभ रस [७०६०]

(वै. जी. । विला. ५; र. रा. सुं. । रसायना.; र. चिं. म. । स्त. ११)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद १–१ भाग और धतूरे के बीज २ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें धतूरे के बीजों का चूर्ण मिलाकर धतूरे के तेल मे अच्छी तरह खरल करके २–२ रत्ती की (शास्त्रोक्त ६–६ रत्ती की) गोलियां बनालें।
मात्राः—१ से ४ गोली तक। मिश्री के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन करने से समस्त प्रमेह नष्ट होजाते है तथा वीर्य का स्तम्भन होता है। इसके प्रभाव से मनुष्यो में अमित शक्ति आ जाती है और इससे पुरुष मान गर्विता माननियो का मद मर्दन कर सकते है।

विश्वतापहरण रस [भा. भै. र. ७०६१]

(वै. जी. । विला. ५, र. रा. सुं.; वृ. नि. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हैड, पीपल, शुद्ध कुचला, दन्तीबीज (शुद्ध जमालगोटा), तिक्ता (कुटकी), निसोत, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें, उसमे अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलावे तदनन्तर इस मिश्रण को धतूरे के रस मे १ दिन घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।
मात्राः—१–१ गोली। जल, अदरक अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नवीन ज्वर नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, रेचक, शोधक, स्वेदल, वात–कफ नाशक और आम शोषक है। इसके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है और उदर मे एकत्रित हुये दोष निकल जाते है। इसकी क्रिया तीव्र और शीघ्र होती है।

विश्वेश्वर रस [भा. भै. र. ७०७०]

(भै. र. । हृद्रोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, वङ्गभस्म, संस्कारित पारद, शोधित गन्धक और वैक्रान्तभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियो को मिलादें, तदनन्तर उस मिश्रण को अर्जुन की छाल की ७ भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से फुफ्फुस और हृदय मे होनेवाले रोग निस्संदेह नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध रसायन, त्रिदोषशामक, श्लेष्मकला–शिरा–नाभि और धमनियो के दोषों को नाश करनेवाली तथा समीपस्थ और दूरस्थ शरीर कोषो का पोषण करनेवाली है।

इसके सेवन से शनैः शनैः क्षीण होती हुई हृद्शक्ति, हृद्यन्त्र, हृदावर्ण, हृन्मांस तथा हृदय से सम्बन्ध रखनेवाली महाधमनी, फुफ्फुस संपोषक धमनियां तथा हृद्–संचालक नाडियां सशक्त होती है। यन्त्र मे परिपूर्ण रक्त संचालन शक्ति उत्पन्न होती है, इससे हृद्–संकोच, हृद्–शूल, हृन्मांस–कृच्छ्रता आदि रोग दूर होते है।

दीर्घकाल से वातप्रकोप द्वारा अर्थात नाडियो की दुष्ट कला से अशक्त हुवा हृदय अनेक प्रकार की व्याधियो का स्थान बन जाता है–यथा रक्तचाप मन्दता, रक्तचाप वृद्धि, जीवन नीरसता और शनैः शनैः हृदयावसाद। "विश्वेश्वर रस" के सेवन के इन सब उन्पन्न हुये विकारों का नाश होता है और इन रोगो की भावी आशङ्का से मनुष्य निर्मुक्त हो जाता है।

आधुनिकों का कहना है कि "अर्जुन हृदय की गति को बढा देता है" अतः मन्द अथवा क्षीण हृद् गति मे यह शत–प्रतिशत लाभ करता है–यह तो सब ही स्वीकार करेंगे। इसके अतिरिक्त "यह अति उत्तप्त हृदय के लिये भी उतना ही लाभप्रद है" यह स्वर्णादि शीतवीर्य तथा पोषक द्रव्यो के संयोग की विशेषता है।

हृदय को शक्ति देनेवाले सभी द्रव्य यो तो सम्पूर्ण शरीर के अवयवों का पोषण करते है–हृदय पोषण मूल होने के कारण। फुफ्फुस हृदय का समीपवर्ती अवयव है, फुफ्फुस के रोग

प्रायः शरीर में रक्ताभाव, दुष्टवायु का सेवन, शक्ति से अधिक परिश्रम और जीवन नीरसता के कारण होते हैं।

यह औषध पोषक और रक्तवर्द्धक है। हृदय को स्वस्थ करती है, अतः स्वाभाविक ही "फुफ्फुस के रोगों का नाश करती है"—यह सिद्ध होता है।

विश्वेश्वर रस [भा. भै. र. ७०६८]

(र. का. धे. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कर्पूर, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), सुहागा, शुद्ध वच्छनाग और कौडीभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सबको एकत्र मिलाकर जल मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। तुलसी पत्र के स्वरस मे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शीतज्वर, दाहज्वर और सन्निपातज ज्वर का नाश होता है। इस रस का प्रभाव शीघ्र ही प्रकट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, पाचक, स्वेदल, आक्षेपनाशक और कीटाणु नाशक है। इसका प्रभाव शीघ्र होता है और इसके सेवन से मलेरिया आदि विषमज्वर नष्ट होते है।

विषमज्वरारि रस [भा. भै. र. ७०७६]

(र का. धे. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, लोहभस्म और शुद्ध मनसिल। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सबको एकत्र करके कज्जली बनावे और इस कज्जली को तुलसीपत्र, करेले, भांगरे और धतूरे के रस की पृथक पृथक १–१ भावना देकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। बकरी से मूत्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से विषमज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, वात–पित्त–कफ नाशक, अन्त्रदोषनाशक और विष तथा कीटाणुनाशक है।

इसके सेवन से मलेरिया आदि विषमज्वर नष्ट होते है।

विषमज्वरान्तक लौह [भा. भै. र ७०७३]

(भै र., र. रा. सुं.; धन्व, रसे. सा. सं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद २–२ भाग, ताम्रभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म १–१ भाग, लोहभस्म सबके बराबर (६ भाग) लेकर सबको एकत्र

मिलाकर कज्जली बनावें और फिर उसे जयन्ती, तालमखाने, अडूसा, अदरक और पान के रस की पृथक पृथक ५–५ भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। मधु अथवा अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से विषमज्वरों का नाश होता है।

यह रस अग्निदीपक, हृद्य, प्लीहा और गुल्म का नाश करनेवाला तथा चक्षुष्य, बृंहण, वृष्य और रोगनाशक है।

विषमज्वरान्तक लोह (पुटपक्व) [भा. भै. र. ७०७४]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. रा. सुं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हिंगुलोत्थ पारद २ तोले और शुद्ध गन्धक २ तोले लेकर कज्जली बनावे और फिर रस पर्पटी के समान उसका पाक करके उसमे आधा तोला स्वर्णभस्म, ४–४ तोले लोहभस्म, ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म, १–१ तोला वङ्गभस्म, गेरू और प्रवाल भस्म तथा आधा २ तोला मोतीभस्म, शंखभस्म और शुक्तिभस्म मिलाकर सबको एकत्र खरल करें और पानी से घोटकर उसका गोला बनाकर उसे २ शुक्तियों मे बन्द करके सम्पुट बनावे और उसपर कपडमिट्टी करके सुखाकर लघुपुट मे स्वेदित करें। (अग्नि बहुत मन्दी दी जानी चाहिये, अन्यथा औषधि निर्वीर्य हो जायगी)। तदनन्तर उसके स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकालकर पीसकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से २ रत्ती। पीपल, हींग और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर जल के साथ सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ८ प्रकार के ज्वर (वात–पित्त–कफ–द्वन्द्वज और सन्निपात से होनेवाले), प्लीहा, यकृत्, गुल्म, सन्तत–सतत आदि विषमज्वर, कामला, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणीरोग, आमदोष, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र और अतिसार का नाश होता है। यह अग्निवर्द्धक बल और वर्ण को देनेवाला है।

सं. वि.—यह औषध उदर के सभी प्रकार के दोषों को नाश करनेवाली है—आम-शोषक, दोषानुलोमक और अग्निवर्द्धक होने के कारण।

दीर्घ कालीन संताप द्वारा शुष्क उदरकलाओं में वात द्वारा नीरसता आ जाती है, जिससे यदा–कदा कारणानुरूप विविध दोषों द्वारा ज्वर हो जाता है।

यह रस अन्त्र की शिथिलता का नाश करता है। क्लोम आदि के विकारों को दूर करता है और आमाशय, ग्रहणी, अन्त्र आदि स्थानो में पाचक और स्थापक रसो की उत्पत्ति करता है, जिससे रोगों का संशोधन, अग्नि की वृद्धि, रक्त की वृद्धि, शोथ का नाश, वायु का

अनुलोमन और मल का निस्सरण होने लगता है। इस प्रकार स्वस्थ हुये पाचन संस्थान की सुक्रिया से शरीर के विकारों का नाश होता है और शरीर निर्विष होकर विषमज्वर आदियों से मुक्त हो जाता है।

"विषम ज्वरान्तक लौह" विविध प्रकार के विषमज्वरों की प्रसिद्ध औषध है। फुफ्फुस और फुफ्फुसावर्ण के ऐसे विकार-जिनमे वात-प्रकोप के कारण क्षय, फुफ्फुसावर्ण प्रदाह आदि रोगो को उत्पत्ति होती है और दिन मे या रात मे २-२ घण्टे, ४-४ घण्टे या क्षणिक ज्वर हो आता है यह औषध ऐसी अवस्था मे बहुत लाभप्रद सिद्ध होती है।

विडङ्गादि लोह [भा. भै. र. ७०३६]
(भै. र. । आमवात)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--३७।।-३७।। तोले हैड और आमले को एकत्र कूटकर ३५ सेर पानी में पकावे। जल के ८ वे भाग शेष रहने पर उतारकर छान ले। तत्पश्चात् उपरोक्त क्वाथ मे २५ तोले लोहभस्म और १२।। तोले अभ्रकभस्म, ७५ तोले घी, ७५ तोले शतावर का रस और १५० तोले गोदुग्ध मिलाकर लोहे या ताम्बे की कलई की हुई कढाई मे पकावे। जब अवलेह तैयार हो जाय तब उसे अग्नि से नीचे उतार ले और निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्यों का मिश्रण करे।

प्रक्षेप द्रव्य—रससिन्दुर १२।। तोले तथा वायविडङ्ग, सोठ, धनिया, गिलोय का सत, जीरा, पलासबीज, कालीमिर्च, पीपल, गजपीपल, निसोत, हैड, बहेडा, आमला, दन्तीमूल, इलायची, एरण्डमूल, चव, पीपलामूल, चीता, नागरमोथा और विधारे के बीज का समान भाग मिश्रित ३७।। तोले चूर्ण भलीभान्ति मिश्रित करके ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। जल के साथ अथवा गोमूत्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से आमवात, शोथ, अग्निमान्द्य, हलीमक, कामला और पाण्डुरोग का नाश होता है। यह औषध रसायन है।

सं. वि.—यह औषध शीघ्र क्रिया करती है। मूत्रल, भेदक, विषनाशक, कीटाणुनाशक, कृमिनाशक, दोषानुलोमक, अग्निवर्द्धक और यकृत्-प्लीहा शोथ तथा दोषनाशक है।

इसके सेवन से पित्त विकार द्वारा पैदा हुये उदर के किसी भी भाग का शोथ दूर होता है। यह लोह आमाशय, ग्रहणी और अन्त्र के व्रण का नाश करता है।

मूत्रदोषजन्य आम वात मे यह प्रशस्त लाभप्रद है।

विश्वरूप रस [भा. भै. र. ७०६३]
(र. का. धे. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोंठ, मिर्च, पीपल, ल्हसन, कलौजी, सफेद और काला

जीरा, चीतामूल, सुगन्धवाला, खुरासानी अजवायन, कमल, पीपलामूल, हैड, मुलैठी, छोटी इलायची, जीरा, वायविडङ्ग, सेधानमक, तेजपात, नागरमोथा, सौंफ, निसोत, अजमोद, मेथी, दालचीनी, छोटी हैड, वहेडा, आमला, बेल की जड की छाल, कूडे की छाल, अतीस, विडनमक, हींग, नागभस्म, श्वेत पुनर्नवा, खस, जावित्री और जायफल १–१ भाग तथा हैडो के साथ छाछ में पकाये हुये कुचले को सबके बराबर लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलें और फिर उसमें १–१ भाग कपूर और कस्तूरी मिलाकर खरल करके रक्खें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १ मासा) ४ से ८ रत्ती तक जलके साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कफ, वायु और आमजनित विकार नष्ट होते है तथा प्रवल मलावरोध, आनाह, उग्र आटोप, ज्वर, अरुचि, विषूचिका, अन्नद्रवादि शूल, समस्त उदर रोग, ग्रहणी, यक्ष्मा और अतिसार भी नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, अग्निवर्द्धक, वात–कफ नाशक, मूत्रल, वीर्यदोष नाशक, मूत्रदोष नाशक तथा ग्रहणी विकार नाशक है। दीर्घकाल से आमविकार द्वारा उत्पन्न हुये अनेक उदर के रोग इसके सेवन से दूर होते है। यह मूत्रल होने के कारण वृक्क के शोथ को दूर करती है और वृक्क सन्यास में भी हितकर है। आम तथा वात द्वारा होनेवाले उदर के शूल, उपान्त्रशोथ और आध्मान आदि रोग इसके उपयोग से नष्ट होते है।

विषवज्रपात रस [भा. भै. र. ७०८१]
(र. का. धे. । विष.; वृ. यो. त. । त. १४५.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, (पाठान्तर के अनुसार वङ्गभस्म), हल्दी का चूर्ण, सुहागे की खील, कालीमिर्च का चूर्ण और मयूर तुत्थ समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर देवदाली के रस में खरल करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाले और सुखाकर रक्खें।

मात्राः—[शास्त्रोक्त १ निष्क (३॥ मासे)] २ से ४ गोली तक। नृमूत्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको पिलाने से स्थावर और जङ्गम भयङ्कर से भयङ्कर विष भी नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—"विष द्वारा विषो का नाश होता है"। यह उक्ति यहां भी चरितार्थ होती है। सम्पूर्ण योग विषनाशक विष के समान बन जाता है। क्योंकि यह योग क्षारीय बनता है अतः दाहक, पित्तभूयिष्ठ या प्रकृति से जो विष पित्तल है यथा–गन्धकाम्ल (Sulphuric Acid), नेत्राम्ल (Nitric Acid) तथा अन्य पित्तल विषों का नाश करता है, वे विष चाहे जङ्गम हो या स्थावर।

त्रिपाणभस्म योग [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान--रससिन्दुर १ भाग और सांभर या हिरण के सींग की भस्म ८ भाग। दोनों को एक साथ एकदिन मर्दन करके रख छोडे।

मात्रा और अनुपान—४-८ रत्ती गाय के घी या मधु के साथ देवे।

उपयोग—पार्श्वशूल (पसली के दर्द) और छाती के दर्द मे इस योग से अच्छा लाभ होता है। [सि यो. स. से उद्धृत]

वेदनान्तक रस [र. त. । त. २४]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध अफीम ३ मासे, घनसार (कर्पूर) ३ मासे, खुरासानी अजवायन ३ मासे और रससिन्दुर ६ मासे। सब द्रव्यो का भली प्रकार सूक्ष्म चूर्ण बनाकर मिश्रित करें और उस मिश्रण को भांग के रस मे खरल करे। तैयार होनेपर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक। अवस्थानुसार। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---यह "वेदनान्तक रस" शरीर के किसी भी भाग मे होनेवाली वेदना को नष्ट करता है।

सं. वि.:--यह औषध अफीम के योग से वनी हुई है अत' नाडियों पर शीघ्र ही अवसादक क्रिया करती है। इससे शरीर के किसी भी भाग की नाडियों की संज्ञा लुप्त हो जाती है और रोग के कारण विद्यमान होते हुये भी रोगी वेदना का अनुभव नहीं करता तथा शीघ्र निद्रावश हो जाता है। यह औषध शीघ्र ही शरीर मे व्याप्त हो जाती है और जल्दी ही वेदना को दूर करती है। अफीम, भांग, खुरासानी अजवायन और कपूर ये द्रव्य गति पूर्वक शरीर के तन्तुओ मे प्रसृत हो जाते है।

यों तो आधुनिक औषधियो का प्रयोग करके सभी ने इन मादक द्रव्यो की सात्मीयता प्राप्त करली है तदपि हृद्रोगी, गर्भिणी और बहुत क्षीण पुरुषो को यह न दी जाय तो उचित होगा।

वेताल रस [भा. भै. र. ७११८]

(भै. र.; र. चं.; रसे. सा. सं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च का चूर्ण, शुद्ध हरताल और स्वर्णमाक्षिक भस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। पारद और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियो के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर भलीभान्ति खरल करें और मिश्रण को अदरक के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस और मधु के साथ अथवा जल में भलीभान्ति मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से हर प्रकार का सन्निपातज ज्वर नष्ट होता है। यह रस सन्निपात के असाध्य रोगी को भी स्वस्थ कर देता है।

सं. वि.—यह योग आक्षेपनाशक, शोथनाशक, प्रलापनाशक, वातनाशक, कफनाशक और ज्वरघ्न है। इसके सेवन से निश्चेष्ट प्राणियो में, जब कि रोगी दण्डवत्, निश्चेष्ट तथा बहुप्रलापी हो जाता है, शीघ्र लाभ होता है।

वैक्रान्त रसायन [भा. भै. र. ७११२]

(र. र. स. । उ. अ, २.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म आधा भाग, नील वैक्रान्तभस्म १ भाग और अभ्रकभस्म १॥ भाग लेकर तीनो को एकत्र मिलाकर खरल करें।

मात्राः—१–१ रत्ती। मधु और घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे प्रात.काल उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन कराने से २ सप्ताह में समस्त कष्टसाध्य रोग नष्ट होते है।

सं. वि.:—रसायन-शास्त्र पारद भस्म को अकेले ही सर्वरोग नाशक और सर्वश्रेष्ठ औषध कहता है। इस योग मे वैक्रान्त और अभ्रक सत्व का मिश्रण है। अभ्रक सत्व भस्म भी पारद भस्म की तरह अनेक रोगनाशक गुणोपेत है और वैक्रान्तभस्म वज्र के समान त्रिदोष नाशक, योगवाही, अग्निवर्द्धक और रसायन है। अतः यह औषध आयु, बल, वीर्य, बुद्धि, अग्निवर्द्धक और त्रिदोष नाशक है।

इसके सेवन से शरीर के सूक्ष्म भागो मे अर्थात् वात–नाडी तन्तुओं मे किन्हीं भी कारणों से हुई विकृति शीघ्र दूर हो जाती है। नाडियों के सभी प्रकार के विकार दूर करने के लिये यह योग निस्संकोच प्रयोग मे लाना चाहिये। वैसे ही मज्जा और नाडियो के अन्तरतम कणों के शोथ के कारण आये हुये ज्वर मे भी यह औषध प्रयोग मे लाई जा सकती है। यह योगवाही और सर्व रोग नाशक औषध है।

वैश्वानर लोह [भा. भै. र. ७१४०]

(भै. र. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—इमली का क्षार, अपामार्ग का क्षार, शंखभस्म और सेधानमक प्रत्येक १–१ भाग तथा लोहभस्म ४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके रक्खे।

मात्राः—४–४ रत्ती। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे शूल के आक्रमण के समय देने से हर प्रकार के साध्य अथवा असाध्य ८ प्रकार के शूल नष्ट होते है।

सं. वि.—क्षारो द्वारा बनायी हुई यह वातानुलोमक और विबन्ध नाशक तथा शोथ नाशक औषध उदर मे वायु, पित्त तथा कफ द्वारा होनेवाले शूलों का नाश करती है। इसके सेवन से यकृत्-प्लीहा के विकार नष्ट होते हैं। अन्त्र की श्लेष्मकलाओं के शोष, शोथ और रूक्षता दूर होती है।

वैष्णव रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग, गिलोय का चूर्ण, त्रिकटु-चूर्ण और वच। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर एकत्रित सूक्ष्म चूर्ण बनावे, तदनन्तर इसको चित्रकमूल के क्वाथ की ३ भावना दे तथा गोला बनालें और उस गोले को १ प्रहर पर्यन्त चित्रकमूल के क्वाथ में दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करके फिर भलीप्रकार घोटें और तैयार होनेपर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से द्वन्द्वज, सन्निपातज, जीर्ण तथा विषमज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, दीपक, आक्षेपनाशक और दोषानुलोमक है। इसके सेवन से वात-कफज्वर, आमवात, दीर्घकाल के आमज्वर द्वारा होनेवाले अजीर्ण और चिरकाल से आनेवाला अन्त्र शैथिल्य नष्ट होता है।

इस औषध की विशेषता यह है कि अन्नज विष, शीत, कोथ, क्षोभ और अजीर्ण द्वारा उत्पन्न हुये अन्त्र के विकारो को दूर करके अन्त्र के तनाव, आध्मान, आक्षेप और शैथिल्य का नाश करती है।

शक्रवल्लभ रस [भा. भै. र. ७५२५]

(भै. र. । वीर्यस्तम्भा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म। प्रत्येक ५-५ मासे ले। वंशलोचन १। तोला और भांग के बीजों का चूर्ण ५ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य भस्मों का मिश्रण करें। तदनन्तर वंशलोचन और भांग के बीजों का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करें। मिश्रण को भांग के रस की ३-५ या ७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें। छायाशुष्क करने के बाद प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस अत्यन्त वाजीकरण, वीर्यस्तम्भक और कामिनीमद मर्दक है।

इस रस का सेवन करने से ही "इन्द्र" अप्सराओं के प्रेमपात्र बने।

सं. वि.—यह योग शोधक, रक्तवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, बल और वर्ण वर्द्धक तथा वीर्य-स्तम्भक है। प्रत्येक व्यक्ति को यह समान लाभदायी है। भांग के अतिरिक्त, इसमें कोई ऐसा मादक पदार्थ नहीं कि जिससे कोष्ट बद्धता हो या अन्य विकार उत्पन्न होने की आशङ्का हो। यह रस शीतवीर्य है, अतः शरीर मे किसी प्रकार के दाहक विकार उत्पन्न करे यह भी सम्भवित नहीं है। ऐसी शीतवीर्य औषधियां वस्तुतः वाजीकरण ही नहीं अपितु पूर्ण रसायन भी होती है।

इसका सेवन करते हुये किसी प्रकार की विकृति की सम्भावना कभी नहीं हो सकती। शारीरिक शक्ति प्रदान करने के लिये यह एक उत्तम औषध है।

शशिशेखर रस [भा. भै. र. ७५८४]

(भै. र. । वृद्ध्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म, अभ्रकभस्म और रससिन्दुर समान भाग लेकर एकत्र मिश्रण करें और घृतकुमारी की ७ भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध अन्त्रशैथिल्य और यकृत्–प्लीहा विकार नाशक है। अन्त्र श्लेष्मकलाओं के शोथ को दूर करके सम्पूर्ण उदर के पाचक रसों की उत्पत्ति करता है। रक्त की वृद्धि करता है और पित्त का निस्सरण करता है। इन गुणो से यह रस अन्त्र को सक्रिय बनाता है और वातानुलोमन करता है, जिससे धीरे २ अन्त्र के किसी भी भाग में किसी प्रकार की विकृति हो–वह दूर होती है और उदरच्छदाकला–जो उदर वात विकार के कारण जीर्ण और शोथमयी हो जाती है–निर्विकार होकर स्वस्थावस्था को प्राप्त हो जाती है।

दीर्घकाल तक वातज द्रव्य का त्याग करके, यान–अर्थात् साइकिल, घोडा, ऊंट पर न चढते हुये, शान्तिपूर्वक चलते अपना काम निकालनेवाले संयमी मनुष्यों को यह रस अवश्य लाभदायी सिद्ध होता है।

शंखचूड रस [भा. भै. र. ७५२९]

(र. चं, यो. र., र. रा. सुं. । हिक्का.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म

१ भाग, वैक्रान्तभस्म ३ भाग और शंखभस्म २० भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर खरल करे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ४ मासा) २ से ४ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मरणासन्न हिचकीवाले रोगी की भी हिचकी तत्काल बन्द हो जाती है। यह पांचो प्रकार की हिक्का को बन्द करता है।

स. वि.—सभी द्रव्य अत्यन्त गुणकारी, वातदोषनाशक, मस्तिष्क, फुफ्फुस और हृदय को शक्ति देनेवाले तथा आमाशय, अन्त्र, क्लोम और वृक्क के विकारों को दूर करनेवाले हैं, अतः यह योग किसी भी कारण से उत्पन्न हुई हिचकी का नाश करनेवाला है।

शंखोदर रस [भा. भै. र. ७५६२]

(र. रा. सुं; वृ. नि. र. । अतिसारा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शुद्ध वच्छनाग और त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल)। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर लोह और वच्छनाग के सूक्ष्म चूर्ण को मिलावें और फिर उसे सब द्रव्य से ४ गुने शंख में भरकर उसका मुंह दूध में पीसे हुये सुहागे से बन्द करदे और शंख को शराब सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंकदें। पुट के स्वाङ्गशीतल होनेपर शंखयुक्त औषध को निकालकर शंखसहित पीस दें और उसमे १ भाग शुद्ध वच्छनाग मिलाकर खरल करके रक्खे।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्म तथा प्रयोग विधि—

(१) इसे अतिसार मे जायफल, भांग के चूर्ण और मधु के साथ दे।

(२) ग्रहणीरोग मे चीते के चूर्ण, अदरक के रस और मधु के साथ अथवा भांग और सोंठ के चूर्ण तथा मधु के साथ प्रयोग करें।

(३) इसे कालीमिर्च के चूर्ण और घी के साथ देने से अग्निमान्द्य, क्षय (अन्त्रक्षय) और उदरस्थ वायु का नाश होता है।

पथ्यः—इसके सेवनकाल में दही, तक्र, दूध और लाभदायक शाकों के साथ पथ्याहार देना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध शोधक, दीपक, आक्षेपनाशक, यकृत-प्लीहाविकार नाशक, आमशोषक, अन्त्रशैथिल्य नाशक तथा उदर पोषक है।

इसके सेवन से दीर्घकाल से उत्पन्न हुई उदर की श्लेष्मकलाओं की संग्रहवृत्ति नष्ट हो जाती है तथा अन्त्र मेद रहित होकर स्वस्थ हो जाता है।

शंखगर्भपोटली रस [भा. भै र. ७५२८]

(शंखनाभि रस)

(र. रा. सुं.; र. र.; बृ. नि. र.; र. का. धे. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१६ निष्क (२० तोले) शंखनाभि को गोदुग्ध में पीसकर उसकी मूषा बनावे और आधी निष्क पारदभस्म तथा ३ निष्क गन्धक एकत्र खरल करके उसे शंखनाभि वाले मूषा मे रखकर मूषा के मुंह को बन्द करदें और मूषापर कपडमिट्टी का लेप करें । तदनन्तर उसे सुखाकर गजपुट मे पकावें और स्वाङ्गशीतल होनेपर शंख की मूषा सहित खरल करके सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१–१ रत्ती । पीपल के चूर्ण और मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह "मृगाङ्क रस" के समान क्षय रोग को शीघ्र ही नष्ट कर देता है ।

सं. वि.—वात द्वारा शोषित शरीर के पुष्ट करने के लिये यह औषध अनुपमेय है । इसके सेवन से अन्त्रशैथिल्य दूर होता है । अग्नि की वृद्धि होती है । अन्त्र की श्लेष्मकला के दोष नष्ट होते है तथा यकृत्–प्लीहा और संयुक्त गिरा अपने काम को स्वस्थ रूप से करती है । यह वातज वस्ति दोषों को भी नाश करता है ।

शिरोरोगारि रस [भा. भै. र. ७५८८]

(र. र. स. । उ. अ. २४.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, कान्तलोह भस्म और ताम्रभस्म समान भाग लेकर सबको १ दिन थूहर के रस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । ऊष्ण जल के साथ मिश्रित करके अथवा मधु और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से १ सप्ताह में सूर्यवर्तादि शिरोरोग नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध श्लेष्मकलाओं के शोथ, शोष और अनावश्यक स्रावो का नाश करनेवाली है । नाडी की उग्रता को दूर करती है। दोषों का अनुलोमन करती है। वातनाशक तथा भेदक है ।

० शिरःशूलान्तक नस्य [रस तन्त्र सार]

प्रथम विधिः—**द्रव्य तथा निर्माण विधान**—कायफल ५ तोले, नकछीकनी २ तोले, छोटी पीपल, तुलसीपत्र, वायविडङ्ग, छोटी इलायची के बीज और कपूर, प्रत्येक १–१ तोला और देवदाली ६ माशा लें । सबको कूटकर कपडछन करले । इसमे से १–१ रत्ती आवश्यकता पडने पर सुंघावें ।

उपयोगः—इस नस्य से शिरदर्द, जुकाम, तन्द्रा, श्वासावरोध आदि दोष दूर होते है।

दूसरी विधिः—हरड, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ६–६ माशे, वच्छनाग २ माशे तथा पीपल (अश्वत्थ) की छाल की राख १॥ तोला लें। सवको अच्छी रीती से खरल करके नस्य तैयार करले।

उपयोगः—इस नस्य मे से आध रत्ती सुंघाने से कफ, कृमि आदि दोष निकल कर शिरदर्द शमन होता है। [रस तन्त्र सार से उद्धृत]

शिलाजतु योग [भा. भै. र. ७५९३]

(यो र. । यक्ष्मा.; ग. नि. । राजयक्ष्मा. ९; र. चं., भै. र.; र. रा. सुं., र. का. धे.। क्षय; रसे. चिं. म. । अ. ९.

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शिलाजीत, सोंठ, मिर्च, पीपल, स्वर्णमाक्षिकभस्म और लोहभस्म समान भाग लेकर चूर्ण वनालें।

मात्राः—४ से ६ रत्ती तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय शीघ्र नष्ट होता है। इसका सेवन करते दुग्धाहार करना चाहिये।

सं. वि.—यह योग वीर्यवर्द्धक, वलवर्द्धक, वातनाशक और अग्निवर्द्धक है। इसके सेवन से वस्तिगत, वीर्यकोष तथा वीर्यग्रन्थि–गत विकार नष्ट होते है। वीर्य की अतिक्षीणता से प्रतिलोम क्षय होते हुये राजयक्ष्मा हो जाता है, ऐसी परिस्थिति को रोकने तथा इस प्रकार के राजयक्ष्मा का निवारण करने के लिये "शिलाजतु योग" का प्रयोग वहुत ही लाभकारी सिद्ध होता है, क्योंकि वीर्यवर्द्धक होने से यह वीर्य की क्षीणता का नाश करता है और वीर्य की वृद्धिसे अन्य सव धातुओं की तथा शरीर की पुष्टि होती है। धीरे २ धातुओं के दोष दूर हो जाते है और यक्ष्मा का निवारण हो जाता है। अतः प्रतिलोम यक्ष्मा के लिये यह उत्तम औषध है।

शीतभञ्जी रस [भा. भै. र. ७६३३]

(भै. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध नीला थोथा १ भाग, शुद्ध शंख (शम्वूक) २ भाग और शुद्ध हरताल ४ भाग लेकर सवको एकत्र खरल करे और फिर घृतकुमारी के रस मे घोटकर गोला वनाले। इसे शराव सम्पुट मे वन्द करके गजपुट मे पकावे। जव सम्पुट स्वाङ्गशीतल हो जाय तो औषधि को निकालकर खरल करके सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त विषमज्वर नष्ट होते है।

शीताङ्कुश रस [भा. भै. र. ७६३७]

(यो. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध नीलाथोथा, सुहागे की खील, शुद्ध पारद, खपरिया, शुद्ध वच्छनाग और शुद्ध गन्धक तथा हरताल। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर मिश्रण को १ घडी करेले के रस मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। खांड या जीरे के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि शीतज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध स्वेदल, शोधक, आक्षेपनाशक, वातानुलोमक तथा कीटाणुनाशक है। इसके सेवन से सब प्रकार के मलेरिया के कीटाणुओ का नाश हो सकता है।

शीतारि रस [भा. भै. र. ७६४०]

(वै. जी. । वि. ५.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म, सुहागे की खील, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध नीला थोथा, शुद्ध पारद, खपरिया और शुद्ध हरताल। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर करेले के रस में घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। जीरे के चूर्ण और खांड के साथ मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से एकाहिक आदि ज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक, आमनाशक, अन्त्रशोधक, दोषानुलोमक और कीटाणुनाशक तथा विषनाशक है।

इसके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है तथा पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

शीतांशु रस [र. यो. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरताल १–१ भाग और सोंठ, मिर्च, पीपल २–२ भाग। सबको एकत्रित सूक्ष्म चूर्ण पर्यन्त खरल करें और निम्बु के रस की ७ भावना देकर पिष्टि तैयार होनेपर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। हरीतकि चूर्ण और मधु मिलाकर अथवा अदरक के रस और गरम जल के साथ सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शीतज्वर, सन्निपात, कामला, ५ प्रकार के गुल्म,

सर्वविधश्वास, कास, उदररोग, वमन, ८० प्रकार के वातरोग, ८ प्रकार के शूलरोग, नाभि, और कुक्षिगत विद्रधि, आध्मान, आनाह, विष, सन्ताप और सर्वाङ्गदाह तथा जङ्गम और स्थावर विष, हिक्का, शोथ, भ्रम, मूर्च्छा तथा तिमिर का नाश होता है। यदि नीम के स्वरस में घिसकर लेप किया जाय तो यह दाह और विसर्प का नाश करता है। यदि खाया और वाह्य लेप भी किया जाय तो ग्रन्थि और अर्बुद का नाश करता है। इसका लेप करने से दन्तरोग, जिह्वारोग और नेत्ररोग मिटता है। आक के पत्ते के रस में मिलाकर कानमे डालने से कर्णरोग नाशक है। निर्गुण्डी के स्वरस में मिलाकर नस्य देने से यह अपस्मार और शिरोरोग का नाश करता है। जौ के बराबर पानी में घिसकर यदि इसका अञ्जन लगाया जाय तो नेत्ररोग का नाश करता है। सन्निपात, कामला, ज्वर, धनुर्वात, भूतबाधा और शोफरोगों का नाश करता है।

६ शीघ्रप्रभाव रस [भा भै. र. ७६२३]
(र. र. स. । उ ख १६.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—(१) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलोह भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध सौवीराञ्जन और विमलभस्म समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे उसमें अन्य औषधियां मिलाकर भलीभान्ति खरल करें। मिश्रण में थोडा सा तेल मिलाकर मन्दाग्नि पर भून ले।

(२) पीपलामूल, जीरा, चित्रकमूल, अजवायन, नागरमोथा, शुद्ध वच्छनाग, अमचूर, वेलगिरी और मोचरस समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को भी उपरोक्त विधि से तेल मे भून लें।

(३) दो भाग नं. १ की औषध मे एक भाग नं २ की औषध मिलाकर अच्छी तरह खरल करें और फिर उसे पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ) के क्वाथ की ७ भावना तथा अरलु के क्वाथ की भी ७ भावना देकर [शास्त्रोक्त आधा २ निष्क (२॥—२॥ मासे)] २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। सोंठ और नागरमोथे के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भयङ्कर संग्रहणी, अतिसार, आध्मान, अरुचि, वायु, अग्निमान्द्य और हिचकी का नाश होता है। मल त्याग करने के बाद भी मल त्याग करने की इच्छा बनी रहे—ऐसी विकृति को नाश करने के लिये यह उपयुक्त औषध है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, दीपक, वातानुलोमक, शूलनाशक, उदरच्छदाकलागत—वात नाशक तथा अन्त्रशैथिल्य नाशक है।

इसके सेवन से वायु द्वारा होनेवाले आमाशय और पक्वाशय के सभी दोष नष्ट होते हैं। इस औषध को देने के थोडी देर बाद ही वातादि दोषो से अन्त्र की निर्मुक्ति होती है।

शूलकुठार रस [भा. भै. र. ७६५२]

(वृ. नि. र. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सुहागे की खील, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, हर्र, बहेडा, आमला, सोठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध हरताल, शुद्ध वच्छनाग, ताम्रभस्म और शुद्ध जमालगोटा समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर भांगरे के रस मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। आवश्यक्तानुसार अदरक के रस अथवा कालीमिर्च के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के (उदर) शूल नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, रेचक, दोषानुलोमक, वात–कफनाशक, अग्निवर्द्धक और आक्षेपनाशक है।

इसके प्रयोग से दीर्घकाल से एकत्रित हुवा अन्त्र के अन्दर का मल पित्त निस्सरण के साथ साथ निकल जाता है और उदर की श्लेष्मकलाये यथावत् आक्षेप रहित होकर पाचक रसों का यथावश्यक उत्पादन करती है। इस से पाचन क्रिया निर्विकार होती है, आमादि के संग्रह का नाश होता है और वायु का अनुलोमन होता है। यह यकृत् और प्लीहा के विकारो को भी शीघ्र शान्त करता है तथा उदर के किसी भी भाग के शोथ, शैथिल्य आदि दोषों का नाश करता है।

शूलगजकेसरी रस [भा. भै. र. ७६५४]

(रसे. सा. सं.; र. चं.; र. रा. सुं., भै. र., र. का. धे. । शूला.; र. प्र. सु. । अ. ८; रसे. चि. म. । अ. ९, वृ. यो. त. । त. ९४.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग (पाठान्तर के अनुसार गन्धक १ भाग) लेकर दोनो की कज्जली बनावें और उसे ३ भाग शुद्ध ताम्र के सम्पुट में बन्द करके सम्पुट को मिट्टी के पात्र मे ऊपर नीचे सेधानमक का चूर्ण भरकर बन्द करे और उसे कपडमिट्टी करके गजपुट मे पकावे। तदनन्तर उसके स्वाङ्गशीतल होनेपर उसमे से ताम्र सम्पुट को निकालकर पीस ले।

मात्राः—२–२ रत्ती। पान मे रखकर खावे और ऊपर से हींग, सोंठ, जीरा, वच और कालीमिर्च का (शास्त्रोक्त १। तोला) १॥ मासा चूर्ण मन्दोष्ण जल के साथ पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से असाध्य शूल भी नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, शोधक, शूल नाशक, रसायन और शक्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से उदर में उत्पन्न हुई वात–कफज शोथ नष्ट होती है। यकृत् और प्लीहा सक्रीय होते है और उपान्त्र प्रदाह, अन्त्रशैथिल्य, आमाशय, ग्रहणी और पक्वाशय मे होनेवाले वातज और आमज शूल नष्ट होते है।

शूलदावानल [भा. भै. र. ७६५९]

(वै. र.; र. का. धे., यो. र.; वृ. नि. र.; र. चं. । शूला.; यो त. । त. ४४)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध वच्छनाग और शुद्ध गन्धक ५–५ तोले। कालीमिर्चे, सोंठ, मिर्चे, पीपल और भुनीहुई हीग १०–१० तोले। पाचो नमक का मिश्रण तथा इमली का क्षार प्रत्येक ४०–४० तोले। तपा तपा कर ७ वार जम्बीरी के रस मे बुझाया हुवा शंख ४० तोले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तदनन्तर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको १ दिन नीम्बु के रस में घोटकर (जंगली वेर के समान) ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। यथादोषानुसार। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के (उदर) शूल नष्ट होते हैं।

स. वि.—आमाशय और पक्वाशय मे खाद्य विकार द्वारा वात, पित्त, कफ तथा संयोगज अनेकविध शूल उत्पन्न होते है, जिनमे या तो पार्श्वों मे–मल अथवा वायु–अन्त्र अथवा उदरच्छदाकला मे एकत्रित अथवा प्रविष्ट होकर शूल का कारण बनता है अथवा दीर्घकाल से शुष्कमल वात सहित उदर के किसी भाग विशेष मे क्षोभ और दाह उत्पन्न करके शूल का कारण बनता है, तथा अन्त्र के एक भाग विशेष मे क्षोभ के कारण अथवा आहार विष के कारण शूल उत्पन्न होता है, इसे उपान्त्र दाह (Appendicitis) कहते हैं; अथवा यकृदावर्ण में वायु द्वारा, शोथ और यकृत् कोषो में विकृति उत्पन्न होती है, इससे यकृदावर्ण शूल होता है। इसी प्रकार पित्ताशय मे वायु की क्रिया से पित्त शुष्क हो जाता है, इससे पित्ताश्मरी–शूल होता है अथवा पित्ताशय–शूल होता है। ग्रहणी में भी आम की उत्पत्ति और आम के अवरोध के कारण इस प्रकार का शूल उत्पन्न होता है। वैसे ही शूल विविध प्रकार के कारणों से अन्त्र के, वस्ति के, गुद के और उदरच्छदाकला के एक भाग अथवा अनेक भागों मे उत्पन्न होते है। सभी शूलों में वात प्रधानता पाई जाती है।

आमदोष नाशक, अग्निवर्द्धक, पित्तनिस्सारक, अन्त्रशैथिल्य नाशक, शक्तिप्रद, दोषानुलोमक और वातनाशक द्रव्यो के सेवन से उक्त प्रकार के शूल नष्ट होते है।

"शूल्दावानल रस" इन सभी गुणों युक्त है। वायु का अनुलोमन और पित्त का निस्सरण करता है और आक्षेप नाश करके एकत्रित हुये दुष्ट मल को स्थानभ्रष्ट करता है।

इसका सेवन उपान्त्रशोथ, उपान्त्रशूल, ग्रहणीशूल, पित्तशूल और अन्त्र में मेदजन्य शूलादि रोगों द्वारा उत्पन्न हुये रोगों का नाश करता है। यह पाचक और अग्निवर्द्धक है।

शूल निर्मूलन रस [र. त. । त. २४]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्र्यूषण (सोंठ, मिर्च, पीपल), गन्धपाषाण, कालीमिर्च, शंखभस्म, सैन्धव नमक, रससिन्दूर, जीरा, अम्लवेतस। प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग ले तथा सबसे आधा विषतिन्दुक (कुचला) ले। सबको एकत्र मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और फिर अदरक के रस की भावना देकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अतिसार, ग्रहणी, विषूचिका और गुल्म का नाश होता है। बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि होती है। यह औषध दीपक, पाचक और मन्दाग्नि नाशक है।

शूलान्तक रस [भा. भै. र. ७६६५]

(र. र. स. । उ. अ. १८; र. चं. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म और अभ्रकभस्म ५–५ तोले, ताम्रभस्म १० तोले, शुद्ध गन्धक १५ तोले, हरताल भस्म (या शुद्ध हरताल) १। तोला, रौप्यमाक्षिक भस्म १। तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १। तोला, कलिहारी की जड २॥ तोले, सीसाभस्म २॥ तोले और निसोत का चूर्ण २० तोले लेकर सबको एकत्र मिलाकर भुई आमले के स्वरस और दन्तीमूल के क्वाथ की ७ भावना देकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा तथा उपयोग—१–१ गोली अदरक के रस के साथ देने से विरेचन होकर समस्त प्रकारके शूल नष्ट होते है।

विरेचन होने के बाद दही भात देना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध शोधक, कीटाणुनाशक, दोषानुलोमक, मूत्रल, मूत्रदोषनाशक, शोथनाशक, दाहनाशक और विरेचक है।

इसके सेवन से वस्ति, मूत्रपिण्ड, उदर, उपान्त्र तथा उदर के अन्य भागो मे होनेवाले शूल नष्ट होते है।

शूलारि रस [भा. भै. र. ५५९२]

(र. का. धे. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध जमालगोटा, चित्रकमूल, सोठ, लौंग, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, कालीमिर्च, विधारा और शुद्ध वच्छनाग। प्रत्येक द्रव्य सम भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर मिश्रण को २

प्रहर घोटकर दन्तीमूल के क्वाथ की १५ भावना तथा निम्बु के रस, चीते के क्वाथ और अदरक के रस की ३-३ भावना और विधारे के रस की ७ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१ से २ गोली। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भूख खुलती है और शूल, जीर्णज्वर, कास, अरुचि, पाण्डु, उदररोग, आम, वस्ति का आटोप (अफारा), हलीमक और अग्निमान्द्य का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध भेदक, दोपानुलोमक, आमनाशक, अग्निवर्द्धक और क्षोभनाशक है। इसके सेनन से दीर्घकाल से एकत्रित हुवा दुष्ट मल, आम अथवा वात शीघ्र स्थानभ्रष्ट होकर बाहर निकल जाता है और कण्टक के समान शूल उत्पन्न करनेवाला कोई भी अवरुद्ध कारण नष्ट हो जाता है।

प्रत्येक प्रकार के शूल जो क्षोभ, कोष्ठवद्धता और वायु के कारण से हो इसके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाते है।

यह अन्त्राक्षेप का नाश करती है और उदर को दुष्ट मल से मुक्त रखती है।

शृङ्गाराभ्रम् [भा. भै. र. ७६६९]

(र. चं । कासा ; धन्वं , र. र. । वाजीकरणा., रसे. सा. सं., भै. र., र. रा. सुं. । कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कृष्णाभ्रक भस्म १० तोले तथा कर्पूर, जावित्री, सुगन्ध वाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीसपत्र, मोचरस, नागकेसर, कूठ और धाय के फूल ३।।।-३।।। मासे एवं हर्र, आमला, बहेडा, सोंठ, मिर्च, पीपल १५-१५ रत्ती, इलायची के फल और जायफल ७।।-७।। मासे, शुद्ध गन्धक ७।। मासे और शुद्ध पारा ३।। माशे ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर पानी के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। अदरक के रस और पान के साथ खाकर ऊपर से थोडा पानी पीना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निमान्द्य, ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, क्षय, कास, श्वास, शोष, नेत्ररोग, प्रमेह, मेदविकार, वमन, शूल, अम्लपित्त, विष, पीनस, प्लीहा, आमाशय के रोग, कफ-वायु और पित्तरोग नष्ट होते है।

यह रस बल्य, वृष्य, यौवनदाता और सर्वरोग नाशक है। इसको सेवन करनेवाले कामी पुरुषों की सम्भोगशक्ति शान्त नहीं होती।

इसके सेवन काल मे घृतयुक्त पथ्याहार—गोदुग्ध, मुद्गयूष और मांस रस के साथ करना चाहिये तथा इच्छानुसार मिष्टान्न खाना चाहिये। कुछ दिनो तक शाक और अम्ल पदार्थों को छोडकर इसी प्रकार पथ्यपालन करना चाहिये और फिर इच्छानुकूल आहार करना चाहिये।

शोथ कालानल रस [भा. भै. र. ७६७०]
(भै र । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—चीतामूल, इन्द्रजौ, गजपीपल, सेंधानमक, पीपल, लौंग, जायफल, सुहागे की खील, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर (पानी के साथ खरल करके) १–१ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः—१–१ गोली। प्रातःकाल कोकिलाक्ष (तालमखाने) के रस मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से साध्य हो या असाध्य ज्वर, कास, श्वास, शोथ, दुःसाध्य प्लीहा, प्रमेह, मन्दाग्नि, शूल और संग्रहणी का नाश होता है।

यह औषध शोथ का अवश्यमेव नाश करती है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, वातानुलोमक, रोचक, आध्मान नाशक, रक्तवर्द्धक और शोधक है। अन्त्र तथा यकृत्—प्लीहा रोगों के कारण उत्पन्न हुये शोथ इसके सेवन से शीघ्र मिट जाते है। आमसंग्रह द्वारा वक्ष के अवयवो में यथा फुफ्फुसावर्ण में वातज अथवा आमज विकार, हृन्मांस—कृच्छता, वक्षशूल आदि जो दोष उत्पन्न होते है वे इस औषधि के सेवन से—आम का शोषण होने के कारण—नष्ट हो जाते है, इसी प्रकार दीर्घकाल से आम की उत्पत्ति करनेवाले अन्त्र के विकार से रक्त का अभाव हो जाता है और हृदय इच्छित प्रमाण मे रक्त का परिभ्रमण नहीं कर सकता जिससे दूरस्थ अङ्गो पर शोथ उत्पन्न हो जाता है, ऐसे आम के प्रभाव से हृदय द्वारा उत्पन्न हुवे शोथ को भी "शोथ कालानल रस" का सेवन दूर करता है और कोकिलाक्ष रस के साथ देने से हृदय की गति यथावश्यक बढजाती है तथा शोथ का नाश होता है।

शोथारि रस [भा. भै. र. ७६७५]
(र चं । वृ. नि. र., यो. र. । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिंगुल और जमालगोटा तथा कालीमिर्च, सुहागे की खील और पीपल का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके रक्खे।

मात्राः—२–२ रत्ती। घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के शोथ नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध तीक्ष्णरेचक, आमनाशक, वातानुलोमक, अन्त्रशोधक और कफ-वात नाशक है। उदर, वस्ति, यकृत्-प्लीहा आदि दोषों से उत्पन्न हुये शोथ का नाश करती है।

शोथारि रस [भा. भै. र. ७६७४]
(भै. र. । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हिंगुलोत्थ पारद को श्वेतदूर्वा (दूब) के रस की भावना देकर उसको १ मूषा में भरले और उसके ऊपर सफेद दूब और अजवायन का चूर्ण इतना डालें कि मूषा भरजाय। तदनन्तर मूषा पर ढकना लगाकर उसकी सन्धि बन्द करले और फिर ४—५ कपडमिट्टी करके सुखालें। सूखजाने पर उसे लघुपुट मे पकावे। जब मूषा स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसमें से पारे को निकालकर उसी के बराबर गन्धक मिलाकर कज्जली बनावे और तैयार होने पर कज्जली मे शुद्ध वच्छनाग, ताम्रभस्म और वङ्गभस्म प्रत्येक कज्जली के समान मिलाकर भलीभान्ति मिश्रण करके रक्खें।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती।

सेवन विधि—औषध को जिह्वा पर रखकर ऊपर से ५ तोले खांड का शरबत पियें अर्थात् औषध को खांड के रस के साथ निगलजांय।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह सर्वश्रेष्ठ शोथघ्न औषध है। इसके सेवन से मूत्र विरेचन होकर शोथनष्ट हो जाता है।

सं. वि.—वृक्क सन्यास मे मूत्र का अवरोध होकर सर्वाङ्गशोथ हो जाता है, चाहे जैसी रेचक औषधियों का सेवन कराया जाय तो भी यह शोथ दूर नहीं होता, अपितु उदरच्छदा-कला के अन्दर जलीयांश की वृद्धि होती चली जाती है ऐसी परिस्थिति मे आवश्यकता इस बात की होती है कि वृक्कों की दुर्गति को दूर किया जाय और इस प्रकार मूत्र मार्ग को सक्रिय करके एकत्रित जलीयांश का परित्याग कराया जाय यह तभी सम्भव है जब वृक्क सक्रिय हों।

"शोथारि रस" आक्षेपनाशक, कीटाणुनाशक, वस्तिशोधक, दोषानुलोमक और विशेष मूत्रल है। इसके सेवन से वृक्क शीघ्र सक्रिय हो जाते है और मूत्र विरेचन करते है, जिससे शोथ शीघ्र नष्ट हो जाता है।

वृक्क विकारों मे पारद के योगो का देना अयुक्त माना जाता है,परन्तु "शोथारि रस" मे पारद होते हुये भी योग वैशिष्ट्य के कारण पारद के दुर्गुण नहीं रह जाते और औषध परिपूर्ण रूपेण वृक्क दोषनाशक बन जाती है।

शोथोदरारि लोह [भा. भै. र. ७६७७]

(भै. र.; वं. से ; र. र. । उदरा, र का. धे. । शोथा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पुनर्नवा (विसखपरा—साठी), गिलोय, चीता, इन्द्रायण की जड, मानकन्द, सुहाञ्जने की छाल, हुल हुल और आक की जड ४०—४० तोले लेकर सबको ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर रहने पर छान ले। तदनन्तर उसमे लोहभस्म ४० तोले, घी १ सेर, आक का दूध २० तोले, थूहर (स्नुही) का दूध ४० तोले, शुद्ध गूगल १० तोले और ५ तोले शुद्ध गन्धक तथा २॥ तोले पारद की कज्जली मिलाकर पुन पकावे। जब पाक तैयार हो जाय तो उसमे शुद्ध जमालगोटा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कंकुष्ठ, चीतामूल, जिमीकन्द (सूरण), शरपुंखा, घण्टाकर्ण, पलाश के बीज, क्षीर कन्चुकी, मूसली (तालमूली), हर्र, वहेडा, आमला, वायविडङ्ग, निसोत, दन्तीमूल, हुल हुल, इन्द्रायग की जड, पुनर्नवा और वज्रवल्ली (हडजौडी), इनका समान भाग मिश्रित चूर्ण ४० तोले मिलाकर स्निग्ध पात्र मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के शोथ नष्ट होते है। जो शोथ पुराने और कष्ट साध्य हो वे भी इसके सेवन से नष्ट होते है। शोथोदर के लिये इससे उत्तम और कोई औषध नहीं है। उदर रोग, पाण्डु रोग, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर, कुष्ठ, ज्वर और गुल्म का भी इसके सेवन से नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध मूत्रल, आमनाशक, पाचक, अन्त्रशोधक, रक्तवर्द्धक, वात—कफ नाशक, भेदक, वातनाडी शक्तिप्रद, रक्तशोधक और विषनाशक है।

इसके सेवन से अन्त्र—शूल, शोष, निष्क्रियता, यकृत्—प्लीहा विकार आदि रोग नष्ट होते है। वस्ति का शोधन होता है। वृक्क सक्रिय और निर्विकार होते है। यह मूत्रल और रेचक गुणयुक्त है। किसी भी कारण से अर्थात् वृक्क, हृदय, उदर विकारादि से उत्पन्न हुए शोथ इसके सेवन से नष्ट होते है।

शोथ रोग को ठीक होने मे, भले ही औषधि की सक्रिया से शोथ तुरन्त निकल जाय, अवश्य समय लगता है—शोथ विकार मे सम्पूर्ण श्लेष्मकला तन्तुओ मे कुछ न कुछ विकृति गहनतम प्रविष्ट हो जाती है—इस लिये।

शोथाङ्कुशो रस [भा. भै र. ७६७२]

(भै. र । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसा

भस्म और अभ्रकभस्म समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियां मिलाकर सबको संभालू, आस्फोता, कैथ की छाल, इमली की छाल, पुनर्नवामूल, वेलगिरी और भांगरे के रस या क्वाथ की १-१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः--१-१ गोली। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज तथा सर्वाङ्ग शोथ और ज्वर, अरुचि तथा पाण्डुरोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषधि आमनाशक, अन्त्रशोथ नाशक, अन्त्रशैथिल्य नाशक, शोधक और यकृत्-प्लीहा वृद्धि, शोथ, शूल आदि रोगों का नाश करनेवाली तथा उदर, प्लीहा और यकृत् के कारण होने वाले पित्त और कफज शोथो का नाश करती है।

शोथारि मण्डूर [भा. भै. र. ७६७३]

(भै र. । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गोमूत्र मे शुद्ध करके भस्म किये हुये मण्डूर को संभालू, मानकन्द और अदरक के रस की १-१ भावना देकर सुखाले। तदनन्तर इस प्रकार के ३५ तोले मण्डूर को उससे ८ गुने गोमूत्र मे पकावे और अवलेह के समान गाढा हो जाने पर उसमे २॥-२॥ तोले हर्र, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल और चव का चूर्ण मिलादे तथा ठण्डा होने पर २० तोले शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—४-४ रत्ती। गोमूत्र, अथवा पुनर्नवा क्वाथ या त्रिफला क्वाथ या दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सर्वदोषज सर्वाङ्गशोथ नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध रक्तवर्द्धक, कफनाशक, पाचक, आमशोषक, यकृत्-प्लीहावृद्धि नाशक औ जीर्ण अजीर्ण नाशक है।

दीर्घकाल के आम विकारो से उदरकला तथा यकृत्-प्लीहा में शिथिलता, गुरुता और कठिनता आजाती है जिससे शरीर धीरे २ रक्तहीन, श्वेत और शोथयुक्त प्रतीत होने लगता है। ज्यों ज्यों विकृति विषमता की वृद्धि होती है त्यो त्यो विविध अङ्गों पर शोथ प्रकट होने लगता है। इस प्रकार के शोथ को दूर करने के लिये यह औषध प्रशस्त है। दीर्घकालीन यकृत्-प्लीहा विकार इसके सेवन से मिट जाते है।

शोथारि लोह [भा. भै. र. ७६७६]

(भै. र. । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोंठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण तथा जवाखार १-१ भाग और लोहभस्म ४ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर खरल करे।

मात्राः—२ से ४ रत्ती तक। त्रिफला के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शोथ अत्यन्त शीघ्र मिट जाता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आम नाशक, दीपक और उदरकला शोथ तथा व्रणनाशक है। इसके सेवन से यकृत्–प्लीहा विकार दूर होते है और यकृत् विकार से उत्पन्न हुये शोथ, पाण्डु, मूत्रावरोध आदि रोग नष्ट होते है।

श्री डामरानन्दाभ्रम् [भा. भै. र. ७६७८]

(भै. र. । कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—छोटी कटेली, वासा, शालपर्णी, वेलछाल, अरलू छाल, पाढल, पृश्निपर्णी, भारङ्गी, अदरक, चीतामूल, गोखरू, चव्य, अपामार्ग और कौच की जड इनके १०–१० तोले रस (या क्वाथ) मे ५–५ तोले अभ्रकभस्म को पृथक पृथक मर्दन करके सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—आधी आधी रत्ती। जल अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ५ प्रकार की खांसी, स्वरभेद, उरःक्षत, हिचकी, ज्वर, श्वास, पीनस, प्रमेह, गुल्म, अरुचि, क्षय, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, दाह, मोह, सर्वदोषज शूल, कफ, कृमि, छर्दी, पाण्डु, हलीमक, गलरोग, विस्फोटक, कामला, अग्निमान्द्य, ग्रहणी, यकृत्, प्लीहा, अर्श तथा आम और कफजनित रोगो का नाश होता है।

यह रस वल्य, वृष्य, धातुवर्द्धक, मेध्य, हृद्य और रसायन है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, कफपाचक, दोषानुलोमक मूत्रल, अग्निवर्द्धक और उदरगत कफ तथा आम जनित दोषो से होनेवाले शूल, शोथ, प्रमेह आदि अनेक विकारो का नाश करती है।

श्लेष्मकालानल रस [भा. भै. र. ७६८३]

(भै. र, र रा. सु. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध तूतिया, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हरताल, कायफल, धतूरे के बीज, हींग, सोनामक्खी भस्म, कूठ, निसोत, दन्तीमूल, सोठ, मिर्चे, पीपल, अमलतास की मज्जा, वङ्गभस्म और सुहागा समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर थूहर (सेहुड) के दूध मे घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस या गरम पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वात–कफज विकार, अग्निमान्द्य, पित्त–कफज

विकार, जीर्णज्वर, शोथ और कफोल्वण सन्निपात का नाश होता है। इसका सेवन कराते हुये कोष्ठ और काल का विचार करना चाहिये।

सं. वि.--यह औषध शोधक, विष और कीटाणुनाशक और रेचक है। इसके सेवन से आम और कफ विरेचन होकर नष्ट हो जाते हैं और अग्नि की वृद्धि होती है।

आमाशय की कलाओं मे विकृति होने से कफ अधिक पैदा होता है जिससे कण्ठ, नासिका आदि के कफज विकार उत्पन्न होने लगते हैं। इस औषध के सेवन से आमाशय शुद्ध हो जाता है और विरेचन होकर मल आम आदि निकल जाते है और कोष्ठ का शोधन हो जाता है। इसके साथ २ इन दोषो द्वारा होनेवाले विकार नष्ट हो जाते हैं।

कफ द्वारा यदा कदा पाचन क्रम भङ्ग हो जाता है। इसके सेवन से यह विषमता दूर होती है और मन्दाग्नि का नाश होता है।

श्लेष्मशैलेन्द्र रस [भा. भै र. ७६८६]

(भै. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सोठ, मिर्च, पीपल, सफेद और काला जीरा, कचूर, काकडासिगी, अजवायन, पोखरमूल, हींग, सेधानमक, जवाखार, सुहागे की खील, गजपीपल, जावित्री, अजमोद, लोहभस्म, जवासा, लौंग, शुद्ध धनूरे के बीज, शुद्ध जमालगोटा, कायफल और चीता १।-१। तोला लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर पत्थर के खरल मे डालकर वेल के जड की छाल, आक के जड की छाल, चीतामूल, दन्तीमूल, अपामार्ग, जीवन्ती, वासा, संभालू, अरणी, धतूरा, काला जीरा, फरहद, पीपल, कटेली और अदरक इनके जड के रस की, धूप मे १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१ से २ गोली तक। अदरक के रस या ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २० प्रकार के कफरोग, शिरोरोग, २० प्रकार के प्रमेह, ५ प्रकार के गुल्म, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, आमवात, ५ प्रकार के पाण्डु, कृमिरोग, स्थूलता, उदावर्त, ज्वर, कुष्ठ और गात्रकण्डू (खूजली) का नाश होता है तथा अग्नि दीप्त होती है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, दोषानुलोमक, सहज रेचक, शरीर शोधक, मेदनाशक तथा उदर की श्लेष्मकलाओं के विकारों का नाश करती है।

यह अग्नि वृद्धि करके कफ उत्पादक कारणों से उत्पन्न हुये कफ का शोषण करती है तथा अङ्गों की शिथिलता और आमाशय की श्लेष्मकलाओ की उग्रता का नाश करती है।

इसके सेवन से कण्ठ कण्डू, तौसिल, नासा स्राव, श्लेष्मज्वर, मस्तिष्क का भारी होना, सर्वाङ्ग शिथिलता तथा भारीपन आदि विकारो का नाश होता है तथा शरीर को पोषण प्राप्त होता है ।

श्वासकासचिन्तामणि रस [भा. भै. र. ७६९३]

(रसे. सा. सं., र. रा. सुं ; र. चं.; धन्वं. । श्वासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, स्वर्णमाक्षिकभस्म और स्वर्णभस्म १–१ भाग, मोतीभस्म आधा भाग, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म २–२ भाग तथा लोहभस्म ४ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर कटेली के रस, बकरी के दूध, मुलैठी के क्वाथ और पान के रस की ७–७ भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । पीपल के चूर्ण और मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से श्वास और कास का नाश होता है ।

(यदि इसी रस मे स्वर्णभस्म आधा भाग डाल दी जाय और पान के स्थान मे अदरक की भावना दी जाय तो इसी का नाम "श्वास चिन्तामणि" हो जाता है)

सं. वि.—यह औषध आक्षेप नाशक, शोधक, पोषक, त्रिदोषशामक और कण्ठ शोधक है।

रूक्ष गुण से प्रकुपित वायु कास नलिकाओ का अवरोध करके उनमे आक्षेप उत्पन्न कर देती है । यदि ये आक्षेप सतत रहे तो प्राणवायु किञ्चिद भी श्वाश यन्त्र में प्रवेश नहीं कर सकती जिससे फुफ्फुस की गति अप्राकृतिक होकर भयङ्कर श्वास उत्पन्न करती है। जब सामयिक आक्षेप होता है तो वायु के प्रकोप के कारण श्वास भी सामयिक ही होता है । सतत वायु के प्रभाव से रूक्ष हुये श्वास–कास तन्तुओं मे नीरसता होकर कर्कशता उत्पन्न हो जाती है, और क्योंकि सभी श्वास वातप्रधान होते है अत जितनी कर्कशता बढती जाती है उतना वात रोग बढता जाता है, इस कर्कशता को रोकने के लिये तन्तुओ मे मृदुला उन्पन्न करनी पडती है । "श्वासकास चिन्तामणि रस" मधुर रस विशिष्ट सरस पोषक औषध है।

इसके सेवन से तन्तुओ का पोषण होता है। कर्कशता दूर होती है और विषैले वात के प्रभाव से उत्पन्न हुई फुफ्फुस की दुर्दशा इस स्निग्ध द्रव्य के सेवन से धीरे २ दूर हो जाती है । पुष्ट श्वास यन्त्र प्राणवायु को भली प्रकार खींच सकता है, धारण कर सकता है और एकत्रित हुये दुष्ट वात को शक्तिपूर्वक बहार निकाल सकता है । "श्वासकास चिन्तामणि" जीर्ण–शीर्ण श्वास यन्त्र के पोषण के लिये उत्तम औषध है ।

श्वासकुठार रस [भा. भै. र. ७६९४]

(भा. प्र. । म खं. २, श्वासा., ज्वरा.; वृ. यो. त. । त. ८०; भै. र.; रसे. सा सं., धन्वं. । हिक्का श्वा., वै. र., र. का. धे., र. चं.; वृ. नि. र.; र. रा. सुं. । श्वासा.; यो. त । त. ३०, यो. चिं. म. । अ. ७.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, सुहागे की खील और शुद्ध मनसिल १।-१। तोला, कालीमिर्च १० तोला तथा सोंठ, मिर्च, पीपल २॥-२॥ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल करे ।

मात्राः—२ से ८ रत्ती तक । मधु और पानी अथवा अदरक के रस के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस सब प्रकार के श्वासो को नष्ट करता है ।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपघ्न, कफ-वातघ्न, शोधक, दोषानुलोमक और पाचक है । वात अथवा कफ द्वारा आक्षिप्त श्वास-कास नलिकाये कर्कश होकर प्राण का अवरोध करती है, जिससे श्वास यन्त्र विकृत हो जाता है और या तो उसमे कठिनता उत्पन्न हो जाती है या दुष्ट वायु का अवरोध होकर सतत कर्कश स्वर की प्रतिध्वनि होती रहती है ।

"श्वास कुठार रस" के सेवन से कफ विलयन होकर निकल जाता है । श्वास-कास की नलिकाओ का आक्षेप दूर होता है । अवरुद्ध वात का संगमन हो जाता है और श्वास मार्ग की कर्कशता दूर होकर श्वास यन्त्र पुष्ट हो जाता है ।

यह रस "श्वासकासचिन्तामणि" से क्रिया मे भिन्न है । "श्वासकास चिन्तामणि" पोषक और शोधक है जब कि "श्वासकुठार" आक्षेपघ्न, कफविलयक और तीक्ष्णता द्वारा वात नाशक है।

पाञ्चो ही प्रकार के श्वास मे इसका सेवन श्रेयष्कर होता है ।

श्वासाङ्कुश रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध वच्छनाग ३ भाग, कालीमिर्च ३ भाग, अकरकरा ३ भाग, जायफल ५ भाग, लौग ४ भाग, पीपल १० भाग, शुद्ध सुहागा ३ भाग, धतूरे के बीज ३ भाग । प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे, तदनन्तर उसमे वच्छनाग का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करें और फिर अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करके मिश्रण को अदरक के रस और निम्बु के रस को १-१ भावना दे । पिष्टी तैयार होनेपर ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१/२ से १ गोली । अदरक के रस, मधु, जल, तुलसी स्वरस अथवा घी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त वातरोग, श्वास, कटिग्रह, नाभिशूल, उदावर्त, प्रमेह, वातरक्त, आमवात, अस्थिवात तथा स्नायुवात रोग नष्ट होते है ।

सं. वि.—यह औषध अग्निदीपक, आम–कफ पाचक, वातानुलोमक और आक्षेपनाशक है। इसके सेवन से कफ सरलता पूर्वक निकल जाता है। श्वास यन्त्र के आक्षेप का नाश होता है। श्वास–प्रश्वास की क्रिया कष्ट रहित गतिशील बनती है, तथा पाचन वृद्धि होने से कफ और आम का नाश होता है। यह उष्ण वीर्य औषध रक्त के सचालन की वृद्धि करके शरीरान्तर्गत उत्पन्न हुये वात–कफज शैत्य, शैथिल्य, जडता और नाडी सज्ञा विहीनता आदि विकारो को दूर करती है। वात रोगो मे यह इतना ही गुणकारी है जितना कि श्वास रोगों में। और श्वास के साथ साथ अग्निमान्द्य से होनेवाले वात–विकारों को यह शीघ्र नष्ट कर देती है।

श्वासान्तक रस [भा. भै. र ७६९८]

(र र स. । उ अ १३, र. चं । श्वासा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और ताम्रभस्म १६–१६ भाग, शुद्ध गन्धक ८ भाग, सेंधानमक ८ भाग और पीपल ६ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर जम्बीरी निम्बु के रस मे घोटकर (गोला बनाकर अरण्ड के पत्तों मे लपेटकर पुटपाक विधि से) पाक करे।

मात्राः—२–२ रत्ती। गरम पानी के साथ अथवा अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कास, श्वास, गुल्म, शूल, उदररोग और पाण्डु का नाश होता है।

स. वि.—यह औषध शोधक, आमशोषक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक और वात–कफ नाशक है।

इसके सेवन से कण्ठ, कास–श्वासनलिका, आमाशय और अन्य मार्गों मे लिप्त, वात द्वारा रूक्ष हुवा, श्लेष्म विलयन होकर या तो मुख द्वारा बाहर निकल जाता है अथवा स्थानभ्रष्ट होकर उदर की ओर बढ जाता है। यह औषध चावक है अर्थात् दोष को एक स्थान से दूसरे स्थान मे ढकेल देती है।

अम्ल रस प्रधान होने से यह वात नाशक है। श्वास रोग में वात–सर्वदा प्रधान दोष होता है। यह औषध श्रेष्ठ वातनाशक है अत· श्वासनलिका, कासनलिका, फुफ्फुस, आमाशय आदि स्थानो मे सञ्चित अथवा प्रकुपित वायु इसके सेवन से नष्ट होता है। इसके तीक्ष्ण गुण द्वारा वात–कफ नष्ट होते है और इसी के शोधक गुणों द्वारा यन्त्रो का दोष दूर होकर वहां नवीन रक्त का सञ्चार होता है जिससे अङ्गो की पुष्टि होती है और रोग के पुनरावर्तन का भय जाता रहता है।

श्वास की विविध अवस्थाओ मे विविध अनुपान के साथ इसका प्रयाग लाभप्रद होता है।

सन्निपातभैरव रस [भा. भै. र. ८१३४]
(भै. र; र. रा. सु. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---शुद्ध हिंगुल (शिंगरफ) ४॥ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, शुद्ध वच्छनाग २ तोले, धतूरे के शुद्ध बीज ३ तोले २ मासे और सुहागे की खील १ तोला १ मासा लेकर सबको एकत्र मिलाकर जम्बीरी निम्बु के रस मे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले और छाया मे सुखाकर सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः---१-१ गोली । अदरक के रस मे मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---इसके सेवन से घोर सन्निपात ज्वर नष्ट होता है ।

सं. वि.---यह औषध शोधक, आक्षेपनाशक, दोषानुलोमक और नाडियों की उग्रता को नाश करनेवाली है ।

वात प्रकोप के कारण प्रक्षिप्त संज्ञावाहनियां समस्त शरीर मे जडता उत्पन्न कर देती है । इसी प्रकार विष, क्रोध, शोक, भय, राग, द्वेष तथा सन्ताप के कारण अपुष्ट वातनाडियां तथा संज्ञावाहिनियां उग्र हो उठती है, जिससे रोगी प्रलाप, हास्य, रुदन आदि असंगत क्रियाये करता है तथा इतस्ततः भ्रान्त चित्त हो कर दौडता है अथवा निश्चेष्ट होकर पडा रहता है । ऐसी दशा मे "सन्निपात भैरव रस" संज्ञावाहनियों की उग्रता का संशमन करता है, आक्षेप का नाश करता है औ निश्चेष्ट को सचेष्ट करता है ।

यह ज्वरघ्न और त्रिदोषशामक है । ज्वर की उग्रावस्था मे इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद होता है ।

समीरगजकेशरी रस [भा. भै. र. ८१५३]
(र रा सुं, वै. र., बृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान---नवीन अफीम, शुद्ध नवीन कुचले का चूर्ण और कालीमिर्च का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः---१-१ गोली । पान के रस के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म---इसके सेवन से कुब्जता (कुबडापन), खञ्जवात, सर्वदोषज गृध्रसी, अपबाहुक, शोष, कम्प, अपतानक, विषूचिका, अरुचि और अपस्मार का नाश होता है ।

सं. वि.ः---**अहिफेनः**-तिक्त, निद्राजनक, संग्राही, वेदनानाशक, सन्निपात प्रशमक, वमिनाशक, अतिसार नाशक, आमाशय में व्रण, अर्बुद, मांससंकोच और मद्यपान से होनेवाली व्यथानाशक और अपान वायु को बाहर निकालनेवाली होती है ।

कुचलाः—आग्नेय, कटु, दीपक, उग्रवीर्य, तीक्ष्गसार, कामोदीपक, अम्लपित्त प्रशमक, मूत्रल, पाचक, श्लेष्महर, बलवर्द्धक, मेदहर, रुचिकर, उन्माद, आध्मान, अजीर्ण, शूल, हृदौर्बल्य, श्वास, फुफ्फुस शोथ, अर्दित आदि नाशक, नाडीबलवर्द्धक, पक्षाघात नाशक और अवसाद नाशक होता है।

कालीमिर्चः—तीक्ष्ण, ऊष्ण, अग्निवर्द्धक, आमनाशक, श्वास, कास, आध्मान, प्रतिश्याय आदि रोग नाशक है।

उपरोक्त औषधियों के योग से बना हुवा "समीरगजकेशरी" तीक्ष्ग, ऊष्ण, कटु, आक्षेप नाशक, अग्निवर्द्धक, बलवर्द्धक, वेदनान्तक, वीर्यवर्द्धक, एकाङ्ग अथवा समस्त शरीर मे होनेवाली वेदना को नाश करनेवाला, उग्र तथा मन्द पीडा को नाश करनेवाला, उदर के वात और आम द्वारा होनेवाले विकारो को नष्ट करके शूल आदि का नाश करनेवाला तथा एकाङ्ग और सर्वाङ्ग मे रूक्ष–शीत गुण द्वारा प्रकुपित वायु को ऊष्ण–तीक्ष्ग क्रिया द्वारा नाश करनेवाला और नाडी संज्ञाओ को प्रकृतिस्थ करनेवाला है।

इस रस को शरीर के किसी भाग मे उत्पन्न हुई वातिक वेदना को शान्त करने के लिये प्रयोग मे ला सकते है।

सर्वतोभद्र रस [भा. भै. र. ८१७१]
(रसे. सा. सं., र. रा. सुं. । प्लीहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और कान्तलोहभस्म सबको समान भाग ले और एकत्र मिलाकर खरल करे। कज्जली तैयार होनेपर अदरक के रस की १ भावना दे और १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से यकृत्, प्लीहा, अर्श, सब प्रकार के ज्वर, शोथ, पाण्डु, कृमिरोग, कामला, कास, श्वास, प्रमेह और जलोदर का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, दौर्बल्यनाशक, वात–कफ प्रशमक, रक्तवर्द्धक और अन्त्रशैथिल्य नाशक है।

इसका सेवन नीरस शरीर को सरस बनाता है। आम अथवा रूक्षता के कारण अन्त्र की क्रिया दूषित हो जाती है जिससे पोषक रसों की उत्पत्ति या तो सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है अथवा यथेच्छ नहीं हो पाती, अग्नि मन्द हो जाती है, यकृत्–प्लीहा विकृत हो जाते है और शरीर मे अनेक प्रकार के यकृत्–प्लीहा जन्य, अन्त्र संकोचजन्य शोष, शोथ, अर्श आदि विकार उत्पन्न हो जाते है। ऐसी परिस्थिति मे दोषशामक, रक्तवर्द्धक और अन्त्र दोषनाशक "सर्वतोभद्र" का सेवन सर्वतः कल्याणकारी सिद्ध होता है।

सप्तामृत रस [भा. भै. र. ८१४८]
(भै. र.; र. र. । मुखरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गूगल, शुद्ध मनसिल और स्वर्णमाक्षिकभस्म। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम शिलाजीत और गूगल को मधु में खरल करें और फिर उसमे अन्य औषधि मिलाकर भलीभान्ति कूटकर आधी २ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१–१ गोली। मधु मिलाकर चाटें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मुखरोग (मुखपाकादि) नष्ट होते हैं।

सं. वि.—मुखपाक के विशेष कारण—मुख की श्लेष्मकला का दोष, मसूड़ों का दोष, आमाशय, यकृत्–प्लीहा, अन्त्र आदि के दोष, विप, फिरङ्गरोग, नासिका अस्थि वृद्धि, नासा अर्श, अन्त्रशोष, पुरातन संग्रहणी आदि।

"सप्तामृत रस" विषनाशक, पूयनाशक, कीटाणुनाशक, रक्तदोषनाशक, आमाशय अन्त्र आदि के शोष नाशक तथा यकृत–प्लीहा दोषनाशक है।

इसके सेवन से वात द्वारा दीर्घकाल से शुष्क, उदर की श्लेष्मकलाये सक्रिय हो जाती है और यथावश्यक पाचक रसो की उत्पत्ति करने लगती है, जिससे शरीर की सभी श्लेष्मकलायें स्वस्थ, विकारविहीन हो जाती है। मुख नासिका आदि की श्लेष्मकलाये रोग रहित और पुष्ट हो जाती है। रक्त की वृद्धि से यकृत्–प्लीहा सक्रिय हो जाते है। यह रक्तशोधक है इस लिये इससे फिरङ्ग, विष और कीटाणु नष्ट होते हैं। मुखपाक के उपरोक्त कारणों को दूर करने में यह रस समर्थ है अतः मुखपाक नाशक है।

सर्वेश्वर पर्पटी रस [भा. भै. र. ८१९४]
(र. र. स. । उ. अ १८)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—उपरस:—अभ्रकसत्वभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, रौप्य-माक्षिकभस्म, शुद्ध शिलाजीत, तुत्थभस्म, शुद्ध खर्परभस्म, कासीसभस्म, कान्तपाषाण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध गेरू, हरतालभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध सुरमा और कंकुष्ठ। प्रत्येक १।–१। तोला ले।

लोह:—स्वर्णभस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, वङ्गभस्म, नागभस्म, यशदभस्म, कांस्यभस्म, पित्तलभस्म। प्रत्येक १।–१। तोला लें।

रत्न:—हीराभस्म, माणिक्यभस्म, मौक्तिकभस्म, पुष्परागभस्म, नीलमभस्म, पन्नाभस्म, वैक्रान्तभस्म, सूर्यकान्तमणिभस्म, चन्द्रकान्तमणिभस्म, राजावर्तभस्म, महानीलमणिभस्म, पद्मराग भस्म, प्रवालभस्म और वैडूर्यभस्म। प्रत्येक ३–३ रत्ती ले।

शुद्ध पारद उपरोक्त सब द्रव्यों से ४ गुना और शुद्ध गन्धक पारद से ४ गुनी ले। पारद और गन्धक की कज्जली बनावे और कज्जली को घृतलिप्त पात्र में डालकर बेरी के कोयलो की अग्नि मे पिघलावे। कज्जली के पिघलने पर उपरोक्त उपरस, लोह और रत्नों के सूक्ष्म मिश्रित चूर्ण को उसमे डाल दें और डण्डे से भली प्रकार मिलाकर मिश्रित करदें, फिर इस मिश्रण मे सम्पूर्ण मिश्रण का १६ वां भाग लाल वच्छनाग का चूर्ण मिलावें। पृथ्वी पर फैले हुये गाय के गोवर के ऊपर केले के पत्ते बिछावे और उपरोक्त पिघले हुये औषध मिश्रण को उन पत्तों पर उडेल दे और ऊपर से उसको दूसरे कदली दल से ढककर उसके ऊपर गोवर डाल दे। जव स्वाङ्गशीतल हो जाय तो पर्पटी को निकाल ले और चूर्ण वनाकर प्रयोगार्थ शीशी मे रखले।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। आत्म्य, सात्म्य, देश, वल आदि का अवलोकन करते हुये अदरक के रस और कालीमिर्च के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ६ प्रकार की विद्रधि, ७ प्रकार के वर्ध्मरोग, क्षय, पाण्डु, संग्रहणी, ८ प्रकार के गुल्म, अर्श, प्लीहा, यकृत्, प्रमेह, सोमरोग, प्रदर, जठर रोग, अग्निमान्द्य, उदावर्त तथा और भी रोग नष्ट होते है। यह रस "शिव" के समान पराक्रमी और अत्यन्त प्रभावशाली है।

इसके सेवन से असात्म्य द्रव्य सात्म्य हो जाते है। यह रस १ मास में दुस्साध्य विद्रधि को भी अवश्य नष्ट कर देता है।

सं. वि.—रस, उपरस, लोह, रत्न और लाल वच्छनाग के योग से बना हुवा यह "सर्वेश्वर पर्पटी रस" शरीर के सभी दोष, धातु, मल आदि के विकारो को दूर करनेवाला, शरीर में कान्ति, शक्ति, मेधा, वीर्य आदि की वृद्धि करके शरीर को सर्वदा नवोल्लासित रखता है।

दीर्घकाल से स्थिति स्थापकता प्राप्त किये हुये दोषो द्वारा उत्पन्न हुये भयङ्कर से भयङ्कर स्थानिक रोग इसके सेवन से नष्ट होते है।

अन्य औषधियों द्वारा असाध्य समझे जानेवाले रोग इसके सेवन से मिट सकते है। क्यों कि इसका सेवन विद्रधि वर्ध्म आदि रोगो पर किया जाता है अतः यदि "कैन्सर (Cancer)" पर इसका प्रयोग बुद्धिपूर्वक किया जाय तो सम्भवतः संसार जिसकी शोध मे है वह इस औषधि मे प्राप्त हो जाय।

सर्वाङ्गसुन्दर रस [भा. भै. र. ८१८४]

(भै. र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १-१ भाग, सुहागे की खील २ भाग, मोतीभस्म १ भाग, प्रवालभस्म १ भाग, शंखभस्म १ भाग और स्वर्णभस्म

आधा (½) भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियो को मिलाकर निम्बु के रस मे खरल करके सब का १ गोला बनावें और उसे शराव सम्पुट मे बन्द करके लघुपुट मे पकावे। पुट के स्वाङ्गशीतल होनेपर औषध को निकाल ले और उसमें आधा (½) भाग तीक्ष्णलोहभस्म और चौथाई (¼) भाग शुद्ध हिंगुल मिलाकर अच्छी तरह खरल करें।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मधु अथवा पीपल के चूर्ण और मधु के साथ। घी के साथ। पान के अथवा मिश्री के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से राजयक्ष्मा, वात–पित्तज्वर, भयङ्कर सन्निपात, अर्श, संग्रहणी, प्रमेह, भगन्दर और वातज तथा कफज रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—राजयक्ष्मा की उत्पत्ति अनेक कारणो से सम्भव है। राजयक्ष्मा मे अग्नि मन्द हो जाती है। सभी धातु क्षीण होने लगती है और शरीर वात प्रबल हो जाता है, ऐसी अवस्था मे स्निग्ध, ऊष्ण, पोषक, ज्वरघ्न, वातानुलोमक, व्रणरोपक और शोधक औषध ही हितकारी होती है।

"सर्वाङ्ग सुन्दर रस" उपरोक्त सभी गुणो युक्त है और विशेषतः कीटाणुनाशक (Antiseptic) है, तथा मोती, प्रवाल, शंख आदि नैसर्गिक पार्थिव द्रव्य (Calcium) से परिपूर्ण होने के कारण शरीर के अणु अणु को शुद्ध सत्वयुक्त बनाता है।

राजयक्ष्मा की सभी अवस्थाओ में यह औषध विशेष लाभकारी है।

सर्वाङ्गसुन्दर रस [भा. भै. र. ८१८४]

(भै. र. । राजयक्ष्मा.)

इस औषध मे स्वर्ण के स्थान पर स्वर्णमाक्षिक का योग दिया जाता है। अन्य सब निर्माण विधान, औषध, शास्त्रोक्त गुणधर्म, मात्रा आदि उपर्युक्त "सर्वाङ्ग सुन्दर" (सुवर्णयुक्त) वत् ही है।

सप्तामृत लौह [भा. भै. र. ८१४९]

(र. चं.; रसे. सा. स , र. रा. सुं., च. द. । शूला., रसे. चिं. म । अ. ९, र. का. धे. । नेत्ररोगा.; भै. र. । शूला.; नेत्ररोगा , यो. र. । नेत्ररोगा., यो. चिं. म. । अ. ३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हैड, बहेडा, आमला, मुलैठी, लोहभस्म, मधु और घी प्रत्येक १–१ भाग ले। लोहे के खरल मे सबको एकत्र खरल करे और तैयार हो जाने पर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। प्रातः सायं दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से तिमिर, क्षत (नेत्रका घाव), लाल रेखायें, नेत्र की खाज, रतौन्धी, नेत्रार्बुद, नेत्रतोद, नेत्रदाह, नेत्रशूल, पटल, काच और पिल्लादि रोगो का नाश होता है।

यह प्रयोग मनुष्यो के केवल नेत्ररोग को ही नष्ट नहीं करता अपितु, दन्त, कर्ण और ऊर्ध्वजत्रुगत रोगो का भी नाश करता है।

यह पलित रोग को नष्ट करता है और बहुत समय की पुरानी मन्दाग्नि को अत्यन्त तीक्ष्ण कर देता है।

इसे सेवन करने से कामशक्ति अत्यधिक बढ जाती है और मुखमण्डल दीप्त हो जाता है। बाल अत्यन्त काले हो जाते है और दृष्टि गिद्ध के समान तीक्ष्ण हो जाती है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य १०० वर्ष तक सुखपूर्वक जी सकता है।

समशर्कर लौह [भा. भै र. ८१५१]

(भै. र. । कासा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौंग, कायफल, कूठ, अजवायन, सोठ, मिर्च, पीपल, चीतामूल, पीपलामूल, वासा, कटेली, चव्य, काकडासिंगी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, हैड, कचूर, कंकोल और नागरमोथा इनका चूर्ण तथा लोहभस्म, अभ्रकभस्म और यवक्षार १–१ भाग और खांड सबके बराबर ले। सबको एकत्र मिलाकर खरल करे।

मात्रा:—४ से ८ रत्ती तक। मधु मे मिलाकर चाटे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज, कफज तथा त्रिदोषज कास, क्षय की खांसी, रक्तपित्त और श्वास शीघ्र नष्ट हो जाते है।

यह क्षीण व्यक्तियों को पुष्ट करता है तथा बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करता है।

सं. नि.—यह औषध सौम्य, वातनाशक, कण्ठशोधक, श्लेष्मकला रौक्ष्यनाशक और श्लेष्मकला विषाद नाशक है।

इसके सेवन से कास–श्वास नलिकाओं का दीर्घकालीन आक्षेप, तोद, शोथ और दाह नष्ट होते है। कर्कशता नष्ट होती है और संकोच–प्रसार प्रवृत्ति स्वस्थवत् होकर श्वास प्रश्वास गति निर्विघ्न होने लगती है।

सन्निपात विध्वंसक [भा. भै र. ८१४१]

(र. रा सुं. । सन्निपाता , र. र , र का. धे । सन्निपाता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, बोल, (रस कामधेनु मे "बोल" की जगह "कमीला" लिया

गया है), शुद्ध वच्छनाग और धतूरे के बीज, जवाखार, सज्जी क्षार, सुहागा, वच, हींग, पाठा (र. का. धे. मे "पाठे" की जगह "कचूर" लिया गया है), काकडासिंगी, पटोल, बांझककोडे की जड, ३ प्रकार के नीम (कडुवा, वकायन और मीठे नीम की छाल), सोंठ और कलिहारी की जड। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर मिश्रण को १-१ दिन संभालू और जम्बीरी निम्बु के रस मे खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१-१ गोली। दशमूल के क्वाथ या आक की जड के क्वाथ के साथ।

पथ्य:—दही भात।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से उपद्रव युक्त अत्युग्र सन्निपात भी नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, शोधक, दोषानुलोमक, आक्षेपनाशक, विषनाशक, वातनाडीउग्रता नाशक तथा स्वेदल है।

इसके सेवन से दोषों का पाचन शीघ्र हो जाता है। अग्नि की वृद्धि होती है। विविध स्थानगत आमदोष शीघ्र पच कर शरीर को व्याधिमुक्त कर देते है। जकडे हुये शरीर मे क्रियाशीलता उत्पन्न होती है। नाडियो का तनाव और शोथ नष्ट होते है।

सञ्जीवनाभ्रम् [भा. भै. र. ८१२४]

(र. रा. सुं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वज्राभ्रकभस्म १। तोला, जीरे का चूर्ण १। तोला और धतूरे का बीज १। तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर वासा (अडूसा), कटेली, आमला, नागरमोथा और गिलोय के ५-५ तोले स्वरस मे पृथक २ खरल करे और १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१ से ४ रत्ती तक। यथादोषानुपान। रोग तथा रोगी के बलाबलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के विषमज्वर, प्लीहा, यकृत, वमन, रक्तपित्त, वातरक्त, संग्रहणी, श्वास, कास, अरुचि, शूल, हृल्लास और अर्श नष्ट होते है। यह रस, वृष्य, बलदायक, रसायन और अत्यन्त धातुवर्द्धक है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आक्षेपघ्न, विषघ्न, दाहनाशक, आमशोषक और दोषानुलोमक है। इसके सेवन से दीर्घकालीन वातनाडीदोषजन्य उदर विकार अर्थात् मस्तिष्क दौर्बल्य के कारण उत्पन्न हुये उदर विकार नष्ट होते है।

यह वस्तिशोधक और उदर श्लेष्मकलाओ की निष्क्रियता को दूर करनेवाला है।

संग्रहणी रस [भा. भै. र. ८१२३]

(र. का. धे. । संग्रहणी)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कान्तलोहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मनसिल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हिंगुल, लोहभस्म और शुद्ध वृच्छनाग। प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग तथा शंखभस्म १६ ले। सबको एकत्र खरल कर अत्यन्त बारीक पीसकर रक्खे।

मात्रा:—१ से ३ रत्ती तक। भांग और जीरे के चूर्ण के साथ या भांग, जावित्री, जायफल के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको सेवन करने से संग्रहणी, अग्निमान्द्य, क्षय, गुल्म, शूल, अविन्यास और वातव्याधि आदि रोगों का नाश होता है। रोगोचित अनुपान के साथ देने से यह रस उपरोक्त सभी रोगों को नष्ट करता है।

पथ्य:—इसका सेवन करते यथेच्छ फल प्राप्ति के लिये रोगी को तक्र अथवा दूध के आहार पर रक्खे।

सं. वि.—इस औषध में कोई भी मादक अथवा आशुरोधक द्रव्य नहीं है। क्रिया है केवल इसके योग की। संग्रहणी के विकार को दूर करने के लिये यह अत्यन्त लाभप्रद औषध है। यह आक्षेपनाशक और शोथनाशक है। श्लेष्मकला व्रण, शैथिल्य, उग्रता आदि विकारो को दूर करती है। पित्तशामक, आमपाचक और वातानुलोमक है।

इसके सेवन से विष, प्रतिलोमवात अथवा अन्त्र, ग्रहणी, आमाशय, यकृत्–प्लीहा आदि अवयवों के विकार के कारण विकृत रसों की अधिक उत्पत्ति, दाह, वेदना युक्त अतिसार आदि विकार शान्त हो जाते है। ग्रहणी इसके सेवन से स्वस्थ हो जाती है और पाचन क्रिया में स्वस्थ क्रिया करती है।

सामुद्रिक लोह [आ. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पाञ्चो प्रकार के नमक, यवक्षार, सज्जीखार, दन्तीमूल, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, निसोत और सूरणकन्द प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर भलीभान्ति मिश्रित करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—४ से ६ रत्ती तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शूल, गुल्म, अजीर्ण, आध्मान और कोष्ठ बद्धता आदि रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध रेचक, वातानुलोमक, आमशोषक, पोषक और यकृत् तथा प्लीहा

के विकार को नाश करनेवाली है। इसके सेवन से परिवर्द्धित यकृत् और प्लीहा दोष नष्ट होते है। कृमि और वायु का नाश होता है तथा दीर्घकाल से एकत्रित हुये शुष्क अपक्व मलादि का निस्सरण होता है।

सिद्धप्राणेश्वर रस [भा. भै र. ८२२०]

(भै. र., रसे सा. स ; र. चं. । ज्वरातिसार , रसे. चि. म. । अ. ९.

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद और अभ्रकभस्म ४-४ भाग तथा सज्जीखार, सुहागे की खील, यवक्षार, पञ्चलवण (सेंधा, काला, विट, काच, सामुद्र), हैड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, काला जीरा, चीतामूल, अजवायन, हींग, वायविडङ्ग और सोया प्रत्येक का १-१ भाग चूर्ण ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर जल डालकर यथाशक्ति घोटे और २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। दिन मे २-३ बार। यथारोग-बल। पान के साथ खाकर ऊपर से १५ तोला गरम पानी पीवें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरातिसार, अतिसार, ज्वर, संग्रहणी, रक्तविकार, वातव्याधि, शूल और परिणाम शूल का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, दाहनाशक, वातानुलोमक, आमशोषक और अन्त्र को शक्ति देनेवाली है। छोटे बच्चो पर इसका प्रयोग चावल के धोवन के साथ बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है। बच्चों के हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, आध्मान, अतिसार आदि पर यह आशु और रोग प्रशमक क्रिया करता है।

सिद्धमकरध्वज रस [भा. भै र. ५४६७]

"मकरध्वजो रसायनः"

(भै र । रसायना , र. रा सुं. । रसायन, न. मृ. । त. ५.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म २ भाग तथा वङ्गभस्म, मोतीभस्म, कान्तलोहभस्म, जावित्री और जायफल का चूर्ण, चांदीभस्म, कांस्यभस्म, रससिन्दुर, प्रवालभस्म, कस्तूरी, कपूर और अभ्रकभस्म १-१ भाग और स्वर्णसिन्दूर ४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके पान के रस की १ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। पान मे रखकर खावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके समान सर्वरोगनाशक औषध दूसरी नहीं है।

सं. वि.—यह औषध रसायन है अर्थात् इसके सेवन से शरीर के प्रत्येक अणु मे

नवता उत्पन्न होती है। अन्त्र की श्लेष्मकला पर इसकी क्रिया दोषनाशक, स्वस्थ रसोत्पादक, अग्निवर्द्धक और शैथिल्यनाशक होती है। इससे रस रक्त आदि धातुओं की वृद्धि भलीभान्ति होती है और शरीर के सभी अवयवों को यथावश्यक पोषण मिलता है। जीर्ण, शीर्ण, शुष्क और शोथ युक्त अवयवों में नवजीवन का सञ्चार होता है, उनकी क्रिया स्वस्थ और शरीरवर्द्धक तथा पोषक बन जाती है।

हृदय, मस्तिष्क, वीर्यग्रन्थि तथा ज्ञानेन्द्रियों को इसके सेवन से बहुत ही लाभ पहुंचता है तथा शरीर की प्रत्येक ग्रन्थि स्वास्थ्य लाभ करती है।

यह औषध वाजीकरण है अर्थात् वीर्यप्रणाली, वीर्यग्रन्थि और वीर्यकोषों पर इसकी क्रिया पोषक, शक्तिप्रद और स्तम्भक होती है।

इसके सेवन से क्षीणवीर्य मनुष्य बलवान्, वीर्यवान् और ओजस्वी हो जाता है।

इसका सेवन सभी रोगों पर देश, काल, बल, आत्म्य, सात्म्य आदि का निरीक्षण करते हुये सभी अवस्थाओं में करा सकते हैं। विशेषतः प्रतिलोम क्षय, हृदवसाद, मस्तिष्क दौर्बल्य, वीर्यक्षीणता और दृष्टि दोष आदि में इसका सेवन बहुत ही हितकर होता है।

यह मेध्य, वर्ण्य और परम रसायन है।

सिद्धलक्ष्मीविलास रस [वै. सा सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म १ भाग, रौप्यभस्म १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, कान्तलोहभस्म ३ भाग, तीक्ष्णलोहभस्म ४ भाग, मण्डूरभस्म ५ भाग, अभ्रकभस्म ६ भाग, वङ्गभस्म ७ भाग, नागभस्म ८ भाग, मोतीभस्म १० भाग, प्रवालभस्म ११ भाग और सबके बराबर रससिन्दूर को एकत्रित खरल करें और जावित्री, त्रिकटु, त्रिफला, चतुर्जात, केसर और कस्तूरी की पृथक पृथक ७—७ भावनायें दें और तैयार होनेपर १—१ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्राः—१—१ गोली। पान में रखकर सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय, पाण्डु, कास, श्वास, जीर्णज्वर, गुल्म और प्रमेह का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, पोषक, पाचक, दीपक, वात—कफ और आमनाशक है। इसके प्रयोग से श्लेष्मकला की जडता, शिथिलता, क्रिया विषमता और विक्रिया का नाश होता है। इसके सेवन से नासिका, कण्ठ, आमाशय और उदर की श्लेष्मकलाओं की उत्तेजना के कारण व्यर्थ उत्पन्न होनेवाले स्राव नष्ट होते हैं तथा श्लेष्मकलाओं की शोथ, दाह और उत्तेजना नष्ट होती है। शरीरान्तर्गत किसी भी कारण से उत्पन्न हुई या बाहर से प्रविष्ट हुई शर्दी नष्ट होती है। यह कफज रोगों में अत्यधिक हितावह है।

सुवर्णवसन्तमालती रस [भा. भै. र. ६९७१]

(वसन्तमालती रस)

(भै. र.; धन्वं. । ज्वरा.; यो. त. । त. २७; र. चं. ज्वरा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म १ भाग, मोतीभस्म २ भाग, शुद्ध हिंगुल ३ भाग, कालीमिर्च का चूर्ण ४ भाग और खपरिया (अभाव मे यशदभस्म) ८ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर प्रथम मक्खन मे घोटे और फिर उसमे निम्बु का रस डालते हुये इतना घोटें कि चिकनाई नष्ट हो जाय ।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक । पीपल के चूर्ण और मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन कराने से जीर्णज्वर, विषमज्वर और कासादि का नाश होकर अग्नि दीप्त होती है ।

सं. वि.—यह प्रसिद्ध औषध है। इसको क्रिया विशेषत. उदर की कलाओं पर होती है। यह वायु का नाश करती है, अन्त्र शैथिल्य दूर करती है, पाचक रसों की वृद्धि करती है और अजीर्ण के कारण होनेवाले ज्वर, विषमज्वर, आमज्वर, कफज्वर आदि विकारों का नाश करती है । आम और वायु द्वारा होनेवाले कासरोग का भी यह अम्ल, स्निग्ध और वातनाशक तथा आमशोषक होने के कारण नाश करती है ।

आजके युगमे अधिकतर अन्त्र वातबहुला रूक्ष पाये जाते है । "मालती वसन्त" का सेवन ऐसे उदर विकारो का नाश करता है अतः यह सर्वोपयोगी औषध है ।

सुवर्णपर्पटी [भा. भै. र. ८३२८]

(स्वर्णपर्पटी)

(वृ. यो. त. । त. ७६, वृ. नि. र., यो. र. । ग्रहण्य., र. रा. सुं.; भै. र; रसे. सा. सं. । ग्रहण्य., राजयक्ष्मा., वृ. नि. र. । क्षय., वृ. यो त. । त. ६७; यो र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ५ तोले और सोने के वर्क १। तोले लेकर, पारे मे १-१ वर्क डालकर, निम्बु के रस के साथ खरल करे । दोनो के मिलजाने पर उन्हे गरम जल से धो डाले । तदनन्तर लोह पात्र मे (घी पोत कर) ५ तोले शुद्ध गन्धक डालकर बेरी के कोयलों पर रक्खे, जब गन्धक पिघलजाय तो उसमे उपरोक्त स्वर्णमिश्रित पारद डालकर लोहे की सलाई से अच्छी तरह चलावे । जब पाक तैयार हो जाय तो गाय के गोबर पर बिछे हुये केले के पत्ते पर फैलाकर केले के पत्ते से ढक दे और पत्ते को गोबर से दाब दे । शीतल होनेपर पीसकर रक्खे ।

मात्रा और सेवन विधि—नित्य आधी रत्ती से आधी रत्ती परिवर्द्धित करते हुये

अथवा १ रत्ती से एक रत्ती परिवर्द्धित करते हुये ८ रत्ती तक क्रमपूर्वक वृद्धि करके सेवन करे और इसी प्रकार आधी रत्ती या १ रत्ती जिस प्रकार परिवर्द्धित किया हो वैसे ही कम करते हुये अन्तिम मात्रा तक पहुंच जांय।

कालीमिर्च और शहद के साथ मिश्रित करके प्रयोग में लावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से संग्रहणी, शोप, कास, श्वास, प्रमेह, शूल, अतिसार और पाण्डु का नाश होता है। यह बल, वीर्य और अग्नि की वृद्धि करती है।

सं. वि.—"सुवर्णपर्पटी" रसायन, बल्य, संग्राही, अग्निवर्द्धक, दोषानुलोमक, आमशोषक और अन्त्रकलाशोथ नाशक है।

आहार विहार के कुसेवन से अन्त्र की श्लेष्म–कलाये शिथिल होकर दुष्ट रसो की उत्पत्ति करती है, जिससे आमाशय या पक्वाशय आदि की श्लेष्मकलाओ मे शोप हो जाता है और कभी २ दीर्घकालीन रोगों में क्षत हो जाते है। उत्तप्त दुष्ट कलायें स्रावो को अधः और ऊर्ध्व वायु द्वारा विभाजित करके सम्पूर्ण उदरकलाओं को रुग्ण कर देती है। परिणाम यह होता है कि दाह, तोद, ग्रहणी, अतिसार, अन्त्रक्षय और अर्श आदि रोग उत्पन्न हो जाते है।

"स्वर्णपर्पटी" संग्राही, शोधक और दोपानुलोमक गुणो से श्लेष्म–कलाओ के शोथ का नाश करती है। पाचन क्रिया बढाती है और दोषो का अनुलोमन करती है। बलवर्द्धक होने से अङ्गों की पुष्टि करती है और रसायन होने से जीर्ण, शीर्ण, क्षीण अवयवों में नवता का सञ्चार करती है।

इसके सेवन से उग्र और पुरातन अतिसार और संग्रहणी ही नष्ट नही होते अपितु उदरकलाओं के विकारो से उत्पन्न होनेवाले शोष, कास, श्वास, पाण्डु, व्रण, अर्श आदि रोग भी नष्ट होते है।

इस औषध को मेरी तरह असंख्य वैद्य अगणित रोगियो पर प्रयोग करते आ रहें है और कष्ट साध्य और कभी कभी तो असाध्य रोगियो को भी सफलता पूर्वक स्वास्थ्य प्रदान करते चले आये है।

सुवर्णभूपति रस [भा भै. र. ८३३०]

(स्वर्णभूपति रस)

(र. चं., वृ. नि. र., र. रा. सुं., यो. र. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग तथा अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तलोहभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म और शुद्ध वच्छनाग १–१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो को

मिलाकर हंसपादी के रस मे १ दिन तक खरल करे और उसकी गोलियां बनाकर सुखालें। तत्पश्चात् उन गोलियो को कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी मे भरकर (१ दिन) वालुकायन्त्र मे पकावे। तदनन्तर उसे स्वाङ्गशीतल होनेपर निकालकर पीसलें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ४ रत्ती) १–१ रत्ती। अदरक के रस और पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से त्रिदोषज क्षय, १३ प्रकार के सन्निपात, आमवात, धनुर्वात, शृंखलावात, आढ्यवात, पङ्गुत्व, कफवात, अग्निमान्द्य, कटिवात, शूल, गुल्म, उदावर्त, दुस्तर ग्रहणी, प्रमेह, उदररोग, अश्मरी, मूत्राघात, भगन्दर, कुष्ठ, विद्रधि, श्वास, कास, अजीर्ण, ८ प्रकार के ज्वर, कामला, शिरोरोग और अनुपान विशेष के साथ देने से अन्य समस्त रोग नष्ट होते है।

जैसे सूर्य के सम्मुख अन्धकार नही टिक सकता वैसे ही "सुवर्णभूपति" के सम्मुख रोग नही टिक सकता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, त्रिदोषशामक, रसायन, बल–वीर्यवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, दाहनाशक, श्लेष्म–कला तथा रक्त के दोषो का नाश करनेवाली, नाडियो की उग्रता को संशमन करनेवाली, आक्षेपनाशक और अग्निवर्द्धक है।

सब प्रकार के क्षय स्वभावत ही त्रिदोषज होते है। फलतः शरीर का कोई अवयव, धातु और कोष्ठ विकृति विहीन नही रहता, इसी प्रकार अन्य त्रिदोषज रोगो मे मस्तिष्क से लेकर अङ्गुष्ठ पर्यन्त सर्वाङ्ग मे कुछ ना कुछ विकार अवश्य होते है।

उदर मुख्यत्वे रोग के सञ्चय, प्रकोप और प्रसार का मूल होता है। आधुनिकों के मत से कीटाणु रोगो के मूल माने जाते है। परन्तु यदि शरीरान्तर्गत ज्ञात अथवा अज्ञात कारणों से किसी प्रकार का विप्लव न हो तो दोष प्रकोप सम्भव नहीं हो सकता। अतः रोग की उत्पत्ति से पूर्व अवश्य ही दोषजन्य विकार होते है और कीटाणु, कोथ के अनन्तर जन्म धारण करते है। उदर की विविध विकृत वृत्तियां, आमाशय, पक्वाशय, यकृत्, प्लीहा, महाहृदाशय तथा इन स्थानों की श्लेष्मकलाओ से उत्पन्न होती है। यदि उदरस्थ सभी अङ्ग स्वस्थ रहते हुये क्रिया रत रहे तो अधिकतर रोगों से शरीर मुक्त रहता है। "स्वर्णभूपति" अग्निवर्द्धन द्वारा दोषों का विनाश करता है, श्लेष्मकलाओ को सक्रिय करता है और वात–कफ तथा पित्त द्वारा उत्पन्न हुये किसी भी अवयव के दोष को दूर करता है। अतः यह श्रेष्ठ दोषनाशक औषध उदर विकार से उत्पन्न होनेवाले वातज, पित्तज, कफज सभी विकारो का

नाश करती है, वातनाडियो की उग्रता को दूर करती है, स्रोतो का शोधन करती है और रस, रक्त आदि धातुओ की वृद्धि करती है।

यह श्रेष्ठ पोषक और रोगनाशक औषध है।

सुवर्णराजवंगेश्वर रस [आ. भै. र. ५५२७]

(स्वर्णराजवंगेश्वर) (मस्कमृगाङ्को रस')

(र. रा. सुं. । प्रमेह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वङ्ग (कलई) और नौसादर समान भाग ले। प्रथम वङ्ग को आग पर पिघलाकर पारद मे डाल दे और भलीभांति घोटे। जब वङ्ग पारद मे मिलजाय तो उसमें गन्धक और नौसार डालकर घोटें। जब अत्यन्त महीन कज्जली हो जाय तो उसे आतशी शीशी मे भरकर वालुकायन्त्र में पकावें। शीशी का मुंह बन्द नहीं करना चाहिये और उससे निकलनेवाले धुएं को देखते रहना चाहिये। जब धुआं निकलना बन्द हो जाय तो रस को तैयार समझे। तदनन्तर शीशी के स्वाङ्गशीतल होनेपर उसमें से औषध को निकालकर सुरक्षित रक्खे। (यह सुनहरे रंग की भस्म होगी)।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। छोटी इलायची के दानो का चूर्ण मिलाकर मधु के साथ चाटे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मधुमेह और अन्य समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध रसायन, वल्य, अग्निवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, पूयमेहनाशक, प्रमेहनाशक, प्रदरनाशक तथा स्त्री और पुरुषों के जननेंद्रियो के विविध दोषो का नाश करनेवाली है।

भिन्न २ अनुपानों के साथ भिन्न २ रोगों पर इसका प्रयोग किया जाता है।

सुवर्णराजमृगाङ्क रस

(राजमृगाङ्करस वत् (पृष्ठ १९९ पर देखें)

सुवर्णमाक्षिकसत्वाभ्र रसायन

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णमाक्षिकसत्व और शुद्ध पारद १–१ भाग लेकर दोनो को एकत्र मिलाकर खरल करे। जब दोनो मिल जांय तो उसमे १ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर पुनः खरल करें और कज्जली हो जाने पर उसमे १ भाग अभ्रकसत्व की द्रुति मिलाकर पुनः खरल करे और गोला बनाकर शराब सम्पुट मे बन्द करके १२ घण्टे लवणयन्त्र मे मन्दाग्नि पर पकावे। स्वांगशीतल हो जाने पर औषध को निकालकर सूक्ष्म खरल करके व्यवहारार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१–१ रत्ती।

उपयोगः—सुवर्णमालिकवसन्त रसायन को सोंठ, नागकेशर, पीपर और [illegible] के १॥ मासे चूर्ण में मिलाकर मधु के साथ सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जरा, रोग और अपमृत्यु का नाश होता है। यह दुस्साध्य रोगों को भी ७ दिन में नष्ट कर देता है। यह रस सुधा के समान [illegible]।

सं. वि.—स्वर्णमालिकवसन्त वात पित्तज रोगनाशक है, [illegible] रोग नाशक है। यह औषध त्रिदोषनाशक, रक्तशोधक, अर्शनाशक, अग्निवर्धक, [illegible], जराव्याधिनाशक और दोषों के प्रकोप से होनेवाली अकाल मृत्यु का नाश करनेवाली है। यह सर्वरोगनाशक और श्रेष्ठ रसायन है।

सुधासार रस (भा. भै. र. ८२०७)

(र. र. स. । उ. अ. १६; र. रा. सुं. । ज्वराधिकार)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—५-५ तोले शुद्ध पारद और गन्धक को एकत्र मिलाकर कज्जली बनावे और उसे घृत लिप्त लौहपात्र में डालकर मन्दाग्नि पर पिघलावें और फिर उसमे ५ तोले निश्चन्द्र अभ्रकभस्म मिलाकर लकडी से अच्छी तरह चलावें और सबके मिल जाने पर कुडे के पत्तों पर डाल दें। तदनन्तर ठण्डा हो जाने पर उसे पीसकर नेन्दु के कच्चे फलों के रस, गूलर के दूध, अरलु की छाल के रस (या क्वाथ), दूर्वा के रस, कच्चे दाडिम (अनार) को पुटपाक विधि से पकाकर निकाले हुये रस, कृष्ण कन्दोगिका की जड के रस और कुडे की छाल के रस की पृथक् पृथक् १-१ भावना दें और फिर उसमें ५-५ तोले सोंठ और धमासे का चूर्ण तथा १।-१। तोला नागरमोथा, इन्द्रजौ, अजवायन, नीलामृल, मोचरस, जीरा और शुद्ध वच्छनाग इनका चूर्ण मिलाकर सोंठ के क्वाथ की ७ भावना दें और सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा और सेवन विधि—१ से ४ रत्ती तक। समान भाग मिश्रित सोंठ और नागरमोथे के चूर्ण को एकत्र मिलाकर पानी के साथ पीसकर टिकियां बनालें। तदनन्तर १ मिट्टी के पात्र मे पानी भरकर उसके मुंहपर कपडा बाध दें और उसपर उपरोक्त टिकियां रखकर उन्हे कटोरी आदि से ढकदें। हांडी को अग्निपर चढाकर आधी घडी तक पकावे। तत्पश्चात् धनिये के दाने के बराबर (१ रत्ती) "सुधासार रस" को उपरोक्त हांडी के पानी के साथ खरल करके रोगी को पिलादे अर्थात् सोंठ और नागरमोथे के क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करे।

पथ्यः—गो की दही, तक्र, केले की कच्ची फली, सुपारी का फल, बेलगिरी, आम, मुलहठी और बैगन।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से आम, आमरक्त, ज्वरातिसार और अतिसार युक्त विषूचिका शीघ्र ही नष्ट होते है। यह रस अतिसार, संग्रहणी, हिचकी, अग्निमान्द्य, आनाह और अरुचि को २—३ मात्रा मे ही नष्ट कर देता है।

यह रस, दीपन, पाचन, ग्राही, हृद्य और रोचक है। अन्य औषधियों से आराम न होनेवाला त्रिदोषज अतिसार इसके सेवन से नष्ट हो जाता है।

यह औषध ग्रहणी रोग को नाश करने के लिये अत्युत्तम है।

सुलोचनाभ्रम् [भा. भै र. ८२४८]

(रसे. सा. सं । अरोचका., र. रा. सुं.; धन्वं. । अरोचका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वज्राभ्रकभस्म ५ तोले तथा चव, बेर की गुठली की मज्जा, खस, अनारदाना, आमला, अम्ललोणी और काला नमक इनका चूर्ण ५०—५० तोले लेकर सबको एकत्र मिलाकर खरल करे।

मात्राः—१ से ४ मासे तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज, कफज और त्रिदोषज तथा अप्रिय गन्ध-जनित अरुचि, कास, स्वरक्षय, उरोग्रह, श्वास, कफ, यकृत्, भगन्दर, प्लीहा, अग्निमान्द्य, शोथ, वायु, प्रमेह, कुष्ठ, प्रदर, कृमिरोग, शूल, अम्लपित्त, प्रवलक्षय, रक्तपित्त, वमन, दाह, अश्मरी, और अर्श का नाश होता है। यह बलप्रद, वृष्य और रसायन है।

सं वि.—यह रस वात—कफ नाशक, अग्निवर्द्धक और मन्दाग्नि द्वारा होनेवाले अनेक प्रकार के विकारो का नाश करनेवाला है। विशेषतः वातज अग्निमान्द्य द्वारा होनेवाले आध्मान, उदावर्त, शूल, दाह आदि रोगो का नाश करता है और क्योकि यह अम्ल रसों का मिश्रण है अतः वातनाशक विशेष है। यह वस्तिशोधक, मूत्रल और उदर वातनाशक है।

सुरेन्द्राभ्र वटी [भा. भै. र. ८२४७]

(भै. र. । क्लीमा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सहस्रपुटी अभ्रकभस्म, हिंगुलोत्थ पारद, भांगरे के रस मे शुद्ध की हुई गन्धक, हीराभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म और कान्तलोहभस्म। प्रत्येक समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर चीतामूल के क्वाथ मे खरल करें और (शास्त्रोक्त ३—३ रत्ती) १—१ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखाकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—आधी से १ गोली तक। यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे यथादोषानुपान के साथ सेवन कराने से क्लोम रोग का नाश

होता है । अग्नि दीप्त होती है । संसार मे ऐसा कोई रोग नही जिसका यह रस नाश न करता हो ।

क्लोम रोग मे उग्र अन्नपान आदि का त्याग करके अनुग्र आहार आदि देना चाहिये ।

सं. वि.—क्लोम की विकृति के कारण पिपासा बढ जाती है । शरीर मे दाह और वात की वृद्धि हो जाती है । यदि आधुनिक दृष्टि से क्लोम को "पैंक्रियस (Pancreas)" मानें—जो मेरी दृष्टि से युक्ति युक्त है—तो मधुरस अथवा शरीरान्तर्गत मधुर द्रव्यो को पाचन करके शरीर को सुस्थ रखनेवाला यह अवयव विकृत होने पर मधुर पदार्थों को पचाने मे असमर्थ होकर मधुमेह का उत्पादक बन जाता है ।

"सुरेन्द्राभ्र वटी" उच्च कोटि के रासायनिक द्रव्यों के मिश्रण से बनी हुई है और आग्नेय द्रव्य चित्रकमूल की भावना इसे दी गई है ।

क्लोम के मधुर द्रव्य पाचक रस के अभाव से मधुमेह उत्पन्न होता है । यह योग अपने रासायनिक गुण से क्लोम की विकृति को दूर करके उसका पोषण करता है और आग्नेय गुण से क्लोम की श्लैष्मकलाओं को रसोत्पादक सामर्थ्य प्रदान करता है । अत' यह रस मधुमेह के लिये सर्वथा उपयोगी माना जाना चाहिये ।

यो तो यह औषध सर्वरोगोपयोगी है, परन्तु क्लोमविकारहारी होने से यह विशेषतया मधुमेह और अनुबन्धियो का नाश करनेवाली श्रेष्ठ औषध है । मधुमेह असाध्य रोग है, जो ऐसे असाध्य रोग को मिटा सके, "वह औषध अवश्य ही शरीर के अन्य रोगो को मिटाने मे प्रभावशाली सिद्ध होती है" यह निर्विवाद सत्य जाता है ।

सूतराज रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और मुक्ताभस्म प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तदनन्तर उसमे मुक्ताभस्म मिश्रित करे और भलीप्रकार खरल करके बिजौरा के रस मे घोटकर उसका गोला बनालें । गोले को शराव सम्पुट मे बन्द करके ३ प्रहर लवण यन्त्र मे पकावे । जब शराव सम्पुट स्वाङ्गशीतल हो जाय तो औषध को निकालकर भलीभान्ति सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोगार्थ रक्खे ।

मात्राः—१ से ३ रत्ती तक । पीपल और मधु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह औषध उपरोक्त अनुपान के द्वारा सेवन कराई जाय तो राजयक्ष्मा, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, हृद्रोग तथा वातरोग आदि रोगों का नाश करती है ।

सं. वि.—यह पोषक, शोधक और रसायन औषध है । पोषक तत्व बाहुल्य होने के कारण यह अनुलोम अथवा प्रतिलोम विकारो द्वारा होनेवाली शरीर की क्षीणता को दूर करके शरीर वृद्धि करती है और धातु वैषम्य का नाश करती है ।

यह औषध क्षय, शोष तथा कृशता और दौर्बल्यजन्य अनेक रोगो का नाश करने में समर्थ है और अन्त्र दाह, क्षोभ, संकोच आदि विकारों का नाश करती है। धातुवर्द्धक होने के कारण यह अङ्ग प्रत्यङ्ग का पोषण करती है।

सूतशेखर रस [भा. भै. र. ८२६१]

(र. चं., बृ. नि. र., यो र. । अम्लपित्त.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, स्वर्णभस्म, सुहागे की खील, शुद्ध वच्छनाग, अभ्रकभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, धतूरे के बीज, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, शंखभस्म, वेल की गिरी और कचूर प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे फिर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर १ दिन भांगरे के रस मे खरल करके २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। मधु और घृत के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अम्लपित्त, वमन, शूल, ५ प्रकार के गुल्म, ५ प्रकार की खांसी, संग्रहणी, त्रिदोषज अतिसार, श्वास, अग्निमान्द्य, उग्र हिक्का, उदावर्त और राजयक्ष्मा का अवश्य नाश होता है।

सं. वि.—ऊष्ण, तीक्ष्ण, विदाही, अम्ल आदि द्रव्यों के सेवन से आमाशय और पक्वाशय की श्लेष्मकलाओ में क्षोभ उत्पन्न होकर शोथ हो जाता है, जिससे इन स्थानों की क्रियाएं लुप्त प्राय हो जाती हैं और उग्र कलाओं से विदाही, अम्ल, क्षोभयुक्त रसों की उत्पत्ति होती है, ये वायु द्वारा ऊर्ध्वगत अथवा अधोगत प्रसृत होकर विविध प्रकार की दाहक क्रिया करते हैं, इससे ऊर्ध्वगत से श्वास, कास, वमन, हिक्का, क्षय, शूल, हृदवसाद आदि रोगो की उत्पत्ति होती है और अधोगत से अतिसार, शूल, अर्श आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

आमाशय और पक्वाशय के उपरोक्त विकारों को नाश करनेवाली, आक्षेपनाशक, पित्त प्रशमक, वातानुलोमक, क्षोभनाशक, श्लेष्मकला शोथनाशक, व्रणनाशक और कलाओ मे से स्वस्थ रस को उत्पन्न करनेवाली यह औषध अम्लपित्त मे सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होती है।

"सूतशेखर रस" उपरोक्त गुणो युक्त है, पाचक, दाहनाशक, शोधक, उग्रतानाशक और दोष प्रशमक है। अतः अम्लपित्त और उसके अनुबन्धियो के लिये यह औषध युक्ति युक्त है।

सूतशेखर रस [भा. भै र. ८२६१] (स्वर्णमाक्षिक युक्त)

(र. चं, बृ. नि. र., यो. र. । अम्लपित्त.)

उपरोक्त "सूतशेखर रस" (स्वर्णयुक्त) में और इसमे अन्तर केवल स्वर्ण और स्वर्णमाक्षिक के योग का है। अन्य सब विधान पूर्ववत् है।

सूतशेखर रस [भा. भै. र. ७६३८]

(वृ. नि. र. । कफ-पित्तज्वरा ; र. चि. । स्त. ११.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग और सुहागे की खील १ भाग, शुद्ध जमालगोटा २ भाग, कालीमिर्चे, इमली की छाल की भस्म और खांड १-१ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर मिश्रण को जम्बीरी निम्बु के रस मे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वात-कफज्वर तथा शीतज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध रेचक, शोधक, अग्निवर्द्धक, वात-कफ नाशक और कोष्टशोधक है। इसके सेवन से दीर्घकाल से अवरुद्ध क्षुब्ध मल रेचन द्वारा शीघ्र नष्ट हो जाता है, अग्नि की वृद्धि होती है और कफज्वर का नाश होता है।

सूतिकाभरण रस [भा. भै. र. ८२६७]

(र. चं; यो. र. । वाता.; भै. र. । स्त्री.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, प्रवालभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्ध हरताल, मनसिल, सोठ, मिर्चे, पीपल और कुटकी समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर १-१ दिन आक के दूध, चीतामूल के क्वाथ और पुनर्नवा के रस मे खरल करके सबका १ गोला बनावे और उसे सुखाकर मूषा मे बन्द करके गजपुट मे पकावे।

मात्राः—१/२-१/२ रत्ती। यथोचित अनुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन कराने से प्रवृद्ध सूतिका रोग, धनुर्वात और अन्य सन्निपात रोगों का नाश होता है।

साधारण रोगों मे इसका सेवन कराते हुये किसी पथ्य विशेष की आवश्यता नहीं है।

सं. वि.—गर्भावस्था मे अनेक व्याधियों से रक्तहीन बनी गर्भिणी के लिये प्रसव काल गम्भीर होता है और वह गर्भाशय के अनेक विकारों से पीडित, दुखी होने लगती है, जिसमें गर्भाशय शोथ, डिम्बशोथ, गर्भाशय के मुह का बाहर आना, गर्भाशय-आक्षेप, गर्भाशयगत व्रण-जिनमे से व्रण का स्राव हो और जो जल्दी से जल्दी मारक सिद्ध हों तथा सर्व साधारण व्याधियां यथा-धनुर्वात, सर्वाङ्गशोथ, क्षय, हृद्रोग, उदरच्छदाकला शोथ, अतिसार, ग्रहणी इत्यादि सामान्य रोग है। सारांश यह है कि गर्भावस्था मे स्त्री, सशक्त हो या अशक्त, प्रसव के बाद अवश्य क्षीण काय हो जाती है, जिससे उसे अनेक व्याधियां हो सकती है।

ऐसी परिस्थिति मे पाचक, शक्तिवर्द्धक, शोधक, विषनाशक, पोषक, शोथघ्न, शूलघ्न, अग्निवर्द्धक, मूत्रल और रसायन औषधि का सेवन कराना चाहिये।

"सूतिकाभरण रस" उपरोक्त सभी गुणों युक्त है और प्रसव के पश्चात् होनेवाले गर्भाशय सम्बन्धी तथा सर्व साधारण रोगो का नाश करता है।

सभी प्रसूताओं को इसका सेवन सर्वदा लाभदायी सिद्ध होता है।

सूतिकारि रस [भा. भै. र. ८२६९]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. रा. सुं. । स्त्रीरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सुहागे की खील, मूर्छित पारद (रससिन्दूर), शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, धाय के फूल, कुडे की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, काकडासिंगी, सोंठ और अजमोद समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली वनावे, अनन्तर अन्य औषधियों का चूर्ण मिलावे और प्रसारणी के रस मे खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। प्रसारणी के रस के साथ। प्रातःकाल सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सूतिकारोग (प्रसूतावस्था में होनेवाले गर्भाशयिक रोग), जीर्णज्वर, शोथ, संग्रहणी, प्लीहा और कास का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, आमपाचक, दोषानुलोमक, संग्राही, रोचक, विबन्धनाशक, शोथ तथा शूलघ्न और अग्निवर्द्धक है। ऐसी प्रसूताओको कि जिनको प्रसूति पूर्व से ही संग्रहणी, अतिसार अथवा प्रवाहिका और उदरच्छदाकला-क्षोभ हो अथवा गर्भाशय तथा अन्त्र की श्लेष्मकला विकृत हो, "सूतिकारि रस" बहुत श्रेयष्कर सिद्ध होता है।

अन्त्र शैथिल्य के कारण होनेवाले ज्वर तथा दौर्बल्य और रक्तहीनता मे इसका प्रयोग बहुत ही उपादेय है।

सूर्यसिद्ध रस [भा. भै. र. ८२८७]

(रसे चिं. म. । स्त. २.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—एक सेर शुद्ध पारद को एक एक दिन गिलोय, भांगरे, घृतकुमारी, कटेली, त्रिफला, मकोय, केला, असगन्ध, मूसली और पुनर्नवा के रस मे खरल करे और फिर उसमे १-१ सेर गेरू, खिडिया मिट्टी तथा २ सेर सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर घृतकुमारी के रस मे इतना खरल करें कि पारद अदृश्य हो जाय। कम से कम ३ दिन तक खरल करना चाहिये। तत्पश्चात् उसे कपड मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर उसका मुंह

वन्द करदे और उसे १३ दिन वालुका यन्त्र मे पकावे। इसके पश्चात जब यन्त्र स्वांगशीतल हो जाय तो रस को निकालकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती अथवा १/२ रत्ती से प्रारम्भ करके थोडी थोडी मात्रा बढाते हुये ९ रत्ती तक पान अथवा मधु के साथ।

पथ्यः—दूध, भात, मूंग, घी, शर्करा और मधु। ब्रह्मचर्यपालन, अम्ल द्रव्य विसर्जन तथा यथाशक्ति दान दे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २१ दिन पश्चात् नख गिर जाते हैं। ४० दिन के वाद वाल गिरने लगते है। ६० दिन मे शरीर के समस्त मल नष्ट हो जाते है और ८० दिन तक सेवन करने के वाद दांत भी गिर जाते है। इस प्रकार पुरातन नखादि नष्ट होकर ३ मास में नवीन केश और दांत निकल आते हैं।

शरीर नवीन हो जाता है। रूप कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। शरीर के सभी अवयव दृढ और बलवान् तथा यह पुरुष घोडे के समान गतिमान हो जाता है। भूख अत्यधिक वढ जाती है। कामशक्ति इतनी तीव्र हो जाती है कि मनुष्य १००—१०० स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है और सैंकडो पुत्र प्राप्त कर सकता है। वाल भौंरे के समान काले और घुंघराले हो जाते हैं। वाहु विशाल तथा छाती दृढ और शोभायमान हो जाती है। शरीर उन्नत और नेत्र विशाल हो जाते हैं।

औषध खाने के वाद संभाळु के पत्तों का रस पीना चाहिये, इस प्रकार २ वार यह औषध खानी चाहिये, औषध भक्षण के थोडी देर वाद पान खाने चाहिये।

इसके सेवनकाल मे सुगन्धियों से भरपूर निर्मल और सुखद शय्या पर आराम करना चाहिये। गीत, संगीत और नाटक देखना चाहिये। सुगन्ध युक्त पुष्पों की माला पहननी चाहिये। सुन्दर रमणियों के साथ प्रसन्नता पूर्वक निर्विकार रहते हुये दिन व्यतीत करने चाहिये।

इसका सेवन करते हुये अपथ्य कदापि नही करना चाहिये। लोगों की शास्त्रों मे अनिष्ठा और सुकर्मो मे दौर्मनस्य देखकर, विश्वास दिलाने के लिये इस योग की रचना की गई है। यह रस मनुष्य को देव सदृस वना देता है।

सूर्यावर्त रस [भा. भै. र. ८२८८]

(शा. सं। खं. २ अ. १२; र. र.; र. का. धे.; धन्वं.; रसे. सा. सं। हिक्का; श्वासा.; र. प्र. सु.। अ. ८; र. र. स.। उ. अ. १३; र. चं.। श्वासा.; रसे. चि. म.। अ. ९; र. र. सु.; वृ. नि. र. वै. र.। श्वासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद २ भाग और शुद्ध गन्धक १ भाग लेकर कज्जली बनावे और उसे १ प्रहर घृतकुमारी के रस मे खरल करके ३ भाग शुद्ध ताम्र के पत्तो पर लेप करदे। (र. र. स. मे शुद्ध ताम्र के स्थान मे ताम्रभस्म लिखी है)। इन्हे हांडी मे भरकर एक दिन पाक करे और स्वाङ्गशीतल होनेपर पीसकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मधु अथवा पान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इस रस के सेवन से श्वास नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, रसायन, पाक मे कटु और ऊष्ण, आमपाचक, कफ-वात नाशक, अग्निवर्द्धक, हृद्य, वातानुलोमक और वात-कफज अजीर्ण के विकारो को दूर करनेवाली है।

इसके सेवन से आम तथा कफ का विनाश होता है, श्लेष्मकलाये निर्विकार पाचक रस उत्पन्न करने लगती है, यकृत्-प्लीहा तथा उनके आवरण विकार विहीन हो जाते है, अन्न सरस पचता है और शरीर सशक्त तथा हृदय बलवान् बनता है, वात-कफ का नाश होता है, शरीर के सभी स्रोत शुद्ध और निर्विकार हो जाते है, सभी की श्लेष्मकलायें शोथ, क्षोभ, तोद तथा क्लेद रहित हो जाती है, श्वास अविरुद्ध और सक्रिय रहता है, प्राणवायु का सञ्चार यथावत् रहता है तथा श्वास रोग की उत्पत्ति नहीं होने पाती और उत्पन्न हुवा श्वास रोग नष्ट हो जाता है।

सूर्योदय रस [भा. भै. र. ८२८९]

(र. र.। शिरोरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म १-१ भाग लें। सबको एकत्र मिलाकर १ दिन स्नूही (सेड-थूहर) के दूध मे खरल करें और सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१-१ रत्ती (शास्त्रोक्त मात्रा १-१ मासा)। लोहपात्र मे मधु लेकर औषध को उसमे मिलाकर चाटे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से १ सप्ताह मे "सूर्यावर्तादि" समस्त शिरोरोग नष्ट होते है। ऊर्ध्व जत्रुगत रोगो के लिये यह उपकारी औषध है।

सं. वि.—सूर्योदय के बाद धीरे २ आंख, भौह में पीडा होती है और वह सूर्य की वृद्धि के साथ बढती है तथा सूर्य घटने पर वह भी घट जाती है। कभी शीत वस्तु के उपचार से मनुष्य को शान्ति मिलती है तो कभी ऊष्ण वस्तु के सेवन से। ऐसे शिरोरोग को "सूर्यावर्त" के नाम से पुकारा जाता है और यह त्रिदोषात्मक कष्टप्रद विकार है।

शास्त्रकार जहां सूर्योदय रस को "सूर्यावर्तादि" नाशक मानते हैं वहां "आदि" शब्द से उनका तात्पर्य ऐसे ही त्रिदोषात्मक "अनन्तवात, अर्धावभेदक और शंखक" शिरोरोगों से है।

सभी त्रिदोषज शिरोरोगों मे त्रिदोषनाशक, रोग निवारक विधि का आश्रय लिया जाता है। "सूर्योदय रस" त्रिदोषनाशक, रक्तवर्द्धक, श्लेष्म-कला अन्तर-तन्तुगत शोथनाशक, सहज रेचक और दोषानुलोमक है। इसके सेवन से दोषों के अनुलोमन के कारण स्वाभाविक दोष वैषम्य नष्ट होकर रोग नष्ट हो जाता है।

सूतिकाहर रस [भा. भै. र. ८२७३]
(भै. र. । स्त्रीरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिंगुल, हरताल, शंखभस्म, लोहभस्म, खपरिया, धतूरे के बीज, जवाखार और सुहागे की खील समान भाग ले। सबको एकत्र मिलाकर चंहंड के क्वाथ मे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। यथोचित अनुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सूतिकारोग उसी प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार अग्नि से तृण समूह।

सं. वि.—यह औषध पाचक, वातानुलोमक, आमशोषक, श्लेष्मकला दोषनाशक, रक्त शोधक और नाडियो की व्यग्रता नाशक है।

ऐसे सूतिकारोगो मे जहां गर्भाशय और अन्त्र की श्लेष्मकलाये दूषित हो, पाचन का अभाव हो और वायु की वृद्धि हो, इसका सेवन सर्वदा लाभप्रद और अन्त्र तथा गर्भाशयगत वात तथा रक्तदोष नाशक होता है।

स्मृतिसागर रस [भा. भै. र. ८३१३]
(यो. र., वृ. नि र. । अपस्मारा., वृ. यो. त. । त ८९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मनसिल और ताम्रभस्म समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर वच के क्वाथ की २१ भावना दे तदनन्तर ब्राह्मी के रस की २१ भावना देकर सूखने के बाद १ भावना मालकंगनी के तेल की देकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १। मासा) १ से २ रत्ती। घी मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अपस्मार का नाश होता है।

उन्मादोक्त समस्त विधियां अपस्मार में हितकर होती है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, आक्षेपनाशक, अग्निवर्द्धक, रक्तदोषनाशक तथा दोषानुलोमक है।

वच, ब्राह्मी और मालकंगनी के तेल के योग द्वारा बनने के कारण यह नाडियों को विशेष शक्तिप्रदान करती है। मस्तिष्क पोषक, स्मृतिवर्द्धक, ज्ञानेन्द्रियों को बल देनेवाली और ज्ञानेन्द्रियों के श्रम से उत्पन्न हुये मानसिक रोगों को नाश करनेवाली है।

स्वच्छन्दभैरव रस [भा. भै र. ८३२१]

(रसे. सा. सं., र. रा. सुं.; र का धे. । ज्वरा., रसे. चि. म. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—ताम्रभस्म और वच्छनाग का चूर्ण समान भाग लेकर दोनो को एकत्र मिलाकर धतूरे के रस की १०० भावना दे और आधी आधी रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। अदरक के रस, खांड और सेंधानमक के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नवीन सन्निपातादि ज्वरो का नाश होता है।

पथ्यः—भूख लगने पर इक्षु (गन्ना), द्राक्षा, मिश्री और दही आदि आहार देना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध विषैली है। उग्र विषों के कारण उत्पन्न होंनेवाले सन्ताप का नाश करती है। आक्षेपनाशक, भ्रमनाशक और निद्राकारक है। इसका सेवन कराने से स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है।

स्वयमग्नि रस [भा. भै. र. ८३२४]

(रसे. चिं. म. । स्त. ११; वृ. नि र. । क्षय., कासा , र. र. रसायन खण्ड. । उप. २, र. का. धे. । कासा , शा. सं. । खं. २ अ. १२.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली बनावे। तदनन्तर उस कज्जली में उसी के बराबर तीक्ष्णलौह (फौलाद) का चूर्ण मिलाकर घृतकुमारी के रस मे २ प्रहर (पाठान्तर से १ दिन) खरल करके गोला बनावे और उसे ताम्र पात्र मे रखकर अरण्ड के पत्तो मे लपेट दे। (इसे धूप मे रखदे) आधे प्रहर पश्चात् जब गोला अत्युष्ण हो जाय तो उसे अनाज के ढेर मे दबादे और १ दिन (पाठान्तर से २ दिन) पश्चात् निकालकर बारीक चूर्ण करके वस्त्र से छान लें। यह चूर्ण निस्सदेह वारितर हो जायगा, तदनन्तर इसे घृतकुमारी, भांगरा, मकोय, पियावासा, मुण्डी, पुनर्नवा, सहदेवी, गिलोय, नील, संभालू और चित्रक के मूल के रस की पृथक पृथक ७–७ भावना दे, प्रत्येक भावना के पश्चात् धूप मे सुखा लेना चाहिये। (यह बहु गुणयुक्त वारितर लौहभस्म तैयार हुई—सम्पादक)

इस लोहभस्म को त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ समस्त रोगो मे देना चाहिये।

उपरोक्त लोहभस्म ९ भाग तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड, बहेड़ा, आमला, इलायची,

जायफल और लौंग का चूर्ण १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर जल के साथ खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षयकास का नाश होता है।

सं. वि.:—यह औषध आमनाशक, कफनाशक, कण्ठशोधक, अग्निवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, रुचिकारक तथा जीर्णज्वर, क्षय, कास आदि रोगों का नाश करनेवाली है।

शास्त्रकार की उक्ति--यह सिद्ध योग महानुभावों से प्राप्त हुवा है और यह बिल्कुल सत्य है। मै परीक्षा कर चूका हूं। यह समस्त रोगों को नष्ट करता है।

इसी प्रकार स्वर्णादि धातुओं का भी चूर्ण करके उनकी भस्म की जाती है।

स्वल्पकस्तूरीभैरवो रस [भा. भै. र. ९७१]

(कस्तूरीभैरवो रसः)

(भै. र., र. रा. सुं.; धन्व. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष (मीठा तेलिया), सुहागे की खील, जावित्री, जायफल, कालीमिर्च और कस्तूरी समान भाग लेकर १ दिन पर्यन्त पानी के साथ खरल करे और २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके रक्खे।

मात्राः—१-१ गोली। अदरक के रस अथवा तुलसीपत्र के स्वरस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--इसके सेवन से दारुण सन्निपात का नाश होता है।

सं. वि.--यह औषध आक्षेपनाशक, शोधक, पाचक, नाडियों की उग्रता को नाश करनेवाली, विषनाशक, कृमिनाशक और त्रिदोष प्रशमक है। इसके सेवन से स्वेद आकर ज्वर उतर जाता है।

सोमयोग [सि. यो. सं]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर १ भाग और सोमचूर्ण २० भाग लें। प्रथम रससिन्दुर को वारीक पीसें और फिर उसमे सोम का कपडछन चूर्ण मिलाकर भलीभान्ति १ दिन मर्दन करके शीशी मे भरकर रखले।

मात्राः--५ से १० रत्ती तक। अकेला या अभ्रकभस्म, भागोत्तर वटी अथवा चन्द्रामृत रस के साथ मिलाकर देवे।

अनुपानः—जल या मधु के साथ देवे।

उपयोगः--इसके प्रयोग से दम मे तात्कालिक और अच्छा लाभ होता है (दमे का वेग शीघ्र कम हो जाता है)। [सि यो स से उद्धृत]

सोमनाथ रस [भा. भै र. ८२९१]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. चं.; र. रा. सुं. । बहुमूत्रा.; रसे. चिं. म. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लोहभस्म १। तोला और शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, इलायची, तेजपात, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की छाल, खस, गोखरू, वायविडङ्ग, जीरा, पाठा, आमला, अनार की छाल, सुहागे की खील, सफेद चन्दन, शुद्ध गूगल, लोध्र, शालवृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल और निसोत प्रत्येक ७॥—७॥ मासे ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर बकरी के दूध मे खरल करके (शास्त्रोक्त १०—१० रत्ती) २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। प्रात. सायं दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस रस के सेवन से अनेक प्रकार के सोमरोग, कष्टसाध्य प्रदर तथा सर्वदोषज और पुराने योनिशूल का नाश होता है। विशेषत यह औषध कष्टसाध्य बहुमूत्र को नष्ट करती है।

सं. वि.—यह औषध दाहनाशक, तृषानाशक, रक्तवर्द्धक, शोधक, वस्तिवातनाशक, मूत्रशोधक, हृद्य, श्लेष्मकला शोथ नाशक, वस्ति आक्षेपनाशक, मूत्रदाहनाशक और अन्त्र तथा वस्तिदाह नाशक है।

इसके सेवन से अधिक ऊष्मा, वस्तिशोथ, वृक्कावरणशोथ, मेढ्रमार्गगत व्रणशोथ, पौरुष-ग्रन्थिगतशोथ तथा जीर्ण पूयमेह के कारण होनेवाले बहुमूत्र तथा मूत्रकृच्छ का नाश होता है। यह वातज तृष्णा का नाश करती है अतः क्लोमगत वात विकार को दूर करनेवाली है।

सोमेश्वर रस [भा. भै. र. ८२९६]

(भै. र. । प्रमेहा.; धन्वं. । प्रमेहा., सोमरोगा.; र. रा. सु. । सोमरोगा.; रसे. सा. सं. । सोमरोगा., रसे. चि म. । अ. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शालवृक्ष की छाल, अर्जुन-छाल, लोध्र, कदम्बवृक्ष की छाल, अगर, लाल चन्दन, अरणी, हल्दी, दारुहल्दी, आमला, अनारदाना, गोखरू, जामुन की गुठली और खस इनमे से प्रत्येक का चूर्ण २॥—२॥ तोला ले। शुद्ध पारद शुद्ध गन्धक, धनिया, नागरमोथा, इलायची, तेजपात, पद्माक, लोहभस्म, रसौत, वायविडङ्ग, सुहागा और जीरा ५—५ मासे (पाठान्तर के अनुसार ५—५ तोले) तथा शुद्ध गूगल २॥ तोले लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर गूगल मे थोडा सा घी डालकर उसे पतला करे। तदनन्तर उसमे उपरोक्त समस्त औषधियां मिलाकर (शास्त्रोक्त १६—१६ रत्ती) ४—४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। बकरी के दूध या नारियल के पानी, या शीतवीर्य द्रव्यों के साथ पकाये हुए तेल अथवा जौ के पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातजप्रमेह, एकदोषज, द्विदोषज, सान्निपातिक उपद्रव युक्त पुराना मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश, अनेक प्रकार की पीडिकाये और व्रण, विस्फोटक, अर्बुद, कण्डु, वात-पित्त, अम्लपित्त, यकृत्, प्लीहा, गुल्म, शूल, अर्श, कास, विद्रधि और पुराने सोमरोग का शीघ्र ही नाश होता है।

यह रस बल, वर्ण, अग्नि उत्पन्न करनेवाला है और ग्रहणी का नाश करनेवाला है।

सं. वि.—बहुत प्रसङ्ग द्वारा, शोक से, श्रम से, मूत्रल योगों द्वारा तथा विष की क्रिया से, स्त्रियों के सम्पूर्ण शरीर का जलीयांश मूत्र मार्ग से निकलने लगे ऐसी अवस्था को "सोमरोग" कहते है। इससे शरीर सूखने लगता है और यदि अधिक समय तक यही अवस्था रहे तो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो जाती है।

उग्रतानाशक, सन्तापनाशक, हृद्य, आह्लादकारक, रक्तवर्द्धक, तृष्णानाशक, वातनाशक और श्लेष्मकलाओं के क्षोभ को नाश करनेवाला द्रव्य है। यह रोग की उग्र और पुरातन अवस्था मे विशेष लाभकारी है। "सोमेश्वर रस" उपरोक्त गुणों युक्त है। दाहनाशक, शीतवीर्य, शोषक और वातनाशक है। इसके सेवन से सोमरोग और उसके अनुबन्धि रोगों का नाश होता है।

हरिशंकर रस [रसे. सा सं.]

(प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म (अभाव में रससिन्दूर) और अभ्रकभस्म दोनों को समान भाग लेकर भलिभान्ति मिश्रित करे। तदनन्तर आंवला के रस को ७ भावना दें और तैयार होनेपर (शास्त्रोक्त १-१ मासे) २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। दूध अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, कफ-पित्त शामक, पाचक और अन्त्रकला दोषनाशक है। इसके सेवन से अन्त्रगत वात-कफ विकार का नाश होता है। अन्त्र की श्लेष्मकलाओं की उग्रता नष्ट होती है और वस्ति, वीर्यस्रोत और वीर्यप्रणालिकाओ की विकृति, दाह और उग्रता नष्ट होती है। यह सभी प्रकार के प्रमेहो को नाश करने मे लाभप्रद है।

हरगौरी सृष्टि रस [आ. भै. र. ८५९७]

(र. र. । प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ४ भाग, ताम्रभस्म २ भाग और शुद्ध

गन्धक ६ भाग लेकर तीनों को एकत्र खरल करके कज्जली बनावे और कज्जली को १ दिन मस्तू (दही के तोड–दही के ऊपर के पानी) मे खरल करे तदनन्तर सबका १ गोला बनाकर, उसे सुखाकर, तह किये हुये कपडे में बांधकर वालुका यन्त्र में रखकर, मन्दाग्नि पर इतना पकाये कि वालू खूब गरम हो जाय। जब वालू इतनी गरम हो जाय कि हाथ से छुई न जा सके तो अग्नि देनी बन्द कर दें और यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होनेपर रस को निकालकर पीस ले तथा उसे आमले के रस और गोखरू के रस की ७–७ भावना देकर दूध में खरल करके १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। प्रतिदिन घी मे पकाकर ठण्डा करके १। तोला भैंस के दूध के साथ दे।

पथ्यः—दूध, भात, घी और पक्की इमली के फलों के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, पाचक, रसायन, वातनाशक, शूलनाशक तथा अन्त्र और वस्तिकला दोषनाशक है। इसके सेवन से वस्ति, अन्त्र आदि मे होनेवाले वायु के विकार शीघ्र मिट जाते है और प्रमेह आदि दोष नहीं रहने पाते।

हंस मण्डूर [भा. भै. र. ८६८०]

(र. र. स. । उ. ख. १९, र. चं.; यो. र.; र. रा. सुं; बृ. नि. र.; र. का. धे. । पाण्डुवा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध मण्डूर के बारीक चूर्ण को ८ गुने गोमूत्र मे पकावे और जब वह गाढा हो जाय तो उसमे निम्नलिखित औषधियां मिलादें:—

सोठ, मिर्च, पीपल, हैड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चव, चीता, पीपला मूल और देवदारु का चूर्ण प्रत्येक मण्डूर के बराबर तथा घी मण्डूर के बराबर। सबको भलीभान्ति मिश्रण करके ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १। तोला) १–१ गोली। गोमूत्र के साथ।

पथ्यः—औषध पचने पर छाछ, भात खाना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पाण्डुरोग, हलीमक, उरुस्तम्भ, कामला और अर्श का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, कृमिनाशक, अग्निवर्द्धक, रक्तवर्द्धक और दोषानुलोमक है।

इसके सेवन से अन्त्र शैथिल्य दूर होता है तथा आमाशय, ग्रहणी आदि में एकत्रित आम, पित्त, विष, वातादि नष्ट होते है तथा यकृत्–प्लीहा सक्रिय और स्वस्थ होते है।

हिरण्यगर्भ पोटली रस [भा. भै. र. ८६३५]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. चं.; र. र. सु. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, मोतीभस्म ४ भाग, शंखभस्म ६ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, कौडीभस्म ३ भाग और सुहागे की खील १/४ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर पके हुये निम्बु के रस मे खरल करके मूषा में बन्द करदे। तदनन्तर उसे ३० उपलो की अग्नि मे गड्ढे मे रखकर पकावे। पुट के स्वाङ्गशीतल होनेपर औषधि को निकालकर पीसले।

मात्राः—(शास्त्रोक्त २–२ रत्ती) १/२ से १ रत्ती तक। घी, शहद और काली मिर्च के चूर्ण के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निमान्द्य, ग्रहणी रोग, विषमज्वर, अर्श, उदर रोग, विषमज्वर, पीनस, कास, अतिसार, पाण्डु, शोथ, उदररोग, यकृत् विकार और प्लीहारोग का नाश होता है।

यह औषध एकदोषज, द्वन्द्वज और सान्निपातिक रोगो मे अमृत के समान गुणकारी है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, आमनाशक और कफपाचक है। इसके सेवन से कफ द्वारा होनेवाले उदर और वक्ष के रोग यथा–अग्निमान्द्य, फुफ्फुसावर्ण प्रदाह, कण्ठशोथ, पीनस, कास, श्वास, क्षय आदि–शीघ्र नष्ट होते है।

कफज रोगों के लिये यह अनुभूत औषध है।

हिक्कान्तक रस [भा. भै. र. ८६२१]

(सुवर्णभस्मादि योग.)

(र. चं.; र. रा. सुं. । हिक्का.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म, मोतीभस्म, ताम्रभस्म और कान्तलोहभस्म प्रत्येक द्रव्य १–१ भाग ले। सबको एकत्र खरल करके रक्खें।

मात्राः—(शास्त्रोक्त ३ रत्ती)। १/२ रत्ती से २ रत्ती तक। बिजौरे के रस, मधु और काले नमक के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से जब सैकडो प्रकार की हिक्का केवल १ मात्रा के प्रयोग से ही प्रयत्न बिना नष्ट हो जाती है, तो ५ प्रकार की हिचकी की तो बात ही क्या है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, वातानुलोमक, शूलनाशक, हृद्य, बल्य, शोषनाशक और श्वास, कास, हिक्का तथा हृद्वसाद, हृद्शूल और अन्य कफ–वातज विकारों को दूर करती है।

हिक्का मे वक्ष की मध्य पेशी का आध्मान, मर्मोपघात अथवा अन्य वात–कफात्मक विकारों के कारण आक्षेप होता है। इस आक्षेप से श्वास, कण्ठ और प्राणवाही स्रोत में अवरोध हो जाता है। ऐसी परिस्थिति मे यह औषध वात–कफात्मक दोष द्वारा उत्पन्न हुये आक्षेप को दूर करके प्राणवाहिनियों को सक्रिय करती है और कण्ठ को शुद्ध करती है।

हिक्काहर रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—कज्जली तोला ८, ताम्रभस्म तोला १२, अभ्रकभस्म तोला ४, स्वर्णमाक्षिकभस्म तोला २४, शुद्ध हरताल तोला २० और वच, कुष्ठ, हरिद्रा, यवक्षार, चित्रकमूल, कलिहारी, त्रिकटु, सैन्धव, बहेडा, शुद्ध वच्छनाग तथा करञ्ज की गिरी प्रत्येक ४–४ तोला। कज्जली में प्रथम भस्मो को मिश्रित करे तदनन्तर हरताल के सूक्ष्म चूर्ण को और तत्पश्चात् अन्य औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर भलीभान्ति खरल करे और भांगरे के रस की २–५ या ७ भावना देकर छायाशुष्क करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ४ रत्ती तक। यथादोषानुपान अथवा मधु, जल और अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से हिक्का, कास और स्वास रोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध कफनाशक, वातनाशक, श्लेष्मकलाशोथ नाशक, आक्षेपनाशक, व्रण और व्रणशोथ नाशक, अजीर्ण और आध्मान नाशक तथा दोषानुलोमक है। इसके सेवन से अरुचि दूर होती है और कण्ठ शुद्ध होता है, कफ का विलयन और आलस्य का नाश होता है। आमाशयगत वायु के लिये इसका प्रयोग बहुत ही हितकर है।

आमाशय के क्षोभ और अरुचिकर द्रव्यो के सेवन से प्रतिलोम वायु के कारण पक्व अथवा अपक्व खाद्य अरुचि उत्पन्न करके विदाह उत्पन्न करता है और वमन हो जाय इस प्रकार का उत्क्लेश करता है। ऐसी परिस्थिति मे साधारण ऊष्ण जल के साथ "हिक्काहर रस" का सेवन कराने से सभी विकृति दूर होकर एकत्रित विकार अधोगत हो जाता है। आमाशय के क्षोभ, दाह, व्रण, शूल, आक्षेप, अरुचि आदि मे इसका सेवन लाभप्रद होता है।

हिमांशु रस [भा. भै. र. ८६३४]

(र. र. स. । उ. अ. १७, र. चं. । प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१। तोला शुद्ध पारद (अथवा रससिन्दुर) को खरल मे डालकर लाल अगस्ति के फूलों के रस की ७ भावना दे। तदनन्तर इसी प्रकार श्वेत दूर्वा के रसमें ७ बार घोटें। उसमे ७॥ मासे सुहागे की खील और १।–१। तोला कत्था तथा कपूर मिलाकर चन्दन के पानी के साथ इतना खरल करें कि चिकनाहट आ जाय। तैयार होने पर रेणुका के समान अर्थात् आधी आधी रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क करके प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—१—१ गोली। प्रातः, मध्याह्न और सायं मधु के साथ दे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह, मुखशोष, सोमरोग, प्रमेह पीडिकायें, तृष्णा और दाह का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस शोधक, पित्तजशोथ नाशक, मूत्रल, शीतवीर्य तथा पूयमेह, सोमरोग और वस्ति तथा जननेन्द्रियों की कलाओं में होनेवाले पित्तज, विषज और कीटाणुज शोथ का नाश करता है।

हिंगुलेश्वर रस [भा. भै. र. ८६५०]
(मृतसञ्जीवनी रस)

(र. च. । ज्वरातिसारा.: रसे. सा. सं.; भै. र. । ज्वरातिसार.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल और शुद्ध वच्छनाग १—१ भाग तथा शुद्ध हिंगुल २ भाग लेकर सबको एकत्र कूटकर १ दिन जम्बीरी निम्बु के रस में खरल करे और तैयार होनेपर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। शीतल जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरातिसार, विषूचिका और भयङ्कर सन्निपात नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, कफ—वातनाशक, आक्षेपनाशक और स्वेदल है। इसके सेवन से कफ—वातात्मक, विषज, कीटाणुज और खाद्य दोष से उत्पन्न हुये ज्वर, अतिसार तथा विषूचिका का नाश होता है।

हुताशन रस [भा. भै. र. ८६५१]
(र. चं: यो. र. । अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सुहागे की खील १—१ भाग तथा कौडीभस्म, शंखभस्म, शुद्ध विष का चूर्ण, घर का धुवां और कालीमिर्च का चूर्ण ३—३ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियां मिलाकर जम्बीरी निम्बु के रस में भलीभान्ति घोटे और तैयार होनेपर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गुल्म, अरुचि, शूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कफ और शिर की जडता का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, कफ—वातनाशक, आक्षेपनाशक, अग्निवर्द्धक और दीर्घकालीन नाडी विप्लव के कारण होनेवाले वात—कफात्मक अग्निमान्द्य का नाश करती है।

हृदयार्णव रस [भा. भै. र. ८६५४]

(रसे. सा. सं., धन्व., र. र., र. का. धे , यो र , र रा. सुं.; भै. र., रसे. चि. म.; र. चं. । हृद्रोगा.

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १—१ भाग तथा ताम्रभस्म २ भाग (पाठान्तर से १ भाग) लेकर तीनों को एकत्र मिलाकर १—१ दिन त्रिफला के क्वाथ और मकोय के रस मे खरल करके २—२ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१—१ गोली ।

अनुपानः—मकोय के फल १। तोला और त्रिफला चूर्ण ५ तोला लेकर दोनों को एकत्र मिलाकर ४० तोले पानी मे पकावें, जब ५ तोला अवशिष्ट रह जाय तो छानकर ठण्डा होनेपर इस क्वाथ के साथ औषध का सेवन करे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस कफज हृद्रोगो को नष्ट करता है ।

सं. वि.—वक्ष कफ का स्थान है । हृदयवक्ष मे स्थित है और आमाशय के अति निकट है । किसी भी प्रकार की कफात्मक विकृति शीघ्र हृदय को विकृत कर सकती है । हृदय रक्तसञ्चार का मूल अवयव है । हृदय में विकृति होने से और विशेषतः कफात्मक विकृति होने से हृदय मे अवसाद की क्रिया उत्पन्न हो जाती है । हृदवसाद के कारण रक्त का सञ्चार कम या अपर्याप्त हो जाता है, इसी से देखा जाता है कि हृद्स्फीति, हृद्वृद्धि, हृद्शूल, हृद्शोथ, हृद् दौर्बल्य, हृन्मांसकृच्छता आदि हृदय के रोगों मे, दूर वर्ती अङ्गो पर शोथ आ जाता है । रक्त के अपूर्ण सञ्चार के कारण यह क्रिया होती है और वात—कफात्मक रोग ही इसके कारण होते हैं ।

इस प्रकार के हृदय के रोगों को दूर करने के लिये शोधक, आक्षेपनाशक, आमपाचक, कफनाशक, वातानुलोमक और हृद्य औषध की आवश्यकता पडती है ।

"हृदयार्णव रस" इन सभी गुणो से युक्त है और देखने में आया है कि किसी भी कारण से उत्पन्न हुई द्रुत हृद्गति को यह शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ कर देता है । हृदय के विविध प्रकार के रोगो में इसका सेवन सर्वदा फलप्रद सिद्ध हुवा है ।

रक्तचाप की वृद्धि (H. B. P.) मे भी इसका प्रयोग अधिकतर रोगियो पर बहुत ही शीघ्र लाभप्रद सिद्ध हुवा है । विशेषत' जहां आमाशय के विकार के कारण हृदय पर किसी प्रकार का भार पडने से वायु मे चञ्चलता आगई हो और इस कारण से रोग उत्पन्न हुवा हो वहां यह औषध अचूक काम मे आई है ।

हृदयरोग रसायन [नि. र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अर्जुन के क्वाथ की १०० भावना देकर तैयार की हुई शतपुटी कृष्णाभ्रकभस्म ४० तोला और समभाग शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली ८० तोला लेकर भलीप्रकार एकत्रित खरल करे। मिश्रण को ७ भावनायें अदरक के रस की दे और २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छायाशुष्क करके सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१-१ गोली। दिन मे २-३ बार। मधु अथवा अदरक के रस और मधु के साथ।

उपयोगः—वात-कफज हृद्रोग, मेदज, कृमिज तथा दौर्बल्यजन्य हृद्रोग पर उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध रसायन, बल्य, हृद्य, पौष्टिक, आमपाचक, वातानुलोमक, मेदनाशक और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से दीर्घकाल से संचित मेद की क्रिया द्वारा हृदय के अन्तर्बाह्य वसामय परिवर्तनो द्वारा होनेवाले विकार नष्ट होते है। इसी प्रकार कफज अग्निमान्द्य से हृदय सन्धियो मे उत्पन्न हुई शोथ और हृदय के अन्तर्बाह्य आवरणों मे उत्पन्न हुये शैथिल्य शोथ, और कृमिज आदि विकार दूर होते हैं। इसी प्रकार वायु के फुफ्फुस, फुफ्फुसावर्ण, आमाशय, कण्ठ और वक्षमध्यपेशी मे संचय और प्रकोप से उत्पन्न हुये हृच्छूल, हृत्कपाट विकार, महा धमनी विकार, हृद्दोष और अत्यधिक हृद्गति अथवा हृदवसाद आदि रोग इसके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

हृद्रोगहर रस [भा. भै. र. ८६५५]

(र. का. धे. । उरोग्रहा,)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हींग, सोठ, चीतामूल, कूठ, जवाखार, हैड, चव, विडनमक, पीपल, एरण्डमूल और पोखरमूल इनका चूर्ण तथा पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर) १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर जौ के क्वाथ मे खरल करके सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—४ से ८ रत्ती तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस प्रवृद्ध हृद्रोग और अग्निमान्द्य को नष्ट करता है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक और आमवातनाशक है। इसके सेवन से अजीर्ण, आध्मान, आमाशयगतवात, ग्रहणीगतवात तथा दीर्घकालीन आमवात का नाश होता है। यह मूत्रल भी है अतः वस्तिशोधक और मूत्रदोष के कारण उत्पन्न हुये विष का नाशकरनेवाली भी है।

वायु द्वारा अथवा उदर के विकारों से उत्पन्न हुये वातात्मक हृद्रोग यथा-हृद्शूल, हृन्मांसकृच्छता, श्वासकृच्छता और वक्षशूल आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते है।

हेमगर्भपोटली रस [भा. भै. र. ८६६२]

(शा. ध. । ख. २ अ. १२, र. प्र. सु । अ. ८; बृ. नि र. । क्षय; र का. धे । क्षय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—४ भाग शुद्ध पारद और १ भाग सोने के वर्क एकत्र मिलाकर खरल करे। जब स्वर्ण पारद मे मिल जाय तो उसमे १० भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली बनावे। कज्जली को कचनार की छाल के रस मे खरल करके १ गोला बनालें। गोले को सुखाकर मूषा के सम्पुट मे बन्द करदे और उसपर ३–४ कपडमिट्टी की तह चढादे। इसको ३ दिन भूधर यन्त्र मे पकावे और स्वाङ्गशीतल होनेपर औषध को निकालकर पीस ले और उसमे उसके बराबर शुद्ध गन्धक का चूर्ण मिलाकर मिश्रण को अदरक के रस तथा चित्रकमूल के स्वरस के साथ १–१ दिन खरल करके बडी २ पीली कौडियां मे भरदें। फिर समस्त औषध से अष्टमांश सुहागा तथा सुहागे से आधा भाग शुद्ध विष लेकर दोनों को थूहर के दूध मे घोटकर बनाई हुई पिष्टि से, औषध से भरी हुई कौडियों का मुंह बन्द करदे, और कौडियों को चूने से लिप्त मृत्पात्र मे रखकर उसपर ढकना ढककर सन्धि बन्द करदें। इस पात्र को ३–४ कपडमिट्टी करके सुखाले तथा १ हाथ लम्बे और १ हाथ गहरे गड्ढे मे रखकर गजपुट की अग्नि दें। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तो रस को उसमें से निकालकर पीसले।

नोटः—इसे "लोकनाथ रस" के समान सेवन कराना और "मृगाङ्क रस" के समान पथ्यादि की व्यवस्था करनी चाहिये। ३ दिन तक लवण का त्याग कराना चाहिये। यदि वमन होने लगे तो गिलोय के क्वाथ को शहद मे मिलाकर पिलाना चाहिये।

यदि कफ का प्रकोप हो तो गुड और अदरक खिलावे।

यदि दस्त आने लगे तो सेकी हुई भांग दही में मिलाकर सेवन करावे।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती। मधु अथवा अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कास, क्षय, श्वास, संग्रहणी, अरुचि, कफ और वायु का नाश होता है तथा अग्नि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध रक्तशोधक, दोषानुलोमक, कफ–वातनाशक, अग्निवर्द्धक, मलावरोधनाशक तथा जीर्णाजीर्ण नाशक है। इसके सेवन से दोषो का अनुलोमन होता है और ऊर्ध्वगत तथा प्रतिलोम दोषो के कारण होनेवाले हिक्का, श्वास, वमन, अरुचि, शिरःशूल, कण्ठशोष आदि अनेक रोग नष्ट होते है। उदरगत आम, वात और कफ विकार शान्त होते है तथा अग्नि की वृद्धि होती है।

इस औषधि का सद्वैद्य रोग और रोगी का बलाबल देखकर यथादोषानुपान सेवन करावें। यह रसायन और अनेक रोगनाशक है।

हेमनाथ रस [भा. भै. र. ८६६६]

(र. चं. । प्रमेहा.; भै. र. । बहुमूत्रा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक १–१ भाग तथा अभ्रकभस्म, कपूर (अथवा चांदीभस्म), प्रवालभस्म और वङ्गभस्म आधा २ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर खरल करे और कज्जली बनने पर उसे अफीम के पानी, केले के फलो के रस और गूगल के रस की ७–७ भावनाये देकर (शा. २–३ रत्ती) १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। पानी अथवा मधु और जल या यथोचित अनुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका सेवन कराने से २० प्रकार के प्रमेह, दारुण बहुमूत्ररोग, सोमरोग, क्षय, श्वास, कास और उरःक्षत का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, वातनाडी उग्रता नाशक, मूत्रासंधारक, कफ–वात नाशक और आक्षेपनाशक है। इसके सेवन से शरीर के तन्तुओ मे उत्पन्न हुई उग्रता नष्ट होती है और क्यों कि यह वीर्यवर्द्धक है अतः वीर्यक्षीणता के कारण उत्पन्न हुये विकार यथा-दौर्बल्य, क्षय, कास, श्वास, प्रमेह आदि नष्ट होते है और शरीर मे शक्ति की वृद्धि होती है।

इस रस के सेवन से साधारण कोष्ठबद्धता हो जाती है। यदि त्रिफला के कषाय के साथ इसका सेवन किया जाय तो अधिक लाभप्रद होता है और मलावरोध का भय नहीं रहता।

हेमाभ्रक रससिन्दूर [भा. भै. र. ८६७५]

(यो. र., र. रा. सुं, बृ. नि र । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, रससिन्दूर और स्वर्णभस्म समान भाग लेकर भलीप्रकार मिश्रित करके रखले।

मात्राः—१/२ से २ रत्ती तक। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षयज पाण्डु, क्षय-कास और कुष्ठ का नाश होता है।

सं. वि.—यह रस रसायन, बुद्धिवर्द्धक, बलवर्द्धक, वर्णकारक और कफवातात्मक दोषों के कारण वक्ष के अङ्गों मे होनेवाले विकारों को दूर करता है।

फुफ्फुसावर्ण के तरल अथवा रूक्ष प्रदाह (Dry or wet Pleurisy), जीर्ण कास, श्वास आदि वक्ष के वात–कफज रोगो मे इसका प्रयोग अदरक अथवा मधु के रस के साथ कराने से लाभप्रद सिद्ध हुवा है।

हेमादि पर्पटी रस [भा. भै र. ८६७३]

(र. प्र. सु. । अ. ८)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पारदभस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, स्वर्णभस्म १

भाग, चांदीभस्म १ भाग, अभ्रकसत्वभस्म १ भाग, लोहभस्म १ भाग और ताम्रभस्म १ भाग लेकर, सबको एकत्र मिलाकर भलीभान्ति खरल करें और फिर उसे घृत-लिप्त लोह पात्र में डालकर पिघलावे तथा गौ के गोबर पर बिछे हुये केले के पत्ते पर शीघ्रता से औषधि को फैलावे और ऊपर से दूसरे कदली पत्र से ढकदे तथा उसे गोबर से दबा दें। स्वाङ्गशीतल होनेपर पर्पटी को निकाल ले।

तदनन्तर इस पर्पटी को १ दिन वासा, तुलसी, जयन्ती, गोरखमुण्डी, त्रिफला, अदरक, भांगरा, चौलाई और घृतकुमारी के रस मे पृथक २ खरल करें तथा ३ दिन वच्छनाग के क्वाथ में खरल करके थोडी देर लोहपात्र मे पकावे। तत्पश्चात् सुखाकर खरल करके रक्खे।

मात्रा:--(शास्त्रोक्त ६-६ रत्ती) १ से २ रत्ती। तुलसी और वासा के क्वाथ मे पीपल का चूर्ण मिलाकर उसके साथ औषधि पिलावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इससे सेवन से श्वास तथा कास का नाश होता है।

सं. वि.--यह औषध रसायन और आग्नेय गुण विशिष्ट होने से अग्निवर्द्धक और वात-कफात्मकव्याधि नाशक है।

क्षयकेशरी रस [भा. भै. र. ८७३८]

(रसे. सा. सं, र. रा. सुं.। राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, पारदभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, कांस्यभस्म, मण्डूरभस्म, विमलभस्म, वङ्गभस्म, खर्परभस्म, हरतालभस्म, शंखभस्म, सुहागे की खील, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, कान्तलोहभस्म, वैक्रान्तभस्म, मूंगाभस्म, मोतीभस्म, कौडीभस्म, शुद्ध हिंगुल, राजपट्ट (चुम्बक पत्थर) की भस्म और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करे और मिश्रण को चित्रकमूल के क्वाथ और आक की जड के क्वाथ की १-१ भावना दे। तदनन्तर उसका १ गोला बनाकर शराव सम्पुट मे बन्द करके ३ दिन लघुपुट में पकावे और फिर चित्रकमूल के क्वाथ की और आक की जड के क्वाथ की भावना पूर्ववत् दे और पुन: पाक करें। तदनन्तर बिजौरे के रस में १ दिन खरल करके लघुपुट में पकावे और फिर इसी प्रकार त्रिफला, चित्रकमूल, अम्लवेत, भांगरा और अदरक के रस मे १-१ दिन खरल करके प्रतिवार लघुपुट मे पकाकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्रा:--१/२ से १ रत्ती तक। रोगी और रोग के बलाबल को देखकर। मिश्री और पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर अदरक के रस और शहद के साथ या अन्य रोगोचित अनुपान के साथ सेवन करना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक ज्वर तथा एकाङ्ग

और सर्वाङ्ग वात, एकादश विध क्षय, शोष, पाण्डु, कृमि, ५ प्रकार की खांसी, श्वास, प्रमेह, मेद, उदरवृद्धि, अश्मरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म और हलीमक आदि रोगों को नष्ट करता है।

यह रस सर्वव्याधिनाशक, बल्य, वृष्य, मेध्य और रसायन है।

सं. वि.—आधुनिको के मतानुसार क्षय रोगनाशक सर्व श्रेष्ठ औषध कैलसियम (Calcium) है। उनका मन्तव्य है कि यदि इस शक्तिशाली औषध के साथ शक्तिशाली कीटाणुनाशक औषध प्रयोग मे लाई जाय तो रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है और विकृति दूर होकर शरीर तथा शक्ति की वृद्धि होती है।

"क्षयकेशरी रस" मे रत्न, उपरत्न तथा अन्य सभी प्रकार के प्राकृतिक पार्थिव पदार्थ (Calcium) विद्यमान है। इसके अतिरिक्त यह औषध आग्नेय गुण प्रधान और छहो रस युक्त है। अतः यह रक्तवर्द्धक, वात-कफनाशक, कीटाणुनाशक, ज्वर, दाह, क्षत, क्षय आदि रोगो का नाश करनेवाली है। पित्तशामक और परम रसायन है।

इसके सेवन से भयङ्कर से भयङ्कर क्षय भी अवश्य नष्ट होता है। यह क्षय के कीटाणुओं को कितनी मात्रा के प्रयोग के बाद नष्ट कर देता है यह प्रयोगशाला मे परीक्षण का विषय है, दोष दृष्टि से देखें तो यह सर्वांशत क्षय को नष्ट करता है, यह निर्विवाद सत्य है।

क्षयकुठार रस [र. यो सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक के समान योग से तैयार की हुई कज्जली ५ तोला, नागभस्म २॥ तोला, लोहभस्म २॥ तोला, कान्तलोहभस्म २॥ तोला, अभ्रकभस्म २॥ तोला, मण्डूरभस्म २॥ तोला, वङ्गभस्म २॥ तोला, शुद्ध हिंगुल २॥ तोला, माणिक्य रस २॥ तोला, कौडीभस्म २॥ तोला, सुहागे की खीले २॥ तोला और पीपल ६० तोला लेकर सबको एकत्र खरल करके अदरक के रस की ७ भावना दे। पिष्टि तैयार होनेपर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले और छायाशुष्क करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्रा:—१-१ गोली। दिनमे ३-३ बार। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस जीर्णज्वर, विषमज्वर, कास, श्वास, वक्षशूल, रात्रिस्वेद और क्षय नष्ट करता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, रोपक, रक्तवर्द्धक, रसायन, वीर्यवर्द्धक, रक्तदोषान्तक, पाचक और वातानुलोमक है। इसके सेवन से कण्ठमाला, गलगण्ड, लाला ग्रन्थिशोथ, तौन्सिल प्रदाह, क्षय, कास, श्वास, अजीर्ण, दौर्बल्य तथा रात्रिस्वेद नष्ट होता है। यह आम, कफ और वातनाशक है।

उदर के विकार—जो क्षय के अनुबन्धि बन कर आते है यथा-अजीर्ण, अतिसार, अन्त्र शैथिल्य आदि इस औषध के सेवन से क्षय के साथ शीघ्र ही नष्ट हो जाते है।

क्षयकुलान्तक रस [भा. भै. र. ८७३७]

(र. चं. । राजयक्ष्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—गिलोय का सत्त, पारदभस्म, कृष्णाभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, वङ्गभस्म, प्रवालभस्म, मोतीभस्म और सोने के वर्क समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर ७ दिन त्रिफला के रस मे खरल करे और (शास्त्रोक्त ३–३ रत्ती) १–१ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । मधु मे मिलाकर प्रात सायं सेवन करे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त प्रकार के क्षयरोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, पाण्डु, पित्तजकास, रक्तपित्त, तमकश्वास, और षण्डत्व का नाश होता है । यह रस वाजीकरण, पौष्टिक, वल्वर्द्धक और रसायन है ।

सं. वि.—पोषणाभाव और अधिक व्यवाय के कारण उत्पन्न हुये क्षयरोग को मिटाने के लिये यह औषध अमृत के समान गुणकारी है । पित्तजक्षय, उर.क्षत, रक्तपित्त, मस्तिष्कदाह और शोष के लिये यह अति उपयोगी औषध है ।

यह शीतवीर्य, बल्य, संघातक, व्रणनाशक, वलवीर्यवर्द्धक और जीर्णज्वर नाशक है ।

क्षार ताम्र रस [भा. भै. र. ८७४३]

(यो. र.; र. रा. सुं.; वृ. नि. र. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शंखभस्म, सज्जीक्षार, ताम्रभस्म, कौडीभस्म, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, यवक्षार, सुहागे की खील, सोठ, मिर्च, पीपल और सेंधानमक प्रत्येक समान भाग लेकर सवको एकत्र मिलाकर भांगरा, अडूसा और अदरक के रस की पृथक पृथक १–१ भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां वनाले ।

मात्राः—१–१ गोली । रोगोचित अनुपान के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, पुराने ज्वर, अग्निमान्द्य और ग्रहणी विकारो को नष्ट करता है ।

यह रस साधारण रोगों को ७ दिन मे और पुराने रोगो को ४० दिन मे नष्ट कर देता है।

सं. वि.—"क्षारताम्र रस" आमपाचक, पित्तशामक, पित्तजदाह-शोथ नाशक तथा अग्निवर्द्धक है ।

इस के सेवन से पित्त द्वारा उत्पन्न हुये ग्रहणी के शोथ, व्रण तथा ग्रहणी रोग नष्ट होते है । पित्तजकास श्वास आदि रोगो मे भी यह रस समान गुणकारी है ।

क्षीर वटी [भै. र. । शोथा]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध धतूरे के बीज और शुद्ध हिंगुल।

प्रत्येक समान भाग लेकर एकत्रित कर एक प्रहर तक खरल करे। मिश्रण को धतूरे के रस मे १ याम तक घोटें और पिंडी तैयार होनेपर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म–इसके सेवन से अनेक प्रकार का शोथ, पाण्डु और कामला रोगनष्ट होता है।

पथ्यः—दूध-भात अथवा दूध से बना हुवा अन्न यथा दलिया आदि।

अपथ्यः—लवण और पानी का सेवन बिल्कुल न करे। प्यास लगने पर दूध ही दे।

सं वि.–यह औषध ऊष्ण, विषैली, कफ, आम, कण्ठरोग, सन्निपात और ज्वरनाशक है। ज्वर के कारण होनेवाले यकृत्प्लीहादि के अथवा उदरकलाओं के शोथो को नष्ट करती है। यह विषैले कीटाणु के दश अथवा आघात द्वारा उत्पन्न हुये शोथ के लिये उत्तम आन्तरिक औषध है।

यदि पित्तज, कफज और वातजशोथ, अभिघात, विष और कोथ द्वारा शरीर के किसी भाग में भी उत्पन्न हुये हो तो इसके सेवन से वे दूर हो जाते है। कफज और वातज मस्तिष्कशूल मे इसका प्रयोग लाभप्रद होता है। कफज और वातज मस्तिष्क रोगों मे अर्थात् उन्माद और अपस्मार मे भी इसका उपयोग लाभप्रद सिद्ध होता है।

मेरी दृष्टि से "आधुनिक" जिसे "इन्फ्लेमेशन (Inflammation)" कहते है उस रोग मे इसका प्रयोग उतना ही लाभकारी सिद्ध हो सकता है, जितना "पैनेसिलन" और "स्ट्रप्टोमाइसिन" का। इसका कारण यह है कि वच्छनाग ज्वरघ्न है, वह रक्त का परिभ्रमण करके जिस स्थान मे रक्तशोथ हुवा होता है, उस स्थान को सतत पुष्ट करके वहां से रोग के कारण को नष्ट कर देता है और इस प्रकार शोथ नष्ट हो जाता है। अतः व्रणशोथ, विषजन्य शोथ, आघातजन्यशोथ, कीटाणुज शोथ और कोथ के उपद्रवो पर इसका प्रयोग किया जाय तो अवश्य लाभप्रद सिद्ध होगा।

७ क्षुद्बोधक रस [रसतन्त्र सार १६५]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, कालीमिर्चे, पीपल, सज्जीक्षार, यवक्षार, हैड, बहेडा, आमला, चित्रकमूल, चव, पाञ्चोनमक, डांसरियां (अभाव मे खट्टे बेर), अनारदाना, लोहभस्म, भीमसेनी कपूर, सब द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, अनन्तर लोहभस्म मिश्रित करे। तत्पश्चात अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर अम्लवेत के कषाय, अदरक के रस, निम्बु के रस और अजवायन के क्वाथ की क्रमशः ३–३ भावना देकर चने के बराबर (२–२ रत्ती की) गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। दिन मे २ या ३ बार। जल के साथ।

उपयोग–इस रसायन का उपयोग किसी भी रोगजनित अग्निमान्द्य पर अच्छा होता है। भूख जल्दी खुल जाती है, ऐसा हमारा दीर्घकाल से अनुभव है। वातज और कफज, अग्नि-

मान्य, बद्धकोष्ठ, अरुचि, उदरशूल और अपचन आदि विकार इसके सेवन से दूर हो जाते है तथा मुखमण्डल पर लाली और स्फूर्ति आ जाती है।

इस रसायन का उपयोग आमाशय के रस स्राव में लवणाम्ल की न्यूनता से उत्पन्न अग्निमान्द्य पर होता है; अर्थात् वातज और कफज विकार पर यह प्रयुक्त होता है। वातज विकार मे मलावरोध, कभी अनाज का पचन, कभी अपचन होना आदि लक्षण। कफज विकार मे आमोत्पत्ति, उदर मे भारीपन बना रहना, मुंह मे मीठापन बना रहना, जिह्वा पर मल लिप्त रहना, उदरशूल आदि लक्षण उपस्थित होते है। चाहे यह अग्निमान्द्य किसी भी रोग मे उत्पन्न हुवा हो, कितने ही रोगियो मे लवणाम्ल स्राव अधिक होता है, उन्हे भी अग्निमान्द्य हो जाताहै। किन्तु उसे पैत्तिक अग्निमान्द्य कहते है। पैत्तिक अग्निमान्द्य मे विदग्ध अजीर्ण के लक्षण, छाती में जलन, तृषाधिक्य, खट्टी डकार, स्वेद आदि होते है। उनपर इस रसायन का उपयोग नहीं होता।

तमक श्वास से पिडीत रोगी, जो गरम गरम चाय, गरम गरम भोजन आदि का सेवन अधिकांश में करते रहते है उनकी पचन क्रिया बिल्कुल मन्द हो जाती है और बहुधा आमाशय के रस स्राव मे लवणाम्ल का अभाव हो जाता है, इससे उनको तमकश्वास सर्वदा सन्ताप देता रहता है। ऐसे रोगियों को गरम पेय आदि छुडाकर इस रसायन का सेवन कराया जाय, तो थोडे ही दिनो मे पचन क्रिया मधुर हो जाती है। [रस तन्त्र सार से उद्धृत]

क्षेत्रपाल रस [भा. भै. र. ८७५४]

(भै. र. । र. चं.) शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग, ताम्रभस्म, लोहभस्म, शुद्ध हरताल, सुहागे की खील, जीरा, और अफीम। प्रत्येक समान भाग लेकर सबको मिश्रण करके जल के साथ घोटकर आधी २ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१–१ गोली। जल अथवा मधु और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शोथ, अग्निमान्द्य, दुस्तरग्रहणी, विषमज्वर और जीर्णज्वर का नाश होता है।

पथ्य:—दूध भात। **अपथ्य:**—लवण और जल।

सं. त्रि.—यह औषध आक्षेपनाशक, शूलनाशक, कीटाणुनाशक, वातानुलोमक और संग्राही है।

क्षेत्रीकरण रस

द्रव्य तथा निर्माण विधान—बुभुक्षान्त संस्कारित पारद १६ तोला लेकर उसमे १ तोला सुवर्ण के सुचिवेध सूक्ष्म पत्रो को मर्दन करे और फिर १६ तोला गन्धक मिलाकर उसकी कज्जली बनावें। कज्जली को कांचकुप्पी में भरकर वालुकायन्त्र मे पकावे। इस प्रकार षड्गुण गन्धकजारण करके अन्तिम तैयार किये हुये द्रव्यको लेकर उसको काले धतूरे, मूसाकर्णी और त्रिफला के रस के साथ यथाक्रम ५–५ दिन मर्दन करे। पिष्टी तैयार होनेपर उसकी

टिकियां बनालें और उन्हे सुखाकर ६४ तोला गन्धक लेकर, ३२ तोला गन्धक डमरू यन्त्र की तली मे बिछादें और उसके ऊपर उपरोक्त टिकिया रखकर ३२ तोला गन्धक टिकिया के ऊपर डालदे। डमरू यन्त्र पर ७ कपडमिट्टी करके चूल्हे पर चढादे और २१ दिन पर्यन्त मृदु, मध्य और तीक्ष्ण अग्नि देकर पकावे, २२वे दिन भट्टी के नीचे से लकडियां निकाल लें और कोयलें जलने दे। यन्त्र जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसमे से सिन्दूरवर्ण भस्म को निकाल ले।

तैयार की हुई उपरोक्तभस्म २० तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, विडङ्गभस्म, शिलाजीत और हरीतकी चूर्ण प्रत्येक २०-२० तोला लेकर भलीभान्ति खरल करके सूक्ष्म चूर्ण बनालें। फिर घी और मधु के साथ मर्दन करके ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१-१ गोली। प्रातःकाल। यथा दोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बल-वीर्य-अग्नि की वृद्धि होती है और राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु, हलीमक, ग्रहणी और अतिसार का नाश होता है। इसका २ वर्ष तक सतत प्रयोग करने से वलि-पलित का नाश होता है तथा निरन्तर सेवन से मानव दीर्घजीवी बन जाता है।

सं. वि.—यह औषध रसायन, वाजीकरण, वृष्य, बल्य, आयुष्य, दीपक, पाचक, त्रिदोषनाशक और भयङ्कर रोगो का नाश करनेवाली है। इसका सभी विकृत रोगों मे विविध अनुपानो के साथ सेवन करा सकते है। जीर्ण यकृत विकार, अन्त्रक्षोभ, वातोदर, कृशता, अग्निमान्द्य, सर्वाङ्गशोथ, दौर्बल्य और शुक्र क्षीणता तथा अनुलोम और प्रतिलोम क्षय मे इसका सेवन सर्वदा कल्याणप्रद होता है।

ज्ञानोदय रस [भ. भै. र. ८७७७]
(वै. र, वृ. नि. र.। ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—भांग १६ भाग, जायफल ४ भाग, रससिन्दूर १ भाग और खांड २१ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके रक्खे।

मात्रा:—२ से ८ रत्ती तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ग्रहणी, जलदोष, ज्वरातिसार और वात-कफज रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध ग्राही, जलदोषनाशक, अग्निवर्द्धक और आमशोषक है।

इसके सेवन से एक स्थान को त्याग कर दूसरे स्थान में जाने पर जलभेद के कारण जो उदर के विकार-अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अतिसार आमदोष आदि होते है वे नहीं होने पाते औ उत्पन्न जलदोष के विकार इसके सेवन से नष्ट हो जाते है।

यह अग्निवर्द्धक है। परन्तु इसके सेवन के बाद भूख लगने पर अधिक मात्रा मे खाया जाय तो सम्भवतः न भी पचे अतः मात्रावत आहार करना ही उचित है।

भैषज्य-सार-संग्रह

द्वितिय प्रकरण

कुप्पीपक्क रसायन

कुप्पी

अग्नि के संयोग में रहते हुये भी न टूटे, ऐसी कांच की कुप्पाकार अगन शीशी "कुप्पी" कहलाती है।

इसका नीचे का भाग गोलाकार, बृहद् और विस्तृत होता है। ऊपर का भाग नलिकाकार होता है।

औषध भरने से पूर्व कुप्पी को अधिक सुरक्षित बनाने के लिये सात कपडमिट्टी कर लेते है, अर्थात् मुल्तानी मिट्टी मे परिप्लावित वस्त्र से कुप्पी को आच्छादित करते है। इस प्रकार के ७ आवरणो से कुप्पी को आवृत्त करते है। कहीं टूट न जाय और मूल्यवान् औषध हस्तगत न हो, इस भय से मुक्त रहने के लिये, कपडमिट्टी की हुई कुप्पी को लोहे के सूक्ष्म तारो से भलीभान्ति बांध लेते है।

औषध भरने के बाद (कुप्पी के १/४ भाग में ही औषध भरनी चाहिये) कुप्पी को—१ गोलाकार भट्टी के ऊपर के भाग मे, जिसका ऊर्ध्व अधो विभाजन लोह—शलाकाओ से किया गया हो और शलाकाओ के ऊपर सूक्ष्म लोह तारो का १ जाल बिछाया गया हो तथा ऊर्ध्व भाग का निर्माण वृत्ताकार हो और कुप्पी के चारो और बालुका भरी हो—ऐसे स्थान मे रक्खे, और भट्टी के नीचे के भाग मे मन्द, मध्य तथा तीक्ष्ण यथावश्यक अग्नि प्रज्वलित करे।

पक्व

एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे अन्तर्बाह्य परिणमन, जिस मे द्रव्य की पूर्वकालीन अवस्था न रहकर पूर्णतया अणु अणु परिपक्व हो जाय, ऐसी अवस्था को "पक्वावस्था" कहते है।

पाक ३ प्रकार के होते है (१) मृदु पाक, (२) मध्य पाक और (३) खर पाक। मृदु पाक में द्रव्य किञ्चित् पक्व, किञ्चिदपक्व अर्थात् पूर्णतया परिणत नहीं होता। मृदु पाक द्रव्यो का सेवन दोषयुक्त माना जा सकता है। मध्य पाक में औषध यथावश्यक परिपक्व अवस्था को प्राप्त होती है। मध्यपक्व द्रव्यों का सेवन सर्वथा निर्दोष और युक्ति युक्त होता है। खरपाक मे द्रव्य अधिक परिपक्व हो जाते है, द्रव्यो का वीर्य नष्ट हो जाता है, उनमे रूक्षता, कर्कशता और जटिलता आजाती है। खर पक्व द्रव्य सेवन योग्य नहीं होते।

कुप्पियों में भरकर निर्माण किये जाने वाले द्रव्यो की पाक गति को जानने के लिये उनमें उडते हुये धूम्र का निरीक्षण करना चाहिये। परीक्षणार्थ लकडी की एक शलाका सीधी द्रव्य को स्पर्श करे इस प्रकार डाली जाय तो मृदुपक्व द्रव्य शलाका से चिपट जायगा और मध्यपक्व द्रव्य को स्पर्श करने से शलाका प्रदीप्त हो जायगी तथा खरपक्व मे शलाका के स्पर्श का अनुभव कठिन द्रव्य के जैसे होगा।

रसायन

स्वस्थो में ओज की वृद्धि करे ऐसा द्रव्य वृष्य और रसायन कहलाता है। मानवो को दीर्घायु, स्मृति, मेधा आरोग्य, नवयौवन, प्रभाव, वर्ण, स्वर सम्पत्ति, शरीर और इन्द्रियों में शक्ति, नम्रता, कान्ति आदि की प्राप्ति रसायन के सेवन से होती है।

कुप्पीपक्व रसायनों में पारद का मुख्य स्थान है अर्थात् सभी कुप्पीपक्व रसायन द्रव्यो मे पारद का मिश्रण होता ही है। रसायन द्रव्य अनन्त है। शरीर मे रस–रक्त आदि धातुओं की वृद्धि करके, बल, वर्ण, ओज, मेधा, कान्ति की वृद्धि करनेवाले द्रव्य केवल पारद वाले ही होते है, सो नहीं है, आमला, ब्राह्मी, शतवीर्या, गडूची आदि अन्य अनेक औषधियां भी रसायन है, क्योंकि इनके सेवन से शरीर ओजवाले होते है और उनमे रस अर्थात् गति अर्थात् सामर्थ्य का प्रवेश होता है अतः ये द्रव्य रसायन कहलाते है।

कुप्पीपक्व रसायनों का विवेचन करते हुये हमारा सम्बन्ध अधिकतर "पारद" से है, अत: पारद का विशेष वर्णन आवश्यकीय प्रतीत होता है।

पारा (पारद)

सम्पूर्ण संस्कारों से संस्कृत रसराज रसो की अन्तरात्मा है। पारद के बहुत से नाम है। रसराज, रसनाथ, महारस, रस, महातेज, रसलेह, रसोत्तम, सूतराट, चपल, शिववीज, शिव, रसेन्द्र, लोकेश, दिव्य रस और देव इत्यादि इसके अनेक पर्याय है। विधान पूर्वक सद्वैद्यो द्वारा बुभुक्षित किया हुआ पारद सर्व रोग नाशक, रसायन, शरीर मे नवता, दृढता, ओज और सप्त धातुओं की वृद्धि करनेवाला, रसों [धातुओ–स्वर्ण आदि) के मारण मे सहायभूत और धातु उपधातुओं का स्रोत है। पारद के गुणो की संख्या वर्णनातीत है। जैसे शुद्ध पारद में गुणो की भरमार है वैसे ही अशुद्ध पारद दोषो से भरपूर होता है और अनेक भयानक रोगों को उत्पन्न करता घातक क्रिया करता है।

अन्तर नील और बाह्य उज्वल, सूर्य की आभावाला रसेन्द्र औषध क्रिया योग्य होता है। शुद्ध पारद जरामृत्यु नाशक और अशुद्ध पारद देह नाशक होता है। दोषरहित पारद त्रिदोषघ्न और विशेषतः शक्तिप्रद होता है। नाग, वङ्ग, मल, अग्नि, चाञ्चल्य, विष, गिरि और असह्याग्नि नाम के आठ नैसर्गिक महादोष पारद मे विद्यमान रहते है। इन दोषो से मुक्त होने

पर ही पारद जरा, मृत्यु और संताप नाशक हो सकता है। "शुद्धोऽयममृतं साक्षात दोषयुक्तो रसो विषम्" र. सा. सं.।

पारद के ४ भेद होते है। (१) कृष्ण, (२) श्वेत, (३) पीत और (४) रक्त। इनमें से श्वेत रोगनाशन मे श्रेष्ठ होता है और रक्त रसायन में काम आता है। पीला सुवर्णादि धातुओ मे उपयोगी है, काला सिद्धि की प्राप्ति कराता है। आजकल तो केवल श्वेत पारद ही लभ्य है।

पारद को दोषों से मुक्त करने के लिए रसायनाचार्यों ने (१) स्वेदन (२) मर्दन (३) मूर्च्छन (४) उत्थापन (५) पातन (६) बोधन (७) नियमन (८) दीपन (९) अनुवासन (१०) चारण (११) जारण (१२) गर्भद्रुति (१३) बाह्यद्रुति (१४) रञ्जन (१५) सारण (१६) अनुसारण (१७) प्रतिसारण (१८) वंधन आदि रस शोधन प्रकारों का आविष्कार किया। इन मे से आठ संस्कार तो, पारद को किसी भी औषध मे प्रयुक्त करने से पूर्व, करने आवश्यकीय है। लगभग सभी औषघ निर्माता इन आठ संस्कारो को करके ही पारद को काम मे लाते है। [१] स्वेदन [२] मर्दन [३] मूर्च्छन [४] उत्थापन [५] पातन [६] बोधन [७] नियमन तथा [८] दीपन। संक्षेप मे आठ क्रियाओ द्वारा संशोधित पारद औषध आदि मे प्रयोग करने योग्य माना जाता है।

स्वेदनः—सोठ, मिर्च (काली), पीपर, सेधानमक, राई, हल्दी, हैड, बहेडा, आमला, अदरख, महाबला (खरैटी), नागवला (गंगेरन), चौलाई, विसखपरा (सांठी), मेढासिंगी, चीता और नौसादर समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर या पृथक २ काञ्जी मे पीसलें और फिर इस कल्क का एक वस्त्र पर १ अंगुल मोटा लेप करदे। तत्पश्चात् इस वस्त्र में पारद की पोटली बनाकर उसे दोला यन्त्र विधि से ३ दिन तक काञ्जी में पकावे। इस क्रिया का नाम स्वेदन है। [भा. प्र. । प्रथम खण्ड]

अथवा

पारद को चार तह किए हुए वस्त्र में बांधकर दोला यन्त्र विधि से १—१ दिन त्रिकुटा, त्रिफला, चीता और ग्वारपाठा के कल्क को काञ्जी मे मिलाकर उसके साथ स्वेदन करे। [र. रा. सु.]

मर्दनः—पारे मे उससे १६वां भाग लाल ईंट का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण, घर का धुंवा, ऊनकी भस्म और चूना मिलाकर उस मे नीबू का रस डालकर १ दिन घोटें और फिर गरम काञ्जी से धो डाले। इस क्रिया से पारद नाग दोष मुक्त हो जाता है।

उपरोक्त क्रिया करने के पश्चात् उस पारद मे उसका १६वां भाग इन्द्रायण मूल और अंकोल का चूर्ण मिलाकर काञ्जी के साथ १ दिन घोटकर गर्म काञ्जी से धो डाले। इस क्रिया से पारद वङ्ग दोष से मुक्त हो जाता है।

तत्पश्चात् इस पारद मे अमलतास की जड का चूर्ण मिलाकर घोटे और काञ्जी से धो डाले। इस क्रिया से पारद का वह्नि दोष नष्ट हो जाता है।

इस पारद को फिर धतूरे के रस मे घोटे और यथा पूर्व काञ्जी से धो डालें। यह क्रिया पारद को चाञ्चल्य दोष निर्मुक्त करती है।

इसके पश्चात् इस पारद को त्रिकुटे के क्वाथ मे घोटे और काञ्जी से धो डालें। इस क्रिया से पारद गिरि दोष से मुक्त हो जाता है। [यो. र. पारद प्रकरण]

वि. सू.—प्रत्येक औषध का चूर्ण पारद का सोलहवां भाग लेना चाहिए और प्रत्येक में १–१ दिन घोटने के पश्चात् पारद को काञ्जी से धो डालना चाहिए।

मूर्च्छन—पारद को ग्वार पाठा, त्रिफला औ चीतामूल के क्वाथ के साथ पृथक पृथक ७–७ वार घोटे और काञ्जी से धो डालें। इस क्रिया से पारद के मल, असह्याग्नि और विष दोष नष्ट हो जाते है [र. रा. सु. । पू. ख.]

प्रत्येक द्रव्य पारद का सोलहवां भाग लेना चाहिए।

उत्थापनः—मूर्च्छन क्रिया के पश्चात् पारद को ऊर्ध्व पातन यन्त्र द्वारा उडाकर गर्म कांजी से धो डालें। यही क्रिया उत्थापन संस्कार है। [र. र. स. । अ. ११]

पातनः—(क) अधःपातन—समान भाग गन्धक और पारद की कज्जली मे कौंच के बीज, सुहांजने के बीज, चीता, सेंधानमक और राई का चूर्ण मिलाकर उसे १ दिन जामुन के रस में घोटकर पिट्ठी बनाले और इस पिट्ठी का हांडी के भीतर लेप करदे। इस प्रलिप्त हांडी को दूसरी इतनी ही वडी पानी से भरी हांडी के ऊपर उल्टी रख कर दोनो के जोड कोगुड चूने आदि से अच्छी तरह बन्द करदे और सूखने पर इन हाण्डियों को यथा पूर्व भूमि मे गाढ दे।

पानीवाली हांडी भूमि मे और ऊपरवाली हांडी भूमि के वाहर रहनी चाहिए। भलिभांति व्यवस्थित होनेपर ऊपर वाली हांडी के चारो ओर तथा उसके ऊपर अरने उपले लगाकर उनमें अग्नि लगादें।

इस क्रिया से पारद उडकर नीचेवाली हांडी मे पानी के अन्दर चला जायगा। इस क्रिया का नाम अधः पातन संस्कार है। [र. सा. सं.]

(ख) ऊर्ध्व पातन—१ भाग ताम्र के वारीक पत्र और ३ भाग पारद को एकत्र मिलाकर नीबू का रस डालकर इतना घोटे कि दोनो का एक पिण्ड वन जाय। इस गोले को कपड मिट्टी की हुई हण्डी मे रखकर उसके ऊपर दूसरी हांडी उल्टी ढक कर दोनो के जोड को गुड चूने आदि से अच्छी तरह बन्द करदे। तदनन्तर ऊपरवाली हांडी की तली पर मुल्तानी मिट्टी आदि से एक घेरा (गढा) बनाकर उसमे पानी भरदे। अब इस यन्त्र को चूल्हे पर चढाकर

उसके नीचे मृदु, मध्यम और तीव्राग्नि जलावे। ऊपरवाली हांडी के गढे मे के पानी को बार बार बदलते रहना चाहिए, जिससे कि उसकी तली ठण्डी रहे।

इस क्रिया से (३ प्रहर में) पारद उडकर ऊपर जा लगेगा। हांडी के स्वाङ्गशीतल होने पर उसे सावधानी पूर्वक निकाल लेना चाहिए। [र. सा. सं.]

(ग) **तिर्यक पातनः**—एक घडे मे पारा डाले और दूसरे उतने ही बडे घडे मे पानी भरदे। तदनन्तर दोनो के मुखो को तिरछा मिलाकर संधि को गुड चूने आदि से अच्छी तरह बन्द करदे और फिर पारद वाले घडे के नीचे आग जलावे इस विधि से पारा उडकर पानी वाले घडे में चला जायगा। इसी का नाम तिर्यक पातन संस्कार है। [र. सा. सं.]

ये तीनो ही पातन संस्कार यथाक्रम करने आवश्यकीय है।

आजकल विज्ञान सहज और सरल मार्ग शोध रहा है। तिर्यक पातन के लिए पारद को एक रिटोर्ट मे भरो और रिटोर्ट को तार वाली तिपाइ पर रक्खो तथा रिटोर्ट का एक स्टेण्ड के साथ संयोग कर दो। रिटोर्ट का आगला मुख एक कांच के फ्लास्क मे इस प्रकार डुबो दो कि फ्लास्क के मुख मे पानी न भर पाये। अब रिटोर्ट के नीचे स्पिरिट लैम्प रख दा। इस मंदाग्नि द्वारा उड उड कर पारद धीरे २ सामने के फ्लास्क मे जमा होता जायगा—फ्लास्क पर शीतल जल डालते रहो जिससे फ्लास्क गर्म न हो जाय। शीत क्रिया पारद को मूर्त रूप में ले आवेगी। धीरे २ सम्पूर्ण पारद इसी फ्लास्क मे आकर जमा हो जायगा।

इसी प्रकार तीनो प्रकार की पातन क्रियाओं से बचने के लिए एक अन्य सरल क्रिया है। वह यह कि एक लोहे के सिलेण्डर मे ईट का चूर्ण, धुआं इत्यादि मिला हुआ पारद भरदो और सिलेण्डर को मजबूत स्टैन्ड के साथ कसदो। इस सिलेण्डर के मुख पर एक लोहे की डाट अथवा शीशियों पर लगाने की ऐसी डाट लगाओ कि जिसके मुखमे एक कांच की नली प्रविष्ट की जा सके, कांच की नली मुडी हुई होनी चाहिए। कांच की नली का सामने का मुख एक फ्लास्क मे प्रविष्ट कराओ और फ्लास्क को एक पानी के टब मे रख दो। इस फ्लास्क पर निरन्तर शीतल जल डालते रहो। सिलेण्डर के नीचे मृदु, मध्यम और यथेच्छ तीव्राग्नि, वनसन वर्नर द्वारा अथवा विजली के स्टव द्वारा अथवा तो बडे स्पीरिट लैम्प द्वारा जलाओ। कुछ कालमे पारद उड २ कर सामने के फ्लास्क मे जमा हो जायगा और आप पातन संस्कार द्वारा संस्कृत पारद प्राप्त कर सकेंगे।

बोधन संस्कार—पूर्वोक्त संस्कार से पारद मे षण्ढत्व आ जाता है, उसे नष्ट करने के लिए बोधन संस्कार किया जाता है।

नारियल या कांच की शीशी मे पारे को डालकर उसमे इतना पानी डाले कि जिसमे पारद

डूब जाय। तत्पश्चांत् उसका मुख अच्छी तरह बन्द करके उसे डेढ हाथ नीचे भूमि मे गाढ दे और तीन दिन पश्चात् निकाल लें इस क्रिया से पारे का नपुंसकत्व दोष दूर हो जाता है। [र. सा. स.]

नियमन संस्कारः—लाल रंग के सैंधव का बडा सा पत्थर लेकर उसके बीच मे एक गढा खोदकर उसमे पारद भरदे और उसके ऊपर चने का खार (अभाव में नौसादर) डालकर ऊपर से नींबू का रस डालदे। तत्पश्चात् उस छिद्र को कटे हुए सैंधव पत्थर के टुकडे से ढक कर जोड को अच्छी तरह बन्द कर दे और फिर उसे भूमि में आठ अंगुल नीचे गाढकर उसके ऊपर सात दिन तक अरण्य उपलों की अग्नि जलावे, अन्त मे पारद को निकाल कर कांजी से धो डाले। इसी क्रिया का नाम नियमन संस्कार है [र. रा. सु.]

दीपन संस्कारः—कासीस, पांचो नमक, राई, कालीमिर्च, सुहांजने के बीज और सुहागे के चूर्ण को काञ्जी मे मिलाकर उसमे पारद को ३ दिन तक दोला यन्त्र विधि से पकावें। इसे दीपन संस्कार कहते है।

पारद भस्म विधिः—अपामार्ग के बीजो की कल्क बनाकर दो मूषाओ को इससे प्रलिप्त करे और अलाबू के दूध से मिश्रित पारद को इस सम्पुट मे, दोणपुष्पी के फूल, विडङ्ग और अरिमेद का चूर्ण पारद पिष्टी के ऊपर नीचे डालकर, बन्द करदें और कपडमिट्टी करदे। इस गोलक को मृण्मूषा पुट मे रखकर पकावे। इस प्रकार एक ही पुट देने से पारद की भस्म हो जाती है। [भा.]

देवदाली, हंसपादी, यम चिञ्चा, पुनर्नवा, इनके साथ पारद को खरल करके पुट देने से पारद की भस्म हो जाती है।

क्षेत्र भेद से पारद के पांच भेद होते है। श्वेत, नील, रक्त, पीत और मिश्रक। श्वेत रोगो के उपचार के लिए प्रयुक्त होता है। नील पारद दोष नाशक है। रक्त पारद रसायन प्रयोगो मे काम आता है। धातुवाद मे पीत पारद अठारह कर्म करने से शुद्ध होता है। मिश्रक रत्नादियो के स्थानो पर मिलता है, अठारह संस्कार करके ही काम मे लाया जा सकता है।

पारद के गुणः—योगवाही (जिस योग के साथ दिया जाय वैसे ही क्रिया करे), अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्द्धक), दृष्टि शक्तिको बढानेवाला, सर्व रोग नाशक और विशेषत' कुष्ठ नाशक, ये संस्कृत पारद के गुण है। अशुद्ध पारद का सेवन करनेवाला भयङ्कर रोग से पीडित होता है।

यदि किसीने अशुद्ध पारद भूल से सेवन कर लिया हो तो उसको विकारों से बचाने के लिए सम्यक शुद्ध गन्धक का सेवन करावे।

कुप्पीपक्क रसायनो मे शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और जिस द्रव्य का विशेष मिश्रण करना हो अथवा जिस द्रव्य विशेष के योग को मुख्य स्थान दिया जाय उसका परिपूर्ण शोधन करके, अनन्तर पारद और गन्धक की कज्जली के साथ भलीप्रकार खरल करके, कुप्पी द्वारा यथाविधि निर्माण करना चाहिए। किसका कैसे निर्माण हो, यह यथास्थान निर्देष करेगे।

अष्टमूर्ति रस [भा. भै. र. ३५१]

(बृ. नि. र. । ज्वरे.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, नागभस्म, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिकभस्म और शुद्ध मनसिल प्रत्येक समान भाग। इन सवके बराबर शुद्ध पारद ले। प्रथम पारे और गन्क की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यो को कज्जली में मिश्रित कर, मिश्रण को भलिभान्ति खरल करे और फिर उसको निम्बु के रस मे १ प्रहर तक घोटकर कुम्भ पुट दे (कुप्पीपक्क करे)। तय्यार होनेपर निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोग मे लावे।
मात्राः—१-१ रत्ती मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से भूतज्वर और चातुर्थिक, त्र्याहिक, द्व्याहिक आदि ज्वरो का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, विषनाशक, कीटाणुनाशक, शोधक और दीर्घकालीन विष के प्रभाव को नष्ट करनेवाली है। इसके सेवन से लैङ्गिक संसर्ग द्वारा प्राप्त किये हुये फिरङ्ग रोग का नाश होता है। अधिकसमय पर्यन्त रक्तशोधक द्रव्यों के साथ उपयुक्त की जाय तो यह उपदंश के विकारो को नष्ट करती है।

अष्टावक्र रस [भा. भै. र. ३५५]

(भै. र. । रसा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग, चांदीभस्म १/४ भाग, सीसाभस्म, नागभस्म, खर्परभस्म और वङ्गभस्म प्रत्येक १/४-१/४ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर उसमे अन्य औषधियों को मिलाकर वर्गद के रस और घीकुमारी के रस मे मर्दन करके कुप्पी (आतसी शीशी-Fire Proof Glass Flask) में भरकर यथाविधान ३ दिन तक बालुका यन्त्र मे पकावे। तैयार होने पर यह रस अनार के फूल के समान हो जाता है। कुप्पी से औषध को निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।
मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। मधु अथवा यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह वलिपलित नाशक, बलवर्द्धक, पौष्टिक, आरोग्यवर्द्धक, मेधा-कान्तिप्रद और वीर्यवर्द्धक है।

इस श्रेष्ठ औषध का निर्माण "अष्टावक्रजी"ने किया।

सं. वि.—यह औषध रसायन, वल्य, मेध्य, वीर्यवर्द्धक और अनेक रोग नाशक है। इसका सेवन प्रत्येक रोगी और नीरोगी मानव कर सकते है। यह वाजीकरण और उत्तम रसायन है। इसका सेवन सर्वथा श्रेयस्कर है।

कामिनी विद्रावण रस [भा. भै. र. ९८८]

(र रा. सुं । रसा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर ३ दिन तक कमल के रस मे घोटे। फिर सम्पुट मे वन्द करके १ प्रहर तक वालुका यन्त्र मे पकावे। इसके पश्चात् इसे कुप्पी मे से निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करके १ दिन उसे रक्त चन्दन के क्वाथ में घोटकर, सूक्ष्म चूर्ण करके, प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—१-१ रत्ती। मिश्री के साथ खाकर ऊपर से दूध पीये तथा यथेच्छ आहार-विहार करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अत्यन्त काम की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध रसायन और वाजीकरण है। जहां अन्य अनेक वाजीकरण औषधिया प्रयोग के बाद अनेक विकारो को उत्पन्न कर देती है वहां यह निर्दोप यथेच्छ फल देकर प्रयोग कर्ता को सदा के लिये पुष्ट, निर्विकार और बलवान् बना देती है। यह शोधक, रक्तर्द्धक, मेधावर्द्धक और वीर्यवर्द्धक है। इसका उपयोग कभी कभी आश्चर्यचकित कर देनेवाला होता है। जिन व्यक्तियो को वाजीकरण औषधियो की आवश्यकता हो, उनके लिये निर्विकार औषधियो में से एक और उत्कृष्ट "कामिनी विद्रावण रस" का सेवन युक्तियुक्त है।

चन्द्रोदय [भा भै. र. १९०७]

(र. रा. सु. । अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली तय्यार करे, तदनन्तर उसे २ दिन तक द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस और पीपल के क्वाथ मे घोटे। तत्पश्चात् उसे सुखाकर कपडमिट्टी की हुई तथा तारो से बधी हुई कुप्पी (आतसी शीशी) मे भरकर बालुकायन्त्र में रखकर प्रथम ४ प्रहर तक मन्दाग्नि और फिर ४ प्रहर तक तीव्राग्नि दे। तत्पश्चात् शीशी के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसे तोडकर भीतर से शीशी के मुह मे लगे हुये रस की चक्रिका को निकाल ले और उसके ऊपर जो गन्धक लगी हो उसे निकाल

कर अलग करदें। अब फिर इसे द्रोणपुष्पी और पीपल के रस मे १ दिन घोटकर उपरोक्त विधि से ४ प्रहर तक वालुकायन्त्र मे पकावे।

वालुकायन्त्र को अग्निपर चढाने के १ प्रहर पश्चात् आधे आधे प्रहर मे शीशी मे १ लम्बी वांस की शलाका डालकर देखते रहे। सींक जल उठे तो समझ लें कि गन्धक जीर्ण हो चुका है और यदि वांस की सीक को गन्धक लग जाय तो माने कि अभी गन्धक जीर्ण नहीं हुवा है। इस प्रकार परीक्षा करने से जब गन्धक का जीर्ण होना निश्चित हो जाय तो अग्नि देना बन्द करदे और शीशी के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसको तोडकर औषधि निकाल लें।

तदनन्तर इसमें इसका १/४ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली बनावे और उसे १ दिन पीपल के क्वाथ तथा द्रोणपुष्पी के रस में घोटकर वालुका यन्त्र मे उपरोक्त विधि से ४ प्रहर की अग्नि दे और शीशी के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसमे से औषध को निकालकर उसमे १ कर्ष (प्रतिपल औषध मे १ कर्ष) शुद्ध वच्छनाग (मीठा तेलिया) मिलाकर दोनों द्रव्यो के रस में अर्थात् द्रोणपुष्पी और पीपल के क्वाथ या रस मे अच्छी तरह घोटकर ४ प्रहर तक उपरोक्त विधि से वालुकायन्त्र द्वारा अग्नि पर पकावे।

इस क्रिया से गन्धक भली प्रकार जीर्ण हो जाता है। जब इस प्रकार के जारण से गन्धक का वजन घटकर केवल पारद का वजन शेष रह जाय तो "चन्द्रोदय रस" को सिद्ध समझना चाहिये।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। यथादोषानुपान अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह चन्द्रोदय आम को शीघ्र पचाता है। अग्निवृद्धि करता है। कब्ज, तृष्णा, वमन और मूत्रातिसार को रोकता है तथा कामदेव को उत्तेजित करता है।

इसे मधु के साथ सेवन करने से मूर्च्छा और हिचकी नष्ट होती है।

यह वलदायक, पुष्टिकारक और कान्तिवर्द्धक है तथा शीत, स्वेद और प्रमेह नाशक है। कास, श्वास और फिरङ्ग रोगों में अत्यन्त हितकारी है। सैकडों वैद्यो से परित्यक्त अरुचि इसके सेवन से नष्ट हो जाती है।

सं. वि.—चन्द्रोदय शोधक, अग्निवर्द्धक, आमपाचक, रसायन और वाजीकरण है। यह अन्त्र की श्लेष्मकला के दोषों को नष्ट करने के लिये वहुत ही सुन्दर औषध है। इसके सेवन से दीर्घकाल से उत्पन्न हुई अन्त्रकला-शुष्कता किञ्चित काल मे ही नष्ट हो जाती है तथा अन्त्र की जो ग्रन्थियां शुष्क होकर पाचक रसो का स्राव करना वन्द कर देती है, वे इसके सेवन से पुनर्जागृत होती है और पाचक रसों की उत्पत्ति करती है।

यह औषधि जिस प्रकार अन्त्रश्लेष्मकलाओं के लिये हितकर है वैसे ही कण्ठ, श्वास-नलिका और श्वास यन्त्रों के लिये भी हितावह है। इसके सेवन से कण्ठकण्डू, कण्ठ मे उत्पन्न हुये फिरङ्गज व्रण, पीनस, कास, श्वास आदि रोग नष्ट होते है।

इसको जितना सूक्ष्म मर्दन करके प्रयोग मे लाया जाय उतना ही शीघ्र गति से कला में समाकर शरीर में क्रिया करता है। यह अण्डग्रन्थियों को शक्ति देता है, तथा शिथिलता को दूर करता है।

ताम्र सिन्दूर

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध किये हुये ताम्र के कण्टक वेधि पत्र १ भाग, शुद्ध पारद १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लें। तीनों को एकत्र खरल करें, और जब कज्जली भलीप्रकार तय्यार हो जाय तो उसे कुपी के अन्दर भरकर वालुकायन्त्र में ९६ घण्टे पकावें। तैयार होनेपर तथा कुप्पी के स्वाङ्गशीतल होनेपर कुप्पी को विधानपूर्वक फोडकर उसके मुख भाग मे से ताम्रसिन्दूर और तल भाग मे से ताम्रभस्म निकाल लें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। मधु अथवा घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से श्वास, कास, कफ की वृद्धि, शीत द्वारा होनेवाले हृद्रोग, हृद्कृच्छ्र, हृच्छूल, हन्मांसशूल आदि शीघ्र नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, आक्षेपनाशक, वात–कफनाशक, शूलनाशक, कण्ठ शोधक, श्लेष्मकलाशोथ नाशक और शरीर पोषक है।

इसके सेवन से वात–कफज रोग और हृदय के विकार नष्ट होते है।

तालसिन्दूर रस [भा. भै. र. २६५७]

(तार चन्द्रोदय)

(रसा. सा)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हरताल शुद्धि के क्रमानुसार तवकी हरताल को ३ वार पेठे में शुद्ध करके, सुखाकर, कूटकर, कपडछन्न करले और उसमे स्वर्णजीर्ण वुभुक्षित पारद १ भाग (हरताल के बराबर) और घी, दूध आदि मे शुद्ध किया हुवा गन्धक २ भाग मिलाकर कज्जली बनावें और इसे कपडमिट्टी की हुई शीशी मे भरदे। जिस शीशी मे २ सेर कज्जली आती हो उसमें केवल १/२ सेर ही भरनी चाहिये। अब शीशी के मुंह पर खडियामिट्टी की डाट लगाकर उसे वालुकायन्त्र मे रखकर "तारभस्मकरी" या "सर्वार्थकरी" भट्ठी पर रखकर १ दिन प्रारम्भ से ही तीव्राग्नि दे और यन्त्र के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर शीशी को तोडकर उसके गले में लगे हुये "तार सिन्दूर" को निकाल ले।

मात्राः—१–१ रत्ती। यथादोषानुपान अथवा मधु या घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उचित अनुपान के साथ सेवन कराने से कुष्ठादि रोगो पर यह अद्भुत प्रभाव दिखाता है।

सं. वि.—यह औषध भयङ्कर कुष्ठनाशक, रक्तशोधक, कीटाणुनाशक और रस, रक्त आदि धातुओं मे प्रविष्ट हुये दोष, विष, कीटाणु आदि को नष्ट करती है। इसके सेवन से विषमज्वर, उपदंश, त्वक्दोष आदि नष्ट होते है । यह आमवात में गूगल के योग के साथ दी जाय तो शीघ्र संधिशोथ नष्ट करती है तथा रोगी को रोग से मुक्त कर देती है ।

यह विषैली औषध है । इसका सेवन करते समय जिस प्रकार मात्रा का ध्यान रखना आवश्यक है उसी प्रकार पथ्य का ध्यान भी अवश्य होना चाहिये ।

त्रिपुरभैरव रस [वै. सा. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक ३ तोला, संस्कारित पारद १ तोला, रसकपूर १ तोला, शुद्ध हिंगुल १ तोला, नौसादर १ तोला और भुनी हुई फिटकरी २ मासे ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे, तदनन्तर उसमें अन्य द्रव्यों को भलीभान्ति मिश्रण करके मिश्रण को कुप्पी में भरकर २ दिन तक बालुकायन्त्र में पकावें । (इसमें क्षार का मिश्रण है, और क्षार उडकर जल्दी ही गले में लग जाता है । अतः बार २ गले को साफ करते रहना चाहिये । गन्धक का धुंआ निकलने के बाद खडियामिट्टी की डाट लगा दें और तीव्राग्नि पर पकावें । यह सुन्दर लाल रङ्ग का रस तय्यार होगा ।) शीशी के स्वाङ्गशीतल होने पर यथाविधि कुप्पी को तोडकर उसके मुख पर लगे हुये "त्रिपुर भैरव रस" को निकालकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक । घी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से उपदंश, रक्तविकार, कण्ठमाला, पक्षाघात, आमवात, वक्षशूल आदि अनेक रोग नष्ट होते है ।

सं. वि.—यह औषधविष, कीटाणुज विष, कीटाणु तथा रक्त के दोषों को नाश करने के लिये श्रेष्ठ है । इसका प्रयोग उपदंश (Syphilis) की सभी अवस्थाओ मे लाभप्रद होता है । उपदंश द्वारा उत्पन्न हुई अन्य व्याधियो मे भी यह इतना ही उपादेय है । इसका प्रयोग रक्तज और वात–रक्तज व्याधियों पर हितावह होता है । वातनाडियो की शिथिलता में भी यह परमोपयोगी है ।

दरद सिन्दुर रस [वै. सा. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद १० तोला, रसकपूर १० तोला, परिशोधित गन्धक ५ तोला और शुद्ध हिंगुल ५ तोला लें । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें । तदनन्तर अन्य द्रव्यों को उसमे मिश्रित करें । सूक्ष्म कज्जली तैयार होनेपर इसे कुप्पी मे भर लें, और रससिन्दुर निर्माण विधान द्वारा इसको तैयार करे ।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक । घी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसका सेवन श्वास, कास, वातज्वर, पित्तज्वर, वात-कफज विकार, नाडिदोष आदि पर किया जाता है।

रां. वि.—यह औषध विष, जीवाणु और कीटाणु-विष, वातनाडी विकार, फुफ्फुस संकोच, जीर्ण वात-कफज विकार, वातज विकार आदि रोगों पर प्रयुक्त की जाती है।

इसका सेवन उपदंश और उपदंश सदृश अन्य भयङ्कर रोगों पर किया जाता है।

पूर्णचन्द्रोदय रस [भा. भै. र. १९०८]

(वृ. यो. त. । त. १४७, यो त. । त. ८०; र. सं., धन्व.; र. र.; र. र. प्र.; र. रा. सुं., वै. र.; भै. र । वाजीकर.. र. नि. म. । अ. ८; यो. नि. । अ. ७)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोने के कण्टक वेधीपत्र (वर्क) ५ तोले, शुद्ध पारद ४० तोले और शुद्ध गन्धक ८० तोले ले। प्रथम सोने के वर्क पारद में डालकर घोटें। जब वह उसमें मिलजाय तो गन्धक मिलाकर कज्जली बनावें और उसे १-१ दिन लाल कपास के फूलों के रस और घृतकुमारी के रस में घोटकर, सुखाकर, कपडमिट्टी की हुई शीशी में भरकर, वालुकायन्त्र विधि से यथाक्रम मृदु, मध्य और तीव्राग्नि पर ३ दिन पकावें। फिर स्वांगशीतल हो जाने पर शीशी को तोडकर उसकी गर्दन मे चारों ओर लगे हुये अत्यन्त रक्तवर्ण रस को निकाल ले (जब तक शीशी में से पीले रङ्ग का धुंवा निकलता रहे तब तक उसका मुंह बन्द नहीं करना चाहिये। जब धुंवा निकलना बन्द हो जाय तो शीशी के मुंह पर खडियामिट्टी या मुलतानी मिट्टी की डाट लगा देनी चाहिये।)

शीशी को यन्त्र मे से निकालकर उसके ऊपर की कपडमिट्टी को चाकू से खुरचकर उसे भीगे कपडे से पोंछकर साफ करना चाहिये और फिर शीशी को जिस स्थान से फोडना हो, उस जगह मिट्टी के तेल में भिगा हुवा डोरा बांधकर उसमें आग लगा दें जब डोरा जल जाय तो शीशी को भीगे हुये कपडे से पूंछ दे। शीशी उस स्थान से टूट जायगी। इस प्रकार शीशी तोडने से औषध मे कांच के टूकडे पडने का भय नहीं रहता।)

उपरोक्त रस ५ तोले, कपूर २० तोले और जायफल, मिर्च और लौंग का चूर्ण तथा कस्तूरी प्रत्येक ५-५ मासे लेकर सबको भलीभान्ति घोटे। इसीका नाम चन्द्रोदय है। किसी २ ग्रन्थ मे इसका नाम मकरध्वज भी लिखा है।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १ मासा) २ से ३ रत्ती तक। पान मे रखकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मनुष्य मे सैकडो मदोन्मत प्रमदाओं के गर्व नष्ट करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। वलिपलित नष्ट होते है और आयु की वृद्धि होती है।

इस रस के सेवन करनेवाले रति समय में बहुतसी स्त्रियो को प्रसन्न रखते है। समागम

अन्त में इसके सेवन करनेवाले को शक्ति का ह्रास अनुभव नहीं होता और नित्य इसका सेवन करनेवालो में सर्वदा रमण करने की शक्ति होती है। १ वर्ष नित्य "चन्द्रोदय" का सेवन करने से ऐसी शक्ति आ जाती है कि फिर उसपर स्थावर और जङ्गम विप औ विषैले जल का प्रभाव नहीं होता।

सं. चि.:—यह औषध शरीर की सभी कलाओं मे सर्वदा नवता का सञ्चार करती है, जिससे शरीर के सभी अङ्ग सक्रिय और स्वस्थ रहते हैं। अन्त्र की श्लेष्मकलाओ पर इसका प्रभाव बहुत सुन्दर पडता है। पाचक रसो की उत्पत्ति सर्वदा स्वस्थता पूर्वक होती रहती है, जिससे खाद्य का रस, रक्त आदि में यथावत् परिणमन होता है और शरीर वीर्यवान्, कान्तिमान्, बलवान् तथा आयुष्यमान् रहता है।

जिस प्रकार यह श्लेष्मकलाओ पर क्रिया करता है, वैसे ही शरीर की विभिन्न ग्रन्थियों पर भी इसका प्रभाव पडता है। अण्ड ग्रन्थियो की शक्ति इसके सेवन से सर्वदा स्वस्थ बनी रहती है, इस से वीर्य और ओज की वृद्धि होती है, इसी प्रकार यह प्लीहा और यकृत् को स्वस्थ रखता है तथा हृदय को पुष्टि देता है।

इसके सेवन से मनुष्य यदि आहार विहार मे निर्विकार रहे तो, सर्वदा स्वास्थ्य की वृद्धि अनुभव करता है।

("पूर्णचन्द्रोदय रस" में स्वर्ण, कुप्पी के तले मे रह जाता है अतः कुप्पी को तोडते हुये सावधानीपूर्वक स्वर्ण को उसमे से निकाल ले और यथावश्यक काम मे लावे।)

पूर्णचन्द्रोदय रस

(सुवर्णसहित पीसा हुवा)

उपरोक्त स्वर्णघटित "पूर्णचन्द्रोदय" ५ तोला लें और उसमे १ तोला स्वर्णभस्म मिश्रित करके भलीप्रकार सूक्ष्म चूर्ण बनावे।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। पान, मधु या दूध के साथ।

उपयोगः—यह औषध हृद्य, वृष्य, रसायन, और वाजीकरण है। इसके सेवन से क्षय श्वास, कास, मन्दाग्नि अम्लपित्त, मस्तिष्क दौर्बल्य और शैथिल्य आदि रोग नष्ट होते है।

पंचसूत रस [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध हिंगुल ८ तोले, सौवीराञ्जन (काला सुरमा) २ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, रससिन्दूर ६ तोले और रसकपूर ८ तोले ले। सबकी कज्जली करके छोटी दूधी के रस की ३ भावना दे। सुखाकर आतसी शीशी में भरदे और बालुका यन्त्र मे यथाविधि मन्द, मध्य और तीव्राग्नि देकर पकावे। ६—८ घण्टे बाद शीशी

के मुंह पर डाट लगादे। २७ घण्टे तीव्राग्नि देने से वोतल के कण्ठ पर औषध लग जाती है। शीशी शीतल हो जाय तव यथाविधि तोडकर उसमें से औषध निकालकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः--१/२-१/२ रत्ती। मधु, अदरक का रस, तुलसी स्वरस या मुलैठी, वहेडा और वासा के पत्तो के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर दिन मे २-३ वार।

उपयोगः—यह रसायन, श्वास, कास, आमशूल, वातविकार, फुफ्फुसावर्ण शोथ (उरस्तोय Pleurisy), सन्निपात आदि घोर रोगों को नष्ट करता है।

[सि. यो. स. से उद्धृत]

सं. वि.---यह औषध कफ-वातनाशक, अग्निवर्द्धक, शीतनाशक और कफ तथा वायु द्वारा होनेवाले विकारों को नाश करती है। इसकी क्रिया श्लेष्मकलाओ पर पोषक और शैथिल्य नाशक होती है। यह कीटाणु और विषनाशक है और श्लेष्मकलाओं मे होनेवाले कफ, वात, विष और कीटाणुज शोथ का नाश करती है और विष आदि की क्रिया द्वारा उत्पन्न हुये क्षोभ का नाश करती है। फिरङ्ग रोग के प्रभाव से उत्पन्न हुये नाडियो के शैथिल्य पर यह औषध उपयोगी है और फिरङ्ग की प्रत्येक अवस्था मे इसका प्रयोग लाभप्रद होता है।

यह औषध उत्तेजक है, अतः नाडी और हृदवसाद की अवस्था मे इसका प्रयोग वहुत ही लाभप्रद होता है।

वायु और कफ के सभी विकारो पर इसका प्रयोग अन्य औषधियो के मिश्रण के साथ अथवा अकेले किया जा सकता है और सर्वदा लाभप्रद होता है।

इस औषध का शरीर मे शीघ्र संचार हो जाता है अतः यह शीघ्र लाभदायी सिद्ध होती है।

मकरध्वज रस [भा. भै. र. १९०८]
(सुवर्णघटित)

"पूर्ण चन्द्रोदय" ही "मकरध्वज" है। इसके निर्माण के लिये उपरोक्त 'पूर्णचन्द्रोय" देखे।

मकरध्वज रस [भा. भै. र. १९०८]
(स्वर्णसहित पीसा हुवा)

पूर्ण चन्द्रोदय (सुवर्ण मिश्रित) देखे।

मकरध्वज वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मकरध्वज ५ भाग, जायफल, मिर्च, लौग का चूर्ण, कपूर और कस्तूरी प्रत्येक ५-५ मासे लें। सव द्रव्यो को भलिभान्ति मिश्रित करके २४ घण्टे पान के रस मे घोटे और तय्यार होने पर २-२ रत्ती की गोलियां वनाले।

मात्राः—१-१ गोली। पान मे रखकर खावे।

उपयोगः—यह औषध रसायन तथा वाजीकरण है। इसका सेवन वीर्यक्षीणता, अन्त्र

दौर्बल्य, अशक्ति, इन्द्रिय दौर्बल्य, रक्तहीनता, जीर्ण संग्रहणी, विषूचिका, कण्ठ दौर्गंध्य, नासास्राव, पूतिनस्य तथा शरीर के अन्य कला विकार सम्वन्धी रोगों में करना चाहिये।

मल्लसिन्दुर [भा. भै. र. ५५२४]
(रस्रा. सा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संखिये को ३-३ बार थूहर और आक के दूध में घोटकर सुखावे। तदनन्तर इस मल्ल मे इसी के बराबर वुभुक्षित पारद और इससे २ गुना शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली तैयार करें। कज्जली को कुप्पी के अन्दर भरकर बालुकायन्त्र मे पकावें। प्रथम ४ प्रहर तक शीशी का मुंह खुला रक्खे और तदनन्तर (खडिया मिट्टी की) डाट लगादे और १॥ दिन तक कीकर की लकडियों की तीव्राग्नि दे। तत्पश्चात् शीशी के स्वांगशीतल हो जाने पर, सावधानी पूर्वक शीशी को तोडकर उसके मुंह मे लगे हुये "रससिन्दूर" को निकाल ले।

मात्राः--१-१ रत्ती।

अनुपानः—कपूर, जायफल, लौंग, कस्तूरी, अम्बर और इलायची का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर रक्खे। १ रत्ती मल्लसिन्दुर और २ रत्ती इस चूर्ण को एकत्रित कर मधु के साथ मिलाकर सेवन करें अथवा मलाई या मधु के साथ प्रयोग मे लावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शुक्र क्षीणता नष्ट होती है।

सं. वि.--यह औषध बल, वीर्यवर्द्धक, रक्तदोषनाशक, वातनाशक, कीटाणुनाशक तथा वातनाडी दोष नाशक है। इसका प्रयोग उपदंश की सभी अवस्थाओं में श्वास, कास, प्राणा-वरोध, फिरङ्गज मुखपाक, पूतिनस्य आदि रोगों पर सर्वथा लाभप्रद सिद्ध हुवा है।

इसका सेवन कुष्ठ तथा अन्य रक्तज तथा वातरक्तज विकारो पर किया जाता है।

रससिन्दुर [भा. भै. र. ६०९६]
(रसे. सा. सं., यो. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—५ तोले शुद्ध पारद और ५ तोले शुद्ध गन्धक की कज्जली करके उसे वड के अंकुरो के रस की ३ भावना देकर सुखालें, कज्जली शुष्क हो जाय तव कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरले और फिर बालुका यन्त्र मे रखकर ४ प्रहर की अग्नि दे। शीशी के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उसे सावधानी से तोडे, बाल-सूर्य के समान रक्तवर्ण, मुख मे लगे हुये द्रव्य को निकाल ले। यही "रससिन्दुर" है।

मात्राः--१/२ से ४ रत्ती तक। यथादोषानुपान अथवा मधु, मलाई, मक्खन, मिश्री, दूध में मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--यह रस अनुपान विशेष द्वारा विविध गुणकारी है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, योगवाही, रसायन, वाजीकरण, त्रिदोषशामक, यकृत्-प्लीहा विकार नाशक तथा आमाशय से लेकर गुदा तक उदर की श्लेष्मकला के दोषों को नाश करनेवाली है। वात, पित्त तथा कफ द्वारा आध्मान, अम्लपित्त तथा आम आदि के क्रमशः उत्पन्न होनेवाले विकारो को यह शोधक, शामक, शोषक और पाचक गुणों द्वारा विनष्ट करती है और अन्त्राक्षेप, अन्त्रदाह तथा अन्त्र शैथिल्य को कुछ काल के ही सेवन से दूर कर देती है।

विभिन्न रोगो मे विविध अनुपानों द्वारा तथा विविध योगों द्वारा यह अनेक रोगों का नाश करती है।

रौप्यसिन्दुर

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को १-१ भाग तथा चान्दी के कण्टकवेधी पत्रों को ४ भाग ले। प्रथम चान्दी के पत्रों को पारद में भलीभान्ति मिश्रित करले औ तदनन्तर गन्धक मिश्रित करके कज्जली बनावे। कज्जली तैयार होनेपर कोमल वड के अकुरो के रस मे ४ घण्टे तक मर्दन करे। तत्पश्चात् सुखाकर कज्जली को कपडमिट्टी की हुई आतशी शीशी मे भरकर बालुका यन्त्र मे ११ प्रहर पकावे। शीशी के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर द्रव्य को निकालर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ४ रत्ती तक। यथादोषानुपान अथवा मक्खन और मिश्री मिलाकर।

सं. वि.—यह औषध पोषक, वाजीकरण और रसायन है। यह वात-पित्त नाशक है। इसका प्रयोग शरीरदाह, विषमज्वर, क्षय, फुफ्फुसान्तरदाह, दौर्बल्य, आमाशय तथा अन्त्रक्षोभ, हृद्दाह, पुरातन अतिसार और गर्भाशय के विकारो में अर्थात् प्रदर तथा अधिक रक्तस्राव आदि में कीया जाता है। ओज क्षीणता और वीर्य मे अधिक ऊष्मा हो, ऐसी परिस्थिति मे इसका सेवन कल्याणकारक होता है। विविध औषधियो के साथ मिश्रित करके देने से यह विभिन्न रोगो की उत्पत्ति को रोकता है तथा उत्पन्न हुये रोगो को नष्ट करता है। इसका प्रयोग पुरातन मूत्राशय के रोगों में भी हितकारक होता है।

व्याधिहरण रस [वै. सा. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद ९ भाग, रसकपूर ९ भाग और गन्धक ४॥ भाग ले। तीनों को एकत्र खरल करके कज्जली बनावे। जब कज्जली तैयार हो जाय तो कांच कुप्पी (कपडमिट्टी की हुई तथा तार बंधी हुई) मे भरकर ४८ घण्टे बालुका यन्त्र मे पकावें। जब शीशी स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसको यथाविधि तोडकर उसमे से द्रव्य को निकाल ले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१/४ से १/२ रत्ती तक। घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपदंश और फिरङ्ग रोग (Syphilis) में इसका उपयोग श्रेष्ठ लाभ देता है।

सं. वि.—यह औषध विष, जीवाणु, त्रिदोष, कुष्ठ, ग्रन्थि, रक्तदोष आदि का नाश करती है। इसका सेवन पक्षाघात, फिरङ्ग की सभी अवस्थाएं, दुष्ट व्रण, विषज अथवा कीटाणुज रक्तविकार आदि में किया जाता है।

इसका सेवन कराते समय यदि यह ध्यान रक्खा जाय कि औषध दांत आदि को स्पर्श न करे तो अच्छा होगा। इसका प्रयोग सभी रोगों में यथा—श्वास, कास आदि मे किया जाता है।

शिला सिन्दूर [वै. सा. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संस्कारित पारद १ तोला, परिशोधित गन्धक १ तोला, और शुद्ध हरताल १ तोला लें। तीनों द्रव्यों की कज्जली तैयार करे। कज्जली तैयार होनेपर उसे कांच-कुप्पी मे भरकर ४८ घण्टे तक वालुकायन्त्र मे पकावे। शीशी के स्वाङ्गशीतल होनेपर विधिपूर्वक शीशी को तोडे और उसके तल और कण्ठ में से भिन्न २ दो प्रकार की औषध प्राप्त करें। कण्ठ में से प्राप्त हुई औषध को **कण्ठस्थ** कहते है और यह कज्जली वाले द्रव्यों के उडनशील अणुओं का रासायनिक मिश्रण है।

ऊष्मा द्वारा न उडने वाले कज्जली के कणों का रासायनिक द्रव्य शीशी के तल भाग में एकत्रित हो जाता है। इसे **तलस्थ** कहते है।

मात्राः—१/४ से १ रत्ती तक। घी के साथ चाटें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—कास, श्वास और जीर्णज्वरों मे इसका उपयोग होता है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, रक्तशोधक और रक्त की ग्रन्थियो के दोष को नाश करनेवाली, शोथनाशक और विष तथा कीटाणुनाशक है।

इसका सेवन कुष्ठ, कण्ठमाला, विषज तथा पूयज विकार और रस, कफ, आम तथा श्लेष्मकलाओं के विकारों मे सर्वदा हितावह होता है।

समीरपन्नग रस [भा. भै. र. ८१५४]

(र. चं. । वातरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सखिया और शुद्ध हरताल समान भाग लेकर सबको एकत्रित खरल करके कज्जली बनावे। कज्जली को तुलसी के रस मे खरल करके उसका १ गोला बनावे तथा उसे सफेद अभ्रक के पत्तो मे लपेटकर शराव सम्पुट मे बन्द करे और उस पर ३—४ कपडमिट्टी करके सुखाले (अथवा तुलसी के

स्वरस में खरल करके कज्जली को सुखाले और उसे कांच-कुप्पी मे भरले।) तदनन्तर उसे वालुकायन्त्र में रखकर मृदु अग्नि द्वारा ४ प्रहर पकावे यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होनेपर औषधि को निकाल ले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

कुप्पी में तैयार किये गये "समीरपन्नग रस" के २ भेद हो जाते है। जो उडनशील अंश मुख मे आकर लगता है उसे **कण्ठस्थ** समीरपन्नग कहते है और जो न उडनेवाले अंश का रासायनिक मिश्रण कुप्पी के तल मे रह जाता है उसे **तलस्थ** समीरपन्नग कहते हैं।

अभ्रक के पत्तों मे वन्द करके वनाये गये रस मे ऐसे विभाग नहीं हो सकते।

मात्राः—(शा. २ रत्ती) १/४ से १ रत्ती तक। पान मे रखकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह रस सन्निपात, उन्माद, सन्धिवन्ध और कफज रोगों को नष्ट करता है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषनाशक, विष और कीटाणुनाशक, पाचक, आमशोषक, दुष्ट जल वायु आदि को शोषण करनेवाला, सन्धिशोथ को नष्ट करनेवाला तथा अनेक प्रकार के विषदोष नाशक है। इसका सेवन नाडी विकार, पक्षाघात, उन्माद, आमवात, उरस्तोय, फिरङ्गरोग, कास और श्वास आदि मे लाभप्रद होता है।

सुवर्णराजवंगेश्वर [भा. भै. र. ५५२७]

(र. रा. सुं. । प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वङ्ग और नौसादर प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम वङ्ग को अग्नि पर पिघलाकर पारद मे डाल दे और अच्छी तरह घोटे। जब वङ्ग पारद मे मिल जाय तो उसमे गन्धक और नौसादर डालकर घोटें। कज्जली अत्यन्त बारीक तैयार हो जाय तो उसे कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर वालुकायन्त्र मे पकावे। शीशी का मुंह वन्द नहीं करना चाहिये। उसके मुख से निकलते हुये धुंये को देखते रहना चाहिये। जब धुंआ निकलना वन्द हो जाय तो रस को तैयार हुवा समझें और यन्त्र के नीचे अग्नि देना वन्द करदे। जब शीशी स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसमे से औषध को निकालकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा तथा उपयोगः—१ से २ रत्ती तक। विभिन्न रोगों मे विविध अनुपान के साथ।

(१) ४ रत्ती लज्जालु के चूर्ण के साथ मिश्रित करके देने से यह औषध रासायनिक क्रिया करती है।

(२) बुभुक्षा वृद्धि के लिये इसको आमले के कषाय के साथ मिश्रित करके दे। (१ तोले आमले के चूर्ण को १० तोले पानी के अन्दर रात मे भिगोकर रखदे। प्रातः इस पानी को वस्त्र से छानकर काम मे लावे)।

(३) ब्राह्मी के ताजे पत्तो के स्वरस मे मिलाकर देने से यह स्मृतिवर्द्धन करती है ।

(४) पूयमेह में इसका प्रयोग कच्ची हल्दी के स्वरस अथवा यज्ञोदुम्बर के रस मे मिलाकर किया जाता है ।

(५) प्रमेह में इसको ६ रत्ती कङ्कोल के बीजों के चूर्ण में मिलाकर दिया जाता है ।

(६) प्रदर मे इसको रक्त चन्दन के क्वाथ के साथ देते है (१ तोला रक्त चन्दन चूर्ण को २० तोले जल में उबाले, जब ५ तोला जल रह जाय तो उसे छानकर काम में लावे ।)

(६) वीर्य गाढा करने के लिये इसको अश्वगन्धा के स्वरस में मिलाकर देते है ।

(८) इसे छोटी इलायची के चूर्ण मे मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से अन्य समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है ।

सं. वि.—यह औषध शीघ्र क्रियाकारी, मूत्रल, दाहनाशक, वातनाशक, सन्तापहर और आध्मान, अन्त्र शैथिल्य, अश्मरी, प्रमेह आदि अनेक रोगो पर प्रयोग में लाई जाती है ।

सुवर्णसिन्दुर [भा. भै. र. ८३८०]

(भै. र. । वाजीकरणा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ५ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला और सोने के वर्क १। तोला ले । प्रथम सोने के वर्क और पारे को एकत्र मिलाकर खरल करें। जब दोनों भलीभान्त मिलजांय तो फिर गन्धक मिलाकर कज्जली करे । कज्जली तैयार होनेपर उसे १ प्रहर वटांकुरो के रस और घृतकुमारी के रस मे खरल करें और सुखाकर आतसी शीशी में भरदे । तदनन्तर १२ प्रहर इसे वालुकायन्त्र में पकावे । यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होनेपर उसके गले मे लगे हुये रस को शीशी तोडकर निकाल ले । (शीशी के तले मे स्वर्णभस्म मिलेगी उसे पृथक रक्खे) ।

मात्रा:—१/२ से २ रत्ती तक । मधु अथवा यथादोषानुपान ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त रोगो का नाश होता है । धातु, बल, अग्नि, आयु, मेधा, कान्ति और कामशक्ति की इसके सेवन से वृद्धि होती है । यह रसायन और वृष्य है ।

सं. वि.—यह औषध शोधक, पाचक, त्रिदोषनाशक तथा दोषानुलोमक है । वर्णकारक, अग्नि और बलवर्द्धक तथा अन्त्रकला के दोषो को दूर करनेवाली है । इसके सेवन से दीर्घकाल से क्षीण हुई अग्नि जागृत होती है। शरीर और मुख पर कान्ति की वृद्धि होती है। जीर्ण रोगो पर इसकी क्रिया स्थायी और श्रेष्ठ होती है ।

हरगौरी रस [भा. भै. र. ८५९६]

(र. का. धे. । वातव्या., र. सं. क. । उ. अ. ४.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग और नौसादर का चूर्ण १०वां भाग लेकर तीनो को एकत्र मिलाकर कज्जली बनावें। कज्जली तैयार होनेपर उसे धतूरे के रस मे घोटें। तदनन्तर उसे सुखाकर कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी मे भरकर वालुकायन्त्र मे पकावे। अग्नि क्रमशः मृदु, मध्य और तीव्र १६ प्रहर तक लगावें। तत्पश्चात् उसके स्वाङ्गशीतल होनेपर शीशी को तोडकर औषध को निकाल लें।

मात्रा:—१/२ से २ रत्ती। मधु अथवा घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातव्याधि नष्ट होती है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, पाचक, वातानुलोमक, आध्मान, उदावर्त, अजीर्ण आदि अनेक रोगो को नाश करनेवाली है तथा पक्षाघात, नाडी शैथिल्य आदि रोगो मे हितावह है।

भैषज्य-सार-संग्रह

तृतीय प्रकरण

भस्म

रस–उपरस, धातु–उपधातु, रत्न–उपरत्न के प्रत्येक द्रव्य को संशोधनो द्वारा संशुद्ध करके, संपूर्णतया निर्विकार, निर्दोष और श्रेष्ठ औषधोपयोग्य बनाकर, गुणवर्द्धक औषधो के काथ अथवा स्वरस की भावना देकर, शराव सम्पुटो में वन्द करके और उन शराव सम्पुटो पर भलीप्रकार कपडमिट्टी करके, उन्हे यथाशास्त्रादेश, लघुपुट, महापुट, गजपुट आदि में रखकर अग्नि के योग से तदन्तर्गत द्रव्य को सम्पूर्णतया परिदहन करके वारितर सूक्ष्म स्वरूप मे परिणत किया हुआ द्रव्य "भस्म" कहलाता है।

विभिन्न द्रव्यों की भस्म करने की प्रक्रियाये शास्त्रों में विविधतया उल्लिखित है, वे सभी वैज्ञानिक है। उनमे से किसी एक क्रिया द्वारा इच्छित द्रव्य की भस्म की जा सकती है।

"भस्मों मे और जिन द्रव्यो की भस्म की जाती है उनमे क्या अन्तर है?" यह प्रश्न विशेष विचारणीय है। द्रव्य के औषध गुण यथावत् द्रव्य में रहे और उसके हानिकारक पदार्थों का संशोधनो द्वारा विनाश करके, भाव्य द्रव्यों की भावना देकर, अग्नि के योग से द्रव्य की भस्म की जाती है, अतः प्रथम विभिन्नता तो मूल द्रव्य और भस्म मे यही है कि भस्म सम्पूर्णतया निर्दोष होती है। दूसरी भिन्नता यह है कि धातु इत्यादि किसी भी प्रकार शरीर की अग्नि द्वारा पाच्य नहीं है, वाह्य अग्नि अर्थात् पुट आदि से वह भस्म होनेपर सरलता पूर्वक पच जाते है। जहां द्रव्य वारितर नहीं होते वहां भस्म वारितर होती है और द्रव्य जहां मूल स्वरूप में मारक सिद्ध होते हैं वहां भस्म अमृत के समान लाभप्रद होती है। द्रव्य बाह्य उपयोग में आते है, भस्म आन्तरिक प्रयोग के लिये बनाई जाती है। द्रव्य बाह्याभूषण होते है और भस्म शरीर का आन्तरिक पोषण है।

एक द्रव्य की भस्म दूसरे द्रव्य की भस्म से गुणो मे भिन्न होती है अतः उसी प्रकार भिन्न रोगों पर उसका प्रयोग किया जाता है। यथास्थान इसका वर्णन किया जायगा।

द्रव्य अनेक है, उनकी क्रिया अनेक है, उनके वर्ण अनेक है, उनके भेद अनेक है और उनके शोधन, मारण प्रकार भी अनेकानेक है। यथास्थान प्रत्येक का विवरण दिया जायगा।

भस्मे निर्दोष होती है। सभी अवस्थाओ में इनका यथारोग प्रयोग किया जा सकता है।

बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष ये सभी के लिये समान गुणकारक है। सभी इनका प्रयोग कर सकते है। सभी भस्में शरीर पोषक, विकार नाशक और रसायन होती है।

पाञ्चभौतिक शरीर में जिस भूत का अभाव हो गया हो उसी भूत विशिष्ट भस्म से उसका अभाव दूर किया जा सकता है।

"वृद्ध ही भस्मो का सेवन कर सकते है ये बच्चो के उपयोगी नहीं है," यह कथन सम्पूर्णतया अवैज्ञानिक है। भस्म होने के बाद और मित्रपञ्चक द्वारा उसकी परीक्षा की जाने के बाद तथा वारितर सिद्ध होने के बाद भस्म अपने मूल पदार्थ से अपने मूल पदार्थ के गुणों को ग्रहण करते हुये भी भिन्न हो जाती है। भस्मे अमृत के समान लाभदायी है। यथाविधान परिशोधित द्रव्य, शास्त्र रीति के अनुसार भस्म किये जाने के बाद कभी कोई विकृत क्रिया नहीं करते।

मित्रपञ्चक

घृत, मधु, गुग्गुल, टङ्कण और गुञ्जा ये पांच द्रव्य मित्रपञ्चक कहलाते है। इन्हीं के मिश्रण मे भस्मो की परीक्षा की जाती है।

---*---

अभ्रकभस्म

अभ्रक के नामः—अभ्रक, गगन, भृङ्ग, अभ्र, व्योमाम्बर, वज्र, घन, गिरिज, बहुपत्र, अनन्तक, आकाश, अम्बर, शुभ्र, अमल, गरजध्वज, मेघाख्य, अन्तरिक्ष, गिरिजाबीज।

अभ्रक के चार भेदः—श्वेत, पीत, रक्त, कृष्ण।

श्वेत चांदी इत्यादि मे, पीत और रक्त स्वर्ण आदि मे और कृष्ण व्याधि मे प्रयुक्त होता है।

कृष्णाभ्रक के भेदः—दर्दुर, नाग, पिनाक और वज्र ये कृष्णाभ्रक के चार भेद है। अग्नि पर गरम किया जाय तो **दर्दुर** भेक (मेंढक) के समान ध्वनि करता है और उसीके समान उछलता है। **नाग** को अग्नि पर तपाया जाय तो क्रुद्ध सांप के समान फुंकार को ध्वनि करता है। **पिनाक** धनुष की टङ्कार के समान शब्द करता है और विविध दलों में विभाजित होता है। **वज्राभ्र** को तपाया जाय तो किसी प्रकार का विकार नहीं होता। इनके यथाक्रम सेवन से गुल्म, व्रण, कुष्ठ और निरोगिता उत्पन्न होती है। अर्थात् दर्दुर (मण्डूक) का सेवन किया जाय तो अश्मरी उत्पन्न होती है और फिर अश्मरी जन्य गुल्म की वेदना होती है। नाग के सेवन से भगन्दर (व्रण) रोग की उत्पत्ति होती है। पिनाक के सेवन से कुष्ठादि महारोग उत्पन्न होते है और यह भयङ्कर मलावरोध भी करता है, जिसमें मृत्यु भी हो सकती है। वज्राभ्र व्याधि नाशक, बल-वर्णकारक और रसायन है। अतः औषध निर्माण के लिये सर्वदा

नीलाञ्जन के समान वर्णवाला, स्निग्ध, भारी, उज्वल और मृदु तथा छूटे पत्र वाला वज्राभ्रक ही प्रयोग में लाना चाहिये ।

हिमालय से निकले अभ्रक उत्तम माने जाते है । पूर्व दिशा के पर्वतो से निकाले गये मध्यम और दक्षिण से निकाले गये अधम माने जाते हैं । अतः विशेषतः हिमालयोत्थ कृष्ण वज्राभ्रक ही औषध–निर्माण हेतु प्रयोग मे लावे ।

अभ्रक खनन विधिः—मनुष्य अथवा हाथी की लम्बाई, चौडाई के गड्ढे खोद कर उनमे से गुण बहुल अभ्रक प्राप्त करे ।

अशोधित अभ्रक के दोषः—अशुद्ध अभ्रक की भस्म और सत्व का सेवन करने से हृदय और पार्श्व मे पीडा, शोथ, क्षय, पाण्डु, कुष्ठ और मृत्यु तक हो सकती है । यह वायु और कफ को बढाकर शरीर को जकड देती है, तथा मन्दाग्नि और कृमि की उत्पत्ति करती है । अतः शोधित अभ्रक ही धान्याभ्र और भस्म निर्माण तथा सत्वपातन के लिये उपयोगी है ।

अभ्रक शुद्धि

१. प्रकारः—अभ्रक को अग्नि पर तपा तपा कर काञ्जी में बुझाये । ७ बार इस प्रकार बुझाकर खरल में कूट ले और फिर किसी भी अम्ल पदार्थ के रस के साथ प्रयत्न और दृढता पूर्वक एक दिन खरल करे । इस प्रकार अभ्रक शुद्ध हो जायगा ।

२. प्रकारः—सात बार तपा तपा कर बेर के क्वाथ या गोदुग्ध मे बुझाने से अभ्रक शुद्ध हो जाता है ।

३. प्रकारः—स्वच्छ अभ्रक १ पाव, शालीधान्य १ सेर । इन दोनो को कम्बल के टुकडे में बांधकर जल (काञ्जी) मे भिगो दे। तीसरे दिन निकालकर किसी परात मे उस कम्बल की पोटली को मसले, जिससे सब अभ्रक बारीक होकर और छनकर कम्बल से बाहर निकल आवे । इस स्वच्छ बारीक अभ्रक को ले । इसमें वालुका, कंकर इत्यादि हो तो उन्हे पहले ही निकाल देना चाहिये । इसे **धान्याभ्रक** कहते है। इसे मारणादि सब कर्मो मे उपयुक्त करे ।

४. प्रकारः—वज्राभ्रक को कोयलों की तीक्ष्णाग्नि में धोंकनी से धमाकर, लाल करके, त्रिफला के क्वाथ में बुझावे । इसी प्रकार सात २ बार गरम करके त्रिफले के क्वाथ, गोमूत्र, दूध और काञ्जी मे बुझावे तो अभ्रक शुद्ध हो जाता है ।

५. प्रकारः—अभ्रक को अगस्त पुष्पों (वक पुष्पो) के रस मे रगडकर जिमीकन्द के बीचमें भरकर जिमीकन्द के टुकडे से बन्द कर गौओं के रहने के स्थान मे पृथ्वी मे गाढ देवें । फिर एक महीने बाद निकालें । यह अभ्रक शुद्ध और रस के समान हो जाता है ।

अभ्रक मारण में पुट संख्या के नियमः—२० से १०० पुट तक की भस्म रोग निवारण के लिये श्रेष्ठ होती है। १०० से १००० पुट तक की भस्म रसायन में प्रशस्त मानी जाती है।

अभ्रकमारण

१. प्रकार—धान्याभ्रक लेकर १ दिन कसौंदी (कासमर्द) के रस में खरल करें (पीसे)। पिष्टी तैयार हो जाने पर चक्रिका बनाले और गजपुट में फूंक दे। इस प्रक्रिया को १० बार करे अर्थात् दश पुट दे। प्रत्येक बार कासमर्द के रस मे घोटले और गजपुट में फूंक दे।

इस दशपुटी अभ्रक की भस्म को आक (अर्क) के दूध मे घोटे और गजपुट मे फूंक दें। इसी तरह आक के दूध मे घोटते और पुट देते १० पुट दे। यह २० पुटी सिन्दूर के रङ्ग की अभ्रकभस्म तैयार हो जायेगी।

२. प्रकार—धान्याभ्रक को लेकर नागरमोथे के क्वाथ मे खरल करे और टिकिया बनाले। फिर सम्पुट कर गजपुट में फूंक दे। स्वाङ्गशीतल होनेपर नागरमोथे के क्वाथ मे खरल करके गजपुट दे। इस प्रकार ३ पुट दे। फिर इसी प्रकार पुनर्नवा के रस, कसौन्दी के रस, नागरवेल के पत्तो के रस, आक के दूध, वड की जटा के क्वाथ, काली मूसली के क्वाथ, गोखरू के क्वाथ, कौंच के रस, मोचदलो के रस, तालमखाने के रस और पठानी लोध्र के क्वाथ की प्रत्येक की अलग अलग ३-३ पुट दे। फिर गोदुग्ध की १ पुट दे (कहीं क्षीरा-दष्ट पुटेन्मुहुः"—ऐसा पाठ है—अर्थात् गोदुग्ध की ८ पुट देने का आदेश है) फिर दही, घी, मधु और मिश्री की अलग अलग एक एक पुट दे। इस प्रकार ४० पुटी उत्तम अभ्रकभस्म तैयार हो जायगी।

यह भस्म सम्पूर्ण रोगो को मिटानेवाली, रसायन और वाजीकरण होती है।

३. प्रकार—रम्भादि गण के रस मे (अथवा केलाक्षार, सज्जीक्षार, चणकक्षार और नमक के जल मे) शुद्ध अभ्रक को खूब घोटकर टिकिया बनाले। टिकियो को केले के पत्रों मे रखकर पंखे के पवन से चैतन्य की हुई कोयलों की अग्नि में फूंके। फिर इसे निकालकर थोहर के दूध मे घोटकर टिकिया बना, सम्पुट करे और गजपुट मे फूंक दे तो अभ्रक की भस्म हो जायगी।

४. प्रकार—धान्याभ्रक १ भाग, सुहागा २ भाग, दोनो को इकट्ठा घोटकर अंधमूपा मे बन्द कर, कोयलों की तीव्र अग्नि दे (अथवा गजपुट मे फूंक दे)। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तो निकालकर पीस ले। (निश्चन्द्र भस्म न हो तो फिर इसी प्रकार फूंके)। निश्चन्द्र हुई इस भस्म का सब रोगो पर प्रयोग कर सकते है।

५. प्रकार—धान्याभ्रक लेकर, नागरमोथा के रस में घोटकर, गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार नागरमोथे के क्काथ में घोटें और पांच पुट दे। इसी प्रकार केले के रस में घोटें और पांच पुट दें। पांच पुट तण्डुल जल मे घोटकर दें। पांच पुट भृङ्गराज के रस में घोट घोट कर दें। पांच पुट त्रिफला के क्वाथ मे घोटकर दे। तत्पश्चात् चक्रिका करके अंधमूषा मे अभ्रक के समान गन्धक, चक्रिका के ऊपर और नीचे रखकर गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार अभ्रक की सुन्दर भस्म बन जायगी।

मृत अभ्रक के लक्षण—अभ्रकभस्म रक्तवर्ण, चन्द्रिका रहित, स्वच्छ, सूक्ष्म और स्पर्श में कोमल होती है।

अभ्रक के मारक गण

क्षारत्रय (सज्जीक्षार, यवक्षार, टङ्कणक्षार), मकोय (काकमाची), नागरमोथा, घृतकुमार, वटजटा, गोमूत्र, बिल्वमूलदल, वासा, त्रिफला, अजारक्त, कण्टकारी, कदम्ब, अग्निमन्थ, शालपर्णी, श्रीपर्णी, पाटली, गुड, तिलपर्णी, प्रश्निपर्णी, गोखरू, खर मञ्जरी, सफेद सरसों, लोध्र, वडीकटेली, ब्राह्मी, धतूरा, कासमर्द (कसौन्दी), प्रियंगु, गिलोय, वाष्पक, तुलसी, दूर्वा, अश्वगन्धा, कुटकी, मैनफल, पिण्डखजूर, तगर, शङ्खपुष्पी, नागवल्ली, वेरी की छाल, श्वेत पुनर्नवा, आखुपर्णी, सप्तपर्ण, केले के मूल का रस, भृङ्गराज, देवदारु, तालमूली, मालती, अगस्त्यपत्र (अगथिया के पत्ते), तालीस, चित्रक, जलकुम्भी, अनार का छिलका, चौलाई, एरण्डमूल तथा पत्र, श्योनाक, मंजिष्ठा, पालक, नागरमोथा, मीनाक्षी, कोकिलाक्षी (तालमखाना)। ये पूर्व आचार्यों के बताये हुये अभ्रक के मारक गण है। दोष भेदानुसार औषध निर्वाचित करके अभ्रक की भस्म बनावे।

अभ्रक भस्म को लाल बनाने की विधि

अभ्रक भस्म को रक्त बनाना हो तो कंघी, नागरमोथा, वटक्षीर, वड के मूल के रस, हल्दी के क्वाथ या रस, मजीठ आदि द्रव्यों के रस अथवा क्वाथ के साथ अभ्रकभस्म को खरल करके उसे २ या ३ पुट दे। इससे मृदु, चन्द्रिका रहित, रक्तवर्ण की सुन्दर भस्म बन जायगी।

अभ्रकभस्म का अमृतीकरण

१. प्रकार—अभ्रकभस्म के समान गाय का घृत लेकर उसमे अभ्रकभस्म मिलाकर पकावें। इस प्रकार अमृती करण की हुई अभ्रक सब जगह उपयोग मे लाने के सर्वथा योग्य होती है।

२. प्रकार—१६ भाग त्रिफला क्वाथ लेकर १० भाग अभ्रकभस्म और ८ भाग गो घृत मिलाकर लौह पात्र में मृदु अग्नि पर पकावें। द्रव पदार्थ के शुष्क होनेपर इसको प्रयोग में लावे।

शतपुटी और सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म बनाने की विधि

अभ्रक के मारक गणों मे से यथालाभ द्रव्य लेकर उनके क्वाथ या रस मे अभ्रक को घोटकर टिकिया बनाकर शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंके। इस प्रकार एक एक के रस या क्वाथ में अनेक वार घोटकर अनेक पुट दिये जा सकते हैं और एक द्रव्य के रस या क्वाथ में एक वार घोटकर एक पुट भी दिया जा सकता है। शतपुटी या इससे अधिक सहस्त्रपुटी अभ्रक तैयार करने के लिये इसी प्रक्रिया का आश्रय लेना पडता है। जिस दोष के संहार के लिये विशेषतया भस्म तैयार की जाती है, उसी दोषनाशक द्रव्यों के रस या क्वाथ में घोटकर अभ्रक को अधिक पुट दिये जाते हैं। यदि त्रिदोपनाशक भस्म तैयार करनी हो तो त्रिदोप नाशक औषधों की भावना दे। किस द्रव्य की कितनी पुट दी जांय यह भस्म तैयार करने वाले की इच्छा पर निर्भर होता है। अधिकतर तो मारक गण के प्रत्येक द्रव्य के १०–१०, २०–२० पुट देकर अथवा जो द्रव्य अधिक लाभकारी हो उसकी अधिक पुट देकर भस्म तैयार की जाती है और यथायोग निर्मित भस्म ययेच्छ क्रिया करती है।

अभ्रकभस्म के गुण

अभ्रकभस्म स्निग्ध, वीर्य में शीत, पाक मे मधुर, आयुवर्द्धक, पोपक, वर्णकारक, रुचिकारक, दीपन, बलवर्द्धक, नेत्रपोपक, बुद्धिवर्द्धक, स्तन्यवर्द्धक, वीर्यस्तम्भक, कामोदीपक, शीघ्ररोगनाशक, देहदौर्वल्य नाशक, सन्तानकारक और आलस्य नाशक होती है।

अभ्रकभस्म के आमयिक प्रयोग

[१] रससिन्दुर के साथ अभ्रकभस्म के सेवन से ज्वर का नाश होता है।

[२] अभ्रकभस्म को पीपल (अष्ट प्रहरी अथवा चौसठ प्रहरी) के साथ मधु मिलाकर सेवन करने से जीर्णज्वर का नाश होता है।

[३] त्रिफला चूर्ण और मधु मिश्रित करके अभ्रकभस्म का सेवन करने से दृष्टिशक्ति वढती है।

[४] त्रिकटु चूर्ण और घी के साथ मिलाकर अभ्रकभस्म का सेवन करने से संग्रहणी रोग का नाश होता है।

[५] हरीतकि चूर्ण और गुड तथा शर्करा और इलायची का चूर्ण मिलाकर अभ्रकभस्म सेवन करने से रक्तपित्त का नाश होता है।

[६] त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शर्करा और मधु के साथ प्रातःकाल अभ्रकभस्म का सेवन करने से क्षय, अर्श, पाण्डु और हलीमक रोग का नाश होता है।

[७] अभ्रकभस्म को हल्दी, पीपल के चूर्ण और मधु के साथ १ मास तक सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है।

[८] स्वर्णभस्म के साथ अभ्रकभस्म का १ मास तक सेवन करने से धातु की वृद्धि होती है और क्षय का नाश होता है।

[९] गिलोय के सत्व और शर्करा के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से प्रमेह रोग का नाश होता है।

[१०] चान्दीभस्म और स्वर्णभस्म के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से धातु की अधिक वृद्धि होती है।

[११] इलायची, गोखरू, भूमि आमला, मिश्री और दूध अथवा गोघृत के साथ प्रातः काल अभ्रकभस्म का सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है।

[१२] गूर्वा के सत्व के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से व्रण मिटते हैं।

[१३] अभ्रकभस्म का गोदुग्ध और विदारी कन्द के साथ सेवन करने से बल की अत्यन्त वृद्धि होती है।

[१४] अभ्रकभस्म का भिलावे के साथ सेवन करने से बवासीर का नाश होता है।

[१५] सोंठ, पोखरमूल, भारङ्गी, असगन्ध के चूर्ण और मधु के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से वातव्याधि का नाश होता है।

[१६] दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर और चीनी के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से पित्तरोग शान्त होते हैं।

[१७] कायफल, पीपल का चूर्ण और मधु के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से कफरोग शान्त होते हैं।

[१८] यवक्षार, सुहागा, सज्जीक्षार आदि क्षारो के साथ अभ्रकभस्म का सेवन करने से अग्निप्रदीप्त होती है तथा मूत्रकृच्छ्र और पथरी का नाश होता है।

[१९] अभ्रकभस्म का भांग के रस और जायफल के चूर्ण के साथ सेवन करे तो वीर्यस्तम्भन होता है।

[२०] लौंग और मधु के साथ अभ्रकभस्म के सेवन से अत्यन्त धातु वृद्धि होती है।

[२१] अभ्रकभस्म का गाय के दूध और चीनी के साथ सेवन करने से पित्तरोगों का नाश होता है।

[२२] अभ्रकभस्म को वायविडङ्ग, त्रिकटु और घी के साथ एक वल्ल (३–४ रत्ती) प्रमाण में सेवन करने और पथ्य पालन करने से, क्षय, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, कुष्ठ, सब तरह के श्वास, प्रमेह, अरुचि, प्रवल खांसी, मन्दाग्नि और उदर रोगो का नाश होता है।

[२३] अभ्रकभस्म को, कज्जली के साथ मिलाकर और अर्जुन के क्वाथ की भावना देकर, सेवन करने से कृमिज और कफज हृदय रोग का नाश होता है।

[२४] पिप्पली, कायफल और मधु मिलाकर अभ्रकभस्म का १ मास सेवन करने से कफ रोगो का नाश होता है।

[२५] अभ्रकभस्म को लोहभस्म, रससिन्दुर, हरीतकि चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से अम्लपित्त का नाश होता है।

अभ्रक विकार शान्ति

यदि दोषयुक्त अथवा चन्द्रिकायुक्त अभ्रकभस्म का अनजाने सेवन कर लिया जाय अथवा करा दिया जाय तो उसके सेवन करने से शरीर में उत्पन्न हुये रोगों को दूर करने के लिये उमाफल (तीसी) को जल में घोटकर तीन दिन पीवे या पिलावे। इससे दुष्ट अभ्रकभस्म सेवन करने से होनेवाले विकार नष्ट हो जाते हैं।

अभ्रक सत्व की विशिष्टताः—उपरसादि योगों के क्षार-सत्व का प्रयोग भस्म से अधिक और शीघ्र गुण करनेवाला होता है। यही सत्व की विशिष्टता है।

अभ्रक सत्व-पातन

१. प्रकार—धान्याभ्रक में उसका चतुर्थ भाग सुहागा मिलाकर मूसली के स्वरस में खरल करें और तैयार होनेपर कोष्ठ में भरकर धौंकनी से अथवा फूंकनी से प्रधमन करें। अभ्रक में से स्वच्छ और घन-सत्व निकल आवेगा।

२. प्रकार—धान्याभ्रक को काञ्जी के साथ घोटें। फिर उसे सूरण कन्द के रस में घोटें। तदनन्तर इसे ताजे केले के मूल के रस मे घोटे और फिर उससे चौथा भाग छोटे छोटे मृदुकणोंवाला सुहागा मिलाकर उसमे भैस का गोबर मिलावे और पिण्ड बनालें। अब इसे कोष्ठ (मूषा) में रखकर तीव्राग्नि पर धमण द्वारा तपावे इस प्रक्रिया से अभ्रक मे से सत्व निकल आयेगा।

३. प्रकार—धान्याभ्रक को एक दिन आक के दूध मे भिगोकर रक्खें। उसे घोटकर गोला बनालें और शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। स्वाङ्गशीतल होनेपर फिर आक के दूध मे घोटे और पूर्ववत् पुट दे। इस प्रकार ७ बार आक के दूध मे घोटे और पुट दें। इसी प्रकार जम्बीरी निम्बु के रस में घोटें और पुट दे और इसी प्रकार नीम के रस की पुट दें। फिर गोला बनाकर कोष्ठिपत्र में रखकर धमण द्वारा तीक्ष्ण अग्नि पर धमावें। इस क्रिया से अभ्रक स्वच्छ चन्द्रिका रहित घनसत्व का मोचन करेगा।

४. प्रकार--लाक्षा, गुग्गुल, जली हुई ऊन, अगर, राल, नमक, शश (खरगोस) की

अस्थि, छोटी मच्छी की हड्डी, हरिद्रा, मित्रपञ्चक, पञ्चमाहिषकन्द (भेंस के दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर) और भिलावा। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। सबके समान धान्याभ्रक ले। निश्चिन्द्र होने तक धान्याभ्रक का मर्दन करें। तत्पश्चात् उन सबको भलीभान्ति मिश्रित करें और १।—१। तोले के प्रमाण के गोले बनावें। इन गोलों को कोष्टि यन्त्र मे भरकर खदिर (खैर) के कोयलों की तीक्ष्ण अग्नि पर रखकर धमण द्वारा धमावें। इस क्रिया से अभ्रक का कठिन, सूक्ष्म, निर्मल सत्व निकल आवेगा।

५. प्रकार—सुहागा, अगर, गुड, राल, ऊन, लाक्षा, पिण्डाक, क्षुद्र मीन और धान्याभ्रक को बकरी के दूध में पीसकर गोला बनालें और वज्रमूषा में बन्द कर के कोष्टि यन्त्र मे रखकर धमण द्वारा तीव्र अग्नि पर धमावे। इस क्रिया द्वारा अभ्रक का शीघ्र सत्वमोचन हो जावेगा।

अभ्रकसत्व पिण्डिकरण

अभ्रकसत्व का चूर्ण मित्रपञ्चक (घृत, मधु, गुग्गुल, टङ्कण और गुञ्जा) के साथ मिलाकर मूषा मे रखकर उसे कोयलों की अग्निपर रखकर धोंकनी द्वारा तपावे। इस प्रकार तीक्ष्ण अग्नि के ताप से अभ्रक मित्रपचक के साथ मिश्रित होकर पिण्ड बन जायेगा। पिण्डित अभ्रकसत्व का शोधन करें।

अभ्रकसत्व शोधन

सामान्यतः त्रिफलाजल, वटमूलकषाय अथवा काञ्जी से अभ्रकसत्व का शोधन हो जाता है।

विशेष शोधन के लिये अभ्रकसत्व के गोले को अग्नि पर रखकर धमन द्वारा गरम करे फिर कज्जली में बुझाकर लोहे के घन पर रखकर लोहे के हथौडे से उसे कूटे। इसी प्रकार फिर धोंकनी की सहायता से अग्नि पर रखकर उसे गरम करे और काञ्जी मे बुझाकर पूर्ववत् कूटें। जब तक वह चूर्ण रूप मे न आजाय इस क्रिया को करते रहे। फिर तीन बार गोघृत मे भूने अथवा आमले के रस मे भूने। प्रत्येक भर्जन क्रिया के पश्चात् खरल मे भलीप्रकार इसको घोट ले। फिर पुनर्नवा के रस अथवा क्वाथ, कटेली के रस और काञ्जी मे मिलाकर भली प्रकार मर्दन करे। इस प्रकार शुद्ध किया हुवा अभ्रकसत्व भस्म करने के योग्य हो जाता है।

अभ्रकसत्व मारण

१. प्रकार—विशोधित अभ्रकसत्व २ भाग, और १—१ भाग पारद और गन्धक लेकर खरल करे। कपडमिट्टी की हुई कांच की कुप्पी मे भरकर बालुकायन्त्र में उसे पकावे। इस पाक क्रिया से शीघ्र ही अभ्रकसत्व की भस्म हो जाती है।

२. प्रकार—अभ्रकसत्व २ भाग और १-१ भाग पारद और गन्धक लेकर सूक्ष्म खरल करे। फिर उसे उपलो के अङ्गारो पर ७ बार पकावे इससे भी अभ्रक की भस्म हो जायगी।

अभ्रकसत्व की भस्म सब प्रकार दोष रहित होती है। इसका प्रयोग मुक्त हस्त कर सकते है।

अभ्रकसत्व के गुण

अभ्रकसत्व शीतवीर्य, मधुर विपाक, रुचिकर, स्निग्ध, केश्य, आयुष्य, त्रिदोषनाशक और रसायन है।

अभ्रकसत्व का सेवन करनेवाले सर्वदा यौवनपूर्ण, वीर्यवान्, सुन्दर, रक्तपरिपूर्ण और आकर्षक होते है। उनकी आयु दीर्घ होती है और वे निरोग रहते है।

अभ्रकसत्व भस्म उच्च कोटि की पुष्टिप्रद औषध है। नपुंसकता को दूर करने के लिये अभ्रकसत्व का उपयोग सर्वदा लाभप्रद होता है।

यह कान्ति, वर्ण, मेधा और शान्तिवर्द्धक तथा त्रिदोषनाशक औषध है।

अभ्रकसत्व के सेवन से ज्वर, ग्रहणी, अतिसार, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, पाण्डु, हलीमक, दुर्दाह, प्रमेह, कुष्ठ, वात-पित्त और कफजरोग, शूल तथा पुरुष-स्त्री वंध्यत्व आदि रोगों का नाश होता है। जिस प्रकार के योगों के साथ इसका सेवन किया जाता है यह वैसी ही क्रिया करता है।

अभ्रकसत्व सेवन करते अपथ्य—करीर, करेला, ककडी, कोल (वेर), इमली, खटाई, तेल, क्षार और बैगन अभ्रक सेवन करनेवाले के लिये अहितकर पदार्थ है।

विविध आचार्यों ने अभ्रक के भिन्न २ अनेक कल्पों का वर्णन किया है। वे सभी सराहनीय है। एक उत्तम कल्प सर्व साधारण के लाभार्थ नीचे दिया जाता है।

अभ्रककल्प [अ. वे. प्र. । अ. ४]

निश्चन्द्र अभ्रकभस्म, आंवला, त्रिफला और वायविडङ्ग प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर भांगरे के रस में २ प्रहर घोटें। लुगदी तैयार होनेपर गोलियां बनालें और छाया मे सुखाकर शीशी मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

१-१ गोली नित्य प्रथम वर्ष सेवन करे। दूसरे वर्ष नित्य २-२ गोली और तीसरे वर्ष प्रतिदिन ३-३ गोली सेवन करे। इस प्रकर १०० पल अभ्रक सेवन करने से मनुष्य वज्रकाय बन जाता है।

३ मास के सेवन से क्षय, श्वास, ५ प्रकार की खांसी, हृदयशूल, ग्रहणी, अर्श, आमवात, शोष, पाण्डु और १८ प्रकार के कुष्ठो का नाश होता है। इसका सेवन करते पथ्य सेवन अत्यावश्यक है। इस कल्प को पूरे ३ वर्ष तक सेवन करने से शरीर अत्यन्त दृढ हो जाता है।

अभ्रक सर्वोपयोगी, सर्व धातुवर्द्धक, रोगनाशक, रसायन और परम वाजीकरण है। अधिक पुटवाली अभ्रकभस्म अधिक गुणवाली और कम पुटवाली कम गुणवाली होती है। अधिक पुटवाली थोडी मात्रा में और कमपुटवाली अधिक मात्रा में दी जाती है।

"आयुर्वेद सेवासंघ" ने विविध भस्मों का विश्लेषण किया है। अभ्रक की विभिन्न पुटी भस्मों में उन्हे जो अन्तर मिले वे निम्न प्रकार हैः—

पुट संख्या	फुट सिलिकेटस	अल्युम्युनियम आकसाइड	आरइन आक्साइड	केलसियम आकसाइड	मैगनीसियम आकसाइड	वाटर सो-ल्युविलिटि
१०० पुटी	२७.५	१२.१	३८.०	३ ८८	१.८४	१६ २
५०० पुटी	२६.६	३१.८	१२.१	७.१५	० ५७	
१००० पुटी	३१ ८७	१७ ५	३१.६	१३ ४५	५.६	
अन्य १००० पुटी	२४.८	४१.७	५.०	९.६	१.३	१८ ०

यह विश्लेषण किन औषधों के रस में भावना देकर पुट दी गई अभ्रकभस्म का है यह अनिश्चित होने से तथा एक ही प्रकार द्वारा भस्मो का निर्माण न होने से विश्लेषण व्यापक रूप से सहायभूत नहीं हो सकता। अतः आवश्यक यह है कि एक ही, सफल, सुन्दर भस्म को गुणों से परिपूर्ण करनेवाला, अभ्रक मारक मार्ग निकाल लिया जाय।

वीर्य में शीत और विपाक में मधुर होने के कारण अभ्रकभस्म वात–पित्त नाशक, बुद्धिवर्द्धक, वृष्य, आयुष्य और रोगसमूह नाशक है।

इसकी क्रिया अमृत के समान रोग नाशक और शरीर पोषक होती है। आमाशय के क्षोभ, आक्षेप, शैथिल्य आदि नाश करके तत्स्थान की कलाओ की उग्रता का नाश करती है। पाचक रसों का उत्पादन करती है और अपथ्य सेवन से अथवा कलाओं में शोथ, व्रण और संकोच के कारण होनेवाली दाह का नाश करती है। आमाशय आक्षेप, परिणाम शूल, आमाशय में क्षोभ के कारण उत्पन्न हुई मुख की दुर्गन्ध, विकलता और आटोप आदि रोगों में क्षारों के योग के साथ अथवा मक्खन और मिश्री के साथ मिलाकर इसका सेवन शीघ्र फलप्रद होता है। यह संग्रहणी और उसके अनुबन्धियो का नाश करने के लिये श्रेष्ठ औषध है। ग्रहणी भाग मे उत्पन्न हुये शोथ और व्रण को दूर करने के लिये अभ्रक का सेवन सर्वदा लाभप्रद होता है। यह रोधक नहीं है परन्तु पित्तशोषक और वात नाशक होने के कारण अतिसार को रोकती है और अन्त्र कलाओं की दुर्व्यवस्थाओं को दूर करती है।

क्षुद्रान्त्र तथा वृहदन्त्र के किसी भी भाग में शोथ, व्रण और क्षोभ हो तो अभ्रक का अन्य योगो के साथ अथवा अकेला सेवन बहुत ही लाभप्रद होता है। यह कला शैथिल्य नाशक और पाचक रसोत्पादक है।

दीर्घकाल तक अपथ्य सेवन के कारण संयुक्त शिराओ मे क्रिया-शिथिलता हो जाती है, जिससे रस का भलीभान्ति यकृत् आदि अवयवों मे वितरण नहीं होता और उदरच्छदा कला मे जडता तथा नाभि के चारो ओर कभी सतत और कभी रह रह कर वेदना की उत्पत्ति होती है।अभ्रकभस्म कलाओं के अन्तरतन्तुओं के कोथ का नाश करती है और क्यो कि शोषक है अतः शीघ्र ही संयुक्त शिरा शैथिल्य, उदरच्छदाकला प्रदाह और अन्त्र शैथिल्य का नाश करती है।

इसी प्रकार पोषक, वातनाशक और क्षोभ तथा दाहनाशक गुणो द्वारा यह वीर्य प्रणा-लियों और शुक्राशय के विकारों को नष्ट करती है और प्रमेहरोग नाशक है।

अभ्रकभस्म उदरकलाओं को स्वस्थ करके पाचक रसों की उत्पत्ति करती है। वात-पित्तज विकारों को शान्त करती है। ज्वरनाशक, दाहनाशक, वीर्यवर्द्धक और रसायन होने से शरीर की पुष्टि करती है।

मस्तिष्क के विकारों के लिये अभ्रक वस्तुतः प्रभावशाली औषध है। अपस्मार, उन्माद, मस्तिष्क दौर्बल्य, स्मृतिभ्रंश आदि रोगों मे इसकी क्रिया शीघ्र और फलवती होती है। वात नाडियों की उग्रता को दूर करके यह उनका पोषण करती है और मस्तिष्क की कलाओं को सक्रिय और बलवान् बनाती है। यह हृद्य है और हृदय को बलवान् बनाती है तथा हृद्दाह, हृन्मांस संकोच, हृच्छूल आदि रोगों का नाश करती है।

अभ्रक योगवाही है अतः जैसे द्रव्यो के मिश्रण के साथ दी जाये वैसा ही लाभ करती है। अर्थात् यदि मधुर, अम्ल और लवण रस युक्त द्रव्यो के मिश्रण के साथ दी जाये तो वात रोग नाशक होती है। कषाय, मधुर और तिक्त रस प्रधान द्रव्यों के योग के साथ प्रयोग मे लाई जाय तो पित्तनाशक क्रिया करती है। यदि कषाय, कटु और तिक्त रस प्रधान औषधो के योग के साथ सेवन की जाय तो कफरोग नाशक होती है।

अभ्रक की क्रिया तर तम पुटों की संख्या पर निर्भर है। जितने अधिक पुटवाली योग युक्त अभ्रकभस्म प्रयोग मे लाई जायेगी उतनी ही शीघ्र और प्रशस्त क्रिया करेगी अतः १०० पुटी से ५०० पुटी, ५०० पुटी से १००० पुटी अधिक लाभप्रद और मूल्यवान् होती है, यह स्वतः सिद्ध हो जाता है।

मात्राः—	२० से ४० पुटी	—	६ रत्ती तक
	४० से ६० ,,	—	२ से ४ रत्ती तक
	६० से २०० ,,	—	१ से ३ रत्ती ,,
	२०० से ५०० ,,	—	१ से २ रत्ती ,,
	५०० से १००० ,,	—	१/२ से १ रत्ती ,,

अनुपानः—जिस दोष प्रधान रोग नाश के लिये प्रयोग करनी हो इसे उसी दोष को नाश करनेवाले अनुपान के साथ सेवन करानी चाहिये।

साधारणतः मधु, मक्खन, घृत, मिश्री, दूध और चन्दनपिष्टी आदि के साथ इसका सेवन किया जाता है।

आधुनिक विज्ञान में अभ्रक के सांकेतिक नाम—

श्वेताभ्र—K_2O, 3 AI_2O_3, 4 Sio_2

(पोटाशियम ओकसाइड, ३ आल्युमिनिय आकसाइड, ४ सिलिकन आकसाइड.)

कृष्णाभ्र—(वज्राभ्र) 3 Mgo, AI_2O_2, 3SIO_2,

(३ मग्नेशियम आकसाइड, अल्युमिनियम ओकसाइड, व ३ सिलिकोन ओकसाइड)

श्वेताभ्र—Muscovite (मस्कोह्वाइट) Potsh Mica.

कृष्णाभ्र—Biotite (बायोटाइट) Ferro-Magnesium Mica.

अभ्रक के रसायनिक पृथक्करणः—

(१) सिलिका (२) लौह (३) अल्युमिनियम (४) पोटाशियम तथा (५) मैग्नेशियम.

अकीकभस्म

अकीक शोधन—गरम करके २१ बार गुलाब जल में बुझाने से अकीक शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार तपा–तपाकर २१ बार गोदुग्ध मे बुझाने से अकीक शुद्ध हो जाता है।

अकीकमारण विधि—शुद्ध अकीक का चूर्ण करलें और उसे गुलाबजल मे घोटकर टिकिया बनाले। टिकियों को सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। सम्पुट के स्वाङ्गशीतल हो जाने पर टिकियों को निकालकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें और इसी प्रकार एक पुट घृतकुमारी के रस की दें। पुनः स्वाङ्गशीतल शराव सम्पुट में से द्रव्य को निकालकर दूध में खरल करके टिकिया बनाकर पूर्ववत् गजपुट में फूंक दें। यह ध्यान रखना चाहिये कि सम्पुट पर्याप्त बड़ा हो, क्यों कि भस्मित अकीक दूध की भावना देने से फूलता है। बडे सम्पुट मे स्थान खाली रहने से सम्पुट को कोई हानि नहीं होती अन्यथा शराव फूट भी सकते है। इस प्रकार दूध की ३ पुट दें और भस्म को भलीभान्ति सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोग मे लावे।

अकीक की पिष्टि—शुद्ध अकीक का सूक्ष्म चूर्ण करके ७ दिन पर्यन्त गुलावजल के साथ खरल करे तो अकीक की पिष्टि तैयार हो जायगी।

मात्राः— १ से ३ रत्ती। प्रातः सायं मधु के साथ चटावे।

प्रयोग—अकीकभस्म और पिष्टि हृद्दौर्बल्य, पित्तज हृदयरोग, नेत्ररोग, रक्तप्रदर आदि रोगो मे हितावह है। मस्तिष्क उग्रता, थूक में रक्त आना आदि रोगों में लाभप्रद है। विविध योगों के साथ देने से अकीक प्रशस्त वात-पित्त रोग नाशक क्रिया करता है।

कपर्दी भस्म

कपर्दी पर्याय—वराटक, वराट, वराटी, कपर्दक, कपर्द, कपर्दी, बालक्रीडनक, चर, वीर्य, चराचर।

कपर्दी के भेद—पीत, श्वेत, और धूसर। गुणों की कसौटी पर पीत उत्तम, श्वेत मध्यम और धूसर अधम है।

कपर्दी के बाह्य स्वरूप—दीर्घ वृन्तवाली, स्वर्णवर्णमयी और पीठ पर गांठवाली ६ मासे की कौडी उत्तम मानी जाती है। ४ मासे की मध्यम और २ मासे की अधम होती है। यह रसायनाचार्यों का मत है।

वराटिका शोधन

१ ला प्रकार—तीन घण्टे तक दोलायन्त्र द्वारा काञ्जी में स्वेदन करके गरम पानी मे धो लेने से कौडी शुद्ध हो जाती है।

२ रा प्रकार—कुलथी के क्वाथ में दोलायन्त्र द्वारा ३ घण्टे स्वेदन करके ऊष्ण जल मे धो डालने से कौडी शुद्ध हो जाती है।

३ रा प्रकार—किसी भी अम्ल द्रव्य मे दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन कर लेने से कौडी शुद्ध हो जाती है।

कपर्दीमारण

शुद्ध कौडियो को एक शराव में भरें, उसे दूसरे शराव से ढक दे। दोनो शरावों की संधि को कपडमिट्टी से बन्द करके सुखा ले। सुख जाने पर शराव सम्पुट को अरनों की निर्धूम अग्नि में भलीप्रकार पर्याप्त काल तक गरम करे, जब शराव सम्पुट स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसमें से जली हुई कौडियों को भलीप्रकार यत्नपूर्वक निकालकर खरल करके रक्खे। इस स्वच्छ, श्वेत कौडीभस्म को प्रयोग में लावे।

२ रा प्रकार—शोधित कौडियों को शराव मे रखकर निर्धूम अग्नि पर तपाने से भी भस्म हो जाती है।

कौडीभस्म के गुण

कौडीभस्म ऊष्णवीर्य, दीपक, नेत्ररोग नाशक, कर्णरोग नाशक और अग्निमान्द्य नाशक है। परिणामशूल और उदरशूलो में यह अच्छा काम करती है। ग्रहणी नाशक और वीर्यवर्द्धक है।

कौडीभस्म के आमयिक गुण

(१) सूक्ष्म समुद्र फेन के साथ सूक्ष्म चूर्णित कौडीभस्म मिलाकर कान में डालने से कान में पूय आना वन्द हो जाता है।

(२) त्रिकटु के साथ कौडीभस्म का सेवन करने से अग्निमान्द्य का नाश होता है।

(३) अडूसा (वासा) के रस मे मिलाकर कौडीभस्म का सेवन करने से कास (खांसी) मिट जाता है।

(४) निम्बु के रस मे त्रिकटु चूर्ण और कौडीभस्म मिलाकर सेवन करने से भयङ्कर उदरशूल भी मिट जाता है।

(५) मुर्दासंग (मृदारशृङ्ग) और कौडीभस्म के सूक्ष्म चूर्णों को मिश्रित कर लगाने अथवा अवचूर्णन करने से फुंसी-फोडे मिट जाते है।

(६) त्रिकटु चूर्ण, शंखभस्म और कौडीभस्म को मिलाकर ७ दिन सेवन करने से रोग का नाश होता है।

(७) कौडीभस्म को रससिन्दुर, घी, गूलर के रस, कालीमिर्च और मिश्री के साथ मिलाकर खाने से रक्तपित्त का नाश होता है।

मात्राः—२ से ४ रत्ती। यथोचित अनुपान के साथ।

कहरूवा भस्म

कहरूवा शुद्धि—दोलायन्त्र द्वारा निम्बु के रस मे ३ घण्टे स्वेदन करके गरम जल से धोवे।

कहरूवामारण—परिशोधित कहरूवे का सूक्ष्म चूर्ण करके घृतकुमार के रस में घोटें। पिष्टि तैयार होनेपर उसकी टिकिया बनाकर शराव सम्पुट मे बन्द करके पुट दें। इस प्रकार ३ वार पुट देने से कहरूवा की भस्म तैयार हो जायगी। सूक्ष्म खरल करके प्रयोग मे लावे।

कहरुवा की पिष्टि—शुद्ध कहरूवे का सूक्ष्म चूर्ण करके ७ दिन पर्यन्त गुलाबजल मे खरल करे। इस प्रकार कहरूवा की पिष्टी तैयार हो जायगी।

मात्राः—३ के ६ रत्ती तक। जल के साथ। दिन में २ बार दें।

उपयोग—कहरूवा शीत, संग्राही और कृमिनाशक है। इसके सेवन से दाह, रक्तपित्त, अर्श, पित्तज, कृमिज और रक्तज शिरोरोग नष्ट होते है।

नासिका की दुर्गन्ध, ज्वर, अरुचि, प्रस्वेद, चक्कर आना आदि रोगों में भी यह अच्छा काम करती है।

बोलपर्पटी के साथ कहरूवा की भस्म या पिष्टी मिलाकर देने से पित्तज और रक्तज अर्श मिट जाते हैं।

कृमिज शिरोरोग में जिसमें निरन्तर वेदना रहती हो, नाकसे रक्त पडता हो, नासा में दुर्गन्ध रहती हो और मन्द ज्वर रहता हो, इसका सेवन लभप्रद होता है। इसके प्रयोग से नासिका द्वारा कीडे निकल जाते है और शिरोरोग मिट जाता है।

कान्तलोह भस्म

भ्रामक, चुम्बक, रोमक और स्वेदज भेद से कान्तलोह के चार प्रकार होते है।

कान्त लोह के लक्षण--जिसके पत्र में गरम करते हुये जल मे तेल की बूंदे न फैले और हींग जिसके पत्र में रखने से गन्ध रहित हो जाय तथा नीम कल्क जिसके पत्र में रक्खे जाने से तिक्तता का त्याग करके मधुर लगने लगे, जिसके पात्र में दूध गरम करने से उफान आये परन्तु वह पृथ्वी पर न पडे और जिसमें भीजे हुये चने रखने से काले हो जांय ऐसा लौह कान्तलोह के नाम से प्रसिद्ध है।

कान्तलोह शोधन प्रयोजन--अन्य लोहो की तरह अशुद्ध कान्तलोहभस्म, हृत्पीडा, अग्निमान्द्य, आठ प्रकार के कुष्ठ, शूल, दाह, नपुंसकत्व और मलवद्धता आदि रोगो की उत्पत्ति करता है, अतः यथाविधि परिशोधित कान्तलोह की ही बनी हुई भस्म काम में लावे।

कान्तलोह शोधन

१ ला प्रकार--कान्तलोह के बारीक कंटकवेधी पत्र ले। नक्तमाल, हंसपादी, गोजिह्वा त्रिफला, गोपाली, तुम्बर और दन्ती को गोमूत्र मे पीसकर कल्क तैयार करे और इस कल्क मे कान्तलोह के पत्रों को तपा तपाकर १० बार बुझावें फिर गरम जल में घोटकर बारीक चूर्ण करके भस्म बनाने के काम में लावें।

२ रा प्रकार--कान्तलोह को रेती से रतवाकर सूक्ष्म चूर्ण करालें। इस चूर्ण को तवे पर रखकर अग्नि पर गरम करे, जब खूब गरम हो जाय तो त्रिफला के क्वाथ में बुझादे। इस प्रक्रिया को सात बार करने से लोह शीघ्र शुद्ध हो जाता है।

बुझाने के लिये लोह क्वाथ परिमाण--१६ पल त्रिफला को ८ गुने जल में पकावे जब चोथा भाग शेष रह जाय तो उतारकर छान ले। इस क्वाथ में ५ पल लोह पत्रों को तपा तपा कर बुझा सकतें है।

३ रा प्रकार—लोह चूर्ण को गरम करके केले की ताजी जड के रस में बुझावें इस क्रिया को ७ बार करने से लोह शुद्ध हो जाता है।

४ था प्रकार—गोमूत्र और त्रिफला क्राथ सम भाग लेकर मिलावे। इस मिश्रण में तपा तपा कर लोह को बुझाने से लोह शुद्ध हो जाता है।

लोह मारण विधि—प्रथम भानुपाक तत्पश्चात् स्थालीपाक और अन्त में पुट पाक इस प्रकार लोह को क्रमपूर्वक पकाने से लोह की भस्म हो जाती है।

भानुपाक के लक्षण—त्रिफले के क्राथ मे लोह के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर सूर्य के प्रखर ताप में शोषित करने से लोह पक जाता है। इस पाक का नाम भानुपाक कहा जाता है।

भानुपाक का विधान—विधिपूर्वक शोधित लोह को जल मे भलीभान्ति धोवे। फिर खरल के अन्दर त्रिफला क्वाथ मे इस लोह चूर्ण को मिलावे और खरल को सूर्य के तापमें रखदें। सूर्य के तीव्र ताप द्वारा जलीयांश शोषित हो आयगा। इस क्रिया को ७ बार करें। भानुपाक के लिये लोह के समान त्रिफला और क्वाथ बनाने के लिये त्रिफला से दुगुना जल ले। क्वाथ १/४ अवशेष रहे तो इसको छानकर प्रयोग मे लावे।

स्थालीपाक के लक्षण—त्रिफला क्वाथ में डुवा हुवा लोह स्थाली मे भरकर तीव्राग्नि पर पकाकर शुष्क किया जाता है, अतः इसको स्थालीपाक कहते है।

स्थालीपाक का विधान—भानुपाक विधि द्वारा परिपक्व हुये लोह को धोकर स्थाली मे रखकर चूल्हे मे चढा दे। इसमे त्रिफला का क्वाथ भरदे और तीव्र अग्नि द्वारा इसको जलीयांश उडने तक पकावे।

स्थालीपाक में लौह से तीन गुना त्रिफला लिया जाता है और क्वाथ बनाने के लिये त्रिफला से १६ गुना जल लिया जाता है। आठवां भाग अवशिष्ट क्वाथ छानकर काम मे लिया जाता है।

शतावरी, भांगरा और हरित कर्णमूल के रस को लोह के समान लेकर स्थालीपाक करें अथवा जिस दोष विशेष नाशक भस्म तैयार करनी हो उस दोष को नाश करनेवाले द्रव्यों के क्वाथ या स्वरस के साथ स्थालीपाक करें।

पुट पाक के लक्षण

औषधों के रस और क्वाथादियों मे खरल करके, पुट मे रखकर लोह को पकाया जाता है। अतः इसे पुट पाक कहते है।

पुटपाक का विधान—स्थालीपाक विपक्वलोह को धो डाले। यथादोष नाशक औषधों के रस या क्वाथ मे लोह को खरल करके उसकी टिकिया बनाले। टिकियों को धूप मे

सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करे और शराव सम्पुट की सन्धि को कपडमिट्टी द्वारा प्रलिप्त करदे। जब स्वांगशीतल हो जाय तो शराव सम्पुट मे से औषध को निकालकर पूर्ववत् यथदोष-नाशक औषधो के क्वाथ या रस मे खरल करे और सम्पुट तैयार करके फिर पुट दे। इस प्रकार १०० अथवा १००० यथेच्छ पुट दे सकते है। भस्म मे जितने अधिक पुट दिये जायेंगे उतनी ही अधिक गुणवाली भस्म तैयार होगी। इस प्रकार पुट पक्व लौह की भस्म बन जाती है।

पुटपाक में औषधों का परिमाण---पुटपाक मे त्रिफला आदि यथादोषनाशक औषधे लोह के समान ले।

ज्यों ज्यो विधानपूर्वक किये हुये पुटो की संख्या बढती जाती है त्यो त्यों भस्मित लौह की गुण वृद्धि होती जाती है।

इस प्रकार भलीभान्ति तैयार की हुई लोहभस्म कोष्ठवद्धता या मलशुष्कता नही करती, वह चाहे जितने दिन सेवन की जाय।

लोहमारक गण

त्रिफला, शतमूली, सिंहिका, तालमूली, नीलोत्पल, ह्रीवेर, दशमूल, पुनर्नवा, वृद्धदारकमूल, भृङ्गराज, शुंठि, विडङ्ग, करञ्ज, सुहाञ्जना, निर्गुण्डी, तुलसी, एरण्डमूल, हरितकर्ण, पलाश, पित्तपापडा, चन्दन और बला। ये लौहमारक गणो के नाम से प्रसिद्ध है।

लौहभस्म बनाते विशेष ज्ञातव्य

जिस दोष विशेष के नाश अथवा संशमन हेतु भस्म तैयार करनी हो उसी दोषनाशक द्रव्यों की भावना देकर लोह को पुट दे और जितनी अधिक गुणमयी भस्म वनानी हो उतने ही अधिक पुट दे। वातहर द्रव्यों की भावना से तैयार की जाय तो वातनाशक, पित्तरोगनाशक द्रव्यों के साथ खरल करके तैयार की जाय तो पित्तरोगनाशक और श्लेष्म रोग संहारक द्रव्यों की भावना देकर लोहभस्म तैयार की जाय तो कफरोग नाशक विशेष बनती है।

वातहर गण---एरण्डमूल, रास्ना, दशमूल, प्रसारणी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतमूली, पुनर्नवा, अश्वगन्धा, गिलोय, जटामांसी, बला और नागबला ये औषधियां वातरोगनाशक है।

पित्तहर गण---श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, उशीर, ह्रीवेर, मञ्जिष्ठा, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, शतावरी, शैवाल, कल्हार, कुमुद, उत्पल, कदली, दूर्वा, मूर्वा, काकोल्यादि, न्यग्रोधादि, तृणपञ्चमूल आदि पित्तनाशक वर्ग है।

कफनाशक गण---रास्ना, कालिमिर्च, चविका, अदरक, संभालू, करञ्ज, पूतिकरञ्ज, मूर्वा, सुहांजना, शिरीष, वरूणवृक्ष, अर्कपत्र, पटोलपत्र, कटेली, सोठ, भारङ्गी, बहेडा आदि कफनाशक द्रव्य है।

लोहमारक २ रा प्रकार—१ भाग शुद्ध पारद, २ भाग शुद्ध गन्धक और ३ भाग शुद्ध लोहचूर्ण को एकत्र मिलाकर २ प्रहर घृतकुमारी के रस मे घोटे। इसका गोला बनाकर एरण्डपत्र मे लपेटकर उसके ऊपर सूतका डोरा लपेट दें। तदनन्तर उसे ताम्र सम्पुट मे बन्द करके उसकी संधि को मिट्टी से बन्द करदे और जब यह सधिप्रलेप सूख जाय तो सम्पुट को अनाज के ढेर मे दाब दे। ३ दिन पश्चात् सम्पुट मे से लोहे को निकालकर पीसले और कपडे मे छान ले। यह लोह की वारितर भस्म तैयार हो गई, इसका सब रोगो मे प्रयोग कर सकते है।

३ रा प्रकार—१२ भाग कान्तलोहके शुद्ध चूर्ण में १ भाग हिंगुल मिलाकर उसे २ प्रहर घृतकुमारी के रस मे घोटें और फिर टिकिया बनाकर सुखाले। शुष्क हो जाने पर टिकियों को शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे।

४ था प्रकर—शुद्ध लोह चूर्ण को घी से चिकना करके लोहे की कढाई मे इतना तपावे कि वह आग के समान लाल हो जाय। (कढाई में तपाते हुये लोह को करछे से चलाते रहना चाहिये) तदनन्तर उसे लोहे के खरल में डालकर घोटे और पुन: घी से चिकनाकर कढाई में पकावें। इसी प्रकार ५ वार पाक करने के पश्चात् उसे त्रिफला के क्वाथ में घोटकर शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे पकावें। इस प्रकार त्रिफला क्वाथ मे खरल करके ४ पुट देने से लोहे की वारितर भस्म हो जाती है। इस विधि से समस्त प्रकार के लोहों की सर्व रोगहर और पलितनाशक भस्म हो जाती है।

५ वां प्रकार—शुद्ध लोह चूर्ण को निम्बु के रस में भलिभान्ति खरल करे। पिष्टि तैयार हो जाने पर इसकी टिकियां बनालें और टिकियों को सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस विधि से ५० पुट देने पर सुन्दर लोहभस्म, जिसका वर्ण लाल कमल जैसा होता है तैयार हो जाती है। इस विधि से तैयार की हुई भस्म सर्वत्र प्रयोग मे ला सकते हैं।

रसायनाचार्यों ने लोहमारण के अनेक प्रकार लिखे हैं। संक्षेप में कुछ ऊपर दिये गये है। मारक गणों मे से एक या अनेक यथादोषनाशक द्रव्यों के रस या क्वाथ के साथ इच्छित पुट देकर भस्म तैयार की जाती है। इस क्रिया मे प्रथम लोह चूर्ण को द्रव्य के क्वाथ या रस मे खरल करते है। तदनन्तर उसकी टिकिया बनाकर सुखा लेते हैं और फिर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूक देते है। प्रत्येक पुट के बाद शराव सम्पुट के शीतल हो जाने पर लोहभस्म को उसमे से निकालकर बारीक चूर्ण करके फिर द्रव्य के क्वाथ या रस की भावना दे और पूर्ववत् पुट दे। जितने पुट देने हो उतनी ही बार सम्पूर्ण क्रिया करनी चाहिये।

लोह निरुत्थीकरण

लोहभस्म को गोघृत और शुद्ध गन्धक के साथ मिलाकर उसे घीकुमार के रस में खरल करे और टिकिया बनाकर सुखाले। टिकिया को सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार १ पुट से लोह की निरुत्थ भस्म बन जायगी।

निरुत्थ की हुई भस्म की परीक्षा—विधिपूर्वक तैयार की हुई लौहभस्म को मित्रपञ्चक (घृत, मधु, गुग्गुल, सुहागा और चौटली) मे मिलाकर कोयलों की अग्नि में तपावे। यदि इस प्रकार तीक्ष्ण अग्नि देने से भस्म में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो तो समझ लें कि यह निरुत्थ लोहभस्म है। यदि भस्म निरुत्थ नहीं होगी तो मूल स्वरूप मे बदल जायगी। इसकी पुनः भस्म बनानी चाहीये। यह रुग्णों को सेवन कराने योग्य नहीं है।

निरुत्थ भस्म सब योगो में प्रयुक्त की जाती है।

कान्तलोहभस्म के गुण

रूक्ष, किञ्चिद् मधुर, पाक मे तिक्त, वीर्य में शीत, गुरू और लेखन है। बल्य, वृष्य, उदररोग नाशक, श्लेप्मपित्तरोग नाशक और वर्णवर्द्धक है। इसके सेवन से उदर गुल्म, अर्श, शूल, कृमि, आम, आमवात, भगन्दर, कामला, शोथ, कुष्ठ, क्षय, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, यकृत् शैथिल्य, यकृत् वृद्धि और शिरोरोग का नाश होता है तथा अग्नि की वृद्धि होकर बल, वीर्य, शरीर पुष्टि आदि की वृद्धि होती है।

विसर्प, मेद, प्रमेह, गर विष, वमन, श्वास आदि विकारों पर इसकी प्रशस्त क्रिया होती है। पुरातन अतिसार, नवोत्थित गण्डमाला, रजोरोध, वृक्कशोथ, हृद्रोग, विषमज्वर, फिरङ्गज पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, योषापस्मार (हिस्टिरिया), श्वेतप्रदर तथा तज्जन्य वेदना, मधुमेह, समेद उल्वणमांसतोद, ताण्डवरोग, सूतिकाज्वर, गलव्रण, आमवात, यकृत्रोग, भगन्दर, पीनस, अम्लपित्त आदि अनेक रोगों का यह शीघ्र नाश करती है।

इसके सेवन से नाक, कान, गर्भाशय आदि मे होनेवाले रक्तस्राव बन्ध हो जाते है।

आमाशय, ग्रहणी और पक्वाशय मे होनेवाले रक्तस्राव तथा क्षत का इसके सेवन से नाश होता है।

पाण्डुरोग के कारण होनेवाली अनिद्रा को यह शीघ्र दूर करती है।

आमवात के कारण उत्पन्न हुये अस्थिविकार इसके सेवन से मिट जाते है।

स्त्रियों के रजोरोध के कारण उत्पन्न हुये शारीरिक और मानसिक विकारों मे यह श्रेष्ठ लाभप्रद होता है।

विविध कारणों से उत्पन्न हुये नाडी दौर्बल्य, शरीर शैथिल्य और रक्ताल्पता इसके सेवन से शीघ्र दूर हो जाती है।

कान्तलोहभस्म के आमयिक प्रयोग

चतुर्जात और मिश्री के साथ लोह का सेवन रक्तपित्त नाशक है।

वासा, द्राक्षा और पीपल के चूर्ण मे मिश्रितकर लोह के सेवन से पाञ्चो प्रकार के कास का नाश होता है।

भारङ्गी और त्रिकटु चूर्ण के साथ लोहभस्म के सेवन से श्वासवेग शान्त होता है।

कज्जली, पीपल और मधु मे मिलाकर लौह को चाटने से कफजरोग शीघ्र ही नष्ट होते है।

शुंठी चूर्ण के साथ लौह को खाने से वातरोगों की शान्ति होती है।

रससिन्दुर के साथ लोह के सेवन से पित्तज रोगों की शान्ति होती है।

त्रिफला चूर्ण के साथ लौहभस्म का १ वर्ष तक प्रयोग किया जाय तो वलिपलित का नाश होता है।

लौहभस्म और रससिन्दुर का मिश्रग पान के साथ खाया जाय तो वृष्य और वर्ण्य होता है।

हींग, त्रिकटु और घी के मिश्रण में मिलाकर लोह के सेवन से शूल रोग का नाश होता है।

आमला, पीपल और समान मिश्री के चूर्ण के साथ लौह के सेवन से रक्तपित्त और अम्लपित्त रोग नष्ट होते है।

मस्तिष्क रोग की शान्ति के लिये लौहभस्म को वायविडङ्ग, त्रिफला, नागरमोथा और अपामार्ग के बीजों के चूर्ण के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है।

कुश, काश इत्यादि के काथ और शिलाजीत के साथ मिलाकर लौहभस्म का सेवन करने से दारुण मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है।

पुनर्नवा और अजमोद के चूर्ण के साथ लौहभस्म का मिश्रण करके गोदुग्ध के साथ सेवन करने से बुढापे की कृशता दूर होकर नवता आ जाती है।

लौहभस्म और पारदभस्म के समभाग मिश्रण को कुटकी के रस या क्वाथ की सात भावना देकर प्रयोग में लाया जाय तो एकाङ्ग और सर्वाङ्ग वात का नाश होता है।

घी, मधु, हरिद्रा के रस अथवा हरितकी चूर्ण और कुटकी के साथ लोहभस्म का सेवन कराने से जीर्ण पाण्डुरोग और कामला भी नष्ट हो जाते है।

शुद्ध गन्धक, मधु और गो घृत में लौहभस्म का मिश्रण करके त्रिफला के क्वाथ के साथ उचित पथ्यपालनपूर्वक १ वर्ष पर्यन्त सेवन करने से शरीर नवयौवनपूर्ण हृष्ट–पुष्ट हो जाता है।

लौहभस्म के साथ गोखरू और इलायची का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

लौहभस्म को खदिर और असन के क्वाथ की पृथक पृथक ७-७ भावना देकर तैयार होने पर प्रयोग मे लाया जाय तो कुष्टादि रोगो का नाश होता है।

गन्धक के योग से तैयार की हुई ताम्रभस्म के साथ लौहभस्म को मिलाकर अवन्ती और कौच के क्वाथ के साथ सेवन कराने से सर्वाङ्ग और एकाङ्ग वात नष्ट होता है।

आमले के रस की भावना द्वारा तैयार की हुई लौहभस्म को त्रिफला के चूर्ण के साथ मिलाकर एक वर्ष तक सेवन करने से आयुवृद्धि होती है।

लोह की शरीर पर क्रिया

शरीर के अन्तर्वाह्य प्रत्येक अवयव पर लौह की न्यूनाधिक मात्रा में किसी न किसी प्रकार की क्रिया होती है। स्वस्थ त्वचा पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती, परन्तु व्रणित त्वचा, श्लेष्मकला और व्रणशोथ पर इसकी क्रिया वहां से स्रवित द्रव को जमाने की होती है। रक्त भी जम जाता है। इस प्रकर रक्तस्राव हो तो उसका अवरोध हो जाता है और रक्त परिभ्रमण में बाधा डालता है। "यह रक्त रोधक है" यह इसकी इस क्रिया से सिद्ध होता है। यह कीटाणु-विष और कीटाणु नाशक है।

यह दान्तों को काला कर देती है और इसका कारण दान्तों में खाद्य पदार्थ के जो कण लगे रहते है वे होते है। उनका अम्ल लौह की स्तर उत्पन्न करता है। आमाशय मे उत्पन्न होनेवाले स्रावों पर उनके साथ मिलकर यह वर्ण परिवर्तन करती है और आमाशय शोथ, व्रण, कोथ आदि का नाश करके श्लेष्मकलाओ को शोधित कर उनको स्वस्थ बनाती है और क्षारीय स्रावों को उत्पन्न करके उनको नीचे ले जाती है।

ग्रहणीभाग में एकत्रित क्षुब्ध दोषो को संग्रहित करके अम्लता का नाश करती हुई उन्हे स्थानभ्रष्ट करती है और कलाओं के विकार, व्रण, शोथ तथा क्षोभ आदि का नाश करती है। क्षारद्रव उत्पन्न करती है और पाचन शक्ति को बढाती हुई निम्न भाग में जाकर कुछ अम्लत्व का उत्पादन करके पक्व अथवा अपक्व मल को अपना वर्ण प्रदान करती है। आहार के साथ मिलकर संयुक्त शिरा के उपद्रवों को शान्त करती है और यकृत्प्लीहा विकार दूर करके रक्त-रञ्जन करती है तथा शरीर को लालिमा प्रदान करती है।

लोहभस्म रक्त की वृद्धि करती है, क्षुधा की वृद्धि करती है और दुष्ट अन्त्र द्वारा उत्पन्न हुये शोथ, व्रण, क्षोभ, दाह, अम्लपित्त आदि का नाश करती है।

शरीर के प्रत्येक कोष का लोह एक आवश्यक अंग है, कोष की पाचन क्रिया को इससे सहायता मिलती है। खाद्य पदार्थों में जो लोह प्रकृतिस्थ होता है, वह शरीरवर्द्धन, पोषण और रक्तरञ्जन के काम आता है। जहां इसका अभाव किन्हीं कारणो से हो जाता है

वहां लोहभस्म के प्रयोग द्वारा उसकी पूर्ति हो जाती है। शरीर में विद्यमान लोह की २/३ मात्रा रक्तरञ्जक होती है। स्वस्थ शरीर मे यदि यह आवश्यकता से अधिक पहुंच जाता है तो इसका संग्रह भविष्य के लिये उपयोगी होता है। यदि किन्हीं कारणों से रक्तहीनता हो जाय तो यह संग्रहित लोह दोषों को क्षीण करके, रक्तकी वृद्धि करते हुये स्वास्थ्य को यथावत् सुरक्षित रखने में सहायभूत होता है।

रक्तोत्पादक अवयवों की क्रिया को, कि जिसमें किन्ही कारणों से क्षति पहुंचती है, यथावत् गतिमान् रखने के लिये किसी उत्तेजक या शक्तिप्रद द्रव्य की आवश्यकता होती है। जव लौह को रक्तपरिभ्रमण द्वारा उन अवयवों में पहुंचाया जाता है तो वह रासायनिक क्रिया करता है और क्योंकि वह बाह्य अन्य द्रव्य न होकर रक्त का ही एक भाग विशेष है अतः रक्तवर्द्धन में श्रेष्ठ सहायभूत होता है।

रक्तकी वृद्धि के साथ शरीर मे प्राणवायु की वृद्धि होती है और पाचक क्रिया बढती है, इस प्रकार इसके सहारे स्वास्थ्य, सुन्दरता और शरीर वढता है। अतः "लौह सर्वसाधारण रासायनिक शक्तिप्रद द्रव्य है" यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। इसके सेवन से रक्तवर्द्धक अवयवों के नूतन और पुरातन विकार दूर होते हैं और स्वस्थ क्रिया की वृद्धि होती है।

वृक्क और मूत्राशय पर इसकी क्रिया का विचार करे तो यह स्वाभाविक ही सिद्ध होता है कि यह वृक्कदाह और वृक्क शैथिल्य नाशक है। वृक्कनलिका, मूत्राशय और मूत्रनली के व्रण, व्रणशोथ और संकोच आदि इसके सेवन से दूर हो जाते है। इतना अवश्य कभी कभी देखा गया है कि शिशुओं को यदि इसका अधिक सेवन कराया जाय तो मूत्राशय में उग्रता उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण बच्चे सोते सोते मूतने लगते है।

लौहभस्म अन्य भस्मों के बराबर ही वारितर होती है अतः इसके अणु किसी स्थान पर किसी प्रकार एकत्रित होकर आपत्ति उत्पन्न करते है, यह सम्भव तो नही है, परन्तु यदि अपक्व रह जाय तो अवश्य ही अन्त्र रोग उत्पन्न करती है।

लौह की आमयिक क्रियायें।

लोहभस्म को मधु के साथ मिलाकर तौन्सिल पर लगाते रहने से तौन्सिल का संकोच हो जाता है, गलशोथ और मुखपाक नष्ट होते है।

ऐसा दुष्ट अतिसार, जिस पर अन्य सब औषधे निष्फल जाती है, लौहभस्म के सतत सेवन से नष्ट हो आता हैं। पुरातन कोष्ठवद्धता के लिये लौह का विषतिन्दुक और काशीश भस्म के साथ सेवन श्रेष्ठ होता हैं। मल्ल (संखिया) विष को दूर करने के लिये लौहभस्म उपयोग में आती है। यह कृमि नाशक है।

रक्तवर्द्धन के लिये यह अनेक रोगो में प्रयुक्त की जाती है। यथा—पाण्डु, कामला, गलगण्ड, हृद्रोग, फिरङ्गरोग, वृक्करोग, रक्तप्रदर, विषमज्वर, जीर्णज्वर आदि, अथवा नवीन व्याधि से मुक्त होकर रक्तवर्द्धन के हेतु उपरोक्त रोगों में से प्रत्येक रोग पर विविध औषधों के साथ अथवा अनुपानों के साथ इसका यथायोग्य सेवन किया जाता है। इसका वर्णन आमयिक प्रयोग में देखें।

मात्राः—१ रत्ती से ६ रत्ती तक। यथादोष अनुपान के साथ इसका सेवन करावें।

काशीश भस्म

काशीश के नामः—काशीश, कासीस, पुष्पकासीस, पांशुक, पांशुकासीस, खेचर। यह जल मिश्रित करके हल्के किये हुये गन्धकाम्ल (Diluted Sulphuric acid) और लौह की अन्तरक्रिया द्वारा बनता है।

कासीस के दो भेद है। पुष्पकाशीस (Rhombic green Prism) और चूर्ण काशीश (Pale greenish blue Powder)। पुष्पकाशीश स्वच्छ हरिद्रवर्ण का होता है। चूर्ण काशीश श्वेत ईषत्पीत होता है।

काशीश शोधनः—काशीश को भांगरे के रस में भलिभान्ति तीन प्रहर स्वेदन करने से वह शुद्ध हो जाता है।

काशीश के गुण

काशीस शीतल, स्निग्ध, पित्तजन्य नेत्ररोगों का नाश करनेवाला और पित्तापस्मार नाशक है। केशपोषक, रक्तशोधक, कण्डुनाशक तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और श्वित्ररोग का नाश करनेवाला है। बाह्य प्रयोग में यह संकोचक है।

काशीश निर्माण प्रकार

शुद्ध लोह चूर्ण को काचपात्र में भरकर गन्धकाम्ल का हल्का घोल (Diluted Sulphuric acid) उसमे धीरे २ डालें। जब तक लोह चूर्ण घुले तब तक गन्धाम्ल को डालते रहें। इसकी लोहचूर्ण पर की क्रिया से उसमे झाग (फेन) उठने लगेंगे। अब सारक पत्र (Filter Paper) से उसे छान लें। छना हुवा द्रव्य लेकर उसमें उतने ही प्रमाण में सुरा (Rectified Spirit) मिलावे। सुरा की द्रव्य पर तत्क्षण यह क्रिया होती है कि द्रव्यवाले पात्र की तली में काशीश बैठ जाता है। अब द्रव्य को निकाल कर तलस्थ चूर्ण को सूर्य ताप मे रखदें और सूखने पर स्वच्छ काशीश को प्रयोगार्थ रक्खें।

काशीश की घुलनशीलता:—१ भाग काशीश का १।। भाग जल मे विल्यन हो जाता है ।

काशीशद्रव का निर्माण प्रकार

२।। तोला परिस्नुत सल्लि (Distilled water) लेकर ५ रत्ती कासीस चूर्ण उसमें डालें यह शीघ्र उसमें घुल जायगा और गुदभ्रंश, विसर्प, अर्श आदि अनेक रोगों के बाह्य उपचार के लिये काशीश द्रव्य तैयार हो जायगा ।

काशीशभस्म निर्माण विधान

उपरोक्त निर्माण प्रकार से शुद्ध किये हुये काशीश को एक दिन भांगरे के रस में खरल करके टिकिया बनाकर सुखाले । फिर टिकिया को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार ३ पुट देने से काशीश की लाल रङ्ग की मुलायम भस्म तैयार हो जाती है।

काशीश मात्रा:—१ रत्ती से २ रत्ती तक । यथादोषानुपान के साथ प्रयोग मे लावे ।

काशीश के आमयिक प्रयोग

मण्डूरभस्म के साथ काशीशभस्म मिश्रित करके देने से प्लीहावृद्धि विकार नष्ट होता है।

एलवा, सुहागे की खील और काशीश भस्म के योग का सेवन करने से रजोरोध विकार नष्ट होता है ।

काशीशभस्म, दालचीनी और एलवा के चूर्ण का सेवन करने से रजःकृच्छता के कारण होनेवाली वेदना का नाश होता है, और रजःकृच्छता दूर होती है ।

कासीस–द्रव में कपडा भिगोकर रखने से विसर्प शोथ नष्ट होता है ।

काशीश को त्रिफला मे मिलाकर और जल के साथ घोटकर इस पिष्टी को व्रणशोथ पर लगाने से सोजाक मिट जाता है ।

दांत के दर्द के लिये काशीशभस्म में, भुनी हुई फटकरी, भुनी हुई हींग और देवदारु के चूर्ण का मिश्रण करके जल से घोटकर छोटी २ गोलियां बनाकर अथवा रुई में उपरोक्त पिष्टी को लगाकर दांत में रखने से दांतों की वेदना नष्ट होती है ।

एरन्ड के बीज, नीबोली, काशीश और रसाञ्जन का लेप करने से विषर्प का नाश होता है।

१ रत्ती कासीसभस्म को कैथ की मज्जा मे मिलाकर चाटने से हिक्कारोग का नाश होता है।

सज्जीक्षार के साथ मिलाकर काशीशभस्म का सेवन करने से पाण्डु, यकृत्वृद्धि और प्लीहावृद्धि का नाश होता है ।

धतूरा के बीज चौंटली और काशीशभस्म को जल में घोटकर लेप करने से दो मास मे श्वित्ररोग का नाश होता है ।

बावची के बीज का चूर्ण, काशीशभस्म और स्वर्णगैरिक (गेरू) के मिश्रित चूर्ण को जल में घोटकर लेप करने से श्वित्ररोग का नाश होता है।

काशीश-तेल अथवा काशीश-द्रव को वस्ति द्वारा सेवन करने से गुदभ्रंश और अर्श नष्ट होते हैं।

कान्तपाषाणभस्म

कान्तपाषाण, चुम्बक, लोहकर्षक, कान्तोत्पल इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है।

कान्तपाषाण शुद्धि

(१) कान्तपाषाण का चूर्ण बनाकर भैंस के दूध और गौ के घृत मे एक लोहपात्र मे मिलाकर पकावे।

(२) लवण अथवा क्षार के साथ गरम करके सुहांजने के रस मे बुझाने से भी यह शुद्ध हो जाता है।

(३) भैंस के दूध अथवा निम्बु के स्वरस अथवा सुहांजने के रस में दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से कान्तपाषाण शुद्ध हो जाता है।

(४) कान्तपाषाण के चूर्ण को काञ्जी या निम्बु के रस में भिगोकर कुछ काल धूप देने से वह शुद्ध हो जाता है।

कान्तपाषाण मारण विधि

शुद्ध कान्तपाषाण के चूर्ण को पहले गोमूत्र में खरल करें फिर त्रिफला के क्वाथ की भावना दे और फिर उसकी टिकिया बनाकर सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार ७ पुट देने से कान्तपाषाण की सुन्दर भस्म तैहार हो जायगी।

कान्तपाषाण के गुण

कान्तपाषाण की भस्म शीतल, लेखन, त्रिदोषनाशक और मेद, पाण्डु, क्षय, कण्डू, मोह और मूर्च्छा का नाश करनेवाली है। इसके सेवन से रक्त और वीर्य की वृद्धि होती है तथा हृद्वेपन, रजोदोष, रक्तपित्त, नपुंसकता, कामला, रक्तदोष और क्षय आदि रोगो में यह अच्छा काम करती है।

इसका सेवन पित्तजन्य तथा रक्तपित्तजन्य अनेक विकारों पर यथा कास, श्वास, प्रमेह, अकाल वृद्धावस्था और शरीर दाह पर सर्वदा लाभप्रद रहता है।

मात्राः—२-२ रत्ती। जल अथवा दूध के साथ दें।

कान्तपाषाण भस्म का प्रयोग

कान्तपाषाण कान्तलौह के समान गुणकारक है अतः जिन जिन रोगों पर लौहभस्म का प्रयोग किया जाता है उन उन रोगों पर इसका भी प्रयोग किया जा सकता है।

———०———

कांस्यभस्म

कांसी, कांस्यक, घोषपुष्प, वह्निलोह, घोष आदि इसके पर्याय है।

कांस्य निर्माण विधान—चार भाग तांवा और १ भाग शुद्ध वङ्ग (रांग या कलई) लेकर एक मूषा मे रखकर धमन द्वारा खूब गरम करें। दोनों पिघलकर मिश्रित हो जायेंगे और दोनों के स्थान एक भिन्न मिश्रण ।जसका घोष गम्भीर और ऊंचा होता है ऐसी धातु कांस्य प्राप्त होगी। इस प्रकार तैयार की हुई कांस्य धातु को भस्म बनाने के काम में लावे।

ग्रहण करने योग्य कांस्य के लक्षण—आवाज गहरी और आकर्षक, देखने और स्पर्श करने मे स्निग्ध, श्वेत, मृदु और स्वच्छ हो तथा जो अधिक अग्नितापसह हो इस प्रकार का कांस्य मारण के लिये ग्रहण करने योग्य है और जिसमे चमक ना हो, दर्दरा, खर्दरा और पीला हो तथा गरम करने से शीघ्र जलने लगता हो ऐसा ताम्ररहित अथवा न्यूनताम्रभाग, मन्द नाद वाला कांस्य भस्म करने के लिये कभी प्रयोग में नहीं लाना चाहिये।

कांस्य शोधन

१ ला प्रकार—कंटकवेधी कांस्यपत्र लेकर अग्नि पर गरम करके गोमूत्र मे बुझावें। इस प्रक्रिया को सात बार दुहरावें ऐसा करने से कांस्य शुद्ध हो जायेगा।

२ रा प्रकार—सूची वेध कांस्य पत्रों को नमक और गोमूत्र के घोल से भरे हुये एक पात्र मे डाल दें और ४ घण्टे तक तीव्राग्नि पर गरम करे। ऐसा गरम करने से कांस्यपत्र शुद्ध हो जायेंगे।

कांस्य मारण प्रकार

(१) परिशोधित कंटकवेधी कांस्यपत्र लेकर खरल करे और उसमें कांस्य के समान गन्धक मिलाकर आक के दूध के साथ घोटें और टिकिया बनाकर धूप में सुखालें। टिकियों को शराव सम्पुट मे वन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार ३ पुट देने से कांस्यभस्म तैयार हो जायेगी।

(२) कांस्य के समान हिंगुल ले और दोनों को खरल करे फिर मिश्रण को निम्बु के रसमें घोटकर टिकिया बनालें और टिकियों को धूप मे सुखाकर सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार तीन पुट देने से कांस्य की भस्म तैयार हो जायगी।

(३) मनसिल और गन्धक प्रत्येक को कांस्य के समान लेकर तीनों को एकत्र खरल करें और मिश्रण को घीकुमार के रस मे घोटकर टिकिया तैयार करे। धूप में सुखाकर टिकियों को सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक दे। इस विधान से भी ३ पुट में कज्जली के वर्णवाली कांस्यभस्म तैयार हो जायगी।

कांस्यभस्म के गुण

लघु, तिक्त, ऊष्ण, लेखन, दृष्टिप्रसादक, रूक्ष, सर, विषद, कफ-पित्तनाशक, कृमि कुष्ठनाशक, अग्निवर्द्धक और प्रमेहनाशक है।

कांस्यभस्म के प्रयोग

क्योंकि कांस्य ताम्र और वङ्ग के ८ : २ के अनुपात से बनती है, अतः इसी अनुपात से इसमें उनके गुणों की भी विद्यमानता है। अधिक ताम्र का योग होने से यह ताम्रभस्म सदृस अधिक गुण करता है।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। यथादोषानुपान के साथ सेवन करें।

खर्परभस्म

रसक, खर्पर, यशद कारण, खपरिया आदि नामों से जाना जाता है।

खपरिया स्वरुप

खर्पर वडा, खर्दरा, सदल और निर्दल, मिट्टी की आभावाला अथवा पीताभावाला और भारी होता है। ऐसे खर्पर को ही भस्म बनाने के लिये प्रयोग मे लावे।

खर्पर के भेद—सदल और निर्दल अथवा दर्दुर और करिवेल्लक इस प्रकार खर्पर के दो भेद है। दर्दुर खर्पर को सत्वपातन के लिये और करिवेल्लक को औषध प्रयोग में काम में लाते है।

खर्पर शोधन प्रकार

(१) खर्पर को खरल मे डालकर लोह मूसली से तोडे, जो भाग कठिन होवे उछलकर खरल के बहार पडेगे, उनको छोडकर बाकी खर्पर को निम्बु के रस की सात भावना दें। फिर धूप मे सुखाले। सुखाने पर पीताभावाला बारीक चूर्ण हो जायेगा। यह शुद्ध खर्पर है।

(२) मनुष्य मूत्र, गोमूत्र अथवा सेधानमक मिश्रित यवकाञ्ची में दोलायन्त्र द्वारा सात सात वार प्रत्येक मे अथवा एकएक मे पकाकर गरम पानी से धो डालने पर खर्पर शुद्ध हो जाता है।

(३) खर्पर को कोयले की अग्नि पर तपावे और बिजौरे निम्बु के रस मे वुझादे। इस क्रिया को ७ वार करने से खर्पर शुद्ध हो जाता है।

खर्पर मारण प्रकार

१—शुद्ध खर्पर १० तोले लेकर उसको १० तोले शुद्ध पारद के साथ खरल करें। भली-प्रकार खरलते २ जब सूक्ष्म चूर्ण बन जाय तो उसे सम्पुट मे बन्द करके यत्नपूर्वक अरणों की अग्नि में फूंक दे। इस प्रकार ३ पुट देने से खर्पर की सुन्दर, मृदु, पीताभावाली भस्म तैयार हो जाती है।

२—शुद्ध खर्पर के समान शुद्ध हरताल लेकर, दोनों को एकत्र खरल करके, सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, उसे तीन पुट देने से खर्पर की भस्म तैयार हो जाती है।

खर्परभस्म के गुण

खर्परभस्म शीत, कफ—पित्तरोग नाशक, नेत्र हितकारी, प्रमेह, रक्त प्रदर, अश्मरी, श्वास, अर्श, जीर्णज्वर और अतिसार नाशक है। यह योगवाही, त्रिदोषनाशक, विषनाशक, विचर्चिका और कुष्ठ को नष्ट करनेवाली तथा बल—वीर्यवर्द्धक है।

मात्राः—१/२ से २ रत्ती तक। यथादोषानुपान प्रयोग करें।

खर्परभस्म के आमयिक प्रयोग

गोखरू के क्वाथ के साथ लेने से खर्परभस्म मूत्रकृच्छ्र रोग का नाश करती है।

खर्पर भस्म के साथ वंशलोचन चूर्ण का सेवन कराने से पुरातन श्वास, और क्षयजन्य कास भी नष्ट हो जाता है।

खर्पर भस्म को कान्तलोहभस्म के साथ सेवन करने से पाण्डु, शोथ, प्रदर आदि रोग नष्ट होते है।

रससिन्दुर और खर्परभस्म को मिलाकर सतत सेवन कराने से जीर्णज्वर का नाश होता है।

प्रवालभस्म, कालीमिर्च का चूर्ण, रससिन्दुर और जीरे के चूर्ण के साथ खर्परभस्म मिलाकर सेवन करने से उदरगतवात, अग्निमान्द्य, धातुगतज्वर और जीर्णज्वर नष्ट होता है।

खर्पर सत्व-पातन प्रकार

(१) जयन्ती, त्रिफला चूर्ण, हरिद्रा चूर्ण और सुहागा लेकर सूक्ष्म चूर्ण करले और इस मिश्रित चूर्ण का $\frac{1}{8}$ यशद चूर्ण मिलाकर उसे जल द्वारा पिष्टी बनालें और मूषा के अन्दर उसका प्रलेप करले। अब इसमे नलिकासम्पुट बांधकर तीक्ष्ण अग्नि पर पकावें और पाताल यन्त्र में पडते खर्पर सत्व को ग्रहण करे।

(२) लाक्षा, हरड, हरिद्रा, दारु हरिद्रा, गुड, राल और सुहागा लेकर एकत्रित चूर्ण करें और इसमे शुद्ध खर्पर चूर्ण मिलावे। फिर इसको गोदुग्ध और गोघृत में पकावे। जब तैयार हो जाय तो गोला बनाकर उसे धूप मे सुखाले, सूखे हुये गोले को वृन्तक मूषा मे

रखकर उसके नीचे तीव्र अग्नि दे। जब गोला पिघल जाय तब उसे भृगर्त मे डाल दे। स्वच्छ खर्पर सत्व इस प्रकार मिल जायेगा।

खर्पर-सत्व मारण प्रकार

खर्पर सत्व लेकर कढाई में डालकर, चूल्हे पर चढाकर, उसे प्रदीप्त अग्नि पर गरम करे और सत्व के पिघल जाने पर उसको चलाते जाये। इस विधि से खर्पर सत्व की सुन्दर भस्म तैयार हो जायेगी।

खर्पर-सत्व भस्म के गुण

इसके सेवन से पाण्डु, शोथ, कास, श्वास, क्षय, विषमज्वर, रज:शूल, रक्तगुल्म, श्वेत प्रदर, मधुमेह तथा हिक्का का नाश होता है।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। यशद के समान प्रयोग मे लावें। यथादोषानुपान के साथ दें।

गोदन्ति हरताल भस्म

गोदन्ति, गोदन्ता, गोदन्त आदि इसके अन्य नाम है। यह पाषाण जातीय द्रव्य है, हरताल (ताल) के समान नहीं है।

गोदन्ति हरताल शोधन—गोदन्ति हरताल के टुकडे लेकर निम्बु के रस या द्रोण-पुष्पी के स्वरस में दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से यह शुद्ध हो जाती है।

गोदन्ति मारण—शोधित गोदन्ति हरताल को शराव सम्पुट में बन्द करके पुट देने से श्वेत वर्ण की सुन्दर भस्म हो जाती है।

गोदन्ति के गुण—शीत, पित्तज्वर तथा जीर्णज्वर नाशक, अग्निवर्द्धक, बलकारक और श्वास-कास नाशक है।

मात्राः—१ रत्ती से ३ रत्ती तक। यथादोषानुपान बल और काल की अपेक्षा करते।

चतुर्वङ्गभस्म

निर्माण प्रकार—शुद्ध वङ्ग, शुद्ध नाग, शुद्ध यशद और शुद्ध खर्पर प्रत्येक समान भाग लेकर लोहे की कढाई मे रखकर चूल्हे पर चढावे। नीचे से तीक्ष्ण अग्नि दे। जैसे जैसे ये धातुयें पिघलती जांय, वैसे वैसे घीकुंवर के मूल के दण्डे से द्रव्य को घोटते जांय और हरिद्रा का चूर्ण थोडा थोडा उसमे डालते जांय। इस प्रकार धीरे २ सबका मिश्रित चूर्ण तैयार हो जायेगा। इस चूर्ण को ऊपर से एक तवे से ढककर १२ घण्टे तीव्र अग्नि दे। जब कढाई स्वाङ्गशीतल हो जाये तब चतुर्वङ्ग चूर्ण को कपडछन करके खरल में डाल ले और

हरिद्रा के क्वाथ के साथ उसे एक दिन घोटे और फिर टिकिया बनाकर, सुखाकर, शराव सम्पुट मे बन्द करके, गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार १४ पुट हरिद्रा के क्वाथ मे घोट २ कर दे। तदनन्तर उपरोक्त विधान से घीकुंवर के रस में घोट घोटकर १४ पुट दें। तैयार होने पर सूक्ष्म खरल करके प्रयोगार्थ रखले। यह पीतवर्ण मृदु भस्म बन जायेगी।

मात्रा:—१ से २ रत्ती। मधु, दूध, मलाई, घृत, मक्खन आदि के साथ। यथादोषानुपान प्रयोग में लावें।

गुणधर्म—नाग, वङ्ग, यशद और खर्पर के योग से तैयार की हुई यह भस्म, प्रमेह नाशक, वीर्यवर्द्धक, वृक्कदोष, मूत्राशय विकार, गर्भाशय शोथ, गर्भाशय आक्षेप आदि विकारों का नाश करनेवाली होती है।

यह रसायन और वाजीकरण है, अत: शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग और विशेषतः वीर्यग्रन्थि और रजोग्रन्थियों पर इसकी क्रिया श्रेष्ठ, पोषक, शैथिल्यनाशक और रोगनाशक होती है। वंध्यत्व और नपुसकत्व मे इसका सतत सेवन अवश्य लाभप्रद होता है। क्योंकि डिम्बग्रथियों के विकार को दूर करके यह उनके शोष, शोथ, शैथिल्य, संकोच और निष्क्रियता को नष्ठ करती है, अतः सम्पूर्णतया रज यथासमय और यथेष्छ मात्रा में आने लगता है। इसके सेवन से विकृत श्लेष्मकलाये संकुचित होकर आवश्यक स्रावों का उत्पादन करने लगती है। यह प्रदर आदि रोगों का नाश करती है। गर्भाशय शोथ, शैथिल्य, संकोच आदि इसके सेवन से मिट जाते है।

नपुंसकत्व को दूर करने मे यह इन्द्री के मांस से लेकर अण्डग्रन्थियों तक अङ्गों का यथा साध्य पोषण करती है और इस प्रकार क्षीण,दुर्बल और विकृत इन्द्री को कठिन, सशक्त और स्वस्थ बनाती है, तथा वीर्य की वृद्धि कर मनुष्य को वीर्यवान्, बलवान्, ओजस्वी और बुद्धिमान् बनाती है।

जिस प्रकार रज और वीर्य की ग्रन्थियो पर इसकी क्रिया होती है, उसी प्रकार अन्त्र की ग्रन्थियों पर भी यह काम करती है। इसके सेवन से यकृत् और प्लीहा विकार मिट जाते हैं। अन्त्र शैथिल्य नष्ट होकर अग्निवृद्धि होती है और रस–रक्त आदि धातुओं की वृद्धि होती है। अनुलोम और प्रतिलोम क्षय मे इसका सेवन लाभ देता है।

आमाशय श्लेष्मकला विकार, अन्त्र के किन्हीं भागो में एकत्रित आमदोष, अन्नविष और अमलत्व के कारण उत्पन्न होनेवाले व्रण इसके सेवन से शीघ्र नष्ट होते है। इसके प्रयोग से उदर की श्लेष्मकलाये सक्रिय होकर पोषण में सहायभूत होती हैं।

यह जिस प्रकार प्रमेह नाशक है उसी प्रकार शरीर विकार के कारण उत्पन्न हुये रक्तविष, ग्रन्थि विष और प्रणालिका विषो का नाश करती है ।

संक्षेप में इसका सेवन, २० प्रकार के प्रमेह, वृक्कदाह, जीर्णपूयमेह, मूत्रनलिका शोथ, पुरुषग्रन्थि विकार, जननेन्द्रिय और गर्भाशय तथा डिम्ब के विकारों पर सर्वदा लाभप्रद होती है।

नपुंसकत्व, वंध्यत्व, मधुमेह, वीर्यस्राव और मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों के नाश करने में यह श्रेष्ठ काम करती है ।

वीर्य दोषो के कारण उत्पन्न हुये सभी विकारों पर इसका सेवन निस्संदेह विशेष लाभप्रद होता है ।

जहरमोहरा भस्म

जहर मोहरा शोधन—जहर मोहरे को तपा तपा कर २१ वार गोदुग्ध या आंवले के रस में बुझाने से यह शुद्ध हो जाता है ।

जहर मोहरा मारण—शुद्ध किये हुये जहरमोहरे को कूट छानकर खरल करें और फिर ६ घण्टे दूध में घोटकर उसकी टिकिया बना सूर्य ताप मे सुखाले । सूख जाने पर टिकियो को शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें । इस प्रकार १ पुट मे ही जहरमोहरे की भस्म बन जाती है । अधिक सूक्ष्म और मृदु भस्म के लिये अधिक पुट दे सकते है ।

मात्रा:—१ रत्ती से ४ रत्ती तक । मधु के साथ ।

गुणधर्म—शीतल, पोषक, हृदय दाहनाशक, आमशोषक और पाचक है । इसके सेवन से बच्चो के हरे-पीले दस्त, अजीर्णजन्य उदर के विकार, अतिसार, मरोड आदि रोग नष्ट होते हैं।

वातनाडियो की उग्रता में इसका सेवन फलप्रद होता है । वातनाडी दौर्बल्य के कारण रहनेवाली मस्तिष्क ऊष्णता इसके सेवन से शीघ्र दूर हो जाती है। इसी प्रकार हृदय की धडकन और आमाशय की उत्कटता के कारण हृदय की रहनेवाली ऊष्णता इसके सेवन से नष्ट होती है।

यह रक्तरोधक है, अतः अति रजःस्राव और निर्बलता मे इसका सेवन प्रवाल पिष्टि, शुक्तिपिष्टि, अभ्रकभस्म आदि शीतवीर्य औषधो के साथ उपयोगी सिद्ध होता है ।

शीतवीर्य होने के कारण यह दाहजनित अनेक विकारो को शान्त करती और मस्तिष्क का पोषण करती है । इसका सेवन विविध योगो के साथ विभिन्न रोगों पर यथादोषानुपान के साथ किया जाता है । विशेषत. यह उग्रता और दाहजनित विकार प्रशामक है ।

हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता पर यह विशेष लाभ करती है ।

जसद–भस्म

यशद, जशद, जशत, जसत, रीतिहेतु, खर्परज आदि इसके अन्य नाम है ।

ग्राह्य यशद स्वरूप—काटने पर उज्वल, स्निग्ध, मृदुल, निर्मल और भारयुक्त हो तथा जो शीघ्र पिघल जाये ऐसे यशद को भस्म बनाने के काम के लिये प्रयोग में लावे ।

यशद शोधन के कारण—यदि यशद को शुद्ध न करके उसकी भस्म बनाई जाय तो उसके उपयोग से गुल्म, प्रमेह, क्षय और कुष्ठ आदि अनेक विकार उत्पन्न होते है । जो रोग शुद्ध यगद भस्म मिटाती है वही रोग अशुद्ध यगदभस्म उत्पन्न कर सकती है । अतः यशद का शोधन आवश्यक है ।

यशद शोधन प्रकार

(१) भली प्रकार का ग्राह्य यशद लेकर लोहे की कढाई मे रखकर उसे चूल्हे पर चढावे। जब वह पिघल जाय तो एक हांडी में भरकर रक्खे हुये चूने के पानी मे उसे डालदे। (याद रहे कि जशद वङ्ग की तरह जलीय द्रव्य मे डालने पर उडता है अतः हांडी पर एक छिद्रवाला ढकना रक्खे और छिद्र मे से पिघले हुये यशद को हांडी में डाले) । जब यशद बुझ जाय तो उसे फिर पूर्ववत् पिघलावे, उसी तरह चूने के पानी मे बुझावे। इस प्रकार ७ बार पिघलाकर बुझाने से यशद शुद्ध हो जाता है ।

(२) यशद को ७ बार पिघला–पिघलाकर निर्गुण्डी के मूल के स्वरस मे उपरोक्त विधानपूर्वक बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है ।

(३) जसत को पिघला–पिघलाकर २१ बार दूध मे उपरोक्त विधान द्वारा बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है ।

यशद मारण प्रकार

(१) १–१ भाग पारद और गन्धक की कज्जली करके उसे १ दिन घृतकुमारी और निम्बुके रस में घोटे । तदनन्तर ४ भाग शुद्ध जशद के पत्रो पर इस कज्जली का लेप करके उन्हे शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंक दें । इस विधि से एक ही पुट में जशद की भस्म हो जाती है ।

(२) शुद्ध यशद को कढाई में पिघलाकर समान भाग पारद के साथ खरल मे घोटकर मिलावें । जब घुटते २ पिष्टि हो जाय तो उसे निम्बु के जल से धो डालें । फिर यशद के समान गन्धक मिलाकर उसका चूर्ण बनावे और शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें । इस प्रकार भस्म किये हुये यशद को सब योगो मे प्रयोग करे ।

(३) शुद्ध यशद को कढाई में रखकर चूल्हे पर गरम करके पिघलावें और उसे नीम

की मजबूत लकडी से घोटते जांय। जब सम्पूर्ण यशद का चूर्ण हो जाय तो उसे छानकर इसका ¼ भाग हरताल लेकर उसके साथ घोटे और सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे।

(४) शुद्ध यशद को कढाई मे डालकर चूल्हे पर तीव्राग्नि द्वारा पिघलावें और उसमे धीरे २ थोडा २ अपामार्ग का चूर्ण डालते जांय और लोहे की करछी से उसे चलाते जांय। फिर इस राखको एकत्रित करके शराव से उसे ढक दे और एक प्रहर तक खूब तीव्राग्नि लगावे। जब शराव अंगार के समान लाल हो जांय तब अग्नि देना बन्द करदे। शरावों के ठण्डे होनेपर भस्म हुये यशद को उनमे से निकाल ले।

(५) कढाई मे शुद्ध यशद को रखकर नीचे से तीव्र अग्नि दे और ऊपर से लोहे की करछली से घोटें। जब यशद का चूर्ण हो जाय तो उसे वस्त्र मे से छान ले। जो बडे २ कण रह जांय उन्हे फिर उपरोक्त रीति से घोटे। इस प्रकार शीघ्र ही यशद की भस्म हो जायेगी। यह भस्म स्वच्छ, श्वेत बनेगी। नस्य और अञ्जन के प्रयोग मे इसे भलीभान्ति ला सकते है।

यशदभस्म के गुण

यशदभस्म कषैली, कडवी, शीतल और कफ़-पित्त द्वारा होनेवाले विकारो का नाश करनेवाली, आंखों के लिये अत्यन्त हितकारक तथा बल वीर्य और बुद्धिवर्द्धक है। प्रमेह, बहुमूत्र, पाण्डु, कास तथा रात्रि स्वेदनाशक और श्लेष्मकला संकोचक, व्रणशोधक, श्रमनाशक, रजोरोधक तथा कम्पवात नाशक है। यशदभस्म के सेवन से एकाङ्ग अथवा सर्वाङ्ग मे होनेवाला आमवात नष्ट होता है।

मात्राः—१/२ रत्ती से १ रत्ती तक। मधु, मलाई, दूध, हरिद्रा स्वरस या यथादोषानुपान के साथ बल-काल के अनुसार सेवन करें।

यशदभस्स के आमयिक प्रयोग

त्रिदोष में—दालचीनी इलायची और तेजपात के चूर्ण के साथ यशद का प्रयोग करे।

अग्निमान्द्य में—अरणी की जड के चूर्ण के साथ यशद अग्निमान्द्य नाशक है।

नेत्ररोगों में—पुराने गोघृत के साथ सेवन करने से यशद नेत्ररोग नाशक तथा दृष्टिप्रसादक है।

पुराने प्रतिश्याय (जुकाम, नजला) मे—अग्नि पर तैयार की हुई श्वेत यशदभस्म को घी के साथ मिलाकर १ मास तक नस्य लेने से नासिका श्लेष्मकला दौर्बल्य नष्ट होता है तथा दीर्घकाल से यदा-कदा अथवा सतत होनेवाले प्रतिश्याय अथवा पूतिनस्य का नाश होता है।

रात्रिस्वेद (क्षयज) में—प्रवालभस्म के साथ मिलाकर यशद को मधु के साथ चाटने या चटाने से क्षयजन्य रात्रिस्वेद शीघ्र नष्ट होता है।

विचर्चिका में—यशदभस्म को गोघृत मे मिलाकर विचर्चिका पर लेप करने से इस रोग का एक सप्ताह में नाश हो जाता है।

श्वास कास में—यशदभस्म को अभ्रकभस्म के साथ समान मात्रा में मिलाकर मधु के साथ चटाने से श्वास–कास शीघ्र मिट जाते है। क्षयज कास को इससे विशष लाभ होता है।

श्वास में—अदरक के रस और मधु के साथ मिलाकर यशद का सेवन करने से दारुण श्वास का भी नाश होता है।

प्रतमक श्वास में—पीपल के चूर्ण और मधु मे मिलाकर यशद को चटाने से प्रतमक श्वास नष्ट होता है।

स्वप्नमेह में—स्वर्णवङ्ग के साथ यशद को मिलाकर देने से वीर्यस्राव बंद हो जाता है।

तीव्र रजःस्राव मे—अशोक की छाल के काथ के साथ मिलाकर यशद का सेवन करने से ३–४ मास तक रुकने के बाद भयङ्करता पूर्वक, वेदना के साथ, आनेवाला रज स्राव शीघ्र बन्द हो जाता है।

श्वेत प्रदर में—यशदभस्म को लोहभस्म और राल के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से श्वेत प्रदर नष्ट होता है।

प्रलाप सहित सन्निपात में—यशदभस्म को कपूर और रससिन्दुर के साथ देना चाहिये।

कष्टप्रद श्वास में—यशदभस्म को सुहागे की खील, अभ्रकभस्म और वंशलोचन के साथ देने से कफ जल्दी छूट जाता और श्वास का कष्ट दूर होता है।

मस्तिष्क दौर्बल्य में—यशदभस्म को रससिन्दुर और मधु के साथ मिलाकर सेवन कराने से चिन्ताओं के कारण उत्पन्न हुवा मस्तिष्क दौर्बल्य दूर होता है।

योषापस्मार (हिस्टीरिया) में—यशदभस्म को स्वर्णभस्म मे मिलाकर सेवन करने से योषापस्मार नष्ट होता है।

अर्द्धावभेदक और सूर्यावर्तक रोगों पर—यशदभस्म को स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ मिलाकर चित्रक क्वाथ के साथ देने से सूर्यावर्त और अर्धावभेदक शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

यशद मल्हम

अग्निजारित ३ रत्ती यशदभस्म को १ तोले सिक्थ तैल अथवा वैसलीन मे एक स्वच्छ पत्थर पर छुरी द्वारा मिलाकर मल्हम बनावे।

यह मल्हम, व्रणरोपक, अग्निदग्ध व्रणनाशक औ विचर्चिका नाशक होती है।

—०—

ताम्रभस्म

ताम्र, शुल्व, रक्तक, म्लेच्छमुख, त्र्यम्बक, सूर्यलोह, म्लच्छ, वरिष्ठ, उडुम्बर, कनीयस, अर्क, तपनेष्ठ, अम्बक, लोहित, रविप्रिय, नैपालिक, रक्तधातु इत्यादि इसके पर्याय हैं।

ग्राह्य ताम्र स्वरूप—भारी, चोट को सहनेवाला, चिकना, स्वच्छ, जपाकुसुम की प्रभावाला, मृदु और अच्छे आकारवाला ताम्र ताम्रभस्म बनाने के लिये ग्राह्य होता है।

त्याज्य ताम्र स्वरूप—दलवाला (एक से अधिक पडवाला), पाण्डुरवर्ण, कठिन, भंगुर, मैला, घन घात को सहन करने मे अयोग्य, काला, श्वेत, रक्त अथवा मिश्रित, स्तब्ध, रूक्ष आदि रूपवाला ताम्र त्याज्य है।

ताम्र नैपाली और म्लेच्छक भेद से २ प्रकार का है। इनमें नैपाली श्रेष्ठ और औषधकर्म योग्य तथा म्लेच्छक त्याज्य है।

नैपाली ताम्र—भारी, चोट सह सकनेवाला, स्निग्ध, कोमल, भारी, रक्तवर्ण, निर्मल, और गुणयुक्त होता है। अधिकतर आजकल ताम्र के सभी वर्तन नैपाली ताम्र के बने हुये होते हैं।

म्लेच्छ ताम्र कलौस पर, कठिन, श्वेत और लाल मिश्रित तथा धोने पर काला ही रहता है।

अशुद्ध ताम्र के दोष

विष इतना विषैला नहीं होता जितना कि ताम्र। विष में केवल एक ही दोष होता है परन्तु ताम्र में आठ दोष है। भ्रम, मूर्च्छा, विदाह, उत्क्लेश, शोष, वान्ति, अरुचि और चित्त सन्ताप ये आठ दोष अशुद्ध ताम्र में सर्वदा विद्यमान रहते है। यही कारण है कि ताम्र को भलीभान्ति शोधन द्वारा निर्विष करके रोग शान्ति के लिये प्रयोग मे लाते हैं।

ताम्र शुद्धि

१ ला प्रकार—ताम्र के पतले पत्र लेकर उन्हें अग्नि पर खूब तपा तपा कर तिल या सरसों के तेल, गौ या भैस की छाछ, गोमूत्र, कांजी, कुलथी के बीजो के क्वाथ, इमली की छाल अथवा पत्तों के क्वाथ, निम्बु के रस, घीकुमार के रस, जिमीकन्द के रस, गौ या भैस के दूध, नारियल के पानी और मधु के अन्दर यथाक्रम ७-७ वार बुझाना चाहिये। इस प्रकार ताम्र के आठों दोष दूर हो जायेगे।

२ रा प्रकार—तांबे के पत्रो पर थूहर (सेंहुड) के दूध मे सेधानमक पीसकर लेप करके उन्हें अग्नि मे तपा तपाकर संभालु के रस मे अथवा थूहर या आक के दूध मे ३-३ बार बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

३ रा प्रकार—गोमूत्र मे थोडा निम्बु का रस और जवाखार मिलाकर उसमे तांबे के पत्रों को दोलायन्त्र विधि से १ प्रहर तक खूब आग पर पकाने से वह शुद्ध हो जाता है।

४ था प्रकार—तांबे के उत्तम पत्रों पर निम्बु के रस मे पिसे हुये सेंधानमक का लेप करके उन्हे अग्नि मे तपाइये। जब वे खूब लाल हो जाये तो उन पर कांजी छिडककर उन्हे ठण्डा कर दीजिये, ८ बार इस प्रकार करने से ताम्रपत्र शुद्ध हो जाते है।

उपरोक्त विधि से सेधानमक का लेप करके अग्नि पर तपा तपाकर ८ बार संभालु के रस मे बुझाने से भी ताम्रपत्र शुद्ध हो जाते है।

ताम्र मारण प्रकार

१ ला प्रकार—५ तोले पारद और ५ तोले गन्धक की कज्जली करके नीम्बु के रस में घोटकर उसे १० तोले शुद्ध ताम्र के बारीक पत्रो पर लेप कर दीजिये। अब इन्हे २ शरावों मे सम्पुट करके गजपुट की अग्नि दीजिये। इस प्रक्रिया को ३ बार करने से ताम्र की भस्म हो जायगी।

अब इस प्रकार बनी हुई भस्म को निम्बु के रस अथवा अन्य किसी अम्ल रस में घोटकर गोला बनाइये और उसे सुखाकर उसके ऊपर सूरण (जिमीकन्द) को पीसकर ३—४ अंगुल मोटा लेप कर दीजिये अथवा जिमीकन्द को भीतर से खाली करके उसके भीतर ताम्र भस्म के गोले को रखकर उसके मुंह को जिमिकन्द के ही टुकडे से बन्द कर दीजिये और उसके ऊपर ३—४ कपडमिट्टी करके उस पर १ अंगुल मोटा मिट्टी का लेप कर दीजिये और उसे सुखाकर गजपुट मे फूंक दीजिये। जब गोला स्वांगशीतल हो जाय तो उसके भीतर से ताम्रभस्म को सावधानी पूर्वक निकालकर पीसकर रखिये। यह भस्म वमन, भ्रान्ति और विरेचकादि ताम्र दोषो से मुक्त होती है।

२ रा प्रकार—एक भाग पारद और एक भाग गन्धक की कज्जली को घृतकुमार के रस मे घोटकर २ भाग शुद्ध ताम्रपत्रों पर लेप करके उन्हे हांडी मे रखिये और शराव से ढककर उस पर ३—४ कपडमिट्टी कर दीजिये तथा सुखाकर भट्टी पर चढाकर ४ प्रहर की अग्नि दीजिये। जब हांडी स्वाङ्गशीतल हो जाय तो ताम्रभस्म को निकालकर पीसकर रखिये।

इस भस्म को ३—३ रत्ती मात्रानुसार सेवन कराने से खांसी, क्षय, पाण्डु, अग्निमान्द्य, अरुचि, गुल्म, मूर्छा, तिल्ली, जिगर, पक्तिमूल और धातुगत ज्वर नष्ट होते है।

३ रा प्रकार—परिशोधित ताम्र पत्रों को तुल्यांश शोधित हिंगुल के साथ बिजौरा निम्बु के रस मे खरल करे। पिष्टी तैयार होनेपर उसे धूप मे सुखाकर फिर बारीक चूर्ण बनाले। अब इस चूर्ण को उर्ध्व पातन यन्त्र मे गरम करके इसमे से शुद्ध पारद निकाल ले। इस प्रकार ३ बार उपरोक्त क्रिया को करे। इस प्रकार प्राप्त किये पारद मे ताम्र के चूर्ण के समान गन्धक मिलाकर कज्जली बनावे और २ या ३ पुट दे। इस प्रकार अमृतिकरणोचित ताम्रभस्म तैयार हो जाती है।

४ था प्रकार—परिशोधित ताम्र पत्रों के सूक्ष्म टुकड़े बनाकर, उनके समान हिंगुलोत्थ पारद लेकर, उन्हे ताम्र के आधे वजन के निम्बु के साथ खरल करें। ३ प्रहर खरल करने के अनन्तर उसे धो डालें जिससे कि निम्बु की खटाई उसमें न रह जाय। फिर उसे निम्बु के रस मे डालकर १२ घण्टे खरल में परिभावित होने दे। तदनन्तर उसे फिर ३ घण्टे तक घोटे। फिर ताम्बे के समान गन्धक मिलाकर कज्जली बनाले। इस कज्जली को कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी मे इस प्रकार भरे कि शीशी का चतुर्थांश भाग खाली रहे और केवल १ चतुर्थांश में ही कज्जली आ जाय। अब इसे बालुकायन्त्र मे २४ घण्टे पकावे। जब शीशी स्वांगशीतल हो जाय तो उसे विधिपूर्वक तोडकर उसके तल भाग में एकत्रित हुई ताम्र की जितनी ताम्रभस्म ले ले और शीशी के मुख मे लगे हुये रससिन्दुर को अलग निकाल ले इस प्रकार दो औषधें एक ही विधान द्वारा तैयार की जा सकती है।

५ वां प्रकार—संशोधित ताम्र पत्रों से द्विगुण गन्धक लेकर खरल करें। सूक्ष्म चूर्ण तैयार हो जाय तब उसे शराव सम्पुट मे बन्द करे और सम्पुट पर कपडमिट्टी चढाकर, सुखाकर, बालुकायन्त्र में रात दिन पकावें। जब सम्पुट स्वाङ्गशीतल हो आय तो उसमें से भस्म निकालकर फिर उसके समान गन्धक मिलाकर उपरोक्त क्रिया करे। इस प्रकार ३ बार उपरोक्त क्रिया करने से ताम्र की भस्म तैयार हो जायगी।

६ टा प्रकार—मन्दार के दूध मे ३ भावना दी हुई शुद्ध हरताल को शुद्ध ताम्र पत्रों के नीचे ऊपर २ शरावों के बनाए सम्पुट मे रखकर बालूरेत, चिकनी मिट्टी और नमक तीनों से बनाई हुई गारा से शरावों के मुख पर मुद्रा करके, सम्पुट पर ७ कपडमिट्टी करदे। जब सम्पुट सूख जाय तो उसे चूल्हे पर चढाकर तीन प्रहर मन्दाग्नि दे। अनन्तर उसे वराह पुट मे फूंक दे। स्वाङ्गशीतल हो जाने पर निकाल ले। इस प्रकार ताम्र की भस्म हो जायगी।

ताम्रभस्म बनाने की बहुत विधिया है संक्षेप मे यहां कुछ ही दी है।

सोमनाथी ताम्रभस्म निर्माण विधि

पारद और गन्धक २—२ भाग, हरताल १ भाग और मनसिल १/२ भाग लेकर सबकी अत्यन्त महीन कज्जली बनाले। अब इस कज्जली को २ भाग शुद्ध ताम्रपत्रों के ऊपर नीचे गर्भयन्त्र मे (एक चार अंगुल लम्बी और ३ अंगुल घेरेवाली मिट्टी की मूषा बनवाये। इसका मुख गोल होना चाहिये। जब वह सूख जाय तो २० भाग अधजला लोहा अर्थात् लोहे की कच्ची भस्म और १ भाग गूगल को मिलाकर खूब कूटकर उपरोक्त मूषा पर इसके ७–८ लेप करदे। हर लेप के बादे मूषा को सूखा लेना चाहिये। अन्त में १ भाग चिकनी

मिट्टी और २ भाग सेंधानमक के बारीक चूर्ण को पानी में घोटकर उसका लेप करदें। यह गर्भयन्त्र तैयार हो गया। इसके ढकने पर भी उसी प्रकार लेप करके उसे मजबूत बनाले) बिछा दें और यन्त्र के मुख को बन्द करके एक प्रहर तक अग्नि पर पकावें। जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय तो उसे उतारकर, ताम्रभस्म को निकालकर, पीसकर, प्रयोग में लावे।

इस भस्म को यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से परिणामशूल, उदररोग, पाण्डु, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, क्षय, आग्नमान्द्य, प्रमेह और अर्श रोग नष्ट होता है। इसके सेवन से दुष्ट संग्रहणी भी अवश्य मिट जाती है।

ताम्रभस्म अमृतीकरण

मृत ताम्र को अमृती करण किये बिना उसमे आठो दोष विद्यमान रहते है और सेवन की जाने पर भयङ्कर विकार उत्पन्न कर देती है। अत इसका अमृतीकरण अवश्य करना चाहिये।

अमृतपञ्चक (सोंठ, गिलोय, सफेद मूसली, शतावर और गोखरू) के बनाये हुये क्वाथ में ताम्रभस्म को घोटकर टिकिया बनाले। उनके खूब सूख जाने पर उन्हे सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इसी प्रकार ३ बार संस्कार करने को अमृतीकरण कहते है। इस क्रिया से ताम्रभस्म वान्ति, भ्रान्ति, चितसन्ताप, शोष, अरुचि, मूर्च्छा, उत्क्लेश और विदाह नामक आठ विकार रहित होकर श्रेष्ठ क्रिया करती है।

ताम्र विकार शान्ति

यदि अज्ञानवश ताम्र अपक्व अथवा अर्धपक्व अथवा अमृतीकरण न की हुई खाने या खिलाने मे आजाय तो उससे जो दोष होगे वे अवश्य भयङ्कर होंगे यथा कुष्ठ, जडता इत्यादि। इनसे अर्थात् ताम्र के दोषों से छुटकारा पाने के लिये तीन दिन तक मिश्री के साथ श्यामक धान्य (संवाई के चावल) का पतला भात बनाकर खावे या खिलावे और जब प्यास लगे तो धनिये के पानी में मिश्री मिलाकर पियें या पिलावे। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी खान—पान न तो सेवन करे और न करावे। ऐसा करने से ताम्रजन्य सब विकार शान्त हो जायेंगे। चन्द्रोदय को सेवन करने से भी दो तीन दिन मे सब विकार शान्त हो जायेगे। यह मैने अपने ही शरीर पर अजमा लिया है और दूषित ताम्रभस्म की शुद्धि बीस बार गोमूत्र में बुझाने से जो होती है उसे मै अन्यत्र लिख चुका हूं। (र. सा.)

ताम्रभस्म के गुण

ताम्र, तिक्त, तुवर, मधुर और पाक मे ऊष्णवीर्य है। अम्ल, स्निग्ध, विषहर, सारक और लेखन है। पित्तज, कफज और कफ—पित्तज विकारो को नाश करती है।

ताम्रभस्म, अग्निवर्द्धन, दीपन, कृमि, कुष्ठ, श्वास, कास, क्षय, पाण्डु, अर्श, ग्रहणीरोग, नेत्ररोग, स्थौल्य आदि अनेक रोग नाशक है।

यह ज्वर नाशक, व्रणरोपक, रुचिकर, विषनाशक, उदररोग नाशक और आयुवर्द्धक है।

इसके सेवन से उदरशूल, अम्लपित्त, यकृत्प्लीहा विकार, अपस्मार, विषूचिका, आक्षेप, खल्ली, अग्निमान्द्य, परिणामशूल, अन्त्रशोष आदि रोगों का नाश होता है।

शाखागत, कोष्ठगत, ऊर्ध्वजत्रुगत और मलानुबन्धि कफ-पित्त विकारों को नाश करने में ताम्रभस्म उत्तम क्रिया करती है।

ताम्रभस्म की क्रिया शरीर की श्लेष्मकलाओं से प्रारम्भ होती है। मुख और उदर की श्लेष्मकलाओं मे यह शोषण गुण द्वारा क्रिया की वृद्धि करती हुई उन उन स्थानों की श्लेष्म-कलाओं में से स्रवित, पाचक और पोषक रसों का उत्पादन करती है, जिससे पिण्ड, अपक्व और अशुद्ध रूप मे पडे हुये खाद्य के कण स्थान से भ्रष्ट हो जाते हैं और स्थान पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

आमाशय की श्लेष्मकलाओं के दोष को दूर करके उनके शैथिल्य का नाश करती है और स्रावों की उत्पत्ति मे सहायभूत होती है। ऊष्ण गुण से विकृत श्लेष्म का शोषण करती है और पाचक क्रिया को बढाती है। इसके सेवन से आमाशय-शूल, खाद्य द्वारा होनेवाले आमाशय के विकार और क्षोभ आदि सब नष्ट होते हैं। आमाशय वृद्धि मे इसका प्रयोग लाभदायी सिद्ध होता है।

ग्रहणी मार्ग मे इसकी क्रिया इससे भी अधिक लाभकारी होती है। यह दीपक गुण से अग्नि की वृद्धि करती है। यकृत् दोषों को दूर करके पित्ताशय के स्रावो को निर्विकार रूप से ग्रहणी मे प्रवेश कराती है और श्लेष्मकला-शोथ, व्रण, दाह आदि का नाश करके ग्रहणी को निर्विकार करती है।

यह सारक और लेखन गुण से अन्त्र के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। दीर्घकाल के अन्त्र शैथिल्य के कारण वहां की श्लेष्मकलाये नीरस हो जाती है अथवा तो अन्त्रो की दीवारें विकृत रुप से इतस्ततः फैल जाती या संकुचित हो जाती है। इसके सेवन से स्रावों की उत्पत्ति होती है, आम का पाचन होता है और दूषित मल स्थान भ्रष्ट हो जाता है, जिससे अन्त्र-दीवारो को प्रकृतावस्था प्राप्त करते वहुत समय नहीं लगता। अन्त्र के दोषों के दूर होने के साथ साथ स्वाभाविक टट्टी साफ आती है और दोष प्रतिलोम होकर शरीर को निर्विकार करने मे सहायभूत होते है।

आहार-धरा-शिरा (संयुक्त शिरा) के दोषों मे इसकी क्रिया सबसे श्रेष्ठ होती है। यकृत् और प्लीहा के कारण संयुक्त शिरा मे भी विकृति आ जाती है। ताम्रभस्म के सेवन से यकृत् प्लीहा की ग्रन्थियों के दोष (वृद्धि या संकोच) दूर होते हैं, इसका विशेष कारण तो ताम्रभस्म

की यकृत् और प्लीहा के कोषो मे क्रिया की उत्पत्ति है। बहुत समय तक विविध वस्तुओ के संयोग से स्वाभाविक यकृत्–प्लीहा कोषों मे शिथिलता या क्रिया विषमता हो जाती है। ताम्रभस्म कोषों के विकारों को अपने अम्लीय, सारक और लेखन गुणों से दूर करती है और उनको रस ग्रहण करने योग्य बनाती है, जिससे रञ्जक पित्त की उत्पत्ति के साथ २ रक्त की वृद्धि होती है और रक्तवृद्धि से कोषो को पोषण मिलता है। पुष्ट यकृत्–प्लीहा–कोष संयुक्त शिरा के रस को सरलतया ग्रहण कर लेते है और इस प्रकार पाचन की वृद्धि होती है, शरीर मे आलस्य नहीं रहता, ज्वर और अन्त्रजन्य विष का नाश होता है।

ताम्रभस्म रक्त की वृद्धि करके ऊष्ण गुण द्वारा हृदय की श्लेष्मकलाओं मे उत्पन्न हुये शैथिल्य का नाश करती है और कफ तथा स्थौल्यजन्य दाह, शूल, निष्क्रियता आदि विकारों को नाश करती है। हृदय की मांस पेशियों मे वात और श्लेष्म के विकार के कारण जडता उत्पन्न हो जाती है, जिससे शरीर गौरव, आलस्य, हृन्मांसशूल, श्वास और अरुचि आदि रोग उत्पन्न होते है। ताम्रभस्म के सेवन से श्लेष्म का नाश, और श्लेष्मकलाओं की सक्रियता से हृदय के उपरोक्त विकार शीघ्र शान्त हो जाते है। हृद्रोगों मे ताम्रभस्म बहुत ही सुन्दर काम करती है। इसका मुख्य कारण यही है कि यह यकृत् कोषों, हृन्मांस पेशियो और श्लेष्मावर्णों के विकारो को दूर करके रक्त और क्रिया के अभाव को दूर करती है।

मलानुबन्धी रोग यथा-गुल्म, शूल, दाह, ज्वर, यकृत्–प्लीहा वृद्धि तथा शैथिल्य, अन्त्रवृद्धि और अण्डवृद्धि आदि विकारों में ताम्रभस्म उदर श्लेष्मकलाओ के विकारो को दूर करनेवाली होने के कारण तथा उदर के पाचक रसो की उत्पादिका होने से शीघ्र ही लाभकारी सिद्ध होती है।

ताम्रभस्म अनेक रोगों पर काम करती है, आमयिक प्रयोगो में इसका वर्णन करुंगा। चक्षु के लिये यह बहुत ही हितकारी है, परन्तु गन्धक द्वारा बनाई हुई भस्म ही नेत्ररोगों मे काम मे लानी चाहिये। ताम्रभस्म का प्रयोग करने से पूर्व यह निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये कि उसका अमृतीकरण हुवा है या नहीं अन्यथा ताम्रभस्म विष से भी अधिक हानिकारक है।

ताम्रभस्म की मात्रा

१/८ रत्ती से १/४ रत्ती तक। बल–काल का ध्यान रख के यथादोषानुपान के साथ सेवन करावें।

ताम्रभस्म के आमयिक प्रयोग

तांबे के बारीक पत्रों को अग्नि में तपा तपाकर बीस बार घीकुमार के रस में बुझावे। (और इसी के रस मे २–३ प्रहर घोटकर भस्म करले) फिर इस ताम्र से २ गुनी

कृष्णाभ्रक भस्म और आधा २ भाग पारदभस्म (रससिन्दुर) पीपल, मरिच और विडङ्ग का महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल करे। इसे २ मासे की मात्रा (व्यवहारिक मात्रा २ से ४ रत्ती) अनुसार सेवन करने से शूल, अम्लपित्त, शोथ संग्रहणी और यक्ष्मादि रोग नष्ट होते है। इस पर किसी विशेष पथ्य की आवश्यकता नहीं है। (रसे. चि. म.)

पारद, गन्धक और ताम्रभस्म को समान भाग लेकर निम्बु के साथ खरल करे और इसे बालुकायन्त्र द्वारा पकाकर ताम्रभस्म में से १/२ रत्ती लेकर उसमे त्रिकटु और कालीमिर्च मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से हस्तकम्पवात, कम्पवात और पक्षाघात रोग का नाश होता है।

आधी रत्ती ताम्रभस्म को २ रत्ती खस के चूर्ण और २ रत्ती नागकेसर के साथ मिलाकर त्रिफला जल के साथ सेवन करने से मूर्च्छा रोग नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को घृत और जवासे के क्वाथ के साथ सेवन करने से भ्रमरोग का नाश होता है।

करञ्जबीज के चूर्ण के साथ ताम्रभस्म को मिलाकर सेवन कराने से पित्तज अथवा कफजशूल नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को त्रिकटु चूर्ण और शंखभस्म के साथ सेवन कराने से १ मास मे प्लीहा विकार शान्त हो जाता है।

सूतिकारोग मे ताम्रभस्म को कौडीभस्म और जीरा के साथ मिलाकर देने से विकार शान्ति हो जाती है।

ताम्रभस्म को पीपल के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से अग्निवृद्धि होती है।

ताम्रभस्म को आंवले के चूर्ण के साथ सेवन करने से अम्लपित्त का नाश होता है।

ताम्रभस्म को भारङ्गी और बहेडा के चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से श्वास-कास का नाश होता है।

ताम्रभस्म को नागकेसर और हरीतकि चूर्ण के साथ मिलाकर १ मास पर्यन्त मधु के साथ चटाने से अर्श का नाश होता है।

ताम्रभस्म को पीपल की वल्कल की भस्म के साथ सेवन करने से वमनरोग का नाश होता है।

बिजौरे निम्बु के रस के साथ स्वर्णमाक्षिकभस्म में मिलाकर ताम्रभस्म का सेवन करने से हिक्कारोग नष्ट होता है।

गन्धक के योग से तैयार की हुई ताम्रभस्म को आंजने से पटल दोष का नाश होता है।

ताम्रभस्म को पीपल के चूर्ण औ हरिद्रा चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से यकृत् विकार शान्त होता है।

ताम्रभस्म को मल्लसिन्दुर के साथ मिलाकर घोटकर अदरक के रस के साथ सेवन करने से सन्निपात रोग नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को अदरक के रस मे मिलाकर पान में रखकर खाने से गुल्मरोग नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को रससिन्दुर और कटेली के चूर्ण मे मिलाकर खाने से ध्वनि और आक्षेप के साथ होनेवाला वातप्रधान श्वास नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को वटजटा की भस्म और मयूरपुच्छावलेह के साथ सेवन करने से वमन रोग का नाश होता है।

ताम्रभस्म को त्रिकटु, चित्रकमूल, पीपर, जटामांसी, भारङ्गी और पिप्पल्यादि गण के क्वाथ के साथ सेवन करने से तीव्र हृद्शूल और आक्षेप युक्त मक्कलशूल नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को स्वर्णभस्म और जटामांसी के चूर्ण के साथ सेवन करने से आक्षेप रोग का नाश होता है।

ताम्रभस्म को रससिन्दुर, कस्तूरी और कपूर के साथ मिलाकर सेवन करने से भयङ्कर विषूचिका (हैजा) नष्ट हो जाती है।

ताम्रभस्म को कज्जली और रससिन्दुर के साथ देने से अपस्मार रोग का नाश होता है।

गन्धक जारित ताम्रभस्म को लौहभस्म और स्वर्णभस्म के साथ सेवन कराने से श्वास रोग नष्ट हो जाता है।

ताम्रभस्म को गिलोय, कुटकी, पित्तपापडा, चिरायता और नागरमोथा के कषाय के साथ देने से पुनरावर्तक ज्वर नष्ट होता है।

गन्धक जारित ताम्रभस्म को पुनर्नवा, हरिद्रा और मेषशृङ्गी के कषाय मे मिलाकर व्रणरोपण करने से व्रण शुद्धि होती है।

गन्धक जारित ताम्रभस्म १ तोला लेकर रक्त चन्दन की ८ तोले पिष्टी में मिलाकर भांगरे के रस मे परिभावित करके मधु के साथ अञ्जन करने से तिमिर रोग नष्ट होता है।

ताम्रभस्म को स्वर्णभस्म के साथ मिलाकर चित्रक क्वाथ की भावना देकर सेवन कराने से सूर्यावर्तादि शिरोरोग नष्ट होते है।

एक कर्ष पारद और २ कर्ष गन्धक की कज्जली करके उसे जम्बीरी निम्बु के रस मे घोटकर पिष्टी तैयार होनेपर उसे ५ तोले शुद्ध कंटकवेधी ताम्रपत्रों पर लपेट दे और पत्थर के खरल में रखकर तेजधूप मे रख दे। एक प्रहर पश्चात् द्रव तैयार हो जायगा। इस द्रव मे १ रत्ती से १ मासे तक यथोचित मात्रानुसार घी और मधु के साथ सेवन करने से भयङ्कर अम्लपित्त, खांसी, क्षय, शोष, अर्श, संग्रहणी, कामला, पाण्डु, ११ प्रकार के कुष्ट, रक्तपित्त, खालित्य,

शूल, उदररोग, वातव्याधि, प्रतिश्याय, विद्रधि और विषमज्वर का नाश होता है। इस औषध को खाने के पश्चात् तक्र अथवा काञ्जी पीनी चाहिये और औषध पचजाने के पश्चात् सायंकाल को पुराने शाली चावलों का भात खाना चाहिये।

ताम्रभस्म, कृष्णमरिच, लौंग, केशर, पीपल और भारङ्गी चूर्ण समान भाग मिलाकर पान मे रखकर खाने से कफज ज्वर नष्ट होता है।

अदरक के रस के साथ ताम्रभस्म को नित्य प्रातःकाल सेवन करने से समस्त प्रकार के उदररोग और गुल्म नष्ट हो जाते है। घी मे भुना हुवा हींग, सोंठ, मिर्च, पीपलमूल, सञ्चल, इमलीक्षार और ताम्रभस्म समान भाग मिलाकर ऊष्ण जल के साथ सेवन करने से उदरशूल नष्ट होता है।

ताम्र के अनेक योग उदररोग, श्वासं, कास, नेत्ररोग, कण्ठरोग, हृदयरोग, भगंदर, अग्निमान्द्य, अर्धाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, कम्पवात, पक्षाघात, सूर्यावर्त, शूल, गुल्म आदि अनेकानेक रोगो के लिए विविध ग्रन्थो में वर्णित है, उन सबका यहां वर्णन करना कठिन है, अतः संक्षेप मे कुछ योग वैद्यो के लाभार्थ दिए है।

त्रिवङ्गभस्म

द्रव्य तथा निर्माण प्रकार

१ ला प्रकार—शोधित यशद, शुद्ध वङ्ग और संस्कारित नाग तीनों समान भाग लेकर एक कढाई मे रखकर चूल्हे पर चढावे और तीव्राग्नि द्वारा पिघलावे। और जब तीनों पिघल कर एक हो जांय तब इनके इस पिघले हुये मिश्रण को एक लौह खरल मे जिसमे इन तीनों के वजन के समान वजन का हिंगुलोत्थ पारद रखा हुवा हो उडेल दे और भलीभान्ति खरल करे। फिर इस मिश्रणवाले खरल में निम्बु का रस डालकर खूब मर्दन करे और फिर मिश्रण को पानी से धो डाले। इस स्वच्छ पिष्टि मे पारद के समान वजन की तवकिया हरताल का सूक्ष्म कपडछन चूर्ण और पारद का १५ वां भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर इसकी कज्जली बनावे। कज्जली को आतसी शीशी मे भरकर और शीश पर सात कपडमिट्टी चढाकर इसे वालुकायन्त्र मे मृदु, मध्य और तीक्ष्ण अग्नि पर २ दिन तक पकावे। जब शीशी के मुख से धुवां निकलना बन्द हो जाय तब यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होनेपर यथाविधि शीशी को तोडकर उसके मुख भाग पर लगे हुये "तालसिन्दुर" और तली मे लगी हुई "त्रिवङ्गभस्म" को निकाल ले। अब या तो तालसिन्दुर और त्रिवङ्ग भस्म दोनों को घोटकर रखले और प्रयोग मे लावे अथवा तो अकेली त्रिवङ्गभस्म का ही प्रयोग करे।

२ रा प्रकार—परिशोधित नाग, वङ्ग और यशद समान भाग लेकर उन्हे एक कढाई में रखकर जलते हुये चूल्हे पर चढावें जब ये पिघलने लगे तब इन्हें घृतकुमारी के मूल दण्ड से घोटना प्रारम्भ करदे और जब तक पिघलना चूर्ण स्वरूप तक पहुंचे इसी प्रकार घोटते जांय। जब इनका मिश्रित चूर्ण हो जाय तब हरिद्रा का चूर्ण इसमे डालते जांय और उपरोक्त दण्डे से चलाते जांय। जब तक तीनो के प्रमाण से ४ गुणी हरिद्रा उनके साथ भस्मित न हो जाय तब तक इस क्रिया को करते रहें। तदनन्तर इस भस्मित चूर्ण को १ तवे से इस प्रकार ढकदें कि उसमें से वायु अन्दर प्रवेश न करे। नीचे से तीव्र अग्नि दें। एक दिन इस प्रकार तीव्राग्नि देकर स्वांगशीतल हो जाने पर भस्म को छानकर उसे हरिद्रा के क्वाथ के साथ घोटे, टिकिया बनाकर सुखादे और टिकियों को सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार हरिद्रा की १४ पुट दे, फिर इसी प्रकार १४ पुट घी कुमार के रस मे घोट घोट कर दें। इस प्रकार तैयार की हुई त्रिवङ्गभस्म मृदु, सुन्दर और पीले रङ्ग की बनेगी।

त्रिवङ्गभस्म के गुण

वङ्ग, यशद और नाग के गुणों के मिश्रणवाली यह भस्म लेखन, सर, रूक्ष, ऊष्ण, अग्निवर्द्धक तथा मेद, कफ, कृमि, पाण्डु, श्वास, अर्श, प्रदर, व्रण, शोष आदि अनेक रोग नाशक है।

इसकी क्रिया रूक्ष और ऊष्ण गुण द्वारा शोषक और कफवात नाशक है। वीर्यग्रन्थियों के शैथिल्य का नाश करके वीर्य का उत्पादन करती है। शिथिल और क्रिया विहीन, वात-नाडियों, कलाओं, अन्त्रपेशियों और कण्डराओं के कफजन्य शोथ, स्थौल्य और जडता को दूर करके, वहां रक्त का संचार करके, शोषित अङ्गों को पुष्ट और बलवान बनाती है।

व्रणरोपण और शोधन की शक्ति होने से यह प्रदाह नाशक, पूयनाशक, कफपूयजन्य—शोथ नाशक तथा श्लेष्मकलाओं की विकृति को दूर करनेवाली है। इसके सेवन से श्लेष्म-कलाओं मे शोथ अथवा क्षोभ के कारण उत्पन्न हुये व्रण नष्ट हो जाते है।

प्रमेह का आधिक्य कफ की विद्यमानता से होता है। यह कफनाशक, श्लेष्मकला स्राव शोधक और नाशक होने से कफ दोष का संशमन करती है और वात कफजन्य प्रमेहो मे उत्तम सिद्ध होती है।

प्रदर मे भी इसकी क्रिया प्रमेह के समान ही वात—कफनाशक, श्लेष्मकला संकोचक, और पोषक होती है। इसके सेवन से वात—कफ द्वारा उत्पन्न हुई मन्दाग्नि नष्ट होती है और कलाओं पर विकारभार डालनेवाले दोष दूष्यों का नाश होता है।

दीर्घकाल तक प्रदर के कारण श्लेष्मकला—शिथिलता रहने से गर्भाशय के अन्दर की

कलायें इस प्रकार सुकड़कर एक दूसरे से सट जाती है कि उनकी क्रिया सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है और इसी प्रकार डिम्बग्रंथियों के मुख या प्रणालिकाओं का अवरोध हो जाता है अथवा तो डिम्बग्रन्थियां क्रिया विहीन हो जाती है। त्रिवङ्ग के सेवन से गर्भाशय को आच्छादित करनेवाला कलामण्डल स्वच्छ हो जाता है। कलाओं के यथायोग्य संकोच से गर्भाशय की आन्तरिक दीवार सशक्त और क्रियाशील हो जाती है, इसी प्रकार डिम्बग्रन्थी की अनिच्छनीय दशा मे परिवर्तन होकर डिम्बग्रन्थी सशक्त और सक्रिय हो जाती है। ऐसे कारणों से उत्पन्न हुवा वंध्यत्व भी इस प्रकार इसके सेवन से मिट जाता है।

नपुंसकता को दूर करने में यह औषध उपरोक्त विधान से ही काम करती है अर्थात वीर्यप्रणाली और वीर्यग्रन्थियों के विकारों को दूर करके उनको विकृति विहीन और स्वस्थ बनाती है। इन्द्री की जडता का नाश करती है और पोषण द्वारा इन्द्री की नाडियों और मांस पेशियों मे क्रियाशीलता उत्पन्न करती है।

कफनाशक गुणो की विद्यमानता से यह औषध श्लेष्मकला शैथिल्य और अनिच्छनीय स्रावों को नाश करके शरीर का बडा उपकार करती है। कण्ठ, श्वासनलिका, अन्नप्रणाली, आमाशय, अन्त्र और फुफ्फुस आदि स्थान जहां की श्लेष्मकलाये वायु और कफ कारक अर्थात् शीत गुण प्रधान द्रव्यों के संयोग में आते ही अनेक विकारो के क्षेत्र बन जाती है, वहां इसका सेवन बहुत ही लाभदायक होता है। विविध अनुपानों के साथ देने से इस औषध से अनेक रोग नष्ट किये जा सकते हैं।

मात्राः—१ से २ रत्ती तक। यथादोषानुपान अथवा मधु के साथ।

त्रिवङ्ग के आमयिक प्रयोग

त्रिवङ्ग को अडूसा के रस के साथ सेवन करने से खांसी, श्वास, क्षय, रक्तपित्त आदि रोगों का नाश होता है।

त्रिवङ्ग को हरिद्रा के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से वीर्य की वृद्धि होती है और प्रमेह का नाश होता है।

त्रिवङ्ग को खदिर क्वाथ के साथ देने से कुष्ट का नाश होता है।

मन्दाग्नि में त्रिवङ्ग को त्रिकटु अथवा यवक्षारादि चूर्ण के साथ मिलाकर जल के साथ दें।

त्रिवङ्ग के साथ मण्डूरभस्म मिलाकर देने से कफजन्य पाण्डु का शीघ्र नाश होता है।

त्रिवङ्ग को बिल्व चूर्ण के साथ मिलाकर खिलाने से ग्रहणी का नाश होता है।

त्रिवङ्गभस्म के साथ, वंशलोचन, चांदीभस्म और गिलोय सत्व मिलाकर सेवन कराने से वीर्यक्षीणता के कारण उत्पन्न हुवा मस्तिष्क दौर्बल्य, भ्रम तथा वातनाडी शैथिल्य नष्ट होता है।

नपुंसकत्व में इसको, अकेले ही, दूध, घी अथवा मक्खन के साथ देने से यह विशेष फल देती है।

स्थौल्य इसके सेवन से अन्य औषधियो की अपेक्षा शीघ्र दूर होता है। स्थौल्य मे इसका सेवन प्रातः सायं मधु मिलाकर कराना चाहिये।

तुत्थभस्म

तुत्थ, तुत्थक, तुत्थाञ्जन, मयूरक, ताम्रगर्भ, शिखिग्रीव आदि इसके नाम है।

ग्राह्य तुत्थ स्वरूप—मोर के कण्ठ जैसी आभावाला, स्निग्ध और उज्जवल तुत्थ ही औषध प्रयोग के लिये ग्राह्य माना जाता है।

तुत्थ शोधन

१ ला प्रकार—१० तोले मोरथोथे का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर ५ तोले ऊष्ण जल में डाल दे और घोल बन जाने पर उसे सारक पत्र अथवा वस्त्र से छान ले। छाने हुये जल को, जब तक तुत्थ के कण तली पर न बैठ जांय, स्थिर रहने दे। जब तली पर तुत्थ जम जाय तो धीरे से निथरे हुये जल को निकालकर शुद्ध तुत्थ को ग्रहण करले।

२ रा प्रकार—२ भाग नीलाथोथा और १ भाग गन्धक लेकर एकत्र घोटकर उसे अग्नि पर १॥ से २ घण्टे पकाने से भी तूतिया शुद्ध हो जाता है।

३ रा प्रकार—१० भाग तूतिया और १ भाग टङ्कण मिलाकर दही मे घोटकर सम्पुट मे बन्द करके १ लघुपुट दे और १ लघुपुट मधु से घोटकर दे। इस प्रकार नीलाथोथा शुद्ध हो जायगा। इसका सर्वत्र प्रयोग कर सकते है।

परिशोधित तुत्थ के गुण

तुत्थ, कटु, कषाय और ऊष्ण है। इसके सेवन से श्वित्र और नेत्ररोगों का नाश होता है। यह वामक है अतः विषो को उल्टी करके निकालने के लिये इसका प्रयोग उत्तम है।

तुत्थ, कटु, तिक्त, चक्षुष्य, रसायन, त्वक्‌दोष नाशक, रुचिकारक, अग्निवर्द्धक और पुष्टिकारक है। तुत्थ ताम्र के जैसी धातु है अतः इसके समान कुछ गुण तो इसमें अवश्य होने चाहिये।

शुद्ध तुत्थ, निर्मल, क्षारीय, लघु, भेदक, कृमि, कण्डु, कुष्ट और कफ-पित्त नाशक होता है।

शुद्ध तुत्थ के घोल से उपदंश और फिरङ्ग के व्रणों को धोते है तथा इन रोगों मे यह अन्तर्वाह्य सब प्रकार के प्रयोग मे लाया जाता है।

तुत्थ-सत्व पातन विधान

शुद्ध तुत्थ और टङ्कण समान भाग लेकर एकत्र मर्दन करें और उसे मूषा में रखकर धमन द्वारा तीव्राग्नि पर धमावें। इस क्रिया से तुत्थ का तीव्र (इन्द्रगोप) के रंग का सुन्दर सत्व निकल आयेगा। यह सत्व फिरङ्ग रोग की सभी अवस्थाओं में लाभप्रद सिद्ध होता है।

तुत्थ-द्रव निर्माण विधान

एक शीशी मे ५ तोला परिस्रुत सलिल ले और उसमे २ से ४ रत्ती (जैसी शक्ति का घोल बनाना हो) शुद्ध नीलेथोथे का सूक्ष्म चूर्ण मिलावे। शीशी को भलीभान्ति हिलावें। यह तुत्थ का यथेच्छ द्रव तैयार हो गया।

तुत्थ-द्रव के आमयिक गुण

दुष्ट व्रण, जिनमें मांस क्लेद हो या जिनमें मांस उबल आता हो अथवा मांस के सडाव के कारण या पूय में मास कणों के रुके रहने से मांस कणो मे शोथ या क्षोभ के कारण व्रण शुद्ध होकर भर न पाता हो ऐसे व्रणों को तुत्थ द्रव से धोने से वे निर्विकार हो जाते है। दुष्ट मांस या मांस कण कटकर निकल जाते है और व्रण शीघ्र अच्छा हो जाता है।

उपदंश और फिरङ्ग के व्रणो को शीघ्र निर्विष और निर्विकार करने के लिये, तुत्थ-द्रव का व्रणों को धोने के लिये प्रयोग किया जाता है और यह सर्वदा लाभप्रद होता है। इसी प्रकार इन्द्री के अन्दर पूयमेह—व्रण अथवा क्षत को शुद्ध करने के लिये इस द्रव की पिचकारी देकर व्रण को धोना चाहिये।

नेत्राभिष्यन्द मे पटलों के अन्तर्भाग में मांस कन्द होते है उनको साफ करने के लिये तुत्थ-द्रव का प्रयोग बहुत ही उपयोगी होता है। इसी प्रकार नेत्रवर्त्म और पटलकला शोथ मे धोने के लिये तुत्थ-द्रव बहुत ही उपयुक्त है।

पुरातन प्रदर के कारण गर्भाशय की श्लेष्मकलाओ मे उत्पन्न हुए व्रण या शोथ को दूर करने के लिए तुत्थ-द्रव की पिचकारी अच्छा काम करती है। स्त्रियो मे फिरङ्ग आदि के व्रण बहुत काल तक अदृश्य रहकर रोग का संक्रमण सभी भागों मे कर देते है। इस परिस्थिति में नित्य तुत्थ-द्रव की वस्ति का प्रयोग बहुत हितकर होता है।

शुद्ध तुत्थ को अनेक प्रयोगो में ला सकते है। विभिन्न योगो के साथ नेत्र के पोथकी आदि रोगो मे प्रयोग करने के लिए इसकी वर्ती बना सकते है।

तुत्थ सत्व को त्रिफला जल में घोटकर कुष्ठ, नाडीव्रण, भगंदर आदि पर लेप कर सकते है।

शुद्ध तुत्थ या तुत्थ—सत्व को सिक्थ—तैल या वैसलीन में मिलाकर मल्हम बनाकर (२० रत्ती तुत्थ १० तोले वैसलीन) फिरङ्ग व्रण, पामा आदि पर लगाने के प्रयोग मे लावे। इसका प्रयोग दुष्ट व्रणो पर भी अच्छा काम करता है।

शुद्ध तुत्थ को नीम के रस में पीसकर १–१ रत्ती की गोली बनाकर फिरङ्ग रोग में देने से अच्छा लाभ देती है। परन्तु इसका प्रयोग करते पथ्य विशेष पालन करना चाहिए। शाली चावल और गेहूं के पदार्थ खिलाने चाहिए।

नागभस्म

शीषक, सीसक, सीसा, कुवङ्ग, कुरङ्ग, सिन्दुरकारण आदि इसके अन्य नाम हैं।

ग्राह्य सीसे का स्वरुप

भारी, मृदु, स्निग्ध, काटने पर मलिनोज्वल, बाहर से श्याम, शीघ्र पिघलनेवाला सीसा औषध कार्य मे ग्राह्य है।

अग्राह्य सीसा का स्वरूप

बाहर से शुष्क, भारहीन, रूक्ष, काटने पर निष्प्रभ, अस्वच्छ, कठिनता से पिघलनेवाला नाग अग्राह्य है।

नाग के शुद्ध करने का कारण

अशुद्ध नाग की भस्म बनाकर सेवन करने से अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते है। प्रथम तो शरीर सौन्दर्य का ही इसके सेवन से नाश होता है। कुष्ठ, किलास, आमवात, संधिशोथ, पक्षाघात, गुल्म, प्रमेह, आनाह, शोथ, भगन्दर, अग्निमान्द्य, स्कन्ध शोथ, बाहु निष्क्रियता, शूल और क्षय आदि अनेक भयङ्कर विकारो की उत्पत्ति अशुद्ध नाग की भस्म को खाने से होती है। अतः भस्म बनाने से पूर्व नाग का शोधन परमावश्यक होता है।

सीसक शोधन

१ ला प्रकार—सीसे को कढाई मे रखकर चूल्हे पर चढाकर पिघलावें। जब पिघल जाय तो निर्गुण्डी स्वरस से भरी हुई और मुख पर मध्य मे छिद्र वाले ढकने से ढकी हुई हांडी मे उसे उडेल दे। पिघला हुआ सीसा इसमे आवाज के साथ बुझेगा—जब यह सीसा ठण्डा हो जाय तो हांडी मे से निकालकर पूर्ववत् कढाई मे रखकर पिघलावे और उपरोक्त क्रिया का पुनरावर्तन करे। इस प्रकार ७ बार पिघला पिघला कर निर्गुण्डी स्वरस में बुझाने से सीसक शुद्ध हो जाता है। इसकी भस्म बनाकर काम मे लावे।

२ रा प्रकार—सीसे को पिघलाकर उपरोक्त विधि से चूने के पानी मे ७ बार बुझाने से भी सीसा शुद्ध हो जाता है।

३ रा प्रकार—पिघला पिघलाकर शीशे को उपरोक्त विधि से ३ बार आक के दूध में बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

शीशक मारण

१ ला प्रकार—८ भाग शुद्ध सीसे को लोह पात्र मे डालकर अग्नि पर चढावें। १—१ भाग इमली तथा पीपल की छाल का चूर्ण एकत्र मिलाकर पास में रखले। जब सीसा पिघलने लगे तो उसे लोहे की करछी से चलाने लगे और चूर्ण को उसमे डालते जांय। जब तक सीसा चूर्ण रूप मे परिणत न हो जाय तब तक यह क्रिया करते रहें। इस प्रकार शीघ्र ही सीसे की भस्म हो जायगी। अब इस भस्म को पानी मे धो डाले। शीशक के इस चूर्ण के बराबर उसमे मनसिल मिलाकर उन्हें खरल करे और दोनों के मिलजाने पर मिश्रण को काञ्जी के साथ घोटकर टिकिया बनाकर सुखाले। सूखने पर टिकियों को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार मनसिल के साथ काञ्जी मे घोट घोटकर साठ गजपुट देने से नागकी काली भस्म तैयार हो जायगी।

२ रा प्रकार—शुद्ध शीसे को लोहे की कढाई में डालकर उसे तीव्राग्नि पर चढावे। जब सीसा पिघल जाय तो ढाक की जड की लकडी से रगडना प्रारम्भ करें। इसको निरन्तर इसी प्रकार ४ प्रहर तक रगडते रहे। इस क्रियासे सीसे की लाल भस्म बन जायेगी।

३ रा प्रकार—१० तोले मनसिल को पान के रस मे घोटकर १० तोले सीसे के महीन पत्रो पर लेप करके उन्हे सम्पुट में बन्द करके गजपुट की अग्नि मे पकावे। इसी प्रकार ३२ पुट देने से सीसे की निरुत्थ भस्म तैयार हो जाती है।

४ था प्रकार—१ भाग अफीम और ४ भाग शुद्ध शीसे को कढाइ में डालकर मन्दाग्नि पर चढावे और उन्हे भस्म होने तक नीम के सोटे से घोटते रहे। इस क्रिया से वीर्य को पुष्ट करनेवाली सीसे की श्वेत भस्म तैयार हो जायगी।

५ वां प्रकार—विशुद्ध शीशे को कढाई मे रखकर चूल्हे पर चढावे और जब वह पिघल जाय तो उसमे हरिद्रा का चूर्ण डालते जांय और लोहे की दर्वी (करछी) से घोटते जांय, जब तक सीसे की भस्म न होय जाय यह क्रिया करते रहे। तैयार होनेपर यह भस्म ठण्डी हो जाय तो इसमे इसके ही समान गन्धक मिलाकर खरल करे और मिश्रण को निम्बु के रस मे घोटकर टिकिया बनाले। टिकियो को धूप मे सुखाकर शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार प्रत्येक बार भस्म के बराबर गन्धक मिलावे और निम्बु के रस मे घोटकर टिकिया बनाकर, सुखाकर गजपुट में फूंकते रहे। ऐसे तीन पुट देने से सीसे की भस्म तैयार हो जायगी। यह भस्म सर्वत्र प्रयोग मे लाई जा सकती है।

६ टा प्रकार—सीसे को चूल्हे पर स्वच्छ कढाई मे रखकर अग्नि लगाकर पिघलावे। फिर शुद्ध गन्धक के चूर्ण को उसमे, जब तक सीसे की भस्म न बन जाय तब तक, डालते

रहे। भस्म जब ठण्डी हो जाय तो उसे घोटकर शीशी मे भरकर रखलें। यह बाह्य प्रयोगों के लिये शीशे की श्रेष्ठ भस्म बन जायेगी।

सीसक भस्म के गुण

सीसाभस्म, मधुर, तिक्त, स्निग्ध, उष्ण, गुरू, लेखन, सर और अग्निवर्द्धक है। इसके सेवन से प्रमेह, वातरोग, ग्रहणी, अर्श, कफरोग, व्रण, गुल्म, प्रदर आदि रोग नष्ट होते हैं। शरीर पर इसकी क्रिया वङ्ग के समान ही होती है। ऊष्ण गुण द्वारा यह श्लेष्म का शोषण करती और श्लेष्म ग्रन्थियों के दोषों को दूर करके शरीर मे स्फूर्ति, शक्ति, ओज, अग्नि आदि की वृद्धि करती है।

आमाशय, ग्रहणी और अन्त्र की श्लेष्मकलाओं मे आमदोष और कफ तथा अन्नज विष के कारण क्षोभ उत्पन्न होकर शोथ, शैथिल्य और व्रण की उत्पत्ति हो जाती है। इनसे, किसी भी विकार की उत्पत्ति के कारण शरीर मे दाह, दौर्बल्य, आन्त्रिक श्लेष्मकला ग्रन्थियों की वृद्धि, ह्रास, निष्क्रियता और अन्य विविध विकारानुसार लक्षण उत्पन्न होते है। उदर के इन रोगों को अर्थात् व्रण, शोथ, शैथिल्य, अग्निमान्द्य और ग्रन्थिशोथ को दूरने के लिये नाग भस्म का उपयोग सर्वदा लाभकारी होता है।

आम, कफ और ग्रन्थियों की आन्तरिक और बाह्य श्लेष्मकलाओ के विकार के कारण अरुचि, ग्रन्थि, अर्वुद आदि अनेक श्लेष्मज और विषज विकार उत्पन्न होकर शरीर को क्षीण करके ग्रन्थिशोथ, गण्डमाला, क्षय, कण्ठ विकार, नासिका विकार, मस्तिष्क दार्बल्य आदि अनेक रोगो की उत्पत्ति करते है, ऐसी परिस्थिति में नाग भस्म के सेवन से ग्रन्थियों के विकारों का नाश होता है, दूषित कफ का संशोधन और तज्जन्य विकारो की शान्ति होती है। ग्रन्थिशोथ, क्षय और मस्तिष्क दौर्बल्य के कारण अधिकतर रोगियों मे रात्रिस्वेद पाया जाता है। नागभस्म का सेवन रात्रिस्वेद का नाश करता है और अग्नि की वृद्धि के साथ शरीर के दोषों का विनाश करके शरीर को निरोग और बलवान् बनाता है।

उदर के अन्य श्लेष्मजन्य रोग यथा—संग्रहणी, शूल, आमातिसार, अर्श आदि रोगो पर इसकी क्रिया रोग कारण को शीघ्र दूर करके रोग का नाश करती है। दीर्घकाल से अथवा भयङ्कर नाशक कारणों से उत्पन्न हुये श्लेष्म के संचय और प्रकोप के कारण उदरस्थ अंगों की श्लेष्मकलाओ मे शोथ होकर उनकी क्रिया विकृत हो जाती है और इससे या तो कलाये अधिक स्राव उत्पन्न करती है जिससे संग्रहणी, अतिसार आदि उत्पन्न हो जाते है अथवा तो उनमें प्रदाह उत्पन्न हो जाता है, जिससे शोथ होकर शूल की उत्पत्ति होती है। इन सभी विकारों को शोषक, विषनाशक अग्निवर्द्धक और व्रणशोधक तथा संकोचक गुणो से दूर करके नागभस्म रोगों का नाश करती है।

वङ्ग के समान इसकी क्रिया प्रमेह, मधुमेह, वीर्यक्षीणता, नपुंसकता आदि रोगों पर विशेषतया होती है। प्रमेह आदि रोगों में कफ के आधिक्य से श्लेष्मकलाओं की शिथिलता, अनावश्यक स्राव-शीलता और क्षोभ के कारण उत्पन्न होते हैं। नागभस्म श्लेष्मनाशक, स्रावशोषक, दाहनाशक, वीर्यवर्द्धक, ग्रन्थिपोषक, मांस शैथिल्य नाशक तथा अग्निवर्द्धक है, अतः उपरोक्त रोगो को नष्ट करने मे विशेष क्रिया करती है।

मधुमेह में यह विशेष क्रिया कफनाशक गुण के कारण करती है, यह निर्विवाद सत्य है ही। परन्तु इससे भी अधिक क्रिया तो यह मधुर द्रव्य के संग्रह का नाश करके करती है। यह पाचक, ऊष्णवीर्य और कफनाशक है। मधुमेह मे ग्रन्थियों के दोष, शोष, श्लेष्मकलाओं मे विकार आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। ये सभी नागभस्म के सेवन से मिट जाते है।

जिस प्रकार पुरुषों के प्रमेह आदि रोगो को यह नाश करती है वैसे ही स्त्रियों के सोमरोग और प्रदर को नष्ट करती है।

संक्षेप मे ग्रन्थिदोष, श्लेष्मकला विकार, व्रण, शैथिल्य, मधुमेह, प्रमेह, प्रदर, कफज अनेक रोग, जीर्णज्वर, संग्रहणी, शूल, गुल्म, अर्श, गण्डमाला, अरुचि, विद्रधि, अण्डवृद्धि, शोष, क्षय और इन रोगो के अनेक अनुबन्धियो का नाश करने के लिये नागभस्म सर्वदा श्रेष्ठ क्रिया करती है।

नागभस्म के आमयिक प्रयोग

(१) सीसाभस्म, हरिण शृङ्गभस्म, कपास के बीजों (विनोले) की मज्जा और अङ्कोल (हिंगोट) के बीज बराबर २ लेकर सबको १ दिन भैस के तक्र मे घोटकर २-२ मासे अथवा देश, काल, बल आदि के अनुसार सेवन करने से सुरामेह नष्ट होता है।

(२) १-१ रत्ती सीसाभस्म को ४-४ रत्ती आंवले और हल्दी के चूर्ण के साथ चटाने से वातकफज प्रमेह नष्ट होता है।

(३) खांड, शुद्ध वच्छनाग और सीसकभस्म समान भाग लेकर, सबको एकत्र खरल करके, मधु अथवा त्रिफला क्वाथ के साथ सेवन करने या कराने से उपदंश और उसके अन्य विकार नष्ट होते है।

(४) सीसकभस्म, सुहागे की खील, लौंग और कालीमिर्च का चूर्ण समान भाग लेकर भांगरे के रस में घोटकर मधु के साथ चटाने से बच्चो का महाश्वास नष्ट होता है।

(५) सीसाभस्म को अशोक की छाल के क्वाथ के साथ देने से रक्तप्रदर का नाश होता है।

(६) १ रत्ती सीसाभस्म के साथ १ माषा नागकेशर मिलाकर सेवन करने से रक्तार्श का नाश होता है।

(७) सीसाभस्म को गिलोय-सत्व के साथ यथा मात्रा मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से कफवातज प्रमेह नष्ट होते हैं।

(८) सीसाभस्म को स्वर्णभस्म, रससिन्दुर और ताम्रभस्म के साथ मिलाकर सेवन कराने से अन्त्रशोथ मिट जाता है।

(९) सीसाभस्म को कौंच के बीज, वलामूल और जटामांसी के क्वाथ के साथ देने से वृक्कशोथजन्य आक्षेप का नाश होता है।

(१०) सीसाभस्म को रससिन्दुर और नागभस्म के साथ मिलाकर सेवन करने से पक्षाघात का नाश होता है।

(११) सीसाभस्म को कंघी, वला, रास्ना और कौच के बीजो के साथ सेवन कराने से कण्डरा के दोष तथा मांसनाडी विकार नष्ट होकर पक्षाघात का भय दूर हो जाता है।

नीलमभस्म

सौरि, नीलाश्मा, नीलोत्पल, तृणग्राही, महानील, सुनीलक, नीलरत्न, नीलमणि आदि इसके पर्याय है।

ग्राह्य नीलम के लक्षण—स्वच्छ, चिकना, चमकदार, स्निग्ध और भारी नीलम औषध कर्म के लिये ग्राह्य है तथा अन्य लक्षणोंवाला अग्राह्य है।

नीलम का शोधन—नील के क्वाथ मे दोलायन्त्र विधि से नीलम को ३–४ घण्टे पकाने से यह शुद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार जयन्ति के स्वरस में इसे पकाने से वह शुद्ध हो जाती है।

नीलम की भस्म बनाने की विधि

(१) शोधित नीलम का सूक्ष्म चूर्ण करके उसमें प्रत्येक पृथक २ सम भाग गन्धक, मनसिल और हरताल मिश्रित करें और पत्थर के विस्तृत खरल मे ७ दिन तक निम्बु के रस में घोटे, टिकिया बना धूप मे सुखाकर उन को सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार ८ पुट देने से नीलम की भस्म बन जायगी।

(२) नीलम को तीक्ष्ण अग्नि मे तपा तपाकर समभाग घृतकुमार के रस और चौलाई के रस मे ७–७ बार बुझावें। इस तरह नीलम की भस्म बन जायेगी।

(३) शुद्ध नीलम का सूक्ष्म चूर्ण करके उसमें गन्धक, मनसिल और हिंगुल प्रत्येक नीलम के समान मिलाकर नीम्बु के रस मे ७–७ दिन तक घोटे। पिष्टि तैयार होनेपर टिकिया बना, धूप में सुखा, शराव सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार ८ बार करने से नीलम की भस्म बन जायगी।

नीलमभस्म के गुण

भली प्रकार तैयार की हुई नीलम की भस्म वीर्यवर्द्धक, शक्तिप्रद, अग्निदीपक, त्रिदोष नाशक, वर्णकारक और अर्शनाशक होती है।

यह तिक्त, ऊष्ण, कफ–पित्त–वात नाशक होती है।

इसके सेवन से त्वक्दोष, कुष्ठ, श्वास, कास और विषमज्वर का नाश होता है।

मात्रा—१/२ से १ रत्ती तक। दिन में १–२ बार मधु के साथ मिलाकर सेवन करें।

पन्ना (मरकत) भस्म

गारुत्मक, गरूडाशा, राजनील, रौहिणेय, सौपर्ण, बुधरत्न, गरलारि, हरिद्रत्न, तार्क्ष्य आदि इसके अन्य नाम हैं।

ग्राह्याग्राह्य मरकत स्वरूप

चिकना, स्वच्छ, भारी, कोमल, चमकवाला, अव्यङ्ग, हरितवर्ण मरकत ग्राह्य है तथा रूक्ष, चमक रहित, विकृताङ्ग, खर, लघु और मलिन मरकत हेय है।

मरकत–शोधन

गाय के दूध में दोलायन्त्र विधि से ३–४ घण्टे पकाने से मरकत शुद्ध हो जाता है।

मरकत मारण

जिस प्रकार नीलम की भस्म बनाई जाती है वैसे ही मरकत को भी ८ पुट देने से इसकी भरम बन जाती है।

मरकत भस्म के गुण

मरकत भस्म बलवर्द्धक, विषनाशक, अग्निदीपक, वीर्य–ओज वर्द्धक, पाण्डु, शोथ, श्वास, वमन, अर्श आदि रोगों को नाश करने वाली है।

सन्निपात, क्षय, जीर्णज्वर, शरीर दाह, मस्तिष्क दाह आदि रोगों पर इसकी क्रिया लाभप्रद होती है।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक। मधु के साथ। दिन मे २ बार ले।

प्रवाल-भस्म

प्रवालक, मौरय रत्न, विद्रुम, अब्धिजन्तु, मूंगी आदि प्रवाल के अन्य नाम है ।

प्रवाल के ग्राह्याग्राह्य स्वरूप

जिसका रंग पक्की कन्दूरी के समान चमकदार लाल हो, जो आकार में गोल, बडा, सीधा तथा स्थूल हो और जिसमे व्रण न हो ऐसा मूंगा ग्राह्य होता है

हल्का, पीला, धुंधला या सफेद, बारीक छिद्रवाला, रेखाओं से परिपूर्ण मूंगा हेय माना जाता है ।

प्रवाल शोधन

(१) दोलायन्त्र विधि से जयन्ती के रस मे ३–४ घण्टे स्वेदन करने से प्रवाल शुद्ध हो जाती है ।

(२) पानी में सज्जीक्षार मिलाकर उसमे दोलायन्त्र विधि से प्रवाल को पकाने से वह शुद्ध हो जाती है ।

(३) चौलाई के स्वरस मे दोलायन्त्र विधि से ३–४ घण्टे स्वेदित करने से प्रवाल शुद्ध हो जाती है ।

प्रवाल मारण

(१) शुद्ध प्रवाल को इमाम दस्ते मे कूटकर चूर्ण बनालें । सूक्ष्म चूर्ण तैयार हो जाय तब उसे खरल मे डालकर घृतकुमार के रस में घोटकर टिकिया बनालें । टिकियो को धूप मे सुखा के सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे । सम्पुट के स्वाङ्गशीतल होनेपर भस्म को उसमे से निकाल ले और घृतकुमार के रस में फिर घोटे, और उपरोक्त विधि से पुट दें । इस प्रकार तीन पुट दिये जांय तो प्रवाल की श्वेत, मृदु और सुन्दर भस्म बन जाती है ।

(२) प्रवाल के सूक्ष्म चूर्ण को गोदुग्ध के साथ खरल करे और पिष्टी तैयार होनेपर उसकी टिकिया धूप में सुखाले । सूखी हुई टिकियां को यथाविधि सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे । इस प्रकार ३–४ पुट देने से बहुत ही सुन्दर श्वेत भस्म तैयार होती है ।

(३) उपरोक्त विधि से जयन्ती के स्वरस मे घोटकर तीन पुट देने से भी वैसी ही भस्म बन जाती है ।

(४) शतावरी के रस में घोटकर उपरोक्त विधि से पुट दिये जांय तो भी प्रवाल की श्रेष्ठ भस्म तैयार हो जाती है ।

(५) गुलाब जल के साथ उपरोक्त विधि से घोट २ कर पुट देने से भी श्वेत, स्वच्छ और सुन्दर भस्म बन जायेगी ।

चन्द्रपुटी प्रवालभस्म

प्रवाल का सूक्ष्म चूर्ण करके गुलाब जल के साथ २१ दिन १२-१२ घन्टे घोटे और और प्रति रात्रि को चन्द्र की शीतल किरणों का सुधामय स्पर्श प्राप्त होने के लिये जाली अथवा चलनी से ढककर चांदनी मे रखदे। घोटने की अवधि समाप्त होनेपर छाया मे ही ही सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण करके शीशी मे भरले। यह चन्द्रपुटी प्रवालभस्म अथवा तो पिष्टि कही जाती है।

सूर्यपुटी प्रवालभस्म

प्रवाल के सूक्ष्म चूर्ण को २१ दिन पर्यन्त गुलाबजल के साथ नित्य १२-१२ घण्टे घोटते जांय और सूर्य के ताप द्वारा शुष्क करते जांय। इस प्रकार गुलाब जल शुष्क हो जायेगा और नित्य शुष्क प्रवाल पिष्ट नये गुलाबजल का पान करेगी। घोटने की अवधि समाप्त होनेपर उसे सूर्यताप में सुखाकर श्लक्ष्ण चूर्ण करके शीशी मे भरकर रखले। यह प्रवालपिष्ट सूर्यपुटी प्रवाल भस्म भी कहलाती है।

चन्द्रपुटी प्रवालभस्म के गुण

यह अमृत के समान शीतल, दाहनाशक; पित्तजशोथ, रक्तपित्त, तृष्णा, पित्तजकास, श्वास, वमन, विष, शुक्रक्षय, शोष, मस्तिष्क दौर्बल्य, ज्वर, संताप, उन्माद, नेत्ररोग आदि अनेक पित्त प्रकोप के कारण होनेवाले विकारो को शान्त करने के लिये उत्तम है। इसका प्रयोग उरःक्षत फुफ्फुस व्रण, हृद-दौर्बल्य, हृद् वैकल्य, भ्रम, निद्रा नाश तथा पित्त के कारण होनेवाले अनेक विकारो पर अन्य योगो के साथ अथवा अकेले मधु अथवा यथारोगानुपान के साथ प्रयोग में लावे।

सूर्यपुटी प्रवालभस्म के गुण

चन्द्रपुटी और सूर्यपुटी प्रवाल में केवल अन्तर इतना ही है कि सूर्यपुटी प्रवालभस्म वात-पित्तज रोगों के संशमन के लिये भी काम मे आती है, इसके सेवन से यकृत, प्लीहा, अन्त्र शैथिल्य, अन्त्रदाह, अन्त्रवात और अनेक अजीर्णजन्य विषम विकार दूर होते है। इसका सेवन आंखों की कमजोरी, शरीर दौर्गन्ध्य, शोष, संताप आदि मे श्रेष्ट होता है।

प्रवालभस्म के गुण

मूंगा भस्म शीत, मधुर, किञ्चिदम्ल, कफपित्त नाशक, वीर्य और कान्तिवर्द्धक तथा क्षय रक्तपित्त, खांसी, विष, रात्रिस्वेद, ज्वर, किटाणु विकार और नेत्ररोग नाशक एवं दीपन और पाचन है।

मात्राः—१ रत्ती से ३ रत्ती तक। यथा दोषानुपान के साथ सेवन करें।

प्रवालभस्म के आमयिक प्रयोग

१. **हिचकी**—प्रवालभस्म को शंखभस्म, त्रिफला चूर्ण, पीपलचूर्ण और स्वर्णगैरिक के साथ मिलाकर घृत और मधु के साथ सेवन कराने से हिक्का रोग का नाश होता है।

२. **पाण्डु**—प्रवालभस्म को मोतीभस्म, अञ्जन (सुरमा), शंखभस्म और गेरू के साथ मिलाकर गुलाबजल के साथ देने से पाण्डु का नाश होता है।

३. **मूत्रकृच्छ्र**—प्रवालभस्म या पिष्ठी को चावलो के पानी के साथ सेवन कराने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

४. **मलवद्धता**—प्रवालभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर कुटकी, द्राक्षा और हरीतकि के क्वाथ के साथ सेवन कराने से पुरातन मलावरोध भी नष्ट हो जाता है।

५. **मूत्रावरोध**—प्रवालभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर गोक्षुर के क्वाथ या कषाय के साथ देने से मूत्रावरोध नष्ट होता है।

६. **रात्रिस्वेद**—प्रवालभस्म को मधु के साथ २–२ रत्ती की मात्रा में रात्रि के समय सेवन कराने से निशा स्वेद का नाश होता है।

७. **शोथ**—पुनर्नवा और गोखरू के क्वाथ के साथ प्रवालभस्म और रससिन्दुर के योग को देने से शोथ का नाश होता है।

८. **मूत्रकृच्छ्र**—इक्षुमूल और शतावरी के साथ रससिन्दुर और प्रवालभस्म के योग को देने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

९. **हस्तपाद तल स्वेद**—प्रवालभस्म को यशदभस्म के साथ मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से हस्त पाद तल पर होनेवाला प्रस्वेद रोग नष्ट होता है।

१०. **क्षयज कास**—प्रवालभस्म को अभ्रकभस्म और वंशलोचन के साथ मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से क्षयज कास नष्ट होता है।

११. **कुत्ता खांसी (बच्चों की काली खांसी)**—प्रवालभस्म को अभ्रकभस्म, शुण्ठि चूर्ण कंटकारी चूर्ण और रससिन्दुर के साथ मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से काली खांसी नष्ट होती है।

१२. **श्वास–कास**—प्रवालभस्म को शुक्तिभस्म, रससिन्दुर और वंशलोचन के सूक्ष्म चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से श्वास–कास नष्ट होते है।

१३. **बच्चों के ज्वर सहित कास में**—प्रवालभस्म को कायफल के चूर्ण, भारङ्गी के चूर्ण और रससिन्दुर के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से सज्वर कास रोग नष्ट होता है।

———o———

प्रवालपञ्चामृत रस [भा. भै. र. ४४६८]

(वृ. नि. र.; र. चं., यो. र. । गुल्म.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—प्रवालभस्म २ भाग तथा मोतीभस्म, शुक्तिभस्म और कौडीभस्म प्रत्येक १–१ भाग लेकर सब को एकत्र खरल करके उसमें सबके बराबर आक का दूध डालकर एक दिन घोटे और फिर उसे यथाविधि शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। सम्पुट के स्वांगशीतल होनेपर उसमें से भस्म को निकालकर, पीसकर, सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—३–३ रत्ती। प्रात' सायं। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से आनाह, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, खांसी, श्वास, अग्निमान्द्य, कफ और वातरोग, अजीर्ण, डकारें आना, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, अतिसार, प्रमेह, मूत्रदोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं।

संक्षिप्त विवेचन—यह औषध दीपन, पाचन, वातानुलोमक, आक्षेप नाशक तथा तन्तुगत शोथ और दाह नाशक है। इसके प्रयोग से दीर्घकाल से होनेवाला मलावरोध नष्ट होता है। अन्न के दोष शीघ्र नष्ट होकर पेट निर्विकार हो जाता है।

ऐसे उदर विकारों मे जहां वात प्रकोप के कारण अन्त्र की क्रिया मे शिथिलता आ जाती हो और पाचन विकार के कारण साम अथवा निराम वात की ऊर्ध्वगति होकर आध्मान हो जाता हो अथवा तो डकारे आती हों, इसका सेवन बहुत ही शीघ्र लाभप्रद होता है। यह पाचन करके मलको साफ करता है और वात का अनुलोमन करके एकत्रित वात दोष को दूर करता है।

गुल्म, शूल, आध्मान, अजीर्ण आदि रोगों मे इसका सेवन सर्वदा हितकर होता है।

वात प्रकोप के कारण उत्पन्न हुये अजीर्ण मे यकृत् और प्लीहा की विकृति हो जाती है, शरीर दाह, अरुचि और अनेक प्रकार के अन्त्र विकार उत्पन होने लगते है। ऐसी परिस्थिति में प्रवालपञ्चामृत का सेवन अमृत के समान लाभ करता है।

आमाशय और अन्त्र की श्लेष्मकलाओं के विकारों मे, जिनमे वात, पित्त, और कफ द्वारा शोथ, रूक्षता, निष्क्रियता और भारीपन उत्पन्न हो जाता है, यह शोधक गुण द्वारा दोषों का संशमन करता है और शोषक गुण द्वारा कलाओ मे उत्पन्न हुई स्थानिक विकृतियो को दूर करता है।

वातपीडित उदर रोगियो को इसका सेवन सर्वदा हितकर होता है। इसके सेवन से वातानुलोमन होकर रोगों का नाश होता है।

पित्तल-भस्म

ताम्र के दो भाग और यशद के १ भाग के रासायनिक मिश्रण का नाम पित्तल है।

बनावट—२ भाग शुद्ध ताम्र और १ भाग शुद्ध यशद लेकर गारमूषा में भरकर तीव्र अग्नि पर धमण द्वारा तपायें। अग्नि के ताप से पिघली हुई धातुये आपस में मिश्रित हो जायेगी। इस मिश्रण को जिस आकृति मे लाना हो उस आकृति के सांचे के अन्दर ढाल दे। शीतल होनेपर विधिपूर्वक इसे निकाल लें। यह पीतल धातु निर्मित हो गई।

इसके पर्याय—आरकूट, रीति, रीती, पतिकावेर, द्रव्यदारु, मिश्र आर, क्षुद्र सुवर्ण, सिंहल, पीतनक, लोहितक, पिङ्गल, पिङ्गलोह, पीतल।

इसके भेद—राजरीति (रीतिका) और ब्रह्मरीति (काकतुण्डी) नाम से इसके २ भेद है। राजनीति कपिल और ब्रह्मरीति पिङ्गलवर्ण होती है।

इसके ग्राह्याग्राह्य स्वरूप—तीव्र अग्नि मे तपाकर काञ्जी में बुझाने से पित्तल की झलक ताम्र के समान हो जाय वह पित्तल ग्राह्य है। इसी को राजनीति (रीतिका) कहते है। यह वजन मे भारी, मृदु, पीली, चोट सह, स्निग्ध और स्पर्श मे चिकनी होती है।

तपाकर काञ्जी मे बुझाने से जो कृष्णवर्ण हो जाय वह पित्तल हेय है। इसी को काकतुण्डी कहते है। रूक्ष, कमजोर, पीटने में टूटनेवाला हल्का और दुर्गन्ध युक्त पीतल रस कर्म मे प्रयुक्त नहीं करना चाहिये।

पित्तल शोधन

१ ला प्रकार—पित्तल के बारीक पत्रो को गोमूत्र मे डालकर तीक्ष्णाग्नि पर १ प्रहर पकावे। इससे पित्तल पत्र शुद्ध हो जायेगे।

२ रा प्रकार—संभालु के रस मे हल्दी का चूर्ण मिलाकर उसमे पित्तल के पत्रों को तपा तपाकर ५ बार बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

पित्तल मारण

१ ला प्रकार—मनसिल और गन्धक समान भाग मिश्रित कर पीतल के बराबर ले और इनके मिश्रण को निम्बु के रस में घोटे। जब पिष्टि तैयार हो जाय तो पित्तल के पतले पत्रों पर उसका लेप कर दे। पत्रो को शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार ८ पुट दे। प्रत्येक बार गन्धक और मनसिल की पिष्टी प्रलिप्त करे। पित्तल की सर्वत्र प्रयोग करने योग्य भस्म तैयार हो जायेगी।

२ रा प्रकार—सूक्ष्म-पित्तल पत्रो के समान गन्धक लें। दोनो को खरल मे घोटकर एकाकार करलें और फिर उसे आक के दूध के साथ घोटे और टिकिया बना, सुखा, सम्पुट

मे बन्द कर गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार ८ पुट देने से कज्जली के समान सुन्दर भस्म तैयार हो जाती है।

३ रा प्रकार—पतले पीतल के पत्र २५ तोले लेकर उनको २५ तोले हिंगुल के साथ घृतकुमार के रस मे खरल करे। पिष्टि तैयार हो जाने पर टिकिया बनाकर, सम्पुट मे बन्द करके, गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार ३ पुट देने से ही सुन्दर कज्जली के सदृश भस्म तैयार हो जायेगी।

पित्तलभस्म के गुण

पित्तलभस्म, रूक्ष, तिक्त, लवण रसवाली, शोधक, कृमि, कुष्ठ और पाण्डुरोग नाशक तथा साधारण लेखन होती है।

इसके सेवन से यकृत् और प्लीहा के दोष दूर होते है तथा यह रक्त का शोधन करती है। यह ऊष्णवीर्य है अत: कफज विकारो के लिये विशेष हितकर है। परन्तु रूक्ष और तिक्त होने से वात दोषो मे विशेष लाभप्रद हो यह सम्भव नहीं है।

मात्राः—१/२ रत्ती से ३ रत्ती तक। मधु अथवा दोषानुपान के साथ।

पित्तल रसायन

पित्तलभस्म, कान्तलौहभस्म और अभ्रक-सत्व-भस्म १—१ भाग तथा सोंठ, मिर्च, पीपल वायविडङ्ग, पलाश के बीज, अजमोद, चीतामूल, शुद्ध भिलावा और तिल का समान भाग मिश्रित चूर्ण ३ भाग लेकर एकत्र खरल करके प्रयोग मे लावे।

यह दोपन और पाचक है इसके नित्य प्रातः १—१ मासे के सेवन से कृमि, कुष्ठ और विशेषतः श्वेतकुष्ठ नष्ट होते हैं।

पुष्पराज भस्म

पुष्पराज, पीतरक्ताह्वय, गुरुरत्न, पीतमणि, गुरुवल्लभ आदि पुखराज के अन्य नाम है।

ग्राह्याग्राह्य पुष्पराज का स्वरूप

स्निग्ध, सम, मसृण, सुवर्णवर्ण, स्वच्छ, विमल, वृत्रगात्र तथा कन्हेर के पुष्प सदृश चमकदार और उज्ज्वल हो, ऐसा पुष्पराज ग्राह्य; और श्यामल, प्रभाहीन, कर्कश, काले बिन्दु वाला, जिसपर दाने लगे हों, रूक्ष, कहीं से ऊंचा और कहीं से नोचा इस प्रकार का गुरुरत्न हेय है।

पुष्पराज की शुद्धि— दोलायन्त्र विधि से कुलथी के क्वाथ और काञ्जी के सम मिश्रण में ३ घण्टे स्वेदित करने से पुष्पराज शुद्ध हो जाता है।

पुष्पराज मारण—नीलमभस्म विधि से इसकी भस्म तैयार होती है।

पुष्पराज भस्म के गुण

यह भस्म शीतवीर्य, दीपन, पाचन, कफ-वात प्रशमक, कुष्ठ और छर्दिनाशक है। इसके सेवन से विष, दाह और अर्श का नाश होता है तथा वीर्य, मेधा, ओज और आयु की वृद्धि होती है।

जिन मनुष्यों को किसी प्रकार के विष अथवा विष सदृश अन्य दाहोत्पादक विकारों का भोग वनना पडा हो, और उन रोगो के मिटने पर भी शरीर, मस्तिष्क, आमाशय, वक्ष आदि में दाह होती हो उनको सतत पुष्पराज भस्म २—३ मास सेवन करनी चाहिये।

मात्राः—१/२ रत्ती से १ रत्ती तक। मधु अथवा यथा दोषानुपान के साथ।

—o—

मण्डूर-भस्म

शिङ्घन, शूलघातन, लोहमल, लोह किट्ट, अयोमल, लोहज, कृष्णचूर्ण, लोष्ट्र आदि इसके अन्य नाम है।

मण्डूर जितना पुराना हो उतना ही श्रेष्ठ होता है। ६० वर्ष का पुराना अधम, ८० वर्ष का पुराना मध्यम और १०० वर्ष का पुराना श्रेष्ठ माना जाता है। ६० वर्ष के नीचे का मण्डूर विष के समान हानिकारक माना जाता है।

भारी, काला, छिद्र रहित, जीर्ण मण्डूर ग्राह्य है।

मण्डूर शोधन

मण्डूर को बहेडे की लकडियों की अग्नि मे तपा तपाकर ८ वार गोमूत्र में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

मण्डूर मारण

शुद्ध मण्डूर का सूक्ष्म चूर्ण करके त्रिफला के क्वाथ के साथ खरल करें। पिष्टी तैयार होनेपर टिकिया बनाकर सुखाले और सूखने पर टिकिया को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार ३० पुट देने से मण्डूर की बहुत ही सुन्दर लाल चन्दन के रङ्गवाली भस्म तैयार हो जाती है।

जिस दोष को नाश करने के लिये मण्डूर की भस्म बनानी हो तद्दोष—नाशक लौह—मारक द्रव्यों के रस या क्वाथके साथ घोट २ कर लोहे के समान ही पुट देकर मण्डूर की भस्म तैयार की जाती है।

मण्डूरभस्म के गुण

मण्डूरभस्म शीतल, रुचिकारक, दीपन, पित्तशामक और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से

पाण्डु, शोथ, शोष, हलीमक, कामला, कुम्भकामला, यकृद्‌वृद्धि, प्लीहावृद्धि, रक्तहीनता आदि रोग नष्ट होते है।

मात्राः—१ रत्ती से ४ रत्ती तक। मधु के साथ।

मण्डूर के आमयिक प्रयोग

(१) मण्डूर भस्म को त्रिफला चूर्ण तथा घृत और मधु के साथ सेवन किया जाय तो त्रिदोषज शूल नष्ट होता है।

(२) मण्डूर भस्म को पुनर्नवादि अथवा पुनर्नवाष्टक क्काथ के साथ सेवन करने से शोथ का नाश होता है।

(३) मण्डूरभस्म को कुटकी, त्रिफला और हरिद्रा के चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से कामला का नाश होता है।

(४) मण्डूभस्म को विडङ्ग चूर्ण, त्रिफला चूर्ण और पञ्चकोल चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से कृमि, शोथ, अर्श, ग्रहणी, प्लीहा और पाण्डुरोग का नाश होता है।

(५) मण्डूरभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर सेवन करने से रक्त की वृद्धि होती है।

(६) मण्डूरभस्म को दशमूल के क्काथ के साथ सेवन करने से रक्त की वृद्धि होती है।

मधुमण्डूर भस्म

१ सेर मण्डूर को १ प्रहर तक त्रिफले के क्काथ मे घोटकर, पिष्टी तैयार होनेपर, टिकिया बना, सुखा, सम्पुट मे बन्द करके इस प्रकार पुट दे कि २ प्रहर मे अग्नि शान्त हो जाय। त्रिफला-क्काथ मे घोट घोटकर ऐसे २१ पुट दे। हर पुट मे इतनी अग्नि देनी चाहिये कि वह २ प्रहर मे शान्त हो जाय। इस भस्म को "मधुमण्डूर भस्म" कहते है।

मात्राः—२ से ६ रत्ती तक पीपल के चूर्ण और मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन कराने से पुराना पाण्डु भी नष्ट हो जाता है तथा नवीन रक्त की वृद्धि होती है।

इसका प्रभाव अचिन्त्य है और यह अनुपान भेद से अनेको रोगो को नष्ट करता है।

मुक्ता-भस्म

मौक्तिक, शुक्तिज, शुक्ति बीज, शुक्तिमणि, शौक्तिक, शौक्तिलेय, इन्दुरत्न, मुक्ताफल, शशिप्रिय आदि इसके अन्य अनेक नाम है।

ग्राह्याग्राह्य मुक्ता के गुण

अति रमणीय चन्द्रप्रभा के समान चमकदार, गोल, स्निग्ध, व्रण रहित, भारी और स्वच्छ मोती औषध कर्मोपयोग्य होता है। जो गोमूत्र मे शालि तुष के साथ घर्षण करने पर भी

विकृति–विहीन रहे अर्थात् जिसमे किसी प्रकार का वैकारी परिवर्तन न हो वह मोती सच्चा है। वह मोती ग्राह्य है।

दीर्घ, खुर्दरा, रूखा, कृष्ण, व्रणयुक्त, प्रभारहित और क्षुद्रकाय मोती हेय गिना जाता है।

मुक्ता शोधन

१ ला प्रकार—दोलायन्त्र विधान द्वारा ३ घण्टे जयन्ती के स्वरस में पकाने से मोती शुद्ध हो जाते है।

२ रा प्रकार—अगथिया के स्वरस में दोलायन्त्र द्वारा पकाने से मोती शुद्ध हो जाते है।

३ रा प्रकार—चीनी की प्याली में चूने का पानी भरकर उसमें मोती डाल दें और प्याली को त्रिपाद के ऊपर रखकर नीचे से सुरा प्रदीप (स्पीरिट लैम्प) द्वारा गरम करे इस क्रिया से मोती सहज ही शुद्ध हो जाते है।

मुक्ता मारण

१ ला प्रकार—शुद्ध मोतियो की गो–दुग्ध के साथ घुटकर पिष्टी तैयार होने पर टिकिया बनाकर सुखाले। टिकियों के सूख जाने पर उन्हें शराव सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में फूंक दे। इस प्रकार ३ पुट देने से सुन्दर मुक्ताभस्म तैयार हो जायेगी।

२ रा प्रकार—शुद्ध मोतियों को गुलाव जल मे घोट घोटकर उपरोक्त विधान से पुट देने पर ३ पुट में ही सुन्दर भस्म तैयार हो जाती है।

३ रा प्रकार—शुद्ध मोतियो को घृतकुमार के रस में घोट घोटकर उपरोक्त विधान से पुट देने से सुन्दर भस्म तैयार हो जाती है।

४ था प्रकार—स्त्री के दूध में घोट घोटकर उपरोक्त विधान से ३ पुट देने से मोती की भस्म हो जाती है।

मुक्ताभस्म के गुण

मुक्ताभस्म वृष्य, आयुष्य, मधुर, शीत, दीपन, दाहनाशक, नेत्र हितकर, वर्णकारक, रक्तरोधक, श्रमनाशक तथा ज्वर, शोक और मोहनाशक, अस्थिवर्द्धक, हृदय को वल देनेवाली; जीर्णज्वर, क्षय, श्वास, कास, अस्थि शोष और विष को नाश करनेवाली तथा देह सौष्ठव, वुद्धि, वल और वीर्य को वढानेवाली है।

उपरोक्त ही गुण मुक्ता पिष्टी के भी होते है।

मुक्तापिष्टी निर्माण विधि

मोतियो का सूक्ष्म चूर्ण करके उसे पत्थर के खरल मे डाल लें और गुलाबजल से खरल

को भरले। तदनन्तर मर्दन करे। इस प्रकार २१ दिन गुलाबजल के साथ खरल करने से मोती की सूक्ष्म पिष्टी तैयार हो जाती है।

मुक्ताभस्म तथा पिष्टी की मात्रा

१/४ रत्ती से १ रत्ती तक। बल, काल आदि देखकर। यथादोषानुपान के साथ सेवन करे।

मुक्ताभस्म तथा पिष्टी के आमयिक प्रयोग

मुक्ताभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर सेवन कराने से बच्चो के दान्त आसानी से बिना विशेष वेदना के निकल आते है।

मुक्ताभस्म मे समान भाग प्रवालभस्म और चन्दन चूर्ण मिलाकर, उसे बिजौरे निम्बु के रस मे घोटकर, लघुपुट मे फुंककर तैयार होने पर इस औषध को नित्य २-२ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से भयङ्कर क्षयरोग भी नष्ट होता है।

मुक्ताभस्म को प्रवाल भस्म के साथ मिलाकर सेवन करने से फुफ्फुस दौर्बल्य नष्ट होता है।

मुक्ताभस्म के साथ कुटकी चूर्ण और स्वर्णगैरिक चूर्ण मिलाकर मधु के साथ चटाने से अथवा बिजौरे निम्बु के साथ मिलाकर पिलाने से हिचकी रोग नष्ट हो जाता है।

मोतीभस्म के साथ कपूर मिलाकर उसे जायफल इत्यादि ग्राही औषधों के साथ देने से अतिसार नष्ट होता है।

विवेचन

मुक्तापिष्टि और भस्म दोनों ही हृदय, मस्तिष्क और फुफ्फुस के विकारो को शान्त करके उन्हे शक्ति देनेवाली हैं। जहां शरीर मे दाह और मस्तिष्क मे बेचैनी रहती हो वहां पर मुक्ताभस्म या पिष्ठी का सेवन बहुत ही हितकर होता है। रक्तपित्त की किसी भी अवस्था मे जीर्णज्वर, नेत्रदाह, नेत्र दौर्बल्य, निद्रानाश, मस्तिष्क शूल (पित्तज) और हृदय की आघातजन्य अथवा दौर्बल्यजन्य धडकन मे यह औषध परम हितकर सिद्ध होती है।

मादक द्रव्यों के सेवन, रात्रि जागरण, क्रोध, शोक, भय, भ्रम, अति मैथुन, अतिश्रम, क्षीणता आदि से होनेवाले विकारो पर मुक्ता का सेवन सर्वदा श्रेयष्कर होता है।

क्षय की सभी अवस्थाओं में शरीर मे दाह बना रहता है। ऐसी परिस्थिति मे मुक्ता का सेवन बहुत ही उपयोगी होता है। इसी प्रकार विषैले रोगों के आक्रमण के पश्चात् शरीर मे दाह रहती है, मस्तिष्क शिथिल हो जाता है; मुक्ता का सेवन इन सब विकारो को शान्त करता है और बल, वीर्य, ओज आदि की वृद्धि करता है।

स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी के लिये समान गुणकारी, मुक्तापिष्टि या भस्म, वीर्य, रज, मस्तिष्क, हृदय, फुफ्फुस आदि के पित्तजन्य विकारों को शीघ्र दूर करती है।

मुक्तापञ्चामृत

(यो. र.; बृ. नि. र. । जीर्णज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मोतीभस्म ८ भाग, प्रवालभस्म ४ भाग, वङ्गभस्म २ भाग तथा शङ्खभस्म और शीप की भस्म १—१ भाग लें। प्रथम सब द्रव्यो को एकत्र खरल करे। तदनन्तर इस मिश्रण को २ प्रहर तक ईख के रस में खरल करके गोला बनाले और उसे सुखाकर शराव सम्पुट मे वन्द करके लघुपुट में फूंक दे। इसी प्रकार ईख के रस, गाय के दूध, विदारी कन्द, घृतकुमारी, शतावर, तुलसी (या संभालु) और हंसपदी (लाल लज्जालु) के रस में खरल कर करके ५—५ पुट दे। अन्तिम पुट के बाद सूक्ष्म चूर्ण खरल करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से ४ रत्ती तक। देश, काल और वल देखकर पीपल के चूर्ण के साथ बहुत दिनों की व्याही हुई गाय के दूध के साथ सेवन करावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको उपरोक्त विधि से सेवन कराने और स्वल्पाहार देने से जीर्णज्वर और क्षयादि रोग नष्ट होते हैं।

संक्षिप्त विवेचन—यह औषध वात, पित्त और कफनाशक, दोषानुलोमक, अन्त्रदाह, शोष, शोथ, क्षोभनाशक, अग्निवर्द्धक तथा शैथिल्य और दौर्बल्यनाशक है।

इसके सेवन से पित्त, आम और वात द्वारा अन्त्र मे दीर्घकाल से उत्पन्न हुये दाह, क्षोभ, कोथ आदि नष्ट हो जाते है और पाचन बढने लगता है। तीनो ही दोषो को संशमन करनेवाली यह औषध अन्त्र विकार के लिये वहुत ही उत्तम है। अधिकतर देखा जाता है कि अन्त्र दोष के कारण सूक्ष्म ज्वर शरीर को क्षीण करने लगता है। इससे सभी धातुओं की वृद्धि रुक जाती है और सन्ताप की वृद्धि होने लगती है। इसके कारण या तो उर:क्षत होकर फुफ्फुस, यकृत्, हृदय आदि से रक्तपात होता है या कर्ण, नासिका आदि से रक्त गिरने लगता है। इसी प्रकार, यदि दोषों का प्रकोप अधोभागो मे होता है, तो अर्श उत्पन्न हो जाते है और खाद्य का परिपाक न होकर आम बनने लगता है। हृदय, फुफ्फुस और अन्त्र के अनेक दोष, इस प्रकार केवल पाचन संस्थान से प्रारम्भ होनेवाले साधारण विकारों से उत्पन्न हो जाते हैं। उनको दूर करने के लिये इधर उधर चिकित्सायें की जाती है, परन्तु कारण के दूर न होने से ये सब विकार दब नहीं पाते। ऐसी परिस्थिति मे स्वाभाविक ही चिकित्सक उलझन मे पड जाता है। मुक्तापञ्चामृत का सेवन ऐसे विकारो को दूर करने मे बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। शीतवीर्य, त्रिदोष नाशक, रक्तरोधक, आमशोषक,

और अग्निवर्द्धक होने के कारण यह औषध केवल अनुलोमन ही नहीं करती अपितु ज्वर का नाश भी करती है, रक्तपात के कारणो को मिटाती है और शरीरदाह आदि को मिटाकर शरीर के प्रत्येक अङ्ग का पोषण करती है।

ज्वर और क्षय के लिये यह औषध उतनी ही लाभकारी है जितनी कि अन्त्रदोषों के लिये।

माणिक्य-भस्म

शोणरत्न, रत्नराट, रविरत्न, शृङ्गारी, रङ्गमाणिक्य, पद्मराग, शोणोपल, सौगन्धिक, लक्ष्मीपुष्प, कुरुविन्द, लोहितिक इत्यादि इसके अन्य नाम है।

ग्राह्याग्राह्य माणिक्य के गुण

लाल कमल की पंखडी के रङ्ग के सदृश रङ्गवाला, सुन्दर, चमकदार, फैला हुवा, गोलाकर और समाङ्गमाणिक्य ग्राह्य है।

विकृत छायावाला, हल्का, धूम्रके सी छायावाला, विरूप, कर्कश, मलिन, चिपटा और वक्र माणिक्य त्याज्य है।

माणिक्य शोधन

१ ला प्रकार—नीम्बु के स्वरस मे दोलायन्त्र विधान से माणिक्य को १ याम तक पकाने से वह शुद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार अन्य अम्ल द्रव्यों के स्वरस मे इसी विधान द्वारा पकाने से वह शुद्ध हो जाता है।

२ रा प्रकार—एक चीनी की रकाबी में त्रिफला कषाय ले और उसमे निम्बु का स्वरस मिलवे। अब इस रकाबी मे माणिक्य डाल दे और रकावी को तिपाई के ऊपर रखकर उसको नीचे से स्पीरिट लैम्प द्वारा गरम करे इस प्रक्रिया से माणिक्य शुद्ध हो जायेगा।

माणिक्य मारण

१ ला प्रकार—शुद्ध माणिक्य का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसे खरल मे डालें और मनसिल तथा गन्धक पृथक २ उसके समान खरल मे डालकर तीनो को एकत्र खरल करें। मिश्रण हो जाने पर इस खरल मे नीम्बु का रस भरदें और सात दिन तक इसे घोटे। जब पिष्टी तैयार हो जाय तब इसकी टिकिया वनाकर धूप में सुखाले और सूखी हुई टिकियो को शराव सम्पुट मे वन्द करके गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार ८ पुट देने से माणिक्य की भस्म तैयार हो जाती है। यह भस्म श्वेत होगी।

इसी प्रकार बढल के रस मे उपरोक्त विधान द्वारा घोट २ कर पुट देने से भी माणिक्य की भस्म तैयार हो जाती है।

२ रा प्रकार—शुद्ध माणिक्य के चूर्ण में सम भाग गन्धक, मनसिल और हिंगुल मिलाकर निम्बु के रस में घोटें और टिकिया बनाकर सुखा दे। सूखने पर टिकियो को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस विधान से पुट देने पर माणिक्य की भस्म हो जाती है।

माणिक्यभस्म के गुण

माणिक्य भस्म बुद्धिवर्द्धक, मधुर रसयुक्त, रसायन, दीपन, वृष्य, वात–पित्त नाशक, कफ प्रशमक, क्षयरोग नाशक और वाजीकरण है।

इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है। वीर्यग्रन्थियों के विकार शान्त होते है और नपुंसकता का नाश होता है।

यह रसायन औषध बल–वर्ण कारक, शरीर वर्द्धक और वीर्य के जीर्णाजीर्ण विकारो को शान्त करनेवाली है।

मात्राः—१/२ रत्ती से १ रत्ती तक। यथादोषानुपान के साथ सेवन करावे।

राजावर्तभस्म

यह स्फटिक जाति के उपरत्न का एक भेद है।

आवर्त, आवर्तमणि, नृपावर्त, राजात्यावर्तक, नृपोपल, नीलाश्म आदि इसके अन्य नाम है।

राजावर्त (लाजवर्द) जरा ललास लिये हुये नीलिमा मिश्रित रंग का होता है।

ग्राह्याग्राह्य राजावर्त के गुण

जो राजावर्त भारी, चिकना, निर्मल, व्रणरहित और स्वच्छ, आकाश जैसा नीला होता है, वह श्रेष्ठ और ग्राह्य माना जाता है और अन्य सब प्रकार के मध्यम और अग्राह्य होते हैं।

राजावर्त शोधन

१ ला प्रकार—नीम्बु के रस और गोमूत्र में यवक्षार मिलाकर स्वेदित करने से राजावर्त शुद्ध हो जाता है।

२ रा प्रकार—सिरस के फूलों के रस और अदरक के रस में स्वेदित करने से राजावर्त शुद्ध हो जाता है।

३ रा प्रकार—निम्बु के रस और जल में यवक्षार मिलाकर स्वेदित करने से राजावर्त शुद्ध हो जाता है।

राजावर्त मारण

शुद्ध राजावर्त का सूक्ष्म चूर्ण करके उसमे समान भाग गन्धक मिलाकर बिजौरे निम्बु

के रस के साथ ३ दिन तक घोटे और पिट्ठी तैयार होने पर टिकिया बनाकर सुखालें और सूखी हुई टिकियों को सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे । इस प्रकार ७ पुट देने से राजावर्त की भस्म तैयार हो जाती है ।

राजावर्त-सत्व-पातन विधान

शुद्ध राजावर्त का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसमें समान भाग मनसिल लेकर मिलालें। इस मिश्रण को घी के साथ खरल करे और फिर उसे भैस के दूध में लोह पात्र मे पकावे । जब वह गाढा हो जाय तो उसमे सुहागा और पंचगव्य (गाय का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर) मिलाकर गोले बनालें और गोलों को सुखाकर मूषा में रखकर खैर के अंगारों पर पकावे । इस क्रिया से राजावर्त का सुन्दर शोभनीय सत्व निकल आता है ।

अब इस सत्व मे समान भाग गन्धक मिलाकर बिजौरे निम्बु के रस मे घोटे और गजपुट मे फूंक दे । इस प्रकार ७ पुट मे राजावर्त सत्व की बहुत सुन्दर भस्म तैयार हो जायेगी।

राजावर्त भस्म के गुण

राजावर्त भस्म कटु, तिक्त, दीपन, पाचन और शीतवीर्य है । यह पित्त का संशमन करती है और वृष्य तथा रसायन है । इसके सेवन से पाण्डु, प्रमेह, क्षय, शोष, मदात्यय, हिक्का और छर्दि का नाश होता है ।

मात्राः—१/२ से १ रत्ती तक । यथादोषानुपान के साथ ।

राजावर्त के आमयिक प्रयोग

(१) राजावर्त भस्म, रससिन्दुर, ताम्रभस्म और रजत-भस्म को समान मात्रा मे मिलाकर, गौ के घी मे मिश्रित कर, मन्दाग्नि पर पका, घी, मधु और शर्करा मिलाकर चटाने से सब प्रकार के मदात्यय रोग को नष्ट होते है ।

(२) राजावर्त भस्म को समान भाग चांदी और स्वर्णमाक्षिकभस्म के साथ मिलाकर गोघृत के साथ गरम करके घृत, मधु और शर्करा के साथ देने से मदात्यय का नाश होता है।

(३) राजावर्तक भस्म को अभ्रक-सत्व-भस्म के साथ मिलाकर मधु के साथ देने से यह उल्वण प्रमेह का नाश करती है ।

(४) राजावर्त भस्म के साथ समान भाग स्वर्णभस्म, मुल्हैठी का चूर्ण और रससिन्दुर मिलाकर घी के साथ जरा गरम करके उसमे मिश्री, मधु और घी मिलाकर चटाने से ग्रहणी रोग का नाश होता है ।

रौप्य-भस्म

रजत, रुचिर, तार, सौध, शुभ्रक, चन्द्रलौह, चन्द्रहास, रूपक आदि इसके अन्य अनेक नाम हैं।

ग्राह्याग्राह्य रजत स्वरूप

स्निग्ध, स्वच्छ, भारी, छेदने से सुन्दर टुकडे पडे, गरम करने से और भी अच्छी लगे और शरच्चन्द्र के समान उज्ज्वल हो ऐसी चांदी ग्राह्य है, अन्य अग्राह्य, अर्थात् पीत, रक्त, मलिन, रूक्ष, स्फुट, कठिन, सदल और गरम करने पर भी मलिन ही रहे ऐसी चांदी त्याज्य है।

अशुद्ध चान्दीभस्म के सेवन से दोषोत्पत्ति

शरीर मे दाह, वीर्यनाश, शरीर दौर्बल्य, मलबद्धता, हड फूटन आदि अनेक विकार अशुद्ध, अपक चान्दी की भस्म के सेवन से उत्पन्न होते है। अतः चान्दी को भस्म करने से पूर्व अवश्य शुद्ध कर लेना चाहिये।

रजत शोधन

१ ला प्रकार—चांदी के पत्रों को अग्नि पर तपा तपा कर ३-३ बार तिल तेल, तक्र, काञ्जी, गोमूत्र और कुलथी के क्वाथ मे बुझावे। तत्पश्चात् उन्हें अग्नि में खूब तपा तपा कर ३ वार अगस्ति के रस में बुझावें। इस प्रकार चांदी शुद्ध हो जाती है।

२ रा प्रकार—समान भाग चांदी और सीसे को पिघलाकर एकत्र मिलावे। फिर उसमें सुहागा डालकर, अग्नि में तपाकर, मालकङ्गनी के तेल मे बुझावे। इसी प्रकार तपा तपा कर २ बार बुझाने से चान्दी शुद्ध हो जाती है।

(विशेष ज्ञातव्यः—सीसा केवल पहली वार ही मिलाना चाहिये, बाद में नहीं, और सुहागा हर वार डालना चाहिये।

३ रा प्रकार—चांदी के सूक्ष्म पत्रो को अग्नि में तपा तपा कर नीम्बु के स्वरस या चांगेरी के स्वरस में बुझावे। इस क्रिया को जब तक चांदी के पत्र मृदु न हो जांय तब तक करते रहें। मृदु होने पर उन्हें गरम जल से धो कर भस्म बनाने के काम में लावे।

(शुद्ध किये हुये चांदी के वर्क भी खाने के काम मे लिये जाते है। प्रकरणवश उनके गुणों का वर्णन भी युक्ति युक्त ही होगा।

ये पत्र वीर्य में शीत; कटु, अम्ल और सर होते है। विपाक मे मधुर, बलकारक, स्निग्ध, रुचिकारक और लेखन होते है। इनके सेवन से प्रमेह का नाश, आयु की वृद्धि, मस्तिष्क की वृद्धि और वात-पित्त का नाश होता है।

इन वर्कों को पान के बीडे में लपेट कर खाते है, अथवा तो मिठाइयों मे लगाकर इनका सेवन करते है।

रजत मारण

१ ला प्रकार—शुद्ध चांदी के पत्रों को घोटकर उन्हें दाडिम के पत्तों की लुगदी में रखकर शराव सम्पुट मे बन्द करके वराह पुट मे फूंक देने से ३ पुट मे चांदी की भस्म हो जाती है।

२ रा प्रकार—पारा और गन्धक १-१ भाग तथा वर्की हरताल २ भाग लेकर तीनों को घृतकुमारी के रस मे घोटकर १ भाग चांदी के शुद्ध सूक्ष्म पत्रों पर लेप कर दीजिये और उन्हे शराव सम्पुट में बन्द करके ३० वन उपलो (अरने उपलों) मे फूंक दीजिये इस प्रकार २ पुट देने से चान्दी की भस्म हो जाती है।

३ रा प्रकार—१ भाग शुद्ध चांदी के पत्र या चूर्ण और चार भाग पारे को एकत्र मिलाकर निरन्तर एक दिन निम्बु के रस में घोटे। इस प्रकार घोटने से एक ही दिन मे दोनों की पिट्ठी हो जायगी। इस पिट्ठी के बराबर आमलासार गन्धक का चूर्ण लेकर और इसमे से पिट्ठी के ऊपर नीचे आधा २ गन्धक देकर इसे शराव सम्पुट मे बन्द कर दीजिये और सुखाकर १ दिन तीव्राग्नि पर वालुकायन्त्र मे पकाइये। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट के भीतर से चांदी को निकालकर उसमे उसके बराबर वर्की हरताल मिलाकर निम्बु के रस के साथ घोटिये और टिकिया बनाकर, सुखाकर, उन्हे शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट में फूंक दीजिये। इसी प्रकार १२ पुट हरताल के साथ देने से अवश्य चांदी की उत्तम भस्म बन जाती है।

४ था प्रकार—१ भाग हरताल को नीम्बु के रस या किसी अम्ल के रस या क्वाथ में घोटकर ३ भाग शुद्ध चान्दी के सूक्ष्म पत्रो पर लेप करदे और उन्हे मूषा मे बन्द करके ३० बनोपल (अरने उपलों) मे फूंक दे। इसी प्रकार बार २ हरताल देकर १४ पुट देने से चान्दी की भस्म तैयार हो जाती है।

५ वां प्रकार—चांदी के सूक्ष्म पत्रों को कैची से काट काट कर सूक्ष्म कण बनावे और पृथक २ चांदी के समान हरताल और गन्धक मिलावे। इन सब को भलीभान्ति मिश्रित करके शराव सम्पुट में बन्द करे और कुक्कुट पुट मे फूंक दे। इस विधान द्वारा चांदी की काली भस्म तैयार हो जायगी।

६ टा प्रकार—चांदी के शुद्ध पत्र लेकर उन्हें खरल मे डाल ले और फिर पत्रो के समान वजन का शुद्ध हिंगुल भी खरल मे डाल ले, इतनी ही स्वर्णमाक्षिक भी मिलाले और सबको भलीप्रकार खरल करे। मिश्रण को नीम्बु के स्वरस के साथ घोटकर शुष्क चूर्ण बनाले और सम्पुट मे बन्द करके फूक दे। इस क्रिया द्वारा थोडे से पुटों मे ही चान्दी की भस्म तैयार हो जायगी।

(स्वर्णमाक्षिक भस्म केवल प्रथम बार ही मिश्रित करे।)

चांदीभस्म के गुण

चांदीभस्म तुवर, शीत और विपाक में मधुर है। यह रुचिकर, स्निग्ध, मेध्य, वर्ण्य, वात–कफ नाशक, अम्ल, सर, लेखन और वृष्य है।

चांदीभस्म के सेवन से आयु की वृद्धि होती है। शरीर की दाह मिटती है और शक्ति तथा स्मृति की वृद्धि होती है। इसके सेवन से तृष्णा, शोष, भ्रम, गर्भाशय के विकार, पित्त, प्रमेह, अजीर्ण, मदात्यय, अग्निमान्द्य, विष, ज्वर, प्लीहोदर, क्षय, नाडीशूल, अपस्मार, हृदयरोग और उदर विकार नष्ट होते है।

यह रसायन औषध पित्तशामक, आयुवर्द्धक और अन्त्र में बढी हुई वात को नष्ट करनेवली है। यह ऊर्ध्व जत्रुगत और शाखाश्रित पित्त के संशमन के लिये उपयोगी है।

क्षीणकाय, क्षीणबुद्धि, भ्रम से पीडित, पित्तज शिरोरोग से पीडित आदि रोगियो के लिये बहुत ही हितकर है।

मात्राः—१ रत्ती से २ रत्ती तक। यथादोषानुपान के साथ।

रजतभस्म के आमयिक प्रयोग

चांदीभस्म को अजवायन और लौंग के चूर्ण के साथ मिलाकर देने से कोष्ठवात (गैस) का नाश होता है।

चांदीभस्म को इलायची के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से आमाशय के विकारो के कारण होनेवाली हृदय की धडकन मिटती है।

चांदीभस्म को इलायची और मिश्री के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से सूर्यावर्त और अर्धावभेदक नामक शिरोरोग मिटते है।

चांदीभस्म को रससिन्दुर और लोहभस्म के साथ मिलाकर त्रिफला के कषाय के साथ सेवन कराने से डिम्बशूल, डिम्बशोथ और गर्भपात के कारण होनेवाली गर्भाशय की वेदना नष्ट होती है।

चांदीभस्म को सुहागे की खील, अभ्रकभस्म और रससिन्दुर के साथ मिलाकर वला और त्रिफला के क्वाथ के साथ मिलाकर सेवन कराने से डिम्बशूल और अण्डरज्जुशूल का नाश होता है।

चांदीभस्म को सुहागे की खील और रससिन्दुर के साथ मिलाकर हरिद्रा के जल के साथ सेवन कराने से गर्भाशयगत व्रण, गर्भाशय संकोच और जीर्णप्रदरादिरोगों का नाश होता है।

चांदीभस्म को लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म और रससिन्दुर के साथ मिलाकर अजवायन और त्रिफला मूल के क्वाथ के साथ सेवन कराने से गृध्रसी, विश्वाची, त्रिकवेदना और विविध स्थानों मे होनेवाले नाडीशूल नष्ट हो जाते है।

चांदीभस्म को पर्पटादि के क्वाथ के साथ सेवन कराने से पित्तजदाह नष्ट होता है।

चांदीभस्म को राजावर्तभस्म के साथ मिलाकर सेवन कराने से मदात्यय रोग का नाश होता है।

चांदीभस्म को चोपचीनी के चूर्ण के साथ मिलाकर देने से दीर्घकाल से होनेवाला आध्मान नष्ट होता है।

चांदीभस्म को मिश्री के साथ मिलाकर देने से शरीर की दाह का नाश होता है।

चांदीभस्म को मिश्री, इलायची के चूर्ण और घी के साथ मिलाकर सेवन कराने से उन्माद का नाश होता है।

चांदीभस्म को दालचीनी, इलायची और तेजपात के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से प्रमेह रोग का नाश होता है।

चांदीभस्म को रससिन्दुर, चोपचीनी चूर्ण और क्षीर काकोली के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से गर्भाशय की श्लेष्मकलाओं के शोथ और संकोच के कारण होनेवाला काला स्राव शीघ्र नष्ट होता है।

चांदीभस्म को शालपर्णी, कौंच के बीज और शतावर के चूर्ण के साथ सेवन कराने से दो तीन महिने मे ही कृशता दूर होती है। शरीर और वीर्य की वृद्धि होती है।

चांदीभस्म को वायविडङ्ग, भिलावा, सोठ और लाल चन्दन के चूर्ण के साथ सेवन कराने से सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

चांदीभस्म को अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म और त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर नित्य प्रातःकाल घी और मधु मे मिश्रित कर सेवन कराने से क्षय, पाण्डु, उदररोग, अर्श, श्वास, कास, नेत्ररोग और पित्तरोगो का नाश होता है।

साधारण विवेचन

चांदीभस्म शरीर के दाहादि रोगों को दूर करने में श्रेष्ठ काम करती है। इसकी क्रिया विशेषतः कलाविकारो पर होती है। यदि किसी स्थान की कला मे शोथ, दाह अथवा उसमे अंकुर उत्पन्न होकर क्षोभ और स्राव उत्पन्न हो गये हो तो वहां पर चांदीभस्म का सेवन लाभप्रद होता है।

मुख की श्लेष्मकलायें, मसूडो के विकार के कारण, उदरदाह के कारण, नासिका श्लेष्मकलाशोथ के कारण और फिरङ्ग रोग के विष के कलाओ में फैल जाने से उत्पन्न हुये विकारों के कारण सूज जाती है अथवा उनमे अंकुर उत्पन्न हो जाते है। इन विकारो से पीडित श्लेश्मकलाये स्राव वहन करने लगती है जो दुष्ट गन्ध युक्त और दूषित होता है। श्लेष्मकला के ऐसे विकारों मे चान्दीभस्म का विविध द्रव्यों के साथ सेवन कराना हितकर होता है।

यथादोषानुपान सेवन से यह स्थानिक और वैकारिक दानो प्रकार के दोषो को दूर करती है। यथाः-यदि उदरदाह के कारण मुखपाक हो तो चांदीभस्म को रससिन्दुर, अभ्रक और हरीतकि के चूर्ण के साथ दे अथवा चांदी के वर्कों का सूक्ष्म चूर्ण करके स्फटिकभस्म के साथ मिलाकर मुख में धारण करावें अथवा तो आंवले के मुरब्बे के साथ चांदी के वर्कों का सेवन करावे। यदि फिरङ्ग के कारण यह दोष हो तो मल्लसिन्दुर के साथ मिलाकर सेवन करावें। इसी प्रकार यदि दीर्घकालीन कला दोषो के कारण अंकुर उत्पन्न हो गये हो तो चांदी के वर्कों के योग द्वारा नाइट्रीक ऐसीड के साथ वनाये हुए सिल्वर नाइट्रेट से अंकुरो को स्पर्श करके उन्हे जलादे और फिर स्वर्णगैरिक के सूक्ष्म चूर्ण के साथ चांदीभस्म को चटावे।

उदर की श्लेष्मकलाओं मे अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते है, वे सभी चान्दी के विविध योगो के सेवन से दूर होते हैं। कलाओ मे व्रणो की उत्पत्ति आम, विष, दाह, कोथ, क्षोभ आदि के कारण हो सकती है। चान्दीभस्म इन सभी दोषो को दूर करती है और कला के विकारो का नाश करती है।

गर्भाशय की श्लेष्मकलायें अधिकतर विविध कारणो से संकुचित होकर व्रणित हो जाती है, जिससे पूतिस्राव होने लगता है। श्लेष्मकलाओ के ऐसे विकारो को दूर करने के लिये स्थानिक चिकित्सा भी चांदी के योगो द्वारा की जा सकती है और चांदीभस्म का विविध योगों के साथ सेवन कराया जा सकता है।

रौप्यमाक्षिक-भस्म

श्वेत माक्षिक, विमल, रजतमाक्षिक, तारज, तारमाक्षिक आदि इसके अन्य नाम है।

चान्दी के समान गुणो की विद्यमानता के कारण यह उपधातु रौप्यमाक्षिक के नाम से जानी जाती है अथवा तो रजत के समान होने के कारण यह रजतमाक्षिक मानी जाती है। गुणों मे यह चान्दी से कुछ हीन गुणवाली है, परन्तु चांदीभस्म के अभाव मे इसका प्रयोग किया जा सकता है और किया भी जाता है। इसमें केवल चांदी के समान ही गुण होते है यह कहना भी उचित नहीं है, अन्य द्रव्यों के संसर्ग के कारण इसमे अन्य गुण भी होते है।

ग्राह्याग्राह्य रौप्यमाक्षिक के गुण

जो रजतमाक्षिक गोल, वहुत से कोनोवाली, चिकनी, चांदी जैसी चमकदार, भारी और फलकवाली है वह ग्राह्य और अन्य अग्राह्य है।

यदि अशुद्ध रौप्यमाक्षिक की भस्म वनाकर सेवन की जाय तो वह अशुद्ध स्वर्णमाक्षिक के समान ही दोष उत्पन्न करती है। अतः शोधित रौप्यमाक्षिक की ही भस्म बनानी चाहिये।

रजतमाक्षिक शोधन

१ ला प्रकार—वांसे के रस में या जम्बीरी निम्बु के रस अथवा मेढासिंगी के रस मे स्वेदित करने से रौप्यमाक्षिक शुद्ध हो जाती है।

रौप्यमाक्षिक का सूक्ष्म चूर्ण करके कढाई में चढावे और उसमें निम्बु का रस या उपरोक्त किसी अन्य द्रव्य का रस कढाई मे भरदे। इस कढाई को चूल्हे पर चढाकर तीव्र अग्नि लगावे और कढाई को करछली से चलाते जांय। जब तक वह शुद्ध होकर लाल कमल के सदृश न हो जाय तब तक नीम्बु या अन्य द्रव्य का रस डालते जांय और चलाते जांय। रौप्य-माक्षिक का वर्ण लाल हो जाय अर्थात् वह शुद्ध हो जाय तो कढाई को चूल्हे पर से उतार ले और ठण्डा होने पर शुद्ध रौप्यमाक्षिक को उसमे से निकाल ले।

२ रा प्रकार—दोलायन्त्र विधि से कुटे हुये रजतमाक्षिक को वांसे के स्वरस मे पकाने से भी वह शुद्ध हो जाती है

रजतमाक्षिक मारण

शुद्ध रजतमाक्षिक को खरल मे सूक्ष्म चूर्ण करके उसमे गन्धक मिलावे और मिश्रण को बढल या निम्बु के रस मे घोटकर पिष्टी तैयार होने पर टिकिया बनाकर सुखाले। सूख जाने पर टिकियो को शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार १० पुट देने से रौप्यमाक्षिक की भस्म तैयार हो जाती है।

रौप्यमाक्षिक-सत्व पातन

१ ला प्रकार—फिटकरी, कसीस, सुहागा, जङ्गली जिमीकन्द, मोरवा (छोकरा) वृक्ष का क्षार और शुद्ध रौप्यमाक्षिक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर सबको सुहांजने के रस और केले के पानी के साथ खरल करके मूषा मे रखकर धमाने से माक्षिक का अत्यन्त उज्ज्वल सत्व निकल आता है।

२ रा प्रकार—सुहागे और मेढासिंगी की भस्म को बढल के रस मे खरल करें और फिर उसके साथ सूक्ष्म माक्षिक चूर्ण को घोटकर मूषा के भीतर इसका लेप करदे तथा सुखाकर उसका मुख बन्द करके उसे ६ सेर कोयलो की अग्नि में धमावे। इससे विमल का अन्यन्त स्वच्छ श्वेत चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल सत्व निकल आता है। यह सत्व रसायन होता है।

रौप्यमाक्षिक गुण

रजतमाक्षिक भस्म शीत, रुचिर, वृष्य, बल्य, मेध्य, जीर्णज्वर नाशक, रक्त, पित्त, क्षय, कास, दाह आदि का नाश करनेवाली योगवाही और रसायन है।

रजतमाक्षिकभस्म और सत्व के आमयिक प्रयोग

चांदीभस्म के स्थान पर इसको प्रयोग करते है। अतः चांदी के समान ही इसका योगों के साथ प्रयोग करे।

लोह-भस्म

लौह के भेद—मुण्ड, तीक्ष्ण और कान्त इस प्रकार लोह के ३ भेद है। मुण्ड से तीक्ष्ण और तीक्ष्ण से कान्त अधिक गुणवाला होता है।

मुण्ड लोह के पर्याय—मुण्ड, कृषिलोह, शिलात्मज, कृष्णायस, दृषत्सार आदि इसके अन्य नाम है।

तीक्ष्णलोह के पर्याय—लोह, लोहक, शस्त्रलोह, तीक्ष्णक, सारलोह, काललोह, अय इत्यादि इसके अन्य नाम हैं।

कान्तलोह के पर्याय—कान्त, अयस्कान्त, कान्तायस, महालोह आदि इसके अन्य नाम है।

लोहों का परिचय—कढाई, चूल्हे, तवे, आदि का निर्माण मुण्डलोह से किया जाता है। कृपाण, तलवार आदि तीक्ष्णलोह से बनते है। कान्तलोह कठिनता से मिलता है।

ग्राह्य लोह—जिस लौह पर मल हो उसका भस्म बनाने के लिये प्रयोग न करे। तीक्ष्ण और कान्त लोह जो भी मिल जाय ग्राह्य ही माना जाता है।

तीक्ष्ण लोह के लक्षण—फलकवाला, उज्ज्वल लोह जिस पर यदि आमला या काशीस का लेप कर दिया जाय तो पर्वत शिखा सी दीखने लगे, वह तीक्ष्ण लोह कहलाता है।

कान्तलोह के लक्षण—कान्त पाषाण में से उत्पन्न हुवा लौह कान्तलौह कहलाता है। यह कान्तपाषाण को धमाने से सत्व रूप से उसमें से निकलता है।

अशुद्ध लोहभस्म के दोष

अशुद्ध लोहभस्म के सेवन से हृदयरोग, कुष्ठ, शूल, दाह, शरीर गुरुता, नपुंसकता, कोष्ठबद्धता, अश्मरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अतः सर्वदा शुद्ध करने के अनन्तर ही लोह की भस्म बनानी चाहिये।

शोधन हेतु ग्राह्य लोह

लोह की रेती करके उसे शुद्ध करे अथवा तो सूक्ष्म फलके बनाकर शुद्ध करे अथवा कंटकवेधी पत्र बनाकर शुद्ध करे।

लोह शोधन, मारण, गुण और आमयिक प्रयोगो के लिये "कान्त लोहभस्म" देखे।

लौहाभ्रक-भस्म

शुद्ध लोहचूर्ण और शुद्ध धान्याभ्रक समान भाग लेकर एकत्र खरल करले। इस मिश्रण मे शुद्ध समान भाग गन्धक और कलमी शोरा मिश्रित करें। अब इस योग को घृतकुमारी के रस के साथ घोटे और पिष्ठी तैयार हो जानेपर इसकी टिकिया बनाले। टिकियों को सुखाकर शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस विधान द्वारा ३०-४० पुट देने से लोहाभ्र की रक्तवर्ण, सुन्दर और वहुत ही गुणकारी भस्म तैयार हो जायगी।

यूं तो भस्म ५-६ पुट देने से ही हो जाती है परन्तु वारितर और मित्रपञ्चक की परीक्षा मे सफल होने के लिये तथा उच्च कोटि की भस्म तैयार करने के लिये अधिक पुट देने आवश्यक समझे जाते है।

लौहाभ्रक भस्म गुण

यह शीतल और नेत्रों के लिये परम हितकारी है। वात, पित्त, कफ और क्षय का नाश करने के लिये इसका उपयोग सर्वदा श्रेष्ट रहता है। इसके सेवन से पाण्डु, क्षय, क्षीगता, कास, भ्रम, कफ, वात और पित्तज रोग, अर्श, गुल्म, शूल, पीनस, वमन, श्वास, प्रमेह, अरुचि और कम्प नष्ट होता है।

लौह और अभ्रक जिन २ रोगो पर प्रयोग मे लाये जाते है, वहां यह मिश्रित भस्म अधिक लाभप्रद होती है।

यह भस्म उदर विकारो को शान्त कर रक्त की वृद्धि करती है, कफ और आमनाशक होने के कारण इसके सेवन से वीर्यदोष मिट जाते है तथा यकृत्, प्लीहा आदि के कफ पित्तज विकार दूर होकर रक्त की वृद्धि होती है।

लोहाभ्रक-रसायन

द्रव्य तथा निर्माण विधान—लौहाभ्रक भस्म १० तोला तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, जीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, कवाबचीनी और मोथा ५-५ तोला ले। सबको एकत्र खरल करके सूक्ष्म चूर्ण करके एक शीशी मे प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—१ से २ रत्ती। मधु अथवा जल के साथ।

उपयोगः—जीर्णज्वर, पाण्डु, निर्बलता और रक्त हीनता के लिये यह प्रशस्त औषध है।

संक्षिप्त विवेचन—दीर्घकाल से उत्पन्न हुई यकृत्-प्लीहा, आमाशय और अन्त्र की श्लेष्मकलाओं की विकृति को दूर करने के लिये इनका उपयोग सर्वदा कल्याणप्रद सिद्ध होता है। यह औषध त्रिदोष शामक, वातानुलोमक, अन्त्र शैथिल्य नाशक और यकृत् के कोषों का पोषण करनेवाली है। इसके सेवन से श्लेष्मकलाओं मे उत्पन्न हुये शोष, शोथ, व्रण और

रूक्षता नष्ट होते है तथा अग्नि की वृद्धि होती है। श्लेष्मज पाण्डु में इसका उपयोग शीघ्र लाभ करता है। अन्त्रदोषों के कारण रहनेवाले जीर्णज्वर मे इसका उपयोग लाभप्रद होता है।

जराव्याधि से पीडित वृद्धों के लिये यह औषध परम रसायन है। इसके सतत सेवन से पाचक रसों की उत्पत्ति होती है, अन्त्र दौर्बल्य नष्ट होता है और रस-रक्त आदि धातुओं की वृद्धि होकर शरीर में पुष्टि, बल और वीर्य की वृद्धि होती है। यह शरीर को बलवान बनाता है।

वैक्रान्तभस्म

विक्रान्त, नीचवज्र, कुवज्रक, गोनास, क्षुद्रकुलिश, जीर्णवज्र आदि इसके अन्य नाम है।

वैक्रान्त भेद—श्वेत, नील, रक्त भेद से वैक्रान्त तीन प्रकार का होता है।

वैक्रान्त हीरा के आकार जैसा, उसके सदृश ही दाह और घात को सहनेवाला तथा उसके समान ही गुणोंवाला होता है।

हीरे के स्थान पर हीरे के अभाव मे वैक्रान्त का उपयोग किया जाता है। यह रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव में हीरे के समान हाता है।

मसृण, गुरु, षट्कोण लक्षण युक्त वैक्रान्त औषध कर्म योग्य होता है।

वैक्रान्त शोधन

१ ला प्रकार—वैक्रान्त को पोटली में बांधकर नमक और क्षारवाले जल में अथवा किसी अम्ल पदार्थ के रस या क्वाथ अथवा क्वाथों के योग में या गोमूत्र में दोलायन्त्र द्वारा तीव्राग्नि पर स्वेदित करने से वैक्रान्त ३-४ घण्टों में ही शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार कुलथी के क्वाथ, केले के रस आदि मे पांचो नमक और क्षार मिलाकर स्वेदित करने से वह शुद्ध हो जाता है।

२ रा प्रकार—वैक्रान्त को तपा तपा कर २१ बार घोडे के मूत्र में बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

वैक्रान्त मारण

१ ला प्रकार—शुद्ध वैक्रान्त का सूक्ष्म चूर्ण करके उसके साथ समान भाग शुद्ध गन्धक मिलावे और मिश्रण तैयार होनेपर उसमें उसके समान ही शुद्ध हिंगुल मिलाकर निम्बु के रस के साथ घोटे और पिष्टी तैयार होने पर उसकी टिकिया बनाकर सुखालें। सूखी हुई टिकियों को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। इस प्रकार आठ पुट देने से वैक्रान्त की भस्म हो जायेगी।

२ रा प्रकार—शुद्ध वैक्रान्त चूर्ण को गन्धक और निम्बु के रस के योग से आठ पुट देने पर उसकी भस्म हो जाती है।

३ रा प्रकार—इन्द्रायण के पञ्चाङ्ग को पीसकर उसमे वैक्रान्त के चूर्ण को लपेट ले और गोला बनाकर उसे मूषा में बन्द करके पुट लगादें। इस प्रकार वार वार इन्द्रायण के कल्क के गोले मे वैक्रान्त चूर्ण को लपेटकर पुट लगाकर भस्म करे। इस क्रिया को तब तक करते रहे जब तक वैक्रान्त की इच्छित भस्म तैयार न हो जाय।

वैक्रान्तभस्म के गुण

वैक्रान्तभस्म रसायन, मेध्य, अग्निवर्द्धक, योगवाही और वज्र के समान अनेक महारोगों को नाश करनेवाली है।

इसके सेवन से शरीर का वर्ण निखरता है। राजयक्ष्मा, जरा, शोष, ज्वर, कुष्ट, पाण्डु रोग, उदररोग, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ आदि रोगों का नाश होता है तथा इसके सेवन से शरीर बलवान् और पुष्ट होता है।

मात्रा:—१/४ रत्ती से १ रत्ती तक। यथादोषानुपान के साथ। देश, काल, बल आदि देखकर।

वैक्रान्तभस्म के आमयिक प्रयोग

वैक्रान्तभस्म ४ भाग और स्वर्णभस्म १ भाग लेकर दोनों को एकत्र खरल करे और १ रत्ती की मात्रा में वायविडङ्ग के चूर्ण, पीपल के चूर्ण और घृत के साथ मिलाकर सेवन करें। इस योग के साथ देने से यह भस्म क्षय, पाण्डु, अर्श, कास, श्वास, दुष्ट ग्रहणी आदि रोगों का नाश करती है।

१ भाग वैक्रान्तभस्म को १॥ भाग अभ्रकभस्म और आधा भाग पारदभस्म (यदि पारद भस्म न मिले तो रससिन्दुर १॥ भाग लें) के साथ मिलाकर खरल करके खावे। इसमे से १—१ रत्ती नित्य प्रातः काल मधु और घृत के साथ मिलाकर सेवन करने से ३ सप्ताह में समस्त कष्ट साध्य रोग नष्ट हो जाते है।

वैक्रान्तभस्म, रससिन्दुर, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म और ताम्रभस्म १—१ भाग तथा शुद्ध गन्धक ५ भाग ले। सबको एकत्र खरल करे और मिश्रण को १ दिन भिलावे के तेल मे खरल करके २—२ रत्ती की गोलियां बनालें। इन गोलियो के सेवन से सब प्रकार के अर्श नष्ट हो जाते हैं।

वैक्रान्तभस्म ४ रत्ती के साथ १ तोला कपूर और १/२ तोला रससिन्दुर मिलाकर शाल्मली के रस में भलीभान्ति घोटकर १—१ रत्ती की गोलियां बनालें। ये गोलियां रसायन, बल्य, वृष्य, वर्ण्य और बृंहण है। इनका सेवन नपुंसकता का नाश करने के लिये करें। अन्य रोगों मे भी यह औषध श्रेष्ठ लाभ करती है।

वैक्रान्त सत्व पातन विधान

५ तोले वैक्रान्तभस्म के सूक्ष्म चूर्ण और १। तोला सुहागे को एकत्र मिलाकर क्रमशः आक के दूध और सुहांजने की छाल के रस मे पृथक पृथक १—१ दिन खरल करें और फिर उसमें १।—१। तोला गुञ्जा (चौटली), तिल की खल (या हींग) और चीते का चूर्ण मिलाकर गोला बनावें। इसे कोष्ठी यन्त्र मे तीव्राग्नि में धमाने से वैक्रान्त का स्वच्छ, श्वेत सत्व निकल आता है।

वैक्रान्तसत्व, वैक्रान्तभस्म से अधिक गुणकारी है। इसकी क्रिया शीघ्र होती है और यह कम मात्रा मे दी जाती है।

वंगभस्म

वंग के पर्याय—आयुष, त्रपु, वपु, चपुख, कुरूप्य, भ्रमर, नागज, कस्तीर, गुरूपत्र, नागजीवन, स्वर्णज, शुक्रलोह, रङ्ग (रांग), रङ्गक इत्यादि इसके अन्य नाम है।

वंग के भेद—खुरक और मिश्रक भेद से वंग के दो भेद है। इनमें से खुरक वंग श्रेष्ठ और मिश्रक त्याज्य है।

खुरक वंग रंग में सफेद, कोमल, स्निग्ध, जल्दी गलनेवाली, भारी और शब्द रहित होती है। मिश्रक वंग रूक्ष, अन्य धातुओ के मिश्रणवाली, गलने में कठिन और रंग में स्याही लिये हुए होती है।

ग्राह्याग्राह्य—रस कर्म के लिये खुरक वंग ग्राह्य और मिश्रक हेय मानी जाती है।

वंग शोधन की आवश्यकता—अशुद्ध वंग की भस्म का सेवन करने से आक्षेपक, कम्प, किलास, गुल्म, कुष्ट, शूल, वातव्याधि, शोथ, पाण्डु, प्रमेह, भगन्दर, रक्तविकार, विष के जैसे उपद्रव, क्षय, कफज्वर, अश्मरी, विद्रधि और अण्डकोप के विकार उत्पन्न होते है। अतः वंग को शुद्ध किये बिना इसकी भस्म नही बनानी चाहिये।

वंग शोधन

१. खुरक वंग को तपा तपाकर (गला गलाकर) तेल, तक्र, गोमूत्र, काञ्जी और कुलथी के क्वाथ में ३—३ वार बुझाने के पश्चात ३ वार आक के दूध में बुझाने से वह शुद्ध हो जाती है।

यह याद रहे कि पिघला हुवा वंग पानी या अन्य तरल पदार्थों में पडने से उडता है अतः जिस द्रव्य मे उसे बुझाना हो उसे पहले से ही एक हांडी मे रखकर उसके मुख पर एक छिद्रवाला ढकना ढककर रक्खे और गले हुये वङ्ग को उस छिद्र द्वारा हांडी के द्रव में डालें। शोधन करते हुये यह विधान सर्वत्र प्रयोग में लाना चाहिये।

२. गलित वंग को ६ वार चूने के पानी में बुझाने से भी वह शुद्ध हो जाती है।

३. अकेले आक के दूध में उपरोक्त विधान द्वारा सात बार गली हुई वंग को बुझाने से भी वह शुद्ध हो जाती है।

४. संभालु के रस में हरिद्रा चूर्ण मिलाकर इस तरल के अन्दर उपरोक्त विधान द्वारा ३ बार गलित वंग को बुझाने से भी वह शुद्ध हो जाती है।

५. उपरोक्त विधान द्वारा गलित वङ्ग को पहले तीन बार खट्टी छाछ में बुझावें और फिर ३ बार घृतकुमारी के रस में। इस क्रिया से भी वङ्ग शुद्ध हो जाती है।

वंग मारण

१ ला प्रकार—शुद्ध वंग को मिट्टी के तवे (दर्वी) पर पिघलाकर उसमे समान भाग मिश्रित इमली और पीपल वृक्ष की छाल का जरा जरा सा चूर्ण डालते जांय और कर्छी से चलाते जांय। इस विधि से २ प्रहर मे वंग की भस्म हो जाती है। उक्त दोनों छालों का चूर्ण वंग से १/४ (चतुर्थांश) लेना चाहिये और उसमें से जरा जरा सा डालते हुये २ प्रहर में (वंगभस्म होने तक) उस सम्पूर्ण चूर्ण को समाप्त करना चाहिये।

जब दर्वी मे बनी हुई वंगभस्म स्वांगशीतल हो जाय तब उसे खरल में डाल ले और उसमें वंगभस्म के समान ही हरताल मिलाले। दोनो को घोटकर मिश्रित करे और फिर मिश्रण को नींबु के रसमें घोटले। पिष्टी तैयार हो जाय तो उसकी टिकिया बनाकर सुखाले और शराव सम्पुट मे वन्द करके गजपुट मे फूंक दे।

शराव सम्पुट के स्वांगशीतल हो जाने पर भस्म को उसमें से निकाले और उसमे उसका दसवां भाग हरताल मिलाकर १ प्रहर नीम्बु के रस में घोटकर टिकिया बनालें। टिकियों को सुखा, पूर्ववत् शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दे।

इस प्रकार दश पुट देने से वंग की सेवन करने योग्य भस्म तैयार हो जायेगी। हर बार दसवां भाग हरताल मिलाकर निम्बु के रस मे घोटना चाहिये।

२ रा प्रकार—शुद्ध वंग के सूक्ष्म पत्रों पर, आक के दूध में घुटने पर पिष्टी बनी हुई हरताल का लेप करें और सुखालें। अब इन सूखे हुये पत्रो को पीपल वृक्ष की सूखी छाल के चूर्ण के बीच मे रखकर शराव सम्पुट में बन्द करें और गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार सात पुट देने से वंगभस्म तैयार हो जायेगी।

३ रा प्रकार—शुद्ध वंग पत्रों को कढाई में गला कर उसमें इसके बराबर अपामार्ग (चिरचिटे) का चूर्ण मिलाकर लोहे की करछी से धीरे २ घोटते रहे। जब तक भस्म न हो जाय तब तक निरन्तर घोटते ही रहे और फिर कढाई के बीच में एकत्रित करके एक शराव से ढक दे और नीचे से १ प्रहर तक तीव्र अग्नि दें।

जव भस्म स्वांगशीतल हो जाय तो उसे पानी से भलीभान्ति धोकर अर्थात् अपामार्ग की राख को सम्पूर्णतया निकालकर वंगभस्म को घीकुमार के रस में घोटें और टिकिया बनाकर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार ७ पुट दें। वंग की भस्म तैयार हो जायेगी।

४ था प्रकार—शुद्ध वंग को कढाई में डालकर उसे चूल्हे पर चढावे। जव वह पिघल जाय तो उसमें जरा जरा सा हल्दी का चूर्ण डालकर उसे लोहे की करछी से घोटे। जब वंग की १/४ (चतुर्थांश) हल्दी जल जाय तब इसी प्रकार अजवायन का चूर्ण डालते जांय और घोटते जांय। जब वंग का चतुर्थांश अजवायन का चूर्ण जल जाय तब क्रमशः इतना २ चूर्ण जीरे, इमली की छाल और पीपल की छाल का डालकर घोटते जांय। इस क्रिया के पूर्ण होनेपर भस्म को एकत्रित करके शराव से ढक दें और १ प्रहर इस प्रकार बन्द करके अग्नि दें।

शराव के स्वांगशीतल होनेपर भस्म को लेकर भलीभान्ति स्वच्छ होने तक कई बार उसे जल मे धोवे तदनन्तर घृतकुमार के रस में घोट कर टिकिया बना, सुखा, सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार घीकुमार के सात पुट देने से सुन्दर भस्म तैयार हो जायगी।

नोटः—आजकल के क्षार विहीनता सूचक लिटमस पेपर का प्रयोग, वंगक्षार विहीन हुवा है या नहीं, करने के लिये वंग वाले जल में नीले लिटमस पेपर को डाले यदि वह लिटमस पेपर लाल हो जाय तो समझें कि क्षार अभी अवशिष्ट है। अतः पुनः धोयें लिटमस पेपर का रंग न बदले तब समझें कि वह क्षार विहीन है।

शास्त्रों मे वंग मारण के अनेक प्रकार वर्णित है। यहां सक्षेप में उपयुक्त और श्रेष्ठ भस्म वनाने के कुछ प्रकारो का वर्णन किया गया है। जितनी अधिक पुट दी जाती है उतनी ही भस्म श्रेष्ठ बनती है।

कहीं २ क्षारों को धोये बगर ही भस्म का विधान है। वह ठीक नहीं है। क्षारो को निकालकर भस्म करनी योग्य है।

वंगभस्म के गुण

बंगभस्म तिक्त, ऊष्ण तथा रूक्ष है। यह कफ, कृमि, वमन, प्रमेह, मेद, वायु, कास, श्वास, क्षय, अग्निमान्द्य, आध्मान और स्वप्नदोष को नष्ट करती है। इसके सेवन से बल, वीर्य तेज, कामशक्ति और बुद्धि की वृद्धि होती है।

वंगभस्म के सेवन से वीर्यवृद्धि और कामोत्तेजना विशेष रूप से होती है।

अशुद्ध और कची वंग, प्रमेह, गुल्म, हृद्रोग, शूल, अर्श, श्वास और वमन आदि रोगो को उत्पन्न करती है। जब कि शुद्ध वंग इन सभी विकारों को शान्त करती है। यह आंखों

के लिये हितकर, गर्भाशय के विकारो को नाश करनेवाली, प्रदर, प्रमेह, ग्रन्थिशोथ, शोष, अण्डदोष, वीर्याल्पता आदि अनेक रोगो को नाश करनेवाली तथा कामोत्तेजक है ।

इसके सेवन से अनेक प्रकार के कफजरोग यथा:-श्लेष्मकला शैथिल्य, व्रण, शोथ, शोष, अग्निमान्द्य तथा रसों की अनुत्पत्ति का नाश होता है। कफज विकारो को दूर करने के लिये और विशेषत' श्लेष्मकला विकारो के लिये वंग विशिष्ट गुणकारी है ।

वंगभस्म के सेवन से, दीर्घकाल से कास–श्वास नलियो मे रूक्ष होकर लगा हुवा कफ वहां की श्लेष्मकलाओं की क्रियाओ के प्रारम्भ होने से शीघ्र ही निकल जाता है जिससे श्वास लेने मे होनेवाली कठिनाई दूर हो जाती है और श्वास–कास नलिकाये विकृति विहीन होकर स्वास्थ्य लाभ करती है ।

जिस प्रकार वंग विलिप्त कफ को विभिन्न स्थानो से निकाल देती है उसी प्रकार रूक्षता द्वारा कुपित आहार नलिकाओ मे प्रविष्ट हुई वायु को भी वह नष्ट कर देती है और संयुक्त शिरा को आम, कफ और वात–दोष विहीन करके शरीर को पुष्ट बनाती है । शिरा और धमनियों मे प्रविष्ट हुई वायु को नष्ट करने के लिये वंग का प्रयोग लाभप्रद होता है ।

मात्राः—१/२ रत्ती से २ रत्ती तक । देश, काल, बल, आत्म, सात्म्य को देखते यथा दोषानुपान सेवन करावे ।

वंगभस्म के आमयिक प्रयोग

(१) वंगभस्म और हल्दी का चूर्ण समान भाग लेकर (१–१ या २–२ रत्ती) दोनों को एकत्र मिलाकर मधु और शाल्मलित्वग्रस (सेभल की छाल के रस) मे मिलाकर सेवन करने से समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते है ।

(२) वंगभस्म और गोखरू का चूर्ण समान भाग लेकर (२–२ या ३–३ रत्ती) दोनो को एकत्र मिलाकर, मिश्री युक्त गो-दुग्ध के साथ सेवन करने से समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

(३) वंगभस्म को गिलोय के रस और मधु के साथ सेवन करने से समस्त प्रकार के प्रमेह नष्ट होते है ।

(४) वंगभस्म शिलाजीत मे मिलाकर सेवन करने से प्रमेह, धातुक्षय, दुर्बलता और शुक्र नाश में हितकारी है ।

(५) वंगभस्म, अभ्रकभस्म, जायफल चूर्ण, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म और लौंग का समान भाग चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलाकर सेवन करने से पुत्रोत्पादक पुष्ट, अविछिन्न और अभ्रष्ट वीर्याणु उत्पन्न होते हैं ।

(६) वंगभस्म को कर्पूर के साथ सेवन करने से मुख की दुर्गन्ध नष्ट होती है ।

(७) वंग को जायफल के साथ सेवन करने से शरीर पुष्ट होता है।

(८) वंगभस्म को घृत के साथ खाने से पाण्डुरोग नष्ट होता है।

(९) वंगभस्म को तुलसी पत्र में रखकर खाने से प्रमेह नष्ट होता है।

(१०) वंगभस्म को टङ्कणक्षार के साथ सेवन करने से गुल्म का नाश होता है, तथा हरिद्रा के साथ लेने से रक्तपित्त का नाश होता है।

(११) वंगभस्म को पीपल के चूर्ण के साथ सेवन करने से अग्निमान्द्य, हल्दी के चूर्ण के साथ देने से ऊर्ध्वश्वास, चम्पा के फूलो के स्वरस के साथ सेवन कराने से शरीर की दुर्गन्धि और नीम के पत्तों के रस के साथ खाने से दाह का नाश होता है।

(१२) वीर्यस्तम्भन के लिये वंगभस्म में कस्तूरी मिलाकर सेवन करानी चाहिये।

(१३) खैर छाल के क्राथ के साथ वंगभस्म के सेवन से चर्मरोग; सुपारी के चूर्ण के साथ लेने से अजीर्ण, दूध के साथ दौर्बल्य और भांग के साथ सेवन करने से शीघ्र पतन का नाश होता है।

(१४) यदि वंगभस्म को ल्हसन के कल्क के साथ खाया जाय तो वातज पीडा अवश्य नष्ट हो जाती है।

(१५) समुद्र फल के चूर्ण में वंगभस्म मिलाकर संभालु के रस के साथ सेवन करने से कुष्ठ-अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है।

(१६) वंभभस्म को लौग के चूर्ण और समुद्र-फल के चूर्ण के साथ मिलाकर पान के रस के साथ घोटकर लेप करने से लिङ्ग वृद्धि होती है।

(१७) वंगभस्म को कुब्जता में अपामार्ग की जड के साथ, प्लीहा वृद्धि में सुहागे के साथ, वातव्याधि में अजवायन या असगन्ध के साथ, जलोदर में बकरी के दूध के साथ और कमरदर्द में जायफल तथा असगन्ध के चूर्ण के साथ सेवन कराना चाहिये।

(१८) यदि ल्हसन के स्वरस से सिद्ध तेल के साथ वंगभस्म मिलाकर नस्य ली जाय तो अपस्मार नष्ट हो जाता है।

(१९) वंगभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर त्रिफला कषाय और हरिद्रा के साथ सेवन करने से व्रणमेह नष्ट होता है।

(२०) वंगभस्म को अपामार्ग के चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से नपुंसकत्व का नाश होता है।

(२१) वंगभस्म को पान के रस मे घोटकर लेने से विबन्ध का नाश होता है।

(२२) वंगभस्म को लोहभस्म, शुक्तिभस्म और राल के साथ मिलाकर सेवन करने से श्वेत प्रदर का नाश होता है।

(२३) वंगभस्म को शशक के रक्त अथवा हरिद्रा और केशर के साथ मिलाकर भैंस के दूध मे घोटकर मुख पर प्रलेप करने से मुख की झाइयों का नाश होता है।

(२४) वंगभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर सेवन करने से वीर्यक्षीणता नष्ट होती है।

(२५) वंगभस्म को चन्दन के काथ के साथ सेवन कराने से जीर्णज्वर का नाश होता है।

(२६) वंगभस्म को स्वर्णमाक्षिक भस्म और चान्दीभस्म के साथ सेवन कराने से ऊर्ध्व जत्रुगत नाडी शूल का नाश होता है।

वंग रसायन

वंगभस्म, कान्तलोहभस्म और अभ्रकभस्म १-१ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके धतूरे, नीम के पत्ते, अनार और अपामार्ग के रस की १-१ भावना देकर सुखाले। तदनन्तर उसमे उसके बराबर राजावर्त भस्म मिलाकर गोमूत्र, शिलाजीत के पानी और गूगल मे पृथक पृथक ८-८ दिन खरल करें और उसे सुखाकर उसमे उसके बराबर नाकुलीकन्द के बीजों का चूर्ण मिलाकर पीत साक (विजय सार) के रस मे खरल करके, सुखाकर, कपडे से छानकर शीशी में भरले।

हल्दी के सत्व को गोतक्र में पीसकर उसके साथ ४-४ रत्ती मात्रानुसार यह रसायन सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह अवश्य नष्ट हो जाते है।

पथ्यः—शाली चावल, मूंगकी दाल, नवनीत, तिल का तेल, पटोल, कडवी कंदूरी और तक्र।

वंग विकार शमनोपाय

मेढसिंगी का चूर्ण और मिश्री एकत्र मिलाकर ३ दिन सेवन करने से दुष्ट वंग के सेवन से उत्पन्न हुये विकार नष्ट हो जाते है।

महौषधि राजवङ्ग

द्रव्य तथा निर्माण विधान

१ ला प्रकार—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वंग (कलई) और नौसादर समान भाग लें। प्रथम वंग को आग पर पिघलाकर पारद मे डाल दें और निम्बु का रस मिलाकर अच्छी तरह घोटें। जब वंग पारद में मिल जाय तब सैधानमक के पानी से धोवे जिससे वह अम्लहीन हो जाय। फिर गन्धक और नौसादर डालकर घोटें। जब अत्यन्त महीन कज्जली तैयार हो जाय तब उसे आतसी शीशी मे भरकर ४ याम तक बालुकायन्त्र में पकावे। शीशी का मुख बन्द नहीं करना चाहिये और उससे निकलने वाले धुयें को देखते रहना चाहिये। जब धुवां निकलना बन्द हो जाय तो औषध को तैयार समझे। तदनन्तर शीशी के स्वांगशीतल हो जाने पर उसमे से औषध को निकालकर सुरक्षित रक्खे।

[यह सुनहरे रङ्ग की भस्म बनेगी। इसी को स्वर्णवङ्ग और स्वर्णराजवङ्गेश्वर भी कहते हैं।]

स्वर्णवङ्ग के गुण

सुवर्णवङ्ग शीतवीर्य, रूक्ष, सर और तिक्त, लवण तथा अम्लरस युक्त होती है। यह उच्च कोटि की रसायन, प्रमेह नाशक, वल–वुद्धि वर्द्धक, नेत्र हितकर, वर्णवर्द्धक, अग्निदीपक, वीर्यवर्द्धक तथा मेदनाशक है। इसके सेवन से स्मृतिशक्ति वढती है और शुद्ध वीर्य की उत्पत्ति होती है। यह पूयमेह, प्रमेह, प्रदर तथा श्लेष्मकलाओं के अन्य रोगों का नाश करती है।

यह वात–पित्त–कफ उदर विकारों में लाभप्रद है। आध्मान, अजीर्ण और अन्त्र शैथिल्य में भी यह समान लाभकारी सिद्ध होती है।

स्वर्णवङ्ग के आमयिक मयोग

(१) स्वर्णवङ्ग को छुई मुई (लज्जालु, लज्जावन्ती) के मूल के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से यह रसायन क्रिया करती है।

(२) स्वर्णवङ्ग को त्रिफला के कषाय के साथ देने से यह क्षुधावर्द्धन करती है।

(३) स्वर्णवङ्ग को ब्राह्मी के ताजे पत्तों के स्वरस के साथ सेवन कराने से स्मृति की वृद्धि होती है।

(४) स्वर्णवङ्ग को उदम्बर के पत्तों के स्वरस अथवा ताजी हल्दी के स्वरस के साथ देने से पूयमेह का नाश होता है।

(५) स्वर्णवङ्ग को शीतल चीनी के साथ देने से प्रमेह तथा स्वप्नमेह का नाश होता है।

(६) स्वर्णवङ्ग को रक्तचन्दन के क्राथ के साथ सेवन कराने से दुष्ट श्वेत प्रदर भी नष्ट हो जाता है।

(७) स्वर्णवङ्ग को अश्वगन्धा के स्वरस के साथ सेवन कराने से वीर्य का पतलापन दूर हो जाता है।

(८) स्वर्णवङ्ग को इलायची के दानों के चूर्ण, नागकेसर के चूर्ण और यशदभस्म के साथ मिलाकर पथ्यपूर्वक ७ दिन तक सेवन कराने से श्वेत प्रदर मिट जाता है और १ मास के सेवन से शुक्रमेह का नाश होता है।

(९) स्वर्णवङ्ग के साथ यशदभस्म मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से वीर्य का पतलापन दूर होता है तथा बलवृद्धि होती है।

(१०) वीर्यक्षीणता के नाश के लिये स्वर्णवङ्ग को रससिन्दुर के साथ मिलाकर दिन में २ बार मधु के साथ सेवन कराना चाहिये।

स्फटिकमणि-भस्म

स्फटिकला, स्फटिक, स्फाटिक, स्फाटिकोपल, भानुर, शालिपिष्ट, सितोपल, विमलमणि, निर्मलोपल, स्वच्छमणि, अमररत्न, निस्तुपरत्न, शिवप्रिय आदि इसके अन्य अनेक नाम हैं।

शीत, स्निग्ध, निस्तुष, नेत्राकर्षक, घिसने पर पूर्ववत स्वच्छ हो जाय, स्वच्छ छायावाली और जो अन्दर से भी बिल्कुल स्वच्छ दीखती हो ऐसी स्फटिकमणि औषधोपयोग्य मानी जाती है।

स्फटिकमणि शोधन

१ ला प्रकार—गोमूत्र मे निम्बु का रस और यवक्षार मिलाकर उसमें स्फटिकमणि को स्वेदित करने से वह शुद्ध हो जाती है।

२ रा प्रकार—नीम्बु के रस में जल और सज्जीक्षार मिलाकर उसमें स्फटिकमणि को स्वेदित करने से वह शुद्ध हो जाती है।

३ रा प्रकार—शिरष के फूलों के स्वरस में स्फटिकमणि को स्वेदित करने से वह शुद्ध हो जाती है।

स्फटिकमणि मारण

शुद्ध स्फटिक का सूक्ष्म चूर्ण करके उसमे समान भाग गन्धक मिलाले। मिश्रण को निम्बु के रस के साथ ३ दिन घोटे तथा पिष्टी तैयार होने पर उसकी टिकिया बना, सुखा और शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार ७ पुट देने से इसकी श्रेष्ठ भस्म बन जातीहै।

स्फटिकमणि के गुण

यह मधुर, शक्तिप्रद और शीतल होती है। इसके सेवन से ज्वर,दाह तथा रक्तपित्त का नाश होता है।

जिनके शरीर गरम रहते हों, मस्तिष्क में गरमी रहती हो और दाह के कारण शरीर बैचेन तथा शान्ति हीन रहता हो उनको इसका सेवन सर्वदा लाभप्रद है।

इसका सेवन शरीर क्षीणता में बहुत लाभप्रद होता है।

———o———

शुक्ति-भस्म

शुक्ति के पर्याय—मुक्तास्फोट, दुर्नामा, दीर्घकोशिका, शुक्तिका, आब्धिमण्डुकी मुक्तागार, मुक्ताप्रसू, मुक्तामाता, मुक्तास्फोटा, महाशुक्ति, मौक्तिक शुक्ति।

शुक्ति शोधन

१ ला प्रकार—जयन्ती के स्वरस मे दोलायन्त्र विधि से स्वेदित करने पर शुक्ति की शुद्धि हो जाती है।

२ रा प्रकार—पानी मे निम्बु का रस मिलाकर उसमें शुक्ति डालकर १—२ घण्टे गरम करने से शुक्ति शुद्ध हो जाती है। अथवा अकेले नीम्बु के रस में दोलायन्त्र विधि से कुछ काल पकाने से शुक्ति शुद्ध हो जाती है।

शुक्ति मारण

लोहे के इमाम दस्ते में शुद्ध शुक्तियो को भरकर और भली प्रकार कूटकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। फिर इस चूर्ण को खरल में डालकर गुलाब जल मे घोटकर टिकिया बनाकर सुखादें अथवा घृतकुमार के रस में घोटकर टिकिया बनाकर सुखादें। सूखी हुई टिकियो को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार शुक्ति की श्वेत वर्ण भस्म बन जायेगी।

शुक्तिपिष्ट

शुद्ध शुक्ति का उपरोक्त विधि से सूक्ष्म चूर्ण बनाकर, कपडछन्न करके, खरल में डाल लें। अव इस खरल मे गुलाव जल भरले और घोटने लगें। जब गुलाब जल सूख जाय तो और डाल ले। इस क्रिया को तब तक करते रहें जब तक अत्यन्त सूक्ष्म, चिकनी और मृदु पिष्टी तैयार न हो जाय।

शुक्तिभस्म के गुण

यह क्षार के समान क्रिया करती है। कटु, स्निग्ध, रुचिकर, दीपनी और मधुर होती है। आमाशय और अन्त्र मे अवरुद्ध वायु के प्रतिलोम के कारण हृदय और फुफ्फुस की क्रिया मे होनेवाला अवरोध इसके सेवन से दूर होता है। यह मूत्र शर्करा, अश्मरी, आध्मान, वातशूल, यकृत्-प्लीहा शूल और वृद्धि आदि अनेक क्षार द्वारा नष्ट होनेवाले रोगो का नाश करती है।

मात्राः—२ से ४ रत्ती तक। यथादोषानुपान के साथ।

शुक्तिभस्म के आमयिक प्रयोग

शुक्तिभस्म को पीपर के साथ मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से प्लीहावृद्धि नष्ट होती है।

शुक्तिभस्म के साथ यवक्षार और सेंधानमक मिलाकर घी के साथ खाने से वातज उदर विकार नष्ट होते है।

शुक्तिभस्म को त्रिफला, यष्टिमधु और त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से कफज, आमज और पित्तज शूल नष्ट होते है।

शुक्तिभस्म को आमले के चूर्ण के साथ मिलाकर मकोय के रस के साथ लेने से हृदय के कारण उत्पन्न हुवा शोथ नष्ट होता है और इसी प्रकार दीर्घकाल तक सेवन करते रहने से हृदय के वात—कफज रोग नष्ट होते है।

शुक्तिभस्म के साथ त्रिकटु चूर्ण मिलाकर मधु और वासे के रस के साथ सेवन कराने से श्वास रोग का नाश होता है।

शुक्तिभस्म के साथ त्रिकटु, चित्रकमूल और यवक्षार के चूर्ण मिलाकर मधु के साथ चटाने से अग्निवृद्धि होती है।

शुक्तिभस्म को तृण पञ्चमूल के क्वाथ के साथ सेवन करने से मूत्र शर्करा और साधारण अश्मरी भी नष्ट हो जाती है।

शुक्तिभस्म के साथ त्रिकटु, त्रिक्षार, सैन्धव तथा सामुद्रिक नमक मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से दारुण प्लीहावृद्धि का नाश होता है।

शुक्तिभस्म को शिलाजीत, वङ्गभस्म और राल के चूर्ण के साथ मिलाकर घीकुमार के रस के साथ सेवन कराने से उदर की वायु के कारण सतत उत्तेजना होने से उत्पन्न हुवा प्रदर रोग नष्ट हो जाता है।

शुक्तिपिष्ट के गुण

यह शीतवीर्य, पोषक, दाहनाशक, वात-पित्तशामक और अग्निवर्द्धक है। इसकी क्रिया भी भस्म के समान ही होती है, केवल अन्तर इतना रहता है कि जहां भस्म के सेवन से श्लेष्मकलाओ में दाह इत्यादि अर्थात् मुख की कलाओं से व्रण इत्यादि का भय रहता है वहां इसके सेवन से किसी प्रकार के भी श्लेष्मकला विकार की सम्भावना नहीं होती। यह श्लेष्म के दाह को नाश करती है और व्रणों को नष्ट करती है।

इसका उपयोग क्षय, दाह, अम्लपित्त और अन्य वात-पित्तज विकारों में मधु के साथ १-२ रत्ती की मात्रा मे कराना चाहिये।

शंख-भस्म

शंख के पर्याय—कम्बु, कम्बू, कम्बोज, अब्ज, त्रिरेख, जलज, अर्णोभव, पावनध्वनि, अन्तःकुटिल, शंखक, महानाद, हरिप्रिय, पूत, दीर्घनाद और बहुनाद।

गोलाकार, स्निग्ध, छोटे मुखवाला, स्वच्छ, भारी और बडा शंख भस्म बनाने के योग्य होता है।

शंख के दो भेद है। दक्षिणावर्त और वामावर्त। दक्षिणावर्त शंख देव पूजा में श्रेष्ठ होता है और यदि इसकी भस्म का प्रयोग किया जाय तो वह त्रिदोष नाशक होती है। परन्तु दक्षिणावर्त शंख सुलभ नहीं होता। वामावर्त सुलभ होता है अतः इसी को सब भस्म पिष्टादि बनाने के लिये काम में लाते है।

शंख शुद्धि

१. जयन्ती के रस में दोलायन्त्र विधि से स्वेदित करने से शंख शुद्ध हो जाता है। अथवा काञ्जी में शुद्ध करने से वह शुद्ध हो जाता है।

२. चौलाई के जल मे दोलायन्त्र विधि द्वारा पकाने से शंख शुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार नीम्बु के रस में स्वेदित करने से शंख शुद्ध हो जाता है।

३. शंख को इमाम दस्ते में कूटकर छोटे २ टुकडे करलें। अब इन टुकडो को पोटली मे बांधकर दोलायन्त्र विधि से जम्बीरी निम्बु के रस मे ३–४ याम तक स्वेदन करें। फिर पोटली खोलकर गरम पानी से शंख के टुकडों को धो लें।

शुद्ध शंख के प्रयोग

शुद्ध किये शंख के साथ पीपर, कालीमिर्च, मनसिल आदि द्रव्यो को यथा विधान मिलाकर, अञ्जन बनाकर आंख में लगाते है और इससे तिमिर अर्बुद आदि का नाश होता है।

शंखनाभि वर्ति—१. शंखनाभि, वच, हैड, कालीमिर्च, कूठ और बहेडे की मींगी। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर भलीप्रकार घोटकर सूक्ष्म चूर्ण बनावें और फिर मनुष्य के मूत्र मे घोटकर वर्ति बना छाया में सुखालें। इस वर्ति को पानी में घिसकर आंखमे आंजने से तिमिर, विचिट, फूला और पटल नामक रोग का नाश होता है। (ग. नि.। नेत्ररोग.।)

२. शंख, फूल प्रियंगु, मनसिल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड, बहेडा और आमला इनके समान भाग चूर्ण को पीसकर वर्ती बनावें, इसे आंख में आंजने से नेत्र स्वच्छ हो जाते है।

३. शंख चूर्ण, स्रोतोञ्जन (सुरमा), लाख, कालीमिर्च, मनर्सिल, अजवायन, समुद्रफेन और ताम्रचूर्ण (या भस्म) समान भाग लेकर सबको मधु मे घोटकर वर्ति बनावे। यह वर्ति फूले, काच, अर्म और पिष्टक को नष्ट करती है।

४. शुद्ध शंख के सूक्ष्म चूर्ण को मधु में मिलाकर आंख मे आंजने से या निर्मली के फल और सेधानमक का बारीक चूर्ण करके आंजने से अथवा समुद्रफेन और मिश्री का अञ्जन बनाकर लगाने से अर्जुन नामक नेत्ररोग नष्ट होता है।

शङ्ख मारण

शुद्ध शङ्ख का बारीक चूर्ण करके उसे खरल मे गुलाब जल के साथ घोटकर टिकिया बनाले। टिकियों को सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। सम्पुट के स्वांगशीतल हो जाने पर उसमें से शंखभस्म निकालकर पुनः गुलाबजल में घोटकर उपरोक्त विधि से पुट दें और फिर सम्पुट में से निकाल और घोटकर प्रयोगार्थ रखलें। दो पुट मे शंख की अच्छी भस्म बन जाती है।

शंखभस्म के गुण

शंखभस्म शीतवीर्य और मधुर विपाकवाली होती है। इसके सेवन से पित्तज और वातज उदर रोग नष्ट होते है तथा अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, ग्रहणिशूल, परिणाम शूल, उदरशूल, विषदोष आदि का नाश होता है।

मात्राः—१ से ४ रत्ती तक । यथादोषानुपान ।

शंखभस्म के आमयिक प्रयोग

शंखभस्म को निम्बु के रस के साथ सेवन कराने से अतिसार और ग्रहणी का नाश होता है ।

शंखभस्म को त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से अग्निवृद्धि होती है ।

शंखभस्म को आमले के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से अम्लपित्त का नाश होता है ।

शंखभस्म को यवक्षार और त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर देने से गुल्म, और हींग तथा त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर देने से त्रिदोषज शूल का नाश होता है ।

शंखभस्म को पुरातन गुड और त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर देने से परिणाम शूल का नाश होता है ।

शंखभस्म को भारङ्गी-चूर्ण के साथ मिलाकर देने से दारुण श्वास का नाश होता है ।

शंखभस्म के साथ सोठ का चूर्ण मिलाकर देने से अग्निवृद्धि होती है ।

शंखभस्म ४ भाग, शुद्ध अफीम १ भाग और जायफल तथा सुहागे की खील १—१ भाग एकत्र मिलाकर यथामात्रा प्रयोग करने से समस्त प्रकार के अतिसार का नाश होता है।

शंखभस्म को मुल्हैठी और रसौत के समान भाग मिश्रित चूर्ण के साथ सेवन कराने से बच्चो का गुदपाक रोग नष्ट होता है ।

शंखभस्म को करञ्ज की गिरी, भुनी हुई हींग, त्रिकटु, पीपल और सेधानमक के चूर्ण के साथ मिलाकर गरम जल के साथ सेवन कराने से समस्त प्रकार के शूल नष्ट होते है ।

शंख द्राव

शंख चूर्ण, यवक्षार, सज्जीक्षार, सुहागा, पांचोनमक, फिटकरी और नौसादर समान भाग लेकर सबको आतसी शीशी मे भरकर वारुणी यन्त्र की विधि से अर्क खीचे ।

यह रस शंख, सीप और कौडी को आधे प्रहर मे गला देता है ।

इसके सेवन से अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, आठ प्रकार के उदर रोग, गुल्म, अजीर्ण, ग्रहणी रोग और विषूचिका का नाश होता है ।

भोजनोपरान्त इसकी १ बूंद जल के साथ मिलाकर पी लेने से आहार तुरन्त पच जाता है और भूख अच्छी लगती है ।

नोटः—शंखद्राव बनाने के अनेक विधान है । स्थानाभाव से यहां सबका उल्लेख नही हो सका है ।

सप्तरत्नभस्म

हीरा, पन्ना, पुखराज, माणिक्य, पद्मराग, मुक्ता और मरकत इस प्रकार नव रत्नों में से ७ रत्न लेकर प्रत्येक को यथाविधि शुद्ध करके सबका मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण करलें और फिर इस सूक्ष्म चूर्ण मे इसके समान शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक और मनसिल मिलाकर भलीप्रकार खरल करें। मिश्रण तैयार होने पर इसे शराव सम्पुट मे बन्द करें और गजपुट मे फूंक दें। इस क्रिया को तब तक करते रहें जब तक कि इस रत्न समुदाय की इच्छित भस्म न हो जाय। सम्भवतः १४ पुट देने से भस्म अच्छी तैयार हो जायगी।

सप्तरत्नभस्म के गुण

यह भस्म शीत, सर, विषघ्न, चक्षुष्य, रसायन, बल्य, वर्ण्य और सब रोगनाशक तथा ओज, प्रभा, वीर्य, पुष्टि आदि को बढाने वाली है।

इसके सेवन से राजयक्ष्मा, ज्वर, मोह, क्षीणता, नपुंसकता, मूर्च्छा, रक्तपित्त, विष, श्रम आदि अनेक नाडी दौर्बल्य जन्य तथा शरीर क्षीणता जन्य रोगों का नाश होता है।

मात्राः—१/१६ रत्ती से १/४ रत्ती तक। यथा दोषानुपान।

सावरशृंग-भस्म

बाराह सींगे के ऐसे सींग को लें जो छिद्र रहित हो दीर्घाकार, भारी, दृढ और अनेक-शृङ्गवाला हो।

शृङ्ग मारण

मजबूत, अच्छा और भारी सींग लेकर करवत (आरी) से काट २ कर उसके ५—५ अंगुल लम्बे टुकडे बनालें और खुले हुये स्थान मे अङ्गारों पर रखकर इन टुकडो को जला दे। (जलते हुये सींग मे से दुर्गन्ध आती है अतः खुले हुये स्थान पर जलाना ठीक होगा।) जब सब टुकडे भलीभान्ति जल चुके नो ठण्डा होने पर उन्हें खरल में डालकर मर्दन करे। जब सूक्ष्म चूर्ण हो जाय तो आक के दूध के साथ इसे खरल करें और पिट्ठी तैयार होनेपर टिकिया बनाकर सुखालें। सूखी हुई टिकियो को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दे। इस प्रकार ३ पुट देने से सावरसींग की अच्छी भस्म तैयार हो जायगी।

मात्राः—१ रत्ती से ४ रत्ती तक। अनुपान—मधु या गाय के घृत मे मिलाकर चटावे।

आमयिक प्रयोग—इसके सेवन से हृच्छूल, पार्श्वशूल, फुप्फुसावर्ण शूल, कफज-कास और साधारण श्वास मे लाभ होता है।

सुवर्ण-भस्म

सुवर्ण के पर्याय—स्वर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, शातकुम्भ, गाङ्गेय, भर्म्म, चामीकर, जातरूप, महारजत, काञ्चन, रुक्म, रुग्म, कार्तस्वर, जाम्बूनद, अष्टापद, करहाटक, लोहोत्तम, चाम्पेय, लोहवर, स्पर्शमणिप्रभव आदि इसके अन्य नाम हैं।

स्वर्ण परीक्षा

गरम करन से लाल, काटने पर सफेद, कसने पर शर जैसा, स्निग्ध, कोमल, भारी गुणवाला सुवर्ण ग्राह्य माना जाता है।

कठिन, लघु, रूक्ष, कसने, काटने और गरम करने पर सफेद हो जाता हो तथा चांदी और ताम्बे के मिश्रिन स्वर्णवाला ऐसा स्वर्ण अग्राह्य है।

सुवर्ण शोधन के कारण

अशुद्ध सुवर्ण की भस्म का सेवन करने से वल–वुद्धि की क्षीणता होती है और अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः सुवर्ण को शुद्ध करके ही प्रयोग मे लाना चाहिये।

स्वर्ण शोधन

१ ला प्रकार—स्वर्ण को अग्नि पर पिघला २ कर ३ वार कचनार के रस में वुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

२ रा प्रकार—वल्मीक मृतिका (वंत्री की मिट्टी), घर का धुवां, गेरू, ईट का चूर्ण और सेंधानमक प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण करें और उसे जम्वीरी निम्वु के रस या कांजी मे पीसकर सुवर्ण पत्रों पर लेप करदे। तदनन्तर इन्हे शराव सम्पुट मे वन्द करके एक वडी अंगीठी मे निर्वात स्थान में २० उपलों की अग्नि दें (यदि स्वर्ण अधिक हो तो उपले भी अधिक लगाने चाहिये)। जव तक स्वर्ण का रङ्ग उत्तम न हो जाय तव तक अग्नि देनी चाहिये। इस प्रकार स्वर्ण भलीभान्ति शुद्ध हो जाता है।

३ रा प्रकार—स्वर्ण के पत्तों को अग्नि मे तपा तपा कर ३–३ वार तेल, तक्र, काञ्जी, गोमूत्र और कुलथी के क्वाथ मे वुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

शुद्ध स्वर्ण का प्रयोग

शुद्ध स्वर्ण के पत्र (वर्क) वनाकर उनका प्रयोग करे।

स्वर्ण पत्रों को घिस घिस कर पिलाने से विष, पित्तरोग, हृदय विकार, दुर्वलता, गर्भदोष आदि विकार नष्ट होते है। यह मधुर, शीतल और नेत्रों के लिये हितकर है।

स्वर्णपत्रों के सेवन से शरीर की शक्ति वढती है, अग्नि वढती है, आक्षेप का नाश होता है और अम्लपित्त, हृद्विकार, हिक्का, विषदोष, श्लेष्मविकार, शूल, व्रण आदि रोगों का नाश होता है। यह विपाक में मधुर और वीर्य में शीत है।

इसको या तो मिश्री मे मिलाकर या पान मे डालकर अथवा पाक, मुरब्बे इत्यादि पदार्थों में मिलाकर सेवन कराना चाहिये।

स्वर्ण मारण

१ ला प्रकार—सोने के विशुद्ध सूक्ष्म पत्र १। तोले लें। इनके समान ही संस्कारित पारद लें। दानो को एक खरल मे डालकर मर्दन करें। फिर निम्बु का रस खरल मे डालकर दोनों के मिश्रण को घोटें। भलीप्रकार भावित करके नीम्बु के रस को खरल में से निकाल लें। और फिर मिश्रण को स्वच्छ पानी से धो डालें। अब इस मिश्रण मे १।-१। तोला शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल और साफ किया हुवा १। तोला नौसादर डालें और फिर सबको एकत्र मर्दन करके नीम्बु के रस के साथ मर्दन करें। धूप मे जलीयांश को उडाकर मिश्रग का सूक्ष्म चूर्ण करले। अब इस चूर्ण को शराव सम्पुट में वन्द करके लघुपुट में फूंक दे। इस प्रकार तव तक पुट दे जव तक कि स्वर्ण की इच्छित भस्म तैयार न हो जाय।

२ रा प्रकार—समान भाग शुद्ध पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसे कचनार की छाल के रस में खरल करें। १ भाग स्वर्णपत्रों पर इस कज्जली के १ भाग का लेप कर दें। तत्पश्चात् कचनार की छाल को बारीक पीसकर उसकी दो मूषा बनावें और उनमे उपरोक्त स्वर्णपत्रों को बन्द करदे। इस मूषा को मिट्टी के शराव सम्पुट में बन्द करके उसके जोड को अच्छी तरह बन्द करदें। मूषा पर कपडमिट्टी करके सुखालें। इसे तीव्राग्नि मे पकावे। इस प्रकार ३ पुट देने से स्वर्ण की निरुत्थ भस्म वन जायेगी।

३ रा प्रकार—शुद्ध स्वर्णपत्रों को कैंची से काट २ कर उनके सूक्ष्म टुकडे बनाले। अब स्वर्ण के समान भाग पारा ले और दोनो को एकत्र खरल करें। फिर निम्बु के रस के साथ दोनों को खरल करें। तदनन्तर उसे अनेक बार पानी से खूब धो डाले। इसमें स्वर्ण के समान मनसिल और रससिन्दुर तथा स्वर्ण से चौथाई स्वर्णमाक्षिक मिलावे। सबको आक के दूध में एकत्र खरल करें और घुटकर तैयार होने पर विधि पूर्वक पुट दें। इस प्रकार पुट देने से थोडे ही पुटो मे भस्म तैयार हो जाती है। जब तक स्वर्ण की निश्चन्द्र भस्म न बन जाय तब तक पुट देते रहे।

ध्यान रहे कि स्वर्णमाक्षिक केवल पहले पुट मे ही मिश्रित की जाय।

४ था प्रकार—शुद्ध मनसिल और सिन्दुर बराबर २ लेकर दोनों को एकत्र मिलाकर आक के दूध की ७ भावनाये दें। प्रत्येक भावना के पश्चात् मिश्रण को सुखा लेना चाहिये।

तदनन्तर १ भाग स्वर्ण को गलाकर उसमें एक भाग उपरोक्त मिश्रण डाल दे और तीव्राग्नि पर रख कर इतना धमावे कि मनसिल आदि का मिश्रण अदृश्य हो जाय। इसी प्रकार इस मिश्रण को ३ बार मिलाकर धमाने से स्वर्णभस्म हो जाती है।

स्वर्णभस्म के गुण

स्वर्णभस्म शीतल, वृष्य, बलवर्द्धक, भारी, रसायन, पिच्छिल, पवित्र, बृंहण, नेत्रों के लिये हितकर, केश्य, दीपन, मेधावर्द्धक, बुद्धिवर्द्धक, स्मृतिवर्द्धक, हृदय के लिये हितकारी, आयुवर्द्धक, कान्तिकारक, वाणीशोधक तथा स्थावर और जङ्गम विषनाशक है।

स्वर्णभस्म के सेवन से क्षय, उन्माद, त्रिदोष, अन्त्रशोथ, ज्वर और शोष का नाश होता है। स्वर्ण में मधुर, तिक्त और कषाय रस होते है। यह पाक मे स्वादु है।

स्वर्ण के सेवन से, चिन्ता, शोक, भय, क्रोध आदि मानसिक विकारों से होनेवाले रोगों का नाश होता है तथा रक्तचाप की वृद्धि यथास्थिर होती है और अस्थिक्षत, अस्थिशोथ, जङ्घास्थि वेदना, फिरङ्गज अण्डवृद्धि, योषापस्मार, चित्तोद्वेग, भ्रम, ग्लानि, हृदयवेदना, शुष्क शोथ, कास, श्वास, अतिसार, ग्रहणी आदि का नाश होता है और ओज की वृद्धि होती है।

स्वर्णभस्म वातनाशक और पोषक होने के कारण क्षीणता दूर करके, शरीर की वृद्धि करती है और पुष्ट मनुष्य को अधिक पुष्टि प्रदान करती है।

जिन मनुष्यों को बुद्धि से काम करना पडता हो अथवा जिन मनुष्यों की स्मृति और मेधा बढाने की आवश्यकता हो उनके लिये स्वर्णभस्म बहुत ही उपयोगी है।

स्वर्णभस्म योगवाही और त्रिदोषनाशक होने के कारण सभी रोगों में विविध योगों के साथ दी जाती है।

वारितर स्वर्णभस्म अन्य भस्मों की तरह ही शरीर के पाचक रसों के साथ मिलकर प्रसृत होती हुई रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, शुक्र और ओज की वृद्धि करती है।

मात्राः—१/१६ रत्ती से १/८ रत्ती तक। यथादोषानुपान के साथ।

स्वर्णभस्म के आमयिक प्रयोग

स्वर्णभस्म को वच के चूर्ण के साथ सेवन कराने से मेधा की, कमल-केशर के साथ सेवन कराने से कान्ति की, शंखपुष्पी के चूर्ण के साथ सेवन कराने से आयु की और विदारी कन्द के चूर्ण के साथ सेवन कराने से पुष्टवीर्य की वृद्धि होती है।

स्वर्णभस्म को आमले के चूर्ण और मधु के साथ सेवन कराने से अरिष्ट लक्षणयुक्त व्यक्ति की भी आयु स्थिर हो जाती है।

स्वर्णभस्म को ब्राह्मी स्वरस, वच, कूठ और शंखपुष्पी के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से उन्माद, चित्तभ्रम, अपस्मार और भूत बाधा का नाश होता है। इस योग को नस्य और अञ्जन द्वारा ही प्रयोग मे लाना चाहिये।

स्वर्णभस्म को कमलगट्टे की गिरी, धान की खील और फूल प्रियंगु के साथ मधु मिलाकर चाटने पर ऊपर से गाय का दूध पीने से अलक्ष्मी का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को शतावरी-घृत और मधु मिलाकर सेवन कराने से शरीर पुष्ट होता है।

स्वर्णभस्म को कमल और नीलोत्पल के क्वाथ तथा मुल्हैठी के कल्क के साथ सिद्ध किये हुये गो घृत के साथ देने से शरीर कान्तिमान और बलवान होता है तथा आयु की वृद्धि होती है। इसको चाटकर ऊपर से कमल, नीलोत्पल और मुल्हैठी के साथ पकाया हुवा दूध पीना चाहिये।

स्वर्णभस्म को रससिन्दुर और बिल्व की त्वचा के रस के साथ मिलाकर सेवन कराने से वातिकज्वर का नाश होता है।

स्वर्णभस्म के साथ रससिन्दुर मिलाकर पित्तपापडे के क्वाथ के साथ देने से पैतिकज्वर का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर तुलसी के रस के साथ देने से कफज्वर का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को अभ्रकभस्म के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से जीर्णज्वर का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को बिल्व के गूदे और जीरे के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से अतिसार का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को रसपर्पटी के योग के साथ सेवन कराने से पुरातन संग्रहणी रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

स्वर्णभस्म को गिलोय के सत्व और लौहभस्म के योग के साथ सेवन कराने से पाण्डु रोग का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को अभ्रकभस्म, रससिन्दुर और मुक्ताभस्म के साथ मिलाकर सेवन कराने से राजयक्ष्मा का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को क्षीर काकोली और चोपचीनी के चूर्ण के साथ देने से गर्भाशय के दोष दूर होते है।

स्वर्णभस्म के साथ रसकपूर, गिलोय सत्व और केशर मिलाकर अनन्त मूल के क्वाथ के साथ देने से फिरङ्गजन्य दोष दूर होते है।

स्वर्णभस्म को आमले के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से अम्लपित्त का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को रससिन्दुर, अभ्रकभस्म और शंखपुष्पी के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से अपस्मार का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को कज्जली के साथ मिलाकर पुनर्नवा के क्वाथ और गोमूत्र के साथ सेवन कराने से मुश्क शोथ का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को सोंठ और लवङ्ग चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से त्रिदोषज उन्माद का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को नागकेसर के चूर्ण के साथ मिलाकर ऋतुमती को देने से उसमें गर्भ धारण की शक्ति उत्पन्न होती है।

स्वर्णभस्म को काकोल्यादि गण की यथालभ्य औषधों के साथ मिलाकर सेवन कराने से स्तन्य की वृद्धि होती है।

स्वर्णभस्म को चांदीभस्म और मिश्री के साथ मिलाकर सेवन कराने से विषबाधा का नाश होता है।

स्वर्णभस्म को सितोपला के साथ मिलाकर सेवन कराने से अस्थि शोथ और अस्थिक्षय का नाश होता है। छोटे बच्चो को, जिनमे अस्थिविकार मिलते हों, इस योग का सेवन बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है।

स्वर्णभस्म को अभ्रकभस्म और लोहभस्म के साथ एक तीन और तीन की मात्रा के अनुपात में वरुण क्वाथ के साथ सेवन कराने से दाह और शोथ युक्त वृक्क रोग का भी नाश होता है।

स्वर्णभस्म को शिलाजीत, लौहभस्म और चांदीभस्म के साथ मिलाकर सेवन कराने से गर्भाशय का शोथ नष्ट होता है।

स्वर्णभस्म को श्वेत त्वचा के चूर्ण के साथ सेवन कराने से मस्तिष्क शोथ नष्ट होता है।

स्वर्णभस्म को अभ्रकभस्म और लोहभस्म के साथ मिलाकर सेवन कराने से अन्त्रगत वातदोष नष्ट होता है।

स्वर्णभस्म को हरिद्रा, पुनर्नवा, सोंठ और त्रिफला चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से अण्डशोथ का नाश होता है।

सुवर्णमाक्षिकभस्म

सुवर्णमाक्षिक के पर्याय—सुवर्णमाक्षिक, हेममाक्षिक, माक्षीक, माक्षिक, धातुमाक्षिक आदि।

साधारणतः सुवर्ण के सदृश होने से तथा सुवर्ण समान गुण और सुवर्ण के जैसी चमक होने से इसे सुवर्णमाक्षिक कहते है।

जो सुवर्णमाक्षिक स्निग्ध, भारी, कुछ नीलापन लिये तथा कसौटी पर कसने से सुवर्ण जैसी चमकवाला और टुकडे करने पर भी सुवर्ण के सदृश चमकवाला हो वह औषध-कर्म योग्य माना जाता है।

अशुद्ध स्वर्णमाक्षिक की भस्म के सेवन से, अग्निमान्द्य, बलह्रास, कब्ज, नेत्ररोग, कुष्ठ, हलीमक, गण्डमाला, क्षय, अन्धता, कृमि, उदर मे वात वृद्धि आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः इसको शुद्ध करके ही भस्म बनाने के काम में लाना चाहिये।

सुवर्णमाक्षिक शोधन

१ ला प्रकार—स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण को कपडे की पोटली में बांधकर दोलायन्त्र विधि से कुलथी के क्वाथ या मनुष्य के मूत्र मे स्वेदित करने से वह शुद्ध हो जाता है।

२ रा प्रकार—३ भाग स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण में १ भाग सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर लोहे की कढाई मे डालकर तेज अग्नि पर पकावे और थोडा थोडा मातुलुङ्ग या बिजौरे का रस डालते हुए लोहे की करछली से चलाते रहें। स्वर्णमाक्षिक खूब लाल हो जाय तो अग्नि बन्द करदें। इस विधि से स्वर्णमाक्षिक शुद्ध हो जाता है।

बार २ पानी से धोकर सेंधानमक निकाल देना चाहिये।

३ रा प्रकार—स्वर्णमाक्षिक के बारीक चूर्ण को कपडे की पोटली मे बांधकर दोलायन्त्र विधि से जलचौलाई (कालमरिष) के क्वाथ मे स्वेदित करें। जब चूर्ण कपडे से छन कर क्वाथ में मिल जाय तब उसे लेकर फिर पोटली मे बांध ले और शालाञ्चि शाक के क्वाथ मे स्वेदित करे। जब सब चूर्ण कपडे से छनकर क्वाथ में गिर जाय तब उसे सुखालें। इस विधि से स्वर्णमाक्षिक शुद्ध हो जाती है।

४ था प्रकार—चूर्णित स्वर्णमाक्षिक को पोटली में बांधकर केले की जड के रस में पकाने से वह शुद्ध हो जाती है।

स्वर्णमाक्षिक मारण

१ ला प्रकार—४ भाग शुद्ध माक्षिक के चूर्ण में १ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर अरण्डी के तेल मे खरल करें और टिकिया बना ले। शराव सम्पुट मे इन टिकियों को इस प्रकार बन्द करे कि उनके ऊपर और नीचे धान की भूसी रक्खी जा सके। सम्पुट को विधान पूर्वक तैयार करके गजपुट मे फूंक दें। इस विधान से स्वर्णमाक्षिक की सिन्दुर के समान लाल भस्म हो जायगी।

२ रा प्रकार—स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण को क्रमशः गोमूत्र, तक्र और कुलथी के क्वाथ मे घोट २ कर सुखाले फिर उसमें चतुर्थांश शुद्ध गन्धक मिलाकर निम्बु के रस मे खरल करें और टिकिया बनाकर सुखालें तथा शराव सम्पुट में बन्द करके वाराह पुट में फूंक दे। इस प्रकार ५ पुट देने से भस्म हो जाती है।

३ रा प्रकार—शुद्ध स्वर्णमाक्षिक भस्म के सूक्ष्म चूर्ण को पहले निम्बु के गूदे में

पकावें और फिर उसे खरल मे डालकर निम्बु के रस के साथ घोटे और पिष्टी तैयार होने पर टिकिया बनाकर सुखालें । इन टिकियों को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दें । इस प्रकार दस पुट देने से स्वर्णमाक्षिक की सुन्दर लाल भस्म तैयार हो जायगी ।

४ था प्रकार—शुद्ध स्वर्णमाक्षिक का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उसमे माक्षिक का अष्टमांश हिंगुल मिलावें । दोनो को एकत्र घोटकर मिश्रण को निम्बु के रस में खरल करे । पिष्टी तैयार हो जाने पर टिकिया बनालें । टिकियो को शराव सम्पुट मे बन्द करके गजपुट मे फूंक दे । इस प्रकार ८ पुट देने से स्वर्णमाक्षिक की सुन्दर रक्त वर्ण की भस्म तैयार हो जाती है । (हिंगुल प्रत्येक बार मिलाना चाहिये ।)

स्वर्णमाक्षिकभस्म के गुण

स्वर्णमाक्षिक भस्म तिक्त, मधुर, प्रमेह नाशक, अर्शहर तथा क्षय, कुष्ठ, कफ और पित्त को नष्ट करनेवाली, शीतल एवं योगवाही रसायन है ।

इसके सेवन से मूत्र दोषो के कारण होनेवाली वस्तिदाह, वस्तिवेदना और वस्तिशोथ नष्ट होते है तथा यह पाण्डु, कुष्ठ, विषदोष, जीर्णज्वर, अपस्मार, मन्दाग्नि, अरोचक आदि विकारों का नाश करती है । स्वर्णमाक्षिक सर्व रोग नाशक, पारद का प्राणस्वरूप अत्यन्त वृष्य और श्रेष्ठ रसायन है ।

मात्राः—१/२ रत्ती से २ रत्ती तक । वल—कालादि की अपेक्षा रखते हुये । यथादोषानुपान के साथ ।

स्वर्णमाक्षिकभस्म के आमयिक प्रयोग

स्वर्णमाक्षिक को कचनार की छाल के क्वाथ के साथ देने से अन्दर समाई हुई मसूरिका बहार निकल आती है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को शाल सारादि गण की भावना देकर तैयार करें। इसके प्रयोग से सान्द्रमेह का नाश होता है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को शिलाजीत, अभ्रकभस्म, वायविडङ्ग और मधु के साथ मिलाकर १ मास तक सेवक कराने से यक्ष्मा रोग का नाश होता है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को यवक्षार के साथ मिलाकर सेवन कराने से दारुण मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को पुनर्नवा, गिलोय, सोठ और दारु हरिद्रा के क्वाथ के साथ मिलाकर सेवन कराने से शोथ का नाश होता है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को अतिविप और करंज के साथ मिलाकर सेवन कराने से विषम ज्वर का नाश होता है ।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को पीपल और बहेडे के चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ चटाने से कास रोग का नाश होता है।

स्वर्णमाक्षिकभस्म को रससिन्दुर और गन्धक के साथ मधु में मिलाकर चटाने से रक्तपित्त का नाश होता है।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को वंशलोचन के चूर्ण के साथ २ महिने सेवन कराने से शक्ति वृद्धि होती है।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को रससिन्दुर, अभ्रकभस्म और त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन कराने से गर्भिणीज्वर का नाश होता है।

२ भाग स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ १ भाग रससिन्दूर मिलाकर मधु के साथ चटाने से बल्वीर्य की वृद्धि होती है।

स्वर्णमाक्षिकभस्म को पिण्ड खर्जूर के साथ मिलाकर सेवन कराने से गर्भिणी के रक्तस्राव को रोकता है।

स्वर्णमाक्षिक भस्म को अतिविष, बिल्व, बला, सोंठ और वेतस के क्वाथ के साथ सेवन कराने से ज्वरातिसार का नाश होता है।

स्वर्णमाक्षिक सत्व पातन

१ ला प्रकार—स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण को लोहपात्र में डालकर आग पर रक्खे और लोहदण्ड से रगडते रहें। जब वह लाल हो जाय तो नीम्बु का रस डालकर घोटें और उसमें स्वर्णमाक्षिक से ३ गुना पारद मिलाकर १ दिन घोटकर मजबूत कपडे से छान ले। छानने से कपडे में पिष्टी रह जायगी और पारद नीचे निकल जायेगा। इसी प्रकार २–३ बार छान लें। तदनन्तर इस पिष्टी के गोले को डमरूयन्त्र में रखकर दो प्रहर अग्नि पर पकावें। तत्पश्चात् यन्त्र के स्वांगशीतल होने पर उसे खोलकर नीचे के पात्र में से वीरबहूटी के समान लाल रङ्ग के सत्व को निकाल ले।

इस सत्व में सुहागा मिलाकर मूषा मे रखकर धमाने से वह ताम्र के समान हो जाता है। यह सत्व देह को लौह के समान कर देता है। यह विधि "देवी शास्त्र" मे वर्णित है।

२ रा प्रकार—शुद्ध स्वर्णमाक्षिक के सूक्ष्म चूर्ण को मधु, एरण्ड तेल, गोमूत्र, घी और केले की जड के रस की सात भावनायें देकर मूषा में रखकर धमाने से उसका सत्व निकल आता है।

स्वर्णमाक्षिक सत्व ताम्र के समान होता है, उसका रंग चौटली के समान लाल होता है और सत्व मृदु होता है तथा शीघ्र पिघल जाता है। स्वर्णमाक्षिक सत्व शीतल और देह को दृढ करनेवाला है।

३ रा प्रकार—शुद्ध स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण मे उसका चतुर्थांश सुहागा मिलाकर मूषा में रखकर धमाने से उसका सत्व निकल आता है।

४ था प्रकार—स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण में तीसरा भाग सीसा मिलाकर क्षार और अम्ल द्रव्यों के साथ खरल करे। तदनन्तर उसे खुली हुई मूषा मे रखकर धमाने से उसका सत्व निकल आता है।

इस सत्व को पिवला पिघला कर सात वार संभालु के रस मे बुझाने से उसमें मिला हुवा सीसा नष्ट हो जाता है।

स्वर्णमाक्षिक सत्व-मारण

५ तोले स्वर्णमाक्षिक के सत्व मे उसके सनान शुद्ध गन्धक मिलाकर खरल करें और फिर एक दिन जम्बीरी निम्बु के रस मे मिश्रण को घोटे। पिष्टी तैयार होने पर छोटी छोटी टिकिया बनाले और उन्हे सुखाले। टिकियो को शराव सम्पुट मे वन्द करके तीव्र अग्नि मे पुट दें। इस प्रकार ३ पुटों से माक्षिक सत्व की श्रेष्ठ भस्म तैयार हो जाती है।

स्वर्णमाक्षिक सत्व के गुण

यह शीत, रुचिकर, वृष्य, वल्य, मेध्य और रसायन है। इसके सेवन से जीर्णज्वर, रक्तपित्त, क्षय, कास, दाह आदि रोगों का नाश होता है।

स्वर्णमाक्षिक सत्व के आमयिक प्रयोग

स्वर्णमाक्षिक सत्व का स्वर्णमाक्षिकभस्म के समान ही उपयोग होता है। सत्व-भस्म के सेवन से रोग शीघ्र और भयङ्कर हो तो भी मिट जाते हैं।

सुवर्णमाक्षिक सत्वाभ्र रसायन

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्वर्णमाक्षिक सत्व और शुद्ध पारद १—१ भाग लेकर दोनों को एकत्र खरल करे। जब दानो मिल जांय तो उसमे १ भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर खरल करे और कज्जली हो जाने पर उसमे एक भाग अभ्रकसत्व मिलाकर पुनः खरल करें। जव मिश्रण अत्यन्त सूक्ष्म हो जाय तो उसे शराव सम्पुट मे वन्द करके वारह (१२) घण्टे लवणयन्त्र मे मन्दाग्नि पर पकावे। पक्व होने पर जब यन्त्र स्वांगशीतल हो जाय तो औषध को उसमें से निकाल, सूक्ष्म चूर्ण वना, प्रयोगार्थ शीशी में भरकर रख ले।

मात्राः—१ से २ रत्ती। दोष, वल, काल की अपेक्षा करते हुये।

अनुपानः—इसे सोठ, मिर्च, पीपल और वायविडङ्ग के (१॥ मासे) चूर्ण मे मिलाकर मधु के साथ सेवन करावे।

उपयोग—यह दुस्साध्य रोगो को भी शीघ्र नष्ट कर देता है। यह अमृत के समान गुणकारी है।

सं. वि.—इस औषध के विभिन्न द्रव्यों की ओर दृष्टिपात करें तो प्रत्येक द्रव्य रसायन, बल्य, वृष्य, वात, पित्त, क्षय का नाश करनेवाला, मधुर विपाकी, अनेक प्रकार के पित्तज और रक्तज दोषो को मिटानेवाला तथा योगवाही है। ऐसे द्रव्यो के योग से रासायनिक क्रिया द्वारा निर्माण की हुई औषध स्वाभाविक ही अप्रमेय गुणवाली होनी चाहिये। अग्नि के योग से परिपक्व यह योगवाही औषध सार प्रधान है अतः शरीर के सभी ऐसे विकारो को, जिनमें ग्रन्थि, अवयव, कोष, सार और सत्व शीर्णता, दौर्बल्य और क्रिया-हीनता आदि विकार उत्पन्न हो गये हों, नष्ट करने के लिये यह औष प्रशस्त है।

ग्रन्थियो के विकारों से मानव-शक्ति का नित्य ह्रास होता चला जाता है, शरीर क्षीण, रक्तहीन और वातप्रधान बनने लगता है। सभी धातुये शीर्ण होकर शरीर को निष्प्राण सा बना देती है। यकृत्, प्लीहा, क्लोम, अण्ड और अन्य अनेक शरीर पोषक स्रावों को उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियां, वात और पित्त के संचय तथा प्रकोप के कारण या तो शुष्क, संकीर्ण और निर्जीव हो जाती है अथवा दाह, क्लेद, कोथ से शीर्ण होने लगती है। ऐसे विकारों के कारणों की शोध सरल नहीं होती। विकार-मूल के ज्ञान तक पहुचने से पूर्व अनेक भयानक परिवर्तन हो चुके होते हैं। ऐसे दुष्ट ग्रन्थिदोषों को दूर करने के लिय उच्च कोटि की रसायन औषध ही उपयुक्त होती है। अभ्रक और स्वर्णमाक्षिक के सत्व तथा पारद और गन्धक जैसे द्रव्यों का योग ही ऐसे विकारो को निर्मूल करने मे समर्थ हो सकता है। इस औषध के सेवन से क्लिष्ट और दुष्ट से दुष्ट दोष को दूर किया जा सकता है।

यह औषध रसायन, वाजीकरण, वलिपलित नाशक, वृष्य, बल्य, अग्निवर्द्धक, वर्णकारक और प्रमेह, मधुमेह, नपुंसकता, क्षय, शोष, उदर के दुष्ट रोग, दुष्ट अपची, दौर्बल्य और पोषण के अभाव से होनेवाले सभी रोगो को नष्ट करती है।

सौराष्ट्री-भस्म

सौराष्ट्री के पर्याय—स्फटिकारि, स्फुटी, स्फटिका, स्फुटिका, फटिका, शुभ्रा, काङ्क्षी, रङ्गदा, तुवरी।

शुभ्रा शोधन

फटकरी को लोहे की कढाई में डालकर फुलाने से वह शुद्ध हो जाती है।

सौराष्ट्रीभस्म

१ सेर श्वेत फटकरी को ३ घण्टे भेड के मूत्र मे खरल करके टिकिया बना सूर्यताप मे सुखालें। टिकियों को एक मिट्टी के शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट मे फूंक दें। सम्पुट के स्वांगशीतल होने पर भस्म को उसमे से निकाल लें। यह भस्म श्वेत वर्ण की बनेगी।

नोट—फिटकरी फूलती है, मिट्टी के शराव चार गुने प्रमाण के लेने चाहिये।

सौराष्ट्री भस्म के गुण

यह कटु, तिक्त, कषाय, ऊष्ण और विषदोष नाशक है। इसके सेवन से विसर्प, कण्डु, श्वित्र आदि का नाश होता है, बालो की वृद्धि होती है तथा इससे व्रणरोपण किया जाता है।

यह त्रिदोषनाशक, योनि संकोचक, व्रणनाशक, ग्राही, लेखन, स्निग्ध, रक्तरोधक, मुखरोग नाशक और दान्तों को मजबूत करनेवाली होती है।

इसके आमयिक प्रयोग

मृदारश्टङ्ग (मुर्दासींग) के चूर्ण के साथ मिलाकर इसको व्रणों पर भुरभुराते हैं अथवा व्रणरोपण करते है।

४ मासे सौराष्ट्रीभस्म को २० तोला जल मे मिलाकर योनि प्रक्षालन करने से योनि का संकोच होता है और उत्तर वस्ति लेने से गर्भाशय के व्रण, कलाओं की शिथिलता तथा गर्भाशय की कलाओं के विकारों का नाश होता है।

सौराष्ट्रीभस्म को गोदुग्ध मे मिलाकर नस्य लेने से नाक से होनेवाला रक्त स्राव बन्द हो जाता है।

सौराष्ट्रीभस्म और टङ्कण (भुना हुवा) को जल मे मिलाकर उससे विचर्चिका को प्रक्षालन करने से वह १ सप्ताह मे नष्ट हो जाती है।

सद्यः क्षत से निकलते हुये रुधिर का अवरोध करने के लिये सौराष्ट्रीभस्म को क्षत पर लगाना चाहिये।

सौराष्ट्रीभस्म को यथा मात्रा जल मे मिला उत्तरवस्ति देने से व्रणमेह का नाश होता है तथा इन्द्री की कलाओं का शोथ, व्रण, पूयस्राव आदि भी नष्ट हो जाते है।

सौराष्ट्रीभस्म को मिश्री के साथ मिलाकर सेवन कराने से रक्तपित्त का नाश होता है।

सौराष्ट्रीभस्म को जल में मिलाकर वस्ति लेने से अर्श संकोच हो जाता है तथा अर्शो से रक्त पडना बन्द हो जाता है।

४ रत्ती सौराष्ट्रीभस्म को २० तोला परिस्रुत सलिल या अन्तरिक्ष जल में मिलाकर आंख में डालने से, नेत्राभिष्यन्द, अक्षिपाक, अक्षिशोथ आदि नेत्ररोगों का नाश होता है।

सौराष्ट्रीभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर सेवन कराने से अधो और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त का नाश होता है।

सौराष्ट्रीभस्म २ रत्ती लेकर मिश्री मिलाकर खाने से होनेवाले शूल का नाश होता है।

सौराष्ट्रीभस्म को मुल्हैठी की छाल के चूर्ण के साथ मिलाकर मसूडों पर लगाने से मसूडे मजबूत हो जाते है।

सौराष्ट्रीभस्म को इन्द्रयव के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से अतिसार का नाश होता है।

सौराष्ट्रीभस्म के साथ लौंग, इलायची और वंशलोचन मिलाकर दान्तों पर घिसने से दान्तों का मैल दूर होता है।

सौराष्ट्रीभस्म के साथ सैन्धव मिलाकर दान्तों पर लगाने से दान्तों का चिकनापण (दन्त पैच्छिल्य) दूर होता है।

सौराष्ट्रीभस्म को जल मे मिलाकर (५ रत्ती को ५ तोला मे) कवल (कुल्ली) करने (कवल धारण करने) से मुख-पाक, दन्त पैच्छिल्य, कण्ठ शुण्डी, अधि जिह्वा, मुखशोथ आदि रोग नष्ट होते है।

सौराष्ट्रीभस्म के अनेक उपयोग किये जाते है। दाढी पर उस्तरा लगने से निकलते हुये रक्त का अवरोध से लेकर किसी भी प्रकार के रक्तस्राव को रोकने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

फिटकरी के योग से अनेक दन्तमंजन तैयार होते है।

मुख पर लगानेवाले पाउडर मे भी इसका प्रयोग होता है।

बहार निकलते हुये योनि कमल को यथास्थान स्थिर करने के लिये सौराष्टीभस्म १ तोला मे ४ तोला माजुफल के चूर्ण को मिला, छोटी २ पोटली बांध, योनि में धारण कराने से कमल का निकलना बन्द हो जाता है।

प्रतिश्याय में सौराष्ट्रीभस्म को जल मे मिलाकर नस्य लेने से श्लेष्मस्राव बन्द हो जाता है।

योनि–कण्डु मे सौराष्ट्रीभस्म को जल मे मिलाकर उत्तरवस्ति लेने से यह रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

राजयक्ष्मा के दुर्दमन वमन मे सौराष्ट्रीभस्म २ से ५ रत्ती मिश्री मे मिलाकर देने से वमन बन्द हो जाती है।

हीरा-भस्म

हीरा के पर्याय:—हीरक, वज्र, हीर, दधिच्यस्थि, वज्रक, सूचिमुख, अभेद्य, दृढाङ्ग, विराटज, राजपट्ट, राजावर्त इत्यादि इसके पर्याय है।

हीरा के श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण इस प्रकार वर्ण भेद से चार प्रकार है।

स्निग्ध, विद्युत के समान चमकवाला, स्वच्छ, तीक्ष्ण, षटकोणाकार हीरा ग्राह्य होता है। अन्य प्रकार के हीरे रस कर्म योग्य नही होते।

श्रेष्ठ हीरा वह है जो चाहे जितना घिसा जाय स्वयं न घिसे घिसनेवाले को घिस डाले तथा स्वयं चूर्णित न हो, अन्यो का चूर्ण कर डाले।

अशुद्ध हीरे की भस्म के सेवन से कुष्ठ, दाह, गौरव, हृत्पार्श्वपीडा, पाण्डु, भ्रम आदि विकार उत्पन्न होते है अत. भस्म बनाने से पूर्व सर्वदा हीरे का शोधन वाञ्छनीय है।

हीरक शोधन

१ ला प्रकार—हीरे को कटेली की जड के अन्दर रखकर उसके मुखको उसी के (कटेली की जड के) टुकडे से बन्द करके उसके ऊपर भैस के गोबर का लेप करे और रात्रि मे चार प्रहर तक उसे अरनो की आग पर पकावे। प्रातःकाल हीरे को निकालकर गोमूत्र मे बुझावे। इस प्रकार ७ रात कटेली के कन्द मे बन्द कर कर के नित्य प्रात:काल गोमूत्र मे बुझाने से हीरा शुद्ध हो जाता है।

२ रा प्रकार—हीरे को कटेली के कन्द मे बन्द कर, पोटली मे बांधकर कुलथी और कोदो के क्वाथ मे दोलायन्त्र विधि से ३ दिन तक पकाने से वह शुद्ध हो जाता है।

० **३ रा प्रकार**—हीरे को तपा तपा कर २१ बार गधे के मूत्र मे बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

० **४ था प्रकार**—हीरे को तीक्ष्ण अग्नि पर तपा तपा कर १०० बार शुद्ध पारे मे बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है। पारे मे इस प्रकार बुझाये गये हीरे का चूर्ण शीघ्र हो जाता है।

५ वां प्रकार—हीरे को तीव्राग्नि पर तपा तपा कर थूहर के दूध मे १०० बार बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है।

हीरक मारण

१ ला प्रकार—शुद्ध हीरा, सम्मूर्च्छित पारद, मनसिल और गन्धक प्रत्येक समान भाग ले और सबको एकत्र खरल करें। फिर मिश्रण को सम्पुट मे बन्द कर गजपुट में फूंक दे। इस प्रकार जब तक हीरे की वारितर सुन्दर भस्म न बन जाय उसे पुट देते रहे। पारद केवल एक ही बार मिलाना चाहिये। इस प्रकार १४ पुट मे हीरे की भस्म तैयार हो जाती है।

२ रा प्रकार—कुलथी के क्वाथ मे हींग और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर हीरे को तपा तपा कर २१ बार बुझाने से हीरे की भस्म बन जाती है ।

३ रा प्रकार—शुद्ध हीरे का सूक्ष्म चूर्ण तथा हरताल, गन्धक, हिंगुल और स्वर्ण-माक्षिक भस्म प्रत्येक समान भाग ले । सबको एकत्र खरल करे जब मिश्रण यथेच्छ हो जाय तब आमले के वृक्ष की छाल के रस मे मर्दन करे, फिर पीपल छाल के क्वाथ की ७ भावना दे । जब पिष्टी तैयार हो जाय तो उसका गोला बनाले और गोले को सुखाकर शराव सम्पुट मे यथाविधि बन्द करके गजपुट मे फूक दे । जब तक हीरे की वारितर भस्म न बने उपरोक्त विधि से पुट देते रहे । स्वर्णमाक्षिक भस्म केवल प्रथम बार ही मिलानी चाहिये ।

४ था प्रकार—पीपल, बेर और भिण्डी के मूल तथा कर्कोटि की हड्डी लेकर उनका सूक्ष्म चूर्ण बनावे और फिर मिश्रण को थूहर के दूध मे घोटकर उसका मूसा के ऊपर और नीचे के ढकनो मे लेप कर दे । इस मूषा मे हीरे को बन्द करके तथा मूषा पर भलीप्रकार कपडमिट्टी कर के सुखाले । तदनन्तर गजपुट मे रखकर इसे पुट दे । इस प्रकार १ पुट से भी हीरे की भस्म बन जाती है । आवश्यकतानुसार अधिक पुट दे ।

५ वां प्रकार—शुद्ध हीरे के सूक्ष्म चूर्ण के समान हरताल और मनसिल लेकर सबको एकत्र खरल करके, जिस कपास का क्षुप ३ वर्ष तक रहा हो उसके मूल के स्वरस मे घोटें और फिर सुखाले । सूखे हुये मिश्रण को सम्पुट मे बन्द करके महापुट मे फूंक दे । इस प्रकार के.१४ पुट देने से हीरे की भस्म हो जाती है ।

हीरे की भस्म के गुण

हीरे की भस्म, हृद्य, छओं रसों युक्त, योगवाही, सर्वोत्कृष्ट रसायन, आयुवर्द्धक, पौष्टिक, बल वीर्यवर्द्धक, वर्णदायक और सर्वरोग नाशक है । इसके सेवन से विशेषतः राजयक्ष्मा, प्रमेह, मेद, पाण्डुरोग, शोथ, उदररोग, नपुंसकता, मस्तिष्क दौर्बल्य, ओजक्षीणता आदि रोगो का नाश होता है । यह त्रिदोषघ्न है, अतः विविध अनुपानो के साथ सभी रोगो मे इसका प्रयोग किया जा सकता है । यह अमृत के समान गुणकारी और ओज तथा कान्तिवर्द्धक है।

हीरकभस्म की मात्राः—१/६४ रत्ती से १/८ रत्ती तक । दोष, बल, काल आदि की अपेक्षा करते यथादोपानुपान के साथ प्रयोग करें ।

हीराभस्म के सेवन का सबसे उत्तम उपाय यह है कि उसकी जो मात्रा लेनी हो उसे एक या दो रत्ती रससिन्दुर मे मिलाकर प्रयोग मे लावे इससे न्यूनतम मात्रा मे प्रयुक्त हीरा भस्म भी काम मे आजाती है ।

हीराभस्म के आमयिक प्रयोग

हीराभस्म को रससिन्दुर के साथ मिलाकर मलाई के साथ खाने से नपुंसकता का नाश होता है।

हीराभस्म को स्वर्णभस्म और रससिन्दुर के साथ मिलाकर सेवन करने से राजयक्ष्मा का शीघ्र नाश होता है।

हीराभस्म को मकरध्वज के साथ प्रयोग में लाने से सभी प्रकार के क्लैब्य दोष नष्ट होते हैं

भैषज्य-सार-संग्रह

चतुर्थ प्रकरण

गुटिका

ऐसी औषधियां कि जिनमे वनस्पतियों की प्रधानता हो। अर्थात् जिस प्रकार रसो मे रस, उपरस, रत्न, उपरत्न, धातु, उपधातु का उपयोग मुख्य और अन्य वनस्पति–औषधियों का प्रयोग गौण मिलता है, उसी प्रकार गुटिकाओं में रस, उपरस आदियो की गौणता और वनस्पति द्रव्यों का आधिक्य मिलता है। निर्माण मे जहां रस-उपरसो को कुप्पी द्वारा, पुट द्वारा तथा अन्य विविध यन्त्रों द्वारा तैयार करना पडता है वहां गुटिकाओं में इन साधनो की आवश्यकता अधिकतर नहीं होती। गुटिका बनाने के मुख्य साधनों मे इमामदस्ता (वनस्पति द्रव्यों को कूटकर चूर्ण बनाने के लिये), चलनी (चूर्ण को छानने के लिये), वस्त्र (चूर्ण को कपडछन करने करने के लिये), खरल और बट्टा (औषध योग को भाव्य द्रव्य के संयोग में मर्दन करने के लिये) इत्यादि है। गुटिकायें हाथ से भी बनाई जाती है और मशीन से भी। यह बनानेवालों की रुचि पर आधार रखता है कि वे मशीन का प्रयोग करे या हाथ का।

जो गुटिकायें रस औषध प्रधान होती है, अर्थात् जिनका निर्माण रस औषधों को अनेक वनस्पति औषधों के क्वाथ या रस में भावना देकर किया जाता है, वे औषधियां तो रसों के समान जितनी पुरानी होती है उतनी ही अधिक गुणकारी होती है, परन्तु जहां स्वल्प मात्रा में रसों का योग हो और अधिक मात्रा मे वनस्पति चूर्ण हो वहां औषध की १–१॥ वर्ष से अधिक उपादेयता नहीं रहती और जहां केवल वनस्पतियों के योग से ही औषध बनती हों अथवा वनस्पति के दूध, रस, स्राव, घन आदि से औषध बनती हों वहां औषधि की उपादेयता ६ मास से अधिक नहीं होती। अतः यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि जहां तक सम्भव हो गुटिकाओं का इतनी ही मात्रा में निर्माण करे कि ६ मास पूरे होने से पूर्व ही वह औषध समाप्त हो जाय।

अग्निगर्भा वटिका (गुटिका) [भा. भै. र. ९६]

(र. र. । प्ली. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा ६ तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला तथा लोहभस्म, सुहागे की खील, वच, कुष्ठ, हींग, त्रिकटु और हल्दी प्रत्येक २॥–२॥ तोला लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर उसमे लौहभस्म और सुहागे की खील के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करें और तत्पश्चात् अन्य सब द्रव्यों के यथामात्रा चूर्णों के मिलित मिश्रण को मिलाकर भलीभान्ति खरल करके उसे मानकन्द, घण्टाकर्ण और त्रिफला के रस की पृथक पृथक १–१ भावना दे। पिष्टी तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें। उन्हे सुखाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ४ रत्ती तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य, गुल्म, शूल, यकृतवृद्धि, अष्ठिला, कामला, हलीमक, पाण्डु, कृमि और कुष्ठ का नाश होता है। यदि लौग का चूर्ण मिश्रित करके इसका सेवन किया जाय तो यह अत्यन्त अग्निवृद्धि करती है। यह आध्मान, कास, उदर श्लेष्मकलाविकार, ग्रन्थिशोथ तथा श्लेष्मज सग्रहणी का नाश करती है।

सं. वि.—यह औषध कृमिघ्न, विषघ्न, रक्त दोषान्तक, रक्तवर्द्धक, दाहनाशक, दोषानुलोभक, अग्निवर्द्धक, आम और श्लेष्म पाचक, कण्ठशोधक तथा मूत्रल है। इसके सेवन से उदर के दोषो से उत्पन्न हुये विविध प्रकार के वात–पित्त और कफज विकार दूर होते है तथा श्लेष्मकलाओ के संकोच, क्षत, ग्रन्थिशोथ और ग्रन्थियो के श्लेष्मज आवरणों मे उत्पन्न हुये शोथ तथा श्लेष्म और आम के प्रभाव से जड हुये श्लेष्म आवरण निर्विकार होकर सक्रिय हो जाते है।

यकृत् और प्लीहा की वृद्धि के विकारो मे, जिनमे श्लेष्म प्राधान्य हो, यह औषध शीघ्र और इच्छित फल देती है।

उदर के आम और वायु द्वारा होनेवाले ऐसे विकार जिनमे उदर मे सूची वेध की सी वेदना होती हो, उदर स्वच्छ न रहता हो तथा आनाह और अरुचि रोगी को पीडित करते हों वहां इस औषधि का सेवन शीघ्र लाभप्रद होता है।

आम, श्लेष्म और उदर वातजन्य कास आदि को भी यह वायु का अनुलोमन करके मिटाने की सामर्थ्य रखती है।

अग्निप्रदीपक गुटिका [र. तं. सा.]

बनावट—हरड, आंवला, बहेडा, जवाहरड, चित्रकमूल, अजमोद, कालाजीरा, सैंधानमक प्रत्येक ४–४ तोले मिलाकर जौकुट चूर्ण करे। पश्चात् १० सेर अमरवेल के रस मे ७ दिन भिगो दे। औषधि के ऊपर १ इञ्च रस रहे इतना रस भरें। ८ वे दिन कढाई मे डाल, चूल्हे पर चढा, मन्दाग्नि देकर रस सुखा लें। कढाई शीतल होने पर ८ मासे शुक्तिभस्म मिला, खरल कर, छोटे बेर के समान गोलियां बनाले। [सांईजी गुडाग्रामवाले]

मात्रा:—१ से २ गोली। दिन में २ वार जल के साथ लेवे। औषध लेने के पहले १ मूली खा लेवे।

उपयोग—यह गुटिका मन्दाग्नि, पुराना अजीर्ण रोग, मलावरोध, अरुचि, उदरशूल, मूत्रविकार, रक्तदोष, खट्टी डकार आना आदि दोषो को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

जब पित्त प्रकोप होकर विदग्ध अजीर्णरोग उत्पन्न होता है और रोग पुराना होने पर कफ और आम की वृद्धि होती है, हृदय की गति मन्द हो जाती है तथा शरीर बहुत अशक्त हो जाता है तब विकार को दूर कर और शक्ति को बढाकर यह गुटिका अच्छा प्रभाव दिखाती है।

पथ्य—मूली अथवा चौलाई का शाक और बाजरे तथा गेहूं की रोटी। खट्टा पदार्थ और पक्का भोजन छोड देना चाहिये। [रसतन्त्र सार से उद्धृत]

अतिविषादि गुटिका [आ. औ.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अतिविष की कली का चूर्ण १ तोला, करञ्ज की गिरी का चूर्ण १ तोला और गिलोय सत्व १/२ तोला ले। तीनों को खरल में घोटकर भलीभान्ति मिश्रित करे, फिर कुब्ज क्वाथ में घोटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें और छाया शुष्क करके प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्रा:—२ से ४ गोली। प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—ज्वर, अतिसार और बच्चों के अन्य रोगों के लिये उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, पाचक, वातनाशक तथा अनुलोमक और संग्राही है। बच्चों के आमजन्य दोषों मे इसका उपयोग बहुत उत्तम होता है। जिन बच्चों को आमज अतिसार, प्रवाहिका अथवा आमके अधिक बढने के कारण अजीर्ण रहता हो, उनको १–१ रत्ती की मात्रा मे अथवा रोग के बलाबल को देखकर इसका सेवन करावें। यह अन्त्र शैथिल्य को दूर करती है और पाचन बढाकर धीरे २ शक्ति वृद्धि करती है।

अनङ्गमेखला मोदक [भा. भै. र. १०७]

(वृ. यो. त.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—५ तोला अफीम को ४ सेर दूध मे पकावें। फिर जायफल, चतुर्जात, जावित्री, लौंग, त्रिकटु, अकरकरा, अजमोद, अजवायन, पतङ्ग, कङ्कोल, चन्दन और केशर प्रत्येक १।-१। तोला तथा कस्तूरी और कपूर प्रत्येक २-२ मासे लें। इन सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को उपर्युक्त अफीम युक्त दूध के मावे मे मिश्रित करें और भलीभान्ति खरल मे घोटें। जब सब द्रव्य सूक्ष्मतया मिश्रित हो जांय तब आधसेर चीनी का सूक्ष्म चूर्ण लेकर इस मिश्रण के साथ खरल करते हुये इस प्रकार मिलावे कि चीनी औषध के कण २ मे समा जाय। पिष्टी तैयार होने पर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें और सुखाकर रखलें। (यह शिव द्वारा बनाई हुई गुटिका है)।

मात्राः—१ से २ गोली। अथवा अग्निबलानुसार। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, कामशक्तिवर्द्धक, वीर्यस्तम्भक, पाण्डु, क्षय, श्वास, शूल, प्रमेह, व्रण और भ्रमनाशक तथा अग्निसंदीपक है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, कफनाशक, अग्निवर्द्धक, संग्राही और कामशक्ति-वर्द्धक है। इसके सेवन से कफ द्वारा होनेवाले विकार, यथा-प्रमेह, अन्त्रकलागतव्रण, भ्रम, कास, क्षय, श्वास, शूल आदि शीघ्र नष्ट हो जाते है। कफ प्रकृतिवाले पुरुषों के लिये, जिनमे कफदोषों के कारण शैथिल्य हो जाता है, यह औषधि गुणकारी है।

अन्त्रवृद्धिहर गुटिका [र. तं. सा]

बनावट—शुद्ध शिंगरफ ५ तोले, एलुवा १० तोले, गूगल, लालबोल, करञ्ज के बीज, नौसादर, कालानमक, हींग प्रत्येक ५-५ तोले। सबको एकत्र मिलाकर चूर्ण करे। फिर घी कुमार के रसमे खरल करके मटर के समान गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। दिन मे २ बार जल के साथ दे।

उपयोग—इन गोलियों के १ मास सेवन से आंत उतरना (Hernia), उदरशूल, मलावरोध, उदरवात आदि दूर होते है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

अपतन्त्रकारि वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधि—घी में सेकी हुई हींग १ तोला, कपूर १ तोला, गांजा १ तोला, खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती २ तोला और तगर (यूनानी-आसारून) २

तोला, सबका कपडछन चूर्ण कर जटामांसी के फाण्ट मे पीस, २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखा लेवें ।

मात्राः--२ गोली देकर ऊपर से मांस्यकाथादि पिलावें । इस प्रकार दिन में ३-४ मात्रा यथावश्यक देवें ।

उपयोग--अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) मे इस योग से अच्छा लाभ होता है ।

[सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

अभयादि मोदक [भा. भै. र. ११०]

(शा. ध. सं. । उ. खं. । अ. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः--हरीतकी, कालीमिर्च, सोठ, वायविडङ्ग, आमला, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपात और नागरमोथा सब १-१ भाग, दन्ती २ भाग, निसोत ८ भाग, चीनी ६ भाग । प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करके घोटे और फिर इस मिश्रण को मधु द्वारा पिष्टी बनाकर ४-४ रत्ती की गोलिया बनाले और छाया मे सुखाकर रक्खे।

मात्राः--१ से ४ गोली तक । शीतल जल के साथ ।

सेवन विधि--इसको सेवन करके जब तक रेचन की आवश्यकता हो तब तक ऊष्ण जल न पीवे । यदि दस्तो को रोकना हो तो ऊष्ण जल पी ले । इससे रेचन होना बन्द हो जायगा ।

इसके सेवन मे किसी विशेष पथ्य की आवश्यकता नहीं है ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म--ये मोदक विषमज्वर, अग्निमान्द्य, पाण्डु, कास, भगन्दर, अर्श, गुल्म, कुष्ठ, गलगण्ड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीहा, प्रमेह, यक्ष्मा, नेत्ररोग, वातरोग, आध्मान, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, पृष्ट, पार्श्व, उरु, जङ्घा तथा उदरशूल आदि अनेक रोगों का नाश करते है । इनका लगातार सेवन करने से पलितरोग का नाश होता है तथा ये उत्तम रसायन है ।

सं. वि.--यह औषध दोषानुलोमक, कोष्ठ शोधक, वात-पित्तज उदररोग नाशक, आमनाशक, दाहशामक और उदर मे वात-पित्त के प्रकोप से संचित हुये मलो को बहार निकालती है । कोष्ठ की क्रूरता को दूर करती है । रस और रक्त का शोधन करती है। इस प्रकार इसके सेवन से उदर विकारों के कारण अधो, ऊर्ध्व, पार्श्व और शाखाओं मे होनेवाले विकार शान्त होते है ।

शास्त्र जहां क्षय, कुष्ट, भगन्दर, नेत्ररोग, वातरोग आदि रोगो का नाश इस औषध द्वारा होता हुवा उल्लेख करते है, वहां यह समझना आवश्यक है कि ये वही विकार होने चाहिये

जिनका कारण दीर्घकालानुबन्धि कोष्टबद्धता हो अथवा मलसंचय हो। मलसंचय के कारण रस मे अनेक विकृतियां उत्पन्न होती है। विविध प्रकार के कीटाणुओ की उत्पत्ति वात और पित्त दोषों के साथ प्रथम मानी जाती है। वात, पित्त और कीटाणुओ से दूषित रस परम्परागत सभी धातुओं मे, कोष्टो मे और ग्रन्थियो मे वातज, पित्तज और कीटाणुज विकार उत्पन्न कर देता है। इससे शरीर के किसी भी भाग मे दुष्ट से दुष्ट रोग की उत्पत्ति सर्वथा सम्भव है। ये मोदक कोष्ठ को शुद्ध करते है। रसगत वात, पित्त और कीटाणुओं का नाश करते है। सम्पूर्ण शरीर को दोष रहित करते है और इस प्रकार उदर रोग और उसके अनुबन्धियों का नाश करके विविध प्रकार के विकारों को शान्त करते है।

अमरसुन्दरी वटी (गुटिका) [भा. भै. र. ११७]

(वृ. नि. र. । भा. ५ । वा. व्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः–त्रिकटु, त्रिफला, पीपलामूल, चीता, लोहभस्म, चतुर्जात, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, वायविडङ्ग, अकरकरा और नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें तथा गुड सम्पूर्ण औषधियों के वजन से २ गुना ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। अनन्तर उसमें मीठे तेलिये को मिश्रित करे तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्णों को मिलाकर भलीभान्ति खरल करे। मिश्रण के भलीभान्ति तैयार होने पर उसमे गुड मिलावे। यदि गुड खरल मे मिश्रित न किया जा सके तो एक लकडी के चौडे तख्ते पर धीरे २ गुड मे चूर्ण मिलाते जांय और उसे कूटते जांय। इस प्रकार जब सम्पूर्ण चूर्ण गुड मे समा जाय तब गुड को अच्छी तरह कूटें कि जिससे द्रव्यो का गुड के कण कण में सम्मिश्रण हो जाय। तत्पश्चात् ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर प्रयोग मे लावे।

मात्राः––१ से ४ गोली। साधारण ऊष्ण जल तथा ऊष्ण दुग्ध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म– ये गोलियां अपस्मार, सन्निपात, श्वास, कास, गुदरोग, और ८० प्रकार के वायुरोग और विशेषकर उन्माद का नाश करती है।

सं. वि.––यह औषध विषघ्न, कृमिघ्न, आक्षेपघ्न, आमशोषक, शोथनाशक, वात-कफ नाशक और पित्तशामक है। इसके सेवन से वात-कफ द्वारा होनेवाले विकार यथा आम, कफ, शरीर का जकड जाना, ज्वर आदि, वात-कफ विकारो के कारण होनेवाले मस्तिष्क, नेत्र, मुख, कण्ठ के विकार, श्वास, अर्श, गुदपाक और अन्य अनेक विकार शान्त होते है।

यह औषध पाचक है और पाचनाभाव द्वारा होनेवाले विकारो को नाश करने की उत्तम औषध है।

अमृतनाम गुटिका [भा. भै. र १२५]

(र. रा. सुं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चित्रकमूल और हैड प्रत्येक १५—१५ तोले तथा शुद्ध पारद, त्रिकटु, पीपलामूल, नागरमोथा, जायफल और विधारा प्रत्येक ५—५ तोले, इलायची, वंशलोचन, कूठ, शुद्ध गन्धक, हिंगुल, मैनफल, मालकंगनी, दालचीनी, अभ्रकभस्म प्रत्येक २॥—२॥ तोला तथा हलाहल विष १ निष्क (२ से ३ रत्ती) और गुड आधा सेर लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमे अभ्रकभस्म, लोहभस्म और विष को मिश्रित करे। तत्पश्चात् हिंगुल और अन्य द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर मिश्रण को भलिभान्ति घोटे। फिर उसमे गुड डालकर सबको एकाकार करे और इस मिश्रण को भांगरे के रसमें खरल करें। पिष्ठी तैयार होने पर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसको १ तोला मात्रा में नित्य सेवन करने से ८० प्रकार की वातव्याधि, १८ प्रकार के कुष्ठ, २० प्रकार के प्रमेह, ६ प्रकार के अपस्मार, सब प्रकार के नाडीव्रण, ११ प्रकार के क्षय, ऊर्ध्व श्वास, सुप्तिका (अङ्गो का बहिरापन), शोथ, आमवात, पाण्डु, कामला, अर्श आदि रोगो का नाश होता है।

नोटः—इस प्रयोग को अत्यन्त सावधानी पूर्वक बनाना तथा व्यवहार मे लाना चाहिये। हालाहल विष को शुद्ध करके प्रयोग मे लावे, अन्यथा हानि की सम्भावना है।

सं. वि.—यह औषध ऊष्ण, तीक्ष्ण, व्यवायी, विकासी, अग्निसंदीपक, आमशोषक, वात—कफ नाशक और नाडी शैथिल्य नाशक है। यह वायु और कफ द्वारा होनेवाले विविध विकारो का नाश करती है। रूक्ष और शीत गुण द्वारा प्रकुपित वायु और स्निग्ध और शीत गुण द्वारा प्रकुपित कफ, दोनो ही रस रक्त आदि सप्त धातुओ मे अनेक प्रकार की विकृति करके भयङ्कर से भयङ्कर विकार उत्पन्न कर देते है, जिनमे अग्निमान्द्य, अन्त्र श्लेष्मकला शैथिल्य और यकृत् निष्क्रियता प्रधानदोष गिने तो सम्पूर्ण शरीर के अङ्गो मे आम, विष और रौक्ष्य का प्रवेश होकर अङ्गो मे संकोच, रक्तभ्रमण हीनता, पुष्टिहीनता और क्रमशः सक्षोभ, शोथ और अवसाद उत्पन्न हो जाते है और यदि कोष्टादि स्थानो मे विकारो का सचय हो जाय तो कुष्ट, प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डु, कामला आदि विकारो की उत्पत्ति हो जाती है और यदि मस्तिष्क तथा वातनाडियो मे इन दोषो की प्रधानता आ जाय तो अपस्मार आदि अनेक प्रकार के मानसिक रोगो का जन्म होता है। "अमृतनाम गुटिका" ऊष्ण—तीक्ष्ण गुणो के आधार पर आम, कफ, वात और विषज विकारों को अङ्गाङ्ग से दूर करके अग्निवृद्धि करती

है। रस-रक्त आदि धातुओं की वृद्धि करके सम्पूर्ण धातुओं का पोषण करती है। श्लेष्म-कलाओ की शिथिलता, निष्क्रियता और पाचक रसों के अवरोध को दूर करती है तथा विशुद्ध रक्त द्वारा सम्पूर्ण शरीर का पोषण करके दूषित व्याधियों को निर्मूल करती है।

० अमृतप्रभा वटी [भा. भै. र. ११९]

(बृ. नि. र. । भा. ५ । अरुचौ)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कालीमिर्च, पीपलामूल, लौंग, हैड, अजवायन, इमली, अनारदाना, सेंधानमक, संचलनमक, सांभरनमक प्रत्येक ५-५ तोले, पीपल, यवक्षार, चित्रक मूल, काला जीरा, सफेद जीरा, कलौंजी, सोंठ, धनिया, इलायची और आमला प्रत्येक १०-१० तोले। सब द्रव्यो को इमामदस्ते मे या मशीन मे सूक्ष्म चूर्ण बने तब तक कुटवाकर, कपडछन करवाकर, 'बिजौरे निम्बु की ३ भावनाये दे। अन्तिम भावना के बाद जब पिष्टी तैयार हो जाय तो उसकी ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर छाया मे सुखाकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—२ से ४ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य के लिये यह उत्तम औषध है।

सं. वि.—इस औषध के सभी द्रव्य रोचक, पाचक, वातनाशक और रुचिकारक है। जहां वायुप्रतिलोम हो अथवा कोष्ठ मे शैत्य के कारण, कफाजीर्ण के कारण, आमसंचय के कारण अथवा पित्त के क्षय के कारण, खाद्य पर अरुचि, मुख की नीरसता, कण्ठशोष और शरीर गुरु हो वहां इस औषधि का सेवन लाभप्रद सिद्ध होता है। मात्रा से अधिक खाये जाने पर भी यह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाती। वर्तमान काल मे अन्न के कारण अनेक दोषों के द्वारा सभी कोष्ठो मे वायु का अविक्य मिलता है। यदि समयानुसार सभी इस औषध का सेवन करते रहे तो अखाद्य या दुष्ट खाद्य द्वारा उत्पन्न हुई अन्त्र विषमता शीघ्र नष्ट हो जाय और अग्निमान्द्य न होने पाये।

० अर्क अहिफेनादि गुटिका [आ. औ.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—आक के दोढो का सूक्ष्म चूर्ण २ तोला, संचलनमक २ तोला और अफीम १/२ तोला ले। सब द्रव्यो को भलीभान्ति मिश्रित करे और जल के साथ घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—क्षय, कास और श्वास के लिये यह उपयोगी औषध है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक और श्वासहर, कफनिस्सारक, कण्ठ शोधक, प्रतिश्याय, श्लेष्मप्रसेक तथा अन्य कास और श्वास के उपद्रवो का नाश करनेवाली है।

अडूसा (वासा) घन वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध और स्वस्थ अडूसे का पञ्चाङ्ग लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे बनादे अथवा कुट्टी सी काट लें। सम्पूर्ण पञ्चाङ्ग से १६ गुना जल लेकर उसका क्वाथ तैयार करे। जब जलते २ जल चतुर्थांश अवशेष रह जाय तब उसे छानकर फिर उबालना शुरू करें और घन बनने तक उबालते रहे। पिष्टी के सदृश तैयार हुये घन को अग्नि से उतार ले और ४—४ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। मुख मे रखकर चूसे।

गुणधर्म—यह स्वर्य है। इसके सेवन से कफ, पित्त, अस्र का नाश होता है। क्षय, कण्ठशोथ, कण्ठकण्डू और गले की श्लेष्मकलाकों के विकार से होनेवाला कास इनके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—पित्त और कफ के प्रकोप से उत्पन्न हुये कण्ठ, कासनलिका और गलश्लेष्म-कलाओं के विकार, वासा घन वटी से इतने ही शीघ्र नष्ट होते है जितने अडूसा के क्वाथ से क्षय के उपद्रव। गले के ऐसे विकार जिनमे उदरदोष के कारण, अम्लपित्त के कारण अथवा नासिका—श्लेष्मकलाओं के सतत स्राव के कारण क्षुद्र व्रण से अथवा श्लेष्मकला पाक सदृश आकार या स्थानिक फुंसियां हो जाती है, वहां इन घनवटियो का सेवन सर्वदा लाभप्रद होता है। क्षय, क्षीणता, क्षत और कास नलिकाओं के शोथ से होनेवाले कास में इनका सेवन युक्ति युक्त और लाभप्रद होता है।

अर्शोघ्नी वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—निबौली (नीम के फल की मींगी) २ तोला, वकायन की फली की मींगी २ तोला, खून खराबा (यूनानी-दमउल अखेवन) २ तोला, तृणकान्त (यूनानी-कहरवा) की अर्कगुलाब या चन्दनादि अर्क से बनाई हुई पिष्टी १ भाग और शुद्ध रसौत (दारुहल्दी का घन) ६ भाग ले। प्रथम निबौली और वकायन की मीगी को खूब महीन पीसे, फिर अन्य द्रव्य मिला और घोटकर ३—३ रत्ती की गोलियां बना ले।

मात्रा और अनुपानः—२—२ गोली दिन मे ३—४ बार ठण्डे जल से दे।

उपयोग—इससे सूखे और खूनी (रक्तार्श) दोनो प्रकार के अर्श मे अच्छा लाभ होता है।

[सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

अष्टादशाङ्ग गुटिका [भा. भै र. १३१]
[वं. से । पां. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः--चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, गिलोय, कुटकी, पटोलपत्र, धमासा, पित्तपापडा, नीम की छाल, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडङ्ग प्रत्येक द्रव्य समान भाग, लोहभस्म सबके बराबर। इस सबका बारीक चूर्ण करके घी और मधु मे मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः--१ से २ गोली। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः--इसके सेवन से पाण्डु, शोथ, प्रमेह, हलीमक, हृद्रोग, ग्रहणी, श्वास, खांसी, रक्तपित्त, उरुग्रह, आमवात, व्रण, कुष्ठ, कफ-विद्रधि और श्वेतकुष्ठ का नाश होता है।

सं. वि.—इस औषध का सम्पूर्ण द्रव्य-समुदाय पित्तशामक है। इसके सेवन से पित्तज विकार नष्ट होते है। अर्थात् यकृत् के शैथिल्य के कारण अथवा पित्ताशय के अवरोध के कारण पित्ताधिक्य और पित्त क्षीणता से पाण्डु, दाह, उत्क्लेश, हृद्रोग, ग्रहणी, श्वास, कास, रक्तपित्त, अर्श तथा आमवात, आम, कोष्ठबद्धता, उदर निष्क्रियता, विद्रधि, कुष्ठ, प्रमेह आदि क्रमशः उत्पन्न होनेवाले रोग इसके सेवन से शीघ्र नष्ट होते है। यह ज्वरनाशक, दाहनाशक, सहज रेचक, आमशोषक और पाचक है।

अहिफेनादि गुटिका [आ. औ]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः--अफीम ४ तोला, जावित्री ४ तोला, केसर १ तोला और कपूर १ तोला ले। सब द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण करके सबको भलीभान्ति एकत्र खरल करे २-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः--१ से २ गोली। पान के साथ दिन मे २ बार।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः--इसका सेवन मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र और क्लैब्य मे होता है।

सं. वि.--यह औषध शैथिल्य नाशक, नाडीदोषनाशक, उत्तेजक, वीर्यवर्द्धक रसायन और वाजीकरण है। इसके सेवन से बहुमूत्र, इन्द्रिय दौर्बल्य, नाडियो की उग्रता तथा क्षीणता आदि रोग नष्ट होते है।

आकारकरभादि गुटिका [शा. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः--अकरकरा, सोठ, कंकोल, केसर, पीपल, जावित्री, लौंग, चन्दन प्रत्येक १-१ तोला तथा अफीम ४ तोला ले। सब द्रव्यो का चूर्ण बनाकर अफीम के साथ खरल मे घोटे और पिट्ठी तैयार होने पर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। दूध या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—प्रमेह, मधुमेह, बहुमूत्र, संग्रहणी, प्रवाहिका, रक्तातिसार और अतिसार में उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध संग्राही, दीपक, पाचक, मुखशोधक, दाहनाशक, श्लेष्मकला-विकार नाशक, रक्तावरोधक, वीर्यस्तम्भक, प्रमेह, दौर्बल्य, शैथिल्य, मरोड, अतिसार, अन्त्र दौर्बल्य, आम संग्रह, अरुचि और अग्निमान्द्य आदि रोगो को नाश करने के लिये उपयोगी है।

आदित्य गुटिका [भा. भै. र. ३९२]

(वै जी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—वच, सोंठ, जीरा, कालीमिर्च, शुद्ध मीठातेलिय, हींग और चीते की छाल इन सबको समान २ भाग लेकर महीन चूर्ण करके भांगरे के रस में घोटकर चने के बराबर (४–४ रत्ती की) गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के शूल और अग्निमान्द्य नष्ट होते हैं।

सं. वि.—यह औषध पाचक, दीपक, रोचक, आक्षेपनाशक, आमशोषक, वातानुलोमक, आध्मान नाशक और विविध दोषों के कारण उत्पन्न हुई मन्दाग्नि का नाश करती है।

आमराक्षसी गुटिका [आ. औ.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अफीम, जावित्री, लौंग, शुद्ध हिंगुल और कपूर। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सबको एकत्र खरल करके १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—विषूचिका, आमवात और निर्बलता के लिये उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध उत्तेजक, विषनाशक, मूत्रल, वायुनाशक, संग्राही, स्तम्भक, शैथिल्यनाशक और शक्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से अतिसार, प्रवाहिका, विषूचिका और आमवात आदि रोगों का नाश होता है।

आमलक्यादि गुटिका [भा. भै. र. ३९६]

(वृ. नि. र. । शा. ध. । म. ख., अ. ७, भा. प्र. । म. खं. । तृ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—आंवले, कमल, कूठ, खील और वडकी कोपल। इन पांच द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके मधु मे मिलाकर गोलियां बनाले।

उपयोग--इन गोलियो को मुखमे रख कर चूंसते रहने से प्रवल तृष्णा और मुखशोष का नाश होता है।

सं. वि.--यह तृष्णानाशक और त्रिदोषशामक औषध छओं रसो युक्त है। कण्ठशोष, रूक्षता, अन्त्रदाह या वायु वृद्धि के कारण तृष्णा तथा कफ प्रलेप से मुख दुर्गन्धि और तृष्णा इस औषध के सेवन से नष्ट हो जाती है।

आमवात प्रमथिनी वटी [रसतन्त्र सार]

बनावट--कलमी शोरा, आक की जड की छाल, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म और अभ्रक-भस्म। इन ५ औषधियो को समभाग मिलाकर ३ दिन अमलतास के क्वाथ से खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावे। [र. यो. सा.]

मात्राः--१ से २ गोली। प्रातःकाल औषध की २-३ गोली तक १ तोले निसौत के क्वाथ के साथ तथा सायंकाल अदरक के रस और शहद के साथ दे।

उपयोग--यह औषधि आमवात, आमवातज रोग, कफ वृद्धि और कफ प्रकोप से होनेवाले रोगो का शमन करती है। तीव्र आमवात मे जब तीव्र बिच्छू के काटने के समान दर्द होता हो तब, एवं जीर्ण अवस्थाओं मे व्यथा उत्पन्न होने पर यह व्यवहृत होता है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

आयुष्यवर्द्धिनी गुटिका (आयुष्यवर्द्धक प्रयोग) [भा भै. र ४१७]

(सु. सं. । चि. अ. २६)

द्रव्य तथा निर्माण विधान--वायविडङ्ग और मुलहैठी का चूर्ण समान भाग मिलाकर जल के साथ भलीभान्ति खरल करे और ४-४ रत्ती की गोलियां बना, सुखाकर प्रयोग मे लावे।

मात्राः--१ से ४ गोली तक।

अनुपान तथा प्रयोग विधान--१. इन्हे ठण्डे जल के साथ खाकर ऊपर से शीतल जल पिये। इस प्रकार प्रतिदिन एक मास तक इसका सेवन करे।

२. इन गोलियों का चूर्ण करके मधु मे मिलाकर भिलावे के क्वाथ के साथ १ मास तक सेवन करे। उपरोक्त क्रम अनुसार शीतल जल पिये।

३. चूर्ण करके मधु मिलाकर द्राक्ष के क्वाथ के साथ ले और उपरोक्त विधान का सेवन करें।

४. चूर्ण करके मधु मिलाकर आमले के क्वाथ के साथ यथोक्त विधान द्वारा पियें।

५. चूर्ण करके मधु मिलाकर गिलोय के रस या क्वाथ के साथ उपरोक्त विधानपूर्वक सेवन करते रहें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—उपरोक्त प्रयोगों में से चाहे जिसका सेवन किया जा सकता है। इसके सेवन से अर्श और कृमिरोग का नाश होता है और ग्रहण करने तथा धारण करने की शक्ति बढ़ती है। यह प्रयोग जितने मास तक सेवन किया जाय उतने ही सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है।

पथ्य—औषधि पच जाने पर मूंग और आंवले के लवण रहित किञ्चिद घृत युक्त यूष के साथ, घृत युक्त भात खाना चाहिये।

सं. वि.—वायविडङ्ग रसायन द्रव्य है। इसके अनेक रासायनिक प्रयोग चरक-सुश्रुत के रसायनाधिकारों में पाये जाते हैं। यष्टिमधु मधुर गुण युक्त वीर्यवर्द्धक और रसायन औषध है। शीत जल भी इतना ही रसायन है। भल्लातक क्वाथ, द्राक्षा क्वाथ, आमले का यूष और गिलोय के क्वाथ आदि के साथ इस योग का सेवन करने का विधान आचार्यों की एक प्रशस्त शोध का असाधारण उदाहरण है। ये सभी द्रव्य रसायन हैं और सभी की रसायन चिकित्सा में इनके विविध योगों का वर्णन मिलता है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि यह प्रयोग शास्त्र सम्मत, पूर्ण वैज्ञानिक और प्रशस्त लाभकारी है। साधारण द्रव्य समझकर ऐसे सद्योग की उपेक्षा, बुद्धि के भ्रम का ही कारण हो सकती है।

इन्दु वटी [भा. भै. र. ४५८]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध शिलाजीत, अभ्रक और लौहभस्म, प्रत्येक ४-४ भाग तथा स्वर्णभस्म १ भाग। सबको एकत्र खरल करके मकोय, शतावर, आंवला और कमल के रस में पृथक २ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१-१ गोली। आंवले के रस में घोटकर सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कर्णनाद आदि वातजरोग और विविध प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषनाशक, आमशोषक, शरीर पोषक और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से कफ और वायु द्वारा उत्पन्न हुये विकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। ऊर्ध्व जत्रुगत विकारों में श्लेष्म और वायु का आधिक्य पाया जाता है। इनके नाश करने के लिये यह औषध युक्ति युक्त उपयुज्य है। कर्णनाद, जिसका कारण नासिका, कण्ठ और गले की श्लेष्म-कलाओं में दीर्घकाल से शीत और रूक्ष गुण द्वारा प्रकुपित वायु का कारण माना जाता है तथा यकृत् शैथिल्य या यकृदावर्ण की श्लेष्मकलाओं में वात संचय के कारण निष्क्रियता भी

इस रोग का कारण बन जाती है, इसी प्रकार अन्त्र में सतत वायु के संचय और प्रकोप के कारण यह रोग उत्पन्न हो सकता है। इन सभी कारणों को दूर करने के लिये यह औषध उपयोगी है।

इन्द्रब्रह्म वटी [भा. भै. र. ४५९]
(र. सा. सं. । अपस्मार)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—रससिन्दुर, अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लौहभस्म, चान्दीभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध विष, कमलकेसर और शुद्ध गन्धक। प्रत्येक औषध समान भाग लें। भलीभान्ति खरल करके सबको एकत्र मिश्रित करे और फिर थूहर के दूध, चीते की जड के रस, भांग, एरण्ड, वच, सेम, जिमीकन्द और संभालु के रस में पृथक पृथक १-१ दिन घोटकर पिष्टी तैयार होने पर गोला बनाले।

इस गोले को कंगनी और सरसो के तेल मे पकावें और फिर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१-१ गोली। अदरक के रस के साथ मिलाकर खिलावे। ऊपर से पीपल का चूर्ण मिश्रित दशमूल क्वाथ पिलावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अपस्मार शीघ्र नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, विषनाशक, आक्षेपनाशक, त्रिदोषशामक, दोषानुलोमक और सहज रेचक है। आक्षेपक विकारो मे इस औषध के त्रिदोषशामक और नाडियो की उग्रता नाशक गुणो के कारण शीघ्र लाभ पहुंचता है।

मानसिक रोगों में, जिनके कारण रजोगुण और तमोगुण होते है, यह औषध विचित्र क्रिया करती है। तमोगुण से वात तथा कफ दोष विकृत हो जाते है। यह वात-पित्त विकारो को नष्ट करनेवाली सुन्दर औषध है। यह कण्ठशोधक, स्नेह्य, पोषक, अग्निवर्द्धक, कोष्ठगत दोष नाशक और मस्तिष्क उग्रता नाशक है। पोषक और स्नेह्य गुणो के कारण अथवा रसायन क्रिया के आधार पर मानसिक विकार से उत्पन्न हुये त्रिदोष को यह सहज नष्ट कर देती है। मानसिक रोग शारीरिक विकारो के दूर होते ही नष्ट होने लगते है और धीरे २ इन विकारों के कारण उत्पन्न हुई अनेक व्याधियां भी नष्ट हो जाती है। अपस्मार के लिये यह उत्तम औषध है। जहां यह औषध-योग अनेक प्रकार के मानसिक और शारीरिक विकारो का नाश करता है, वहां मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करके स्मृतिशक्ति की वृद्धि भी करनेवाला है अतः अपस्मार की भी यह श्रेष्ठ औषध है।

इन्द्रवटी [भा. भै. र. ४६०]
(र. सा. सं. । र. का. धे. । प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रससिन्दुर, वंगभस्म और अर्जुन की छाल। प्रत्येक समान भाग लेकर भलीभान्ति घोटकर मिश्रित करे। फिर १ दिन सेंभल की जड के रस में घोटे और ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से मधुमेह का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध वात-कफ नाशक, पाचक, हृद्य, बल्य और रसायन है। सम्पूर्ण शरीर की श्लेष्मकला मे और श्लेष्म प्रधान ग्रन्थियो के शोथो को दूर करने में यह विशिष्ट क्रिया करती है।

अन्त्र शैथिल्य, अजीर्ण, आम संग्रह, श्लेष्मकला शोथ और विविध आवश्यक ग्रन्थियों की श्लेष्मकलाओ की निष्क्रियता के कारण प्रमेह आदि अनेक रोग उत्पन्न होते है। प्रमेह के साथ २ शैथिल्य और ग्रन्थियो में निष्क्रियता बढती चली आती है। सभी प्रमेह अन्त मे मधुमेह का रूप धारण कर लेते है। अर्थात् ग्रन्थि और पाचन संस्थान की क्रिया विषमता ऐसे भयङ्कर रोगों का मूल कारण बन जाती है। यह औषध ऊष्ण, श्लेष्म और वातनाशक है। हृदय को शक्ति देनेवाली और अवसन्न हृदय को भी सशक्त करनेवाली है, अत इस से सभी ग्रन्थियों को यथावश्यक पोषण प्राप्त होता है। पुष्ट ग्रन्थियां यथेच्छ क्रियामयी बन जाती है। श्लेष्म कलाओं के दोष दूर हो जाते है। पाचक रसों की यथावत् उत्पत्ति होने लगती है। सम्पूर्ण पाचक यन्त्र, स्राववाहि ग्रन्थियो के साथ साथ स्वस्थ हो जाता है। इस प्रकार प्रमेह और मधुमेह के लिये यह औषध लाभप्रद सिद्ध होती है।

एलादि गुटिका [भा. भै. र. ५६६]
(च. द. । रक्तपित्त)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—इलायची, तेजपात, दालचीनी, प्रत्येक ७॥-७॥ मासे, पीपल २॥ तोला, मिश्री, मुल्हैठी, खजूर और मुनक्का ५-५ तोले। सब द्रव्यो को भलीभान्ति मिश्रित करलें। तत्पश्चात् मधु मे मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली (शास्त्रोक्त मात्रा १।-१। तोला)।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, छर्दी, मद, रक्तष्ठीवन, तृष्णा, वात-कफ, अरुचि, शोथ, प्लीहा, आढचवात, स्वरभेद, क्षत और क्षय का नाश होता है। यह तर्पिणी, वृष्या और रक्तपित्त का नाश करनेवाली है।

सं. वि.—यह औषध उक्त रोगो मे द्रव्यों के गुणो के कारण विशेष लाभप्रद है। यह वात-पित्त नाशक, पोषक, शोथ, दाह, तृष्णा, जीर्णज्वर और शोषनाशक है। रूक्षता और उष्णता के कारण उत्पन्न हुये रक्तपित्त तथा अन्त्र श्लेष्मकला विकार अर्थात श्लेष्मकला क्षत, व्रण और शोथ आदि इसके सेवन से दूर हो जाते है। यह मुखमे रखकर चूसते रहने से अधिक लाभ देती है।

---

० कण्ठ सुधारक वटी [र. तं. सा]

बनावट—सत मुलहटी ७ तोले, पीपरमेंट के फूल, कपूर, इलायची और लौंग १-१ तोला और जावित्री २ तोला ले। सबको मिला और जल मे आध घण्टे खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले। (धन्वन्तरि)

मात्रा:—१-१ गोली। मुंह मे रखकर दिन मे १०-१५ बार धीरे २ चूसते रहे।

उपयोग—यह वटी अरुचि, मन्दाग्नि, गला बैठना, उवाक, बेचैनी, अजीर्ण, उदरवात, कफ, श्वास आदि रोगो को दूर करके अग्नि को प्रदीप्त करती है और चित्तवृत्ति को प्रसन्न बनाती है।

---

० कन्या लोहादि गुटिका [आ. औ]

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—एलिया १० तोला, हीराकसी (कासीस) ७॥ तोला, तज ५ तोला, इलायची ५ तोला, सोंठ ५ तोला तथा गुलकन्द २० तोला ले। सबको खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१ से ३ गोली तक। प्रात' सायं जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—रक्तहीनता, प्रदर और गर्भाशय के रोगो के लिये उपयोगी है।

सं. वि.—इसके सेवन से वात-कफ दोष जन्य पाण्डु, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, गर्भाशयशूल तथा नष्टार्तव आदि विकार दूर होते है। यह प्लीहा, यकृत्, गुल्म, शूल, आम, कफ आदि रोगों मे भी उपयोगी है। यह पाचक और दोषानुलोमक है।

---

० कम्पिल्लादि वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—कमीला २० तोला, वायविडङ्ग २० तोला, सञ्चल नमक २० तोला, यवक्षार २० तोला, छोटी हैड २० तोला और गुड ४० तोला ले। सब द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके गुड मे मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१ से ४ गोली तक। अग्निबलानुसार। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कृमिरोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह आम-कफ नाशक, कृमिनाशक, वातानुलोमक तथा सहज रेचक है। इसके सेवन से अजीर्ण, कृमि, आध्मान आदि का नाश होता है।

कर्पूर सुन्दरी वटिका [भा. भै. र. ७४२]
(र. प्र. सु. । अ. ८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कपूर, जायफल, जावित्री, धतूरे के बीज, समुद्रशोष, अकरकरा, त्रिकुटा, वच और करञ्ज की गिरी सब चीजे समान भाग ले। शुद्ध भांग सबके वजन से आधी, पुरानी अफीम भांग के बराबर और भांग से आधा शुद्ध मीठा तेलिया लें। सब द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्णो को एकत्र करके मिश्रित करें और फिर भांगरे के रस में घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से शीतवात, अर्श, संग्रहणी, प्रबल अतिसार, अग्निमान्द्य और अफीम खाने की आदत बन्द हो जाती है तथा कामशक्ति की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध संग्राही, स्तम्भक, कफ—वात नाशक, अग्निवर्द्धक और वाजीकरण द्रव्यों का मिश्रित रूप है। इसके सेवन से अन्त्र की शिथिलता, श्लेष्म की वृद्धि, प्रवाहिका, अतिसार, शीत तथा वातजन्य अन्त्र विकार नष्ट होते है। यह वीर्यस्तम्भक और कामोत्तेजक है।

---

७ कर्पूरादि वटी [र. तं. सा.]

बनावटः—कपूर, अनार (दाडिम) के फल की छाल और लौंग १—१ तोले; कालीमिर्च, पीपल, बहेडे की छाल और कुलीञ्जन २—२ तोले तथा सफेद कत्था ११ तोले ले। सबको मिला बबूल की छाल के क्वाथ की भावना देकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

सूचनाः—क्वाथ का जल इतना मिलाना चाहिये कि ३ घण्टे खरल करने पर गोली बन सके। विशेष जल मिलाने पर कपूर उडकर कम हो जाता है।

मात्राः—१—१ गोली। दिन मे १०—१५ वार मुंह मे रखकर चूसे।

उपयोग—इस वटी के सेवन से सब प्रकार की खांसी दूर होती है। विशेषतः वात प्रकोप से उत्पन्न हुई सूखी खांसी, जिसमे कफ नहीं आता और रात्रि को अतिसार होता है, निद्रा भी पूरी नही आ सकती, वह ५—७ रोज मे शान्त हो जाती है।

यदि कण्ठ मे रही हुई गिलायु (कागल्या Uvula) शिथिलता हो जाने से बार बार खांसी आती हो तो गले के भीतर माजूफल चूर्ण को शहद में मिलाकर दिन में २-३ बार लगा लेना चाहिये, तथा कर्पूरादि वटी १-१ गोली मुंह में रखकर रस निगलते रहना चाहिये। शौच शुद्धि न होती हो तो अभयादि मोदक आवश्यकता पर देवे ।

[रसतन्त्र सार से उद्धृत]

काङ्कायन गुटिका [भा. भै. र. ७५०]

(शा. ध. । म. ख. । अ. ७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अजवायन, जीरा, धनिया, कालीमिर्च, श्वेत अपराजिता (कोयल) अजमोद और कलौजी प्रत्येक १६-१६ मासे, हींग २ तोला । यवक्षार, सुहागे की खील, पांचो नमक और निसोत प्रत्येक ३२-३२ मासा । दन्ती, कपूर कचरी, पोखर मूल, वायविडङ्ग, अनारदाना, हैड, चीता, अमलवेत और सोंठ प्रत्येक ६४-६४ मासे ले । सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करके बिजौरे निम्बु के रस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें ।

मात्राः—१ से ४ गोली । ऊष्ण जल, घृत, दुग्ध, काञ्जी आदि ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इन गोलियों को घी, मधु, काञ्जी तथा गरम पानी के साथ सेवन कराने से गुल्म का नाश होता है ।

(क) मध के साथ सेवन कराने से वातगुल्म का नाश होता है ।

(ख) गोदुग्ध के साथ देने से पित्तज गुल्म का नाश होता है ।

(ग) गोमूत्र के साथ देने से कफज गुल्म का नाश होता है ।

(घ) दशमूल के क्वाथ के साथ देने से त्रिदोषज गुल्म का नाश होता है ।

(ङ) ऊंटनी के दूध के साथ देने से स्त्रियो के रक्त गुल्म का नाश होता है ।

ये गोलियां हृद्रोग, ग्रहणी, शूल, कृमि और अर्श का भी नाश करती है ।

कामेश्वर मोदक [भा. भै. र. ७५५]

(भै. र. । ग्रहणी)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अभ्रक की उत्तम भस्म, कायफल, कूठ, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मूसली, गोखरू, तालमखाना, केले की मूसली, शतावर, अजमोद, जटामांसी, तिल, धनिया, कपूर कचरी, गंगेरन, कपूर, मैनफल, जायफल, सेंधानमक,

भारङ्गी, काकडासिंगी, त्रिकुटा, जीरा, काला जीरा, चीता, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, पुनर्नवा, गजपीपल, द्राक्ष, कपूर कचरी, सुगन्धवाला, सेमल की मूसली, त्रिफला और कौंच के बीज। प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। शुद्ध भांग सबके बराबर और खांड सब से दुगनी लें। खांड की चासनी करके उसमें सब चीजों का मिश्रित चूर्ण मिलावें और जब यह मिश्रण ठण्डा हो जाय तो उसमें घी और मधु मिलाकर ४—४ रत्ती की गोलियां बनालें। (शास्त्रादेशानुसार १।—१। तोला या ७॥—७॥ मासे के मोदक बनावें)।

मात्राः—१ से ४ गोली। दूध और मिश्री के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह कामी पुरुषों के सेवन करने योग्य, स्तम्भक, वशीकरण, सुखदायक, कामिनी विद्रावक, पौष्टिक, क्षत और क्षय नाशक, कास, श्वास, घोर अतिसार नाशक, कामाग्नि, संदीपक, अर्श, ग्रहणी और कफनाशक तथा वाग्वर्द्धक है। एवं इसके सेवन से अकाल मृत्यु और पलितादि रोग नष्ट होते है। यह सबके लिये हितकारी है। और वृद्धों के लिए कामोत्तेजक है। यह राजाओं के सेवन करने योग्य औषध है। (अन्य ग्रन्थों मे इसका नाम "महा कामेश्वर" लिखा है)।

---*---

कासमर्दन वटी [र. तं. सा.]

बनावट—सफेद कत्था ४ तोले, सेलखडी २ तोले, कपूर १ तोला और छोटी इलायची के बीज ६ मासे लें। सबको खरल करके बारीक चूर्ण करे। पश्चात् २० तोले बबूल की की छाल को २॥ सेर जल मे मिलाकर मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। जल के चतुर्थांश रहने पर उतार कर छान लें। फिर क्वाथ में चूर्ण को मिला, मन्द २ अग्नि देकर पकावें और चलाते रहे। जब गोली बांधने लायक अवलेह के समान गाढा पाक हो जाय, तब नीचे उतार लें। शीतल होने पर चने के समान गोलियां बनाकर छाया में सुखाले। यदि मसाला हाथ मे चिपकता हो तो थोडी सी सेलखडी लगा लगा कर गोलियां बनाले।

मात्राः—१—१ गोली मुंह मे रखकर चूसें। १ दिन में १०—१५ गोली तक चूसे।

उपयोग—यह वटी वातिक और पैत्तिक नये कास तथा जीर्ण कास को थोडे ही दिनों मे दूर करती है। इस गोली के सेवन से रोगी को पहले दिन से अच्छी निद्रा आने लगती है, एवं मुंह के छाले, दान्तों की शिथिलता, घण्टिका (कव्वे) की शिथिलता, आवाज बैठ जाना इनमें भी लाभ पहुंचता है। छोटे बच्चे जो, रस न चूस सके, उनकी जिह्वा पर गोली के चूर्ण को लगावे। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

- काशीशादि गुटिका

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध काशीश २ भाग, भांगरेका चूर्ण ६ भाग, हरिद्रा चूर्ण ६ भाग और रसौत १ भाग ले। सबका सूक्ष्म चूर्ण करके एकत्र मिश्रित करें और तत्पश्चात् भृङ्गराज के रस की ७ भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से गुदभ्रंश, आन्तरिक अर्श और श्लेष्मकला शैथिल्य आदि विकार नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध रक्त रोधक, वातनाशक, शैथिल्यनाशक, संकोचक और शोथ नाशक है। इसका सेवन गुदभ्रंश, गुदच्युति, गुदवलियो मे शोथ, अन्त्र शैथिल्य, आन्तरिक अर्श और आन्तरिक दाह, व्रण, वात आदि पर विशेष लाभदायी सिद्ध होता है।

---

६ कुङ्कुम वटी [अ. औ]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध अफीम और केसर समान भाग ले। भलीप्रकार मर्दन करके एकाकार करले। तत्पश्चात् १-१ चावल के वजन की गोलिया बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सग्रहणी, प्रवाहिका और अतिसार का नाश होता है।

---

७ कुटजादि वटी [र. त. सा.]

बनावटः—कुडाकी छाल ८० तोले, माजूफल, लौंग, मरोडफली, बहेडा, वायविडङ्ग, नागकेसर, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री, बेलगिरी, प्रत्येक १-१ तोला ले। पहले कुडे की छाल के जौकुट चूर्ण का ८०० तोले मे क्वाथ करे। २०० तोले जल शेष रहने पर उतार कर कपडे से छान ले। फिर मन्दाग्नि पर पाक करे। गाढा होने पर शेष औषधियों का कपडछन चूर्ण मिलाकर चने के बराबर गोलियां बनाले। [आ. मि.]

मात्राः—१ से २ गोली। दिन मे ३ बार जल या मट्ठे के साथ।

उपयोग—यह वटी सग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार, पेचिश और ज्वरातिसार को दूर करती है तथा रक्तार्श मे से रक्त गिरना बन्द करती है। बालको के लिये भी हितकर है।

[रसतन्त्र सार से उद्धृत]

कुटजघन वटी [सि. यो. सं,]

निर्माण विधिः—कुडा के मूल की या वृक्ष की ताजी हरी छाल ला, उसको जल से धो, जौकुट करके १६ गुने जल में पकावे। जब आठवां हिस्सा जल बाकी रहे तब उसको नीचे उतार कर ठण्डा होने पर स्वच्छ मजबूत कपडे से छान लेवें। फिर उसको प्रारम्भ में मध्यम और पीछे मन्द अग्नि पर पकावे और लकडी के खोचे से हिलाते रहें। जब क्वाथ गाढा होकर खोंचे में लगने लगे तब नीचे उतारकर सूर्य की धूप में गाढा हो तब तक सुखावें। पीछे इसमें अतीस का चूर्ण गोली बनने योग्य मिला ३–३ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखा लेवे।

मात्राः—२–४ गोली। दिन में ३–४ बार ठण्डे जल के अनुपान से देवें।

उपयोग—अतिसार, ग्रहणी और ज्वर में जब दस्त पतले आते हों तब इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

कृमिघ्न गुटिका [र. तं. सा.]

प्रथम विधिः—शुद्ध कुचला ५ तोले, वायविडङ्ग, अजमोद, अतीस, पीपल और इन्द्रजव सबको १–१ तोला मिला गुवार पाठे के रस मे १२ घण्टे खरल कर मूंग के बराबर गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। दिन में ३ बार जल के साथ दे। चौथे रोज सुबह जुलाब दे। आवश्यकता हो तो ज्यादा दिन देते रहे।

उपयोग—इस गुटिका के सेवन से उदर के सभी प्रकार के क्रमि दूर होते है। क्रमिजन्य ज्वर, मन्दाग्नि, उवाक, कण्डू, उदरवात, हृदय की निर्बलता सब शमन होते है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

कृमिघातिनी गुटिका [आ. वे. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, अजमोद ३ तोला, वायविडङ्ग ४ तोला, भारङ्गी के बीज ५ तोला और तिन्दुक (तैन्दुवा) बीज ३ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली तैयार करें। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्ण को उसमे मिश्रित करके भलीप्रकार खरल करे और मधु के साथ घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। यथा दोषानुपान या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से उदर की कृमि और कृमिजन्य अन्य उदार विकार नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, पाचक, आमनाशक, वातनाशक, वातानुलोमक, कृमि नाशक और आन्तरिक रसायन है। इसके सेवन से अन्त्र शैथिल्य, कृमि और कृमिजन्य अन्य विकार नष्ट होते है।

कैलसियम पिल्स [ऊंझा फार्मसी की पेटेन्ट]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—प्रवालपिष्ट १ भाग, शुक्तिपिष्ट २ भाग, शङ्खभस्म ३ भाग, वराटिका भस्म ४ भाग, सावरश्रृङ्गभस्म ५ भाग और गोदन्ति हरताल भस्म ६ भाग ले। सब औषधियों को एकत्र खरल करके मिश्रण को नीम्बु के रस की ७ भावना दे। तैयार होने पर २-२ रत्ती की गोलियां वनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसका उपयोग अम्लपित्त, दाह, शोप और दौर्बल्य में किया जाता है। यह बच्चों के परिवर्द्धन काल मे अधिक उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध आमाशय और अन्त्र आदि अवयवो की श्लेष्मकलाओं मे से उत्पन्न होनेवाले दूषित पित्त का शोषण करनेवाली, अन्त्रदाह को नाश करनेवाली, अन्त्रशोथ, विष और सम्पूर्ण शरीर की श्लेष्मकलाओ के शोथ तथा जडता का नाश करनेवाली है।

यह औषध दूषित पित्त का संशमन करती है, अतः अतिसार और संग्रहणी के विकारों में लाभप्रद है।

बच्चों को हरे-पीले दस्तो में खट्टी दुर्गन्ध आती हो, वहां इसका प्रयोग शीघ्र लाभप्रद होता है।

किन्ही कारणों से रक्त में यदि ऊष्मा की वृद्धि हो गई हो और उसके कारण शरीर नित्य निर्बल होता जाता हो तो यह औषध उपयुक्त है।

जिन बच्चों को शोष, अस्थि क्षीणता और सन्धिशोथ हो, उनको यह औषध लाभप्रद सिद्ध होती है।

खदिरादि गुटिका [भा. भै. र. १०६६]

(यो. र. । मु. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जायफल, कङ्कोल, कपूर और सुपारी का चूर्ण प्रत्येक १-१ भाग तथा खैर सार (कत्था) इन सब द्रव्यों के बराबर ले। सबको एकत्र घोटकर और जल के साथ मर्दन करके १-१ रत्ती का गोलियां बनाले।

उपयोग—इन गोलियो को मुख में रखकर चूसते रहने से मुखपाक, मसूडों के शोथ, व्रण और मुख दुर्गन्धि आदि मुखरोग नष्ट हो जाते है।

सं. वि.—यह औषध मुख के स्थानिक विकारो के लिये लाभप्रद है। यदि वे रोग नासिका, उदर अथवा किसी विष से सम्बन्ध रखकर उत्पन्न होते हो तो उनके कारणों की शोध करके चिकित्सा करनी चाहिये। ऐसा न करने से इन गोलियो से भले ही सामयिक लाभ हो जाय परन्तु कालान्तर मे रोग की पुनरावृत्ति होती है। यदि मुखपाक केवल मुख कला के दोष के कारण है और वह भी विषज या फिरङ्गजन्य अथवा भयङ्कर कीटाणुजन्य नहीं है तो "खदिरादि गुटिका" उसमें शीघ्राति शीघ्र लाभप्रदान करती है। इसके सभी द्रव्य रोचक, श्लेष्मकला शोधक, स्रावनाशक और स्थानिक दोष के कारण उत्पन्न हुये तथा साधारण विष दोषों से उत्पन्न हुए विकारो को भी नष्ट करनेवाले है।

गन्धक वटी [भा. भै. र. १३०१]
(र. सा. सं । अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध गन्धक १ भाग और सोंठ का सत्व ४ भाग लेकर दोनों को नीम्बु के रस की ७ भावना देकर यथारुचि सेंधानमक मिलाकर मर्दन करें और ३–३ या ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस गन्धक वटी का नित्य भोजन के अन्त में सेवन करने से रुचि और अग्नि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—इसके दोनो ही द्रव्य रसायन, ऊष्ण, कटु और पाक में मधुर हैं। दोनों ही के सेवन से आमका शोषण, विष का नाश और शरीर शक्ति की वृद्धि होती है। यह अन्त्र के सर्व साधारण त्रिदोषज विकारो को भी नष्ट कर सकती है। यह पाचक, वातानुलोमक, आक्षेपनाशक और आध्मान, अरुचि तथा अजीर्ण का नाश करनेवाली है।

ग्रहणीशार्दूल गुटिका [भा. भै. र. १३१७]
(भै. र. । ग्र. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जायफल, लौंग, जीरा, कूठ, सुहागे की खील, वायविडङ्ग, दालचीनी, धतूरे के बीज और अफीम प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सबको एकत्र खरल करें और प्रसारणी के रस की ३ भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। यथादोषानुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसका सेवन करने से ग्रहणी, अनेक वर्णयुक्त अतिसार और प्रवाहिका नष्ट होती है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक, आम और कफनाशक, श्लेष्मकला शोथनाशक, कृमिनाशक, क्षोभनाशक, दाहनाशक, संग्राही और संवेदना नाशक है। इसके सेवन से आमाजीर्ण, आमसंग्रह, अन्त्र शैथिल्य, श्लेष्मकला दौर्बल्य और श्लेष्मकला वृद्धि द्वारा होनेवाले अन्त्रदोष, ग्रहणी, अतिसार आदि रोग दूर होते है।

गुल्मवज्रिणी वटी [भा. भै. र. १५७५]

(र. रा. सुं.; र. सा. सं.; र. चिं. म.; र. चं. । गुल्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, सुहागे की खील और तवकी हरताल। प्रत्येक द्रव्य ५—५ तोला लें प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाले। तदनन्तर अन्य द्रव्यो के चूर्णो को उसमे मिश्रित करे और जल के साथ घोटकर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। मधु और जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से गुल्म, प्लीहा, अष्ठीला, यकृत्, आनाह, कामला, पाण्डु, ज्वर और शूल का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, दोषानुलोमक, आक्षेपघ्न, पाचक, शोधक, सहज रेचक, आमदोष नाशक, विषदोष नाशक और दुष्ट अन्त्रो द्वारा होनेवाले विकारों को नष्ट करनेवाली है। यह कटु—ऊष्ण औषध वात श्लेष्म के विकारो को शीघ्र दूर करती है। यकृत और प्लीहा के विकार इसके सेवन से नष्ट होते है।

गुडूच्यादि मोदक [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अंगूठे जितनी मोटी ताजी हरी गिलोय ला, उसको जल से धो, छोटे २ टुकडे कर, लकडी की ओखली मे डाल, लकडी के मुसल से खूब कूट, कलाई-दार बरतन मे चौगुने जल मे डाले, हाथो से खूब मसल, दूसरे कलई दार बरतन मे स्वच्छ कपडे से सब जल छान लें और रातभर बरतन को ढक कर रहने दें। सवेरे ऊपर का सब जल एक बरतन मे निथार ले और बरतन के ऊपर एक पतला महीन कपडा बांधकर उसे खुले हुये स्थल मे रखकर सुखाले। इसको गिलोय का सत्व कहते है। (निथारे हुये जल को मन्द आंच पर पका, उसको घन बनाकर संशमनी वटी बना ले।) खस, अडूसे के फूल या मूल की छाल, तेजपात, कूठ, आंवले, सफेद मूसली, छोटी इलायची,

गुलशकरी, मुनक्का, केशर, नागकेशर, कमल का कन्द, कपूर, श्वेत चन्दन, मुल्हैठी, बरियार के मूल या बीज, अनन्तमूल, बंशलोचन, छोटी पीपल, धान का लावा (खील, असगन्ध, शतावर, गोखरू, कौच के बीज, जायफल, कबाबचीनी (शीतल चीनी, मिर्च, जीरा, रससिन्दुर, अभ्रकभस्म और लौहभस्म १-१ भाग तथा उपरोक्त विधान द्वार निर्मित गिलोय सत्व सबके बराबर लें। प्रथम पत्थर के खरल मे रससिन्दुर को खूब महीन पीस, उसमें भस्में और अन्य द्रव्यों का कपडछन चूर्ण मिला एक दिन मर्दन करके शीशी में भर ले।

मात्रा और अनुपान—१॥ से ३ मासे तक चूर्ण, मिश्री, गाय के घी और शहद के साथ मिलाकर दें।

उपयोग—क्षय, रक्तपित्त, हाथ-पांव की जलन, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और जीर्णज्वर में इसका प्रयोग करे। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

गैसहर वटी [आ. सा सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीम्बुका रस १२ सेर, सेधानमक ३० तोला, सोंठ १० तोला, अजमोद १० तोला, सज्जीक्षार १० तोला, पीपल १० तोला, हींग १० तोला, करञ्ज चूर्ण २० तोला, काली मिर्च १० तोला, ल्हसन १० तोला, चित्रकमूल १० तोला, सफेद जीरा १० तोला, अतिविष की कली १० तोला और भुना हुवा संचलनमक १० तोला लें। समस्त द्रव्यों का चूर्ण करके नीम्बु के रसमे परिभावित करे। घोटने योग्य होने पर घोटने लगें कौर गोली बनाने योग्य लुगदी तैयार होने पर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।
मात्राः—१ से ४ गोली। अग्निबलानुसार। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—आध्मान, वातशूल, अजीर्ण और पेट की वायु अर्थात् गैस का नाश करती है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, वातनाशक, अग्निवर्द्धक, आमशोषक, पित्तवर्द्धक, वातानुलोमक, आध्मान नाशक और वातज अन्त्रदोष नाशक है। इसके सेवन से वातजशूल, अग्निमान्द्य, अफारा, अजीर्ण आदि रोगो का नाश होता है।

चन्दनादि वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधिः—श्वेत चन्दन का बुरादा, छोटी इलायची के बीच, कावबचीनी, सफेद राल, गन्ध बिजौरे का सत्व, कत्था और आंवला प्रत्येक ४-४ तोला, लें। सबका कपडछन चूर्ण कर उसमे ५ तोला उत्तम चन्दन का तेल (इत्र) तथा गोली बन सके इतनी रसोत (दारुहल्दी का घन) मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा और अनुपान---३-४ गोलियां। ४-४ बार ठण्डे जल के साथ लेने से पेशाब की जलन और पेशाब मे पूय आना बन्द होता है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

चन्द्रप्रभा गुटिका (नं. १) [भा. भै. र. १७३९]

(शा. सं. । म. ख. अ ७, नपुं. मृ. । त. ७, भै. र., वै. र., प्र. चि.; वृ. यो. त. । त. १०३)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः---कचूर (मतान्तर से बावची), वच, मोथा, चिरायता, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चीता, धनिया, हैड, बहेडा, आंवला, चव, वायविडङ्ग, गजपीपल, सोठ, मिर्च, पीपल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, यवक्षार, सज्जीक्षार, सेधानमक, कालानमक और समुद्रनमक ५-५ मासे तथा निसौत, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी इलायची और वंशलोचन १-१ कर्ष (२०-२० मासे), एवं लोहभस्म २ कर्ष (४० मासे), मिश्री ४ कर्ष, शिलाजीत ८ कर्ष और गूगल ८ कर्ष ले। यथाविधान मिश्रण करके २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः---२ से ४ गोली। मिश्री युक्त दूध, त्रिफला क्वाथ या जिन रोग के नाश करने के लिए दी जाय उनके नाशक क्वाथ अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः---यह चन्द्रप्रभा गुटिका २० प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, मलावरोध, आध्मान, शूल, मूत्रग्रन्थि, अर्बुद, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कटिशूल, श्वास, कास, विचर्चिका, कुष्ठ, अर्श, खुजली, प्लीहा, भगन्दर, दन्तरोग, स्त्रियों की आर्तव पीडा, प्रदर, शुक्र विकार, मन्दाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफ को नाश करती है तथा बल्या, वृष्या और रसायनी है।

सं. वि.---चन्द्रप्रभा में जितने द्रव्यो का मिश्रण किया गया है वे सभी वात-कफ नाशक, पाचक, पित्तशामक, श्लेष्मकलादोष नाशक और वातज तथा कफज उदरगत विकारो को शान्त करनेवाले है। सम्पूर्ण योग ज्वरनाशक, दाहनाशक, पित्तशामक, मूत्रल, कृमिघ्न, वातानुलोमक, उग्रतानाशक और सहज रेचक तथा पोषक है। इसके सेवन से अन्त्र मे होनेवाले एक दोपज, द्वन्द्वज अथवा सन्निपातज विकारों का संशोधन होता है। संचित अथवा प्रकुपित दोष इसका प्रयोग होते हुये, विकार नहीं कर सकते। सम्पूर्ण उदर की श्लेष्मकलायें इसके सेवन से विकृति विहीन हो जाती है। अर्थात् पाचक रसों का मिश्रण अधिक होता हो तो उनका शोषण हो जाता है अथवा क्षारादि के योग से उनकी क्षीणता दूर हो जाती है। यदि आम

और कफ के दोष के कारण श्लेष्मकला शिथिल और अन्त्र भारी हो जाते हो तो इस औषध के ऊष्ण, तीक्ष्ण, पाचक और मूत्रल होने से ये दोष नष्ट हो जाते है। क्यो कि यह वातानुलोमक और पाचक है, अतः वात द्वारा होनेवाले शूल, मूत्रकृच्छ्रादि रोग भी नहीं होने पाते। संक्षेप में यह कहना अत्युक्ति न होगा कि अन्त्र और नाडियो के दोष से होनेवाले प्रमेह, कामला, पाण्डु, शूल, आर्तवदोष, शुक्र विकार, अरुचि और कफ इस औषध के सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाते है।

शिलाजीत, लोह, और स्वर्णमाक्षिक का योग इसे बल्य, रसायन और वृष्य बनाता है।

चन्द्रप्रभा गुटिका (नं. २) [भा. भै. र. १७३६]

(र. रा. सुं. । मेह., र. र. स. । उ. ख. अ. १७, हा. सं. । स्था. ३ अ. ५८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—इलायची, जायफल, मुल्हैठी, महुवा, खैरसार, कपूर, आम के जड की छाल, शतावर, बेर, अम्लवेत, कसीस, गूगल और अनारदाना प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर एकत्र खरल करें और फिर दही, दूध और कलिहारी के रस की १–१ भावना देकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। जल अथवा दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से भयङ्कर प्रमेह का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध संकोचक, श्लेष्मकला दोष नाशक, वातानुलोमक, वीर्यवर्द्धक और अन्त्र में संचित अथवा प्रकुपित विकारों को नष्ट करती है। यह शीत वीर्य औषध दाहनाशक, मूत्रल, कृमिनाशक, जन्तुघ्न और दोषशामक है। इसके सेवन से वात–पित्त और कफ द्वारा होनेवाले प्रमेह विकार नष्ट होते है।

चित्रकादि गुटिका [भा. भै. र. १७४३]

(च. सं. । चि. अ. १९; भै. र.; यो. र., वृ. मां; च. द.; वं. से.; भा. प्र । ग्रहणी; ग. नि. । गुटि. ४; वृ. यो. त. । त. ६७, यो. त. । त. २२; शा. ध.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चीतामूल, पीपलामूल, सज्जीक्षार, यवक्षार, संचल, सैन्धव, विड, उद्भिज, समुद्रलवण, सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोद, हींग और चव प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। सब का सूक्ष्म चूर्ण बनावे और खरल मे घोटकर एकत्र करे। तदनन्तर बिजौरे निम्बु या अनार के रस में घोटकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म–इसके सेवन से आम का पाचन होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

सं. वि.—यह औषध वात–पित्त नाशक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, आमशोषक, शूलनाशक और क्षाराधिक्य से पित्त का शोषण करती है तथा वात का संशमन करती है। इसे ग्रहणी रोग की पश्चात् अवस्था मे तक्रादि के साथ प्रयोग करने से अन्त्र मे शैथिल्य नहीं होने पाता।

जया वटी [र. तं. सा.]

बनावट—शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हल्दी, नीम के पत्ते, नागरमोथा और वायविडङ्ग इन ८ औषधियो को सम भाग लें। फिर कूट, महीन चूर्ण कर १२ घण्टे बकरे के मूत्र में खरल कर चने के समान गोलियां बनाले। [र. सं.]

जया और जयन्ती दोनों प्रयोगो में रसयोगसागरकार ने योग महार्णव ग्रन्थ के आधार पर शुद्ध गन्धक को भी मिलाने को लिखा है। शुद्ध गन्धक मिलाने से गुण मे वृद्धि होती है, ऐसा उनका अनुभव है।

मात्राः—१ से २ गोली तक। दिन में २ बार देवे।

उपयोग—यह वटी अनुपान भेद से सब प्रकार के ज्वर, कास, बहुमूत्र, पाण्डु, शोष, कुष्ट, प्रमेह, अतिसार, संग्रहणी, रक्तपित्त और नेत्ररोग आदि को दूर करती है। अनुपान जया और जयन्ती का समान है। अनुपान का वर्णन जयन्ती में लिखा है।

[रसतन्त्रसार से उद्धत]

ज्वरघ्नी गुटिका [भा भै. र. २१३५]

(र. प्र. सु. । अ. ८, वृ. नि. र., र. का. धे ; र. रा. सुं., यो. र. । ज्वर.; शा. ध.; र. प्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा १ भाग, ऐलवा, पीपल, हैड, अकरकरा, सरसों के तेल मे शोधा हुवा गन्धक और इन्द्रायण के फल, प्रत्येक ४–४ भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों का कपडछन चूर्ण उसमें मिलाकर इन्द्रायण के रस में घोटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली। गिलोय के क्वाथ अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, दीपक, पाचक, आक्षेपनाशक और शोधक है। इसके सेवन से उदर साफ होता है। दोषों का निर्हरण होता है।

ज्वरारि वटी [र. तं. सा.]

बनावट—मल्लपुष्प के साथ बना हुवा गुलाबी फिटकरी का फूला १ भाग तथा पीपल और मिर्च २-२ भाग ले। सबको मिला, घीकुमार के रस में खरल कर, मूंग के समान गोलियां बनाले। [र. सा.]

मात्राः—१-१ गोली। दिन मे २-३ बार जल के साथ देवे।

उपयोग—यह वटी सब प्रकार के नवीनज्वर, जीर्णज्वर और विषमज्वर को दूर करती है। इस वटी के प्रभाव से नूतन ज्वर २-४ दिन मे ही दूर हो जाता है।

जातीफलादि गुटिका [भा. भै. र. १९९७]

(यो. र., वृ. नि. र। अति)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जायफल, अफीम, सुहागे की खील, शुद्ध गन्धक, जीरा तथा कच्चे अनार के बीज। प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले और पानी मे पीसकर पिष्टी तैयार करले। तदनन्तर अनार को खोखला करके उसमे इस पिष्टी को भरले और अनार का मुंह बन्द कर ले तथा उसके ऊपर चारो तरफ गेहू का गोन्दा हुवा आटा लपेट दें। इसे अनार के अङ्गारो मे दबा दें। जब आटे का रङ्ग लाल हो जाय तो अनार को ठण्डा कर उसके अन्दर से औषधि निकाल कर पीस ले।

मात्राः—१ से ३ रत्ती। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अतिसार, प्रवाहिका और संग्रहणी मे लाभ होता है।

सं. वि.—यह औषध अतिसार को रोकती, आम को पचाती और अग्नि को प्रदीप्त करती है।

तक्र वटी [भा. भै. र. २५५६]

(भै. र.। ग्रह.)

द्रव्य और निर्माण विधानः—शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक १-१ मासा, शुद्ध मीठा तेलिया २ मासे, ताम्रभस्म ४ मासे और पीपल तथा मण्डूरभस्म १-१ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर सबको ७ दिन तक काले जीरे के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। प्रात' सायं तक्र के साथ सेवन करें।

पथ्यः—लवण और जल बन्द करके रोगी को केवल तक्र पर रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शोथ, संग्रहणी और पाण्डु का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, आमपाचक, अग्निवर्द्धक, शूल्नाशक, रक्तवर्द्धक, वात-पित्त और कफ दोषों को दूर करनेवाली तथा अन्त्र को शुद्ध और सक्रिय रखनेवाली है। इसके सेवन से अन्त्र के दोष नष्ट होते है। आम और आमजन्य अनेक विकारों का नाश होता है तथा अन्त्र के दोष से उत्पन्न हुये शोथ और उसके आनुषङ्गिक रोगों का नाश होता है, यह रक्त के विकार को दूर करती है और पाण्डु, रक्तहीनता और प्लीहा के विकारों का नाश करती है।

ताम्रेश्वर गुटिका [भा. भै. र. २६०८]

(रसे. सा. सं; र. चं.; धन्व; र. रा. सुं. । प्लीहा.; रसें. चिं. । अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हींग, त्रिकटु, अपामार्ग के पत्र, आक और थूहर के पत्ते। प्रत्येक समान भाग तथा वजन मे इन सबके बराबर सेंधानमक, लोहभस्म और ताम्रभस्म लेकर सबका चूर्ण करके एकत्र घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली। मधु और पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्लीहा, यकृत्, गुल्म, आमवात, अर्श, भयङ्कर उदर रोग, मूर्च्छा, पाण्डु, हलीमक, ग्रहणी, अतिसार और शोथ रोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, आमनाशक, मूत्रल, पित्त-वात नाशक, शूल-नाशक, पाचक, आक्षेपनाशक, अन्त्रशैथिल्य नाशक तथा श्लेष्मकलाओं के दोषों को दूर करनेवाली है। इसके सेवन से यकृत्-प्लीहा वृद्धि, आम, पित्त और वातज उदररोग तथा श्लेष्मकला दौर्बल्य के कारण उत्पन्न हुवा क्षय नष्ट होता है।

त्रिफलादि गुटिका [भा. भै. र. २४०३]

(वृ. नि. र. । संग्रहणी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिफला, पांचोंनमक, कुष्ठ, कुटकी, दारुहल्दी और निबौली, वला, अतिवला, हल्दी, दारुहल्दी और हुलहुल सब द्रव्यों का कपडछन चूर्ण समान भाग लेकर, खरल मे मिश्रित करके, करञ्ज की छाल के रस मे घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक।

इन्हें भिन्न भिन्न अनुपानों के साथ सेवन करने से अनेको रोग नष्ट होते हैं। यथा—तक्र के साथ अर्श, काञ्जी या निम्बु के रस के साथ गुल्म, ऊष्ण जल से अग्निमान्द्य, खैर की छाल

के क्वाथ के साथ लेने से चर्म रोग, ताजे पानी के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र, इन्द्रजौ के स्वरस के साथ लेने से ज्वर, बिजौरे के रस के साथ लेने से शूल और तेन्दु या कैथ के साथ सेवन कराने से विष विकार तथा तेल के साथ देने से हृद्रोग नष्ट होता है।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—उपरोक्त अनुपान भेद से यह औषध अर्श, गुल्म, अग्निमान्द्य, चर्मरोग, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, ज्वर, शूल और विष विकारो को नष्ट करती है।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, पाचक, आमनाशक, अन्त्र में एकत्रित अन्त्रदोष नाशक, अन्त्रशोष नाशक तथा विषनाशक है।

त्र्यूषणादि गुटिका [भा. भै. र. २७८४]
(र. र. । शिरः)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोंठ, मिर्च, पीपल, अतिविष की कली, जवाखार, सज्जीखार, हैड, बहेडा, आमला, निसोत, हलीमक, वासा, लोध्र, तगर, चन्दन, गजपीपल, सुगन्धवाला, गिलोय, पीपलामूल, पोखरमूल, मोथा, कुटकी, कायफल, इन्द्रजौ, दालचीनी, तेजपात, नागरमोथा, नीलकमल, कच्चीमूली, हरताल और जायफल प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १।-१। तोला तथा ८-८ पल (४०-४० तोला) शिलाजीत, लोहभस्म और २॥ तोले वंशलोचन के चूर्ण को एकत्रित खरल करके पानी के साथ मर्दन करें और २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से मुखरोग, शिरोरोग, भ्रम तथा आंखों के पटल, तिमिर, पिष्टक, शुक्ररोग और अर्बुद तथा पलितरोग का नाश होता है और कामशक्ति की वृद्धि तोती है। कामशक्ति की वृद्धि के लिये इसका सेवन करते हुये दूध अधिक पीना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, मूत्रल, रक्तवर्द्धक, दाहनाशक, क्षोभनाशक, आमशोषक, वीर्यदोष नाशक, अन्त्र तथा अन्य शरीर के कोषो के विकारो को दूर करनेवाली, विशेषतः नाडी उग्रता, वातव्याधि, शरीर शिथिलता, रक्तचाप की शिथिलता, विकलता और मस्तिष्क की अधिक उग्रता के कारण होनेवाले आंख के दोषो को नाश करनेवाली है। मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करके शरीर चालक नाडीकेन्द्रो को स्वस्थ करती है और शरीर के प्रत्येक भाग का पोषण करके नाडियों द्वारा उत्पन्न हुये विकारो को नष्ट करती है।

यह मस्तिष्क पोषक विशेष औषध है। अतः मस्तिष्क की उग्रता, परिश्रान्ति, शिथिलता, और अस्थिरता के कारण होनेवाले मस्तिष्क विकारो को(शिरोरोगो को) दूर करती है। मस्तिष्क दौर्बल्य से होनेवाले रोग भी इसके सेवन से शीघ्र दूर हो जाते हैं।

दरदादि वटी [भा. भै. र. ३१९४]

(सि. भै. म. मा. । कास.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग, नागरमोथा, पीपल, कालीमिर्च और लौंग का चूर्ण समान भाग लेकर सबको ३ दिन तक निम्बु के रस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। प्रातः सायं मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से खांसी का वेग शान्त होता है।

पथ्यः—इसका सेवन करते हुये, करेला, कुष्माण्ड, केला, दोनों प्रकार की सेम तथा तेल और खांड से पथ्य रखना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक, कण्ठ, श्वास, कासनलिका और उदर शोधक, पाचक, वातानुलोमक, ऊष्ण, तीक्ष्ण और विकासी है। इसकी क्रिया के प्रभाव से आक्षिप्त श्वास-कास नलिकायें स्वस्थावस्था को प्राप्त होकर आक्षेपकारक कारणों को बाहर निकाल देती है। उग्र वेगवाली खांसी मे जिसमे रोगी को वमन हो जाता हो, श्वास अवरुद्ध लगता हो और रह २ कर बडे वेग से खांसी होती हो तथा ग्रीवा की मांसपेशियों मे तनाव आजाता हो, अक्षि लाल और भ्रमित लगने लगती हो, कण्ठ मे घुर २ शब्द होता हो अथवा कुत्ता खांसी में यह शीघ्र और विशेष लाभदायी सिद्ध होती है।

—————o—————

दशसार वटी [भा. भै. र. ३००१]

(रसे सा. सं. । वातव्या., र. रा. सुं.; धन्वं. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—मुल्हैठी, आंवला, द्राक्षा, इलायची, चन्दन, एलवालु, साहवे के फूल, खजूर और अनारदाना। सब वस्तुओं का चूर्ण समान भाग तथा खांड सबके बराबर लेकर एकत्र मिलाकर घोटे और आवश्यकता हो तो थोडा पानी डालकर घोटकर पिष्टी तैयार होने पर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली (शास्त्रोक्त २॥-२॥ तोला) पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त वातजरोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, आमशोषक, पाचक, अन्त्रशोधक, सहज सारक और अन्त्रपोषक है। शास्त्र जहां समस्त वातव्याधि नाशक कहकर इसका उल्लेख करता है वहां उसका आन्तरिक वात दोषो से ही तात्पर्य है। कारण कि यह मधुर विपाकी, तीक्ष्ण और स्निग्ध औषध है। यह रूक्ष, शीत, लघु और सूक्ष्म आदि वायु के गुणों के विरुद्ध

गुणवाली होने के कारण रोग को शीघ्र प्रशमन करती है। यों तो अन्त्र विकारो को नष्ट करनेवाली औषधियां स्वभाव से ही शरीरगत तादृश दोषों को नष्ट करती है अतः शास्त्र की दृष्टि दीर्घ, युक्तियुक्त तथा तर्क संगत है।

धनञ्जय वटी [भा. भै. र. ३२८१]

(वृ. नि. र.; यो. र. । अजी., वृ. यो. त. । त. ७१)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जीरा, चित्रकमूल, चव, सुगन्ध तृण, वच, दालचीनी, कचूर, हाऊवेर, कलौंजी और नागकेसर। प्रत्येक १।–१। तोला। सौंफ ७।। मासे। अजवायन, पीपलामूल, सज्जीक्षार, हैड, जायफल और लौंग २।।–२।। तोला। धनियां और तेजपात ३।।।–३।।। तोला, पीपल और रोमकलवण ५–५ तोला, कालीमिर्च ८।।। तोला, निसोत १० तोला, समुद्रलवण, सेंधानमक और सोठ १२।।–१२।। तोला, अम्लवेत ४० तोला और तिन्तिडीक २० तोला ले। प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण की उक्त मात्रा लेकर सबको एकत्रित खरल करके मिश्रित करे और फिर निम्बु के रस में या पानी में घोटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्नि तीव्र होती है तथा अजीर्ण, शूल, विबन्ध और ग्रहणीविकार नष्ट होते हैं। यह रोचक है।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, रोचक, वातानुलोमक, आमशोषक, आध्मान नाशक और शोषनाशक है। यह त्रिदोषशामक औषध है।

उदर शरीर संचालक मुख्य अङ्ग है। इसकी क्रिया पाचक रसों और तत्तत्स्थानगत दोषों के ऊपर आश्रित है। यदि आमाशय में कफ का निस्सरण न हो, ग्रहणी भाग में पित्त का अन्न के घोल के साथ मिश्रण न हो और वृहदन्त्र मे समान और उदान वायु अन्त्र का संचालन न करे तथा अधो भाग में अपान वायु अङ्गो को सक्रिय करके मल प्रक्षेपण क्रिया न करें तो शरीर के अन्दर शीघ्र जीर्णता आ सकती है। ऐसी परिस्थिति मे जब तीनो ही दोषों की अर्थात् उदर के ऊर्ध्व भाग मे कफ, मध्य भाग मे पित्त और अधोभाग मे वात की विकृति हो जाती हो और दोष अनुलोम न रह कर प्रतिलोम हो जाते हों तो तब अन्त्र की रचना में भी विकार उत्पन्न हो जाता है। श्लेष्मकलायें शुष्क और नीरस हो जाती है अग्नि क्षीण और उदर वात से भर जाता है, तब "धनञ्जय वटी" द्रव्यों की बहुमुखी क्रिया के कारण अर्थात् औषध के षड्रसमय होने के कारण सभी प्रकार के विकार नष्ट करती है। वायु द्वारा पीडित होनेवाले उदर के रोगियों को यह औषध सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होती है।

नागादि वटी [भा. भै. र. ३६३१]
(र. चं. । विष.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नागभस्म, सुहागे की खील तथा लौंग और कालीमिर्च का चूर्ण प्रत्येक समान भाग लेकर भलीभान्ति एकत्र खरल करें और फिर भांगरे के रस मे पर्याप्त काल पर्यन्त घोटकर १/२–१/२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१/२ गोली से १ गोली तक। मधु या दूध में मिश्रित करके दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—बच्चों के सभी साध्यासाध्य रोगों मे इसका प्रयोग किया जाता है। इससे बच्चो के महाश्वास और अन्य रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—औषध के योग पर दृष्टिपात करने से यह ऊष्ण, वात–कफ नाशक, नाडी दोषनाशक, पाचक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक और शरीर शैथिल्य नाशक है। कफ और वात की वृद्धि के कारण होनेवाले विकार यथा—आमाशय क्षोभ, वात, आध्मान और वक्ष जडता, निष्क्रियता, शीत, कण्ठशोष, कण्ठ वातावरोध, नासिका श्लेष्मकला विकार तथा श्वास और कास नलिकाओं के आक्षेप इसके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाते है। यह जिस प्रकार बच्चों के लिये उपकारक है उसी प्रकार अधिक मात्रा में यह बडों के लिये भी लाभप्रद होती है। अपने ऊष्ण–तीक्ष्ण आदि गुणों के कारण यह वातकफ रोगों मे प्रशस्त है।

निम्बादि गुटिका [भा. भै. र. ३४५६]
(र. का. धे । पाण्डु.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीम की छाल, पटोल, इन्द्रजौ, हैड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और सोंठ प्रत्येक ५–५ तोला लेकर अधकुटा करके ८ सेर पानी मे पकावे। जब १ सेर पानी अवशिष्ट रह जाय तब उसे उतारकर छान लें और उसमे ४० तोले शिलाजीत मिलाकर मिट्टी के पात्र मे भरकर और पात्र का मुंह वन्द करके सुरक्षित रखदे। १ मास बाद उस औषध को निकालें और खरल मे डालकर उसमे औषध के बराबर शुद्ध मनसिल तथा ५–५ तोला मोचरस, आंवला, वंशलोचन, काकडासिंगी, कटेली और १॥ तोला निसोत का चूर्ण तथा १५ तोला मधु मिलाकर घोटे। पिष्टी तैयार होने पर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कामला, पाण्डु और ज्वर नष्ट होते हैं।

सं. वि.—यह औषध, कटु, ऊष्ण, मूत्रल, मूत्रदोष नाशक, रक्तशोधक, पित्तनाशक और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से वृक्क विकार के कारण उदर मे सञ्चित होनेवाले विष

द्वारा होनेवाले शोथ, पाण्डु, रक्तहीनता, हृद्रोग तथा दौर्बल्य आदि रोग नष्ट होते हैं। यह यकृत् विकार से होनेवाले पाण्डु पर भी क्रिया करती है परन्तु इसकी क्रिया अधिकतर गर विष और अन्य विष से होनेवाले उदरविकार-जन्य पाण्डु पर शीघ्र और युक्तियुक्त होती है। सार आदि मेह रोगों के नाश के लिये यह लाभप्रद है।

---

७ निद्रोदय रस (वटी)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रससिन्दुर ५ तोला, वंशलोचन ५ तोला, शुद्ध अफीम ५ तोला, आमले का सूक्ष्म चूर्ण १० तोला और भांग का सूक्ष्म चूर्ण १२॥ तोला ले। सब द्रव्यों को भलीभान्ति एकत्र मिश्रित करके विजयाक्काथ या स्वरस की ३ भावनाये देकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। अग्निबलानुसार। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अनिद्रा और तन्द्रा का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध नाडियों की उग्रता का संशमन करनेवाली और श्रम को नाश करनेवाली है। इसका अधिक प्रयोग हेय है। इसे मात्रा से अधिक भी नहीं लेना चाहिये। ऐसी औषध के सेवन से पूर्व साधारण मानसिक और शारीरिक उपचार द्वारा निद्रा लाना अधिक हितकर है।

प्रभाकर वटी [भा. भै. र. ४४५२]
(भै. र. । हृद्रोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सुवर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन, और शुद्ध शिलाजीत। सब द्रव्य समान भाग लेकर सबको एकत्र अर्जुन की छाल के क्वाथ में ३ दिन तक खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। दिन मे २ बार। मधु के साथ ऊपर से दूध या अर्जुन की छाल का क्वाथ पियें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से हृद्रोग नष्ट होते हैं।

सं. वि.—इस से हृदयशूल, हृदय की धडकन, हृदयावरोध, हृदयावर्ण दाह आदि हृदय के सब दोष दूर होते है और हृदय पुष्ट होता है तथा इसके सेवन से पित्तजकास, दाह, खट्टी डकार आना, मन्दाग्नि, चक्कर आना, शरीर की निस्तेजता आदि विकार नष्ट होते है।

अग्निमान्द्य, रक्त की न्यूनता, निर्बलता, वात वाहिनियों की विकृति, मानसिक आघात, वृक्क विकार, वात या पित्त दोष का प्रकुपित होना, विषमज्वर या अन्य संक्रामक

व्याधियों के कारण हृदय अशक्त हो जाने आदि पर इस वटी का अच्छा उपयोग होता है। इससे घबराहट, धडकन, दाह आदि दूर होकर हृदय सबल बन जाता है। उत्साह, कान्ति, स्फूर्ति बल और वीर्य की वृद्धि होती है।

प्रभावती गुटिका [भा. भै. र. ४४५३]

(र. चि. म. । स्तव ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—जौ का सूक्ष्म आटा, थूहर का दूध और शुद्ध जमाल गोटा प्रत्येक १–१ भाग तथा कालीमिर्च का चूर्ण ३ भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा:—१–१ गोली। मिश्री के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शीघ्र ही वेगपूर्वक विरेचन होकर आम निकल आता है और उदररोग, गुल्म, प्लीहा तथा पित्त रोगों का नाश होता है। ये गोलियां पत्थर के समान कठिन मल को भी तोडकर निकाल देती है।

पारदादि वटी [भा. भै. र. ४३८९]

(र. रा. सुं.; वृ. नि. र. । ग्रहणी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चान्दीभस्म, शुद्ध वच्छनाग, ताम्रभस्म, हैड, बहेडा, आंवला, तेजपात, दालचीनी, इलायची, चीतामूल, खस, रेणुका, हल्दी और दारुहल्दी प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तदनन्तर उसमें भस्मित द्रव्यों की सूक्ष्म भस्म और अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को यथोक्त मात्रा मे घोटकर पानी के साथ पिष्टी तैयार करें और १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा:—१–१ गोली। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—इसके सेवन से ८ प्रकार की ग्रहणी, शूल, शोथ और अतिसार का नाश होता है।

सं. वि.—यह शोधक, पाचक, आमशोषक, रसायन, शूलनाशक, वातानुलोमक, मूत्रल और श्लेष्मकलाओं के अनावश्यक स्रावों को शोषित करके उन्हे सशक्त और सक्रिय करनेवाली औषध है। इसके सेवन से अन्त्रशैथिल्य और इसके कारण होनेवाले अन्य विकारों का नाश होता है। अतिसार, संग्रहणी, शूल, शोथ आदि के लिये यह उपयुक्त औषध है।

प्राणदा गुटिका [भा. भै. र. ४००५]

(भै. र.; वं. से.; वृ. मा.; चं. द. । अर्शा.; ग. नि. । गुटिका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोंठ १५ तोले, कालीमिर्चे २० तोले, पीपल १० तोले, चव ५ तोले, तालीसपत्र ५ तोले, नागकेसर २॥ तोले, पिप्पलीमूल १० तोले, तेजपात, आधा कर्ष (१० आनेभर), छोटी इलायची १। तोला, दालचीनी आधा कर्ष (१० आनेभर) और गुड १५० तोले (१ सेर १४ छटांक) इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य लेकर गुड की चासनी मे सब द्रव्यों के मिश्रित चूर्ण को भलीभान्ति आलोडित करके मिलावें और ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें। (शास्त्रोक्त गुटिका प्रमाण ६–६ मासा)

मात्राः—१ से ४ गोली तक। पानी के साथ। भोजन के पहले और बाद में।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इनके सेवन से वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज अर्श तथा रक्तार्श और सहजार्श का नाश होता है।

यह वटी पानात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, गलग्रह, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कृमि, हृद्रोग, गुल्म, शूल, श्वास और कास से पिडित रोगियो के लिये अमृत के समान उपकारक है। यदि अर्श के साथ मलावरोध भी हो तो इस योग में सोंठ के स्थान में हैड डालनी चाहिये। यदि पित्तार्श में सेवन कराना हो तो गुड के स्थान में समस्त चूर्ण से ४ गुनी खांड डालनी चाहिये, गोलियां गुड या खांड की चासनी वनाकर और उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर बनानी चाहियें, क्यों कि ऐसा करने से वे अग्नि संयोग से लघु हो जाती है।

यह गुटिका अम्लपित्त और अग्निमान्धादि में भी उपयोगी है।

सं. वि.—प्राणदा गुटिका के समस्त द्रव्य आम–कफ शोषक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक और कफजन्य दोष नाशक है अत· यह औषध गुड की चासनी में सोंठ के योग के साथ अग्निवर्द्धक, आमनाशक, अन्त्र शैथिल्य नाशक, वातज और कफज अर्श नाशक, गुदवली आक्षेप तथा आम, कफ और वात द्वारा होनेवाले आक्षेप को नाश करनेवाली है। उपरोक्त परिवर्तन करके मलवद्धता के साथ अर्श और पित्तज अर्श में प्रयोग करने से यह सारक, पाचक, दाहनाशक, क्षोभनाशक और सन्ताप नाशक होती है। मल का मोचन करती है और पित्तार्श को मिटाती है।

—o—

प्राणप्रद मोदक [भा. भै. र. ४००६]

(वृ. यो. त. । त. ६९; वृ. नि. र.; यो. र. । अर्श.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—तालीसपत्र, चीता, कालीमिर्चे और चव १–१ भाग, पीपल और पीपलामूल २–२ भाग, सोंठ ३ भाग और चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेसर,

इलायची) १ भाग लेकर, सबका मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण बनावें और इस चूर्ण से ३ गुना गुड लेकर उसमें इसे मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ खावे अथावा मुंह मे रखकर चूसें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से खांसी, श्वास, मद, अग्निमान्द्य, अर्श, प्लीहा और प्रमेह का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध वात-कफ नाशक, श्वास मार्ग की श्लेष्मकलाओं के वात-कफज अवरोध को दूर करनेवाली और जीर्ण तथा नवीन प्रतिश्याय को नाश करनेवाली है। कास, श्वास और प्रतिश्याय में इसको मुख मे रखकर चूसने से अधिक लाभ होता है। क्यों कि इन रोगो मे नासिका, मुख, कण्ठ, कासनलिका, श्वासनलिका आदियों मे दोष सञ्चित अथवा प्रकुपित होकर विकार उत्पन्न करता है। इसको चूसने से श्लेष्म पिघल कर बाहर निकल जाता है, एव श्लेष्मकला की विकृति दूर हो जाती है। उदर के वात-कफज रोगों के लिये इसका सेवन ऊष्णजल के साथ हितावह है।

प्लीहारि वटिका [भा. भै. र. ४४८९]

(भै. र. । प्ली.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एलवा, अभ्रकभस्म, कसीस और ल्हसन प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर सबको ३ प्रहर गूमा (द्रोणपुष्पी) के रस मे घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अग्निमान्द्य, शोथ, कास, श्वास, तृषा, कम्प, दाह, शीत और भ्रम का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध उदर के वात-कफज रोगों के लिये श्रेष्ठ है, कारण कि यह पाचक, दीपक, आमशोषक, वातानुलोमक और अन्त्रपोषक है। प्लीहा और यकृत के विकार यदि वायु और कफ के कारण हुये हों तो वहां यह श्रेष्ठ क्रिया करती है। वातज और आमज दोषों के कारण उत्पन्न हुये शूल, गुल्म, आनाह इत्यादि रोग भी इसी प्रकार नष्ट होते है जिस प्रकार कफ और तृषा इसके सेवन से नष्ट होते है।

पुनर्नवादि मण्डूर [भा. भै. र. ४४२१]

(भै. र.; वृ. मा.; च. सं.; ग. नि.; नि. र.; च. द.; र. र. । पाण्डुवा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग,

देवदारु, चीता, पोखरमूल, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, हैड, बहेडा, आमला, चव, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा प्रत्येक १–१ भाग तथा शुद्ध मण्डूर सब से २ गुना लेकर सब को कूट छानकर ८ गुने (१६ गुने) गोमूत्र में पकावे और जब गाढा हो जाय तब उसकी ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। तक्र अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से पाण्डु, शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, अर्श और कृमि रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमशोषक, त्रिदोषशामक, वात–पित्त नाशक, मूत्रल, खाद्य दोषों से उत्पन्न होनेवाले विष को नाश करनेवाली तथा प्लीहा–यकृत् के दोषों को नाश करनेवाली और वात–पित्त अथवा कफ के विकार द्वारा उत्पन्न हुई रक्तहीनता अथवा पाण्डु रोग का नाश करनेवाली है। इसके सेवन से कफ और पित्तज शोथ नष्ट होता है।

बब्बूलादि गुटिका [भा. भै. र. ४७३३]

(यो. चि. । अ. ३; वै. र.; यो. र.; र. का. धे.; वै. मृ.; वै. र. । कासा.; यो. त. । त. २८; र. र. स. । अ. १३, र. रा. सुं.; र. चं. । श्वासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, पीपल ३ भाग, हैड ४ भाग, बहेडा ५ भाग, वासा ६ भाग और भारङ्गी ७ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर सबको बबूल के रस की २१ भावना देकर सुखाले और फिर मधु के साथ घोटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली। मुंह में रखकर चूसे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से ५ प्रकार की खांसी और ऊर्ध्व श्वास का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध विभिन्न ग्रन्थो में भिन्न २ नामों से प्रसिद्ध है। यह औषध वात–कफ नाशक, श्लेष्मकलाशोथ नाशक, कास-श्वास नाशक, कण्ठशोधक और श्लेष्मकला शोथ, शैथिल्य, शोष और निष्क्रियता को दूर करनेवाली है।

ब्रह्म वटी [भा. भै. र. ४७५६]

(र. रा. सुं. । सन्निपाता.; र. का. धे. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग तथा

शुद्ध वच्छनाग, कृष्णाभ्रकभस्म, ताम्रभस्म और लौहभस्म १-१ भाग ले। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे, फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर सबको १-१ दिन त्रिकटु, अदरक, कालाजीरा, पतङ्ग, अजमोद, जयन्ती, अजवायन, हुल्हुल, ब्राह्मी, धतूरा, भंगरा, अमलतास, सुहाञ्जना, हस्तिशुण्डि, सफेद कोयल, वासा और चीते के स्वरस या क्वाथ में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली। दोष, वल, काल का विचार करते हुये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इन्हे कालीमिर्च और अदरक के रस के साथ १-१ प्रहर के वाद देने से समस्त सन्निपात नष्ट होते है।

पथ्यः—मूग का यूष और भात।

सं. वि.—यह औषध व्यवायी, विकाशी, स्वेदल, अग्निप्रदीपक, शोधक, आमशोषक तथा त्रिदोषनाशक है। यह आक्षेपनाशक और विशेषत: ज्वरघ्न औषध है। इसके सेवन के पश्चात् शरीर को ढककर सो जाने से पसीना आकर ज्वर नष्ट हो जाता है तथा सम्भवत: उसका पुनरावर्तन नहीं होता। यह औषध सब प्रकार के सन्निपातज ज्वरों की उग्र अवस्था मे लाभप्रद सिद्ध होती है।

वालार्क गुटिका [र. तं. सा.]

वनावट—शुद्ध खर्पर, प्रवालभस्म, शृङ्गभस्म, शुद्ध शिंगरफ, सुहागे का फूला, सफेद मिर्च, कचूर और केशर इन ८ औषधियों को समभाग मिला जल में खरल कर १/२-१/२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१-१ गोली। माता के दूध के साथ अथवा शहद और वायविडङ्ग के चूर्ण के साथ दिन में दो वार देवे।

उपयोग—यह वटी वालकों के वातश्लेष्म विकार, सूक्ष्म ज्वर, अस्थिमार्दव रोग, खांसी, श्वास, कृमि, जुकाम, मन्दाग्नि, वमन अतिसार आदि को दूर करके वालकों को प्रसन्न और पुष्ट बनाती है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

वालरक्षक सोगठी [र. तं. सा.]

वनावट—वायविडङ्ग, वायपुंवा, कालानमक, चिरायता, इन्द्रजौ, सोठ, हरड, डिकामाली, वच, जायफल, जायपत्री, करञ्ज के भुने वीज, पित्तपापडा, कुटकी, कालीजीरी, कोलम्भो, अतीस, एलुवा, उसारेरेवन, मरोडफली सव समान भाग लेकर वारीक चूर्ण करें। फिर ६ घण्टे जल के साथ घुटाई करके सोगठियां बनाले। (वै. चि. सा.)

उपयोग--यह सोगठी छोटे वालको के सूक्ष्म ज्वर, खांसी, कब्जियात और पेट का दर्द आदि रोगों मे पत्थर पर जल में थोडी घिसकर पिला देने से तुरन्त उदर शुद्धि हो जाती है। आवश्यकता पर १–२ घण्टे बाद दूसरी बार देवे। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

बालजीवन वटी [र. तं. सा.]

बनावट—गोरोचन ३ मासे, एलुवा ६ मासे, उसारेरेवन, केसर, कटेली का जीरा, जवाखार और सत्यानाशी के बीज, प्रत्येक १–१ तोला लेवें। सबको कूट पीस छानकर अदरक के रस मे ३ घण्टे घोट मूंग के समान गोलियां बनाकर छाया में सुखालें। (धन्वन्तरि)
मात्राः—१ गोली आवश्यकता पर माता के दूध या शहद के साथ दें।

उपयोग--इस वटी के सेवन से बच्चों के पसली (डब्बा) रोग, कब्जियात, मूत्रावरोध, अफारा, श्वास, कास आदि रोग दूर होते है और बच्चे निरोग हो जाते है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

ब्राह्मी वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधि—अभ्रकभस्म, संगेयशव की भस्म या पिष्टी, अकीक की भस्म या पिष्टी, माणिक्य की भस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय, प्रवाल की भस्म या पिष्टी, कहरूवा की पिष्टी, सोने की भस्म या वरक, मोती की भस्म या पिष्टी प्रत्येक ६–६ मासा; जायफल, लौंग, कूठ, जावित्री, स्याहजीरा, छोटी पीपल, दालचीनी, अनीसून, असगन्ध, अकरकरा, धनिया, वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, शंखाहुली, श्वेत चन्दन, सौंफ, तेजपात, नागकेशर, रुमी-मस्तगी, पीपलामूल, चित्रक के मूल की छाल और कुलिञ्जन प्रत्येक ४–४ मासा, कस्तूरी, अम्बर, ब्राह्मी, निशोथ, अगर और केशर प्रत्येक १॥–१॥ तोला लेवें। प्रथम चन्द्रोदय, केशर, कस्तूरी और अम्बर को खूब महीन पीस उसमें अन्य भस्मे और पिष्टियां मिला १ दिन ब्राह्मी के स्वरस में मर्दन कर २–२ रत्ती की गोलियां बना, छाया में सुखाकर शीशी में भर लेवे।
मात्राः—१ से २ गोली। दिनमे २–३ बार आवश्यकतानुसार देवे।

अनुपान और उपयोग—सन्निपात ज्वर मे प्रलाप हो तो तगरादि क्काथ के अनुपान से, अपतन्त्रक और आक्षेपक में मांस्यादि क्काथ के अनुपान से, सन्तत ज्वर में शहद मे मिलाकर, वातरोगों में दशमूल के क्काथ के अनुपान से, हृदय की दुर्वलता मे खमीरे गावजवान के साथ मिलाकर, भ्रम (शिर मे चक्कर आने) में द्राक्षादि चूर्णो के साथ इसका प्रयोग करे। दिल और दिमाग की कमजोरी और उनसे होनेवाले लक्षण मे इससे अच्छा लाभ होता है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

० विडलवणादि वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—कालानमक २० तोला, सेंधानमक २० तोला, अजवायन, कालीमिर्च, छोटी पीपल, चित्रक के मूल की छाल, अजमोद, धनिया, डांसरिया (संस्कृत तिन्तिडिक) (यूनानी गिर्दसमाक) सूखा पोदीना, घी मे सेकी हुई हींग, पीपलामूल, नौसादर प्रत्येक १० तोला लें, सब द्रव्यों का सूक्ष्म कपडछन चूर्ण कर नींबू के रस की ३ भावनायें देकर चने के बराबर गोलियां बनाले।

मात्राः—२ गोली भोजन करने के बाद पानी के साथ लेवे। पेट के दर्द मे यथावश्यक, दिन मे ३—४ बार।

गुण और उपयोग—यह विडलवणादि वटी पाचन, दीपन तथा पेट के दर्द और अजीर्ण को दूर करती है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

—०—

बृहत् भक्तपाक वटी [भा. भै. र. ४९३४]
(र. सा. सं.; र. रा. सुं. । अजीर्ण.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अभ्रकभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, ताम्रभस्म, हरताल, दन्ती के क्वाथ में घोटा हुवा मनसिल, वंगभस्म, त्रिफला, शुद्ध विष, काकडासिंगी, त्रिकटु, अजवायन, चीते की जड, नागरमोथा, कालाजीरा, सफेद जीरा, सुहागे की खील, इलायची, तेजपात, लौंग, हींग, कुटकी, जायफल, सेंधानमक। प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे और तत्पश्चात् उसमे भस्म तथा अन्य द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण मिलावें और मिश्रण को अदरक, चित्रक, दन्तीमूल, तुलसी, वासा और बेल के पत्तो के स्वरस या क्वाथ की ७—७ भावना देकर २—२ रत्ती की गोलियां बनावें। (शास्त्रोक्त गुटिका प्रमाण ३—३ रत्ती)

मात्राः—१—१ गोली। प्रातः सायं यथादोषानुपान अथवा तुलसी स्वरस, अदरक के रस, उष्ण जल या मधु मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मलबन्ध, कफ प्रधान सन्निपात, आमानुबन्ध, मन्दाग्नि, विषमज्वर तथा सब प्रकार के शूल नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, आक्षेपनाशक, कफपाचक, ज्वरनाशक, सन्ताप नाशक, अङ्ग प्रत्यङ्ग में प्रसृत वात—कफ दोषों को नष्ट करनेवाली और उनका शीघ्र पाचन करनेवाली है। यह सहज रेचक होने से जीर्ण मलावरोध को दूर करके कोथ, उदरदाह, विड विबन्ध और उदर की निष्क्रियता को दूर करती है।

मलावरोध के कारण आमाशय, पक्वाशय और अन्त्र क्षुब्ध और क्रिया हीन हो जाते है। अग्नि मन्द हो जाती है तथा खाद्य विषरूप में परिणत होने लगता है। जिसके कारण साधारण ज्वर, द्वन्द्वज या सान्निपातिक किसी भी प्रकार के उग्र ज्वर उत्पन्न हो सकते है। यह औषध स्वेदल, आक्षेपनाशक, रेचक, कोष्ठशोधक, पाचक और विषनाशक है। अतः आमाशय और अन्त्र की क्रिया को शीघ्र नियमित करके ज्वर और उसके अनुबन्धियों का नाश करती है।

वृहत्सूरण वटक [भा. भै. र. ७९०६]
(शा. सं. । ख. २., अ. ७.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सूखा हुवा सूरण और विधारामूल १६–१६ भाग, मूसली और चीतामूल ८–८ भाग, हैड, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, शुद्ध भिलावा, पीपलामूल, तालीसपत्र ४–४ भाग तथा दालचीनी, इलायची और कालीमिर्च २–२ भाग लें। समस्त द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को एकत्र मिलाकर उसे उससे २ गुने गुड मे भली-भान्ति मिश्रित करदे और फिर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह औषध अत्यन्त अग्निवर्द्धक और अर्शनाशक है। इसके सेवन से वातकफज ग्रहणी, श्वास, कास, क्षय, प्लीहा, श्लीपद, शोथ, हिक्का, प्रमेह, भगन्दर और पलित का नाश होता है। यह वृष्य, मेधावर्द्धक और रसायन है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, मेद-कफ-आम-वात नाशक, रक्तवर्द्धक, कोष्ठशोधक तथा उदरकलाओं की आम–कफ–वात और अन्य विष द्वारा विकृत हुई क्रियाओ को स्वस्थ करके वात और कफज अर्श को नष्ट करती है तथा इन दोषो के कारण उत्पन्न हुये ग्रहणी, आमजशूल, आध्मान आदि रोगों का नाश करती है। वात और कफ के प्रतिलोम से उत्पन्न हुये श्वास, कास, क्षय, हिक्का आदि को नष्ट करती है। भल्लातक तथा अन्य रसायन द्रव्यों के योग के कारण यह रासायनिक क्रिया करके शरीर में नवता उत्पन्न करती है। पलित का नाश करती है और बुद्धि, वीर्य तथा शरीर शक्ति की वृद्धि करती है।

बोलादि वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—हीराबोल (यूनानी–मुरमुकी) २ भाग, शुद्ध सुहागा १ भाग, कसीस १ भाग, घी में सेकी हुई हींग १ भाग, एलुवा (मुसब्बर) १ भाग। सबको जटामांसी के क्वाथ मे पीसकर २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्रा और अनुपानः—२-२ गोली। सवेरे-शाम भोजन के आध घण्टा बाद जल के साथ देवें।

उपयोग—इसके सेवन से स्त्रियों को रजोदर्शन ठीक होता है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

भस्म वटी [भा. भै. र. ४९४०]

(र. रा. सुं. । अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—२५-२५ तोले कुचले और हैड को १ कपडे में बांधकर दोलायन्त्र विधि से १ दिन काञ्जी में पकावे। तत्पश्चात् पोटली खोलकर हैड में से गुठलियां निकाल लें, और कुचले को छिल डालें तथा उसके अन्दर से पत्ते भी निकाल दें। तदनन्तर दोनों को पीस दें और हींग, वायविडङ्ग, सेंधानमक, कालानमक, सांभर, देशी अजवायन, अजमोद, सोंठ, मिर्च, पीपल, खुरासानी अजवायन और गन्धक का चूर्ण ५-५ तोले मिलाकर सबको १ दिन निम्बु के रस में घोटकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अजीर्ण, हृद्रोग, गुल्म, कृमिजन्य रोग, तिल्ली, अग्निमान्द्य, आमवात, शूल, अतिसार, संग्रहणी, जलोदर और अन्य बहुत से वात कफज रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेपनाशक, दोषानुलोमक, वातनाडी पोषक और आमशोषक है। इसके सेवन से शीघ्र ही अग्नि प्रदीप्त होकर पाचन होता है तथा संग्रहित वात-निराम होकर निकल जाता है। उदरच्छदाकला और अन्त्र के बीच मे सामदोष के कारण कितने ही उदर विकारों में सामवात एकत्र हो जाती हैं, जिससे अन्त्र की क्रिया शिथिल हो जाती है और वमन, अतिसार, शूल, आध्मान, उदावर्त, जलोदर, यकृत् वृद्धि आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है। इन सब का कारण संयुक्त शिरा की जडता, जो सामवात के अवरोध से या वातावरोध से होती है, मानी जाती है। यह औषध अधिकतर सामवात, वात, कफ और दूषित विष का अपने ऊष्ण, तीक्ष्ण, विकासी, व्यवायी, विषनाशक, पाचक और आक्षेपनाशक गुणों से नाश करती है। उदरच्छदाकला को सक्रिय, निर्विकार और स्वस्थ करती है तथा उदर के अन्य अनेक उपरोक्त कारणों से उत्पन्न हुये रोगों को नष्ट करके रोगी को गुल्म, शूल, संग्रहणी, अतिसार आदि रोगों से मुक्त रखती है।

भागोत्तर गुटिका [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, छोटी पीपली ३ भाग, हरड का दल ४ भाग, बहेडा दल ५ भाग, अडूसा के मूल की छाल या छाया मे सुखाये हुये फूल ६ भाग, भारङ्ग मूल ७ भाग, मुलेठी ८ भाग लेवें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली कर पीछे उसमें अन्य द्रव्यों का कपडछन्न चूर्ण मिला बबूल (कीकर) की अन्तर्छाल के क्वाथ की २१ भावना दें, सुखा, कपडे से छान कर रख लेवें।

मात्राः—४–४ रत्ती।

अनुपान—मधु (शहद) के साथ चटाकर ऊपर से गोजिह्वादि क्वाथ, द्राक्षारिष्ट या शर्वत जूफा देवें।

उपयोग—सब प्रकार की खांसी मे यह उत्तम योग है। यदि खांसी के साथ श्वास भी हो तो उसके साथ ५–७ रत्ती सोमचूर्ण मिलाकर इसका प्रयोग करें।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

भीम मण्डूर वटक [भा. भै. र. ४९५२]

(वृ. यो. त. । त. ९५; यो. र.; वं. से.; च. द. । परिणाम शूला.; वृ. नि. र.; ग. नि. । शूला., वृ. मा. । परिणाम शूला., र. का. धे. । अ. २१.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—यवक्षार, पीपल, सोंठ, बेर, पीपलामूल और चीता प्रत्येक ५–५ तोले तथा शुद्ध मण्डूर १ सेर लेकर, महीन चूर्ण बनाकर सम्पूर्ण को ८ सेर गोमूत्र मे लोहे की कढाई मे पकावें जब पिण्टी हो जाय तो ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। पानी या तक्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इनको भोजन के आदि, मध्य और अन्त मे सेवन कराने से परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

भोग पुरन्दरी वटिका [भा. भै. र. ४९७३]

(र. सं. क. । उल्लास ५, वृ. यो. त. । त. १८७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध हिंगुल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, लौंग, सोंठ, सफेद चन्दन, जायफल, केसर, पीपल, अकरकरा, अफीम, कस्तूरी और कपूर १–१ भाग और भांग ७॥ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण करके एकत्र मिश्रित करें और मधु मे घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली तक। आत्म्य, सात्म्य, बल, काल की अपेक्षा रखते हुये। दूध अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—ये गोलियां शुक्र स्तम्भक, बल-मांस वर्द्धक और अत्यन्त वाजीकरण है।

सं. वि.—इस औषध के सभी द्रव्य वृष्य, बल्य, स्तम्भक, वाजीकरण, उत्तेजक और शरीरवर्द्धक है। ऐसे द्रव्यो का सतत सेवन लाभप्रद नहीं है। अधिक उत्तेजना शरीर में अनेक रोग उत्पन्न करती है। यदि कालानुसार इन्हे सतत सेवन करना ही पडे तो घी, दूध आदि आहार का प्रचुर सेवन कराना चाहिये।

मदनमञ्जरी (गुटिका) वटी [भा. भै. र. ५४९२]

(वृ. यो. त. । त. १४७, यो. त. । त. ८०; वै. र. । वाजीकरणा, भा. प्र. । उ. खं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अभ्रकभस्म ४ भाग, वंगभस्म २ भाग, पारदभस्म (अभाव मे रससिन्दुर) १ भाग, शतावर का चूर्ण ७ भाग तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, जायफल, कालीमिर्च, सोंठ, लौंग, और जावित्री का चूर्ण २-२ भाग लेकर सबको एकत्र घोटकर उसमें सबसे २ गुनी (६८ भाग) खांड और आवश्यकतानुसार घृत और मधु मिलाकर २-२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। दूध के साथ। अग्निबलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इन्हे सेवन करने से कामशक्ति अत्यन्त प्रबल हो जाती है।

सं. वि.—यह औषध वात, पित्त, क्षय को नष्ट करनेवाली, बुद्धिवर्द्धक, रोगनाशक, वृष्य, रसायन और वाजीकरण है। इसका सेवन धातुवर्द्धक, कान्तिवर्द्धक, ओजप्रद और शरीर पोषक होता है। जीर्ण-शीर्ण शरीर में यौवन का विकास लाने के लिये इसका सेवन हितावह है।

मधुमेहान्तक वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधान—काली कसौन्दी की छाल २ तोला, शुद्ध अफीम ३/४ तोला, अर्जुन वृक्ष की छाल २ तोला, आमलकी रसायन २ तोला, आमला ४ तोला, कान्तलाहभस्म २ तोला, मायाफल ८ तोला, काला हंसराज ८ तोला, रम्भामूल ४ तोला, पुंवाडमूल ४ तोला, कालीमूसली २ तोला, गिलोयसत्व २ तोला, चान्दी के वर्क २ तोला, जामुन के बीज २० तोला, धौली मूसली २ तोला, शुद्ध वच्छनाग १ तोला, मामेजवा (मामे-

जवो–गुजराती) २ तोला, शुद्ध भांग २ तोला, शुद्ध शिलाजीत ४ तोला, कालीमिर्च १ तोला और गुडमार लता के पत्र १/२ सेर लें। सब द्रव्यो को उक्त मात्रा मे लेकर एकत्रित मिश्रण करके खरल करें और मधुनाशिनी लता के पञ्चाङ्ग के स्वरस की ७ भावना देकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मधुमेह का नाश होता है।

———o———

मधुरान्तक वटी [र. तं. सा.]

बनावट—तुलसीपत्र २ तोले, गिलोय सत्व १ तोला, लौग, वंशलोचन, धनिया, कासनी के बीज और इलायची ६–६ मासे मिलाकर तुलसी के रस मे खरल कर उडद के बराबर गोलियां बनालें। (र. सा.)

मात्राः—२ से ४ गोली। दिन मे ३ बार। जल के साथ देवे।

उपयोग—यह औषधि मधुरा के विष को बाहर निकालने के लिये अति उपयोगी है। मधुरा मे लक्ष्मीनारायण रस के साथ इस वटी का सेवन कराने से सत्वर लाभ पहुंचता है। एवं सगर्भा स्त्रियो और बालको का ताप उतारने के लिये यह निर्भयता पूर्वक दी जाती है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

———o———

मरिचादि गुटिका [भा भै. र. ५१६२]

(यो. त. । त. २८; बृ. यो. त. । त. ७८, वै. र, च. द; यो. र., बृ. मा.; भा. प्र.; ग. नि., र. र., भै. र.; वं. से; । कासा., शा. ध. । ख. २ अ. ७, बृ. नि र. । स्वरभेदा.; यो. चि. म. । अ. ३)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कालीमिर्च १। तोला, पीपल १। तोला, अनारदाना ५ तोला (किसी २ ग्रन्थकारने अनारदाना २॥ तोला लिखा है), गुड १० तोला और जवाखार ७॥ मासे लेकर गुड के अतिरिक्त सब चीजों का महीन चूर्ण करके उसे गुड में मिलाकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

सेवन विधि—१–१ गोली मुंह मे रखकर चूसे दिनभर में १५ गोली से अधिक न खाये।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—जिस खांसी को अन्य किसी भी औषध से लाभ न होता हो और जिसे वैद्य असाध्य कह चुके हो और जिस मे पीप आता हो, वह खांसी इन गोलियों के सेवन से नष्ट हो जाती है।

सं. वि.—यह सम्पूर्ण योग कफनाशक, श्लेष्मकलाशोथ नाशक, कण्ठशोधक, दुर्गन्ध नाशक, ऊष्ण, तीक्ष्ण और मृदुकर है। इसके सेवन से श्वास, कास और कण्ठ की श्लेष्मकलायें शुद्ध और स्वस्थ होती है । दीर्घकाल से विकृत तौन्सिल ग्रन्थियां इन गोलियों के मुख में सतत रखने से शीघ्र निर्विकार हो जाती है, उनका शोथ विलीन हो जाता है । पूय या श्लेष्म बाहर निकल आता है और इनके कारण होनेवाले कर्ण, मुख, कण्ठ आदि के विकार शान्त हो जाते है ।

---

८ मलेरिया वटी [र. तं. सा.]

बनावट—गोदन्तीभस्म, शुद्ध हरताल, गिलोयसत्व, वंशलोचन और छोटी इलायची, सबको समभाग मिला सहदेवी के रस में १२ घण्टे खरल कर ज्वार के दाने के बराबर गोलियां बनाले ।

मात्राः—पाली के ताप मे १ गोली ज्वर आने के ४ घण्टे पहले और २ गोली दो घण्टे के पहले शक्कर के साथ दे । अन्य तापों में दिन में दो बार दूध के साथ दें ।

उपयोग—यह वटी सब प्रकार के विषमज्वर (मलेरिया), संतत, सतत एकांतरा, तिजरी आदि अन्य ज्वरो को दूर करती है ।

कभी कभी चातुर्थिक ज्वर छूट जाने पर चौथे २ दिन हिस्टीरिया मिश्रित अपस्मार (Hystero epilepsy) उपस्थित होते है । रोग तीव्रावस्था मे न हो, तब जडता, प्रलाप, फिर मूर्च्छा, मुंह मे से झाग निकलना, फिर दांत भिचना लक्षण होते है । शौच शुद्धि नही होती । उदर में वेदना होती है । उस पर यह मलेरिया वटी अमृतारिष्ट के साथ सुबह को और रात्रि को अश्वकंचुकी रस मे देने से रोग शमन हो जाता है ।

---

९ मल्लसिन्दुर वटी [र. तं. सा.]

बनावट—(पहली विधिवाला)—मल्लसिन्दुर, सोंठ, मिर्च, पीपलामूल, अकरकरा, जायफल, इलायची, लौंग और केसर प्रत्येक १–१ तोला लेवे । काष्टादिक औषधियों को कूट, बारीक कपडछन चूर्ण करें । फिर मल्लसिन्दूर को खरल कर थोडा २ चूर्ण डाल धीरे २ सब चूर्ण मिला देवे । पश्चात् नागरवेल के १०० पानो का रस मिला खरल करके मोठ के दाने के समान गोलियां बनालें । (आ. नि. मा.)

मात्राः—१ से २ गोली । २ बार नागरवेल के पान, अदरक के रस, भांगरे के रस और कालीमिर्च या अन्य अनुपान के साथ ।

उपयोग—इस वटी के सेवन से सब प्रकार के वातरोग, उन्माद, कफदोष, श्वास, त्रिदोष आदि दूर होते है। जिनके शरीर मे कफ या मेद अधिक हो, थोडा चलने से श्वास भर जाता हो, पचनशक्ति मन्द हो, निद्रा और आलस्य आते हो, उदर में वायु का गुडगुडाहट होता हो, हृदय की गति और नाडी की गति मन्द हो, स्मरणशक्ति बहुत निर्बल हो गई हो, उनके लिये यह अत्यन्त लाभदायक है।

जीर्ण विषमज्वर, जो सूक्ष्मांश में रहता हो, और किसी २ समय बढ जाता हो वह इस रसायन से दूर होता है।

उन्माद, अपस्मार और हिस्टीरिया की जीर्णावस्था मे मल्लसिन्दुर वटी, ब्राह्मी और जटामांसी के क्काथ के साथ देने से अच्छा लाभ पहुंचता है।

यदि मल्लसिन्दूर नम्बर २ मिलाकर इस रसायन को तैयार किया हो तो उपदंशज उपद्रव एवं सन्निपात के कफप्रकोप और बेहोशी मे भी अच्छा काम देता है तथा वात प्रकोप, पक्षाघात, कम्पवात, अर्धाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, वातवाहिनियो की निर्बलता आदि मे भी हितकर है।

सूचनाः—यदि मलावरोध रहता हो तो सुबह १ दस्त लानेवाला विरेचन रात्रि को आवश्यकता पर देते रहना चाहिये। औषधि के साथ में रोगानुकूल पथ्य का पालन करें। अपथ्य सेवन करने पर यद्यपि औषधि से हानी नहीं होती तथापि लाभ पुरा नहीं मिलता या अधिक समय लगता है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

मल्लादि वटी [र. तं. सा.]

बनावट—सफेद संखिया १ तोला, शुद्ध हिंगुल १ तोला और छोटी पीपल २॥ तोला लेकर सबका बारीक चूर्ण करें। फिर अदरक के रस मे ६ घण्टे घोटकर मूंग के बराबर गोलियां बनाले।

मात्राः—१–१ गोली। दिन में २ समय अदरक के रस और शहद या नागरवल के पान के रस और शहद के साथ देवें।

उपयोग—इस औषधि के सेवन से शीतज्वर, एकान्तरा, चातुर्थिक (तिजारी) आदि विषमज्वर, सन्निपात और जीर्णज्वर, दूर होते हैं। उदर की शुद्धि करके प्रयोग करने पर हिस्टीरिया मे भी इस वटी से बहुत लाभ पहुंचता है।

सूचनाः—ताप न हो तो दूध पी कर गोली लेनी चाहिये।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

महाभ्र वटी [भा. भै. र. ५५५८]

(भै. र. । ग्रहणी, र. र.. । राजयक्ष्मा., र. रा. सु । संग्रह.; र. सा. सं., र. रा. सुं. । सूतिका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध मनसिल, सुहागे की खील, यवक्षार तथा हैड, वहडा और आंवले का चूर्ण प्रत्येक ५–५ तोले और शुद्ध वच्छनाग का चूर्ण ५ मासा ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तत्पश्चात् भस्मों को मिश्रित करे। तदनन्तर अन्य औषधियों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मिश्रण को पत्थर के खरल मे अच्छी तरह घोटे। तत्पश्चात् उसमे भांग, काला भांगरा, वावची, भंगरा, वेलपत्र, परिभद्र, अरणी, विधारा, तुम्बुरू, मण्डूकपर्णी, निर्गुण्डी (संभालु), करञ्ज, धतूरा, श्वेत अपराजिता (कोयल), जयन्ती, चीता, गूमा, वासा और पान प्रत्येक का ५–५ तोले रस डाले और कुछ समय पश्चात् ही उसमे कालीमिर्च का चूर्ण डालकर सबको भलीभान्ति खरल करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली। मधु या यथादोषानुपान के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से ज्वर, अतिसार, खांसी, श्वास, क्षय, सन्निपात अनेक प्रकार के विषमज्वर, शुक्रक्षय, पुरातन ग्रहणी रोग, विशेषतः सूतिका रोग, शोथ, शूल, आमवात, अग्निमान्द्य, निर्बलता, समस्त कफजरोग, पीनस, पक्क और अपक्क प्रतिश्याय, वातज और कफज रोग, पित्तावृत्त तथा कफावृत्त प्रवृद्ध वायु, ८ प्रकार के गलरोग, कण्ठरोग, कृशता और स्थूलता आदि अनेक रोग नष्ट होते है।

यह एक उत्तम रसायन है।

सं. वि.—यह औषध अनेक रसो से परिपूर्ण, प्रशस्त, अनेकविध वात, पित्त, कफ, कल्प–विकल्पों से होनेवाले विकारों को नष्ट करनेवाली और विशेषतः उदरकला के दोषो को हरनेवाली है। यदि उदरकलाओं मे शोथ, क्षोभ, अनावश्यक स्राव और कोथ हो तो यह औषध उन्हे शीघ्र नष्ट कर देती है। यह शक्तिवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, दौर्बल्य नाशक और त्रिदोषशामक है।

महाराज वटी [भा. भै. र. ५५६६]

(भै. र., र. चं.; रसे. सा. सं. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म १६–१६ मासे, विधारा वीज, वंगभस्म और लौहभस्म ८–८ मासे, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म और कर्पूरभस्म

४-४ मासे तथा भांग, शतावर, सफेद राल, लौंग, तालमखाना, विदारीकन्द, मूसली, कौंच के बीज, जायफल, जावित्री, बला (खरैटी) और नागबला (गंगेरन) प्रत्येक २-२ मासे लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य औषधियां मिलाकर सबको तालमूली के रस में घोटकर (शा. ४-४ रत्ती) २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। बल-कालादि की अपेक्षा करते हुये प्रात. सायं मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इनके सेवन से विषमज्वर नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त ये गोलियां धातुगत समस्त ज्वर, वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज आदि अनेक प्रकार के ज्वर नष्ट करती है। इन गोलियो के प्रयोग से कास, श्वास और क्षय नष्ट होते है तथा बल और पुष्टि की वृद्धि होती है।

इनके सेवन से मैथुनशक्ति इतनी बढ जाती है कि नित्यप्रति स्त्री समागम करने पर भी बल-वीर्य की हानि नहीं होती। ये कामला, पाण्डुरोग और राजयक्ष्मा में भी गुणकारी तथा राजाओं के सेवन करने योग्य है।

सं. वि.—यह औषध रसायन और वाजीकरण होने के अतिरिक्त वात-पित्त-क्षय नाशक, रक्तशोधक, वीर्यवर्द्धक, वीर्यस्तम्भक, वातनाडी दोषनाशक, अग्निवर्द्धक और ज्वरनाशक है। इसके सेवन से आमाशय के तीनों ही दोषों के विकार शान्त हो जाते है। आमाशय की पुष्टि होती है। शोष का नाश होता है और कण्ठ, नासिका, कर्ण आदि में आमाशय के विकार के कारण होनेवाले दोष नष्ट हो जाते है। अन्त्र शैथिल्य और अन्त्रकला के दोषो के लिये भी यह इतनी ही उपयोगी है। इसके सेवन से भूख लगती है। खाद्य विकार से होनेवाले दोष नष्ट हो जाते हैं। ज्वर शान्त हो जाते है और श्लेष्मकलाये परिष्कृत होती है। इसकी क्रिया शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर पोषक और वर्द्धक होती है।

मण्डूर वटी [स्पेश्यल]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गुडूची घन १ सेर तथा मण्डूरभस्म (नं. १) १ सेर ले। गुडूची घन को कूटते जांय और भस्म को मिश्रित करते जांय। जब सम्पूर्ण मण्डूरभस्म मिश्रित हो जाय तो इसकी ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। पानी, दूध या छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि, जीर्णज्वर आदि के लिये उपयोगी है।

सं. वि.—गुडूची के घन और मण्डूरभस्म का यह मिश्रण यकृत्, प्लीहा, आमाशय और ग्रहणी के विकारों को नाश करनेवाला है। यह पित्तशामक, रक्तवर्द्धक और आम का-

शोषण करनेवाली है। रक्तहीनता के सभी विकारों मे इसका प्रयोग लाभप्रद होता है। जहां पित्त क्षीण हो गया हो या पित्ताशय के द्वार का किसी प्रकार अवरोध हो गया हो या पित्त निस्सरण ही न होता हो, वहां पर इस औषधि का प्रयोग शीघ्र लाभदायी सिद्ध होता है। कामला, कुम्भकामला, पाण्डु, जीर्णज्वर आदि में इसका प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होता है।

मण्डूर वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गुडूची घन १ सेर और मण्डूरभस्म २० तोला लेकर उपरोक्त विधान से निर्माण करें।

मात्रा, शास्त्रोक्त गुणधर्म, संक्षिप्त विवेचन आदि उपरोक्त मण्डूर वटी (स्पेश्यल) के समान है।

———o———

मानकादि गुटिका (माणादि गुटिका) [भा. भै. र. ५१७५]

(भै. र । प्लीहयकृदो; धन्वं. । उदर.; च. द. । प्लीहा. ३८; वं. से. । उदर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—मानकन्द, लाल अपामार्ग, गिलोय, वासे की जड, शालपर्णी, सेंधानमक, चीतामूल, सोंठ और ताड के फूल प्रत्येक ३–३ कर्ष (३॥–३॥ तोले) तथा विडनमक, संचलनमक, जवाखार और पीपल १–१ कर्ष लेकर सबका महीन चूर्ण बनावे और उसे ८ सेर गोमूत्र में पकावे। जब गाढा हो जाय तो उसे अग्नि से उतार लें और ठण्डा होने पर उसमे १५ तोले मधु मिलाकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इन्हें सेवन करने से यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, अर्श और ग्रहणी विकार नष्ट होते हैं तथा अग्नि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, शोथनाशक, ग्रन्थियों के दोषों से वायु, पित्त और कफ द्वारा उत्पन्न हुये शोथ को दूर करके प्लीहा, यकृत् आदि ग्रन्थियों के शोथ और अनावश्यक वृद्धि को मिटानेवाली तथा वातानुलोमक, लेखन, कफनाशक, आमपाचक और पित्तस्रावक है।

———o———

माणिक्यरसादि गुटिका [अ. नि. मा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एलुआ १६ तोला, हीराबोल ८ तोला, शुद्ध हिंगुल १६ तोला, माणिक्य रस १६ तोला, केसर ४ तोला, पीपल १६ तोला, कालीमिर्च ८ तोला, सोंठ ८ तोला, जायफल ४ तोला, जावित्री २ तोला, अकरकरा ८ तोला, इलायची ४ तोला, तमालपत्र ४ तोला, सैन्धव १६ तोला, संचलनमक १६ तोला, यवक्षार ८ तोला, वायविडङ्ग ८ तोला, इन्द्रजव १८ तोला, रेवतचीनी ८ तोला, कोयल (अपराजिता) के बीज १६ तोला,

शुमनाशील ८ तोला और वराध के पत्ते ८ तोला ले। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण करके सबको यथामात्रा एकत्र मिश्रित करे और तत्पश्चात् अमरबेल के रस और पान के रस की ३–३ भावना देकर लुगदी तैयार होने पर १/२–१/२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली। मधु के साथ दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः— बालको की खांसी, आमातिसार, अजीर्ण, आध्मान, कफ की वृद्धि, कण्ठशोष और रक्त दोषो के लिये लाभप्रद है।

सं. वि.—यह औषध रक्तशोधक, शोधक, आमपाचक, पाचक, त्रिदोषशामक, वातानुलोमक, कृमिनाशक, ज्वरघ्न, कण्ठशोधक, रक्तदोष नाशक, आध्मान नाशक तथा बच्चों के कालानुसार होनेवाले विविध प्रकार के विकारो को शान्त करती है।

यह औषध बालको के सभी साधारण रोगो मे निर्भय प्रयोग में लाई जा सकती है। शरीरवर्द्धक और पोषक होने के कारण यह बच्चो को निर्विकार और स्वस्थ रखती है।

मुक्तादि वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—मोती २ भाग, सोने के वर्क आधा भाग, चांदी के वर्क १ भाग, नागकेसर २ भाग, कमल के फूलो के अन्दर का केसर १ भाग, जीरागुलाब (गुलाब के पुष्प का केसर) १ भाग, केसर आधा भाग, कपूर चौथाई भाग, कहरूवा १ भाग, जहर मोहरा खताई १ भाग, संगेयशव १ भाग, गोरोचन १ भाग और गोदन्ती भस्म सबके बराबर लेवे।

दोनों वरको को छोड सब का कपडछन चूर्ण करके फिर उसमें १–१ भाग करके वरक मिलावे। तदनन्तर उसे उच्च जाति के गुलाब के रस मे आठ दिन पर्यन्त मर्दन कर २–२ रत्ती की गोलियां बना, सुखाकर शीशी में भर ले।

मात्रा और अनुपान—आधी गोली से २ गोली, गाय या माता के दूध मे मिलाकर दे।

उपयोग—बालको का जीर्णज्वर, बालशोष (सूखा), पाण्डुरोग, दूध न पचकर दस्त या उल्टी होना, खांसी आदि रोगों मे इसके सेवन से रोग दूर होकर बालक अच्छा पुष्ट होता है। [सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

रजोदोषहर वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—मुश्कतरामसी, रेवंदचीनी, तगर, हरमल, सातर, सौफ, अनीसून, तुल्मकर्फस, अजखर, सोया, हमामा और वांस की जड १०–१० तोला और उल्ट

कंवल के मूल ४० तोला लें। सबको जौकुटा करके चौगुने जल में पकावें। जब चौथाई जल बाकी रहे तब कपडे से छान कर मंदी आंच पर पकावें। जब करछे में लगने लगे तब नीचे उतार धूप मे रखकर सुखाले। जब गोली बनाने योग्य हो तब उसमें कूठ का चूर्ण २ तोला, जावसीर २ तोला, हीराबोल ३ तोला और जुंदबेदस्तर १ तोला मिला ४-४ रत्ती की गोलियां बना, छाया मे सुखाकर शीशी में भर ले।

मात्रा और अनुपान—नित्य सवेरे शाम २-२ गोली जल के साथ देवे। रजोदर्शन के समय मे नीचे लिखे हुये क्वाथ के अनुपान से देवें।

क्वाथ—अजखर, मुश्कतरामसी, अनीसून, अबहल, ककडी के बीज, गोखरू, बांस की जड या पत्ती और हंसराज प्रत्येक ६-६ मासा लें, २० तोला जल मे पका ५ तोला बाकी रहे तब कपडे से छान, १ तोला गुड मिलाकर देवें।

उपयोग—'स्त्रियों को मासिक साफ न आना और मासिक के समय पेट में दर्द होना' इसमे इसके सेवन से लाभ होता है।

वक्तव्य—मुश्कतरामसी, सातर, अनीसून, जावशीर, हमामा, अजखर और जुंदबेदस्तर ये द्रव्य यूनानी दवा बेचनेवाले पन्सारी के यहां से मिल सकते है।

[सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

रसादि गुटिका [भा. भै. र. ६१०२]

(र. रा. सुं । वातरोगा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक १-१ भाग लेकर कज्जली बनावे और फिर उसमे १ भाग शुद्ध हरताल तथा १-१ भाग जायफल, जावित्री, भांग के बीज, लौग, अजवायन, तुत्थभस्म, सोठ, मिर्च और पीपल का मिश्रित चूर्ण मिलाकर मिश्रण को ३ प्रहर पान के रस और सौषन (एक यूनानी औषध) की जड के रस या क्वाथ में खरल करके (शा. ८-८ रत्ती) २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। प्रात॰ सायं मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इनके सेवन से पक्षाघात रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध विषनाशक, नाडी दौर्बल्यनाशक, आक्षेपनाशक और रसायन है। इसका प्रयोग शरीर की ऐसी दशा मे जब कि रक्त का परिभ्रमण, नाडियों के विकार से, अवरुद्ध होकर पक्षाघातादि नाशक रोग उत्पन्न करता हो, लाभप्रद सिद्ध होता है। शरीर के आन्तरिक दोषो के कारण अथवा मस्तिष्क शैथिल्य या हृद्-क्रिया अवसाद के कारण रक्त

के परिभ्रमण में हानि होने लगती है। इस रसादि गुटिका के सेवन से उपरोक्त कारणो का नाश होता है और रक्त परिभ्रमण की वृद्धि होती है। यह पाचक, शोषक, शोधक, वातानुलोमक, आमपाचक और अग्निवर्द्धक है।

○ रसोनपिण्ड [भा. भै. र. ५९२७]

(च. द.; भै. र., वं. से. । आमवा.; वृ. मा. । आमवाता., धन्वं ; र. र. । आमवाता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—निस्तुष (छिलके रहित) ल्हसन ६। सेर, तिल २० तोले तथा त्रिकटु, सज्जीक्षार, यवक्षार, सोया, पांचो नमक, कूठ, पीपलामूल, चीतामूल, अजमोद, अजवायन और धनिया प्रत्येक ५–५ तोले लेकर प्रथम ल्हसन और तिलों को एकत्र कूट लेवे और अन्य सब द्रव्यो का मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण इसमे मिलाकर मिश्रण को घृत के चिकने पात्र मे भरकर अनाज के ढेर में दबा दें।

१६ दिन बीत जाने के बाद उसमे से औषधि को निकाल कर औषध मे १–१ सेर गिलोय और काञ्जी मिलाकर भलीप्रकार मर्दन करे और गोली बनाने योग्य लुग्दी तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से १२ गोली तक। शीतल जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से समस्त वातरोग, आमवात, सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात, अपस्मार, उन्माद, कास, श्वास, भग्नवात और शूल नष्ट होता है।

सं. वि.—ल्हसन ऊष्ण और तीक्ष्ण गुणों के लिये प्रसिद्ध है। क्षय जैसे भयङ्कर रोग मे भी कभी २ इसका प्रयोग लाभदायी पाया जाता है। तिल वात नाशक, पाचक, स्निग्ध तथा अन्य द्रव्य त्रिदोषशामक, वात–कफ नाशक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक, रक्तपरिभ्रमण सहायक, वातनाडी पोषक, वल–पुष्टि कारक और रजोगुण तथा तमोगुण द्वारा उत्पन्न हुये मानसिक और शारीरिक सन्तापो को, दुष्ट वायु को शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग से दूर करके, नष्ट करते है। सम्पूर्ण योग आमपाचक, आक्षेपनाशक, वात–नाडी–विकार नाशक, रक्तवर्द्धक और वायु द्वारा उत्पन्न होनेवाले आन्तरिक, मानसिक, श्वास, कास नलिका तथा कण्ठ के होनेवाले विकारों को नष्ट करनेवाला है।

रत्नप्रभा गुटिका [भा. भै. र. ६०४३]

(भै. र. स्त्री रोगा)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—स्वर्णभस्म, मौक्तिकभस्म, अभ्रकभस्म, नागभस्म,

वंगभस्म, पित्तलभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, चांदीभस्म, हीराभस्म, लौहभस्म, हरताल भस्म और खपरियाभस्म सम भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर केला, मकोय, वासा, नीलोत्पल और जयन्ती के स्वरस तथा कपूर के पानी मे १-१ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—आधी गोली से १ गोली तक। बला के क्वाथ या उष्ण दुग्ध या भांगरे के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह वटी समस्त स्त्री रोगों को नष्ट करती है। यह बल्य, वृष्य और रसायन है।

सं. वि.—यह भस्म प्रधान औषध है। बहुमूल्य द्रव्यों के योग से बनी हुई यह औषध निज अथवा आगन्तुक विकारों से उत्पन्न हुये गर्भाशय के विकरों को दूर करती है। डिम्ब प्रणालिका की कला का तथा डिम्ब ग्रन्थि का अंशांश पोषण करनेवाली यह औषध रज के निर्माण, प्रवर्तन तथा संस्करण मे विशेष क्रिया करती है। किसी भी कारण से शिथिल हुई गर्भाशय की श्लेष्मकलाओ को इस औषध के सेवन से आवश्यक पोषण मिलता है और पोषण प्राप्त करके ये कलाये सक्षेप क्रिया द्वारा अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाती है। सम्भवतः यही क्रिया इस औषध का उत्तर वस्ती द्वारा क्षुद्र मात्रा मे प्रयोग कराने से कुछ क्षणों में ही प्राप्त की जा सकती है। यह जन्तुघ्न, व्रणनाशक, शोथनाशक, शोषनाशक, क्षयहर तथा धातुशोधक है।

इसका प्रयोग प्रसूति के बाद कराने से कितने ही कष्ट साध्य जरायु विकार मिट जाते है। यह पोषक, त्रिदोषनाशक और श्लेष्मकला तथा नाडियो को शान्ति देनेवाली है।

राज वटी [यो. चि.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोंठ ४ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, सैंधव १ भाग सबके सूक्ष्म चूर्ण को एकत्र मिश्रित कर खरल करे और निम्बु के रस की ७ भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अजीर्ण और आध्मान का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, दीपक, कृमिनाशक, आमशोधक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक और कफ-वात नाशक है।

लवण वटी [भा. भै. र. ६२५३]

(वा. भ. । चि. अ. १०; ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पांचो नमक, जवाखार, सज्जीखार, कालीमिर्चे, पीपल, पीपलामूल, चव, अजवायन और हींग प्रत्येक समान भाग लें और सबका मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण बनावें तथा उसे बिजौरे निम्बु के रस या बेर अथवा अनार के रस मे घोटकर ४—४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से १२ गोली तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—ये गोलियां अग्निदीपिका और पाचिका है।

सं. वि.—यह सम्पूर्ण योग दीपक, पाचक, आमशोषक, सहज रेचक, आध्मान, शूल, विवन्ध, कोष्ठवद्धता, अजीर्ण, अग्निमान्द्य आदि अनेक वात—कफ द्वारा होनेवाले रोगों को नष्ट करनेवाला है।

---

७ लवङ्गादि वटी [भा. भै. र. ६२५०]

(वै. जी. । वि. ३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—लौंग, कालीमिर्चे, गुठली रहित बहेडा १—१ भाग तथा खैर सार (कत्था) सबके बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण बनावें और फिर उसे बबूल की छाल के रस मे घोटकर २—२ रत्ती की गोलियां बनालें।

उपयोग—इन गोलियों को मुख मे रखकर चूसना चाहिये। इनके सेवन से (८ घडी मे) गले की खांसी शीघ्र नष्ट हो जाती है। यह सम्पूर्ण योग कण्ठशोधक, कफनाशक, श्लेष्म-कलाशोथ नाशक तथा मुख की दुर्गन्धि, व्रण, लालाग्रन्थि और तौन्सिल ग्रन्थियों के शोथ, कोथ आदियों को नाश करनेवाला है।

लसुनादि गुटिका

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिकटु, अजमोद, सेंधानमक, काला और सफेद जीरा और हींग प्रत्येक द्रव्य समभाग ले।। सम्पूर्ण द्रव्यों को भलीभान्ति चूर्ण करके मिश्रित करे और मिश्रण को ल्हसन के स्वरस की ७ भावनाये दे। लुगदी तैयार होने पर ४—४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह अजीर्ण, गुल्म, आध्मान आदि विकारों पर उपयुक्त है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक, आमशोषक और अन्त्रदोष नाशक है। इसके सेवन से आम और वातजन्य विकार शीघ्र मिट जाते हैं।

---

० वातहर गुटिका [र. त. सा.]

बनावट—भिलावा ८ तोले, पीपलामूल, पीपल, अकरकरा, सोंठ और मालकांगनी प्रत्येक १-१ तोला ले। सबको बारीक पीसकर ५ तोले गुड मिलाकर बेर के समान गोलियां बनाले। (आ. नि. मा.)

मात्राः—१ से २ गोली दिन मे २ बार घी के साथ दे। ६ मासे घी चाटकर गोली निगलें, फिर ६ मासे घी और चाटलें।

उपयोग—यह गुटिका संधिवात, अर्दित, आमवात, उरुस्तम्भ (आढ्यवात), कटिग्रह पक्षाघात आदि वात रोगों का नाश करती है।

सूचना—तेल मे बना हुये पदार्थ ज्यादा खाने से जल्दी लाभ होता है। दूध और मीठा पदार्थ उपयोग मे नहीं लेना चाहिये। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

वृद्धिबाधिका वटी [भा. भै. र. ७१०१]

(भै. र. । वृद्ध्य, वै र. । अण्डवृद्धि, भा. प्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म, कांसीभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध नीला थोथा, शंखभस्म, कौडीभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हेड, बहेडा, आमला, चव्य, वायविडङ्ग, विधारामूल, कचूर, पीपलामूल, पाठा, हपुसा, वच, इलायची के बीज, देवदारु, सेंधानमक, कालानमक, समुद्रलवण प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर उसमे अन्य भस्म द्रव्य मिश्रित करें और तत्पश्चात् शेष द्रव्यो के मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण को उसके साथ मिलाकर गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से असाध्य अन्त्रवृद्धि भी नष्ट होती है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, रक्तवर्द्धक, वात-कफ नाशक, अन्त्रपोषक, शूलनाशक, वातानुलोमक, व्रणनाशक, पाचक, अग्निवर्द्धक और त्रिदोषशामक है। इसके सेवन से अन्त्र के दोष चाहे वे वायु के कारण हों या आम और कफ से हों शीघ्र नष्ट हो जाते है। अन्त्र शैथिल्य तथा अन्त्र के भाग पर विशेष सञ्चित वायु, मल, आम आदि स्थानभ्रष्ट हो जाते है और एक स्थान पर रोग सञ्चित नही होने पाते। यदि विकृतियों के सतत सञ्चय और प्रकोप के कारण छिद्र होकर अन्त्र बाहर निकने लगते हों तो भी मन्दाग्नि, आम, वात, शैथिल्य आदि नष्ट

होकर, तत्स्थान गत क्षत यदि साधारण होता है तो नष्ट हो जाता है और अन्त्रवृद्धि रोग से रोगी की मुक्ति हो जाती है। अण्डवृद्धि में अन्त्रवृद्धि के समान ही आन्त्रिक श्लेष्मकलाये और आन्तरिक विकार विशेष, विकृति के कारण पाये जाते है। आम और वातनाशक होने से यह औषध सम्पूर्णतया रोगोत्पादक कारणों को नष्ट कर देती है, अर्थात् विष, दंश और आघात आदि इसके कारण हो तो स्थानिक चिकित्सा के साथ २ वे भी नष्ट हो जाते है।

यह मेद को नाश करने के लिये उपयोगी औषध है। दीर्घकाल से अन्त्रदोषों से पीडित मनुष्य मे दोष स्थानसंश्रित न हों इस लिये इसका सेवन आवश्यकीय हो जाता है।

वृद्धिहरी वटिका [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—कुन्दरु गोंद ४ तोला, करञ्जवे (कंजे–कण्टकी करञ्ज के फल को सेक फोडकर निकाला हुवा मग्ज) ४ तोला, इन्द्रजव २ तोला, घी मे सेकी हुई हींग १ तोला, डीकामाली (नाडीहिंगु) १ तोला, वायविडंङ्ग २ तोला, छिलका निकाला हुवा ल्हसुन २ तोला, इन्द्रायन की जड २ तोला, अजमोद २ तोला, रूमीमस्तगी २ तोला और सोंचर (कालानमक) ४ तोला लें। सबका कपडछन चूर्ण कर ग्वारपाठे के रस में एक दिन पीस ५–५ रत्ती की गोलियां बना, सुखाकर शीशी में भर देवें।

मात्रा और अनुपान—२–२ गोली। दिन मे २–३ बार, ठण्डे जल के अनुपान से देवें।

उपयोग---वात तथा कफज वृद्धि रोग, कृमि विकार और पेट के दर्द मे इन गोलियो से अच्छा लाभ होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धत]

---

० विरेचन वटी [र. तं. सा.]

बनावट—एलवा ४ तोलें, उसारेरेवन २ तोले, भुनी हींग और सुहागे का फूला ६–६ मासे मिलावे। फिर अमलतास की फली के गर्भ को जल मे उबाल मसल कर छान ले। इस जल के साथ द्रव्य मिश्रण को घोटकर १–१ रत्ती की गोलियां बनाकर सेलखडी के चूर्ण में डालते जांय।

मात्राः—१ से ४ गोली। रात्री को सोने के समय जल के साथ देवें।

उपयोग—इन गोलियों से सुबह १ या २ जुलाब लगकर पेट साफ हो जाता है। उदररोग, बवासीर और दूसरे रोगों मे पेट साफ रखने की जरूरत हो तो इसका उपयोग

होता है। सामान्यतः एक गोली लेने से ही दस्त होता है। इसके सेवन से उदर में बिल्कुल तकलीफ नहीं होती। [रसतन्त्र सार से उद्धृत]

विषतिन्दुक वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधानः— विषतिन्दुक (जहर कुचला) ४० तोले और सोंठ २० तोले लें। दोनों के सूक्ष्म कपडछन चूर्ण को एकत्र मिलाकर जल के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः— १ से २ गोली। पानी के साथ दे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः— वातज अग्निमान्द्य, दौर्बल्य, वातनाडी दोषजन्य क्षीणता तथा वातनाडी के अन्य विकारों में यथा गात्रकम्प, प्रलाप आदि में इसका प्रयोग लाभदायक है।

सं. वि.— यह औषध वातानुलोमक, शोधक, आमपाचक, अन्त्र शैथिल्य नाशक और अग्निवर्द्धक है। आमदोषज विकारों मे जिन मे वात की प्रधानता हो, यह शीघ्र लाभप्रद सिद्ध होती है, कारण कि सोंठ वात-कफ नाशक और पित्तशामक है। आमशोषण, अग्निवर्द्धन और आक्षेपनाशन इसकी महत्वपूर्ण क्रियायें है। इसी प्रकार कुचले के प्रभाव है। वात तथा कफज, नाडिज और श्लेष्मकलाजन्य विकारों पर यह शीघ्र पोषक और दोषनाशक सिद्ध होता है। अन्त्र के ऐसे विकारों पर जहां मांसपेशियां शिथिल हो गई हों तथा प्रतिक्षण होनेवाले आक्षेप रोगी को मृत्यु की ओर धकेल रहे हों, वहां इसका प्रयोग प्रशंसनीय होता है। वातनाडियों के अन्य विकारों मे भी इसका प्रयोग सर्वदा प्रशस्त होता है।

विषमुष्टि गुटिका [आ. औ.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः— शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, अजमोद, त्रिफला, सज्जीक्षार, यवक्षार, सैन्धव, चित्रकमूल, जीरा, संचलनमक, वायविडङ्ग और त्रिकटु प्रत्येक समान भाग और शुद्ध कुचला सबके बराबर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर उसमें वच्छनाग का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करे। तदनन्तर अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलावे और उसे नींबू के रस की ७ भावनाये दे। तैयार होने पर २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः— १ से २ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः— इसके सेवन से अजीर्ण, आध्मान, अन्त्राक्षेप, शूल और अग्निमान्द्य का नाश होता है।

सं. वि.— यह औषध शोधक, पाचक, आमशोषक, वातानुलोमक, आक्षेपनाशक, अन्त्र शैथिल्य नाशक, श्लेष्मकलाशोथ-शोष और कोथ नाशक तथा अन्त्र शैथिल्य, अजीर्ण, ग्रहणी शैथिल्य और अन्य आन्त्रिक वातज उपद्रवों के लिये हितकर है।

वीर्यशोधक वटी [र. तं. सा.]

बनावट—चांदी के वर्क, वंगभस्म, प्रवालपिष्टी, शुद्ध शिलाजीत और गिलोय-सत्व ये सब एक-एक तोला तथा कपूर ३ मासे ले। सबको यथाविधि मिला, शिलाजीत के जल में खरल करके मटर के समान गोलियां बनाले।

सूचनाः—प्रवाल पिष्टी के स्थान पर सुवर्णमाक्षिक भस्म मिलाने पर ऊष्णता को शान्त करने में विशेष गुण दर्शाती है।

मात्राः—१ से २ गोली। दिन में २ बार दूध के साथ दें।

उपयोग—यह वटी शुक्र मे रहे हुये दूषित घटकों का शोधन करती है; ऊष्णता का शमन कर स्तम्भन शक्ति को वढाती है तथा शुक्राशय और शुक्रवाहिनीगत वात प्रकोप और शिथिलता को दूर करती है। एवं इस वटी से सब प्रकार के प्रमेह, धातुदोष, मूत्ररोग, निर्बलता आदि विकार दूर होकर शक्ति की वृद्धि होती है। [रसतन्तसार से उद्धृत]

व्योषादि वटी [भा. भै. र. ६६२८]

(वै. र.; वृ. नि. र.। कासा.; शा. सं.। ख. २. अ. ७; यो. चि. म.। अ. ३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोंठ, मिर्च, पीपल, अम्लवेत, चव, तालीसपत्र, चित्रक मूल, जीरा, इमली, प्रत्येक द्रव्य १-१ कर्ष (१।-१। तोला); दालचीनी, तेजपात और इलायची का चूर्ण ३।।।-३।।। मासे तथा गुड २५ तोले लेकर सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को गुड में मिलाकर भलीप्रकार कूटें और फिर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ८ गोली। नित्यप्रति मुख मे रखकर चूंसी जाती है अथवा गरम जल के साथ सेवन की जाती हैं।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—ये गोलियां सब प्रकार की खांसी, पीनस, प्रतिश्याय, श्वास और स्वरभेद को नष्ट करती है।

सं. वि.—यह औषध अम्ल, कटु, तिक्त द्रव्यो के योग से बनी हुई है अतः स्वभावतः वात-कफ नाशक है। नासिका तथा कण्ठ की श्लेष्मकलायें शीत के आक्रमण से रूक्ष अथवा अति स्निग्ध-स्रावमयी बन जाती है, जिससे कण्ठशोष, प्रतिश्याय, पीनस, श्वास, कास आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। यह औषध अपने गुणो से शीत, रूक्ष आदि वातज तथा शीत स्निग्ध आदि कफज लक्षणो का नाश करती है। श्वास-कास-नलिका और कण्ठ तथा नासिका के मार्गों का शोधन करती है और श्वासमार्ग को सशक्त और विकार विहीन रखती है।

शंकर वटी [भा. भै. र. ७५२७]

(भै. र. । हृद्रोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद ४ भाग, शुद्ध गन्धक ८ भाग, लोहभस्म ३ भाग और सीसाभस्म ३ भाग लेकर पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और फिर समस्त औषधों को उसमें मिश्रित करके मकोय के रस, चीते के रस या क्वाथ, अदरक के रस, जयन्ती के रस, वासा के रस और वेल के क्वाथ की १–१ भावना देकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। मन्दोष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से फुफ्फुस रोग, हृदयरोग, जीर्णज्वर तथा २० प्रकार के घोर प्रमेह, श्वास, कास, आमवात और भयङ्कर ग्रहणी रोग का नाश होता है।

सं. वि.–यह औषध ऊष्ण वीर्य, वात-कफनाशक, अग्निवर्द्धक, शोफनाशक, क्षोभनाशक, आक्षेपनाशक और रसायन है। इसकी क्रिया मुख में प्रवेश होते ही प्रारम्भ हो जाती है। अर्थात् श्लैष्मिक ग्रन्थियों के संयोग मे आते ही ऊष्ण गुण द्वारा स्वेदित करके उन्हे वात कफ के दोषों से मुक्त कर देती है। श्लेष्मकलाओं के स्रोतों मे प्रविष्ट होकर उनके अन्तर्तन्तुगत शोथ को मिटा देती है और शिथिलता, जडता और दोष प्रकोप से विकृत हुई श्लेष्मकला तथा उनकी संचालिका नाडियों को स्वस्थ कर देती है।

आमाशय मे पहुंचते ही इसकी क्रिया तुरन्त प्रारम्भ हो जाती है। श्लेष्मकलाओं तथा आमाशय की कोमल सन्धियों के दोषों को स्थानभ्रष्ट करके, आमाशय-शोथ तथा उसके पार्श्व के विस्तृत विकार को नष्ट कर देती है। रक्त परिणमन के वाद सूक्ष्म रूप में परिभ्रमण करती हुई यह औषध शरीर के अङ्ग–प्रत्यङ्ग के शोथ और क्लेद का नाश करतीहै, हृदावर्ण के शोथ, हृन्मांस कृच्छता, हृत्कपाट-वातजविकार, महाधमनीगत वातावरोध तथा कास-श्वास की नलिकाओं के वात–कफज अवरोध और फुफ्फुस और फुफ्फुसावर्ण की जडता, शिथिलता, दोष परिपूर्णता आदि विकारो को दूर करके इन अङ्गों को स्वस्थ करती है।

यह औषध वात–कफज हृदय, फुफ्फुस और उदर रोगो के लिये श्रेष्ठ है। आमज संग्रहणी और आमवातादि रोगों पर यह इन्हीं गुणों से लाभ करती है।

शंख वटी (बृहत्) [भा. भै र. ७५४८]

(र. रा. सुं.; र. का. धे.; भा. प्र. । म. ख. २. । अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—स्नुही (थूहर) का क्षार, आक का क्षार, इमली का

क्षार, अपामार्ग का क्षार, केले का क्षार, तिल का क्षार, पलाश का क्षार और पांचो नमक प्रत्येक द्रव्य ५–५ तोले तथा सज्जीक्षार, यवक्षार और सुहागा ५–५ तोले लेकर सबका बारीक चूर्ण बनावें और मिश्रण को १ सेर (८० तोले) निम्बु के रस मे मिला दें। तदनन्तर उसमे ५ तोले शंख को तपा २ कर ७ बार बुझावें, जिससे कि उसकी भस्म हो जाय। तत्पश्चात् उसमें २५ तोले सोठ, १० तोले मिर्च, ५ तोले पीपल, २॥ तोले भुनी हुई हींग और २॥–२॥ तोला पीपलामूल, चीता, अजवायन, जीरा, जायफल और लौंग का चूर्ण तथा १।–१। तोला शुद्ध वच्छनाग, सुहागे की खील और मनसिल तथा १।–१। तोला शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली मिलाकर घोटें और फिर २० तोले चुक्र डालकर खरल करके ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इनके सेवन से अजीर्ण, शूल, विषूचिका और अलसक आदि रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्निवर्द्धक, मूत्रल, शोथनाशक, शोधक, दाहनाशक, पित्तशामक, वातानुलोमक, विषशामक और कृमिनाशक है। यह अजीर्ण या अन्त्रशैथिल्य से संगृहीत अन्त्रदोषों द्वारा उत्पन्न होनेवाले वातज, आमज और पित्तज विकारो को शान्त करती है। इसके सेवन से अपानवायु छूटती है, आध्मान, विबन्ध आदि मिटते है तथा अतिसार, अजीर्ण, संग्रहणी, विषूचिका, अलसक आदि विकारों के लिये यह श्रेष्ठ है।

शंख वटी [भा. भै. र. ७५५४]

(र. का. धे.; भै. र., रसे. सा. सं., र. चं.; र. रा. सुं.। अग्निमान्द्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शंखभस्म, पांचो नमक, इमली का क्षार, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और उसमें अन्य औषधे मिलाकर सब को अपामार्ग और चीते के क्वाथ तथा निम्बु के रस की १–१ भावना देकर अम्लवर्ग मे इतना घोटे कि औषध खट्टी हो जाय। तदनन्तर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निमान्द्य का नाश होता है और मस्तिष्क रोग नष्ट होते है।

यदि कण्ठ पर्यन्त भोजन करने के पश्चात् यह गोली खाई जाय तो वह भी शीघ्र पच जाता है।

इसके सेवन से अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, पाण्डु, कुष्ठ, शूल, प्रमेह, वातरक्त, शोथ और अन्त्र के बहुत से रोग नष्ट होते है।

'यह अर्श को इस प्रकार नष्ट कर देती है जैसे रुई के ढेर को अग्नि' यह बात सहस्रो बार देखी गई है।

यदि इसमें १-१ भाग लौहभस्म और वंगभस्म मिला दी जाय तो इसी का नाम "महा शंख वटी" हो जाता है।

शिरः शूलादि वटी (शिरो वज्र रसः) [भा. भै. र. ७५८९]

(भै. र.; रसे. सा. सं.; र. रा. सुं. । शिरोरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म प्रत्येक ५-५ तोले तथा शुद्ध गुग्गुल २० तोले और त्रिफला चूर्ण १० तोले और मुल्हैठी, सोंठ, गोखरू, वायविडङ्ग और दशमूल आधा २ कर्ष (७॥-७॥) मासे लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और फिर उसमे अन्य औषधियो को मिलाकर दशमूल के क्वाथ में घोटकर पिष्टी तैयार होने पर घी का हाथ लगाकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। दिन में २-३ वार, गोदुग्ध, बकरी के दूध या मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसको सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज शिरोरोग नष्ट होता है।

सं. त्रि.—यह औषध शोधक, दाह-क्षोभनाशक, वातनाडी विकृति नाशक, वातानुलोमक, और वातनाडी तन्तु पोषक है। इसके सेवन से किसी भी दोष से होनेवाला शिरः शूल नष्ट होता है।

शिलाजत्वादि वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—त्रिवंगभस्म ३ तोले, छाया में सुखाई नीम तथा गुडमार की पत्ती का चूर्ण १०-१० तोले और शिलाजीत १५ तोले लेवे। प्रथम शिलाजीत मे त्रिवंगभस्म मिलावे और फिर अन्य चूर्ण मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।(यदि इस योग को विशेष गुणशाली बनाना हो तो इसमे आधा तोला सुवर्णभस्म मिलाकर गोलियां बनाले।)

मात्रा और अनुपान—४-४ घण्टे के बाद ३-३ गोली करके १२ गोली ठण्डे जल के अनुपान से देवे।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, क्षय, मधुमेह, नपुंसकता और वीर्यक्षीणता को नाश करने के लिये इसका प्रयोग लाभप्रद है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

शिलाजीत वटी (शिवा गुटिक) [भा. भै. र. ७६२१]

(वं. से. । वातरक्ता.; च. द. । रसा. ६५; ग. नि. । गु. ४; यो. र. । राजय.; वृ. यो. त. । त. ७६.)

शिलाजीत शोधन—ग्रीष्मकाल में कृष्णलोह जनित उत्तम शिलाजीत को त्रिफला के क्वाथ की १ भावना दें और उसके सूखजाने पर फिर त्रिफला के क्वाथ की भावना दें। इस प्रकार धूप मे सुखाकर त्रिफला के क्वाथ की ३ भावनाये दे। फिर इसी प्रकार दशमूल, गिलोय खरैंटी, पटोल और मुल्हैठी के क्वाथ तथा गोमूत्र की ३–३ और गोदुग्ध की १ भावना देकर सुखालें। तदनन्तर निम्नलिखित काकोल्यादि गण के क्वाथ की ७ भावनाये दें। काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महा मेदा, विदारीकन्द, क्षीर विदारी, शतावर, द्राक्षा, ऋद्धि, वृद्धि, ऋषभक, महा शतावरी, मुण्डी, जीरा, शालपर्णी, पृश्नपर्णि, रास्ना, पुष्करमूल, चीता, दन्तीमूल, गजपीपल, इन्द्रजौ, चव्य, नागरमोथा, कुटकी, काकडासींगी और पाठा इनमें से जो औषधियां मिल सकें उन्हें ५–५ तोला प्रमाण में लें और अधकुटा करके क्वाथ्य द्रव्य से १६ गुने (३२ सेर) पानी में पकावें। जल के १ चतुर्थांश (८ सेर) अवशिष्ट रहने पर उसे छान लें और उसकी उपरोक्त विधि से भावना दे।

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—इस प्रकार भावना देकर सुखाया हुवा शिलाजीत ८० तोला, सोंठ, आमला, पीपल और कालीमिर्च का चूर्ण १०–१० तोले, विदारीकन्द का चूर्ण ५ तोला, तालीसपत्र का चूर्ण २० तोला, मिश्री ८० तोला, घी ४० तोला, शहद ८० तोला, तिलका तेल २० तोले तथा वंशलोचन, तेजपात, दालचीनी, नागकेसर और इलायची का चूर्ण २॥–२॥ तोला लेकर सबको एकत्र घोटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखाले और स्वच्छ काच पात्र में भरले।

मात्राः—१ से २ गोली। प्रातः सायं दूध, मांस रस, अनार के दाने का रस, सुरा, आसव, मधु या शीतल जल मे घोटकर पीवें या गुटिका को खा कर उपरोक्त द्रव्य पीवे।

पथ्यः—औषध पच जाने पर दूध या मूंग आदि के यूष के साथ लघु अन्न खाना चाहिये। मांसाहारी मांस के साथ लघु अन्न खावे।

एक सप्ताह तक इस प्रकार पथ्य पालन करने के पश्चात साधारण पथ्याहार किया जा सकता है।

यह गुटिका भोजन करने के पश्चात् भी खाई जांय तो भी किसी प्रकार की हानि का भय नहीं है। सुकुमार प्रकृति के कामी पुरुष भी इसका निर्भय होकर सेवन कर सकते हैं।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे १ वर्ष तक सेवन करने से बहुत वर्षों का पुराना प्रबल

और कठिन वातरक्त भी नष्ट हो जाता हैं। इसके अतिरिक्त यह गुटिका यक्ष्मा, आढ्यवात, ज्वर, योनिदोष, शुक्रदोष, प्लीहा, अर्श, पाण्डु, ग्रहणी, भ्रम, वमन, गुल्म, पीनस, हिचकी, कास, अरुचि, श्वास, जठर, स्वित्र, कुष्ठ, नपुंसकता, मद, शोष, उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, आनाह, अतिसार, रक्तप्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत, अर्बुद. विद्रधी, भगन्दर, रक्त-पित्त, अति स्थूलता, स्वेद, श्लीपद, दंष्ट्र विष, मूल विष और अनेक प्रकार के संयोगज विषों को भी नष्ट करती है।

इसके प्रयोग से शत्रुओ द्वारा प्रयुक्त हुये मन्त्रौषधि के दुष्ट प्रभाव नष्ट होते है तथा पाप (मनोविकार), अलक्ष्मी (प्रभाव शून्यता) का नाश होता है।

यह गुटिका बल और कामशक्ति वर्द्धक, प्रशंसनीय कान्ति, यश और सन्मान की वृद्धि करनेवाली है।

(इसे मुख मे धारण करने से विवाद में जय और राज सभा में आदर होता है।)

इसे १ वर्ष तक सेवन करते रहने से वलिपलित और रोग रहित २०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है। २ वर्ष तक सेवन करने से ४०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है।

संक्षिप्त विवेचन--शिलाजीत अप्रमेय औषध है। इसका कारण यह है कि इसमे रांग आदि सात, अर्थात् त्रपु, सीस, ताम्र, रजत, कृष्ण लौह इत्यादि धातुओं का अभिन्न मिश्रण है। ये सभी औषधें तिक्त, कटु, कषाय, रसावाली, सर और पाक में कटु और वीर्य मे उष्ण हैं। इनके सूक्ष्मतम औषधि अंश शिलाजीत मे मिश्रित होते है। अनेक औषधियों से शिलाजीत को भावना देकर दोष रहित बना लिया है, यदि ऐसी शिलाजीत को अकेले ही प्रयोग में लाया जाय ता मधुमेह और उसके अन्य आनुषङ्गिक विकारों रहित शरीर, बल वर्ण की समृद्धि वाला बन जाता है। ऐसी शिलाजीत को सेवन करनेवाला मनुष्य प्रमेह, कुष्ठ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, विष, शोष, शोफ, अर्श, गुल्म, पाण्डु, विषमज्वर आदि रोगों से मुक्त रहता है और इस प्रकार के रोगियो को यह शिलाजीत दी जाय तो वे स्वास्थ्य लाभ करते है। अन्य औषधियों के योग से यह रसायन और वाजीकरण औषध शरीर के रस, रक्त, मेद, अस्थि, वीर्य, ओज आदि विकारो को नष्ट करनेवाली बन जाती है।

शुक्र मातृका वटी [र. तं. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म और लौहभस्म प्रत्येक ४–४ तोले, छोटी इलायची के दाने, गोखरू, हरड, आमला, तेजपात, रसौत, धनिया, चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सुहागे का फूला और मीठे अनारदाने ये १३ औषधियां

२–२ तोले तथा शुद्ध गूगल १ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनावे उसमें अभ्रकभस्म और लौहभस्म मिलावें। फिर अन्य औषधियों का चूर्ण मिला, गोखरू के क्वाथ या मीठे अनार के रस मे १२ घण्टे घोटकर मटर के समान गोलियां बनावें। (भै. र.)

मात्राः—१ से २ गोली। दिन में २ बार जल या बकरी के दूध अथवा मीठे अनार के रस के साथ देवें।

उपयोग—इस रसायन के सेवन से वीर्यस्राव, सब प्रकार के वातज, पित्तज और कफजप्रमेह तथा सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र आदि दोष दूर होकर वीर्य शुद्ध और गाढा बनता है। यह बल, वर्ण, अग्नि को प्रज्वलित करके जीर्णज्वर (अस्थिगत ज्वर) को नष्ट करता है। अश्मरी (पथरी) में भी लाभदायक है। इसके सेवन से रक्त मे रक्ताणुओं की वृद्धि होती है, मांस ग्रन्थियां सुदृढ बनती हैं; एवं मानसिक शक्ति भी बढती है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

---

० शुक्र संजीवनी गुटिका

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १०–१० तोला तथा अभ्रकभस्म, लोहभस्म, गोखरू, त्रिफला, तमालपत्र, इलायची, रसौत, धनिया, चव, जीरा, तालीसपत्र, भुना हुवा सुहागा और अनारदाना प्रत्येक २०–२० तोला लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें, तत्पश्चात् अभ्रक और लौहभस्म को मिश्रित करे अनन्तर अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को भलीभान्ति मिश्रित करें और जल के साथ घोटकर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। दूध या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह औषध शुक्रतारल्य, वीर्यक्षीणता, प्रमेह और तज्जन्य अन्य वात–कफज विकारों में दी जाती है।

सं. वि.—यह औषध बल्य, वृष्य, तृष्णा–दाह नाशक, कफ–वात–पित्त शामक, श्रम नाशक, पाचक, दोषानुलोमक और वीर्यस्तम्भक है। यह औषध वाजीकरण तथा रसायन है। इसको सभी प्रकार के वीर्य विकारों में प्रयुक्त कर सकते है।

शूलवर्जिनी वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद २ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, लोहभस्म २ तोला, शंखभस्म २ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, घी मे सेकी हुई हींग १ तोला, सोंठ

१ तोला, काली मिर्च १ तोला, छोटी पीपल १ तोला, हरड का दल १ तोला, बहेडादल १ तोला, आंवला १ तोला, कचूर १ तोला, दालचीनी १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, तेजपात १ तोला, तालीसपत्र १ तोला, जायफल १ तोला, लौंग १ तोला, अजवायन १ तोला और धनिया १ तोला लेवे। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। तदनन्तर उसमे अन्य भस्मे तथा वनस्पतियों का कपडछन किया हुवा चूर्ण मिला ३ दिन आंवले के स्वरस मे मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखाले।

मात्रा और अनुपान—१-२ गोली। सवेर शाम बकरी के दूध से। अथवा १-२ गोली भोजन के पीछे ठण्डे जल से।

उपयोग—सब प्रकार के शूल में विशेषतः परिणाम शूल मे इसका उपयोग करें।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

शूलवज्रिणी वटिका [भा. भै. र. ७६६१]

(र. चं.; र. रा. सुं.; रसे. सा. सं.; भै. र.; धन्वं. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लौहभस्म प्रत्येक २॥-२॥ तोला, हैड, बहेडा, आमला, भुनी हुई हींग, ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, सुहागे की खील, तेजपात, दालचीनी, इलायची, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा, और धनिया प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तदनन्तर उसमें अन्य औषधियो का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करके बकरी के दूध मे घोटकर (शा. १-१ मासा) ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से ८ प्रकार के शूल, प्लीहा, गुल्म, अम्लपित्त, उदररोग, आमवात, पाण्डु, कामला, शोथ, गलग्रह, वृद्धि, श्लीपद, भगन्दर, कास, श्वास, व्रण, कुष्ट, कृमि, हिक्का, अरुचि, अर्श, दुष्टग्रहणी, सब प्रकार के अतिसार, विषूचिका, कण्डू, मन्दाग्नि, पिपासा और एकज-द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज पीनस नष्ट होते है। यह औषधि बुद्धि, कान्ति तथा आयु की वृद्धि करनेवाली है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, ऊष्ण, कटु, आमपाचक, वातानुलोमक, दुष्टस्राव शोषक, वात-कफज अन्त्रशोष नाशक, मुख दुर्गन्धि को मिटानेवाली तथा मुख नासिका इत्यादि स्थानों की श्लेष्मकलाओं के स्थानिक कोथ, क्षोभ और ग्रन्थिदोष इत्यादियों के कारण उत्पन्न हुये दुष्ट स्रावों का नाश करके उन ग्रन्थि और श्लेष्मकलाओं को शक्ति प्रदान करती है।

शूल किसी भी कारण से क्यों न उत्पन्न हुये हों इसके सेवन से अवश्य मिट जाते है।

इसका मूल कारण तो यह है कि यह औषध वातानुलोमक है अतः इसका सेवन करने से मल मूत्र का भलीभान्ति विसर्जन होता है। आम का शोषण होता है और ऊष्ण होने से यह औषध श्लेष्मकलाओ की जडता को, जो कफ और वायु के प्रकोप से होती है, शीघ्र दूर कर देती है और इस प्रकार यकृत् आवर्ण-शूल, उदरच्छदाकला शूल, नाभिशूल तथा उदर में वात-कफ और आम द्वारा होनेवाले शूलों को नष्ट करती है। यह पाचक, पोषक और अनेक प्रकार के रस आदि दोषों से उत्पन्न होनेवाली व्याधियों को नष्ट करनेवाली है।

———o———

शूल हरण योग (शूलनाशिनी वटी) [भा. भै. र. ७६६४]

(वै. र.; धन्वं.; र. चं.; र. रा. सुं. । शूला.; रसे. सा. सं. । शूला.; वै. र. । शूला.; र. चि. म. । स्त. ९.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, भुनी हुई हींग, सेंधानमक और शुद्ध गन्धक प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। सबको एकत्र घोटकर पानी के साथ खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। प्रातः ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से गुल्म, शूल, ग्रहणी रोग, अतिसार, अजीर्ण और अग्निमान्द्य का नाश होता है तथा देह कान्तिमान् और उत्साह युक्त बन जाती है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, आक्षेपनाशक, आन्त्रिक दोष नाशक और आमपाचक है। इसके सेवन से जीर्ण अजीर्ण, अन्त्र वातावरोध, आमातिसार, आमज ग्रहणी, वात-कफज शूल, गुल्म तथा अग्निमान्द्यादि रोगो का नाश होता है।

———o———

श्वासरोगान्तक वटी [र. तं. सा.]

बनावट—शुद्ध सोमल १ तोला, शृङ्गभस्म ११ तोले तथा सुहागे का फूला और सफेद मिर्च का चूर्ण २-२ तोला ले। सबको मिला नागरवेल के पान के रस में ३ दिन खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से २ गोली। दिन में २ बार शहद मिश्री मिले हुये दूध अथवा घृत के साथ देवें।

उपयोग—नया और पुराना श्वास रोग, जिसमे कफ बहुत गिरता हो; श्वास नलिकायें कफ से भरी रहती हों; थोडा सा परिश्रम करने पर श्वास रुकने लगता हो; ऐसे रोग में इस वटी से बहुत जल्दी लाभ पहुंचता है। जिन रोगियों की पचनक्रिया अधिक दूषित न हुई हो

उन रोगियों को विशेषतः जीर्ण रोग में घी के साथ दिया जाता है। घी २-४ तोले पिलाया जाता है।

सूचना—पित्त प्रधान प्रकृतिवालों को यह वटी न दें। वृक्क स्थान सदोष होने से योग्य मूत्रोत्पत्ति न होती हो, तो भी यह रसायन न देवें। यकृत् निर्बल होने से पित्त स्राव न्यून होता हो, तो घी अधिक न दे दूध पिलावे। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

सप्तपर्ण वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सप्तपर्ण त्वक्, कुटकी, चिरायता, और कुचलात्वक् इन द्रव्यों के घनों को समान भाग करञ्ज चूर्ण मे मिश्रित करके २-२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—२-२ गोली। दिन में ३ बार पानी के साथ।

गुणधर्म—इस औषध की ६ गोलियां मलेरिया ज्वर को नाश करने के लिये पर्याप्त है।

मलेरिया द्वारा उत्पन्न हुई यकृत् प्लीहा की वृद्धि इसके सतत सेवन से कुछ काल मे ही नष्ट हो जाती है।

इसके सेवन से ज्वर के पुनरावर्तन की भीति मिट जाती है।

यह सब प्रकार के मलेरिया, यकृत् और प्लीहा विकार तथा कोष्ठवद्धता नाशक है।

सं. वि.—इसकी क्रिया शरीर पर शीघ्र और प्रशस्त होती है। संतप्त शरीर इसके सेवन से शीघ्र ताप मुक्त होता है और किसी प्रकार की अन्य विकृतियां नहीं होने पातीं।

आमाशय, ग्रहणी और पक्वाशय मे सञ्चित दोषों को यह पाचक, मृदु रेचक और दोषनाशक गुणों से दूर कर देती है। अन्त्र के दोषों के लिये वातानुलोमक और अग्निवर्द्धक होने के कारण यह उपयोगी है। इस औषधि के सेवन से सम्पूर्ण शरीर के अङ्गों को लाभ पहुंचता है।

सर्पगन्धा घन वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधि—सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन की पत्तियां या बीज २ सेर, जटामांसी १ सेर और भांग १ सेर। इनका जौकुट (दरदरा) चूर्ण करके उसको आठ गुने जल मे मन्दी आंच पर पकावे और हिलाता रहें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे तब ठण्डा होने पर कपडे से छानकर मन्दी आंच पर पकावे। जब क्वाथ करछी या लकडी के खोचे पर लगे, इतना गाढा हो, तब उसको नीचे उतारकर धूप में सुखावें। जब गोली बनाने योग्य हो जाय तब उसमे १०-२० तोला पीपलामूल का चूर्ण मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा अनुपान और उपयोग—२–३ गोली रात को सोते समय जल या दूध के साथ लेने से अच्छी नींद आ जाती है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

सं. वि.—सर्पगन्धा परिवर्द्धित रक्तचाप को संशमन करनेवाली सिद्ध हो चुकी है। अधिकतर रक्तचाप की वृद्धि वातज है। वातनाडियों की परिश्रान्ति उनमे शैथिल्य उत्पन्न कर देती है, जिससे क्रियावसाद होने के कारण रक्तचाप बढ जाता है। सर्पगन्धा का घन और उसके साथ अजवायन, जटामांसी और भांग यह एक नाडियों की उग्रता को नाश करनेवाला, वातनाशक, अग्निवर्द्धक और अवसन्न नाडियो में शक्ति उत्पन्न करनेवाला सुन्दर योग है। फिर इसमें पीपलामूल है जो सर्वथा कोष्ठाश्रित वातदोष को शीघ्र नष्ट करता है। इस प्रकार 'सर्पगन्धा घनवटी' मद, मूर्छा, भ्रम, नाडी अवसाद और रक्तचाप की वृद्धि को दूर करनेवाली उत्तम औषध है।

सर्वज्वराङ्कुश वटी [भा. भै. र. ८१६६]

(भै. र.; र. रा. सुं. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, दालचीनी, जमालगोटा, कूठ, चिरायता और नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। तदनन्तर अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण उसमें मिलाकर सम्भालु तथा अदरक के रस की १–१ भावना देकर ३–३ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ३ गोली तक। पानी या अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— इसके सेवन से पृथक २ दोषों से उत्पन्न हुये सान्निपातिक, विषम, प्राकृत, वैकृत, वात–कफ अन्तर्गत, वहिःस्थ, निराम और साम आदि समस्त ज्वरों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, क्षोभनाशक, पाचक, सारक, आमनाशक, दाहनाशक तथा त्रिदोषनाशक और स्वेदल है। इसके सेवन से प्रस्वेद होकर ज्वर का मोक्षण होता है। ज्वरों की निराम और साम दोनों ही अवस्थाओं में यह जल और अदरक के रस के साथ लाभप्रद सिद्ध होती है।

सचीर वटी [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—फिटकरी ४ तोला, कलमी शोरा ४ तोला, नौसादर ४ तोला, कसीस ४ तोला, सेंधानमक ४ तोला, नीला थोथा ४ तोला, लोबान ४ तोला और

संखिया २ तोला लेकर सबको खरल मे पीसें। पीसने से सब का गोला हो जायगा, उसको लोहे के तवे मे डाल, अग्नि पर सुखा, खरल मे डाल, उसमें पारद ३० तोला मिला सबको ३ दिन मर्दन कर ७ बार कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर बालुकायन्त्र में पकावें। प्रारम्भ में जब तक शीशी में से जल युक्त वाष्प निकलती रहे तब तक शीशी का मुंह खुला रक्खें। जब जलांश रहित श्वेत वर्ण का धुंआं आने लगे तब शीशी के मुंह को मुल्तानी या खडिया मिट्टी की डाट लगा, ऊपर से चूना और गुड या पानी में मिलाया हुवा प्लास्टर आफ पेरिस लगा देवें। उसके बाद ६ घण्टा और आंच देवे। स्वांगशीतल होने पर शीशी को बाहर निकाल, तोडकर शीशी के गले में लगा हुवा श्वेतवर्ण सवीर (रसकपूर) निकाल लेवें।

सवीर वटी निर्माण विधि—सवीर ४ तोला, केशर ४ तोला, श्वेत चन्दन का चूर्ण ४ तोला और कस्तूरी १/२ तोला लेवे। प्रथम सवीर को खरल में खूब महीन पीस, उसमे केशर और कस्तूरी मिलाकर पान के रस में घोटें, दोनों के मिल जाने पर अन्य चूर्ण मिला, पान के रस में एक दिन मर्दन करे, १–१ रत्ती की गोलियां बना, छाया में सुखाकर भर लेवें।

मात्रा और अनुपान—१–१ गोली। सुबह साम निगलाकर ऊपर से मिश्री मिलाया हुवा गाय का (गरम करके, पीने के योग्य ठण्डा किया हुवा) दूध पिलावे।

पथ्य—इस गोली के सेवन के समय खटाई, मिर्च, हींग, राई और गरम मसाले आदि तथा करेला, बैगन, सरसो, मूली, एरण्ड, खर्बूजा और इनका शाक नहीं खाना चाहिये।

उपयोग—फिरङ्गोपदंश के विष से होनेवाले सब प्रकार के रोगों मे इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

संचेतनी वटिका [र. तं. सा.]

बनावट—सोंठ, पीपलामूल, वायविडङ्ग, चित्रक, दालचीनी, तेजपत्र, जावित्री, शुद्ध कुचला, शुद्ध वच्छनाग, मल्लभस्म, ताम्रभस्म, कस्तूरी, सब सम भाग मिला १२ घण्टे भांगरे के रस मे घोटकर चने के बराबर गोलियां बना लेवें।

मात्राः—१–१ गोली आवश्यकतानुसार गरम जल के साथ दिन में ३–४ समय ३–४ घण्टों के अन्तर पर देवें।

उपयोग—यह रसायन सन्निपात मे बेहोशी दूर करने मे अति उपयोगी है। मरता हुवा रोगी भी एक दफे होश मे आता है। कफ, आम और वात प्रकोप को यह वटी तत्क्षण दूर करती है। हृदय की गति को उत्तेजना देती है और त्रिदोष को सम बनाती है।

यह रसायन अति उग्र, ऊष्ण वीर्य, स्वेदल, विकाशी, हृदयोत्तेजक, सेन्द्रिय विषनाशक और कीटाणुनाशक है। वातप्रधान, कफप्रधान और वात-कफ प्रधान सन्निपात की गिरी हुई अवस्था में यह रसायन अमृत सदृश लाभदायक है। यह रसायन मस्तिष्कगत केन्द्र को उत्तेजित कर बेहोशी को तत्काल दूर करता है। मरण मुख में जाते हुये अनेक रोगी इस रसायन के सेवन से बच जाने के उदाहरण मिले है।

सूचना—पित्तप्रधान विकार मे एवं शारीरिक उत्ताप अधिक होने पर इस रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिये, वरना मस्तिष्क में रक्त दबाव की वृद्धि होकर लाभ के स्थान में हानी पहुंचेगी। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

संजीवनी वटी [भा. भै. र. ८१२५]

(यो. त. । त. २४; वृ. यो. त. । त. ७१; वै. र. । अग्निमान्द्या.; शा. ध. । ख. २. अ. ७; यो. र. । अजीर्णा.; यो. चि. म. । अ. ३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल, हैड, आमला, बहेडा, वच, गिलोय, भिलावा और शुद्ध वच्छनाग। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग ले। सबको एकत्र घोटकर गोमूत्र के साथ खरल करके १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

नोटः—प्रथम भिलावे को गोमूत्र मे घोटकर कण रहित कर लेना चाहिये और फिर उसमें अन्य औषधियां मिलानी चाहिये।)

मात्राः—१ से ४ गोली तक। अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अजीर्ण, गुल्म, विषूचिका, सर्पदंश और सन्निपात नष्ट होते है।

सं. वि.—ये गोलियां मृतप्राय गुल्म, विषूचिका, उपदंश और सन्निपात के रोगी को भी लाभ देती है। यह औषध विषनाशक, त्रिदोषशामक, आमनाशक और दोषानुलोमक है। इनका शास्त्रोक्त सेवन क्रम अजीर्ण और गुल्म में १, विषूचिका मे २, सर्पदंश में ३, सन्निपात मे ४ गोली देने का है।

आधुनिक मानव शरीर नित्य अनेक प्रकार की विषैली औषधों को सेवन करके विष सात्म्य हो गये है। अत मात्रा अधिक देने मे विशेष चिन्ता नहीं है। रोगी के बल और कालादि का ध्यान रखना आवश्यक है।

सन्धि वातारि गुटिका [भा. भै. र. ८१२९]

(र. चं. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बोल, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गूगल समान भाग लेकर सबको दूध के साथ खरल करके ३–३ रत्ती की गोलियां बनावे ।

मात्राः—१ से ४ गोली । दूध के साथ ।

उपयोग—इसके सेवन से समस्त वातव्याधियां और कष्टसाध्य सन्धिवात का नाश होता है ।

सं. वि.—यह औषध महावातरक्त, वातज रोग और सन्धिवातादि के लिये उपयोगी है । इसका कारण मुख्यतः गूगल और गूगल की वातनाशक, ऊष्ण, अग्निवर्द्धक, धात्वग्निवर्द्धक तथा विषनाशक क्रिया है ।

---

० संशमनी वटी [नं. १]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गुडूची घन ४ भाग, त्रिफला २ भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ भाग और लौहभस्म (नं. २) १ भाग लें । घन में अन्य द्रव्यों को भलीभान्ति मिश्रित करें और २–२ रत्ती की गोलियां बनालें ।

मात्राः—१ से ३ गोली तक । दूध या जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्रमेह, प्रदर, जीर्णज्वर, रक्तहीनता और दाह का नाश होता है ।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोषशामक, रक्तवर्द्धक और शोधक, दाहनाशक, मूत्रल, श्लेष्मकला शोथ, शैथिल्य, शोष और अयुक्त स्राव नाशक है ।

इसके सेवन से पाण्डु, प्रदर, प्रमेह, जीर्णज्वर, धातुक्षीणता, शरीर दाह और पित्त के कारण से होनेवाले शिरोरोग, नेत्रदाह, हस्तपाद दाह आदि रोगों का नाश होता है । इसका सेवन अन्त्रकला विकार जन्य अम्लपित्त में भी किया जाता है ।

संशमनी वटी (नं. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गुडूची घन ३ भाग, त्रिफला चूर्ण ३ भाग और स्वर्णमाक्षिकभस्म १ भाग लें । घन मे अन्य दो द्रव्यों को कूट २ कर मिश्रित करें अथवा घन तैयार होते हुये इन द्रव्यों को मिश्रित करके मिश्रण को कूट लें । तदनन्तर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले ।

मात्राः—१ से ४ गोली तक जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह औषध दाह, ज्वर, प्रदर, अम्लपित्त और प्रमेह आदि के लिये उपयुक्त है।

सं. वि.—अन्त्र के दोषों से उत्पन्न हुये आमज, वातज, कफज और पित्तज विकारों में यह सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होती है। यह पित्त का संशमन और वातदोष को नष्ट करती है। इसके सेवन से श्लेष्मकला के दूषित स्राव नष्ट होते है और रूक्षता मिटती है। यह शोधक संकोचक और रक्तदोष नाशक है।

सारिवादि वटी [भा. भै. र. ८२१२]

(भै. र. । कर्णरोग)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सारिवा, मुलैहठी, कूठ, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेसर, फूल प्रियंगु, नीलोत्पल, गिलोय, लौंग, हैड, बहेडा, आमला प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १—१ भाग तथा अभ्रकभस्म और लौहभस्म १४—१४ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर भांगरे के रस, अर्जुन के क्वाथ, जवाखार के पानी, मकोय के रस और गुञ्जा (चौटली) की जड के क्वाथ की १—१ भावना देकर ३—३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१—१ गोली। प्रातःकाल धारोष्ण दुग्ध या शतावर के रस या लाल चन्दन के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से समस्त कर्णरोग, २० प्रकार के प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, क्लीवता, जीर्णज्वर, अपस्मार, मद, अर्श, हृद्रोग, मदात्यय तथा समस्त स्त्री रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, दाहनाशक, वात—पित्तज शोथ नाशक, रक्तपरिभ्रमण सहायक, दुर्गन्धनाशक, वातनाडी दोष, शोष, क्षोभ, हृदवसाद, कला तथा मांसगत शोथ नाशक, मूत्रल, और पौष्टिक है।

वात—पित्तज विकारों के लिये इसका प्रयोग सर्वदा उपयुक्त है। यह पित्त का शीत गुण द्वारा और वात का स्निग्ध तथा गुरु गुण द्वारा संशमन करती है। यह रसायन औषधि रक्तवर्द्धक, पोषक, दाहनाशक और दोषानुलोमक है। इसके सेवन से वायु द्वारा शुष्क और पित्त द्वारा क्षुब्ध श्लेष्मकलायें सक्रिय, दोष रहित और पुष्ट हो जाती है। कण्ठ और कर्ण के आकाश युक्त भागो में रूक्ष गुण द्वारा प्रकुपित वायु, स्थान संश्रित होकर, नाना प्रकार के विकारों का उत्पादन करती है, जिससे कर्ण मे सतत कर्कश ध्वनि की विद्यमानता, कण्ठ में

शुष्कता और नासिका में रूक्षता पाइ जाती है। इसके सेवन से रक्त परिवर्द्धित होकर श्लेष्म-कला का पोषण करता है, वात प्रकोप के कारण को दूर करता है, पित्त द्वारा उत्पन्न हुये विकारों को शान्त करता है और आह्निक दोषों को नष्ट करके उनमें क्रिया शक्ति की वृद्धि करता है। इस प्रकार यह औषध कर्ण आदि अवयवों के विकार शान्त करती है और कोष्ठाश्रित वात-पित्त दोषों को दूर करके प्रमेह, श्वास, कास, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करती है।

सुदर्शनघन वटी

निर्माण विधानः—१ भाग सुदर्शन चूर्ण को १६ भाग पानी में पकावें जब १/४ अवशेष रहे तो उसे उतारकर छानलें और क्वाथ को फिर उबालने लगें। जब घन तैयार हो जाय तो उतारकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। जल के साथ।

प्रयोग—समस्त प्रकार के ज्वरो के लिये श्रेष्ठ औषध है। इसका सेवन करने से सन्ताप किञ्चित काल मे ही दूर होने लगता है। दीर्घकाल तक इसका सेवन करने से शरीरान्तर्गत किसी भी भाग में अज्ञातवास करते ज्वर का कारण नष्ट हो जाता है, और अति ऊष्णता द्वारा होनेवाले रक्तदोष, यकृत्-प्लीहा वृद्धि आदि रोग भी नष्ट हो जाते है।

सुदर्शनघन वटी का प्रयोग ज्वर की सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है। ज्वर रहितों को ज्वर के आक्रमण से बचाने के लिये, ज्वर पीडितो को ज्वर मुक्ति के लिये, जीर्ण ज्वर पीडितों को सम्पूर्ण धातुओं में से ज्वर मोक्षण के लिये और विषमज्वर से पीडितो को दोष वैषम्य का विनाश करने के लिये इस घन वटी का सामान्यतः सर्वदा ही प्रयोग किया जाता है।

सुधा वटी [भा. भै. र. ७९०१]

(वा. भ. । चि. अ. १० ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—थूहर का डण्डा २० तोले, सेंधानमक ५ तोले, संचल नमक ५ तोले, विडनमक ५ तोले, कटेली २० तोले, अर्कमूल ४ तोले और चित्रकमूल १० तोले लेकर सबको हांडी में बन्द करके जलावे और जलने पर उसे निकाल कर बारीक चूर्ण करके कटेली के रस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। बल, कालादि की अपेक्षा करते जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे भोजन के पश्चात् खाने से आहार शीघ्र पच जाता है। इसके अतिरिक्त यह कास, श्वास, अर्श, विषूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोगों को नष्ट करती है।

सं. वि.—यह क्षारीय औषध, उष्ण, तीक्ष्ण, वातानुलोमक, सारक, विषनाशक, आध्मान, अजीर्ण और वातकफज रोगों का नाश करनेवाली है। यह कृमिनाशक, आम और कफनाशक तथा उदर विकार प्रशमक है। वात प्रतिलोम के कारण होनेवाले हृदय, फुफ्फुस और आमाशय के विकारों को दूर करती है।

सूर्यचन्द्रप्रभा गुटिका [भा. भै. र. ८२७७]
(ग. नि. । गुटिका ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, चिरायता, कचूर, वच, वायविडङ्ग, चित्रकमूल, तालीसपत्र, भारङ्गी, पद्माक, जीरा, जवाखार, सज्जीखार, पीपलामूल, सेंधा नमक, संचल नमक, समुद्र लवण, तुम्बुरू, देवदारु, वच, चव्य, धनिया, गजपीपल, कुडे की छाल, अतीस, दन्तीमूल, कालीनिसोत, पोखरमूल और गिलोय, प्रत्येक का चूर्ण २–२ तोले; स्वर्णमाक्षिकभस्म और वंसलोचन १–१ तोला; अभ्रकभस्म १ तोला, लोहभस्म ४ तोले और शुद्ध गूगल ८ तोले लेकर सबको एकत्र मिलाकर कूट लें और ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

(**नोट**—गूगल में थोडा घी मिलाकर उसे पतला करले तदनन्तर उसमे समस्त चूर्ण मिलाकर कूटना चाहिये।)

मात्राः—१–१ गोली। नित्य प्रातः काल।

अनुपान—तक्र, मधु, दूध, वेर का रस, खांड का पानी (शर्बत), घी, गोमूत्र और खट्टे अनार का रस, इन में से किसी एक पदार्थ के साथ औषध का सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से श्वास, कास, शोष, अरुचि, पार्श्वपीडा, अर्श, कामला, प्रमेह, पाण्डु, हलीमक, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, शोष, संग्रहणी, यकृत्, प्लीहा, कृमिरोग, ग्रन्थि, भगन्दर, श्लीपद, गण्डमाला, व्रण, नाडीव्रण, अति स्थूलता, अति कृशता, विद्रधि, पीडिका, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, समस्त मुखरोग, रक्तपित्त, स्वरक्षय, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, पैत्तिकज्वर, द्वन्द्वज्वर, २० प्रकार के कफरोग एवं दोषज और ऋतु के प्रभाव से होनेवाले अन्य रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते है। यह रस मेधा, स्मृति, कान्ति, आरोग्य, आयु, कामशक्ति, इन्द्रियवल और अग्नि की वृद्धि तथा वायु का नाश करता है।

सं. वि.—यह योग वात, पित्त और कफनाशक है, यह तो इनके द्रव्यों पर साधारण दृष्टिपात करने से ही मालूम हो जाता है, तदपि इसकी त्रिदोष शामक विशिष्टताओं के लिए यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह कोष्ठशोधक, वातानुलोमक, दाहनाशक, विष नाशक, क्षोभ, कोथ और श्लेष्मकला शोथ नाशक है।

आमाशय ज्वरों का मूल है, कारण कि अग्नि का नाश होने पर ही सम्पूर्ण ज्वरों की उत्पत्ति होती है, जब कि यह औषध आमाशय के दोषों का मूलच्छेद करनेवाली है। इसके सम्पूर्ण द्रव्य ही दोषानुलोमक, वातकफ प्रशमक और अग्निवर्द्धक है। श्लेष्मकलाओं में दोषों का संचय और कालानुसार दूष्यो के साथ उनका सम्पर्क होकर प्रकोप होता है। प्रकुपित दोष कला द्वारा शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग में अपना प्रभाव जमा लेते हैं। इस औषध के सेवन से आमाशय, पक्वाशय और बृहदन्त्र की श्लेष्मकलायें दोष मुक्त होती है। यह औषध आम-पाचक, विकार प्रशमक, अग्निप्रज्वलक और उदर शोधक है।

भस्मों के योग से यह औषध रक्तवर्द्धक, व्रणनाशक, दाहनाशक, यकृत्-प्लीहा विकार नाशक और हृद्य तथा वर्ण्य हो जाती है। प्रत्येक ज्वर की पश्चातावस्था में इनका सेवन बहुत ही लाभकारी होता है।

---

८. सूर्यप्रभा वटी [भा. भै. र. ८२८२]

(र. सं. क. । उ. ५ । यो. र. । शूला., यो. त. । त. ४३; वृ. यो. त. । त. ९४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, वच, चीतामूल, हींग, जीरा, कालाजीरा और शुद्ध वच्छनाग, प्रत्येक द्रव्य का समान भाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलावे और मिश्रण को निम्बु और अदरक के रस की एक एक भावना देकर गोली बनाने योग्य लुग्दी तैयार होने पर १–१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१–१ गोली। प्रातःकाल मन्दोष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इनके सेवन से आठ प्रकार के शूल नष्ट होते हैं।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्नि संदीपक, वातानुलोमक, आक्षेपनाशक, नाडी विकार प्रशमक, आध्मान तथा उदर के अनेक वातज, कफज और आमजन्य शूलों का नाश करनेवाली है।

आधुनिक काल में अधिकतर खाद्य दोषो के कारण वातज और आमज उदर विकार मिलते है। इस प्रकार के सभी दोषो का "सूर्य प्रभावटी" नाश करती है। क्यो कि यह आमाशय के शैथिल्य को दूर करती है। यकृत् और प्लीहा की निष्क्रियता को मिटाती है और अन्त्रज अथवा अन्त्रक्रिया विकृति द्वारा क्षोभ से उत्पन्न हुये आमका शोषण करती है। अन्य औषधियो के समान न यह आदत डालनेवाली औषध है और नाही पश्चात् दोष इसके सेवन से रह जाते है।

सौभाग्य वटी

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध वच्छनाग, लौंग, त्रिकटु, कूठ, नागरमोथा, शुद्ध हींग, इलायची, जायफल, कायफल, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, सज्जीक्षार, यवक्षार, सैन्धव, संचलनमक, समुद्रलवण, विडनमक, उद्भिदनमक, प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे और तत्पश्चात् लौह, अभ्र और शुद्ध वच्छनाग के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करें। तदनन्तर अन्य द्रव्यो के मिश्रित चूर्ण को इस मिश्रण मे भलीभान्ति मिलाकर सम्पूर्ण औषध योग को खरल करके निर्गुण्डी, गूमा, अपामार्ग, अदरक और नागरवेल के पान में से प्रथम चार की ५–५ भावना और अन्तिम की ७ भावना देकर लुगदी तैयार होने पर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ३ गोली। मधु, अदरक के रस अथवा सूक्ष्म चूर्ण करके जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—प्रसूता के सम्पूर्ण विकारों के लिये उपयोगी है।

सं. वि.—यह औषध ज्वरघ्न, दाहनाशक, शोथनाशक, आध्मान नाशक, दोषानुलोमक, रक्तशोधक, रक्तरोधक, अतिसार नाशक, आम पाचक, विष नाशक, आक्षेप नाशक तथा अग्नि-वर्द्धक है। इसके सेवन से वात–पित्त और कफज तीनों ही दोषो से होनेवाले उदर विकार यथा–आमसंग्रह, अजीर्ण, आध्मान, शूल, शोथ, कोथ, क्षोभ, दाह, वैकारी श्लेष्मकला प्रवाह आदि रोग नष्ट होते है। यह आक्षेप नाशक तथा प्रसूता के विकारों को दूर करनेवाला औषध है। प्रसव पश्चात् मांसपेशी शैथिल्य और गर्भाशय शैथिल्य के कारण अन्त्रकला और अन्त्र शिथिल हो जाते है, जिससे आध्मान, आटोप, अतिसार, प्रवाहिका, प्रदर, कटिशूल, नाभिशूल, जरायुशूल, योनिशूल और गर्भाशय शोथ, अन्त्रशोथ आदि विकार उत्पन्न हो जाते है। इन सब रोगों को दूर करने के लिये सौभाग्य वटी का प्रयोग प्रशस्त होता है। प्रसूता के अन्य वातज–कफज दोष भी इसके सेवन से नष्ट होते है और अग्नि की वृद्धि होती है।

---

६ हिंग्वादि वटी [र. तं. सा.]

बनावट—भुनी हींग, अम्लवेत, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, सेंधा नमक, विड-नमक और काला नमक इन ९ औषधियों को समभाग मिलाकर बिजौरे निम्बु के रस में खरल करके २–२ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली। दिन मे २–३ बार मट्ठे के साथ सेवन करें अथवा १–१ गोली करके रस चूसते रहें।

उपयोग—इस गोली के उपयोग से वातशूल, कैसा भी हो, तत्काल वन्द हो जाता है। अफारा दूर होता है और पचनक्रिया प्रवल वनती है। [रस तन्त्रसार से उद्धृत]

हिंगुकर्पूर वटिका [सि. यो, सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—घी मे सेकीहुई हींग १ भाग, कर्पूर १ भाग और कस्तूरी १/८ भाग लेवे। सबको एकत्र घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां वना लेवें। कर्पूर और हींग को एकत्र घोटने से प्रायः गोली बनने योग्य हो जाता है, यदि न हो तो जरा शहद मिलालें।

मात्राः—१-१ गोली।

अनुपान—ठण्डे जल से १ गोली निगलवा दें। यदि रोगी गोली निगलने में समर्थ न हो तो गोली को शहद में या थोडे अदरक के रस में मिलाकर जीभ पर लगा देवे।

उपयोग—ज्वर मे सन्निपात के लक्षण देखते ही 'हिंगुकर्पूर' वटी देवे। इससे नाडी की गति सुधरती है और हाथ पांव कांपना, कपडा फेकना, उठ-बैठ करना, वकना आदि लक्षण कम होते है। श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) में इससे कफ पतला होकर निकलने लगता है। कफ की दुर्गन्धि नष्ट होती है और कफगत रोगजन्तु (कीटाणु) का नाश होता है। हृत्कम्प और दमे मे "हिंगुलकर्पूर वटी से लाभ होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

हिंगुल वटी [र. तं. सा.]

बनावट—शुद्ध सिंगरफ. सुपारी के फूल, जावित्री और अफीम २-२ तोले लेकर वारीक चूर्ण करे। फिर ४ वडे पक्के खट्टे अनार में गड्ढाकर औषधि भर ऊपर से वन्द करे। पश्चात् थोडा सूत लपेट, ऊपर वाटी के समान जल मे गूंदा हुवा गेहूं का आटा पाव इञ्च मुटाई जितना लगावें। फिर वाटी की रीति से सेककर खड्डे में दवा दें और ऊपर ३० सेर अरनो की निर्धूम कुटी हुई अग्नि डाले। खड्डे मे अनार की वाटी पर एक २ इञ्च धूल अथवा राख डालें। फिर ऊपर निर्धूम अग्नि की राख दवावें। दो दिन वाद अग्नि विल्कुल शान्त हो जाय तव निकालकर अनार सहित औषधि को खरल करके चने के बरावर गोलियां वनाले।

सूचना—अनार के ऊपर का आटा खड्डे मे दवा देना चाहिये।

खड्डे में अनार रखने के समय कटा हुवा भाग ऊपर की ओर रहना चाहिये, अन्यथा रस वाहर निकलकर औषधि का गुण वहुत कम हो जाता है।

मात्राः—१-१ गोली दिन में २ से ३ वार जल के साथ देवें।

उपयोग—यह वटी प्रवाहिका, उदरशूल, रक्तातिसार, पक्व अतिसार, संग्रहणी, हैजा, मन्दाग्नि, निर्बलता, वहुमूत्र, वमन, धातुक्षीणता और श्वास आदि का नाश करती है।

यह वटी स्तम्भक, पाचक और वातनाशक है। इससे लघु अन्त्र और बृहदन्त्र में रहे हुये अब्धातु शोषण, आम का पाचन, उदरवात का निस्सरण तथा अन्त्रक्षोभ का शमन होता है, जिससे पक्व अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, नूतनग्रहणी, अजीर्णजन्य विषूचिका तथा उदरशूल शमन होते है। पित्तप्रकृति और उदर मे वायु भरने के कारण मूत्र-शुद्धि न होती हो, वार वार थोडा थोडा मूत्र आता रहता हो, ऐसा वहुमूत्र इसके सेवन से दूर होता है।

हैजे में दूषित मल निकल आने के पश्चात् २-२ घण्टे पर १-१ गोली देते रहने से ६ घण्टों में रोग निवृत्त हो जाता है।

ऋतु परिवर्तन से उत्पन्न हुये अतिसार और ग्रहणी रोग कभी २ उग्र बन जाते है। इन विकारों में दिन मे ५०-१०० बार शौच जाना पडता है। बार २ थोडा २ शौच होना, उदर में अतिवल पूर्वक मरोडा आना, प्रवाहण करने पर कुछ आम आना या किञ्चित् रक्त मिश्रित थोडा मल गिरना, घवराहट, अति थकावट, वेचैनी, मुख में जल भर आना, क्वचित मन्द ज्वर रहना आदि लक्षण होने पर इस वटी का वहुत अच्छा उपयोग होता है।

रक्तातिसार होने पर उदर मे मरोडा आकर रक्तमिश्रित मल गिरना, गुदा द्वार से कांच निकलना, गुदाद्वार में झनझनाहट, मूत्र थोडा और लाल हो जाना, नाडी कभी तेज और कभी क्षीण हो जाना, दस्त के समय किंछना आदि लक्षण होते है। इस पर यह रसायन उपयोगी है।

सूचना—जव तक पुराना दूषित मल निकलता हो, तब तक यह या अन्य अफीम मिश्रित औषधि नहीं देनी चाहिये। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

क्षार गुटिका (क्षार गुड) [भा. भै. र. ८७२०]

(ग. नि. । गुटिका. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—दशमूल की प्रत्येक औषध, निसोत, दन्तीमूल, पाठा, वच, आस्फोता (कोयल), खरैटी, रास्ना, कलौंजी, चीतामूल और आककी जड प्रत्येक ५०-५० तोले लेकर सवको जलादें (१ घडे यें भरें, घडे का मुंह भलीप्रकार बन्द करदें जिससें कि वायु अन्दर प्रविष्ट न होने पावें।) जब द्रव्यों की भस्म भली प्रकार हो जाय तव भस्म को निकाल कर उसे पानी मे घोल ले। फिर उसे (क्षार निर्माण विधि से) छानलें। जब स्वच्छ पानी निकल आवे तो उसे पकाकर कुछ गाढा करें और उसमें ६। सेर पुराना गुड मिलाकर पुनः पकावे। जब पाक तैयार हो जाय तो उसमें निम्नलिखित औषधियों का चूर्ण मिलावें:- दशमूल, जवाखार, सज्जीक्षार, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, हैड और चीतामूल इनमें से

प्रत्येक का चूर्ण ५-५ तोले तथा हींग, अम्लवेतस और भिलावा १।-१। तोला । सबको भलीभान्ति पाक के साथ मिश्रित करके ४-४ रत्ती की गोलियां बनावे और छाया में सुखाकर प्रयोग में लावें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक । पानी के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शरीर की कृशता, निर्वलता, अग्निमान्द्य, कफ, अरुचि, गुल्म, कण्ठ और छाती में स्थित कफ, कुष्ठ, प्रमेह, वातरोग, प्लीहा और यकृत् वृद्धि का नाश होता है तथा आहार शीघ्र पच जाता है।

सं. वि.—क्षार छेदन, भेदन, लेखन, त्रिदोषघ्न और सौम्य होते हुये भी अग्निवर्द्धक, पाचक और वातानुलोमक होता है।

यह औषध आग्नेय गुण विशिष्ट औषधों के योग से बनी हुई ऊष्ण, तीक्ष्ण, पाचन, शोषण, स्तम्भन, लेखन तथा कृमि, आम, कफ, कुष्ठ, विष, मेद आदि को नष्ट करनेवाली वायु को हरनेवाली, यकृत्-प्लीहा के दोषों को मिटानेवाली और आम तथा वातज अन्य दोषों के कारण उत्पन्न हुये शूल, अरुचि, प्रमेह आदि रोगों का नाश करनेवाली है।

भैषज्य-सार-संग्रह

पञ्चम प्रकरण

गुग्गुल

जिन औषधों का प्रधान उपादान गुग्गुल होती है, वे गुग्गुल कहलाती है। इन औषधियों में रस, भस्म, काष्ठौषध, क्षार, घृत तथा अन्य भी आवश्यकीय द्रव्य यथापाठ मिश्रित किये जाते है—परन्तु मुख्य क्रिया गुग्गुल पर ही आश्रित है, अतः उपादान प्रधानता के कारण इन औषधियों का नाम गुग्गुल रक्खा गया है।

कौशिक वृक्ष की छाल से निकलता हुवा गोंद गुग्गुल कहलाता है। गुग्गुल के तीन भेद है (१) साधारण, (२) कण और (३) भूमिज। भावमिश्र आदि इसके ५ भेद बताते है (१) महिषाक्ष, (२) महानील, (३) कुमुद, (४) पद्म और (५) हिरण्य। इनमें भ्रमर के सदृश कृष्णवर्ण गुग्गुल महिषाक्ष, गहरे नीलवर्णवाली महानील, कुमुद की सी आभावाली कुमुद, माणिक्य के से सौन्दर्यवाली पद्म और सुवर्ण की सी आभावाली हिरण्य कहलाती है। इनमें से प्रथम दो हाथियों के काम में आती है। कुमुद घोडों के काम में, पद्म आरोग्य में, और हिरण्य मनुष्यों के रोगो मे काम आती है।

प्रयोग मे लाने से पूर्व गुग्गुल का शोधन रसो के समान ही आवश्यक है। छने हुये उष्ण दशमूल क्वाथ में गुग्गुल को डालकर, अच्छी प्रकार हिलाकर, क्वाथ के शीतल होने पर उसे वस्त्र से छान कर, सुखाकर और घी डालकर घोटें और प्रयोग मे लावें।

गुग्गुल जराव्याधि नाशक होने के कारण रसायन है। यह कफ, वात, कास, कृमि, वातोदर, प्लीहा, शोथ और अर्श नाशक है तथा वीर्य मे उष्ण और रस में कटु रस युक्त है। गुग्गुल का पाक गुड के समान ही किया जाता है।

गुग्गुल वाली औषधियों को बनाने का सर्व साधारण विधान यह है कि परिशोधित गुग्गुल में अन्य सब द्रव्यों को प्रथम हस्त मन्थन द्वारा मिश्रित किया जाता है और तत्पश्चात् इसे एक भारी काष्ठ पृष्ठ पर रखकर मूसल से पीट २ कर भलीभान्ति मिश्रित करते है और तैयार होने पर गोलियां बना लेते हैं अथवा यथेच्छ रूप देकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखते है।

अमृतादि गुग्गुल [भा. भै. र. १३५]

(भा. प्र. । वा. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गिलोय १ सेर, गूगल १/२ सेर और हैड, वहेडा, आमला, प्रत्येक १/२–१/२ सेर लेकर सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर पानी मे पकावे। इस क्वाथ का चतुर्थ भाग (८ सेर) अवशिष्ट रहने पर उतार कर छान ले और क्वाथ को फिर उबालने रख दें। जब तक उसमे घनता न आ जाय तब तक पकावे। इस घन को काष्ठ पीठ पर रखले। तत्पश्चात् दन्ती, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी प्रत्येक २॥–२॥ तोला और निसोत १। तोले ले, इनका मिश्रित कपडछन सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उपरोक्त गरम २ घन मे मिश्रित करे, तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। गरम दूध अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, मन्दाग्नि, दुष्ट व्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, आढ्यवात और सूजन आदि का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध शरीर की रूक्षता का नाश करके मृदुता उत्पन्न करनेवाली, रक्त-शोधक, रक्तवर्द्धक, आमनाशक, पूयनाशक, शोथनाशक, सहज रेचक तथा वातनाडी जन्य और वातजन्य विकारो को नाश करनेवाली है। इसके सेवन से ग्रन्थिशोथ, विषज अथवा पूयज मूत्रदोष, पुरुषत्व-ग्रन्थि-शोथ और वात वृद्धि के कारण उत्पन्न हुवा शरीर का शोथ नष्ट होता है। यह वातप्रधान रक्त दोषों में हितकर है।

———o———

आभा गुग्गुल [भा. भै. र. ४०२]

(च. द. । भग्न.)

द्रव्य और निर्माण विधि—कीकर (बबूल), त्रिफला और त्रिकुटा सबको समान भाग लेकर एकत्रित सूक्ष्म चूर्ण करले और शुद्ध गूगल इस मिश्रण के बराबर लें। गुग्गुल मे चूर्ण को विधान पूर्वक मिश्रित करे और ४–४ रत्ती की गोलियां बनाकर उपयोग में लावे।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। ऊष्ण जल अथवा दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सन्धिभग्न को आराम होता है।

सं. वि.—यह औषध भग्नसंन्धानक, ऊष्ण, तीक्ष्ण, कटु, आम–कफ–वात नाशक और शक्तिवर्द्धक है। इसका प्रयोग अन्तर और बाह्य दोनो ही प्रकार से किया जाता है। आन्तरिक प्रयोग मे यह ऊष्ण जल या दूध के साथ खाई जाती है और बाह्य प्रयोग के लिये इसको घृत के साथ घोटकर लेप करते है। टूटी हुई सन्धि पर भग्न के स्थान को भलिभान्ति निश्चितकर

इसका प्रलेप करदे और तत्पश्चात् उस पर रुई लगाकर, यदि सन्धि को सीधा जोडना हो तो उसी प्रकार लकडी लगाकर, पट्टी बांध दे। यदि इसकी क्रिया शीघ्र भग्नसंधानक होती माळूम पडे तो इसके साथ थोडी रुई और गुड भी कूट लें और तत्पश्चात् रोटी के समान थेपकर सन्धि के अनुसार आकार दे और उपरोक्त विधि से सन्धि पर बांध दे।

काञ्चनार गुग्गुल [भा. भै. र. ७७२]
(बृ. नि. र. । गण्डमाला)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—काचनार की छाल ५० तोला, त्रिफला ३० तोला, त्रिकुटा १५ तोला, वरने की छाल ५ तोला और इलायची, दालचीनी, तेजपात, प्रत्येक १।–१। तोला ले सबको एकत्र करके चूर्ण करे और सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर गूगल ले। गूगल में चूर्ण को मिश्रित करके एकीकरण पर्यन्त कूटे और ४–४ रत्ती की गोलियां बनाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। मुण्डी, खैरसार, हैड के क्वाथ या गरम जल के साथ। प्रातःकाल सेवन करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गण्डमाला, अपचि, अर्बुद, ग्रन्थी, व्रण, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर का नाश होता है।

सं. वि.—कांचनार कषाय रसप्रधान, संग्रहणी दोषनाशक, व्रणरोपक, दीपक, कफ-वातघ्न और मूत्रकृच्छ्रघ्न है। इस अकेले के सेवन से कृमि, कुष्ट, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रण का नाश होता है। त्रिफला त्रिदोष शामक और त्रिकटु वातकफघ्न है। वरुणा शोथघ्न, मूत्रल और आन्तरिक व्रणशोथ को नाश करनेवाली है। गुग्गुल रसायन, कटु, तिक्त, ऊष्ण, कफ–वातनाशक, कृमि, शोथ और अर्श नाशक है। अतः यह औषध रक्तशोधक, मेदनाशक, ग्रन्थिशोथ नाशक और कफ–पित्तजन्य व्रण, अपचि, गन्डमाला, कुष्ट, भगन्दर आदि रोगों को नाश करनेवाली है।

गण्डमाला, अपचि और अर्बुद मे इसका प्रयोग अधिकतर किया जाता है और लगभग सर्वत्र ही लाभप्रद होता है। दीर्घकाल तक इसका सेवन दोष के अणु मात्र तक का भी नाश कर देता है।

कैशोर गुग्गुल [भा. भै. र. ७७३]
(भै. र. । वा. र., बृ. यो. त. । त. ९१)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—१ तोले माहिष गुग्गुल को पोटली में बांधलें और १–१ सेर हैड, बहेडा, आमला और गिलोय लेकर गूगल सहित सबको २४ सेर पानी में पकावे। जब आधा पानी शेष रह जाय तब उसे उतारकर छान ले और क्वाथ को फिर

पकावें । पकाते समय एक करछी से चलाते जांय । जब यह क्वाथ गाढा घनरूप प्राप्त करले तब इसे उतार ले और लगभग ठण्डा होने पर इसमें त्रिफले का चूर्ण २॥ तोला, त्रिकुटे का चूर्ण ७॥ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण २॥ तोला, निसोत और दन्तीमूल का चूर्ण १।-१। तोला, गिलोय का चूर्ण ४ तोला और घी ४० तोला मिश्रित करें । भलीभान्ति मिल जाने पर ४-४ रत्तीकी गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से १६ गोली तक । यूष, दूध या सुगन्धित जलके साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से एक दोषज, द्विदोषज और पुराना शुष्क अथवा स्रावयुक्त, स्फुटित और जानुओं तक फैला हुवा वातरक्त, व्रण, कुष्ट, गुल्म, शोथ, उदररोग, पाण्डु, प्रमेहपीडिका आदि रोगो का नाश होता है ।

इसके निरन्तर सेवन से जरा और समस्त रोग नष्ट होकर किशोरावस्था प्राप्त होती है।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, रक्तशोधक, जन्तुघ्न, वात-कफ नाशक, ग्रन्थिशोथ, ग्रन्थिविकार, ग्रन्थि दूषित प्रवाह, श्लेष्मकला व्रण, शोथ, कोथ, दाह, शोष और पूयज, विषज और रक्तज विकारों को नष्ट करती है । यह उदरस्थ विकारो के लिये अग्निवर्द्धक, विबन्ध नाशक, आमपाचक और गुल्मनाशक होने के कारण श्रेष्ठ औषध है । अन्त्रदोष दूर होने से दोष और दूष्यो में विकृति की सम्भावना नष्ट हो जाती है । यदि विकार होता है तो वह धीरे २ इस प्रभावशाली औषध के रक्त द्वारा प्रसार से मिट जाता है । वातरक्त, कुष्ठ और दुष्ट पित्त और वात से होनेवाले विकारो को नष्ट करने के लिये यह श्रेष्ठ औषध है ।

गोक्षुरादि गुग्गुल [भा. भै. र. १३२७]

(बृ. नि. र. । प्रमेह.; शा. सं. । खं. २ अ. ७; यो. चि. । मिश्र. अ. ७; बृ. र.। मूत्रकृ.; ग. नि. । प्र., बृ. यो. त. । त. १००, बृ. मा. । प्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—२८ पल (१४० तोले) गोखरू को ६ गुने पानी, अर्थात् १६८ पल (१०॥ सेर) मे पकाकर, क्वाथ जब आधा रह जाय तब उतारकर छान ले । इस क्वाथ में ७ पल (३५ तोले) शुद्ध गूगल मिलाकर पकावें, जब घन रूप प्राप्त करने लगे तब उतार कर उसमे त्रिकुटा, त्रिफला और मोथा सब का मिश्रित चूर्ण ७ पल (३५ तोले) अर्थात् प्रत्येक द्रव्य को ५-५ तोले मिलाकर भलीभान्ति कूटकर तैयार होने पर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१ से १६ गोली तक अथवा रोग बलानुसार । दूध, जल अथवा गोखरू के क्वाथ के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, वातरक्त, वातव्याधि, शुक्रदोष और अश्मरी रोग का नाश होता है।

सं. वि.—गोखरू मूत्रल, कफ-पित्तशामक, रसायन और प्रमेह नाशक द्रव्य है। यह औषध वात द्वारा उत्पन्न हुए मूत्र विकारों को लिये बहुत उपयोगी है, कारण कि यह मूत्रल और वातघ्न है। वस्ति में अपानवायु के दोष से रूक्षता, निष्क्रियता, शुष्कता आदि आ जाते हैं जिससे प्रमेह, वस्तिशोथ, वस्तिदाह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि रोगो की उत्पत्ति होती है।

जैसे यह वातघ्न है, वैसे ही यह वात–पित्तघ्न भी है। रक्त के दोष को दूर करनेवाली होने के कारण यह मूत्रदाह आदि विकारों को भी शान्त करती है। इसका दीर्घकाल तक सेवन करने से अश्मरी का नाश होता है।

त्रयोदशाङ्ग गुग्गुल [भा. भै. र. २४१९]

(भै. र., व. से.; वै. र.; भा. प्र.; ग. नि. । खं. २; बृ. मा.; र. र.; च. द. । वा. व्या.; बृ. यो. त. । त. ९०; यो. त. । त. ४०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—किकरौली (कीकर के फल), असगन्ध, हाऊवेर, गिलोय, शतावर, गोखरू, विधारा, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ का चूर्ण प्रत्येक द्रव्य समान भाग लें और सब का मिश्रित चूर्ण करलें। इस चूर्ण के समान भाग गूगल लें और गूगल से आधा भाग घी ले। प्रथम घृत और गूगल को भलीभान्ति आलोडित करें तत्पश्चात् उपरोक्त चूर्ण को उसमे कूट २ कर मिला लें। तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ८ गोली तक। यूष, मद्य अथवा उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कटिग्रह, गृध्रसी, हनुग्रह, बाहु, पृष्ठ, जानु, पैर, सन्धि, अस्थि, मज्जा और स्नायुगत वायु का नाश होता है तथा कुष्ट, वात–कफज रोग, हृद्ग्रह, योनिदोष, खञ्जवात और अस्थिभग्न आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, आमशोषक, शरीरपोषक, त्रिदोषनाशक, पाचक, वातानुलोमक, शोथनाशक, शिरा, धमनी, स्नायु, कण्डरा, मांसपेशी और लसिकाओं का पोषण करनेवाली है तथा तत्तत्स्थानों में प्रकुपित वात द्वारा होनेवाले विकारों को नष्ट करती है। यह समस्त सन्धियो की श्लेष्मकलाओ में से वात विकारों को नष्ट करके उन्हें सक्रिय करती है। अतः सम्पूर्ण सन्धियो के विकार इसके सेवन से दूर होते है। यह मर्म स्थानों में

एकत्रित सम्मूर्च्छित वात को निकाल देती है, अतः शिरा, धमनी, हृदय आदियों में होनेवाले अवरोध, संकोच, प्रसार आदि विकार इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

त्रिफला गुग्गुल [भा. भै. र. २४२३]

(शा. ध. । खं. २ अ. ७, यो. चि. म. । अ. ७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिफला चूर्ण ३ पल (१५ तोले), पीपल चूर्ण १ पल और गूगल ५ पल लेकर सबको एकत्र कूटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। त्रिफला क्वाथ, गोमूत्र या उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से भगन्दर, गुल्म, शोथ और अर्शरोग नष्ट होते हैं।

नोटः—योग रत्नाकर में यही प्रयोग अन्तर्विद्रधि विकारों में लिखा है। उनमें पीपल २ पल लिखी है। गुणों का वर्णन करते लिखा है कि इसके सेवन से अत्यन्त पूयवाली पक्व विद्रधि, नासूर और गण्डमाला नष्ट होती है।

पथ्य—घृत युक्त आहार।

सं. वि.—यह औषध अन्त्रशोधक, वातानुलोमक और जन्तुघ्न है। इसके सेवन से वात द्वारा उत्पन्न हुये अन्त्र के विकार यथा—गुल्म, शोथ, अर्श, आमसंग्रह और अन्त्र में दूषित श्लेष्मकलाओं के विकार द्वारा उत्पन्न हुवा कोथ नष्ट होता है।

दशाङ्ग गुग्गुल [भा. भै र. ३०११]

(भा. प्र । खं. २ मेदो., वं. से. मेदो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, हैड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और वायविडङ्ग का चूर्ण समान भाग तथा शुद्ध गूगल सबके बराबर लेकर सबको एकत्र मिलाकर उसमें थोडा २ घी डालकर, कूटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह गुग्गुल मेद रोग, कफजव्याधि और आमवात को नष्ट करती है।

सं. वि.—यह गुग्गुल आमपाचक, वातानुलोमक, सहज रेचक, कृमिनाशक और कफ-मेद-शोथ दाह तथा वातज आन्तरिक विकारों का नाश करनेवाली है। इसके सेवन से आमवात, मेद, ग्रन्थिशोथ और कफज विकार नष्ट होते हैं।

---

० निम्बादि गुग्गुल [भा. भै. र. ३४६१]
(वृ. नि. र. । शिरोरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीम की छाल, हेड, बहेडा, आमला, वासा और कडवापटोल १–१ भाग लेकर सबको कूटकर ४ गुने पानी मे पकावे। जब चौथा भाग पानी शेप रहे तब उसे उतारकर छान ले और उपरोक्त द्रव्यो के मिश्रण के समान शुद्ध गूगल को क्वाथ मे मिलाकर फिर पकाने लगें। जब गाढा हो जाय तब उसे उतारकर कूटकर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ८ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

पथ्य—इसके सेवन से भयङ्कर वातकफज शिरोरोग नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—वायु रूक्ष और शीत गुणों से प्रकुपित होती है और कफ शीत स्निग्ध गुणो से। शीत दोनो ही में रहता है। गूगल कटु और ऊष्ण है। अतः यह कफ और वातनाशक है। निम्बादि गुग्गुल रक्तशोधक, दाहनाशक, मूत्रल, सहज रेचक और कफ–वात नाशक है। इसके सेवन से वात और कफ द्वारा होनेवाला शिरोरोग नष्ट होता है। आधुनिक युग की विकृतियां वातावरण के अधिक दूषित होने के कारण सहज ही बढ जाती है, वातकफज शिरोरोग सूक्ष्म काल मे ही पूतिनस्य, वातज शिरोरोग और अक्षिरोग में परिणत हो जाता है। इस विकार मे निम्बादि गुग्गुल उतनी ही लाभप्रद सिद्ध होती है जितनी कि वातकफज शिरोरोग मे।

पञ्चतिक्तघृत गुग्गुल [भा. भै. र. ४००९]
(भै. र., च. द. । कुष्ठा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीमकी छाल, गिलोय, वासा, पटोल और कटेली प्रत्येक १०–१० पल (५०–५० तोले) लेकर एकत्र अधकुटा करें और ३२ सेर पानी मे पकावे। जब ४ सेर पानी शेप रह जाय तब उसे छानले और एक पोटली मे २५ तोले शुद्ध गूगल बांधकर इस क्वाथ मे डाल दे और क्वाथ को उबालते रखते हुये उसमे २ सेर घी और निम्नलिखित औषधियों का कल्क मिलावे। जब जल निःशेष रह जाय तो घृत को छान ले और उसमे पोटलीवाला गूगल भलीभान्ति मिश्रित करें और शीशी मे भरकर रखलें।

कल्क द्रव्य—पाठा, वायविडङ्ग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सोठ, हल्दी, सोया, चव, कूठ, मालकंगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ, जीरा, चीता, कुटकी, शुद्ध भिलावा, वच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, हैड, बहेडा, आमला और अजवायन प्रत्येक १।–१। तोला।

मात्राः—१/४ तोले से १ तोले तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सन्धि, अस्थि और मज्जागत, कष्टसाध्य प्रबल वायु, कुष्ठ, नाडीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्वजत्रुगत समस्त रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, कास, पीनस, शोष, हृद्रोग, पाण्डु, गलविद्रधि और वातरक्त का नाश होता है।

सं. वि.—यह गुग्गुल सस्नेह, ऊष्ण, वातानुलोमक और वातशामक है। वायु रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, खर गुणवाला है। वात द्वारा उत्पन्न होनेवाले रोग मे इसी प्रकार के लक्षण होते हैं। वायु सर्व शरीरचारी है। इन गुणों से वह सभी स्थानों को दूषित कर सकता है। अस्थि मे प्रकुपित हो तो अस्थिवात, जिससे अस्थि मे शोथ शरीर की कृशता और अस्थिवेदना आदि उत्पन्न होने लगते है। मज्जा मे प्रकुपित हो तो विषाद, मस्तिष्क क्षीणता, शोष और क्षयादि उत्पन्न कर सकता है। रस, रक्त, वीर्य आदि में प्रकुपित हो तो उनके उत्पादक यन्त्रों का नाश करता है। यथा रस मे प्रकुपित होने पर सम्पूर्ण पाचन संस्थान को दूषित करता है, अर्श, भगन्दर आदि की उत्पत्ति कर देता है। यदि रक्त में प्रकुपित हो तो हृदय, फुफ्फुस, श्वास प्रणाली, कास नलिका आदि का संकोच, आक्षेप, श्वास, कास, हृद्रोग, पीनस आदि उत्पन्न कर देता है। मेद में प्रकुपित हो तो ग्रन्थि, अर्बुद, पाण्डु, विद्रधि इत्यादि उत्पन्न करता है। यह औषध वात के उपरोक्त सभी गुणों के विरुद्ध क्रिया करती है अतः जिन २ स्थानों मे वात उपरोक्त गुणों द्वारा प्रकुपित हो और रोग वात विशिष्ट हों तो इसके सेवन से उन रोगों का नाश हो जाता है।

पञ्चामृतलौह गुग्गुल [भा. भै. र. ४२९९]

(भै. र. । परि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चान्दीभस्म, अभ्रकभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ५–५ तोले, लोहभस्म १० तोले और शुद्ध गूगल ३५ तोले लेकर सबको लोहे के खरल मे लोहे की मूसली से जरा जरा सा सरसों का तेल लगा २ कर २ प्रहर तक घोंटें और फिर (शास्त्रोक्त १–१ मासे) २–२ रत्ती की गोलियां बनाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—२ से ६ गोली तक। गरम दूध या ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से मस्तिष्करोग, स्नायुरोग और वातव्याधि आदि समस्त रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध रक्तशोधक, वातपित्त और कफ दोष नाशक, तन्तुगत तथा स्नायुगत दोष नाशक, पुष्टिकर, मस्तिष्क विकार नाशक, रक्तचाप वृद्धि नाशक, मस्तिष्क पोषक, सन्धिबन्धन विकार नाशक तथा वायु द्वारा होनेवाले अन्य सभी विकारो पर लाभप्रद है।

पथ्यादि गुग्गुल [भा. भै. र. ४०११]

(वं. से.; वै. र.; भा. प्र.; वृ. नि. र. । वा. व्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—हैड १००, बहेडे २०० और आमले ४०० तथा गूगल १ सेर (८० तोले) लेकर गूगल के अतिरिक्त अन्य सब द्रव्यो को अधकुटा करें और ३२ सेर पानी मे भिगो दें। २४ घण्टे बाद इसे पकाकर आधा पानी शेष रहने पर छानले। इस छने हुये क्वाथ को दुबारा लोहे की कढाई मे पकावे और इस बार इसमे गूगल भी डाल दें। जब पानी गाढा हो जाय तब उसे आग से नीचे उतारकर उसमे वायविडङ्ग, दन्ती, हैड, बहेडा, आमला, गिलोय, पीपल, निसोत, सोठ और कालीमिर्च प्रत्येक का २॥–२॥ तोले सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करें, भलीभान्ति तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।
मात्राः—१ से ६ गोली। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से गृध्रसी, नवीन खञ्जवात, कष्टसाध्य प्लीहा, उदर रोग, गुल्म, पाण्डु, खुजली, छर्दि और वातरक्त आदि रोग नष्ट होते है, शरीर मे हाथी के समान बल आ जाता है और गति घोडे के समान तीव्र हो जाती है।

यह आयुष्यवर्द्धक, पौष्टिक और विषघ्न है। दृष्टि शक्ति को बढाती है, पुष्टिकर और विषनाशक है तथा घावों के भरने में विशेष उपयोगी है।

इसके सेवन काल मे शीतल जल पीना और शीतल आहार खाना चाहिये।

सं. वि.—यह औषध रसायन, पौष्टिक, चक्षुष्य, विषघ्न, आयुष्य, संधानक, जन्तुघ्न, व्रणरोपक, शक्तिवर्द्धक और वायु द्वारा उत्पन्न हुये नाडी, ग्रन्थि, श्लेष्मकला तथा उदर के अनन्य विभागो मे प्रकुपित हुये वायु के विकारो को नष्ट करती है।

पक्षाघातारि गुग्गुल [भा. भै. र. ४००८]

(वृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपलामूल, सोठ, चव, चीता, पाठा, वायविडङ्ग, इन्द्रजौ, हींग, वच, भारङ्गी, रेणुका, गजपीपल, अतीस, सरसों, दोनों जीरे और अजमोद प्रत्येक १–१ भाग तथा त्रिफला इन सबसे २ गुना लेकर चूर्ण बनावे। इस समस्त चूर्ण

के बराबर गूगल ले, चूर्ण को गूगल में मिलाते थोडा २ घी डालते और कूटते जांय इस प्रकार दोनों को मिश्रित करदें। तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ८ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से पक्षाघात नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, वातानुलोमक, आक्षेपनाशक, आमशोषक, अग्नि-वर्द्धक, शीतनाशक, सहज रेचक, वातनाडी–तन्तु पोषक और शिरा, धमनी तथा वातनाडियों के विकारों को दूर करके कण्डरा, मांसपेशी और स्नायुओं को पुष्ट करती है।

पक्षाघात के कारणों में वायु का स्थान प्रधान है। जर्जरित शरीर के तन्तुओं में क्षीणता आने पर उनका पोषण नहीं होता, एक तो तन्तुस्वयं पोषण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं रखते और दूसरे हृदय आदि रक्तवाहक यन्त्र भी यथेच्छ क्रिया करके रक्त को प्रमाण मे सर्वत्र नहीं पहुंचाते। इससे सम्पूर्ण नाडी केन्द्रों मे वायु की वृद्धि होती चली जाती है और साधारण प्रकोप के कारण से प्रकुपित होकर वायु पक्षाघात आदि रोगों की उत्पत्ति कर देता है और रक्ताभाव और नाडी तथा रक्त परिचालक यन्त्रो की विकृति इस रोग की उत्पत्ति में विशेष सहायक होते है। पाक्षाघातारि गुग्गुल तन्तु, स्नायु, शिरा, धमनी, मस्तिष्क, हृदय और अन्य रक्त संवाहक अङ्गो को पुष्ट करके शरीर को दोषों से मुक्त करती है और वर्द्धित रक्तचाप का संशमन करके धीरे २ विकृत अङ्गों को स्वास्थ्य प्रदान करती है।

पुनर्नवादि गुग्गुल [भा. भै. र. ४०१३]
(भै. र. । शोथा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पुनर्नवा (सांठी), देवदारु, हर्र और गिलोय का चूर्ण १–१ भाग तथा शुद्ध गूगल सबके बराबर लेकर सबको एकत्र मिश्रित करें तथा थोडा सा अरण्ड तेल डालकर कूटें और तैयार हो जाने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। गोमूत्र अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से त्वग्दोष, शोथोदर, पाण्डु, स्थौल्य, कफप्रसेक तथा उर्ध्व जत्रुगत कफज रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध मूत्रल, सहज रेचक, शोथनाशक, कफ–पित्त–वात नाशक, रक्तशोधक, श्लेष्मकला शोथ, कफ, विष और क्षार संचय नाशक तथा कफज पाण्डु, स्थौल्य, वृक्क संन्यास जन्य शोथ, हृदयजन्य शोथ, यकृत् विकार जन्य शोथ तथा वृक्क और यकृत् विकारों को शान्त करती है।

महायोगराज गुग्गुल [भा. भै. र. ५७८०]

(शा. ध. । म. खं. अ. २, वृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोठ, पीपलामूल, पीपल, चव, चीता, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, सफेद और काला जीरा, रेणुका, इन्द्रजौ पाठा, वायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारङ्गी, वच और मूर्वा प्रत्येक का १—१ भाग चूर्ण, त्रिफला ४० भाग, शुद्ध गूगल ६० भाग, वंगभस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूर और रससिन्दूर प्रत्येक १६—१६ भाग लेकर गूगल के साथ प्रथम काष्ठादि चूर्णों को कूट २ कर भलीप्रकार मिश्रित करलें और आवश्यकतानुसार पानी डालते जांय। जब चूर्ण मिश्रित यह गूगल गाढा हो जाय तव उसमें भस्मे मिश्रित करलें और फिर कूटे। तैयार होने पर १—१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से १६ गोली तक।

अनुपानः—साधारणतः गरम दूध या गरम पानी के साथ।

(१) वातजरोगो में रास्नादि क्वाथ के साथ।
(२) पित्तजरोगों मे काकोल्यादि गण के क्वाथ के साथ।
(३) कफजरोगों मे आरग्वधादि गण के क्वाथ के साथ।
(४) प्रमेह मे दारुहल्दी के क्वाथ के साथ।
(५) पाण्डु में गोमूत्र के साथ।
(६) मेद नाश के लिये मधु के साथ।
(७) कुष्ट मे नीम के क्वाथ के साथ।
(८) वातरक्त में गिलोय के क्वाथ के साथ।
(९) शोथ और शूल मे पीपल के क्वाथ के साथ।
(१०) आखु [चूहा] विष मे पाढल के क्वाथ के साथ।
(११) वातज नेत्ररोगों मे त्रिफला के क्वाथ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से समस्त वातज रोग, कुष्ट, अर्श, ग्रहणी विकार, प्रमेह, वातरक्त, नाभीशूल, भगन्दर, उदावर्त, क्षय, गुल्म, अपस्मार, उरोग्रह, मन्दाग्नि, श्वास, कास, अरुचि और रजो दोष नष्ट होते है।

इसके सेवन से पुरुषो में सन्तान उत्पादन शक्ति उत्पन्न होती है और स्त्रियो का वन्ध्यत्व नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोष नाशक और रसायन है। पाचक, आमशोषक, वातानु-

लोमक, आक्षेपनाशक और उदर तथा शरीर के अन्य विभागो में रूक्ष शीतादि गुण से प्रकुपित वायु द्वारा होनेवाले अनेक विकारो को नष्ट करती है। अन्त्र शैथिल्य, ग्रहणीगत वात प्रकोप, महाधमनीगत वात प्रकोप, हृद्गतवात, वस्तिगतवात तथा अन्य अङ्ग प्रत्यङ्गों में उत्पन्न हुये वात दोषों के लिये यह प्रशस्त औषध है।

योगराज गुग्गुल [भा. भै. र. ५७७७]

(ग नि. । गु. ४; र. र. स. । अ. २१; वै. म. र. । अ. १६; यो. चि. म. । अ. ७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोठ, पाठा, बायविडङ्ग, इन्द्रजौ, हींग, भारङ्गी, वच, सरसो, अतीस, जीरा, कालाजीरा, रेणुका, गजपीपल, अजमोद, त्रिकटु और मूर्वा प्रत्येक १–१ भाग, त्रिफला २ गुना (४० भाग) और शुद्ध गूगल ६० भाग लेकर गूगल मे आवश्यकतानुसार मधु और थोडा २ उपरोक्त द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर कूटें। जब सम्पूर्ण चूर्ण भलीभान्ति मिश्रित हो जाय तब ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अर्श, वातज गुल्म, पाण्डु, अरुचि, नाभिशूल, उदावर्त, प्रमेह, वातरक्त, कुष्ट, क्षय, अपस्मार, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, अग्निमान्द्य, श्वास, खांसी, भगन्दर और शुक्र दोष नष्ट होते हैं। इस पर खान पान और मैथुन आदि का कोई विशेष परहेज नही है। इसे दीर्घकाल तक सेवन करने से वलि और पलित का नाश हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक, स्वेदल, स्नेह्य, संकोच नाशक, प्रसादक, कण्डरा, स्नायु, बंधनतन्तु, मांसपेशी तथा श्लेष्मकलाओं और ग्रन्थियो में रूक्ष, शीत आदि गुणों से प्रकुपित वात को नष्ट करती है। शरीर के रोम रोम में प्रविष्ट हुई वात विकृतियो को अपने गुणो से दूर करती है। इसका प्रयोग वात द्वारा होनेवाले अर्श, गुल्म, पाण्डु, शूल, प्रमेह तथा अन्य वातप्रधान रोगो मे लाभदायी सिद्ध होता है।

रास्नादि गुग्गुल [भा. भै. र. ५९३२]

[यो. र.; र. र. । कर्ण.; यो. त. । त. ४०, ग. नि. । गुटिका ४, वृ. नि. र. । वातव्या. । वृ. यो. त. । त. १३१. ९०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रास्ना, गिलोय, एरण्डमूल, देवदारु और सोंठ प्रत्येक १–१ भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और इस चूर्ण को इसी के समान अर्थात् ५ भाग शुद्ध गुगल में मिलाकर तैयार करे। (गूगल में थोडा २ घी मिलाते जांय और कूटते जांय) तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से १६ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वातजकर्ण रोग, शिरोरोग, नाडीव्रण और भगन्दर का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, वातानुलोमक, स्वेदल, सहज रेचक और स्नेह्य है। इसके सेवन से रन्ध्रगत वात विकारों का नाश होता है।

लवङ्गादि गुग्गुल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अर्कपुष्प (आक के फूल) चूर्ण १ भाग, लौंग का चूर्ण १ भाग और शुद्ध गूगल २ भाग लें। प्रथम दोनों चूर्णों को एकत्र मिश्रित करें। तत्पश्चात् गूगल मे थोडा घी डालकर उसमे चूर्ण डालते जांय और कूटते जांय। सम्पूर्ण चूर्ण भलीभान्ति मिश्रित होने पर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से आध्मान, वातज कास और वातज वेदना नष्ट होती है।

सं. वि.—यह औषध मलशोधक, वातानुलोमक, वस्तिदोष नाशक, जरायुगत वातदोष नाशक तथा कण्ठशोधक है। इसके सेवन से दीर्घकाल से वात द्वारा अवरुद्ध डिम्बग्रन्थियो की जागृति होती है, ऋतु यथासमय आता है तथा गर्भाशय और वस्ति में होनेवाला वात शूल और आध्मान जन्य शूल नष्ट होते हैं।

लाक्षा गुग्गुल [भा. भै. र. ६२५५]

(भै. र. । भग्ना.; वृ. मा.; च. द. । भग्ना. ४८; वृ. यो. त. । त. ११४; वं. से.; यो. र.; ग. नि.; धन्वन्तरि । भग्ना.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—लाख, अस्थि संहार, अर्जुन की छाल, असगन्ध और नागवला प्रत्येक द्रव्य समान भाग और शुद्ध गूगल सबके बराबर लें। गूगल में अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों के मिश्रण को भलीभान्ति मिलाकर कूटे और तैयार होनेपर ४–४ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—१ से १६ गोली। गरम जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अस्थिभग्न और संधिच्युत जन्य अस्थि की पीडा नष्ट होकर वह अङ्ग दृढ हो जाता है।

सं. वि.—लाक्षा गुग्गुल संन्धिक्षय, शोथ, भग्न आदि का नाश करनेवाली और भग्न संधान करनेवाली है। इसके सेवन से हृदय, शिरा, धमनी और लसिकाओ में प्रविष्ट हुवा वायु नष्ट होता है और इन स्थानो की श्लेष्मकलाजन्य संधियो के विकार शान्त होते है।

लाक्षा गुग्गुल का प्रयोग घी मे कूटकर लेप के समान भी किया जाता है। च्युत भग्न स्थान पर इसका लेप कर देते है और यथावश्यक क्रिया करके संधान पर्यन्त अथवा च्युत विनाश पर्यन्त इसको प्रलिप्त रहने देते है। इससे शोथ संधिवेदना आदि विकार दूर हो जाते है।

—o—

लोह गुग्गुल [भा. भै. र. ६२५८]

(र. र. । गुल्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—स्नुही (थूहर) की छाल, खैर की लकडी, कटूमर के फल और छाल प्रत्येक २५–२५ तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर ८ गुने पानी मे पकावे। जब चतुर्थांश जल शेष रहे तो उसे छानकर उसमे २५ तोले लोहभस्म मिलाकर पुनः पकावे जब वह गाढा हो जाय तो उसमे सुहाञ्जने की जड के कल्क में लपेटकर पुटपाक विधि से काण्डो की अग्नि में पकाई हुई पीली तपकी हरताल १० तोले और घी मिलाकर कुटा हुवा शुद्ध गूगल १० तोले मिलाकर पकावे। जब वह अवलेह के समान हो जाय तो उसे उतार ले। गाढा होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से गुल्म, कुष्ठ, क्षय, स्थूलता, शोथ, शूल, पाण्डु, प्रमेह, वातरोग और वलि-पलित का नाश हाता है।

सं. वि.—लौह गुग्गुल अग्निवर्द्धक, सहज रेचक, रक्तशोधक, त्वक्दोष नाशक, रक्त-वर्द्धक, वातनाडीजन्य तथा रूक्षादि गुणो से प्रकुपित वातजन्य विकारो को नष्ट करती है। इसके सेवन से वातज और पित्तज विकार शीघ्र नष्ट हो जाते है। दाह, अजीर्ण, कुष्ट, प्रमेह, स्थूलता, शोथ, शूल, गुल्म और वलि-पलित का भी इसके सेवन से नाश होता है।

—o—

सप्तविंशति गुग्गुल [भा. भै. र. ७९१७]

(भै. र., वृ. नि. र.; यो र.। भगन्दरा., वृ नि. र., यो. र.। व्रणा.; वं. से.। अग्निदग्धव्रणा., वृ. यो. त, । त. ११२.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, गिलोय, चित्रकमूल, शटी (कचूर), छोटी इलायची, पीपलामूल, हाउवेर, देवदारु, धनिया, पुष्करमूल,

चव, इन्द्रायण की जड, हल्दी, दारुहल्दी, विडनमक, संचलनमक (कालानमक), यवक्षार, सज्जीक्षार, सेंधानमक, गजपीपल इन सब द्रव्यों को १–१ भाग लेकर मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण करलें और इस मिश्रित चूर्ण से २ गुना (४६ भाग) शुद्ध गूगल ले यथावश्यक घृत मिलाकर चूर्ण को उसमें कूट २ कर मिलादें और तैयार होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ८ गोली तक। ऊष्ण जल अथवा मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृच्छूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, गुदशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमि का नाश होता है तथा जीर्णज्वर, क्षय, आनाह, उन्माद, कुष्ट, उदररोग, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह आर श्लीपद का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, दाहनाशक, मूत्रल, सहज रेचक, आक्षेपनाशक, कृमिनाशक, पाचक और आध्मान नाशक, शोथनाशक, ज्वरघ्न, प्रमेह नाशक, वस्ति, अन्त्र वृक्क, वृक्कनलिका और गुदमार्ग शोधक है। यह वस्ति, हृदय, फुफ्फुस, आमाशय, अन्त्र, वृक्क और वृक्कनलिका आदि में प्रकुपित वात द्वारा होनेवाली अवरोधक तथा आक्षेपक विकृतियों को नष्ट करती है। इसके सेवन से प्राण, अपान प्रकुपित वायु द्वारा होनेवाले हृदय अवसाद, हृच्छूल, वक्षशूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, वन्तिशूल, गुदशूल आदि विकार नष्ट होते है। अश्मरी शर्करा और वृक्क विकार जन्य शोथ पर इसका प्रयोग लाभप्रद है।

सिंहनाद गुग्गुल [भा. भै. र. ७९२३]

(भै. र.। आमवाता.; च. द.। आमवा. २५; र. र, वृ. नि. र.। आमवाता.; भा. प्र.। म. खं. अ. २ वातरक्ता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—लोहभस्म में २० तोले अरण्डी का तेल डालकर उसमें ५ तोले शुद्ध गूगल डालें और अग्नि पर चढादे। जब गूगल तेल में मिश्रित हो जाय तो उसमे त्रिफला का १५ तोला क्वाथ मिलाकर पकावें। जब अवलेह के समान पक कर गाढा हो जाय तो उसे अग्नि से उतार कर उसमें ५ तोले शुद्ध गन्धक का चूर्ण मिलादें और भलीप्रकार मिश्रित होने पर ४–४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ८ गोली तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वात-पित्त-कफ, खञ्जवात, पङ्गुता, दुर्जय श्वास, पांच प्रकार के कास, कुष्ट, वातरक्त, गुल्म, उदरशूल और कष्टसाध्य आमवात का नाश होता है। इसका सतत दीर्घकाल तक सेवन करने से जरा और वलिपलित का नाश होता है। यह अग्निवर्द्धक है।

इसका आविष्कार श्री दण्डपाणीजीने किया।

पथ्य—घी, तेल और वसा (चर्बी) युक्त शाठी तथा शाली चावलों का भात।

सं. वि.—यह औषध आमवात नाशक, रक्तशोधक, त्वक्दोष नाशक, वात-पित्त ओर कफ दोष नाशक, सहज रेचक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक और कास, श्वास, शूल, आमवात तथा कुष्ठ और वातरक्त नाशक है।

स्वायम्भुव गुग्गुल [भा. भै. र. ७९२६]

(ग. नि. । गुटिका ४; भा. प्र. । कुष्ठा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बावची २५ तोले, शुद्ध शिलाजीत २५ तोले, शुद्ध गूगल ५० तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म १५ तोले, लोहभस्म १० तोले और गोरखमुण्डी का चूर्ण १० तोले तथा हैड, बहेडा, आंवला, करञ्ज के पत्ते, खैर सार, गिलोय, वच (पाठान्तर से नीमकी छाल), निसोत, दन्तिमूल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, हल्दी, अमलतास की छाल, चीता और कुडे की छाल, प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ५-५ तोले ले। काष्ठौषधों को एकत्रित करके सूक्ष्म चूर्ण बनालें। शुद्ध गूगल उपरोक्त परिमाण में लेकर थोडा २ घी डालकर कूटते जांय और शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भस्म और लोहभस्म मिश्रित करते जांय तत्पश्चात् चूर्ण को मिश्रित करें और भलीप्रकार कूटकर तैयार होने पर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से ४ गोली तक। घी, मधु, गोमूत्र अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वातरक्त, श्वित्र, कुष्ठ, गरविष, गुल्म, उदररोग, प्रमेह, उन्माद, भगन्दर, अपस्मार, श्लीपद, कृमि, श्वास और वलिपलित का नाश होता है।

यह योग भगवान् स्वयम्भू का बनाया हुवा है।

सं. वि.—यह औषध रक्तशोधक, त्वग्दोष नाशक, कुष्ठ-श्वित्रादि नाशक, मूत्रदोष नाशक, विषघ्न, सहज रेचक, वातानुलोमक, कृमिनाशक, आमशोषक, मधुमेह नाशक, शूल, गुल्म, शरीरदाह, यकृत्-प्लीहा विकार तथा श्लीपद नाशक है। इसके सेवन से मेद, कफ, वात, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, मूत्रशर्करा, अरुचि, अपस्मार, जन्तुजन्य व्याधि तथा श्वासादि रोगों का नाश होता है।

ॐ षडशीतिगुग्गुल [भा. भै. र. ७७४९]

(यो. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कटसरैया, जवासा, अतीस, देवदारु, छोटी-बडी कटेली, चव, वासा, पीपल, नागरमोथा, वच, धनिया, शतावर, खरैटी, सोया, कालाविधारा,

हैड, सोंठ, गिलोय, कचूर, अमलतास के फल की मज्जा, गोखुरू, पुनर्नवा मूल, मूर्वा, कुटकी, पीपलामूल, भारङ्गी, विदारीकन्द, मुण्डी, हस्तीकर्णी, अजमोद, काकडासिंगी, रुद्राक्ष, मूसली, रेणुका, काकोली, जीरा, कालाजीरा, निसोत, दन्तीमूल, चित्रकमूल, अतीस, तालमखाना, धमासा, बृहत्पञ्चमूल (वेल, अरलू, खंभारी, पाढल और अरनी इनकी जड) की छाल, अर्जुनछाल, कूठ, अगर, जावित्री, जायफल, इलायची, नागकेसर, दालचीनी, चिरायता, केसर, लौंग, इन्द्रायण की जड, सेंधानमक, हल्दी, सफेद आक की जड, वायविडङ्ग, सत्यानासी की जड, हुलहुल, गजपीपल, अपामार्ग, कौंच के वीज और करञ्जमूल प्रत्येक १–१ भाग) रास्ना इन सबके बराबर (६७ भाग) और कीकर की फली २ गुनी (१३४ भाग), तथा इन सब ही द्रव्यों के बराबर शुद्ध गूगल (२६८ भाग) तथा पारद, गन्धक, हिंगुल, सुहागे की खील, लोहभस्म, अभ्रक-भस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, पारदभस्म (रससिन्दुर), नागकेसर, स्वर्णमाक्षिकभस्म, ये सब पारदादि द्रव्य मिश्रित गूगल के चतुर्थ भाग (६७ भाग) लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे। अव षट्कटु (पीपल, पीपलामूल, चव, चीता, सोंठ और कालीमिर्च) गूगल से ३ गुना (५३६ भाग) लेकर उसे १६ गुने (८५७६ भाग) पानी मे पकाकर १/४ भाग अवशिष्ट रहने पर उतारकर छान लें। उसमें गूगल को मिलाकर पुनः पकावे और पकते हुये क्वाथ में काष्ठौषध द्रव्यों के चूर्णों को डालकर मन्दाग्नि पर पकावे। गाढा होने पर उतारकर इसमें कज्जली सहित भस्मों को मिश्रित करके कूटे और तैयार होने पर १–१ रत्ती की गोलियां बनाले।

मात्राः—१ से २ गोली तक। मधु और घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सप्तधातुगत–वायु, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधिगत वायु, आमवात, निरामवात, मांसगत वायु, कफयुक्त वायु, यक्ष्मा, अग्निमान्द्य, धातु-गतज्वर, गुल्म, जानु, उरु, कटि, उदर, हृदय, कुक्षि, कक्षा, स्कन्ध, मन्या, हनु, श्रोत्र, भ्रू, ललाट तथा नेत्रगत वात, शंखगत वात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शूल, आध्मान, अश्मरी और मेद का नाश होता है।

यह क्षय रोगी के लिये भोजान्वेषित औषध है।

इसे १ वर्ष तक सेवन करने से नपुंसक भी कामिनी वल्लभ बन जाता है। यह वाजी-करण औषध है। इसके सेवन काल मे खान–पान मैथुन आदि का कोई परहेज नहीं है।

सं. वि.—परम रसायन, वाजीकरण, ८० प्रकार के वातज रोगों को नाश करनेवाली यह औषध मर्म, संधि, स्नायु, शिरा, धमनी, वातनाडी, कोष्ठ, प्रकोष्ठ, शाखा, प्रशाखा आदियों मे रूक्षादि गुणों द्वारा प्रकुपित वात जन्य रोगों को नष्ट करती है। यह स्नेहन, स्वेदन आदि गुणों युक्त औषध है।

वायु सर्व शरीर चर है। प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान भेद से यह शरीर के प्रत्येक अङ्ग में व्याप्त है। तीनो दोषो में वायु ही गतिशील है। जिस प्रकार शरीर की अधिक से अधिक चेष्टाएं वायु द्वारा होती है वैसे ही अधिक से अधिक रोग भी वायु के कारणों से उत्पन्न होते है। पाचक संस्थान में प्रकुपित वात अन्त्र प्रणाली से लेकर गुदा तक अनेक रोग उत्पन्न करती है जिसमें हिक्का, आमाशय-आक्षेप, परिणामशूल, ग्रहणीदोष, उपान्त्र प्रदाह, अन्त्र संकोच, अन्त्र शैथिल्य, वातोदर, उदावर्त, जलोदर और अर्श आदि भयङ्कर रोग है। रस मे प्रविष्ट प्रकुपित वात श्लेष्मकला विकार, प्लीहा, यकृत् और पाचक रसों को उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियों के विकार उत्पन्न करती है। रक्त मे प्रकुपित वात रक्त के पोषक तत्वों को सूखा देती है जिससे धमनियों, शिराओ और लसिका वाहिनियों मे संकीर्णता, शरीर में विवर्णता, गात्र कृशता और मदमूर्च्छा आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। ग्रन्थियो में प्रकुपित वात ग्रन्थियों की क्रिया में विप्लव उत्पन्न कर देती है जिससे या तो ग्रन्थियों की अधिक वृद्धि हो जाती ह या ग्रन्थियां सूख जाती है। सन्धियों मे प्रकुपित वात सन्धिबंधनों में जडता उत्पन्न कर देती है जिससे सन्धियो की क्रियाओ का लोप हो जाता है और देहधारी लूले, लंगडे, काणे, बहेरे, गूंगे इत्यादि हो जाते है।

हृदय में प्रविष्ट प्रकुपित वात हृदय के अन्तर्बाह्य आवर्णो, हृदय के कक्षो और हृदय से संबंधित शिरा धमनियों मे विविध प्रकार के रोग उत्पन्न कर देती है। वात के कारण हृदय के अनेक रोग उत्पन्न होते है–हृदयशूल, हृदयशोथ, हृदयावसाद, हृदयवृद्धि और हृदय संकोच आदि अनेक रोगों के अतिरिक्त आमवातज हृद्रोग, हृत्कपाटरोग, हृदय को पोषण पहुंचानेवाली धमनियो के रोग (संवृतक हृद्रोग) और हृदय के आक्षेपज रोग आदि भयंकर रोग भी अधिकतर वायु के कारण ही उत्पन्न होते है।

श्वास संस्थान मे प्रविष्ट हुआ वात श्वासरोग, गलरोग, नासिकारोग, क्षय, शोष, वक्षशूल, उरस्तोय आदि अनेक रोग उत्पन्न करता है।

मूत्र संस्थान मे विकृत वात से पथरी, वृक्कशोथ, वृक्कनलिका शोथ, वृक्कशूल, मूत्राशय शोथ आदि अनेक रोग उत्पन्न होते है।

वातनाडी संस्थान मे वात प्रकोप से भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं, कभी २ तो वात द्वारा होनेवाले मस्तिष्क रोगों के उपद्रव मारक सिद्ध होते है।

वातप्रधान किसी भी संस्थान के रोग को मिटाने के लिए षड्शीति गुग्गुल का प्रयोग लाभप्रद होता है।

भैषज्य-सार-संग्रह

षष्ठ प्रकरण

चूर्ण

व्यापक रूप में चूर्ण शब्द से सभी द्रव्यों के सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम स्वरूप स्वीकृत होते है। वे चाहे भस्मों के हों, चाहे रसों के और चाहे काष्ठ औषधियों के। परन्तु इस प्रकरण में जिस चूर्ण शब्द का प्रयोग किया जा रहा है, वह उतना व्यापक नहीं है। क्षार, लवण, भस्म, रस और काष्ठ औषधियों के मिश्रण से बने हुये द्रव्यों का इसमें समावेश होता है। कहीं २ अकेले क्षारो का योग आता है, कहीं क्षार और लवणों का योग आता है, कहीं क्षार, लवण और भस्म का योग आता है और कहीं क्षार, लवण, भस्म और काष्ठौष-धियों का योग आता है। समास में इतना कहना पर्याप्त होगा कि लभ्य उपादान द्वारा चूर्ण्य द्रव्यों को मिश्रित कर कपडछन करके चूर्ण बनाया जाता है अर्थात् अत्यन्त शुष्क द्रव्यो को पीसकर कपडे मे से छान लिया जाय तो उसे चूर्ण कहते हैं। रज और क्षोद इसके अन्य नाम हैं।

यदि एक से अधिक औषधियों का मिश्रित चूर्ण बनाना हो तो प्रत्येक द्रव्य का पृथक २ चूर्ण करके प्रमाणानुसार मिश्रित करे क्यो कि भिन्न २ औषधियां चूर्ण बनाते अधिक और न्यून समय लेती है और यदि मिश्रित चूर्ण बनाया जाय तो जो शीघ्र रज बन जाती है वे उड जाती हैं। इस प्रकार प्रमाण में अन्तर पड जाता है।

चूर्ण २ मास के पश्चात् हीनवीर्य हो जाते है अतः दो मास से अधिक समय का चूर्ण अनुपयुक्त होता है।

अग्निमुख चूर्ण [भा. भै. र. ४६]

(वं. से.; च. प्र; वृ. मा.; यो. र. । अजी. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हैड ६ भाग, चीता ७ भाग और कूठ ८ भाग लें। इनमें से प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण उक्त मात्रा में लेकर मिश्रित करें और सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—३ से ६ मासा तक।

अनुपान-[१] प्रसन्ना सुरा के साथ लेने से वायु का नाश होता है।

[२] दही, मस्तु, सुरा अथवा ऊष्ण जल के साथ सेवन करने से उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा और उदररोग, जिसमें अङ्ग विशीर्ण हो जाते है, तथा विपदोप का नाश करता है।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह चूर्ण अर्श, उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा, विपदोप, क्षय, श्वास, कास, गुल्म, शूल, और अजीर्ण नाशक है। उक्त रोगों पर यह सर्वत्र क्रिया करता है।

सं. वि.—यह चूर्ण वातानुलोमक, दीपक, पाचक, क्षोभनाशक, आमपाचक और मलशोधक है। यह उदर के वातज विकारों को नाश करने के लिये सर्वदा सफलता पूर्वक प्रयोग में लाया जाता है।

अजमोदादि चूर्ण [भा. भै. र. ५२]

(शा. ध. । म. ख. अ. ६; यो. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अजमोद, विडङ्ग, सैन्धव, देवदारु, चीता, पीपलामूल, सोया, पीपल और कालीमिर्च प्रत्येक का १।-१। तोला सूक्ष्म चूर्ण, हैडका चूर्ण ६। तोला, विधारे का चूर्ण १२॥ तोला और सोंठ का चूर्ण १२॥ तोला ले। चूर्णों को एकत्र मिलाकर प्रयोग मे लावे।

नोटः—गुड के साथ समान भाग मिलाकर इसकी गोली भी वन सकती है।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शोथ, आमवात, गठिया (संधिपीडा), गृध्रसी, कटि, पृष्ठ, गुद, जङ्घा आदि की पीडा, तूनी, प्रतूनी, विश्वाची तथा कफ और वायु रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, वातानुलोमक, कफनाशक, आक्षेपनाशक, सहज रेचक है और अङ्ग प्रत्यङ्गो को वात-आम और कफ के दोषो से मुक्त करके सक्रियता प्रदान करती है।

अमृत चूर्ण [र. तं. सा.]

बनावट—नौसादर और फिटकरी समभाग मिलाकर डमरूयन्त्र द्वारा पुष्प उडालें। फिर अपामार्ग क्षार और आक का क्षार आठवां २ हिस्सा मिला, काली तुलसी और आक के पत्तों के रस की एक एक भावना देकर चूर्ण बनालें।

सूचना—सफेद फिटकरी की अपेक्षा लाल फिटकरी मिलाने पर विशेष लाभ पहुंचता है ।
मात्राः—२ से ३ रत्ती दिन में ३ बार । दूध, चाय या निवाये जल से ।

उपयोग—यह चूर्ण नये बुखार, जीर्णज्वर ठण्डी सहित या ठण्डी रहित विषमज्वर (संतत-चातुर्थिक आदि) को दूर करता है । केवल फिटकरी और नौसादर के पुष्प को ही ३-३ रत्ती मिश्री के साथ मिलाकर देवें तो भी अपना प्रभाव दिखा देता है । यह चूर्ण दोषों को पाचन करा प्रस्वेद लाकर ज्वर को उतार देता है ।

यह अमृतचूर्ण सतत आदि विषमज्वर पर तथा अपचन सहित ज्वर (ऊष्णज्वर) पर प्रयुक्त होता है । यह स्वेद लाकर विष और ऊष्णता को २-४ घण्टां मे बाहर निकाल देता है तथा विषम ज्वरोत्पादक कीटाणुओं को मारकर रक्त को शुद्ध बना देता है । यह चूर्ण क्विनायन के समान रक्त के रक्ताणुओ को हानि नहीं पहुंचाता ।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

अविपत्तिकर चूर्ण [भा. भै. र. ८३]

(वं. से.; धन्व.; भै. र.; रसे. चि.; रसे. सा. सं. । अम्ल.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, विडनमक, इलायची और तेजपात प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग ले और सबको मिश्रित करले । इस मिश्रित चूर्ण के समान लौंग का सूक्ष्म चूर्ण ले और उसे मिश्रण मे मिश्रित करदें । इस मिश्रण में इससे द्विगुण निसोत का चूर्ण मिलावें और सम्पूर्ण योग के समान शर्करा चूर्ण लेकर चूर्ण मिश्रण के साथ मिलावें और फिर इस औषध को चिकने वर्तन में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें ।

मात्राः—४ से ८ मासा तक । भोजन के आदि में ठण्डे जल अथवा नारियल के पानी के साथ ।
पथ्य—इस पर यथेष्ट दूध चावल का आहार करे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अम्लपित्त, शूल, अर्श, २० प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात और अश्मरी का नाश होता है । यह अगस्त्य मुनि का निर्दिष्ट किया हुवा चूर्ण है ।

सं. वि.—यह चूर्ण पित्तशामक, सहज रेचक, दाहनाशक, वातानुलोमक, कृमिघ्न, मूत्रल और कोष्ठ शोधक है । पित्त द्वारा उत्पन्न हुये अन्त्र के विकारो का इसके प्रयोग से विनाश होता है । जिन रोगियो को अम्लपित्त का विशेष विकार हो, उन्हें इस औषध का प्रयोग भोजन करने के आध घण्टा पूर्व करके भोजन करना चाहिये ।

यह औषध सहज रेचक है। इसके सेवन से किसी प्रकार की आदत नहीं पडती। पित्त बहुलाओ मे अधिकतर खाने के कुछ काल पश्चात् उदर में दाह होने लगता है, इसके सेवन से वह मिट जाता है।

नित्य रात्रि को एक मासा सेवन करने से प्रातः काल मल शुद्धि हो जाती है।

अश्वगन्धादि चूर्ण [भा. भै. र. ८४]

(शा. ध. । म. ख. अ. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अश्वगन्धा ५० तोले और विधारा ५० तोले, इन दोनो का सूक्ष्म चूर्ण करके भलीभान्ति मिश्रण करे और चिकने बर्तन में भरकर रखलें।

मात्राः—(श. १ कर्ष) ३ मासे से ६ मासे तक। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह चूर्ण पौष्टिक और वाजीकरण है। इसे सेवन करनेवाले की मैथुनशक्ति तीव्र रहती है। यदि इसका सेवन करनेवाला ब्रह्मचारी रहे तो उसका शरीर पुष्ट होता है और वलिपलित का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध वीर्यवर्द्धक, कटु, ऊष्ण, तिक्त, वल्य, वातहर, कास, श्वास, क्षय तथा व्रण नाशक, रसायन, वात श्लेष्मनाशक और शक्तिवर्द्धक है।

इस चूर्ण के सतत सेवन से प्रतिलोम क्षय अर्थात् वीर्यक्षय से प्रारम्भ करके यथाक्रम धातुओ की क्षीणता का नाश होता है। वीर्यवर्द्धन इसका मुख्य गुण है।

अष्टाङ्ग अवलेहिका (चूर्ण) [र. तं. सा.]

बनावट— कायफल, पुष्करमूल, काकडासिंगी, धमासा, कालाजीरा, सोंठ, मिर्च और पीपल समभाग लेकर चूर्ण करले। फिर समान शहद मिलादे।

मात्राः—४ से ६ मासे तक। दिन में ३ बार चाटकर दूध पिवे।

सन्निपात के रोगी को मुख मे रखकर रस निगलवायें। अधिक कफ वृद्धि में अदरक के रस के साथ दे।

उपयोग—इस अवलेह के सेवन से कफज्वर रोगी के खांसी, श्वास, अरुचि, वमन, हिचकी, कफ और वात तथा सन्निपात के रोगी के गले का रुंधना तथा कफ और कास दूर होते है; एवं न्यूमोनिया आदि रोगों में इसके सेवन से कफ बाहर नीकल आता है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

अष्टाङ्ग कल्प [भा. भै. र. ९१]

(च. सं. । चि. अ. १५)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—संचलनमक, जीरा, इमली, अमलवेतस, दालचीनी, कालीमिर्च प्रत्येक का चूर्ण १—१ भाग और शर्करा चूर्ण २ भाग लें और भलीभान्ति मिश्रित करके चिकने पात्र मे प्रयोगार्थ रक्खे ।

मात्राः—२ से ६ मासे तक । जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मन्दाग्नि तथा कफज मदात्यय का नाश होता है और स्रोत शुद्ध हो जाते है ।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, आक्षेपनाशक, अग्निवर्द्धक, श्लेष्मनाशक और श्लेष्मकलाकों की उग्र क्रिया द्वारा हानेवाले अनावश्यक कफप्रसेक को नष्ट करती है । यह शोधक और मदात्यय नाशक है ।

आमलक्यादि चूर्ण [भा. भै. र. ३९०]

(यो. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—आमला, चीता, हैड, पीपल और सेंधानमक प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर मिश्रण बनावें ।

मात्राः—३ से ६ मासे तक । अग्निवलानुसार । जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस चूर्ण के सेवन से सब प्रकार के ज्वरो का नाश होता है।

सं. वि.—यह रोचक, सहज रेचक, श्लेष्म नाशक, दीपक, पाचक और ज्वरघ्न है ।

एलादि चूर्ण [भा. भै. र. ५५६]

(यो. र.; शा. ध. । म. खं. अ. ६; ग. नि. [अ. १४ छर्दी)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—इलायची, लौंग, नागकेसर, वेल की गुठली की गिरी, धान की खील, फूल प्रियंगु, नागरमोथा, चन्दन और पीपल प्रत्येक का समान भाग चूर्ण लें और भलीभान्ति मिश्रित करें ।

मात्राः—३ से ६ मासे तक । मिश्री और मधु मिलाकर चाटे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कफज, वातज और पित्तज छर्दी का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध कफ नाशक, पित्तशामक, दाहनाशक, शोषनाशक, रुचिकर और दोषानुलोमक है । इसके सेवन से वमन का नाश होता है ।

कट्फलादि चूर्ण [भा. भै. र. ६७९]

(शा. ध. । म. खं. अ. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कायफल, नागरमोथा, कुटकी, सोंठ, काकडासिंगी और पुष्करमूल प्रत्येक का समान भाग चूर्ण लेकर मिश्रित करे।

मात्राः—३ से ६ मासा। मधु या अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से ज्वर, खांसी, श्वास, अरुचि, वायु, वमन, शूल और क्षय का नाश होता है। यह चूर्ण कण्ठ के लिये भी हितकारी है।

सं. वि.—यह औषध दाहनाशक, ज्वरघ्न, कण्ठशोधक, सहज रेचक दोषानुलोमक है।

कपित्थाष्टक चूर्ण [भा. भै. र. ६८९]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अजवायन, पीपलामूल, चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची), सोंठ, कालीमिर्च, चीता, सुगन्धवाला, जीरा, धनिया, सौवर्चलनमक प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १—१ भाग, अम्लवेत, धाय के फूल, पीपल, बेल की गिरी, दाडिम और तिन्दुक प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ३—३ भाग, खांड ६ भाग और कैथ का सूक्ष्म चूर्ण ८ भाग लेकर सबको एकत्र मिश्रित करे।

मात्राः—२ से ६ मासा तक। छाछ या ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अतिसार, ग्रहणी, क्षय (उदर के किसी भी भाग का क्षय), गुल्म, गले के रोग, खांसी, श्वास, अरुचि और हिक्का का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेप नाशक, आमपाचक, दोषानुलोमक, पाचक, दीपक और अन्त्र शैथिल्य नाशक है। इसके सेवन से खाद्य आदि के दोष से उत्पन्न आम तथा विष का नाश होता है।

• कमलाक्षादि चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—कमलगट्टा ७ तोला, जायफल २ तोला, केसर १ तोला, तेजपात १ तोला, शतावरी २ तोला, असगन्ध २ तोला, सफेद मूसली २ तोला, वंशलोचन १ तोला, सालमपंजा २ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, सोठ १ तोला, रूमी मस्तगी १ तोला, पीपलामूल १ तोला और कबावचीनी १ तोला लेकर सबको कूटकर कपडछन चूर्ण करके शीशी मे भरले।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ मासे चूर्ण को आधा से १ तोले गाय के घी में थोडा

सेक, उसमें पाव से आधा सेर तक गाय का दूध और यथारूचि मिश्री मिला ५–७ उफान आवें इतना गरम कर नीचे उतारकर ठण्डा होने पर पीवें।

उपयोग—इसके सेवन से शरीर पुष्ट होता है, वीर्य बढता है तथा कामोत्तेजना होती है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धत]

कृष्णादि चूर्ण [भा. भै. र. ७२७]

(वृ. नि. र. । वा. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, सोंठ, वेलगिरी, नागरमोथा और अजवायन का समान भाग सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करके सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—४ रत्ती से २ मासे तक। मधु और घृत में मिलाकर चटावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से बालको की संग्रहणी को आराम पहुंचता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आक्षेपनाशक, आमशोषक, दाहनाशक और वातानुलोमक है। इसके सेवन से बालकों के अजीर्णजन्य विकार नष्ट होते है। यह उपरोक्त अनुपान से दी जाय तो बालकों को पुष्ट भी करती है।

ग्रहणीशार्दूल चूर्ण [भा. भै. र. १६१२]

(भै. र. । ग्रहण्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हींग, पांचों नमक (सेंधा, काला, समुद, खारी और काच लवण), हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, वच, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हैड, वहेडा, आमला, चीता, अजमोद, अजवायन, गजपीपल, जवाखार, सज्जीक्षार, सुहागा और घर का धुंवा प्रत्येक का चूर्ण १।–१। तोला तथा भांग का चूर्ण इन सबके बरावर ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावे तत्पश्चात् अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण के योग को इसमें मिश्रित करें और भलीभान्ति खरल करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—२ रत्ती से २ मासे तक। चावल के धोवन के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ग्रहणी, तृष्णा, ज्वर, पक्वातिसार, आमातिसार, अनेक वर्ण का वेदनायुक्त अतिसार और अतिसार जन्य शोथ का नाश होता है। यह असाध्य ग्रहणी, पाण्डु और जीर्णज्वर को भी नष्ट करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

सं. वि.—यह औषध आमपाचक, रोधक, रक्तशोधक, वातानुलोमक, दाहनाशक, पाचक

आर अग्निवर्द्धक है। इसमें भांग का सम्पूर्ण द्रव्यो के समान योग है अत. निद्राकर भी कही जा सकती है।

---o---

गोक्षुरादि चूर्ण [भा. भै. र. १२८५]
(वा. भ. । वाजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गोखरू, इक्षुमूल (ईख की जड), उडद, कौंच के वीज और शतावर प्रत्येक द्रव्य का समान भाग चूर्ण लेकर भलीभान्ति मिश्रित करके चिकने पात्र मे सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। दूध से साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से शरीर पुष्टि तथा वीर्य की वृद्धि होती है। यह स्तम्भक भी है।

सं. वि.—इस चूर्ण के समस्त पदार्थ शरीर पोषक, शोधक, वर्धक, वीर्य उत्पादक, वीर्यस्तम्भक, वीर्य में शीत और पाक में मधुर है। इसके सेवन से मूत्र स्वच्छ और निर्विकार आता है। दुर्वलता दूर होती है। क्षीणता नष्ट होती है और स्तम्भनशक्ति बढती है।

---o---

चन्दनादि चूर्ण [भा. भै. र. १६९८]

(भै. र. । स्त्री.; ग. नि. । चूर्णा.; वृ. मा , यो. र. । रक्तपि.; यो त. । त. २६, र. र. । प्रदर.; वृ. यो. त. । त. ७५]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—श्वेत चन्दन, नल, लोध्र, उशीर (खस), कमलकेसर, नागकेसर, बेलगिरी, नागरमोथा, शर्करा, नेत्रबाला, पाठा, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, सोंठ, अतीस, धाय के फूल, रसौत, आम और जामुन को गुठली की गिरी, मोचरस, नीलोत्पल, मजीठ, छोटी इलायची, अनारदाना, इन चौवीस द्रव्यो के चूर्णों को समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। मधु मिलाकर चावल के धोवन के साथ चाटे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—रक्त, पीत, श्वेत और कृष्ण चार प्रकार के प्रदर, उग्र रक्तातिसार और रक्तार्श का इसके सेवन से नाश होता है।

रक्तनाशक यह योग अश्विनीकुमारो द्वारा निर्मित किया गया।

सं. वि.—इस चूर्ण के सभी द्रव्य सकोचक, रोधक, आमपाचक, दाहनाशक और श्लेष्मकलाओ के पित्त–वात जन्य शोथ को नष्ट करनेवाले है। इसके सेवन से श्लेष्मकलाओं की विकृति दूर होती है और उनकी आकृति स्वस्थ वन जाती है तथा अङ्गो में सक्रियता आती है।

---o---

चतुस्सम चूर्ण [भा. भै. र. १६६०]

(वृ. मा.; भै. र.; धन्व. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अजवायन, सैंधव, हैड और सोंठ इन चारों द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण सम मात्रा में मिश्रित करके प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—२ से ३ मासा तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से शूल नष्ट होता है और अग्नि प्रदीप्त होती है।

सं. वि.—यह अग्निप्रसादक चूर्ण वातानुलोमक, आक्षेपनाशक, मलशोधक, अपान वातदोष नाशक और अजीर्णनाशक है।

चोपचिन्यादि चूर्ण [भा. भै. र. १७३३]

(यो. र.; वृ. नि. र. । उपदंश.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चोपचीनी का चूर्ण १ कुडव (२० तोले), खांड ५ तोले, पीपल, पीपलामूल, मरिच, लौंग, अकरकरा, तालमखाना, सोंठ, बायविडङ्ग और दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण १–१ कोल (१।–१।) तोला लेकर सबको एकत्र खरल करें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। मधु और घी के साथ।

पथ्यः—शालीचावल तथा अरहर की दाल, घी, मधु, गेहू, सेंधानमक, सुहाञ्जना, तोरई, अदरक और मन्दोष्ण जल।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ५ प्रकार के उपदंश, प्रमेह, व्रण, वातरोग और कुष्ठ का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध कृमिघ्न, वातपित्त नाशक और रक्तशोधक है। इसके सेवन से फिरङ्ग, उपदंश और इन रोगों के अनुबन्धि विकारों का नाश होता है।

जातिफलादि चूर्ण [भा. भै. र. १९९६]

(वृ. नि. र.; वै. र. । संग्र, वृ. यो. त. । त. ६७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जायफल, चीता, सुगन्धवाला, बायविडङ्ग, तिल, कपूर, जीरा, वंशलोचन, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद (मोथा, बायविडङ्ग, चीता), तगर, तालीसपत्र और लौंग प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १–१ कर्ष (१।–१। तोला), भांग सम्पूर्ण चूर्ण के समान और भांग सहित सम्पूर्ण योग से द्विगुणी मिश्री, सबको एकत्र मिश्रण कर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से १॥ मासा तक। तक्र के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, जन्तुघ्न, वातानुलोमक, क्षोभ, दाह और कोथ नाशक, श्लेष्मकला विकार नाशक, कला संकोचक और अग्नि प्रसादक है। इसके सेवन से दीर्घकाल से विकृत ग्रहणी दोष भी नष्ट हो जाता है।

ज्वरनागमयूर चूर्ण [भा. भै. र. २१३९]

(भै. र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सुहागे की खील, ताम्रभस्म, हरतालभस्म, वंगभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहाञ्जने के बीज, हैड, बहेडा, आमला, सफेद चन्दन, अतीस, पाठा, वच, हल्दी, दारुहल्दी, खस, चित्रकमूल, देवदारु, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, जीरा, तालीसपत्र, वंशलोचन, कटेली के फल और जड, कचूर, तेजपात, त्रिकटु, गिलोय का सत्व, धनिया, पित्तपापडा, मोथा, सुगन्धबाला, बेलगिरी और मुल्हैठी प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १—१ भाग, काले जीरे का चूर्ण ४ भाग, तालपुष्प, दण्डोत्पल (सहदेवी), चिरायता और पीपल का चूर्ण ४—४ भाग ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तदनन्तर उसमें अन्य भस्मों को मिश्रित करें और तत्पश्चात् अन्य सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को उसमें मिलाकर सबको एकत्र खरल करें।

मात्राः—४ रत्ती से १ मासा तक। रोगी के बलानुसार शीतल जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से दुस्साध्य संतत आदि विषमज्वर, धातुस्थितज्वर, काम, शोक, भूतावेश से उत्पन्न ज्वर, अभिचारज, दाहपूर्व अथवा शीतपूर्व ज्वर चातुर्थादिक ज्वरों के पर्यय, जीर्णज्वर और विषमज्वर आदि रोगों का नाश होता है।

यह चूर्ण प्लीहा, उदररोग, कामला, पाण्डु, शोथ, भ्रम, तृष्णा, कास, शूल, आनाह, क्षय, यकृत्वृद्धि, गुल्म, आमवात, त्रिकपृष्ठ (पीठ)कमर, जानु और पार्श्व के शूल को भी नष्ट कर देता है।

सं. वि.—यह औषध शोधक, आक्षेपनाशक, वात-पित्त-कफ नाशक, दाहनाशक, शरीर पोषक, आमनाशक, मलशोधक, जन्तुघ्न, विषघ्न, मूत्रल, शोथनाशक, शूलनाशक, पित्त-शामक, तृष्णा, भ्रम, कास, शूल, आनाह, क्षय, पाण्डुरोग आदि नाशक है।

ज्वालामुखी चूर्ण [भा. भै. र. २००९]

(वं. से. । अजीर्ण.; ग. नि. । चूर्ण.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हींग (घी में भुनी हुई), अम्लवेत, त्रिकटु, चीता,

यवक्षार, पोखरमूल, त्रिफला, अनार दाने का सूक्ष्म चूर्ण और गुड प्रत्येक ५–५ तोले लेकर एकत्र मिश्रित करके प्रयोग मे लावें।

मात्राः—२ से ३ मासे तक। गरम जल या अदरक के रस के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, आमशोषक, आक्षेपनाशक, वातानुलोमक और उदरगत दूषित अपानवायु को अनुलोमन करके निकाल देती है। इसके सेवन से आध्मान, अजीर्ण आदि रोगों का नाश होता है।

तालीसादि चूर्ण [भा. भै. र. २३१०]

(वृ. नि. र.; यो. र. । ज्वर.; शा. ध. सं. । खं. २. अ. ६.; यो. त. । त. २७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—तालीसपत्र १। तोला, कालीमिर्च २।। तोला, सोंठ ३।।। तोला, पीपल ५ तोला, वंसलोचन ६। तोला, इलायची ७।। मासे, दालचीनी ७।। मासे और मिश्री ४० तोले। प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण लेकर एकत्र खरल करें। (यदि गोली बनानी हों तो शर्करा की चासनी में सब द्रव्यो को मिश्रित करें और गोलियां बनावें)

मात्राः—२–३ मासा। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कास, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोथ, अफारा, प्लीहा, ग्रहणी और पाण्डुरोग का नाश होता है।

सं. वि.—यह तालीसादि चूर्ण रुचिवर्द्धक, पाचक, वात कफनाशक, वातानुलोमक, पौष्टिक, दाहनाशक, श्लेष्मकला विकार नाशक, अग्निवर्द्धक और कण्ठ, श्वास, कास और अन्नप्रणाली शोधक है। इसके सेवन से वात–कफ द्वारा होनेवाले उदर विकार तथा कण्ठ, कासनलिका और श्वासनलिका के विकार दूर होते है।

त्रिकटुकादि चूर्ण [भा. भै. र. २३३६]

(वै. म. र. । पट. ३)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), अजमोद, चीता, हींग, भारङ्गी, विडनमक, चव, सेधानमक, यवक्षार और वच्छनाग प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर एकत्र करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—६ रत्ती से १ मासा तक। अदरक के रस, मधु अथवा जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कफ, वायु और शूल नष्ट होता है तथा अग्नि प्रदिप्त होती है।

सं. वि.—यह औषध उग्र वातानुलोमक, वात नाडी विकृति जन्य कोष्ठदोष नाशक, श्लेष्मकला शोथ, कोथ और क्षोभनाशक, आक्षेपनाशक तथा पाचक और अन्त्रपोषक है। इसके सेवन से आम कफ और वायु द्वारा उत्पन्न होनेवाले आमाशय, ग्रहणी और अन्त्र के विकार नष्ट होते है। आध्मान, अरुचि, आमवात, शूल, अग्निमान्द्य, जीर्ण वातज और आमजन्य उदर विकार शीघ्र नष्ट होते हैं।

नोटः—सोंठ, मिर्च और पीपल के समान योग को त्रिकटु कहते हैं। इसको गुड अथवा मधु मिलाकर चाटने से श्वास और कास रोग का नाश होता है अथवा गुड के साथ गोली बनाकर चूसने से कण्ठ शुद्ध होता है। कास, श्वास की विकृति दूर होती है। यह पाचक, दीपक, आमशोषक और वातानुलोमक तथा आक्षेपनाशक है।

त्रिकट्वादि चूर्ण [भा. भै. र. २३२९]

(वृ. नि र.; वं. से., यो. र.। अम्ल.; वृ. यो. त.। त. १२२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिकटु, कटेली, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, इन्द्रजौ, सौराष्ट्री, पटोलपत्र, त्रायमाणा, दारुहल्दी, मूर्वा, कुटकी, कमलनाल, सफेद चन्दन, कुडे की छाल, इलायची, चिरायता, वच, अतीस, केसर, अजवायन, मुल्हैठी और सुहाञ्जने के बीज प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समभाग लेकर एकत्र मिश्रित कर प्रयोग में लावे।

मात्राः—१ से ६ मासे तक। जल अथवा मधु के साथ। प्रातः काल।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अम्लपित्त, प्रायः अधोगत अम्लपित्त कुछ दिन में ही नष्ट हो जाता है।

सं. वि.—यह औषध कफ-वात नाशक, पित्तशामक, आक्षेपनाशक, दाहनाशक, रुचिकर, आमनाशक, अन्त्रपोषक, सहज रेचक है तथा आमाशय, ग्रहणी और अन्त्र के किसी भाग मे पित्तज, विषज तथा अवयव विकृतिजन्य अम्लपित्त का नाश करनेवाली है। इसका सेवन ऊर्ध्व अधोगत दोनों ही प्रकार के अम्लपित्त मे लाभप्रद होता है। वात-पित्तानुलोमक होने से ऊर्ध्वगत अम्लपित्त का नाश करती है और सहज रेचक, दाहनाशक, शीतवीर्य होने से अधोगत अम्लपित्त का नाश करती है।

त्रिफला चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड, बहेडा और आमला प्रत्येक का गुठलियो रहित चूर्ण समान भाग लेकर मिश्रित कर प्रयोग मे लावे।

मात्राः—२ से ६ मासे। दूध, मधु या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह, नेत्ररोग, अरुचि, कुष्ठ, ज्वर तथा कफ-पित्तज दोषों का नाश होता है ।

सं. वि.—त्रिफला दीपक, दृष्टिवर्द्धक, रोचक, मलशोधक, ज्वरनाशक, दाहनाशक, रक्तशोधक तथा प्रमेहनाशक है । इसके सेवन से शरीर निरोग रहता है । कोई विकृति नही होने पाती ना ही अनावश्यक मल का संचय होता है और ना शरीर ही दुष्ट होता है ।

दशनसंस्कार चूर्ण [भा. भै. र. २९४६]

(धन्वं.; भै र. । मुखरो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—साठ, हरीतकी (हैड), नागरमोथा, खैरसार, कपूर, सोपारी की भस्म, कालिमिर्च, लैग, दालचीनी प्रत्येक का समभाग चूर्ण लेकर एकत्र खरल करें तथा इसमें मिश्रण के समान खडिया मिट्टी का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करके भलीभान्ति खरल करे ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस चूर्ण से दान्तो को साफ किया जाता है ।

सं. वि.—इस मञ्जन के लगाने से मुख की दुर्गन्धि दूर होती है । दान्त साफ रहते है, मसूडों का फूलना, उनसे रक्त पडना और मसूडों के दाष के कारण शीघ्र ही मुखमे छाले पड जाना आदि मुखरोग नष्ट होते है ।

दाडिमाष्टक चूण [भा. भै. र. २९५९]

(ग. नि. । चूर्णा., वै. र.; वृ. नि. र. । संग्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—अनारदाना ८ पल (४० तोले), चतुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) २ पल, जीरा और धनिया १/२—१/२ पल, त्रिकुटा और पीपलामूल प्रत्येक १—१ पल, वंसलोचन और सुगन्धवाला १—१ कर्ष (१।—१। तोले) और खांड ८ पल ले । प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण को यथा मात्रा लेकर सबको एकत्रित खरल करें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१ से ४ मासा तक । ऊष्ण जल, छाछ, मधु और जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से आमातिसार, खांसी, हृदय और पार्श्वशूल, हृद्रोग, गुल्म, ग्रहणी और अग्निमान्द्य का नाश होता है ।

सं. वि.—यह औषध पाचक, दीपक, आमपाचक, रुचिकर, आक्षेपनाशक, वातानुलोमक, उदरकला—शैथिल्य नाशक और अन्त्र दौर्बल्य नाशक है । इसके सेवन से जीर्ण

अजीर्ण नष्ट होता है। अन्त्र की शिथिलता नष्ट होती है। अग्नि प्रदीप्त होती है। २-२, ४-४ दिन पश्चात् होनेवाले आमसंग्रह के कारण अतिसार और प्रवाहिका इसके सेवन से नष्ट होते है।

द्राक्षादि चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधान—द्राक्ष ३७ सेर, कालीमिर्च ६। सेर, सैंधव ६। सेर, शर्करा १० सेर, जीरा १॥ सेर, साइट्रिक अम्ल १॥ सेर, चुका ६। सेर प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित करें और ३-३ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्राः—४ से १० गोली तक खावें।

सं. त्रि.—यह औषध रुचिकर, मुख दुर्गन्ध नाशक, कण्ठ शोधक, पाचक, अग्निवर्द्धक, श्लेष्म विलयक, कास, अजीर्ण, अरुचि आदि रोगों पर लाभदायक है।

दीनदयाल चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सनाय, सेधानमक, छोटी हैड और सौंफ प्रत्येक द्रव्य का समभाग चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित कर प्रयोग मे लावें।

मात्राः—३ से ६ मासा तक। जल के साथ दे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कोष्ठवद्धता का नाश होता है।

सं. वि.—यह रेचक, वातानुलोमक, आमनाशक और साधारण पाचक है। इसके सेवन से कोष्ठवद्धता द्वारा होनेवाले विकार मल के निस्सरण से नष्ट हो जाते है।

धातुपुष्टि चूर्ण [आरो. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—शतावर, गोखरू, बीजबन्द, वंसलोचन, कबाबचीनी, चोपचीनी, कौच के बीज, सफेद मूसली, शाहमूसली, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शालमिश्री और विदारी कन्द, इन १४ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण १-१ तोला, निसोत का चूर्ण ६ तोला और चूर्णित मिश्री २० तोला लेकर सबको एकत्रित खरल करे और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—३ से ६ मासे तक दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म— यह चूर्ण धातुवर्द्धक और पौष्टिक है।

सं. वि.—इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है, शरीर पुष्ट होता है, दाह क्षीणता, वीर्य हीनता, प्रमेह आदि रोगों का नाश होता है।

नागकेसरादि चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—नागकेसर ४ तोला, वेलगिरि २ तोला, अनीसून २ तोला, सैंफ २ तोला, खसखस १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, धनिया १ तोला, मोचरस १ तोला, खस १ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, कर्पूर कचरी १ तोला, जल से धोकर सुखाई हुई भांग ५ तोला और मिश्री ५ तोला ले सबका एकत्र कपडछन चूर्ण करके रख लेवें।

मात्राः—२ से ३ मासा।

अनुपानः—जल।

उपयोग—पित्तातिसार और रक्तातिसार में यह उत्तम योग है। इस चूर्ण को अकेले या रसपर्पटी के साथ मिलाकर देवें।

नारायण चूर्ण [भा. भै. र. ३४३५]

(वृ. यो. त. । त. १०५; वं. से.; यो. र.; र. र.; वृ. मा., च. द. । उदरा; आयुर्वेद. वि. । अ. १०, भा. प्र. । खं. २. उदरा.; ग. नि.। चूर्णा.; यो. त. । त. ५३.; वा. भ. । चि. अ. १५.; शा, ध. । म. ख. अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अजवायन, हाउवेर, धनिया, त्रिफला, कलौंजी, काला जीरा, पीपलामूल, अजमोद, सठी (कचूर), वच, सोया, जीरा, स्वर्णक्षीरी, चीतामूल, यवक्षार, सज्जीक्षार, पोखरमूल, कूठ, पांचों नमक और बायविडङ्ग प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १–१ भाग और दन्तीमूल का चूर्ण ३ भाग, निसोत और इन्द्रायण का चूर्ण २–२ भाग और सातला चूर्ण ४ भाग लेकर सबको एकत्र मिश्रित कर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—३ से ६ मासे तक।

अनुपानः—(१) उदररोग मे तक्र के साथ।
(२) गुल्म में बेर के क्वाथ के साथ।
(३) वायु निरोध में सुरा के साथ।
(४) वातजरोग में प्रसन्ना (सुराभेद) के साथ।
(५) कोष्ठबद्धता मे दही के तोड के साथ।
(६) अर्श में अनार के रस के साथ।
(७) परिवर्तिका (कैंची के काटने के समान पीडा) में इमली के पानी के साथ।
(८) अजीर्ण में ऊष्ण जल के साथ।
(९) यथावश्यक रोगानुसार अनुपान के साथ लें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से उदररोग, गुल्म, वातनिरोध, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, भगन्दर, पाण्डु, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी, कुष्ट, अग्निमान्द्य, ज्वर, दंष्ट्राविष, मूलविष, गरविष आदि नष्ट होते है ।

नोटः—प्रथम रोगी को स्निग्ध करके चूर्ण सेवन कराया जाय तो भलीभान्ति विरेचन होता है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक है । वात का अनुलोमन करती है और वातनिरोध द्वारा होनेवाले हृदय, कण्ठ, फुफ्फुस, ग्रहणी आदि विकारों को नष्ट करती है । यह कोष्ट शोधक है अतः रक्तशोधक भी है । कोष्टशोधक होने से मूल विष और दुष्ट विष का नाश करती है और रक्तशोधक होने से रक्तदोष, कुष्ट इत्यादि को मिटाती है । यह पाचक और आमनाशक है अतः ज्वरनाशक और गलग्रह नाशक भी है ।

नारिकेल योग [भा. भै. र. ३६७५]

(भा. प्र. । म. खं. शूला ; वृ. नि. र.; व. से. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जलयुक्त नारियल के अन्दर जितना आ सके उतना सेंधानमक भरदे उसके ऊपर मिट्टि का एक अंगुल मोटा लेप करदें और उपलों की अग्नि में उसे पकावें । जब ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय तब नारियल को ठण्डा करके उसके भीतर से नमक मिश्रित जल को निकाल दे ।

मात्राः—१-१ मासा अथवा यथावश्यक ४ से ८ रत्ती तक । पीपल का चूर्ण मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज परिणाम शूल नष्ट होते हैं ।

सं. वि.—यह मूत्रल, वातानुलोमक, सहज रेचक, आक्षेपनाशक और कोष्ठशोधक है। इसके सेवन से वात तथा आम द्वारा उत्पन्न हुये उदर के शूल, वातनिरोध, आध्मान और मलबद्धता नष्ट होती है ।

पञ्चसम चूर्ण [भा. भै. र. ३८८७]

(ग. नि. । परिशिष्ट चूर्णा., भै. र. । शूला., यो. र. । आमवा.; शा. ध. । चूर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड, सोंठ, जीरा, कालानमक और निसोत प्रत्येक द्रव्य का समभाग चूर्ण लेकर एकत्रित घोटकर सुरक्षित रखें ।

मात्राः—३ से ६ मासे तक । उष्ण जल के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निदीप्त होती है और उत्साह की वृद्धि होती

है तथा गुल्म, प्लीहा, आध्मान और विष नष्ट होते है। यह औषध रुचिकारक और साम वायु में विशेष उपयोगी है।

सं. वि.—साम वायु में इसका प्रयोग विशेष लाभप्रद है अतः यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि यह औषध आमपाचक, वातानुलोमक, सहज रेचक और अग्निदीपक है। इसके सेवन से उदरगत वायु द्वारा होनेवाले विकार नष्ट होते है।

पञ्चकोल चूर्ण [भा. भै. र. ३८७९]

(शा. ध. । खं. २ अ. ६; भै. र. । ज्वरा.; यो. त. । त. १८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतामूल और सोंठ प्रत्येक के समभाग चूर्ण को लेकर एकत्र मिश्रित करके प्रयोग मे लावें।

मात्राः—३ मासे से ६ मासे तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह रुचिकर, पाचक और दीपन है। इसके सेवन से आनाह, प्लीहा, गुल्म, शूल और कफज उदर रोग नष्ट होते हैं।

सं. वि.—कोल मात्रा में प्रयुक्त होने से इसे पञ्चकोल कहा गया है। कोल अर्थात् १ तोला। यह रस और पाक में कटु, रुचिकर, तीक्ष्ण, पाचन, दीपन, वात-कफनाशक, पित्त-प्रकोपक, श्लेष्मकलाओं के विकारों को दूर करनेवाला और आध्मान, प्लीहा, गुल्म आदि रोगों को नाश करनेवाला है।

पामारि चूर्ण [आरो. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अशुद्ध गन्धक २ तोला, मनसिल, कालीमिर्चे, कमीला और दारुहल्दी प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला, नीलाथोथा, मुर्दाशंख (मुर्दासिंगी), सुहागा और सिन्दुर प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १/२-१/२ तोला ले। सम्पूर्ण द्रव्यो को एकत्र मिश्रित कर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

उपयोग—सरसों के तेल में मिलाकर खुजली पर मालीश करने से ३-४ दिन में रोग मिट जाता है। यह औषध तीव्र है अतः औषध और तेल का अनुपात अधिक होना चाहिये। अर्थात् चूर्ण की मात्रा न्यून और तेल की मात्रा अधिक हो, एक तोले और १० तोले के अनुपात से प्रयोग युक्ति संगत होगा। यदि रोग भयङ्कर हो तो अनुपात समान भी कर सकते हैं।

पुनर्नवादि चूर्ण [भा. भै. र. ३९७७]

(ग. नि.; भै. र.; वं. से.; वृ. नि. र.; यो. र.; वृ. मा.। शोथा.; वृ. यो. त.। त. १०६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पुनर्नवा (साठी), गिलोय, पाठा, देवदारु, बिल्व, गोखरू, दोनों कटेली, हल्दी, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रकमूल प्रत्येक द्रव्य का समभाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित करें ओर सुरक्षित रक्खें।

(**नोटः**—भैषज्य रत्नावली मे गिलोय की जगह हैड, पीपलामूल की जगह पीपल तथा गजपीपल लिखा है और वासा अधिक लिया है।)

मात्राः—३ मासे से ६ मासे तक। गोमूत्र या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—सम्पूर्ण शरीरगत शोथ, आठों उदररोग और भयङ्कर व्रण इसके सेवन से शीघ्र नष्ट होता है।

सं. वि.—यह औषध मूत्रल, विषघ्न, रक्तवर्द्धक, आमनाशक, पाचक, दाह, शोथ, अजीर्ण आदि रोगों के लिये लाभकारी है।

पुष्यानुग चूर्ण [भा. भै. र. ३९८५]

(भै. र.। स्त्री.; ग. नि.। चूर्णा, र. र.; वृ. मा.। प्रदरा.; च. द.। असृग्द.; वा. भ.। उ. अ. ४४; च. सं.। चि. अ. ३०; योनिरोग, वं. से.; यो. र.; नि. र.। स्त्री.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पाठा, जामुन की गिरी, आम की गिरी, पाषाणभेद, रसोत, अम्बष्ठा, मोचरस, मजीठ, कमलकेसर, अतीस, नागरमोथा, वेलगिरी, गेरु (स्वर्णगैरिक), कायफल, कालीमिर्च, सोंठ, मुन्नका, रक्त चन्दन, सोनापाठा (अरलू की छाल), इन्द्रजौ, अनन्त मूल, धाय के फूल, मुल्हैठी और अर्जुन की छाल प्रत्येक का समभाग चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रण करें।

नोटः—(१) सब द्रव्य पुष्य नक्षत्र में एकत्र करें। क्यों कि पुष्य नक्षत्र में इसका निर्माण किया जाता है अतः इसे पुष्यानुग चूर्ण कहते हैं।

(२) अम्बष्ठा दक्षिण में होती है। कोई २ आचार्य इसके स्थान पर लक्ष्मणा का प्रयोग करते है।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। मधु मिलाकर चाटें और ऊपर से चावल का धोवन पीवें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रक्तप्रदर, रक्तातिसार, योनिदोष, श्वेत, नील, पीत्त, कृष्ण प्रदर और प्रसूतरोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह चूर्ण योनि की श्लेष्मकला-उग्रता, शिथिलता, शोथ, रूक्षता आदि

के कारण उत्पन्न हुये रक्त, पीत्त, श्वेत और कृष्णप्रदर आदि रोगों को नष्ट करता है। यह योनि शोथ, योनि कण्डू, योनि शैथिल्य आदि रोगों को मिटाता है। इसके सेवन से शरीर की दाह, आलस्य तथा असामयिक ऋतुस्राव, अतिस्राव आदि रोग नष्ट होते हैं।

बालपञ्चभद्र [सि. यो. सं.]

औषध और निर्माण विधि—यशदभस्म १/२ तोला, रससिन्दुर १ तोला, गोरोचन १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला और गोदन्तीभस्म ८ तोला लें। सबको १ दिन खरल में मर्दन करके शीशी में भरलें।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ रत्ती शहद में मिलाकर चटावें और ऊपर से गाय का दूध देवें।

उपयोग—बालको को पाण्डु रोग, जीर्णज्वर और बाल शोष में दिन में ३–४ बार इसका प्रयोग करें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

बालचातुर्भद्र चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधि—नागरमोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकडासिंगी प्रत्येक समभाग लें, कपडछन चूर्ण करके शीशी में भर लेवें।

मात्रा और अनुपानः—२ से ८ रत्ती चूर्ण शहद में मिलाकर दिन में ३–४ बार यथावश्यक देवें।

उपयोग—बालकों के ज्वर, अतिसार, खांसी और वमन में इसका प्रयोग करें।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

बृहन्नायिका चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—चित्रकमूल की छाल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, बायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, कच्चे बेल की गिरी, अजवायन, गाय के घी में भुनी हुई हींग, सैन्धव, सामुद्रलवण, सांभरलवण, नौसादर, सोंचर (कालानमक), गृहधूम, वच, कूठ, नागरमोथा, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, सज्जीखार, जवाखार, अग्नि पर फुलाया हुवा सुहागा, अजमोद, शुद्ध पारद, सौंफ, इन्द्रयव, अतीस, धनिया, चव्य (चव) और जायफल प्रत्येक १–१ भाग जल से धोकर सुखाई हुई भांग सबके बराबर। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें अन्य द्रव्यों का कपडछन चूर्ण मिला ३ घण्टा मर्दन करके शीशी में भरें।

मात्राः—१ से ३ मासा तक। दिन में ३–४ बार।

अनुपान—जल, छाछ या दाडिम का रस ।

उपयोग—यह चूर्ण दीपन, पाचन और संग्राही है। अग्निमान्द्य, अतिसार और ग्रहणी में इससे विशेष लाभ होता है । [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

———०———

भूनिम्बादि चूर्ण [भा. भै. र. ४८३७]

(ग. नि.; वृ. नि. र.; यो. र. । ग्रहण्य.; यो. त. । त. २२.; च. सं. । चि. अ. १९ ग्रहणी.; वं. से., च. द.; वृ. मा. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चिरायता, इन्द्रजौ, त्रिकटु, नागरमोथा और कुटकी प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १।-१। तोला, चीते की जड का चूर्ण २॥ तोला और कुडे की छाल का चूर्ण २० तोले लेकर सबको एकत्र कर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें ।

मात्राः—२ से ६ मासे तक । गुड के शर्बत के साथ या मस्तु के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से ग्रहणी रोग का नाश होता है ।

सं. वि.—यह औषध पाचक, रोधक, दाहनाशक, अग्निवर्द्धक और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डु, कामला, ज्वर, प्रमेह, अरुचि और अतिसार का नाश होता है। यह पित्तशामक औषध है । पित्त द्वारा होनेवाले उदर विकार इसके सेवन से नष्ट होते है ।

———०———

मदयन्त्यादि चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—छाया में सुखाये हुये मेंहदी के बीज या पत्ती का कपडछन्न चूर्ण २ भाग और भंगरे के रस मे शुद्ध किये हुये गन्धक का कपडछन्न चूर्ण १ भाग लें । दोनों को ३ घण्टे मर्दन करके शीशी में भर लेवें ।

मात्रा और अनुपान—१ मासा दिन मे २-३ वार जल या सारिवादि हिम के के अनुपान से देवें ।

उपयोग—कण्डू (खाज), पामा और फोडे-फुन्सी मे इसका प्रयोग करें ।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

——— ———०———

० महाषाण्डव चूर्ण [भा. भै. र. ५१२३]

(ग. नि. । चूर्णा.; वं. से. । अरोचका.; शा. ध. । खं. २ अ. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—तालीसपत्र, कालीमिर्च, चव, नागकेसर और सेधा-नमक प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १-१ भाग, पीपल, पीपलामूल, तिन्तडीक, चीता, दालचीनी

और जीरा प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण २–२ भाग, सोंठ, इलायची, वेल, अम्लवेत, नागरमोथा, धनिया और अजमोद प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ३–३ भाग, सम्पूर्ण द्रव्यों को मिश्रित करके उसमें मिश्रण का चतुर्थांश (९॥ भाग) अनारदाना तथा खांड सम्पूर्ण योग से आधी (२२॥। भाग) मिश्रित करके सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह चूर्ण कण्ठरोग, मुखरोग, उदररोग, हृद्विकार, गुल्म, आध्मान, विषुचिका, अर्श, श्वास, छर्दी, कृमि, कास, अरुचि, अतिसार और मूढवात को नष्ट करता है। यह जठराग्नि दीपक है।

सं. वि.—यह चूर्ण पाचक, वातानुलोमक, आक्षेपनाशक, कण्ठशोधक, अग्निवर्द्धक, कफ वात नाशक, दुर्गन्ध नाशक और उदर विकार नाशक है। इसके सेवन से उदर विकारों से होनेवाले क्षोभ, दाह, वातसंचय, कफप्रकोप, आमसंचय, अजीर्ण, वातनिरोध और वात प्रतिलोम द्वारा होनेवाले कण्ठ विकार, कास, श्वास-तथा आम द्वारा उत्पन्न हुई अग्निक्षीणता, अर्श, और अरुचि का नाश होता है।

मालती चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध खर्पर २ सेर, हैड २ सेर, इलायची दाना १ सेर, प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण एकत्र मिश्रित कर प्रयोग में लावें।

मात्राः—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह शिशुओं के लिये पोषक और दोषनाशक औषध है।

सं. वि.—यह औषध कण्ठशोधक, दाहनाश, पौष्टिक, नेत्र शक्तिवर्द्धक, रक्तपित्त दोष नाशक और सुकुमार शिशुओं को सर्वदा शक्तिप्रद है।

मृतिका विरेचन चूर्ण (मृद्विरेचन रसः) [भा. भै. र. ५६६३]

(र. चं. । पाण्डु; वृ. नि. र. । वाल. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—छोटी इलायची १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध मुर्दासिंग २ भाग और सोया ३ भाग, प्रत्येक के सूक्ष्म चूर्ण को उक्त मात्रा में मिश्रित कर रखलें।

मात्राः—२ मासा तक। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—५ दिन तक इसका सेवन करने से बच्चों की खाई हुई मिट्टी विरेचन द्वारा निकल आती है।

सं. वि.—इस औषध की क्रिया अन्त्र की श्लेष्मकलाओ पर होती है। पाचक और स्रावक रसों को उत्पत्ति करके यह अन्त्र का शोधन करती है। क्यों कि यह औषध कृमिघ्न और जन्तुघ्न है अतः अजीर्ण का नाश करती हुई कृमियों को नष्ट करती है।

यवक्षारादि चूर्ण [भा. भै. र. ५७५३]

(वैद्यामृत)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—यवक्षार, अजवायन, सेंधानमक, अम्लवेतस, हैड, वच और घी में भुनी हुई हींग का समभाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर सबको एकत्र खरल करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से २ मासा। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से १ सप्ताह में शूल और उपद्रव युक्त गुल्म भी अवश्य नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग जठराग्निवर्द्धक है।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, मूत्रल, पाचक, सहज रेचक और वात द्वारा होनेवाले शिशुओं के कासादियों को भी उसी प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार शूल, गुल्म, अजीर्ण, आध्मान और अरुचि को।

यवानीखाण्डव चूर्ण [भा. भै. र. ५७५७]

(यो. र.; वृ. मा ; भै. र.; र. र.; च. द. । अरु.; हा. सं. । स्था. ३. अ. ६.; वृ. यो. त. । त. ७६ तथा ८३; च. सं. । चि. स्था.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अजवायन, तिन्तडीक, सोठ, अम्लवेतस, अनारदाना और खट्टेबेर प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १।-१। तोला, धनिया (हारित सहिता में धनिये का अभाव है), कालानमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १/२-१/२ कर्ष, पीपल नग १०० का सूक्ष्म चूर्ण, कालीमिर्च नग १०० का सूक्ष्म चूर्ण और खांड १० तोले इन सब द्रव्यों को मिश्रि करके यथा विधि प्रयोग मे लावें।

मात्राः—१ से ६ मासे तक। जल या मधु मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अरुचि नष्ट होती है। यह चूर्ण जिह्वा को शुद्ध करता है। हृद्य और दीपन है तथा हृत्पीडा, पार्श्व शूल, विबन्ध, अफारा, खांसी, श्वास, ग्रहणी और अर्श का नाश करता है तथा यह ग्राही है।

सं. वि.—यह औषध ग्रहणी दोष नाशक और दीपन है। इसके सेवन से ग्रहणीस्थान

विकार के कारण होनेवाले वात–कफ और आम के रोग नष्ट होते है। अग्निप्रदीप्त होती है और दोषों का अनुलोमन होता है।

रसायन चूर्ण [आ. औ.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—स्वच्छ आमला, गोखरू और गिलोय प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर भलीभान्ति मिश्रित करें।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। शक्कर मिलाकर दूध या जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह, वीर्यस्राव, शरीर दाह और दौर्बल्य का नाश होता है।

सं. वि.—यह योग दाहनाशक, शरीरपोषक, मूत्रल, रक्तवर्द्धक, प्रमेहनाशक, शोथ नाशक तथा ज्वरघ्न है। इसका सेवन साधारणतया ऊष्ण प्रकृति के स्त्री पुरुषों के लिये हितावह है। कलाओं की शिथिलता को दूर कर उनमे दृढता उत्पन्न करता है। यह प्रदर नाशक रसायन है।

रास्नादि चूर्ण [आ प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रास्ना, पुष्करमूल, सुहाञ्जना, बेलगिरी, चीतामूल की छाल, सेधानमक, गोखरू और पीपल, इन ८ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण एकत्र मिश्रित कर प्रयोग मे लावें।

मात्राः—१॥ मासे से ४ मासे तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुधणर्म—इसके सेवन से आमवात, संधिशोथ, वातज वेदना आदि वातज रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, आमशोषक, मूत्रल, वातानुलोमक और रस तथा विपाक मे कटु और वीर्य में ऊष्ण है। इसके सेवन से रूक्ष शीत गुण द्वारा कुपित वात के कारण होनेवाले आमवात आदि विकार नष्ट हो जाते है तथा परिपूर्ण ऊष्मा की वृद्धि होकर रक्त का परिभ्रमण बढता है और वात के कारण रहनेवाले अपुष्ट भागों को पोषण मिलता है। यह अन्त्र में होनेवाले आम और वात रोगों को नाश करने के लिये उत्तम है।

लघु सुदर्शन चूर्ण [र. तं. सा.]
(यो. र.)

बनावट—गिलोय, छोटी पीपल, हरड, पीपलामूल, सफेद चन्दन, कुटकी, नीम की

अन्तर्छाल, सोंठ और लौंग सब समभाग और सबके वजन से आधा चिरायत मिलाकर बारीक चूर्ण करें।

मात्राः—२ से ४ मासे दिन में ३ बार जल के साथ।

उपयोग—यह चूर्ण सब प्रकार के नये और पुराने बुखार, मन्दाग्नि और शिरदर्द को दूर करता है। अर्क बनाकर देने से कडवापन चला जाता है, जिससे सबकोई ले सकते हैं और गुण भी पूरा करता है।

किसी २ की देह में मेद अत्यधिक बढ जाने से भयङ्कर प्रस्वेद आता रहता है। शीत काल में भी प्रस्वेद से कपडे भीग जाते हैं उनको यह चूर्ण भोजन के बीच में शहद या शक्कर के साथ देते रहने से प्रस्वद कम हो जाता है। मात्रा ५—६ रत्ती।

सगर्भा स्त्री को मलेरिया आने पर उसे शीत कम्प अधिक त्रास पहुंचाता है, तृषा, शिरदर्द फिर अति प्रस्वेद आना, थकावट, घबराहट आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस पर इस लघु सुदर्शन चूर्ण का फाण्ट बनाकर देने से ज्वर निवृत हो जाता है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

लवणभास्कर चूर्ण [भा. भै. र. ४८३३]

(शा. ध. । खं. २ अ. ६, यो. र. । गुल्मा., यो. र.; वृ. मा.; वं. से. । अजीर्णा., च. द.; भै. र.; र. र. । अग्निमान्द्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—समुद्रलवण १० तोले, संचल (काला नमक) ६। तोले, विडलवण, सेंधानमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, काला जीरा, तेजपात, नागकेसर, तालीसपत्र और अम्लवेतस प्रत्येक २॥—२॥ तोला, कालीमिर्च, जीरा, सोंठ १।—१। तोला, अनारदाना ४ तोला, दालचीनी और इलायची ७॥—७॥ मासे प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण उपरोक्त प्रमाण में लेकर एकत्रित खरल करें और उसे ७ भावना निम्बु के रस की दे। तत्पश्चात् सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—१ से ५ मासे तक। मस्तु, छाछ, सुरा या आसव के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वातकफज गुल्म, प्लीहा, उदररोग, आन्त्रिक क्षय, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबन्ध, भगन्दर, शोथ, शूल, श्वास, कास, आमदोष, हृद्रोग और मन्दाग्नि का नाश होता है।

यह भास्कर द्वारा कथित औषध है।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, आमनाशक, अग्निवर्द्धक, मलशोधक, वातकफज रोग

नाशक, वातानुलोमक, मूत्रल, कोथ, क्षोभ, दाह, अन्त्राक्षेप और आम तथा दुष्ट अन्न द्वारा उत्पन्न हुये विष का नाश करती है।

शास्त्रकार ने ठीक ही कहा है कि यह औषध आम, कफ और वात द्वारा होनेवाले उदर रोगों के लिये अत्युत्तम है। उदर विकार के कारण होनेवाले रक्तदोष, त्वकदोष, अर्श, भगन्दर, श्वास, कास, हृदयरोग आदि को यह आन्त्रिक दोषों को दूर कर इन रोगों के कारणों का नाश कर देती है और फिर शुद्ध रस और रक्त द्वारा पोषित ये अङ्ग अपनी क्षतियों को शीघ्र ही विकार कारण विनाश पश्चात, पूर्ण कर लेते है। अधिकतर ग्रहणी के विकार के कारण आम बनता है जिससे दुष्ट रस की उत्पत्ति होती है अथवा तो रस बनता ही नहीं। दुष्ट रस से पुष्ट शरीर अनेक व्याधियों का मूल बन जाता है और रस द्वारा अपुष्ट शरीर शुष्क और वात विशिष्ट बन जाता है। दोनों ही कारण विविध रोगो के उत्पादक होनें स्वाभाविक है। शिथिल अन्त्र दीर्घकाल तक आम विकार से पीडित होकर बसामय ही परिवर्तन नहीं होता, अपितु उसमें क्षय जैसे विकृत रोग भी उत्पन्न हो जाते है। लवण भास्कर का सेवन आमजन्य सभी दोषों से अन्त्र को मुक्त रखता है, अत यह मेद आदि रोगों का भी नाशक है।

लवङ्गादि चूर्ण [भा. भै. र. ६२२७]
(ग. नि. चूर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—लौंग, जायफल, पीपल, प्रत्येक का चूर्ण १।—१। तोला, मिर्च का चूर्ण २॥ तोला, सोंठ २० तोला और मिश्रि सब के बराबर (२६। तोला) लेकर सबको एकत्र मिश्रित कर प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—३ से ६ मासे तक। जल या मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से खांसी, क्षय, अरुचि, प्रमेह, अर्श और संग्रहणी का नाश होता है तथा हृदय, कण्ठ और मुख शुद्ध होता है। यह अग्निदीपक है।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, कण्ठशोधक, रुचिकर, स्तम्भक, वीर्यवर्द्धक, आमपाचक, वातानुलोमक और वात—कफ तथा आमनाशक है। इसके सेवन से वात कफ और आम द्वारा होनेवाले उदर विकार शीघ्र नष्ट होते है।

लाई चूर्ण [भा. भै. र. ६३५६]
(वृ. मा.; वृ. नि. र. । ग्रहण्य)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—त्रिजातक (१. दालचीनी, तेजपात, इलायची, २. सोंठ, मिर्च, पीपल, ३. हैड, बहेडा, आमला), शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अजमोद, सोंठ,

बायविडङ्ग, विल्व, हल्दी, चीतामूल, जीरा, लौंग, धनिया, गजपीपल, मुलहैठी, पांचोंनमक, हींग, तुनवृक्षका सार, मोचरस, जवाखार और सज्जीखार प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग तथा भांग सबसे चौथाई (६। भाग) लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें तत्पश्चात् पृथक २ तैयार किये हुए उपर्युक्त मात्रा में प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण एकत्रित करके कज्जली के साथ मर्दन करें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—१ मासा। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—इसके सेवन से सूतिका रोग और संग्रहणी शीघ्र नष्ट होते हैं। यह अग्निवर्द्धक है। शास्त्रकार का यह अनुभूत प्रयोग है।

सं. वि.—यह औषध दीपक, पाचक, संग्राही, शोधक, रोचक, आमनाशक, मूत्रल, कृमिघ्न, वातानुलोमक, अन्त्राक्षेपनाशक और ग्रहणीदोष नाशक है। इसके सेवन से श्लेष्मकला तथा अन्त्र का शैथिल्य दूर होता है उदरस्थ प्रत्येक अङ्ग प्राकृत अवस्था में स्थायी हो जाता है तथा विकृत क्रिया से मुक्त हो जाता है।

---

७ वडवानल चूर्ण [भा. भै. र. ६५९२]

(शा. ध. । खं. २; अ ६; ग. नि. । चूर्णा. ३; वं. से. । अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सेंधानमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चीता ५ भाग और हैड ७ भाग, प्रत्येक के सूक्ष्म चूर्ण को एकत्र कर प्रयोग में लावे।

मात्रा:—२ से ३ मासा तक। ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अग्निदीप्त होती है।

सं. वि.—यह चूर्ण दीपक, वातानुलोमक और मलशोधक है। इसके सेवन से वात-कफ और आमज अन्त्र विकार नष्ट होते हैं।

विडङ्गतण्डुल चूर्ण [भा. भै. र. ६६०५]

(वा. भ. । क. अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—बायविडङ्ग के चावल, त्रिफला, यवक्षार और पीपल प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १-१ भाग तथा निसोत का सूक्ष्म चूर्ण सबसे आधा (२ भाग) लेकर एकत्र मिश्रित करें।

मात्रा:—१ से ३ मासे तक। मधु और घी या गुड के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गुल्म, प्लीहा, कास, हलीमक, अरुचि और कफ वातज अनेक रोग नष्ट होते है ।

सं. वि.—यह औषध पाचक, कफवात नाशक, कृमिघ्न, अन्त्रशोधक, अग्निवर्द्धक और उदर विकार के कारण होनेवाले कफ–वात और आमजन्य रोगों को नाश करनेवाली है । इसके सेवन से आम की विकृति द्वारा उत्पन्न हुए ग्रन्थि विकर, कण्ठ, यकृत और अरुचि का नाश होता है।

विदारी चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बिदारीकन्द, गोखरू, श्वेत मूसली, आमला, सेंधानमक, पीपल, प्रत्येक का समभाग चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित करें और मिश्रित चूर्ण के समान खांड मिलाकर प्रयोग में लावें ।

मात्राः—३ से ६ मासा तक । दूधके साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह वीर्यवर्द्धक है तथा मूत्रदोषो का नाश करता है ।

सं. वि.—यह शीतवीर्य, पाचक, वीर्यवर्द्धक, वातानुलोमक, मूत्रल और दाहनाशक औषध है । यह पौष्टिक और शुक्रवर्द्धक है ।

बिल्वादि चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—कच्चे बेल की गिरी १ भाग, मोचरस १ भाग, सोंठ १ भाग, जल से धोकर सुखाई हुई भांग १ भाग, धाय के फूल १ भाग, धनिया का चूर्ण २ भाग और सौफ का चूर्ण ४ भाग लेवें। प्रथम बेल की गिरी, सोठ और मोचरस के सरौते से छोटे छोटे टुकडे करें, फिर सब द्रव्यो को एकत्र कर छोटी कढाई में मन्द आंच पर सौंफ की थोडी सुगन्ध आने लगे इतना सेक कूटकर कपडछन चूर्ण करें ।

मात्राः—१–२ मासा ।

अनुपान—ठण्डा जल, दाडिम का रस या छाल ।

समय—३–४ घण्टे बाद दिन मे ४–५ बार देवें ।

गुण और उपयोग—यह योग उत्तम पाचन, दीपन और ग्राही है । अतिसार मे केवल रस पर्पटी के साथ मिलाकर देवें। प्रवाहिका (पेचिस–मरोड के साथ आंव और रक्त मिला हुवा दस्त आना) में जरासा घी या एरण्ड तेल लगाकर सेकी हुई छोटी हरड का चूर्ण समभाग मिलाकर अर्क सौफ या इसबगोल के लुआब के साथ देवे । प्रवाहिका के लक्षण जैसे २ कम होते जावे वैसे २ छोटी हरड के चूर्ण का प्रमाण कम करना चाहिये। ग्रहणी रोग

में रस पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, सुवर्ण पर्पटी के योगों के साथ मिलाकर देवें। अतिसार में आरम्भ से रोग अच्छा होने तक किसी भी अवस्था में इसका प्रयोग कर सकते हैं।

[सिद्धयोगसंग्रह से उद्धृत]

वृद्ध गङ्गाधर चूर्ण [१२३४]
(भा. प्र. । अतिसार.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नागरमोथा, अरलु (सोना पाठा), सोंठ, धाय के फूल, नेत्रबाला, बेलगिरी, मोचरस, पाठा, इन्द्रजौ, कुडे की छाल, आम की गुठली की गिरी, मजीठ और अतीस। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण समभाग लेकर सबको एकत्र खरल कर प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—१ से २ मासा तक। मधु और चावल के धोवन के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से सब प्रकार के अतिसार और ग्रहणी रोग अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध बहुत ही शीघ्र क्रियाकर और लाभप्रद है। इसके सेवन से अन्त्र की आमोत्पादक विकृत क्रिया विनष्ट होकर दोषों के संशमन के साथ २ पाचन की वृद्धि होती है। श्लेष्मकलाओं के दोषो का नाश होता है और उनका शैथिल्य दूर होता है। यह श्रेष्ठ औषधियों के स्थान पर प्रयुक्त की जाती है। यह औषध आमपाचक, मलावरोधक, वात नाशक, दाहनाशक और अन्त्रपोषक है।

शतावर्यादि चूर्ण [भा. भै. र. ७२८९]
(शा. ध. । ख. २ अ. ७.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शतावर, गोखरू, कौंच के बीज, नागबला. (गंगेरन) की जड, अतिबला (कंघी) की जड और तालमखाना। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण समभाग लेकर एकत्र मिश्रित करे।

मात्राः—३ से ६ मासा। गोदुग्ध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह बाजीकरण है।

सं. वि.—इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है। कामशक्ति जागृत होती है तथा यह वीर्यस्तम्भक है।

शंखावली चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शंखपुष्पी के स्वच्छ नवीन २ शुष्क पत्तों को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे।

मात्राः—१ से ४ मासा।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अपस्मार, कृमि, कुष्ठ, विष, बुद्धिभ्रम और मस्तिष्क दौर्बल्य के लिये हितकर है।

सं. वि.—शंखपुष्पी सहज रेचक, बुद्धिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, भ्रम, भ्रान्ति आदि मानसिक रोगों का नाश करनेवाली, रसायन, कषाय, ऊष्ण, स्मृति, कान्ति, बल और अग्निवर्द्धक है। इसके सेवन से बुद्धि की वृद्धि होती है, मानस रोगों का नाश होता है और अनिद्रा, नाडी दौर्बल्य आदि नष्ट होते है।

शिवाक्षार पाचन चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हिंग्वाष्टक चूर्ण २ भाग, हरीतकी चूर्ण २ भाग, सज्जीक्षार १ भाग सबको एकत्र मिश्रित कर प्रयोग मे लावे।

मात्राः—३ से ६ मासा। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह पाचक, रोचक, कोष्ठशोधक, वातानुलोमक और अजीर्ण नाशक है।

शुण्ठी पुट पाक

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—स्वच्छ सोंठ के चूर्ण को घी मे भूनकर प्रयोग में लावें।

मात्राः—१ से ४ मासा तक। ऊष्ण जल या यथादोषानुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अजीर्ण, आमसंग्रह और आध्मान का नाश होता है।

सं. वि.—शुण्ठी प्रसिद्ध औषध है। इसका सेवन अनेक रोगों में प्रशस्त है। आमदोषों में यह उत्कृष्ट क्रिया करती है। क्यों कि यह अग्नि गुण भूयिष्ट है अतः उदर के रसो का शोषण करती है। यह कफ वात नाशक, विपाक में मधुर, कटु, वृष्य, ऊष्ण, रोचक, हृद्य, लघु, दीपन और स्नेह युक्त है।

शृङ्गयादि चूर्ण [भा. भै. र. ७३२५]

(शा. ध. सं. । खं. २ अ. ६; वै. र. । कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—काकडासिंगी, अतीस और पीपल, प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समभाग लेकर एकत्र मिश्रित करें।

मात्राः—४ रत्ती से १ मासा तक। मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे चटाने से बालकों के ज्वर, खांसी और वमन का नाश होता है।

सं. वि.—केवल अतीस के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चटाने से भी बालकों के ज्वर आदि का नाश होता है फिर पीपल और काकडासिंगी के साथ बनाया हुवा यह चूर्ण पाचक, आमनाशक और ज्वरनाशक क्यो न हो ?

षड्धरण योग [सुश्रुत संहिता चि. अ. ४]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—चीतामूल की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, कुटकी, अतीस और हैड प्रत्येक द्रव्य का समान भाग चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित करें।

मात्राः—३ से ६ मासा तक। समशीतोष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह आमाशयगत वात को नाश करने के लिये तथा वातव्याधि नाशक उत्तम औषध है।

सं. वि.—शास्त्रकार ने आमाशय अर्थात् कफ स्थान मे प्रकुपित वात के लिये इस योग का निर्देश करते हुये लिखा है कि ७ रात्रि पर्यन्त इसका सेवन करें। इससे आमाशय के विकार यथा आमाशय-आक्षेप, आमाशय-शूल, आमाशय प्रसार और संकोच तथा आमाशयगत क्षोभ, दाह और वात आदि का नाश होता है। इसका सेवन कराने से पूर्व वमन कराना अधिक लाभप्रद है ऐसा करने से आमाशय मे एकत्रित दोष निराम हो जाते हैं और फिर उन्हे स्थानभ्रष्ट करना ही रहता है।

समशर्करा चूर्ण [भा. भै. र. ७८२९]

(वृ. नि. र. । अजीर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोठ १ भाग, पीपल २ भाग, कालीमिर्च ३ भाग, नागकेसर ४ भाग, तेजपात ५ भाग, दालचीनी ६ भाग और छोटी इलायची ७ भाग। प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिश्रित करे और फिर उसमे मिश्रण के समान खांड का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करे।

मात्राः—३ से ६ मासा तक। मधु या ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह चूर्ण अरुचि, श्वास, गुल्म, अर्श और वमन को नष्ट करता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, दीपक, वात-कफ नाशक, दाहनाशक, रुचिकर, मुख दौर्गन्ध नाशक और वातानुलोमक है। इसके सेवन से वातकफ द्वारा उत्पन्न होनेवाले उदर विकार नष्ट होते हैं।

सरस्वती चूर्ण [भा. भै. र. ५१५४]
(र. र. स. । अ. ३४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अश्वगन्ध, अजमोद, वच, कूठ, त्रिकटु, सौफ, ढाक के बीज और सेधानमक प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग और वच का चूर्ण सबसे आधा लेकर एकत्र मिश्रित कर प्रयोग में लावे ।

मात्राः—(शा. १। तोला) ३ से ६ मासा तक । मधु और घी में ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से बुद्धि की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि सेवन कर्ता सहस्रो ग्रन्थ धारण कर सकता है । इसके सेवन से गूंगा व्यक्ति अच्छी तरह बोल सकता है ।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, पाचक, बुद्धिवर्द्धक, स्मृति और ओजवर्द्धक तथा रसायन है ।

सर्पगन्धा योग [सि. यो. सं.]

नाम—सर्पगन्धा को बंगाली मे **चान्दर-चांदड**, बिहार में **चन्दमरवा, धनमरवा** या **ईशरगज**; काशी मे **धवलबरुवा**, मराठी मे **अडकई** और अंग्रेजी मे **रावोल्फिया सर्पेन्टाइना** कहते है ।

उत्पत्ति स्थान—नेपाल की तराई, बिहार और बंगाल में यह विशेष प्रमाण में तथा कोंकण मे थोडे प्रमाण में होती है ।

उपयोगी अङ्ग—इसके केवल 'मूल' औषधरूपमे उगयोग मे आते है ।

प्राप्तिस्थान—कलकत्ता, पटना, भागलपुर, आजकल प्रायः सब बडे शहरों के पनसारी लोग बेचने के लिये रखते हैं ।

गुण और उपयोग—इस वनस्पति का आधुनिक वैज्ञानिक रीति से परीक्षण सर्व प्रथम कलकत्ते में स्व. वा. **म. म. कविराज गणनाथ सेन सरस्वती** तथा **डा. कार्तिकचन्द्र वसु ने** बोस लबोरेटरी में किया (सन १९३० मे) । उसका सारांश **डा. कार्तिकचन्द्र वसु** विरचित **'भारतीय भैषज्य तत्व'** से नीचे उद्धृत किया जाता है ।

"इसमें १ प्रतिशत उपक्षार मिला। इसके अतिरिक्त राल, श्वेतक्षार (स्टार्च, निशास्ता) गोंद और लवण (साल्ट) मिले । लवणांश मे पोटेसियम कार्बोनेट, फोसफेट और सिलेकेट के साथ केलिशियम और मेन्गेनिज मिले । इसमे कोई टेनिन जाति का कषाय द्रव्य नहीं है ।

इसके मूल का चूर्ण उपयुक्त मात्रा में सेवन करने से नींद अच्छी आती है और मानसिक उत्तेजना तथा उन्मत्तता का ह्रास होता है । इसका उपक्षार हृदय के ऊपर अवसादक क्रिया

करता है, और सूक्ष्म रक्त वाहिनियों को विस्फारित-विकसित करता है, जिससे रक्त का दबाव (ब्लड प्रेसर) कम होता है। जो उन्माद का रोगी उत्तेजित और बलवान हो, उसके इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है। परन्तु जो रोगी दुर्बल, निस्तेज और मनोऽवसाद ग्रस्त हो, उस पर इसका सावधानी से प्रयोग करना चाहिये (इस पर विशेष लाभ नहीं होता. किन्तु रोगी अधिक दुर्बल होता है)। प्रबल ज्वर मे इसके सेवन से अशान्ति, मोह और प्रलाप दूर होकर रोगी को अच्छी नींद आ जाती है और साथ मे ज्वर का वेग भी कम होता है।"

मात्राः—रक्त का दबाव कम करने के लिये ५-१० ग्रेन (२॥-५) रत्ती निद्रा लाने के लिये ५-१५ रत्ती, उन्माद और प्रबल अपतन्त्रक (हिस्टिरिया) के लिये १॥ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—जल, दूध या गुलाब के फूलों का अर्क। इसका चूर्ण १-३ माशा, ५ छोटी इलायची का चूर्ण, ५ कालीमिर्च का चूर्ण और ५ तोला गुलाब का अर्क इन को २ घण्टा भिगोकर रख देवें। फिर ठंडाई के समान पीस उसमें ३-६ माशा मिश्री मिलाकर देने से अनिद्रा और उन्माद में अच्छा लाभ होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

सं. वि.—निरन्तर शोध के पश्चात् इस औषध की प्रतिष्ठा दिनों दिन बढती चली जा रही है। लखनऊ के अन्वेषण विभाग ने कुछ समय पूर्व ही 'सर्पगन्धा' के विषय मे सूचित किया है कि रक्तचाप की वृद्धि के लिए सर्पगन्धा सर्व श्रेष्ठ औषध सिद्ध हुई है। सर्पगन्धा का अनेक प्रकार से सेवन किया जा सकता है, जहां कोष्ठ बद्धता रहती हो वहां इसको सत इसबगोल के योग के साथ प्रयोग मे लाया जाय तो विशेष लाभप्रद होती है। उन्माद मे कालीमिर्च के चूर्ण के योग के साथ लाभप्रद है इत्यादि।

———o———

सारस्वत चूर्ण [भा. भै. र. ७८३७]

(भा. प्र. । म. ख. २ उन्मादा.; वं. से । उन्मादा., ग. नि. । चूर्ण ३; वृ. यो. त. । त. ८८, यो. चि. । अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कूठ, अश्वगन्ध, सेंधानमक, अजमोद, सफेद और कालाजीरा, त्रिकटु, पाठा और शंखपुष्पी प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १-१ भाग तथा वच का चूर्ण सबके बराबर (९ भाग) लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके खरल करें और मिश्रण को ब्राह्मी के स्वरस की ३ भावना देकर सूक्ष्म चूर्ण यावत् मर्दन करे।

मात्राः—(शास्त्रोक्त १। तोला) ३ से ६ मासा तक। मधु और घी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके (७ दिन पर्यन्त) सेवन से बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति और काव्यशक्ति की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यह औषध वातकफशामक, आमपाचक, दोषानुलोमक, मूत्रल, अजीर्णनाशक और वातनाडी–उग्रता को नष्ट करनेवाली है। इसके सेवन से वातदोष का नाश होता है और शरीर में स्फूर्ति आदि की वृद्धि होती है। विद्यार्थी तथा मस्तिष्क से श्रम करनेवालों के लिये यह विशेष उपयोगी है।

सामुद्रादि चूर्ण (भा. भै. र. ७८३५]

(ग. नि. । चूर्णा. ३; यो. र. । उदरा.; च. द. । उदरा. ३६, बृ. यो. त. । त. १०५, भै. र.; वं. से.; बृ. मा.; र. र. । उदरा.; यो. चि. म. । अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—समुद्रलवण, सौवर्चल (काला नमक), सेंधानमक, यवक्षार, अजवायन, अजमोद, पीपल, चीतामूल, सोंठ, हींग और वायविडङ्ग प्रत्येक का समभाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर भलीभान्ति मिश्रित कर प्रयोग में लावें।

मात्राः—३ से ६ मासा। घृत मे मिलाकर भोजन के पूर्व या प्रथम ग्रास के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातप्रकोप, दुष्ट ग्रहणी रोग, अर्श, पाण्डु और भगन्दर का नाश होता है।

सं. वि.—यह चूर्ण स्वादिष्ट, रुचिकर, पाचक, अन्त्र क्षोभ, दाह, आध्मान, अजीर्ण, गुल्म, शूल, अन्त्र शैथिल्य आदि विकारो का नाश करता है और वायु द्वारा होनेवाले उदर विकारों का अनुबन्धि सहित, नाश करता है।

आजकल अधिक प्रमाण में प्रयुक्त होते क्षारवाले मिश्रणा की अपेक्षा यह चूर्ण कई प्रकार लाभप्रद है। क्षारवाले द्रव्यो के समान यह दाहक आमोत्पादक और कला शैथिल्य कारक नहीं है, बल्कि आमशोशक, कला विकार नाशक और जीर्णाजीर्ण दोषनाशक है।

सितोपलादि चूर्ण [भा. भै. र. ७८४०]

(शा. ध. । ख. २ अ. ६; ग. नि. । चूर्णा. ४; यो. र. । ज्वरा.; क्षय,; भै. र.; वृ. मा. । राजयक्ष्मा.; वृ. नि. र. । विषमज्वरा.; यो. त. । त. २०, २७, वृ. यो. त. । त. ५९; ६७, च. सं. । चि. अ. ८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—मिश्री १६ भाग, वंशलोचन ८ भाग, पीपल ४ भाग, इलायची २ भाग और दालचीनी १ भाग, प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—१ से ४ मासा तक। मधु और घृत मिलाकर या केवल मधु के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से श्वास, कास, क्षय, हाथ, पैर और शरीर दाह, अग्निमान्द्य, जिह्वा की सुप्तता, पार्श्वशूल, अरुचि, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध रोचक, पाचक, पौष्टिक, कण्ठशोधक, वातकफ नाशक, दाह नाशक और वातकफ द्वारा होनेवाली पार्श्ववेदना का नाश करती है। यह कास की प्रसिद्ध औषध है। इसे ऊष्ण जल के साथ सेवन करने से दीर्घकाल से उत्पन्न हुये आम, वात और कफज अजीर्ण का नाश होता है।

जहां शक्तिवर्द्धक, पाचक, वातकफ नाशक और कण्ठशोधक रोचक औषध की आवश्यकता हो वहां इस चूर्ण का सेवन सर्वदा लाभप्रद होता है।

सिंहराज चूर्ण [भा. भै र. ७८४३]

(हा. सं. । स्था. ३. अ. ६.; वृ. नि. र. । ग्रहण्य.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—संचल (काला नमक) २ भाग, अजमोद १ भाग, सैंधानमक १ भाग, सोंठ ६ भाग, कालीमिर्च ४ भाग और सफेद जीरा ८ भाग लेकर प्रत्येक के सूक्ष्म चूर्ण को एकत्र मिश्रित कर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—२ से ३ मासे तक। भोजन के अन्त मे। छाछ के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कफवातज रोग का नाश होता है और यह प्लीहा, उदर, अजीर्ण और विषूचिका नाशक है।

सं. वि.—श्री नृसिंहराज कथित यह चूर्ण अग्निदीपक, वातकफ नाशक, रोचक, उदराक्षेप नाशक, आमशोषक और वात द्वारा होनेवाले उदर के विकार नाशक है।

सुदर्शन चूर्ण [भा. भै. र. ७८४६]

(शा. ध. सं. । खं. २ अ. ६; यो. त. । त. २०; यो. चि. । चूर्णा. २.; वृ. नि.र. । ज्वरा.; यो र. । ज्वरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कटेली, बडी कटेली, कचूर, त्रिकटु, पीपलामूल, मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाणा, सुगन्धबाला, नीम की छाल, पुष्करमूल, मुल्हैठी, कुडे की छाल, अजवायन, इन्द्रजा, भारङ्गी, सुहाञ्जने के बीज, सौराष्ट्री मिट्टी, वच, दालचीनी, पद्माक, उशीर, चन्दन, अतिविष, खरैटी की जड, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, बायविडङ्ग, तगर, चीतामूल, देवदारु, चव, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, कमल, काकोली, तेजपात, चमेली के पत्ते और तालीसपत्र। प्रत्येक द्रव्य का

सूक्ष्म चूर्ण १-१ भाग तथा चिरायता सबसे आधा (२४॥ भाग) सब का सूक्ष्म चूर्ण एकत्रित कर प्रयोग मे लावे।

मात्राः—३ से ४ मासे तक। जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वरध्वंस होता है तथा यह एकदोषज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, आगन्तुज, विषमज्वर, सन्निपातज्वर, मानसज्वर, शीतज्वर, एकाहिक आदि (मलेरिया) (ज्वरजनित) मोह, तन्द्रा, भ्रम, तृष्णा, श्वास, कास, पाण्डु, कामला, त्रिक, पृष्ठ, कटि, जानु और पार्श्वशूल का नाशक है।

सं. वि.—यह अनेक कटु, कषाय ज्वरनाशक द्रव्यों के योग से बना हुवा चूर्ण, त्रिदोषशामक, दाहनाशक, सहज रेचक, कोष्ठशोधक, अन्त्र विकार नाशक, अजीर्णनाशक, खाद्य द्वारा उत्पन्न हुए विषों का नाश करनेवाला, मूत्रल और स्वेदल है। इसके सेवन से समस्त धातुओं में उत्पन्न हुये ज्वर का नाश होता है। जीर्ण से जीर्ण ज्वर भी इसके सेवन नष्ट हो जाता है।

---

० सौवर्चलादि चूर्ण [भा. भै. र. ७८८४]

(वृ. नि. र. । शूला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—संचल (काला) नमक, अम्लवेतस, विडलवण, सेधानमक, अतीस, त्रिकटु, प्रत्येक का समभाग चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर प्रयोग में लावें।

मात्राः—१ से ३ मासे। बिजौरे निम्बु के रस में मिलाकर दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से गुल्म और शूल का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध पाचक, अग्निदीपक, आमशोषक, वातानुलोमक तथा आम और वायु द्वारा होनेवाले उदर विकारों का नाश करती है।

/ स्वादिष्ट चूर्ण

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हिंग्वाष्टक चूर्ण १० सेर, खांड ७ सेर और निम्बु का अम्ल १/४ लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके प्रयोग मे लावें।

मात्राः— यथारुचि, ३ से ६ मासा तक। जल के साथ या मुख में रखकर खावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह पाचक, रोचक, कोष्ठदोषनाशक और वातानुलोमक है।

स्वादिष्ट विरेचन

द्रव्य तथा निर्माण विधान—सोनामक्खी (सनाय) २ भाग, यष्टिमधु १ भाग, खांड २ भाग तथा कुछ मात्रा मे गन्धक मिलाकर एकत्र मिश्रित कर प्रयोग मे लावें।

मात्राः—३ से ६ मासा। पानी के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अर्श, कोष्ठबद्धता और आमसंग्रह का नाश होता है।

इस चूर्ण के सेवन से कोष्ठ की शुद्धि होती है तथा इसके सेवन से रेचक पदार्थ के नित्य लेने की आदत नहीं पडती।

हजरुलयहूद चूर्ण [र. तं. सा.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—खूब वारीक खरल किया हुवा हजरुलयहूद बेर पत्थर २० तोले, खरबूजे के बीज की मींगी, खीराककडी के बीज की मींगी, गोखरू, कालीमिर्चे, सौफ, अजवायन, जीरा, कुलथी और बबूल का गोंद, सब २-२ तोले ले, कूट छानकर चूर्ण बना लेवे।

मात्राः— १ से १॥ मासा चने के काढे के साथ सुवह सात दिन तक देवे।

उपयोग—यह चूर्ण वृक्क स्थान (गुरदा) और मूत्राशय दोनों की पित्त और कफ प्रधान पथरियों को तोड २ कर निकाल देता है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

हिंग्वादि चूर्ण [भा. भै. र. ८५०५]

(ग नि. । चूर्णा. ३०, व. से. । गुल्मा.; यो. त. । त. ४६; वृ. नि. र. । वातव्या; भा. प्र. । म. ख २ वातव्या.; गुल्मा., यो. र. । गुल्मा., सु. सं. । चि. स्था. अ. ५; वै. जी. । वि. ३०; वृ. यो. त. । त. ९०, ९४, भै. र.; धन्वन्तरि.; र. र. । गुल्मा.; चं. सं. । चि. स्था. अ. ५ गुल्मा.; शा. ध. । खं. २ अ. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हींग, त्रिकटु, पाठा, हपुषा, हैड, सठी (कचूर), अजमोद, अजवायन, तिन्तडीक, अम्लवेत, अनारदाना, पुष्करमूल, धनिया, जीरा, चीतामूल, वच, सज्जीक्षार, यवक्षार, सेधानमक, (काला) संचलनमक और चव्य प्रत्येक द्रव्य का समान भाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिश्रित करे।*

---

*पाठान्तर—सुश्रुत तथा गदनिग्रह के मतानुसार पीपलामूल और भिलावा अधिक है तथा अदरक के रस की भावना भी लिखी है।

वैद्यजीवन में सठी की जगह करञ्ज है तथा दाडिम का अभाव है।

वृ नि. र. के मतानुसार दाडिम के स्थान पर सखिया है तथा अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लौहभस्म, लौंग और तुम्वरु अधिक है।

शा. ध के मतानुकूल पाञ्चोंनमक लेने चाहियें।

(इस चूर्ण को निम्बु के रस की अनेक भावनाएं देकर गोलियां भी बना सकते है)

मात्राः—२ से ४ मासा। भोजन के प्रारम्भ अथवा मध्य में ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, वातकफज गुल्म, आध्मान, मूत्रकृच्छ्र, गुदयोनि पीडा, ग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, अरुचि, छाती का जकडना, हिक्का, श्वास, कास और गलग्रह का नाश होता है।

सं. वि.—यह चूर्ण वातानुलोमक, अग्निदीपक, आमपाचक, वातकफ नाशक, पित्तवर्द्धक, वातकफज और आमज अन्त्र आक्षेप, शूल, आनाह, अरुचि, कोष्ठबद्धता आदि रोग नाशक और आम तथा वात द्वारा होनेवाले कास, श्वास, शूल, प्लीहा, यकृत विकार, हिक्का आदि का नाश करता है।

यह चूर्ण अग्निवर्द्धन के लिए श्रेष्ठ है कारण कि इसके सेवन से वात कफ का नाश और पित्त की वृद्धि होती है अतः अग्नि क्षीणता के कारण उत्पन्न हुए कण्ठ, फुफ्फुस, हृदय, आमाशय और पक्वाशय के सभी विकारों पर इसका मुक्त हस्त से प्रयोग किया जाता है।

हिंग्वाष्टक चूर्ण [भा. भै. र. ८४८७]

(भै. र.। अग्निमान्द्या.; र. र.; यो. र.; भा. प्र.। म. खं. अ. २ अजीर्णा.; च द.। अग्निमान्द्या ६; यो. चि,। अ. २; वृ. यो. त.। त. ७१, धन्वन्तरी। वातरोगा.; ग. नि चूर्णा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोद, सेधानमक, सफेद जीरा, कालाजीरा और हींग (घी में भुनी हुई)। प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण को समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित कर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—२ से ४ मासे तक। घी मे मिलाकर। भोजन के पूर्व, जल से, भोजन के पश्चात ऊष्ण जल से आध्मान आदि में।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अग्निदीप्त होती है।

सं. वि.—यह दीपक, पाचक, वातानुलोमक तथा आध्मान, अजीर्ण, शूल, गुल्म आदि का नाश करता है। हिंग्वाष्टक चूर्ण अपने गुणों के कारण बहुत ही लोकप्रिय औषध बन गई है। आज के विकृत काल मे जब मानवों के आहार विहार दूषित हों और उदर पूर्ति ही जीवन का ध्येय बन गई हो तब विकृत द्रव्यों से बचने के लिए हिंग्वाष्टक जैसे निर्विकार औषध को ही प्रयोग मे लाना हितकर है।

नोटः—इस चूर्ण को निम्बु के स्वरस की ७ भावना देकर गोली रूप भी दे सकते है, **यह 'हिंग्वाष्टक गोली'** नाम से प्रसिद्ध है।

हृद्य चूर्ण [सि. यो. सं.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—डिजिटेलिसपत्र चूर्ण १ भाग और सांभर के शृङ्ग की भस्म २ भाग को ३ घण्टे मर्दन करके रख लेवें।

मात्राः—१ रत्ती।

अनुपानः—शहद।

उपयोग—हृदय की दुर्बलता, हृद्द्रव (हृदय की धडकन), नाडी का वेगाविक्रय इन लक्षणों में इसका प्रयोग करें। हृद्रोग में जब उपद्रव युक्त सर्वाङ्ग शोथ होता है तब आरोग्य वर्द्धिनी के साथ मिलाकर इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। पुरानी खांसी में जब कफ ज्यादा और चिकना पडता हो और साथ में हृदय की दुर्बलता हो तो इसमें जंगली प्याज को सुखाकर उसका कपडछन किया हुवा चूर्ण १ भाग मिलाकर इसका प्रयोग करें। यदि रोगी को हृल्लास और वमन हो तो इसका प्रयोग कुछ दिन के लिये बन्द कर देवे।

वक्तव्य—डिजिटेलिस भारतवर्ष के काश्मीर आदि प्रदेशों में होता है। बम्बई की झण्डु फार्मास्युटिकल कम्पनी डिजिटेलिस के पत्र का चूर्ण बेचती है।

सं. वि.—हृदय शरीर के कण कण मे रक्त पहुंचानेवाला अवयय है। हृदय का पोषण हृदय को चारो ओर से पोषण देनेवाली धमनियों द्वारा मिलता है। प्राणवायु हृदय की क्रिया मे विशिष्ट भाग लेती है। नाडियों की अवसन्न क्रिया अथवा अधिक प्रमाण मे दूषित वायु के प्रभाव द्वारा हृदय की गति मे विरोध उत्पन्न हो जाता है, ऐसी परिस्थिति किसी ऐसी औषध की आवश्यकता पडती है जो हृदय के मांस मे उत्पन्न हुए वातज आक्षेप का नाश कर सके। वात या नाडी उग्रता के कारण हृदय की गति मंद हो जाती है। डिजटेलिस अवसन्न नाडियों को उत्तेजना प्रदान करके हृदय की मंदता का नाश करती है। इस प्रकार घातक सिद्ध होनेवाले हृदय के आक्षेप क्षण ही में नष्ट हो जाते है और कभी २ मृत्यु के मुख मे पडे हुए रोगी को यह जीवनदाता बन जाती है। डिजिटेलिस उतेजक औषध है, परन्तु इसका मात्रा से अधिक प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

भैषज्य-सार-संग्रह

सप्तम प्रकरण

लेप

शरीर के किसी भाग विशेष पर अमुक द्रव्य अथवा द्रव्य समुदाय का जल, स्नेह द्रव्य, मृत्तिका आदि के साथ मिश्रण करके प्रलेप किये जाने वाले द्रव्य को लेप शब्द से व्यवहृत करते हैं।

लेप का प्रयोग त्वचा की साधारण विकृति से शरीर के किसी भाग के भग्न, क्षत-विक्षत, अग्निदाह, ज्वर, अनिद्रा, आध्मान आदि होनेपर किया जाता है।

शास्त्रकारों ने लोक की रुचि अनुकूल निर्माण करने के लिये अधिकतर लेप द्रव्यों का चूर्ण रूप में वर्णन किया है। इन लेप चूर्णों को काञ्जी, सिरका, जल, साबूदाने का मण्ड आदि द्रव्यों में पकाकर प्रयोग में लाया जाता है।

अधिक सरलता के लिये यह एक साधारण मार्ग है कि प्रत्येक लेप का घन बनाकर रख लिया जाय और आवश्यकता पडने पर सिरके या काञ्जी में मिलाकर लगा दिया जाय अथवा ग्लिसरिन में मिश्रित करके प्रलिप्त किया जाय।

अवल्गुजादि लेप [भा. भै. र. २१०]

(च. सं., यो. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बावची, कसौन्दी, पवाड (चक्रमर्द), हल्दी, सेंधानमक और नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित करके प्रयोग मे लावें।

प्रयोग विधि—लेप को काञ्जी में पीसकर विकृत स्थान पर लिप्त करें।

उपयोगः—इसके लगाने से अत्युग्र कण्डू का नाश होता है। यह सिद्ध प्रयोग है।

अस्थिसंधानक लेप [र. तं. सा.]

(अ. नि. मा.)

द्रव्यः—पलुवा, हीराबोल, गूगल, कुंदरु, गूजर (अजरुम—गुजद), उसीरेरेवन, मैदालकडी, आमाहल्दी, सज्जीखार, लोद और सरेस सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

विधि—थोडे से चूर्ण को गरम जल मे मिला लेपकर ऊपर रुई लगाकर लपेटें। जरुरत हो तो लकडी की पट्टी रखकर ऊपर कपडा बांधे। आवश्यकता पर ३ दिन बाद दूसरा लेप करें। ३ दिन पहले पट्टी को नहीं खोलना चाहिये।

उपयोग—यह लेप मूढमार, शूल, शोथ, हड्डि टूटना अथवा हड्डि उतर जाना, रक्त इकट्ठा होना आदि दोष दूर करने मे बडा उपयोगी है। टूटी हुई हड्डि को जोड देता है। मांस मे होनेवाली वेदना को दूर करता है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

कुष्ठघ्न लेप [र. तं. सा.]
(यो. र.)

बिधि—हरड, करञ्ज के बीज, सरसो, हल्दी, सफेद गुञ्जा (चीरमी), सेंधानमक और वायविडङ्ग सबको समभाग मिला गोमूत्र मे खरल करके लेप करें।

उपयोग—इस लेप के लगाने से कुष्ठ के सफेद दाग, व्युची, दद्रु, खाज आदि रोग दूर होते है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

कुष्ठादि लेप [भा. भै. र. ९१०]

द्रव्य—कूठ, अरण्डमूल और सोठ, प्रत्येक के सूक्ष्म चूर्ण को एकत्र मिश्रित करे।

विधि—तक्रमे मिलाकर साधारण गरम कर शिर पर लेप करें।

उपयोग—यह लेप शिरःशूल का नाशक है।

चन्दनादि लेप [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—श्वेत चन्दन, रक्तचन्दन, गेरू, खस, गिले अरमनी, कपूरकचरी, हंसराज और गेहूंला (प्रियंगु) प्रत्येक द्रव्य समभाग ले, उसका कपडछन चूर्ण करके रख लेवे।

उपयोग—पित्त और रक्तदुष्टि प्रधान व्रणशोथ, विसर्प और फोडे-फुन्सी पर इसको गुलाबजल मे पीसकर लगावे। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

✓ दशाङ्ग लेप [भा भै. र. ३१४१]

(वृ. यो. त. । त. २३, शा. ध. सं । उ. खं. अ. ११, व. से.; वृ. नि. र.; यो. र.; ग. नि. । विसर्पा., यो. त. त. ६५)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शिरीष की छाल, मुल्हैठी, दारुहल्दी, कूठ और सुगन्धवाला प्रत्येक द्रव्य का समभाग सूक्ष्म चूर्ण कर एकत्र मिश्रित करे।

विधि—घी में मिलाकर प्रलेप करें।

उपयोग—विसर्प, कुष्ठ, व्रण और शोथ को नष्ट करता है।

दारुषट्कादि लेप [भा. भै. र. ३१४२]

(सु. सं.; वृ. नि. र. । आनाह, भा. प्र. । शूल, भा. प्र. । खं. २ वात, वृ. नि, र. । वात; वृ. यो. त. । त. ९०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—देवदारु, वच, कूठ, सोया, हींग और सेंधानमक, प्रत्येक द्रव्य के सूक्ष्म चूर्ण को एकत्र मिश्रित कर प्रयोग मे लावें।

विधि—काञ्जी या सिरके मे मिलाकर साधारण गरम करके लेप करें।

उपयोग—इसे लगाने से वाताध्मान नष्ट होता है।

दोषघ्न लेप [भा. भै. र. ३१५३]

(शा. ध. सं. । उ. खं. अ. ११; भा. प्र. । प्र. खं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पुनर्नवा, देवदारु, सोठ, सफेद सरसों और सुहाञ्जने की छाल, प्रत्येक के सूक्ष्म चूर्ण को एकत्र मिलाकर प्रयोग मे लावें।

विधि—काञ्जी में मिश्रित कर प्रलेप करे।

उपयोग—इसको लगाने से हर प्रकार की सूजन नष्ट होती है।

निम्बादि लेप [भा. भै. र. ३५४३]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीमकी छाल, अमलतास, चमेली, आक, सप्तपर्ण और कनेर की जड की छाल प्रत्येक के समभाग सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रित कर प्रयोग मे लावे।

विधि—गोमूत्र मे पीसकर या पकाकर इसके क्काथ से घाव को धोवें या घाव पर इसके क्काथ की धार छोडने से घाव विकृति विहीन हो जाता है तथा शनैः २ ठीक हो जाता है।

मञ्जिष्ठादि लेप [भा. भै. र. ५३४२]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—मजीठ, रास्ना, जटामांसी और पुनर्नवा की जड प्रत्येक के समभाग सूक्ष्म चूर्ण को एकत्रित कर प्रयोग मे लावे।

विधि—काञ्जी में पीसकर लेप करे।

उपयोग—इसके प्रयोग से पित्तज श्लीपद नष्ट हो जाता है।

वचादि लेप [भा. भै. र. ६८३९]

द्रव्य तथा निर्माण विधान--वच का सूक्ष्म चूर्ण करके प्रयोग करें।

विधि—सरसों के तेल में मिलाकर प्रलेप करें।

उपयोग—इसका लेप करने से शोथ का नाश होता है।

सर्षपादि लेप [भा. भै. र. ८०३३]

(वृ. मा. । गण्डमाला.; शा. ध. । खं. ३ अ. ११; ग. नि. । ग्रन्थ्याध.; यो. र. । गण्डमाला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सरसों, सुहाञ्जने के वीज, सन के वीज, अलसी और मूली के वीज, सबका समभाग चूर्ण लेकर एकत्रित कर प्रयोग मे लावें।

विधिः--खट्टी छाछ मे भलीभान्ति मिश्रित कर प्रलेप करे।

उपयोग—इसका प्रलेप करने से गलगण्ड और गण्डमाला की ग्रन्थियां शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं।

भैषज्य-सार-संग्रह

अष्टम प्रकरण

क्वाथ

कषाय पांच प्रकार के होते हैं (१) स्वरस, (२) कल्क, (३) क्काथ, (४) हिम और (५) फांट।

स्वरस—द्रव्य को कूटकर यन्त्र द्वारा उसमे से रस निचोडते है यह रस ही स्वरस कहलाता है। यदि द्रव्य ताजा न मिले तो द्रव्य को कूटकर द्रव्य से दुगुने जल में भिगो देते है और २४ घण्टे बाद उसे मथकर छान लेते है। स्वरस की मात्रा २॥ तोला होती है।

कल्क—द्रव्यो को एकत्र कूटकर और उन्हें पानी के साथ पीसकर, जो लुग्दी तैयार की जाती है उसे कल्क कहते है। इसमें द्रव्य आर्द्र हो या शुष्क। इसे प्रक्षेप और आवाप भी कहते हैं। इसकी मात्रा १। तोले है परन्तु आजकल ६ मासा के प्रमाण में प्रयुक्त किया जाता है। कल्क मे यदि मधु, घृत और तेल मिलाना हो तो मात्रा दुगुनी दें। खांड और गुड कल्क के बराबर तथा द्रव पदार्थ कल्क से चार गुने दें।

क्काथः—१। तोले से लेकर ५ तोले परिमाण पर्यन्त कुटी हुई औषधियों को १६ गुने जल में पकाना चाहिये। ५ तोले से २० तोले तक ८ गुने जल में पकावे और २० तोले से ८० तोले तक ४ गुने जल में पकावें। इस जल को मन्द २ अग्नि पर पकाकर छानलें। इस प्रकार की क्रिया को क्वाथ कहते है। इसके पर्याय श्रृत, कषाय और निर्यूह हैं। क्काथ की शास्त्रोक्त मात्रा २॥ तोले से ५ तोले तक है। आजकल इसी प्रकार २॥ तोले को ४० तोले पानी में पकाकर १० तोले रहने पर छानकर व्यवहार में लाते हैं।

हिम—५ तोले द्रव्य को भलीप्रकार कूटकर रात को ३० तोले जल में भिगो दें। प्रातः छान लें। इसे हिम और शीतकषाय भी कहते हैं। शास्त्रोक्त मात्रा १० तोले।

फान्ट—कुटे हुये ५ तोले द्रव्य को गरम २ खौलते हुये २० तोले पानी में (चाय की तरह) मिट्टी के बर्तन मे डाल दें। फिर कुछ काल बाद उतार कर छान लें। जिस द्रव्य को इसमें डाला जाता है उसे चूर्ण द्रव्य तथा फान्ट कहते है। इसकी मात्रा १० तोले हैं।

विशेष ज्ञातव्य

[१] क्काथ सदैव मिट्टी के बर्तनों में बनाना चाहिये।

[२] क्काथ तैयार करते समय बर्तन का मुंह न ढके, ऐसा करने से क्काथ दुर्जर हो जाता है।

कषाय में प्रक्षेप विधि—क्काथ मे मिश्री वातजरोग में चतुर्थांश, पित्तज रोगों मे ८ वां भाग और कफज रोगों मे १६ वां भाग मिलानी चाहिये। यदि मधु मिलाना हो तो इससे विपरीत अर्थात् वातज रोग में १६ वां भाग, पित्तज रोगों मे ८ वां भाग तथा कफज रोगों में ४ था भाग मिलावें।

जीरा, गूगल, क्षार, लवण, शिलाजीत, हींग और त्रिकुटा यदि क्काथ में डालने हों तो ३ मासे डालने चाहियें।

यदि क्काथ में दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र और अन्य द्रव पदार्थ तथा कल्क या चूर्ण मिलाने हों तो १। तोला की मात्रा उपयुक्त है।

प्रायः कषाय रूपमे औषधियां शीघ्र लाभदायिनी होती है। शीघ्र पचती और तत्क्षण क्रिया करती है। कषाय कहां देय है और कहां अदेय, यह विषय चिकित्सक का है, तथापि इतना कहना आवश्यक है कि उग्रज्वर मे कषाय तत्काल नही देना चाहिये।

वस्ति विकार, हृद्रोग, उदररोग, मूत्रावरोध, शोथ, जलोदर आदि रोगों मे क्वाथ रूपमें औषध अन्य प्रकार की औषधों की अपेक्षा अधिक लाभकारी सिद्ध होती है। जब कि आध्मान, उदावर्त, हृद्दाह, वमन, श्वास, कास, कण्ठशोथ आदि मे इनके स्थान पर अन्य सरल और अल्प मात्रा मे प्रयुक्त की जानेवाली औषधियां अधिक प्रशस्त है।

आमवात, वृक्कशोथ, त्वकदोष, शिरोभ्रम आदि पर-शीघ्र क्रिया कर क्वाथ द्रव्यो का प्रयोग बहुत लाभप्रद होता है।

क्वाथ द्रव्यों की संख्या अनन्त है, उनमे से कुछ का हम यहां वर्णन करते है। लोक कल्याण के लिए अन्त मे पुनः भारपूर्वक यह कह देना उचित है कि निरालस्य होकर क्वाथ द्रव्यों का सेवन करने से चिकित्सा में शीघ्र सिद्धि मिलती है।

अभयादि क्काथ [भा. भै. र. ६]

(शा. ध. । म. खं.)

द्रव्य—हरड, नागरमोथा, धनिया, रक्तचन्दन, पद्माक, वासा, इन्द्रजौ, उशीर, अम्लतास, का गूदा, पाठा, सोंठ और कुटकी प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र अधकुटा करके प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्रा तथा विधि——२॥ तोले क्वाथ को लेकर ४० तोले पानी में पकाकर १० तोले रहने पर छान ले और उसमें पीपल का चूर्ण डालकर पी जावें।

उपयोग——इसके सेवन से त्रिदोषज-ज्वर, पिपासा, कास, दाह, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा, मल-मूत्र और अरुचि का नाश होता है तथा यह अग्निदीपक है।

सं. वि.——यह क्वाथ सहज रेचक, पाचक, ज्वरनाशक, दाहनाशक, वात-पित्त कफ नाशक; मूत्रल, वातानुलोमक और कोष्ठशोधक है। इसके सेवन से वात-पित्त द्वारा होनेवाले उदर के विकारों से उत्पन्न हुये विविध रोग नष्ट होते हैं। इसका उपयोग सब प्रकार के ज्वरों में लाभप्रद है। दीर्घकालानुबन्धि वायु के साथ होनेवाली कोष्ठबद्धता कुछ काल मे ही नष्ट हो जाती है।

अर्कादि क्वाथ [भा. भै. र. २५]

(वृ. नि. र.; यो. र. । सन्निपात.)

द्रव्य——आक की जड, पीपलामूल, सुहाञ्जने की छाल, दारुहल्दी, चव्य, संभालू, पीपल, रास्ना, भांगरा, पुनर्नवा, चीता, चव, चिरायता और सोंठ प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर एकत्र कूटकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

विधि——अभयादि क्वाथवत्

उपयोग——इसके सेवन से सन्निपात ज्वर, तन्द्रा, वायु, सूतिका रोग, अनेक प्रकार के वात रोग, शीत और अपस्मार का नाश होता है।

सं. वि.——यह औषध आक्षेपनाशक, वातानुलोमक, मूत्रल, विषघ्न, पाचक, वात-कफ नाशक, संज्ञावाहिनी पोषक, शोथ नाशक, अग्निदीपक और मस्तिष्क पोषक है। इसके सेवन से नाडियों की उग्रता द्वारा होनेवाले तथा मस्तिष्क दौर्बल्य द्वारा होनेवाले, और सर्ववात प्रकोप द्वारा होनेवाले विकार नष्ट होते हैं।

अश्मरीहर कषाय [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निमाण विधिः——पाषाणभेद, सागोन के फल, पपीते (अरण्ड ख़रबूजे) की जड, शतावर, गोखरु, वसना की छाल, कुश (डाभ) के मूल, कांस के मूल, चावल-धान के मूल, पुनर्नवा, गिलोय, चिरचिटा (अपामार्ग के मूल और ककडी (खीरा) के बीज प्रत्येक समभाग, जटामांसी तथा खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती प्रत्येक दो भाग लें। सबको जौकुटा (दरदरा) करके रख लेवे। इसमे से १ तोला ले उसको १६ तोले जलमे पका ४

तोला जल बाकी रहे तब कपडे से छान और उसमें ५-१० रत्ती शिलाजीत अथवा १० रत्ती क्षारपर्पटी या जवाखार मिलाकर पीने को देवें। इस प्रकार रोगी को दिन में ३-४ बार पिलावें। इस क्वाथ को हजरुल यहूद की भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

उपयोग—अश्मरी (पथरी) तथा उससे होनेवाले गुर्दे और पेट के दर्द में इसका प्रयोग करें।

वक्तव्य—यवमण्ड (२ तोला जौ को ६४ तोले जलमे उबाल चौथाई बाकी रखकर कपडे से छाना हुवा जल], कच्चे नारियल का पानी, गन्ने का रस तथा लौकी, पेठा, ककडी मकोय की पत्ती, कासनी की पत्ती आदि मूत्रल द्रव्यो का शाक अश्मरी मे हितकर है। द्विदल धान्य, मांस, कंद का शाक और स्नेहपक्व अन्न अपथ्य है। गरम जल में कमर का भाग डूबा रहे, इस प्रकार बैठना (अवगाहस्वेद) मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी शूल मे हितकर है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

कफहर क्वाथ

द्रव्य—कायफल, भारंगी, नागरमोथा, धनिया, वच, हैड, काकडासिंगी, पित्तपापडा, सोंठ, देवदारु, वासा और मुल्हैठी प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर अधकुटा करके प्रयोग में लावें।

निर्माण विधानः—२॥ तोले क्वाथ्य द्रव्य को ४० तोले जल मे पका कर चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर छानकर शीतल होने पर मधु मिलाकर सेवन करें।

उपयोग—कास, श्वास, शीत, वातकफ वृद्धि आदि रोगों के लिये उपयुक्त है।

सं. वि.—यह क्वाथ कफघ्न, दाहनाशक, वातानुलोमक, सहज रेचक, स्वर्य, वात-कफ नाशक, पित्तशामक तथा वमन, हिक्का, श्वास, कास, कफ वृद्धि, कण्ठशोथ आदि वात कफज रोगों के लिये हितकर है। इसका प्रयोग वर्द्धित श्वास मे सोंठ और मधु मिलाकर करने से कास द्वारा होनेवाले आक्षेपों का नाश होता है और सरलता पूर्वक कफ का विलयन होकर वह निकल जाता है।

कृमिघ्न क्वाथ [रं. तं. सा.]

बनावट—अनार की जड की ताजी छाल के टुकडे कुचले हुए ५ तोला, पलास बीज का चूर्ण ६ मासे, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला और जल १०० तोला ले। सबको मिला ढकन ढके हुये कलई के बर्तन मे (१॥ घण्टे तक) आधा जल शेष रहने तक उबालें। फिर शीतल होनेपर छानकर बोतलों मे भर लेवे।

मात्राः—५–५ तोले, ६ मासे शहद मिलाकर, सुबह से आध २ घण्टे पर ४ बार पिलादें।

उपयोग—यह क्वाथ उदरावेष्टा कृमि (चिपटे कद्दाना कृमि Tape worms), महागुदा (गोल केंचवे कृमि Round worms), चुरकृमि (सूती कृमि Thread worms), अन्त्रदा कृमि (धान्यांकुर के सदृश गुदे हुये (Hook worms), इन सबको निकाल देता है। इन सबमे यह प्रयोग विशेषतः उदरावेष्टा के लिये है। ये कृमि अति कष्ट देनेवाले है।

अनार के मूल की छाल मे कद्दुदाना को नष्ट करने का गुण अधिक है। पलास बीज और वायविडङ्ग कैंचवे और कद्दुदाना दोनो के निकालने मे सहायक है। वायविडङ्ग सूक्ष्म कृमियों का नाशक, दीपन, पाचन, रक्तप्रसादन सारक, और चर्मरोगहर है।

इस क्वाथ के सेवन से कुछ बेचैनी होती है, परन्तु वान्ति नही होती। इस अवस्था मे कृमि स्थान च्युत होते हैं। फिर वे स्थिर न हो इस लिये उन्हे जुलाब देकर निकाल देना चाहिये। इसके लिये एरण्ड तेल का जुलाब विशेष हितकर है, यह अन्त्र गे स्निग्धता लाता है, कृमि और आम को निकालता है तथा विरेचन हो जाने के पश्चात् अन्त्र को संकुचित होने में सहायक होता है।

सूचनाः—कद्दुदाना कृमि होने पर उसके पूर्व दस्तो के साथ निकलते रहते है, जब तक शिर न निकल जाय तब तक औषध सेवन करानी चाहिये। चाहे १, २, ३ दिन या अधिक दिन लगे। रोगी के दस्त को देखते रहना चाहिये कि कद्दुदाना का शिर निकला या नहीं।

हरड के अतिरिक्त सब कषाय रसवाली औषधियां प्रायः न्यूनाधिक अंश में अग्नि को मन्द करती है, इस लिये इस कृमिघ्न क्वाथ को भी आवश्यकता से अधिक नहीं देना चाहिये।

कृमिरोग मे बहुधा पाण्डु, अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, रक्तविकृति, मांसपेशियो और वातवाहिनियों की निर्बलता आदि अनुगामी विकार उत्पन्न हो जाते है। इस लिये इस क्वाथ के सेवन के पश्चात्, ताप्यादि लोह, नवायस लोह अथवा लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ६४ प्रहरी पीपल का मिश्रण कुछ दिनो तक सेवन कराना चाहिये।

गुडूच्यादि क्वाथ [सि. यो. सं]

द्रव्य और निर्माण विधिः—गिलोय, धनिया, नीम की अन्तरछाल, लालचन्दन और पद्माख ये पांचो द्रव्य समभाग ले। जौकूट करके रख लेवे। इस चूर्ण मे से १ तोला, चौगुने

जल मे क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर, देवें। इस प्रकार ३-४ बार देवें। यह क्वाथ सब प्रकार के ज्वर, दाह, जीमिचलाना, उलटी और अरुचि को दूर करता है तथा दीपन है।

वक्तव्य—इस क्वाथ में रोहिडा की छाल, दारुहल्दी, सरफोंका के मूल तथा पुनर्नवा (गदहपूरना-सांठी) के मूल ये चार द्रव्य और मिलाकर क्वाथ तैयार करने से यकृद् और प्लीहा (तिल्ली) के विकारो में अच्छा गुण करता है। यकृद्विकार में इस क्वाथ मे, पिलाते समय, ५-१० रत्ती शुद्ध नौसादर मिलाने से अधिक लाभ होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

गोजिह्वादि क्वाथ [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—गावजवान, मुल्हैठी, सौंफ, मुनक्का, अंजीर, उन्नाव, अडूसा, जूफा, सपिस्तान (सूखा लसोडा), खूबकलां (खाकसीर), हंसराज, गुलबनप्सा, अलसी, खतमी की जड (रेशे खतमी) और भटकटैया प्रत्येक समभाग तथा कालीमिर्च आधा भाग लें इनको अधकचरा करके रख छोडे। इसमे से एक तोला ले, दस तोला जल मे पका ४ तोला जल बाकी रहने पर कपडे से छान उसमे ३ मासा मिश्री या मधु मिलाकर दिनमे २-३ बार देवे।

उपयोगः—प्रतिश्याय (जुकाम-सर्दी) श्लेश्मज्वर तथा वह खांसी और श्वास, जिसमें कफ जमा हुवा गाढा हो और सरलता से न निकलता हो उसमे इस क्वाथ से बहुत लाभ होता है। इस क्वाथ को केवल या इसमे ५ रत्ती नौसादर, ५ रत्ती यवक्षार और द्राक्षारिष्ट १-२ तोला मिलाकर उपयोग करें। कफज्वर मे त्रिभुवन कीर्ति, ज्वर संहार आदि योगो के अनुपान रूपमे इसका अच्छा उपयोग होता है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

ग्रन्थिकादि क्वाथ [भा. भै. र. १२२६]

(यो. र. । सन्निपाता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपलामूल, इन्द्रजौ, देवदारु, वायविडङ्ग, भारङ्गी, भांगरा, त्रिकटु, चीता, कायफल, पुष्करमूल, रास्ना, हैड, दोनों कटेली, अजवायन, निर्गुण्डी, चिरायता, वच, चव्य और पाठा प्रत्येक समभाग लेकर एकत्र अधकुटा करके प्रयोग में लावे।

२॥ तोले क्वाथ को ४० तोला जल मे पकाते १० तोला रह जाय तब उतार छान कर प्रयुक्त करे।

उपयोग—इसके सेवन से सब प्रकार के सन्निपात, बुद्धिभ्रंश, स्वेद, प्रलाप, शीत शूल, अफारा, विद्रधि, कफवात रोग, वातव्याधि और सूतिका रोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह क्वाथ त्रिदोष नाशक, वातानुलोमक, आमपाचक, कृमिघ्न, वाततन्तु विकार नाशक, पाचक, शोथनाशक तथा ज्वरघ्न है। इसके सेवन से साम या निराम सभी प्रकार के ज्वर नष्ट होते है तथा उदरशूल, भ्रम, शिरः शूल, आध्मान, विद्रधि, सूतिका रोग, कफज तथा वातज श्लेष्मकला शोथ का नाश होता है।

तगरादि क्वाथ [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—तगर (यूनानी–आसारून), पित्तपापडा, अमलतास का गूदा, नागरमोथा, कुटकी, जटामांसी (वालछड), असगन्ध, व्राह्मी, मुनक्का, लालचन्दन, दशमूल (शालपर्णी–सरिवन, पृश्नपर्णी-पिठवन, छोटा गोखरू, कटेरी–भटकटैया, बडीकटेरी–वरहंटा, वेल, गम्भारी, अरनी, सोनापाठा, पाढर–पाढल इनकी जडे) और शंखाहुली (कौडियाली) ये सब द्रव्य समभाग ले, अधकचरा (दरदर) कूटकर रख लेवें। इसमें से १ तोला ले, १६ तोला जल मे पका, जब ४ तोला जल बाकी रहे तब कपडे से छानकर देवे।

उपयोग—प्रलापक सन्निपात मे (सन्निपातज्वर रोगी जब प्रलाप करने लगे तब) यह उत्तम योग है। इसका केवल या बृहत्कस्तूरी भैरव रस के अनुपान रुप मे उपयोग करें। यदि रोगी को पतले दस्त आते हों तो इसमे से कुटकी, अमलतास और मुनक्का निकालकर इसका उपयोग करें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

तरुण्यादि क्वाथ [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—गुलाव के फूल १ तोला, सौफ १ तोला और मुनक्का २ तोला लेकर सबको बिना कूटे ही रात को २० तोला जल मे भिगो देवे। सवेरे पकाकर ५ तोला जल बाकी रहे तव उसमे १ तोला यासशर्करा (यूनानी तुरंजवीज) या आधा तोला मिश्री मिला कपडे से छानकर पिलावे।

उपयोग—इससे २–३ दस्त बिना कष्ट के हो जाते हें।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

दशमूल क्वाथ [भा. भै. र. २८२४]

(च. द. । अ. १, भा. प्र. । म. खं. ज्वर.; ग. नि.; र. र.; धन्वन्तरी.; वृ. नि. र.। ज्वर.; आयु. वे. वि. । ज्वर.; यो त. । त. २०; यो. चि. । अ. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—वेल की जड, सोना पाठा (अरलु) की छाल, खंभारी

की जड की छाल, पाढल की जड की छाल और अरनी की जड की छाल इन पांचों के मूल को 'बृहत्पञ्चमूल' कहते है।

शालपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी और बडी कटेली तथा गोखरू इन पांच के योग को लघुपञ्चमूल कहते है।

बृहत्पञ्चमूल और लघुपञ्चमूल के योग को दशमूल कहते है। अर्थात् उपरोक्त दश औषधियो को समभाग लेकर एकत्र अधकुटी करे और विधिवत निर्माणकर यथामात्रा प्रयुक्त करे।

उपयोग—यह सन्निपातज्वर, खांसी, श्वास, तन्द्रा और पार्श्वशूल को नष्ट करता है। यदि दशमूल क्वाथ मे पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाया जाय तो कण्ठग्रह और हृद्ग्रह में लाभ होता है।

सं. वि.—दशमूल के द्रव्यों मे जिन द्रव्यो के वृक्ष बडे हो और तने के भीतर सारभाग हो, उनकी छाल और छोटे पौधो का कि जिनका मूल सूक्ष्म हो, पञ्चाङ्ग ग्रहण करना चाहिये। बृहत् पञ्चमूल दीपन और कफवात नाशक है। लघुपञ्चमूल वातपित्त नाशक और वृष्य है। यह सम्पूर्ण योग अर्थात् दशमूल त्रिदोषनाशक, आमपाचक, शरीरवर्द्धक, कान्तिप्रद, ओज, बल, बुद्धिवर्द्धक, वृष्य और रसायन है। इसका उपयोग प्रसूता को प्रारम्भ से ही कराया जाय तो बहुत ही लाभप्रद होता है। उदर का शैथिल्य दूर होता है। श्लेष्मकला के शोथ, कोथ, दाह, क्षोभ और अनावश्यक परिवर्द्धन आदि विकार नष्ट होते है तथा जरायु के दोषो का नाश होता है और उसको पोषण मिलकर शरीर ग्रन्थियो की वृद्धि होती है। इसके सेवन से अधिकतर वातकफज विकार नष्ट होते है।

दार्व्यादि क्वाथ [भा. भै. र. २८७१]

(भा. प्र. । म. ख. ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रसौत, चिरायता, वासा, नागरमोथा, बेलगिरी, लालचन्दन और आक के फूल। प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र अधकुटा करके प्रयोग मे लेवे। क्वाथ का प्रयोग करते हुये मधु मिलाकर पीवे।

उपयोग—इसके सेवन से पीडायुक्त श्वेत प्रदर और रक्तप्रदर का नाश होता है।

सं. वि.—यह प्रयोग, पाचक, श्लेष्मकला विकार नाशक, संकोचक, शोथघ्न और दाहनाशक है। इसके सेवन से प्रदर आदि योनिविकार नष्ट हो जाते है।

द्वात्रिंशदारव्य क्वाथ [भा. भै. र. २९३५]

(यो. र. । सन्निपाता.; वृ. नि. र. । ज्वर.; यो. त. । त. २०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—भारङ्गी, चिरायता, नीम की छाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल, वासा, इन्द्रायण की जड, रास्ना, अनन्त मूल, पटोलपत्र, देवदारु, हल्दी, पाढल की छाल, अरलु की छाल, ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निसोत, अतीस, पुष्करमूल, त्रायमाणा, कटेली, कटेला, इन्द्रजौ, हैड, बहेडा, आमला और सठी प्रत्येक को समभाग लेकर सबको एकत्र अधकुटा करके प्रयोग मे लावे ।

उपयोग—इसके सेवन से १३ प्रकार के सन्निपात, शूल, कास, हिक्का, अर्श, आध्मान, उरुस्तम्भ, अन्त्रवृद्धि, गलरोग, अरुचि और सन्धिग्रह का नाश होता है ।

सं. वि.—यह ३२ द्रव्यों का योग वातकफ रोग नाशक बहुत ही प्रशस्त औषध है। इसके सेवन से वातकफ द्वारा होनेवाले आन्त्रिक विकार और उनके अनुबन्धि शीघ्र शान्त हो जाते है । यह आमवात, आमज अन्त्रशोथ, कफवातज आन्त्रिक शूल और शोथ तथा कफवात द्वारा होनेवाले अन्त्रवृद्धि रोग का नाश करता है ।

देवदार्व्यादि क्वाथ [भा. भै. र. २८९६]

(वृ. नि. र.; वं. से. । स्त्री; यो. र., भा. प्र. । म. खं. । सूतिका; यो. त. । त. ७५)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—देवदारु, वच, पीपल, सोठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हैड, गजपीपल, धमासा, गोखरू, जवासा, कटेली, अतीस, गिलोय, काकडासिंगी और कालाजीरा प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र अधकुटा करके प्रयोग मे लावे।

इस क्वाथ मे २ रत्ती भुनी हुई हीग और १॥ मासा सेंधानमक मिलाकर पिलावें ।

उपयोग—इसका उपरोक्त विधान पूर्वक प्रयोग करने से प्रसूता का शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, शरीर कम्प, शिरोरोग, प्रलाप तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार और वमन युक्त प्रसूत रोग नष्ट हो जाता है ।

सं. वि.—यह क्वाथ प्रसव पश्चात् प्रयोग मे लाने से प्रसूता के अधिकतर विकार, जिनका कारण प्रसव होता है, दूर हो जाते है। यह पाचक, ज्वरनाशक, कफवात नाशक, मूत्रल, वातानुलोमक तथा कोष्ठशोधक है ।

धान्यपञ्चक क्वाथ [सि. यो. सं.]

(च. द. । चि. अतिसाराधिकार)

द्रव्य और निर्माण विधिः—धनिया, खस, कच्चे बेल की गिरी, नागरमोथा और

सोंठ समभाग ले, जौकुट चूर्ण करके रख लेवें। इसमें से एक तोला ले उसको १० तोला जल में पकावे, चार तोला जल बाकी रह जाने पर ठण्डा करके स्वच्छ कपडे से छानकर आवश्यकतानुसार दिन मे २-३ बार दे। इस क्वाथ को धान्यपञ्चक कहते है। यदि पित्तातिसार में इसका प्रयोग करना हो तो इसमें से सोठ निकाल देनी चाहिये, तब इसको धान्यचतुष्क कहते है।

गुण और उपयोग—यह क्याथ उत्तम पाचन, दीपन और ग्राही है। सब प्रकार के अतिसार मे इसको प्रयोग होता है। पित्तातिसार और रक्तातिसार मे इसका प्रयोग करना हो तो इसमें सोठ के स्थान पर सौफ डालकर इसका प्रयोग करे। इस क्वाथ को अकेला या महागन्धक योग आदि के अनुपान रूपमें प्रयोग करे। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

निम्बादि क्वाथ [भा. भै. र. ३३८७]

(वृ. यो. त. । त. १२६; च. द., ग. नि., वं. से.; भा. प्र.; यो. र., वृ. मा., र. र.; वृ. नि. र. । मसू.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीम की छाल, पित्तपापडा, पाठा (पाठान्तर से द्राक्ष), पटोलपत्र, लालचन्दन, श्वेत चन्दन, वासा, धमासा, आंवला, खस और कुटकी प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र अधकुटा करके प्रयोगार्थ रखे। यथाविधि निर्माण करके ठण्डा होने पर मिश्री से मीठा करके पीना चाहिये;

उपयोग—इसके सेवन से पित्त तथा रक्तप्रधान मसूरिका नष्ट होती है।

सं. वि.—यह क्वाथ रक्तशोधक, पित्तशामक, दाहनाशक, ज्वरघ्न, सहज रेचक और पित्त तथा रक्त द्वारा शरीर के दोषों को संशमन करनेवाला है। इसके सेवन से जिस प्रकार रक्त और पित्तप्रधान मसूरिका नष्ट होती है उसी प्रकार रक्त और पित्त प्रधान अन्य त्वक् और रक्तदोष भी नष्ट होते है।

पटोलादि क्वाथ [भा. भै. र.]

(वृ. नि. र. । ज्वर.; शा. ध. । म. खं. अ. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पटोलपत्र, इन्द्रजौ, देवदारु, त्रिफला, नागरमोथा, मुल्हैठी, गिलोय और वासा प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र अधकुटा कर प्रयोगार्थ रखे। यथा विधि निर्माण करके ठण्डा होने पर मधु के साथ पीवे।

उपयोग—इसके सेवन से संतत, सतत तृतीयक, चतुर्थक, एकाहिक, विषमज्वर, दाह पूर्व ज्वर और नवज्वर नष्ट होते है।

सं. वि.—यह क्वाथ ज्वरघ्न, आमपाचक, मूत्रल, सहज रेचक, शीतवीर्य, कटुविपाक और वातपित्तशामक है। इसके सेवन से साधारण सभी प्रकार के ज्वरों मे लाभ पहुंचता है।

—*—

पथ्यादि क्वाथ [भा. भै. र. ३७७६]

(वै. म. र. । पटल. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, वच, चिरायता, धनिया, इन्द्रजौ, भारङ्गी और पित्तपापडा, प्रत्येक द्रव्य समभाग मिश्रित करके अधकुटा करें और यथाविधि निर्माण करके मधु और भुनी हुई हींग मिलाकर सेवन करे।

उपयोग—इसको पीने से श्लेष्मज्वर, उदरपीडा, श्वास, अग्निमान्द्य, कास, अरुचि और मुखशोष आदि विकारों का नाश होता है।

सं. वि.—यह क्वाथ आमपाचक, सहज रेचक, अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक, ज्वरघ्न, मूत्रल, कफनाशक और पित्तशामक है। इसके सेवन से कफपित्तज विकार का नाश होता है।

—o—

प्रमेहहर क्वाथ [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—दारुहल्दी, हल्दी, गिलोय, हर्र का दल, बहेडादल, आंवला, देवदारु, नागरमोथा, खस, लोध, श्वेत चन्दन, कमल का फूल, पखाख, गोखरू और पटोल सब समभाग ले। जौकुट करके रख लेवें। इसमे से १ तोला द्रव्य को १० तोला जलमें पका ४ तोला जल वाकी रहे तब, कपडे से छान, उसमे आधा तोला शहद मिलाकर दिन में २ बार सुबह साम देवें।

उपयोग—सब प्रकार के प्रमेहों मे अकेला या अन्य प्रमेहहर योगों के अनुपान रूपमें इसका प्रयोग करें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

—o—

पुनर्नवादि क्वाथ [भा. भै. र. ३८५२]

(भा. प्र., वै. र., भै. र. । उदर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, पटोलपत्र, हैड, नीमकी छाल, नागरमोथा, सोंठ और गिलोय प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर अधकूटा कर प्रयोगार्थ रखें। गोमूत्र ओर गूगल मिलाकर प्रातःकाल सेवन करावें।

उपयोग—इसे सेवन करने से सर्वाङ्गशोथ, उदररोग, कास, शूल, श्वास, और पाण्डु का नाश होता है।

सं. वि.—यह क्वाथ शोथघ्न है। शोथ, चाहे उदर, वातोदर, जलोदर, यकृत्प्लीहोदर,

वृक्कशोथ अथवा हृदयरोग से हुवा हो, सभी मे इसका प्रयोग सर्वदा लाभदायी सिद्ध होता है। यह मूत्रल और रेचक है। यह अधिकतर मूत्र द्वारा जलीयांश को निकाल देता है और शोथ के कारण को अग्निवृद्धि करके दूर करता है। गूगल और गोमूत्र के योग से इसमे वात-पित्त और कफनाशक गुण अधिकतर आ जाते है। अतः इसका सेवन दीर्घकाल से उत्पन्न हुये वृक्कशोथ, हृदयरोग और वातज उदररोगजन्य शोथ को नष्ट करता है तथा उनके उत्पादक कारण का नाश करता है। उदररोग और हृदयरोग के कारण उत्पन्न होनेवाले श्वास-कास आदि शोथ रोग के विनाश के साथ नष्ट हो जाते है।

बृहन्मञ्जिष्ठा क्वाथ [भा. भै. र. ४९८६]

(यो. त. । त ६२, वृ. यो. त । त १२०, यो. र. । वात, यो. त. । त. ४१; शा. ध. । खं. २ अ. २; वृ. नि. र. । वातरक्ता; यो. चि. । अ. ४, भा. प्र. । कुष्ठा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—मजीठ, नागरमोथा, कूडे की छाल, गिलोय, कूठ, सोठ, भारङ्गी, कटेली, वच, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हैड, वहेडा, आमला, पटोल, कुटकी, मूर्वा, वायविडङ्ग, आसनावृक्ष की छाल, चीतामूल, शतावर, त्रायमाणा, पीपल, इन्द्रजौ, वासा, भांगरा, देवदारु, पाठा, खैर सार, रक्तचन्दन, निसोत, वरुणा, चिरायता, वावची, अमलतास, साखोट वृक्ष की छाल, वकायन की छाल, करञ्ज की छाल, अतीस, सुगन्धवाला, इन्द्रायण की जड, अनन्त मूल, सारिवा और पित्तपापडा प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर सबको एकत्र अधकुटा कर प्रयोगार्थ रक्खे। यथाविधि निर्माण करके शुद्ध गूगल और पीपला चूर्ण मिलाकर पीवे।

उपयोग—इसके सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद, प्रसुप्ति, पक्षाघात, मेददोष और नेत्ररोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह क्वाथ बाजार मे अनेको लभ्य रक्तशोधको से श्रेष्ठ है। मूत्रल, दाहनाशक, सहज रेचक, आमपाचक, कफनाशक, ज्वरनाशक, वातनाडी तन्तुशोथ के कारण होनेवाले रक्तविकार, ग्रन्थियो के कारण होनेवाले रक्तविकार, आमसंग्रह के कारण होनेवाले रक्तविकार, वृक्कतन्तुगत शोथ के कारण होनेवाले रक्तविकार और त्वकविकार, त्वचा, मांस और मज्जा मे होनेवाले रक्तज, पित्तज और वातज दोष, विषज त्वक और रक्तविकार, कफज त्वक् और रक्तविकार आदि नष्ट होने है। इसका सेवन अन्य सभी त्वक् और रक्तदोष नाशक द्रव्यो की अपेक्षा श्रेयस्कर है। रक्तचाप की वृद्धि के कारण होनेवाले पक्षाघातादि विकारो मे भी इसका उपयोग लाभप्रद है। इसके सतत सेवन से मेदवृद्धि का नाश होता है। यह पोषक और रक्तवर्द्धक भी है।

भार्ग्यादि कषाय [सि. यो. सं.]

(त्रिशती)

द्रव्य और निर्माण विधिः—भारंगी का मूल, नीम की अन्तर्छाल, नागरमोथा, हैंड, गिलोय, चिरायता, अड्डूसा, अतीस, त्रायमाण, कुटकी, वच, सोंठ, कालीमिर्चे, छोटी पीपल, सोनापाठा, कुडा की छाल, रास्ना, जवासा, पटोल (कडुवे परवल के पत्ते), पाढर, निसोत, दारुहल्दी, इन्द्रायण की जड़, हल्दी, ब्राह्मी, पुष्करमूल, छोटी कटेली, वडी कटेली, कचूर, आमला, वहेडा और देवदारु इन ३२ द्रव्यों को अधकचरा–दरदरा कूटकर रख लेवें। इनमें से १ तोला लें उसे १६ तोला जल में पकावें। जब ४ तोला जल बाकी रहे तब उतारकर कपडे से छान लेवें।

उपयोग—यह भार्ग्यादि कषाय आवश्यकतानुसार दिन में २–३ बार अकेला या इसमे ५ रत्ती नौसादर और ५ रत्ती यवक्षार मिलाकर देवें। यह क्वाथ कफज्वर, कफाधिक सन्निपात ज्वर, श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया), फुफ्फुसच्वराकला शोथ (प्लुरिसी) पार्श्वशूल, कफ, कास और श्वास को दूर करने के लिये उत्तम योग है। इसको केवल या अभ्र और शृङ्गभस्म के अनुपान रूप मे देवें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

महारास्नादि क्वाथ [भा. भै. र. ५८८४]

(शा. ध. सं.। खं. २ अ. २, वं. से., वृ. मा.; वृ. नि. र.। वातव्या.; वृ. यो. त.। त. ९३)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रास्ना २ भाग तथा धमासा, वला, अरण्डमूल, देवदारु, कचूर, वच, सोंठ, हैंड, चव, नागरमोथा, पुनर्नवा, गिलोय, विधारा, सोया, गोखरू, असगन्ध, अतीस, अमलतास, शतावर, पीपल, पियावांसा, धनिया तथा छोटी और वडी कटेली, प्रत्येक समभाग लें, सबको एकत्र अधकुटा कर प्रयोगार्थ रक्खें।

निर्माण तथा प्रयोग विधानः—२॥ तोले क्वाथ चूर्ण को लेकर १० तोले जल मे क्वथित करें, जब ५ तोले अवशेष रह जाय तब उसे उतार छानकर सोंठ या पीपल का चूर्ण या योगराज गुगुल या अजमोदादि चूर्ण या अरण्ड तेल मिलाकर प्रयोग मे लावें।

उपयोग—इसके सेवन से सर्वाङ्गकम्प, कुब्जता, पक्षाघात, अपवाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानक, अन्त्रवृद्धि, आध्मान, जङ्घा और जानु की पीडा, आर्दित, शुक्रदोष, मेढवात, वन्ध्यत्व और योनिदोष का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध आमदोष को नाश करने मे अपना असमान स्थान रखती है। तथा यह वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, दाहनाशक, मूत्रल, वीर्यवर्द्धक, ग्रन्थिदोष नाशक, श्लेष्म-

कला शैथिल्य नाशक, शुक्रग्रन्थि पोषक, कण्ठशोधक, कफनाशक और आमवात और कफजन्य विकारों को नाश करके उनके अनुवन्धि रोगों का नाश करती है। नाडी दौर्बल्य इसके सेवन से शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार आम द्वारा उत्पन्न हुये अङ्गों के विभिन्न विकार नष्ट होते हैं और मेद का शोषण होता है।

मांस्यादि क्वाथ [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—जटामांसी १ तोला, असगन्ध १/४ तोला और खुरासानी अजवायन के बीज १॥ मासा इनको जौकूट कर ४० तोले जल में पकावें और जब १० तोला जल रह जाय तब कपडछन करके पिलावे।

उपयोग—इस क्वाथ को हिस्टीरिया और बालकों के आक्षेपक रोगों मे अकेला या अपतन्त्रकारि वटी, वृहद्वातचिन्तामणि, ब्राह्मी वटी, सर्पगन्धायोग इनके अनुपान रूप में प्रयोग करें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

मूत्रविरेचनीयदशक महाक्वाथ [भा. भै. र. ५०८२]

(च. सं. । सू. स्था. अ. ४)

द्रव्य—विदारीकन्द, गोखरू, वसुक (अगस्ति), हुलहुल, पाषाणभेद, दाभ, कुश, कांस, गुन्द्रपटेर (पटेला) और इत्कटमूल प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र अधकुटा करके यथाविधि निर्माणकर यथावत् प्रयोग करें।

उपयोग—यह मूत्रविरेचक है।

सं. वि.—यह क्वाथ मूत्रल, वृक्कदोष नाशक; अश्मरी, शर्करा, वृक्कनलिका, पित्तज तथा रक्तजशोथ, नूतन और पुरातन मूत्राशय शोथ, शुक्रग्रन्थि-शोथ तथा मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह आदि रोगों को नाश करनेवाला है। इसके सेवन से किसी भी कारण से उत्पन्न हुई अश्मरी अणु २ रूप में विच्छिन्न होकर मूत्र द्वारा प्रवाहित हो जाती है। यह पथरी के लिये बहुत ही उपयोगी क्वाथ है।

रास्नासप्तक क्वाथ [भा. भै. र. ५८९२]

(श. ध. । खं. २ अ. २; भै. र. । आमवात.; च. द. । आमवाता. २५; र. र.; वं. से.; भै. र. । आमवात; वृ. यो. त. । त. ९३; यो. त. । त. ४२; धृ, मा.; यो. र. । आम.; ग. नि. । आमवाता. २२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरू, अरण्ड

मूल और पुनर्नवा, प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर अधकुटा कर प्रयोग में लावे तथा यथाविधि निर्माण करके सोंठ का १॥ मासा चूर्ण मिश्रित कर प्रयोग करावें ।

उपयोग—इसके सेवन से जंघा, उरु, पार्श्व, त्रिक और पृष्ठशूल का नाश होता है ।

सं. वि.—यह क्वाथ आमनाशक, मूत्रल, सहज रेचक, पाचक, दाहज्वर नाशक और वातकफ नाशक है । इसके सेवन से आमकफ के संग्रह से होनेवाले विकार नष्ट होते हैं ।

वत्सकादि क्वाथ [सि. यो. सं.]

(च. द. । चि. अतिसाराधिकार)

द्रव्य और निर्माण विधिः—कुडा की छाल या इन्द्रयव, अतीस, बेलगिरी, नेत्रवाला और नागरमोथा सब समभाग ले जौकुट करके रख लेवें ।

मात्राः—इसमें से १ तोला चूर्ण १६ तोले जल में पका ४ तोला जल बाकी रहने पर स्वच्छ कपडे से छानकर पिलावे ।

उपयोग—शूल, आम और रक्तयुक्त नये और पुराने अतिसार में इससे अच्छा लाभ होता है । [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

सप्तच्छदादि क्वाथ [७७७०]

(वृ. नि. र.; ग. नि. । मुख. ५; यो. त. । त. ६९, भा. प्र. । म. खं. २ मुख. । वं. से. । मुख; वृ. यो. त. । त. १२८; वृ. मा. । मुखरोगा.; वा. भ. उ. अ. २२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सतोने की छाल, खस, पटोल, नागरमोथा, हैड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास और लाल चन्दन प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर सबको एकत्र अधकुटा कर प्रयोगार्थ रक्खे ।

यथाविधि निर्माण कर सेवन करे ।

उपयोग—इस क्वाथ का सेवन करने से मुखपाक का नाश होता है ।

सं. वि.—यह क्वाथ दाहनाशक, ज्वरनाशक, रक्तशोधक, रेचक, श्लेष्मकलाशोथ नाशक, व्रणनाशक और रक्त तथा पित्तशामक है । इसके सेवन से मुख की श्लेष्मकला के व्रणादि विकार नष्ट हो जाते हैं ।

हीवेरादि क्वाथ [सि. यो. सं.]

(शा. ध. । म. खं. अ. २)

द्रव्य और निर्माण विधिः—खस, धाय के फूल, लोध्र, पाठा, लाजवन्ती, कुडा की की छाल, धनिया, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, वेलगिरी और सोंठ सब समभाग लें, एकत्र जौकुट करके रख लेवें।

मात्राः—इसमें से १ तोला द्रव्य को १३ तोला जल में पका ४ तोले बाकी रहने पर कपडछन्न करके रोगी को देवें।

उपयोग—इस कषाय का अरुचि, आमशूल, रक्त और ज्वरयुक्त सब प्रकार के नये या पुराने अतिसार में प्रयोग करें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

भैषज्य-सार-संग्रह

नवम प्रकरण

घृत और मल्हम

(१) घृत

घृत नित्य के उपयोग की वस्तु है। शरीर और मस्तिष्क के सभी श्रमजीवियों के लिये यह अत्यन्त आवश्यक, पौष्टिक और वात–पित्त नाशक द्रव्य है। इसका सेवन जैसा लोक-प्रसिद्ध है, वैसा ही विज्ञान प्रसिद्ध भी है। वैज्ञानिको ने घृत में अनेक लक्षण पाये। यथा घृत सौम्य, शीतवीर्य, मृदु, मधुर अभिस्यन्दि, स्नेहन, और उदावर्त, उन्माद, अपस्मार, शूल, ज्वर, आनाह तथा वात–पित्त रोगो को प्रशमन करनेवाला, अग्निदीपक, स्मृति, मति, मेधा, कान्ति, स्वर, लावण्य, सौकुमार्य, ओज, तेज, बल को उत्पन्न करनेवाला, आयुष्य, वृष्य, मेध्य, वयःस्थापक, गुरु, चक्षु प्रसादक, कफवर्द्धक, विपहर, अलक्ष्मीनाशक और जन्तुघ्न होता है।

इसके गुणों से सभी सहमत है और एक या दूसरे रूप में इसका सभी उपयोग करते है। आधुनिक विज्ञान फैट (Fat) कहकर इसकी उपयोगिता अनिवार्य बताता है और लोक इसे शरीर, वीर्य, बुद्धि आदि वर्द्धक मानकर प्रयोग करता है।

अनेक रोग नाशक औषधों के योग से परिपक्व घृत उन औषधो के गुणो को वहन करता हुवा भी अपने गुणो से प्रयोग करनेवाले को पुष्ट करता है।

घृत पाक करने से पूर्व घृत को मूर्च्छित किया जाता है। तदनन्तर उसमे क्वाथ, दूध, दही आदि यथापाठ कथित द्रव पदार्थ और औषधियो का कल्क मिश्रित कर परिपक्व किया जाता है। फिर तैयार होने पर उसमें प्रक्षेप्य द्रव्यो का चूर्ण डाला जाता है।

मूर्च्छा—एक सेर घी को मन्दाग्नि पर गरम करके फेन रहित होने पर उसमें हैड, बहेडा, आमला और हल्दी को बिजौरे के रस मे पीसकर डाले और कुछ काल साधारण गरम करके छान लें। इससे घृत स्वच्छ, आमदोष रहित और वीर्यवान हो जाता है।

क्वाथ—घृतपाक के लिये जिन द्रव्यो का क्वाथ बनाना हो उन सबको मिश्रित कर, घृत से २ गुना लेना चाहिये और उनको एकत्र अधकुटा करके ८ गुने पानी मे पकाकर चतुर्थांश अवशेष रहने पर छान ले। यदि क्वाथ द्रव्यों का परिमाण बहुत अधिक हो तो सबका क्वाथ

एक ही साथ न बनाकर ६।—६। सेर द्रव्य लेकर कई बार में क्वाथ तैयार करें और सब क्वाथों को एकत्र मिलाले। क्वाथ द्रव्य का परिमाण ६। सेर हो तो जल ३२ सेर लेना चाहिये।

दुग्धादि—यदि केवल दूध से ही घृत पाक करना हो तो दूध घृत से ८ गुना लेना चाहिये और यदि अन्य पदार्थ भी डालने हो तो दूध घृत के समान लेना चाहिए। यदि ३ द्रव पदार्थों से घृतपाक करना हो तो इन्हे बराबर २ मिलाकर घृत से ४ गुने लेने चाहिये। और यदि ४ से अधिक डालने हो तो प्रत्येक पदार्थ घृत के समान लेना चाहिये। यदि केवल स्वरस, दूध और दही आदि से पाक करने के लिये शास्त्र का उपदेश हो तो स्नेह (घृत) से ४ गुना जल अवश्य मिला लेना चाहिये, क्यो कि केवल दूध—दही आदि से पाक भलिभांति सिद्ध नहीं होता।

कल्क—स्नेह (घृत) मे साधारणत: घी का १/४ भाग कल्क डाला जाता है, परन्तु यदि वासापुष्प आदि का कल्क डालना हो तो उसे स्नेह से ८ वां भाग लेना चाहिये। यदि केवल जल से घृत सिद्ध करना हो तो कल्क १/४ भाग, क्वाथ से सिद्ध करना हो तो कल्क ६ ट्ठा भाग और स्वरस से सिद्ध करना हो तो कल्क ८ वां भाग डालना चाहिये।

विशेष ज्ञातव्य

(१) यदि घृत का परिमाण न लिखा हो तो १ सेर घृत ले और उसमें उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार क्वाथ जलादि डाले।

(२) उपरोक्त परिभाषाये केवल उस स्थान के लिये है, जहां द्रव्यो का परिमाण न लिखा हो। जहां परिमाण का उल्लेख हो, वहां तदनुसार पदार्थ ग्रहण करें चाहे परिभाषा सहमत हो या नहीं।

(३) यदि गोमूत्रादि क्षार युक्त पदार्थों के साथ घृतपाक करना हो तो बहुत सावधानी बरतनी आवश्यक है कि कहीं कढाई से बाहर घृत न निकल जाय, क्योकि क्षार पदार्थो के योग से स्नेह में अत्यधिक झाग आते है।

(४) जिस प्रयोग में जितने घृत का पाक करने का विधान हो, उतना ही घृत लेना चाहिये। उससे आधे, चौथाइ या दो चार गुने स्नेह (घृत) का पाक ठीक नहीं होगा।

(५) जहां किसी गण की समस्त औषधियां न मिल सकें वहां जितनी मिल जांय उन्हीं से काम लेना चाहिये।

(६) यदि स्नेह को दूध के साथ सिद्ध करना हो तो २ दिन में, यदि स्वरस के साथ सिद्ध करना हो तो ३ दिन में और तक्र, काञ्जी आदि से सिद्ध करना हो ता ५ दिन में

पाक पूर्ण करना चाहिये, अर्थात् पहिले दिन थोडी देर पकाकर छोड दे और फिर दूसरे दिन पकावें। इस प्रकार एक ही दिन मे पूर्ण करने से स्नेह्य अधिक गुणवान बनता है।

घृतसिद्धि के लक्षण

(१) यदि घृत का कल्क अग्नि मे डालने से किसी प्रकार का शब्द न हो तो घृत को सिद्ध समझ लेना चाहिये।

(२) घृत का पाक पूर्ण होने के समय खूब झाग उठते हैं।

घृतपाक भेद

घृतपाक ३ प्रकार का होता है। (१) मृदु (२) मध्यम और (३) खर। यदि कल्क किञ्चित रसयुक्त हो तो उसे मृदुपाक, नीरस किन्तु कोमल हो तो मध्यम पाक और कठिन हो तो खर पाक समझना चाहिये। इन तीन प्रकार के पाकों में मध्यम पाक सर्वोत्तम और खरपाक निकृष्ट माना गया है, परन्तु मर्दनार्थ खरपाक ही उत्तम होगा।

घृतभेद

गाय, बकरी, भैंस, ऊंटनी, भेड, शफ (घोडी और गधी) हथिनी और स्त्री, इनमे से प्रत्येक प्राणी का घृत एक से कुछ भिन्न गुणवाला होता है। अत शास्त्र मे जिस प्राणी के घृत का उल्लेख हो उसी के घृत का पाक सिद्ध करे।

इन घृतों में कहीं भी वनस्पति घृत (Vegetable ghee) नामक घृत हमने नहीं लिखा है, अतः उसका प्रयोग, घृतपाक में सर्वथा वर्जनीय समझ कर, कदापि न करे।

कहीं २ जीर्ण घृत का शास्त्र मे पाक करने के लिये विधान आता है अथवा जीर्ण सर्पी के प्रयोग का विधान आता है अतः यह जानना आवश्यक है कि यह घृत बहुत लाभप्रद होता है। यह स्वाभाव से रेचक, विपाक में कटु, त्रिदोषनाशक और मूर्च्छा, मद, उन्माद, उदररोग, ज्वर, विष, शोथ, अपस्मार, योनिरोग, कर्णरोग, अक्षिरोग और शिरःशूल नाशक है। इसका प्रयोग अग्निवर्द्धक, वस्ति, नस्य और आंखों में लगाने के लिये किया जाता है।

क्षयादि रोगों के लिये उद्दिष्ट घृतो का सेवन सब औषधियों से श्रेष्ठ है। अतः जन कल्याण के लिये ऐसे घृतों का पद्धति पुरस्सर निर्माण करना और प्रचार करना बहुत ही उपयुक्त है।

अर्जुन घृत [भा. भै. र. १६९]

(भै. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१ सेर घत को ४ सेर अर्जुनवृक्ष की छालके क्वाथ

या रस मे पकाते हुए उस में १/४ सेर अर्जुन की छाल का कल्क डाले और पाक सिद्धि होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१–१ तोला। प्रातः सायं ऊष्ण दुग्ध या ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से हृदय रोग नष्ट होते है।

सं. वि.——घृत स्वभावतः ही शक्तिवर्द्धक हैं। अर्जुन की छाल हृदय की एक प्रसिद्ध औषध है। घृत के साथ इसका योग वात–पित्त दोष नाशक, हृदय पोषक, हृन्मांस, हृत्कपाट, महाधमनी आदि हृदय के रोगो को नाश करनेवाला होता है। इसके सेवन से दुर्बल अवसादित हृदय मे शक्ति का संचार होता है तथा हृन्मांग कृच्छता और हृच्छूल आदि रोगों का नाश होता है। हृद्रोग से शीर्णदेह वालो के लिये इसका सेवन बहुत प्रशस्त है।

—— –०———

अशोक घृत [र. तं. सा.]
(भै. र.)

बनाबटः—अशोक की छाल २ सेर को चौगुने जल मे क्वाथ करे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर नीचे उतार छान लेवें। पश्चात् १ सेर जीरे को ४ गुने जल में (ढक्कन ढककर) पका आधा जल शेष रहने पर उतार कर छान ले। फिर जीवनीय गण की औषधियां (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुग्दपर्णी, मासपर्णी, जीवन्ती और मुल्हैठी), चीरौंजी, फालसा, रसौत, मुल्हैठी, अशोक की छाल, मुनक्का, शतावर, चौलाई की जड, प्रत्येक २॥–२॥ तोले लेकर कल्क करें। तत्पश्चात् कल्क, अशोक का क्वाथ, जीरे का क्वाथ, चावलों का धोवन २ सेर, बकरी का दूध २ सेर, भांगरे का स्वरस २ सेर और गोघृत २ सेर ले। सबको कढाई मे डाल शास्त्रोक्त विधि से पाक करे। घृत छान लेने पर १ सेर मिश्री मिला लेवें।

मात्राः—१–१ तोला दिन में २ बार दें।

उपयोग—यह घृत स्त्रियो के सब प्रकार के रोगों का नाशक है। श्वेत, नील और कृष्णवर्ण भयंकर प्रदर, गर्भाशय मे शूल, कटि शूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, श्वास, कामला आदि को नष्ट करता है। शरीर, बल, कान्ति और आयु की वृद्धि करता है।

[रसतन्त्र सार से उद्धृत]

सं. वि.—अशोक घृत पौष्टिक, रसायन, स्तन्यवर्द्धक, अग्निवर्द्धक, बल, बुद्धि, मेधा, कान्ति तथा सौन्दर्यवर्द्धक द्रव्यों के योग से बनाया गया है। यह वात–पित्त शामक, वस्ति, उदर–पार्श्व–आदि स्थानों में अपान वात द्वारा होनेवाले विकारों को नष्ट करके गर्भाशय और

उदर की श्लेष्मकलाओं के शैथिल्य को दूर करता है, उनके अर्न्तन्तु शोथ को नष्ट करता है। जीर्णता का विनाश करके अङ्ग–प्रत्यङ्ग मे नवता का संचार करता है और सौकुमार्य की वृद्धि करता है। जीवनीय गण की औषधियो का योग इसके गुणो की अनेकशः वृद्धि करता है, जिससे शरीर के कोषो में नवीन रक्त का परिभ्रमण बढता है। इसके सेवन से योनिशूल, योनिशोथ, सब प्रकार का प्रदर, डिम्बग्रन्थि शोथ, गर्भाशय संकीर्णता, गर्भाशय शैथिल्य आदि अनेक व्याधियां नष्ट होती है। यह स्त्रियो के लिये उपयुक्त औषध है।

कामदेव घृत [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—असगन्ध ४०० तोला, गोखुरू २०० तोला; बरियारा, गिलोय, सरिवन, विदारीकन्द, शतावर, सोंठ, गदहपूरना, पीपल की कोपल, गम्भारी के फल, कमलगट्टा और उडद प्रत्येक २०–२० तोला लें। सबको जौकुटा कर ४०९६ तोले जल में पकावे। चौथाई जल बाकी रहने पर कपडे से छान, उसमे गाय का घी २५६ तोला, गन्ने का रस २५६ तोला तथा मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, कूठ, पद्माख, लाल चन्दन, तेजपात, छोटी पीपल, मुनक्का, कौंच, नीलकमल, नागकेशर, अनन्तमूल, बरियारा और कंघी प्रत्येक १–१ तोला तथा मिश्री ८ तोला, इनके कपडछन चूर्ण को जल मे पीसकर कल्क बनावे और घृत में मिलाकर घृतपाक विधि से पकावें। घृत तैयार होने पर कपडे में छानकर शीशी मे भर लेवें।

मात्रा और अनुपान—आधे से दो तोले तक, उतना ही मिश्री का चूर्ण मिलाकर देवे, ऊपर से दूध पिलावे।

उपयोग—यह उत्तम पौष्टिक और वाजीकरण है। वीर्यक्षय, शरीर की कृशता, मूत्रकृच्छ, उरःक्षत और नपुंसकता में इसका प्रयोग करें। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

कुमार कल्याण घृत [सि. यो सं]

द्रव्य और निर्माण विधिः—शंखाहुली, वच, ब्राह्मी, कूठ, हरड, बहेडा, आंवला, मुनक्का, मिश्री, सोंठ, जीवन्ती, जीवक, बरियारा (बलामूल), कचूर, धमासा, बेल, अनार, तुलसी, सरिवन, नागरमोथा, पुष्करमूल, छोटी इलायची, छोटी पीपल, खस, गोखुरू, अतीस, पाढ, वायविडङ्ग, देवदारु, मालती के फूल, महुआ के फूल, पिण्डखजूर, मीठे बेर और वंशलोचन। सब समभाग ले, कूट–कपडछन कर, जल मे पीस, उसमे चौगुना गाय का घी और गाय का दूध तथा छोटी कटेरी का क्वाथ घी से चौगुना मिलाकर घृतपाक विधि से पकावें। जब घृत तैयार हो जाय तब उसको कपडे से छानकर शीशी मे भर लेवे।

मात्रा और अनुपान—३ से ६ मासा। गरम दूध में मिलाकर पिलावे।

उपयोग—इस घृत के सेवन से वल, वर्ण, रुचि, जठराग्नि, मेधा और आयुष्य बढता है। दांत आने के समय में बालको को इसका सेवन कराने से विना उपद्रव के दांत निकल आते है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

त्रिफला घृत [भा. भै. र. २४४४]

(शा. ध. । खं. २ अ. ३९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१ सेर त्रिफले का क्वाथ लेकर उसमें १ सेर वासे का रस, १ सेर भांगरे का रस और १ सेर वकरी का दूध मिलाकर अग्नि पर चढावें। इस मिश्रण में १ सेर घी डाले। त्रिफला, पीपल, द्राक्ष, चन्दन, सेधानमक, वला, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, कालीमिर्च, सोंठ, मिश्री, लाल चन्दन, श्वेत कमल, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी और मुल्हैठी प्रत्येक द्रव्य १।—१। तोला लेकर एकत्र पीसकर चटनी सी तैयार करके पकते हुये उपरोक्त घृत में डाले, जव जलीयांश शुष्क हो जाय तव उतार कर घी को छान लें और ठण्डा होने पर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१—१ तोले। गरम दूध में डालकर पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से नक्तान्ध (रतौन्धापन), नकुलान्ध्य, आंखों की खुजली, पिल्ल (रोहे), नेत्रस्राव, पटलरोग, तिमिर और अन्य भी दारुण नेत्ररोग नष्ट होते है। इसका सेवन पान और नस्यादि से किया जाता है।

सं. वि.—त्रिफला घृत वात—पित्त नेत्ररोग नाशक, दृष्टि प्रसादक, सहज रेचक, अग्निवर्द्धक, मस्तिष्कशक्तिप्रद, शरीरदाह—नाशक और पौष्टिक है। इसके सेवन से नेत्ररोग तथा वात—पित्तज उदररोग दूर होकर दृष्टिदोष का नाश होता है।

दशमूलषट्पल घृत [भा. भै. र. ३०४२]

(वं. मा. । उदरा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ और यवक्षार का कल्क ३ पल (अर्थात प्रत्येक २॥—२॥ तोले) लेकर एकत्र कल्क तैयार करें। घी ४ सेर, दशमूल का क्वाथ १। सेर और दही का पानी ८ सेर लेकर सवको एकत्र मिलाकर जलीयांश विनाश पर्यन्त परिपक्व करे और उतार छानकर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—१—१ तोला। गरम जल या पीपल के क्वाथ मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से उदरव्याधि, सूजन, अपानविष्टम्भ (अपान वायु का रुकना), गुल्म और अर्श का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध अग्निवर्द्धक, वातानुलोमक, मूत्रल, मलशोधक, दीपक, पाचक, अन्त्र शैथिल्य नाशक और वात–पित्त और कफ द्वारा होनेवाले अन्य श्लेष्मकला के कोथ, शोथ, दाह, शूल आदि का नाश करती है। यह यकृत, प्लीहा, आमाशय और ग्रहणी के विकारों मे वहुत ही उपयुक्त है। दीर्घकाल से उदर के वात विकारो से पीड़ित मनुष्य इसके सेवन से शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।

पञ्चतिक्त घृत [आ. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—नीम की छाल, पटोल पत्र, कण्टकारी, गिलोय और वासा प्रत्येक द्रव्य २॥–२॥ सेर लेकर एकत्र अधकुटा करके दो भागो में विभक्त करे। प्रत्येक ६। सेर के विभाग को ३२ सेर पानी मे पकावे और फिर अग्नि पर रख कर घृतावशेष पर्यन्त परिपक्व करें। तत्पश्चात उतार कर छान ले और शीतल होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१–१ तोला। गरम दूध या ऊष्णजल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से रक्तदोषो का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध दाह नाशक, आमशोषक, अग्नि वर्द्धक, ज्वरघ्न, रक्त तथा पित्त दोष नाशक तथा वात-पित्त कफ शामक है। इसके सेवन से कण्डु आदि पित्तज और रक्तजविकार नष्ट होते हैं।

फलघृत (बृहत्) [भा. भै. र. ४५२९]

(वृ. यो. त. । त. १३९; वं. मा. । योनिरोगा, शा. ध. । म. खं. अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—नागर मोथा, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, कुटकी, काकोली, क्षीरकाकोली, वायविडङ्ग, त्रिफला, वच, मेदा, रास्ना, इन्द्रायण की जड, देवदारु, फूलप्रियंगु, दोनो सारिवा सौफ, दन्तीमूल, मुल्हैठी, नीलोत्पल, अजमोद, महामेदा, सफेदचन्दन, लालचन्दन, चमेली के फूल, वंशलोचन, कायफल, हींग और खांड प्रत्येक द्रव्य १।–१। तोला लेकर एकत्र पीस ले।

(**नोटः**—वृ. मा. मे दन्तीमूल का अभाव है। शा. ध. मे देवदारु. और मेदा का अभाव है।)

१ सेर घृत में उपरोक्त कल्क और ८ सेर दूध मिलाकर अरण्य उपलों की अग्नि पर घृतावशेष पर्यन्त पकावें। तैयार होने पर उतार ले और छान लें तथा शीतल होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखें।

इसमे एक ही रंग की जीवितवत्स गाय का घी लेना चाहिये, चिकित्सक शास्त्रमें अकथित होने पर भी इसमे 'लक्ष्मणामूल' का भी प्रयोग करते हैं।

शास्त्र में इसके लिये पुष्य नक्षत्र मे पकाना और तत्पश्चात स्वर्णादि पात्रों में भरने का विधान है।

मात्राः—१–१ तोला। गरम दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यदि इसका सेवन पुरुष करे तो उसमे काम शक्ति की वृद्धि होती है। वन्ध्या स्त्री इसका प्रयोग करे तो उसके संतान उत्पन्न होती है। कन्याप्रसू या बार २ खण्डितगर्भा या मृत अथवा अल्पायु संतान पैदा करने वाली स्त्री यदि इसे सेवन करे तो वह दीर्घायु और निरोगी पुत्र को जन्म देती है। ऐसी स्त्री का पुत्र बुद्धिशाली और सुन्दर होता है। पुत्र प्राप्त कराने वाली यह औषध स्त्रियों के लिये उत्तम है।

इसका निर्माण भरद्वाज मुनि ने किया।

सं. वि.—यह औषध वातानुलोमक, दाहनाशक, कोष्ठ शोधक, शरीर पोषक, मूत्रल, रक्त शोधक तथा जरायु और अन्त्र के पित्तजशोथ का नाश करने वाली है। इसके सेवन से डिम्ब ग्रन्थियों का पित्तज और रक्तज शोथ दूर होता है तथा डिम्ब अविकृत रहते हुए शुक्राणुओ को ग्रहण करने मे समर्थ होता है। अलाम्ल डिम्ब के संयोग मे आते ही शुक्राणु प्रायः नष्ट हो जाते है अथवा यदि गर्भधारण भी हो जाय तो प्रजा अल्पायु होती है या गर्भ ही क्षीण हो जाता है, और पुत्र सन्तान तो सम्भवतः होती ही नहीं। इसके सेवन से पित्त और रक्तद्वारा उत्पन्न हुई डिम्ब ग्रन्थियो की यह अम्लता नष्ट हो जाती है। डिम्ब सशक्त और पुष्ट होकर स्वस्थ क्रिया करते है। अतः शास्त्रकी उक्ति सर्वथा सत्य है। यह योनि-दोषो के लिये इतनी ही उपयुक्त औषध है, जितनी कि वीर्य को निर्विकार कर वर्द्धन करने के लिये। पित्तल के शरीर मे अम्लकी वृद्धि से भी वीर्याणुका नाश होता है। इसके सेवन से यह दोष नष्ट हो जाता है। अतः वीर्य मे प्रजोत्पादक शक्ति की वृद्धि होती है।

ब्राह्मी घृत [भा. भै. र. ४६७६]

(वं. से.; वृ. नि. र.; यो. र., वृ. मा.; र. र.। अपस्मा., भा. प्र.। म ख. अपस्मार, च. द.। वातका., वृ. यो. त.। त. ८९; वै. म. र.। पटल १५, च. सं., चि. स्था. अ. १५; यो. चि.। घृता. अ. ५; हा. सं.। स्था. ३ अ. २१)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—वच, कूठ तथा शंखपुष्पी तीनों को १० तोला ले कल्क बनावे।

क्वाथ्य द्रव्यः—ब्राह्मी स्वरस ८ सेर।

घृतः—२ सेर पुराना घृत।

तीनों को एकत्र मिश्रित कर (घृतपाक की उत्तमता के लिये ८ सेर जल मिलाकर) घृतावशेष पर्यन्त परिपक्व करे। उतार छानकर शीतल होने पर प्रयोगार्थ रखे।

मात्राः—१-१ तोला। ऊष्ण दुग्ध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से उन्माद, ग्रह और अपस्मार का नाश होता है।

सं. वि.—वचा, ब्राह्मी और शंखपुष्पी तीनो ही मस्तिष्क वर्द्धक उत्तम द्रव्य है और कूठ वात कफ नाशक, हृदय, मस्तिष्क और फुफ्फुस पोषक है। इस प्रकार यह औषध इन द्रव्यों और घृत के निर्माण से मानसिक और शारीरिक रोगो को नाश करने के लिए उत्तम है। इसका सेवन मस्तिष्क दौर्बल्य, अपस्मार, उन्माद, दृष्टि-दौर्बल्य आदि के लिये उपयुक्त है।

बृहत् शतावरी घृत [७३७२]

(भै. र. । वाजीकरणा., वृ. यो त. । त. ७५, वृं. मा. । रक्तपित्ता.; र. र. । रक्तपित्ता.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, द्राक्षा, मुल्हैठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द, और लाल चन्दन। प्रत्येक ४०-४० मासा लेकर सबको एकत्र पानी के साथ पीसकर कल्क तैयार करे।

क्वाथ्य द्रव्यः—शतावरी स्वरस ४ सेर, दूध ४ सेर।

घृतः—२ सेर।

सबको एकत्र मिश्रित कर घृतावशेष पर्यन्त पकावें और छानकर शीतल होने पर उसमे २० तोला खांड और २० तोला मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१-१ तोला। ऊष्ण दुग्ध।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—रक्तपित्त, वातरक्त, शुक्रक्षीणता, अङ्गदाह, शिरोदाह, पित्तज्वर, योनिशूल, योनिदाह और मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है।

सं. वि:—यह घृत दाह नाशक, मूत्रल, पौष्टिक, रक्त-वीर्य-बल-अग्नि-वर्ण-वर्द्धक, पित्तजदाह, शोथ आदि विकार नाशक है। इसके सेवन से कामशक्ति की जागृति होती है। यह पुरुषो और स्त्रियो के लिये समान लाभदायी है।

शीतकल्याण घृत [भा. भै. र. ७३७९]

(वं. से.; यो. र. । स्त्री रोगा.; भै. र. । स्त्री.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—लाल कमल, पद्माक, खस, गेहूं, लाल चावल, मुद्गपर्णी, क्षीरकाकोली, खंभारी की छाल, मुल्हैठी, खरैटी की जड, अतिवला की जड, नीलोत्पल, तालफल, विदारीकन्द, सोया, शालपर्णी, जीवक, हैड, वहेडा, आमला, खीरे के वीज और केले की कली, प्रत्येक २॥-२॥ तोले लेकर सबको पानी के साथ एकत्र पीस ले।

घृतः—२ सेर।

अन्य द्रव्य—८ सेर गायका दूध, ४ सेर पानी। सम्पूर्ण द्रव्यो को एकत्र मिला कर पकावें और पाक सिद्ध होने पर उतार कर छान ले। ठण्डा होने पर प्रयोगार्थ रक्खे।

मात्राः—१-१ तोला। गरम दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुण धर्मः—इसके सेवन से प्रदर, रक्त गुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, अरुचि, ज्वर, अजीर्ण, पाण्डु, मद, भ्रम, अल्पऋतुस्राव, गर्भ न रहना आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध शीतवीर्य, मधुर विपाक, दाहनाशक, रक्तरोधक, शरीर पोषक, पित्तज शोथ-दाह-क्षीणता आदि नाशक और पित्त दोष के कारण होने वाले श्लेष्म ग्रन्थि और श्लेष्म-कलाओ के विकारों को नष्ट करती है। इस के सेवन से पित्त अथवा रक्तद्वारा विकृत डिम्ब ग्रन्थियां स्वस्थ होकर पुष्ट होती है तथा ऋतु को यथा समय और यथा मात्रा मे उत्पन्न करती है। यह प्रदर, रक्तगुल्म और अन्यपित्तज विकारो को नष्ट करने मे भी प्रशस्त है।

सारस्वत घृत [भा. भै र. ७९५३]

(वं. से. । वातव्या., वृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—सुहांजने की छाल, वच, धाय के फूल, लोध्र, सेंधानमक और पाठा ५-५ तोले।

घृत—२ सेर

अन्य द्रव्य—बकरी का दूध ८ सेर।

सबको एकत्र जलीयांश शोषण पर्यन्त पकावे। उतारकर छानलें और तैयार होनेपर ठण्डा करके प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—१-१ तोला उष्ण दुग्ध में मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से जडता, गद्गदता और मूकता का नाश होता है तथा स्मृति, मति, मेधा, प्रतिभा आदि बढती हैं।

सं. वि.—यह घृत वातनाडियो को शक्तिप्रद तथा बुद्धिवर्द्धक है।

हिंग्वादि घृत [भा. भै. र. ८५३१]

(च. सं. । चि. स्था. अ. ५ गुल्मा., वं. से., वा. भ. । चि. स्था. अ. १४, सु. सं. । चि. स्था. अ. ४२ गुल्मा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—हींग, संचल, जीरा, विडनमक, अनारदाना, अजमोद, पुष्करमूल, त्रिकटु, धनिया, अम्लवेतस, यवक्षार, चीतामूल, कचूर, वच, इलायची और तुलसी प्रत्येक द्रव्य समभाग मिश्रित २० तोला।

घृत—२ सेर।

अन्य द्रव्य—दही ८ सेर

सबको एकत्र घृतावशेष पर्यन्त पकावे। उतार छानकर ठण्डा होनेपर प्रयोगार्थ रक्खें।

मात्राः—१-१ तोला उष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वात गुल्म, शूल और आनाह का नाश होता है।

सं. वि.—यह घृत अग्निवर्द्धक, दीपक, पाचक, वातानुलोमक, अन्त्राक्षेप नाशक और आमनाशक है। इसके सेवन से वातोदर का नाश होता है। वात द्वारा होनेवाले गुल्म, शूल, आनाह आदि सभी रोग नष्ट होते है।

[ख] मल्हम

मल्हम का पाक सम्पूर्णतया घृतवत् होता है। आधुनिक मल्हम बनाने की पद्धति वैसलीन के योग से है और उसमे सत्व या क्षार द्रव्यो का मिश्रण किया जाता है। परन्तु शास्त्र मे क्योकि वनस्पति घृतो के योगो का वर्णन है अतः क्वाथ करकेही मल्हम सिद्ध करने का विधान है। यदि वैसलीन के योग से मल्हम निर्माण करने की आवश्यकता प्रतीत हो तो द्रव्यों का

घन बनाकर उन्हे वैसलीन में मिश्रित करके प्रयोग मे ला सकते हे अथवा जिन द्रव्यों का क्षार निकलता हो उनका क्षार बनाकर और जिनका सत्व निकालना हो उनका सत्व निकालकर भी वैसलीन में यथामात्रा मिश्रित कर प्रयोग में लावें।

काशीशादि घृत (मल्हम) [भा. भै. र. ८३२]

(शा. ध. । म. ख. अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—काशीश, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, हरताल, मनसिल, कमीला, गन्धक, वायविडङ्ग, गुगल, मोम, कालीमिर्च, कूठ, नीलाथोथा, सफेद सरसों, रसौत, सिन्दुर, श्रीवास (राल), लाल चन्दन, गन्धखदिर, निम्बपत्र, करञ्ज, सारिवा, वच, मंजीठ, मुल्हैठी, जटामांसी, शिरीष, लोध्र, पद्माक, हैड और पंवाड प्रत्येक द्रव्य, जिनका चूर्ण हो सके उनका चूर्ण और अन्य मिश्रण योग्य, १।-१। तोला ले। प्रथम सम्पूर्ण चूर्ण द्रव्यों को एकत्र करें। तत्पश्चात् इन द्रव्यों को घी मे मिलाकर उसमे मोम को गरम करके मिलादें और इस मिश्रण को ताम्रपत्र मे भरकर ७ दिन तक धूप मे रक्खें।

उपयोग—इसकी मालिस से कुष्ट, दाद, खुजली, विचर्चिका, शूकदोष, विसर्प, वात रक्त के विस्फोटक, शिरःस्फोटक, उपदंश, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, सूजन, भगन्दर और मकडी के जहर का नाश होता है।

यह घृत शोधक, रोपक और त्वचा को सवर्ण करनेवाला है।

गुलाबी मल्हम [सि यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—सौ वार पानी से धोया हुवा घी १० तोला, पुष्पाञ्जन (सफेदा-जिंक आक्साइड) १ तोला, सिन्दुर १ तोला, रसकपूर आधा तोला, कपूर १ तोला, चन्दन का तेल १ तोला, सबको एकत्र घोट, मिला कर कांच के बर्तन मे भर लेवे।

उपयोग—खाज, पामा, अग्निदग्ध स्थान और बवासीर पर लगाने से वेदना, जलन और रोग की शान्ति होती है। [सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

जात्यादि घृत (मल्हम) [भा. भै र. २०३२]

(वृ. नि. र.; यो. र., भै. र., वं. से.; वै. र., वृं. मा, च. द, शा. ध. सं.; धन्व; र. र., यो. त. । त. ६०, वृ. यो. त. । त. १११ ।

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्कः—चमेली के पत्ते, पटोलपत्र, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, मजीठ, खस, नीलाथोथा, मोम, मुल्हैठी और करञ्ज के बीज सब द्रव्य १।–१। तोला लेकर मोम के अतिरिक्त सब द्रव्यो को एकत्र पानी के साथ पीस ले।

घृतः—६५ तोले।

अन्य द्रव्यः—पानी २६० तोला।

कल्क, घृत और पानी को एकत्र पकावे। जल के सूख जाने पर उतारकर छानलें और उसमे मोम डालकर साधारण गरम करें, ठण्डा होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

उपयोग—इसके लगाने से मर्म स्थानो के घाव, पूययुक्त व्रण, गहरे घाव, पीडायुक्त घाव, छोटे मुखवाले घाव और नासूर शुद्ध होकर भर जाते है।

पारदादि मल्हम

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अशुद्ध पारद २० तोले, अशुद्ध गन्धक १० तोले, कमीला २० तोले, वोदार २० तोले, अशुद्ध मयूरतुत्थ २॥ तोले और पीला वैसलीन ३ तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली वनावे, तदनन्तर अन्य द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर भलीप्रकार खरल करें। तत्पश्चात् वैसलीन का मिश्रण करें और प्रयोगार्थ रक्खे।

उपयोगः—व्रण, दुष्ट व्रण, वल्मीक तथा विषैले और दूषित व्रणो के लिये उपयोगी है।

व्रणामृत मल्हम [र. तं. सा.]

वनावटः—गन्धाविरोजा, देशी मोम, राल का चूर्ण प्रत्येक १०–१० तोले और अलसी का तेल २० तोला ले। चारो चीजें कढाई में डाल, ढककर, अत्यन्त मन्द अग्नि से गलावे। जब पिघलकर एक रस हो जाय तब नीचे उतार तुरन्त वस्त्र से छान ले, शीतल होने पर खरल मे घोट कर रखलें।

उपयोग—यह मल्हम हर प्रकार के खुले घाव सुखाने मे श्रेष्ठ है। इससे उपदंश के घाव को भी शीघ्र आराम हो जाता है। दुष्ट व्रण जिसका जहर चारो ओर फैल गया हो, जो अनेक प्रकार के मल्हमो से अच्छा न हुवा हो, इस मल्हम से अच्छा हो गया है।

[रसतन्त्रसार से उद्धृत]

भगन्दर नाशक मल्हम [र. तं. सा]

(अ. नि. मा.)

बनावटः—रसकपूर, सिन्दूर, सेलखडी, मुर्दासंग, सफेदा, सफेद कत्था, कपूर, चिकनी सुपारी की राख प्रत्येक १–१ तोला और सत्यानाशी के बीज ८ तोला सबको मिलाकर कपडछन चूर्ण करे। फिर ४ गुना धोया गोघृत मिलाकर मल्हम तैयार करें।

उपयोगः—इस मल्हम के लगाने से भगन्दर, कण्ठमाल, उपदंश, नासूर, गंभीर व्रण, बवासीर, पामा, फोडा-फुन्सी, दाद इत्यादि रोग दूर होते हैं। छोटा छिद्र हो तो मल्हम की वत्ती लगाकर भर दे। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

सिन्दुरादि मल्हम

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सिन्दुर २॥ तोला, अशुद्ध गन्धक ५ तोला, बोरिक पाउडर १। तोला, जिंक आकसाइड १। तोला, नीला थोथा ०॥ तोला, कपूर ०॥ तोला और वैसलीन २०तोला लें। सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णो को एकत्र मिश्रित कर वैसलीन मे मिश्रित कर प्रयोगार्थ रक्खें।

उपयोगः—कण्ठमाला के लिये हितावत है। व्रणित कण्ठमाला पर इसकी पट्टी लगाइ जाती है और शोथ युक्त तथा विकृत कण्ठमाला पर इसका लेप किया जाता है।

हिङ्गुलादि मल्हम

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अशुद्ध हिङ्गुल २० तोला, कपूर, रसकपूर, सिन्दुर, शुद्ध सौराष्ट्री, बोदार प्रत्येक द्रव्य ७–७ तोला और पीला वैसलीन १० सेर ले। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्मचूर्ण बनाकर सबको एकत्र मिश्रित कर वैसलीन के साथ भलीभांति मिश्रित करे और प्रयोग मे लावे।

उपयोगः—व्रण, व्रणशोथ, फिरङ्गवात, उपदंश व्रण तथा विद्ध, पिष्ट, छिद्र आदि व्रणो पर इसका प्रयोग लाभकारक है।

भैषज्य-सार-संग्रह

दशम प्रकरण

अवलेह और पाक

(१) अवलेह

मधु, गुड, स्वरस आदि द्रव पदार्थों मे औषधियो के चूर्णों का अग्निद्वारा योग देकर अथवा औषध द्रव्यों के क्वाथ को पुनः द्रव्यो के चूर्ण आदि के साथ परिपक्व करके बनाये हुए चाटने योग्य द्रव्य का नाम "अवलेह" है।

अवलेहो के निर्माण मे—औषधियो के चूर्ण से—शर्करा की मात्रा ४ गुनी, गुड की मात्रा २ गुनी और क्वाथ आदि द्रव पदार्थों की ४ गुनी लेनी चाहिये।

इसके परिपाक मे प्रथम घी—तेल आदि स्नेहो को कढाई मे चढाकर गरम करना चाहिए और यदि ऐसे पदार्थ हो कि जिन्हें घृत, तेल आदि स्नेहों मे भूना जाय—यथा पेठा, आमले का चूर्ण आदि, तो उन्हे गरम होते हुए स्नेह में ही भून लेना चाहिये। कल्क आदि के भूनने के बाद, उनमें क्वाथ आदि द्रव पदार्थो को डालना चाहिये और गरम होते हुए द्रव्य मे गुड या शक्कर आदि डालकर उसका परिपाक करना चाहिये। जब चासनी तैयार हो जाय अर्थात् जब उसमे तार छूटने लगे तब प्रक्षेप द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर भली प्रकार घोटे और अग्नि से नीचे उतार कर शीतल होने पर मधु मिश्रित करें, तदनतर घृत से चिकने पात्र में भर कर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

अवलेह खाद्य द्रव्यो का एक प्रकार विशेष है। जैसे पेय द्रव्य पिये जाते हैं, चोष्य चूंसे जाते है और खाद्य खाये जाते है उसी प्रकार अवलेह चाटे जाते है। इनकी क्रिया पेय द्रव्यो की क्रिया से कुछ मन्द होती है परन्तु स्थायित्व इनकी क्रिया का अधिक होता है।

अवलेह रोचक, पाचक और यथा द्रव्य गुणकारी होते हैं।

अवलेह द्रव्यों के अनुपान मे साधारणतः ऊष्ण जल या ऊष्ण दूध का प्रयोग किया

जाता है। वस्तुतः लेह द्रव्यो के लिये किसी पेय द्रव्य की आवश्यकता नहीं रहती, ऐसा करने से उनकी क्रिया में मन्दता आ जाती है।

अगस्त्य हरीतकी [भा. भै. र. १३९]

(वृ. नि. र.। क्षय)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड १०० नग, श्रेष्ठ इन्द्रजौ ४ सेर, दशमूल १। सेर, चित्रक, पीपला मूल, चिरचिटा, कर्पूर कचरी, कौच के बीज, शंखपुष्पी, भारङ्गी, गज पीपल, खरैंटी और पोखर मूल प्रत्येक १०-१० तोले ले। हैड और इन्द्रजौ के अतिरिक्त सब द्रव्यो को अधकुटा कर करके २० सेर पानी मे पकावे और उसमे हैड और इन्द्रजौ को पोटली में बांधकर रख देवे। हैड और इन्द्रजौ के उबल जाने पर या क्वाथ तैयार हो जाने पर उसे उतार ले। क्वाथ को छाने और उसमे उसीजी हुई हैडो को घोटकर मिलावे।

तदनन्तर ४० तोले घृत और ४० तोले तेल तथा ६। सेर गुड मिलाकर पकावें। जब अवलेह सिद्ध हो जाय तो ठण्डे होने पर २०-२० तोला मधु और पिप्पली चूर्ण मिलावे।

मात्राः—१-१ तोला। दूध के साथ या विना अनुपान।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षय, खांसी, श्वास, ज्वर, हिक्का, अर्श अरुचि, पीनस, ग्रहणी रोग और वलिपलित का नाश होता है। यह अवलेह रसायन है।

इस अवलेह का अविष्कार भगवान अगस्त्य ने किया था।

सं. वि.—प्राय' उदर के विकारों के पश्चात् शिथिल अन्त्र यथा साध्य क्रिया नहीं कर पाते, फलतः धीरे २ आम और वात की वृद्धि होती चली जाती है और शरीर क्षीण होता जाता है, जिससे क्षय, अर्श, ज्वर, पीनस, ग्रहणी आदि अनेक रोग उत्पन्न हो सकते है।

अगस्त्य हरीतकी वातानुलोमक, मल शोधक, आमनाशक, नाडी पोषक, ग्रहणी दोष नाशक, रोचक और शरीर पोषक है। इसके सेवन से वात कफ द्वारा उत्पन्न होने वाले आन्त्रिक विकारों का नाश होता है तथा शरीर पुष्ट होता है।

अभयामलकी रसायन (अवलेह) [भा भै. र. १४३]

(ब्राह्म रसायन) (च. सं. । चि. स्था. अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड १००० नग, नवीन आमले ३००० नग, शालपर्णी, छोटी कटेली, प्रश्निपर्णी, बडी कटेली, गोखरू, वेल की छाल, अरणी, सोनापाठा, खम्भारी, पाढल, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, वला, एरण्ड मूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी, शर, ईख, कास, दर्भ ओर शालीमूल प्रत्येक ५०—५० तोला लेकर सवको दस गुने पानी मे पकावे, दशमांश शेष रह जाने पर उतार छानकर शीतल होने पर हैड और आमलों की गुठलियां निकाल कर कूटे और उन्हे उसी रस मे मिलादे। तत्पश्चात मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), पिप्पली, शंखपुष्पी, केवटी मोथा, वायविडङ्ग, चन्दन, अगर, मुल्हैठी, हल्दी, वच, नाग केसर, छोटी इलायची और दालचीनी, प्रत्येक का चूर्ण २०—२० तोला, मिश्री ६८॥। सेर, तेल ८ सेर, घी १२ सेर, इन औषधियो को मिला दे। इन सब औषधियों को तांवे की कढाई मे मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जव पाक सिद्ध हो जाय तो ठण्डा होने पर उसमे १० सेर शहद मिलाकर घी के चिकने वरतन में भरकर रख देवे।

नोटः—पाक खर नहीं होना चाहिये।

मात्राः—१—१ तोला।

पथ्यः—उचित काल (प्रातः) मे उचित मात्रानुसार सेवन करें और पचने होने पर साठी के चावल और दूध का सेवन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस के सेवन से तंद्रा, भ्रम, क्लम आदि का नाश होता है तथा निर्भयता का गुण बढता है। यह मेधा और स्मृति वर्द्धक है। यह रसायन है। इसके सेवन से दीर्घायु प्राप्त होती है।

सं. वि.—यह औषध त्रिदोष शामक, कोष्ठ शोधक, रक्तवर्द्धक, विषनाशक, विभिन्न संस्थानों के विकारों को संशमन करने वाली तथा ज्ञान तन्तुओ की पोषक है। किम्वदन्ती है कि इसके सेवन से वैखानस और वालखिल्य आदि ऋषि गणो ने अमित आयु और तरुण अवस्था को प्राप्त किया। अतः सक्षेप मे यह कहना अनुचित नहीं है कि यह मेधा, स्मृति और कान्तिवर्द्धक अवलेह रसायन है।

अमीरी जीवन

बनावटः—च्यवनप्राश मे रससिन्दुर, अभ्रक भस्म, केसर, वंगभस्म, शालम मूसली, अकरकरा, वंशलोचन, विदारीकन्द, अश्वगन्धा, शतावरी आदि अनेक द्रव्य मिलाकर " अमीरी जीवन " तैयार किया जाता है।

मात्राः—१–१ तोला। चाटने के बाद ऊष्ण दुग्ध पीवे।

उपयोग—इसके सेवन से कास, श्वास, उरःक्षत, क्षय, हृदय रोग, प्रमेह, वीर्यदोष आदि का नाश होता है तथा स्मरण शक्ति, कान्ति और मेधा की वृद्धि होती है। यह रसायन और वाजीकरण है।

सं. वि.—च्यवनप्राश प्रसिद्ध रसायन अवलेह है। शरीर मे नवता उत्पन्न करने के लिये च्यवनप्राश का प्रयोग उत्तम है। आधुनिक शरीर च्यवन ऋषि के जीर्ण शरीर से भी यौवन मे ही अधिक क्षीण होते है, अतः उनकी अधिक क्षीणता का नाश करने के लिये च्यवन प्राश अवलेह मे अन्य रसायन और वाजीकरण द्रव्यों का मिश्रण करके तैयार किया हुवा " अमीरी जीवन " वर्तमान क्षीण कायियो के लिये पोषक, वाजीकरण और रसायन है। इसके सेवन से सभी प्रकार के मानसिक और शारीरिक व्याधियो से छुटकारा प्राप्त होता है।

अमृतप्राश्यावलेह [भा. भै. र. १४४]

(वृ. नि. र.। क्षय)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—दूध, आमले का रस, विदारी कन्द का रस, गन्ने का रस, पंचक्षीरियो का रस या क्वाथ और घी। प्रत्येक द्रव्य १–१ सेर मिलाकर पकावें फिर उसमें मधुरादि गण, दाख, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, खस, चीनी, नीलकमल, कमल, महुवे के फूल, अनन्त मूल, खंभारी और पञ्चशर (शर, ईख, कास, दर्भ, शालीमूल) का कल्क १।–१। तोला डालकर अवलेह बनावे। शीतल होने पर १ सेर मधु, ६। सेर चीनी और दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर २॥–२॥ तोला डालकर भली भांति मिलावे।

मात्राः—१–१ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—रक्तपित्त, क्षय, श्वास, अरुचि, कास तृष्णा, वमन, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर का नाश होता है, और बल तथा कामशक्ति बढती है।

सं. वि.—यह औषध दाह नाशक, रक्त शोधक, कफ, अरुचि, वात, आम आदि विकारों का नाश करने वाली और वाजीकरण है। इसके सेवन से शरीर के दोष दूर होते है तथा विकार नष्ट होकर रक्त की वृद्धि होती है।

अश्वगन्धावलेह

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१६ सेर दूध में आध सेर अश्वगध का बारीक चूर्ण डाल कर उसे मन्दाग्नि पर पकायें। जब पकते पकते दूध का मावा हो जाय तब उसे उतार ले। फिर चतुर्जात—तोला १। तथा जायफल, केशर, वंशलोचन, मोचरस, जटामांसी, श्वेत चंदन, खैर सार, जावित्री, पीपल, पीपला मूल, लौंग, ककोल, अखरोट की गिरी, गोखरू, रस सिन्दुर, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म और लौह भस्म प्रत्येक ७॥—७॥ तोला लेकर महीन चूर्ण बनाये। इस चूर्ण के मिश्रण को अश्वगंधा के मावे में मिला ले। अब इस मिश्रण को आवश्यक खांड की चासनी मे डालकर भली प्रकार तैयार करें और तैयार होने पर उतार कर ठंडा करके प्रयोगार्थ रख लें।

मात्राः—०॥ से १ तोला दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से वीर्यक्षीणता, नपुंसकता, दुर्बलता और कृशता का नाश होता है।

सं. वि.—यह पाक बल, वर्ण, वीर्य, ओज, शक्ति आदि रस रक्तादि धातुओ की वृद्धि करके, वृद्धि करता है। शरीर पोषक और क्षीणता नाशक है। इसमे मिश्रित की हुई भस्मे शरीर के पोषण मे विशेष क्रिया करती है। प्रमेह, रक्त हीनता, अजीर्ण और शरीर दाह में भी इसका प्रयोग अच्छा लाभ देता है।

अश्वगंधा पाक का सेवन विशेषतः वीर्यवृद्धि के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। शुक्र तारल्य, स्वप्नदोष और मानसिक विप्लव द्वारा होने वाले शुक्र क्षय मे भी यह लाभकारी है।

✓ एलादि मन्थ (अवलेह) [भा. भै. र. ५७२]

(च. द., वं. से. । राजय., सु. चि. । अ. ४१)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—छोटी इलायची, अजमोद, आमला, हैड, बहेडा, खैर सार, नीम, असना (सालभेद) और साल। इनका सार वायविडङ्ग, भिलावा, चीता, त्रिकुटा, नागरमोथा और गोपी चन्दन (या फिटकरी)। इनके क्वाथ से यथा विधि १ सेर घृत सिद्ध करके ठंडा होने पर मिश्री १५० तोले, वशलोचन ३० तोले और शहद २ सेर मिलाकर मथनी से मथें।

[क्वाथ द्रव्य प्रत्येक ५–५ तोला (कुल ८० तोला) जल १६ सेर लेकर ४ सेर अवशेष पर्यन्त पकावे, पकने पर उतार छानकर इस मे १ सेर घी मिश्रित कर पुनः घृतावशेष पर्यन्त पकावे। इस घी मे उक्त मात्रा मे मिश्री, वंशलोचन और शीत होने पर मधु मिलाकर मंथन करे।]

मात्राः—१–१ तोला। ऊपर से दूध पिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—मेधा–आयु वृद्धिकारक तथा शक्तिवर्द्धक है, यक्ष्मा, शूल, पाण्डु और भगन्दर का नाश करता है। यह रसायन है।

सं. वि.ः—यह मन्थ रक्तशोधक, वर्द्धक और रञ्जक है। इसके सेवन से रक्त के दोष द्वारा उत्पन्न हुए आन्त्रिक, वातनाडी तन्तुज, पित्तज और वात पित्तज विकार नष्ट होते है। यह आयुष्य, मेध्य, चक्षुष्य और रसायन है। यह प्रयोग करने योग्य औषध है। इसके सेवन काल मे किसी प्रकार का पथ्य आवश्यक नही है।

———०———

कण्टकार्यावलेह [भा. भै. र. ७८२]

(वं. से. । व. से., ग. नि. । लेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर कटेली को ३२ सेर पानी मे पकाकर चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर छान ले, तदनन्तर उसमे धमास, गिलोय, भार्गी, काकडासिंगी, रास्ना, नागर मोथा, कपूर, चव्य, चीता, सोंठ, काली मिर्च और पीपल प्रत्येक का ५–५ तोला कल्क तथा ११ सेर खांड और १–१ सेर घी तथा तेल डालकर पकावे एव पाक के अन्त मे पीपल और वंशलोचन का २०–२० तोला चूर्ण तथा शीतल होने पर १ सेर शहद मिश्रित करे।

नोटः—ग. नि. मे भारंगी, मुस्ता, शटी, चव्य के स्थान मे पीपला मूल है। तेल का अभाव है तथा मधु २० तोला है।

मात्राः—१–१ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह अवलेह पांचों प्रकार के जीर्ण कास का नाश करता है।

सं. वि.ः—यह अवलेह अपने गुणो से कास नलिका के आक्षेप को दूर करता है। वात-कफ प्रशमक है। रुक्ष और शीत द्वारा उत्पन्न हुई कास–श्वास–नलिका की विकीर्णता को नष्ट करता है, तथा शीत को नष्ट करके गले को स्वच्छ और विकृति विहीन करता है। यह कास नाशक औषध है।

———०———

कल्याणावलेह [आ. प्र.]
(भा. प्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हल्दी, वच, कूठ, पीपल, सोठ, अजवायन, कालाजीरा, मुल्हैठी और सेधानमक इन सबके ६ मासे मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण को घी मे मिलावें।

नोटः—उपरोक्त द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को मिश्रितकर घी मिश्रित करके सेवन करनेका सरल विधान है। निम्न विधान दीर्घकाल तक द्रव्य को सुरक्षित रखकर प्रयोग करने के लिये अवलेह का है।

अवलेह निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—हल्दी, वच, कूठ, पीपल, सोठ, अजवायन, कालाजीरा और मुल्हैठी प्रत्येक द्रव्य १०—१० तोला।

जल—१६ सेर। अवशेष ४ सेर

घृत—१ सेर

कल्क—सेधानमक सहित उपरोक्त क्वाथ्य द्रव्य सब मिलाकर २० तोले।

क्वाथ, घृत और कल्क मिलाकर घृतावशेष पर्यन्त पकावे और भलीभांति मन्थन करके शीतल होने पर १ सेर मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१/८—१/८ तोला।

उपयोग—कण्ठ स्वच्छ करने के लिए यह श्रेष्ठ है। इसके सेवन से गलमांस अथवा स्वररज्जु के आक्षेप दूर होते है, स्वर बढता है और वातज विकारो द्वारा होनेवाले जीभ—पक्षाघात तथा अवरोध और मूकत्व मे यह उपयोगी है।

इसका प्रयोग रक्तचाप की वृद्धि द्वारा होनेवाले पक्षाघात मे, जिसमे जिह्वा मे जडता आ जाती है और स्वररज्जु शिथिल हो जाती है, प्रशस्त है।

कुटजावलेह [भा. भै. र. ७९७]
(शा. ध. । म. ख. ८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कुडे की गीली छाल ६। सेर लेकर उसे ३२ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर छानकर उसमे लज्जावती, धाय के फूल, बेलगिरी, पाठा, मोचरस, नागरमोथा और अतीस का ५—५ तोला सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर, जब तक करछी से न लगने लगे तब तक पकावे।

मात्राः—१/२–१/२ तोला । जल, बकरी के दूध या खांड के साथ ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—कष्टसाध्य, वेदनायुक्त और रंग विरंगे अतिसार, रक्तप्रदर, अर्श और प्रवाहिका का नाश होता है ।

सं. वि.—कुटजत्वक अतिसार, प्रवाहिका और रक्तातिसार के लिये प्रसिद्ध औषध है। इसमे वेलगिरी, पाठा और मोचरस का योग प्रवाहिका, अतिसार, आमसंग्रह और आमजशूल के लिये उत्तम है ।

यह रोधक, आमपाचक, वातानुलोमक, दाहनाशक और अन्त्र के वातकफज और पित्तज दोषनाशक है । इसके सेवन से अन्त्र के अतिसार और तज्जन्य अन्त्र विकार नष्ट होते है । यह अधोगत रक्तपित्त के लिये भी समान लाभदायक है ।

—————०—————

कुशावलेह [भा. भै. र. ८०२]
(भै. र. । प्रमे.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कुश, कांस, खस, काली ईख की जड और खगड (ईख विशेष) की जड । सव द्रव्य समभाग ४० तोला ले और सबको एक साथ ३२ सेर पानी में पकावे (अष्टमांश अवशेष रह जाने पर छानले) तत्पश्चात् इसमे १ सेर खांड मिलाकर पुनः पकावे और जब लेह के समान बन जाय तो उतारकर उसमे मुल्हैठी, ककडी के बीज, पेठे के बीज, खीरे के बीज, वंशलोचन, आमला, पतरज, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, वरना, गिलोय और फूलप्रियंगु, प्रत्येक द्रव्य का १।–१। तोला सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर घोटकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१–१ तोला ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से २० प्रकार के वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज प्रमेह, मूत्राघात, पथरी और अरुचि का नाश होता है । यह बल और पुष्टिवर्द्धक है ।

सं. विः—पञ्चतृण के सेवन से वस्तिगत वात–कफज विकारो का संशमन होता है । इसके सेवन से पथरी निकल जाती है तथा यह वस्तिशोधक और मूत्राघात आदि रोगों को नाश करनेवाला है। इसके साथ तैयार किया हुवा अवलेह इसके गुणो से भरपूर होना आवश्यक है, साथ २ अन्य द्रव्यों का योग होने से यह उनके अनुरूप शक्तिवृद्धि करके अरुचि और प्रत्येक प्रकार के प्रमेह का नाश करता है। वस्ति विकारों के लिये यह सेव्य औषध है ।

—————०—————

कुष्माण्डकावलेह [भा. भै. र. ८०५]

(शा. ध. । म. खं. अ. ८)

द्रव्य तथा निर्माण विधिः—छिलके और बीजो आदि से रहित पेंठे के टुकडों को ६। सेर लेकर २५ सेर पानी में पकावे। आधा पानी शेष रहे तब अग्नि से उतार कर पेंठे के टुकडों को कपडे मे बांधकर भलीभांति निचोडे। तदनन्तर उन टुकडो मे तकुवे या सूये आदि से अच्छी तरह छेदकर थोडी देर धूप मे सुखावें। तत्पश्चात उन्हे तांबे की कढाई में डालकर १ सेर घी मे भूने। जब पेठा कुछ २ भुन जाय तो उसमें पूर्वोक्त (जिसमें पेठा पकाया था) जल और ६। सेर खांड डालकर पकावें। लेह के समान गाढा हो जाय तो उसमे पीपल, शहद और जीरे का चूर्ण १०–१० तोला, धनिया, तेजपात, इलायची, कालीमिर्च और दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण २॥–२॥ तोला मिलावें तथा शीतल होने पर ०॥ सेर शहद मिलाकर रक्खें।

मात्राः—०॥ से १ तोला तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे अग्निबलानुसार यथोचित मात्रा में सेवन करने से रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृष्णा, आंखों के आगे अंधेरा आना, वमन, खांसी, श्वास और क्षय का नाश होता है। यह अवलेह बालक और वृद्धो के लिये उपकारी है। उरः सधानक, वृष्य, वृंहण और बलकारक है।

सं. वि.ः—कुष्माण्ड का प्रयोग पित्तज विकारो के लिये हितकर है। पित्त और रक्तदोषों के लिये यह समान हितकारी है। अत. रक्तपित्त, अम्लपित्त आदि रोगों मे यह अति उपयुक्त है। वृद्ध और बालको मे इसका उपयोग अधिकतर क्षीणता और तृष्णा को दूर करने के लिये किया जाता है। यह शोष, तृष्णा, क्षय और रक्तपित्त मे सर्वत्र लाभदायी है।

खमीरा गांव जुंवां (सादा) [चारुचिकित्सा]

बनावटः—गांवजुवा ३ तोले, गावजुवां के फूल, धनिये की गिरी, रेशमका कोयां (कैंची से काटकर बारीक किया हुवा आव रेशम), बहमन सफेद, बहमन लाल, सफेद चन्दन का चूरा, बालं गौं के बीज (तुख्म बालगौ, राम तुलसी के बीज (तुख्म फरञ्जमुश्क) और बादरंजबोया प्रत्येक १–१ तोला लेकर सबको अधकुटा करके रात को पानी में भिगोदे और प्रात काल पका कर मल कर छान ले। फिर उसमे १ सेर मिश्री ०॥ सेर शहद मिलाकर पकाकर चासनी बनावे और प्रयोगार्थ रखे।

मात्राः—१-१ तोला। अर्क गांवजुंवां १२ तोले के साथ या पानी के साथ।

गुणः—हृदय और मस्तिष्क को बल देता है और आंखोंकी रोशनी को कम नहीं होने देता। [चारु चिकित्सा से उद्धृत]

खमीरे गावजवां (अम्बरी) [र. तं. सा]
(घ. वै.)

बनावटः—गावजवां १० तोले, बादरंजबोया ५ तोले, जटामांसी १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, सफेद चन्दन का चूर्ण १ तोला, जल १०८ तोले और गुलाबजल २६ तोले लें। सब औषधियों को कूटकर गुलाबजल मे रात्रि को भिगो दें। सुबह जल मिलाकर उबाले। चतुर्थांश जल अवशेष रहने पर उतारकर छान ले। फिर १०८ तोले शक्कर मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। खमीरा पतले गुलकन्द जैसा होने पर नीचे उतार कर १ तोला केसर मिला ले।

सूचनाः—इस क्वाथ को अधिक दबाकर नहीं निचोडना चाहिए। कपडे में बांध दें, जितना जल टपककर निकल आवे उतने को ही प्रयोग में लावें।

मात्राः—१ से २ तोले। रोज सुवह दूध के साथ लेवें।

उपयोग—खमीरे गावजवां हृदय और मस्तिष्क को पुष्ट बनाता है। यह उन्माद, मूर्छा और अपस्मार में लाभदायक है। कोष्टबद्धता को दूर करता है।

[रसतन्त्र सार से उद्धृत]

खमीरे सन्दल [र. तं. सा.]

बनावटः— सफेद चन्दन के १० तोले चूर्ण को ८० तोले गुलाबजल मे शिलापर पीसकर २४ घन्टे भिगो देवे। फिर मन्दाग्नि पर पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर शक्कर १२० तोले मिलाकर पुनः पकावे। जब गुलकन्द जैसा खमीरा बने तब उसे उतार लें।

मात्राः—१ से २ तोले। सुबह शाम लेकर उपर से दूध पीये।

उपयोग—यह खमीरा मस्तिष्क के लिये शामक और मूत्र संशोधक है। मूत्र दाह, सारे शरीर मे दाह, घबराहट, तृषा आदि को नष्ट करता है। मस्तिष्क की उष्णता, पित्त विकार और नेत्रो की जलन को दूर करता है। सूजाक के रोगी के लिये हितकर है।

[रसतन्त्र सार से उद्धृत]

च्यवनप्राशावलेह [भा. भै. र. १७६१]

(च. सं। चि. स्था. अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बेलकी छाल, अरणी, श्योनाक (अरलु) की छाल, खम्भारी (कुम्हार) की छाल, पाढल की छाल, खरैटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, गोखरू, कटेली, कटेला, काकडा सिंगी, भुई आमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोखर मूल, अगर, हर्र, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा (विसखपरा), मेदा, इलायची के बीज, सफेद चन्दन, कमल पुष्प, विदारी कन्द, कांसे की जड, काकोली और काकनासा प्रत्येक १–१ पल (५–५ तोले)। आमले ५०० नग लेकर सब द्रव्यो को १ द्रोण (१६ सेर) पानी मे पकावें। पकते समय आमलों को कपडे मे बांधकर डालें। जब ४ सेर पानी शेष रहे तो क्वाथ को छान लें। तत्पश्चात आमलो की गुठली अलग करके उन्हें मथकर (पिट्ठी को खद्दर के कपडे में से छान लें)। तत्पश्चात आमले की इस पिट्ठी के दो भाग करके १ भाग को ६ पल (३० तोले) घी में और दूसरे भाग को ६ पल तिल के तेल में भून लें। तदनन्तर दोनों पिट्ठियां, उपरोक्त क्वाथ और ५० पल स्वच्छ मिश्री तीनो को एकत्र मिलाकर (कलईदार तावें की कढाइ मे) मन्दाग्नि पर पकाकर अवलेह के समान गाढा कर ले। उसके वाद ४ पल वंशलोचन, २ पल पीपल, और १–१ पल दालचीनी, इलायची, तेजपात तथा केसर का सूक्ष्म चूर्ण मिला दें। जब बिल्कुल शीतल हो जाय तब ६ पल शहद मिलावें। इसको ही "च्यवनप्राश" कहते है।

नोट—(१) चिकित्सा कलिका में क्वाथ द्रव्यो मे मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल अगर, हर्र, पुनर्नवा और काकनासा के स्थान पर क्षीर काकोली, महामेदा, वृद्धि और त्रिफला लिखा है।

(२) वृहद योग तरंगणी में क्वाथ्य द्रव्यों मे जीवन्ती, अगर, ऋद्धि, ऋषभक, काकोली और मेदा कम है।

मात्राः—१–१ तोला अथवा अग्निवलानुसार। ऊपर से दूध पीवे।

शास्त्रोक्त गुण धर्मः—यह रसायन है। इसके सेवन से कास, श्वास, क्षत, क्षीणता, शोष, स्वरक्षय, उदररोग, हृदयरोग, वातरक्त, तृष्णा और वस्ति दोष का नाश होता है। यह मेधा, स्मृति, कान्ति और आयुवर्द्धक, इन्द्रिय-शक्ति वर्द्धक, वाजीकरण, अग्निवर्द्धक, वर्णकारक और वातानुलोमक है। यदि कुटी प्रवेश से इसका सेवन किया जाय तो यह परम रासायनिक क्रिया करता है और जराकृत रूप नष्ट करके नवयौवन प्रदान करता है।

सं. वि.—च्यवनप्राश अवलेह रसायन द्रव्य है। इसके सम्पूर्ण द्रव्य पोषक, विष,

दोष और विकार नाशक है। शरीर के विकारो को दूर करके अपनी रासायनिक क्रिया द्वारा यह अणु अणु मे नवता का सञ्चार करता है, रक्त की वृद्धि करता है और मस्तिष्क शक्ति की वृद्धि करके शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग मे स्फूर्ति का प्रादुर्भाव करता है। इसका वर्षों तक सतत सेवन करनेवाला पुरुष कुटि प्रवेश विना भी शरीर मे यौवन की आभा पाता है, और जो कुटि प्रवेश के साथ २ खाते है उन में तो यह सम्पूर्ण दैहिक परिवर्तन ही कर देता है।

च्यवनप्राश अवलेह के गुणों को अत्युक्ति कहना अनुचित है। षड्रसयुक्त आमले ही जब जरा व्याधि नाशक है तो ऋद्धि, वृद्धि और अन्य अनेक रसायन और शरीर पोषक द्रव्यों के योग से निर्मित हुवा यह आमलकि विशिष्ट अवलेह हीन गुणोंवाला हो यह कैसे सम्भव हो सकता है। देशकाल की अवस्थानुसार इसकी क्रिया में भले ही कुछ मन्दता आ जाय परन्तु शास्त्रादेशअनुसार निर्मित हुवा यहअवलेहसम्पूर्ण गुणों से युक्त न हो यह सम्भव नहीं है। प्रत्येक रोगी को रोगमुक्ति के पश्चात यथा अग्निबलानुसार इसका सेवन कराया जाय तो आन्त्रिक विकारो की उत्पत्ति की सम्भावना नष्ट होती है और मनुष्य शीघ्र हृष्ट पुष्ट हो जाता है। इसकी इतनी ही मात्रा खानी चाहिए जिससे भूख न रुंधे।

———०———

जीरकावलेह [भा. भै. र. २०३१]

(वृ. नि. र.; यो. र; वै. र. । स्त्री.; यो. त. । त. ७४; वृ. यो. त. । त. १३५]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जीरा १ प्रस्थ (८० तोले), दूध ४ प्रस्थ, घी ०॥ प्रस्थ, और लोध का चूर्ण ०॥ प्रस्थ ले। सबको मन्दाग्नि पर पकाकर गाढा कर लें। तत्पश्चात उसे ठण्डा करके उसमे १ प्रस्थ मिश्री और २॥–२॥ तोले दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, पीपल, सोंठ, जीरा, मोथा, सुगन्धवाला, अनारदाना, धनिया, हल्दी, कपूर और वंशलोचन का सूक्ष्म चूर्ण मिला ले।

मात्रा—१–१ तोला। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह, प्रदर, ज्वर, निर्बलता, अरुचि, श्वास, तृष्णा, दाह और क्षय का नाश होता है।

सं. नि.—यह अवलेह पाचक, कफ, आम तथा वातनाशक; स्तन्यवर्द्धक, शुष्क और दुर्बल श्लेष्म कलाओ को सशक्त और सरस बनाने वाला तथा शरीर पोषक है। जिन स्त्रियो को स्तन्य न आता हो, उनको इसका सेवन कराया जाय तो स्तन्य की वृद्धि हो जाती है।

———०———

दिवाल मुश्क [र. तं. सा.]

बनावट—नरकचूर, दरूनज, अकरनीं, मोती पिष्टी, कहरवा, प्रवाल पिष्टी प्रत्येक ३५–३५ मासे, आवरेशम, वहमन सफेद, वहमन लाल, जटामांसी, इलायची प्रत्येक १७॥–१७॥ मासे, पत्थरमूल (छरीला), पीपल और सोठ प्रत्येक १४–१४ मासे तथा कस्तूरी ७ मासे लें। सबका कपडछन्न चूर्ण बनाकर एकत्र मिला दे। पश्चात चाटने योग्य तैयार हो सके उतना शहद मिलाकर माजून बना लें।

आवरेशम को कैची से कतर कृमि को निकाल देने के पश्चात प्रयोग में मिलाना चाहिये।

मात्राः—१ से ३ मासे तक। दिन मे २ बार चाट कर दूध पियें।

उपयोगः—दिवाल मुश्क मस्तिष्क के लिये शामक है। मस्तिष्क की निर्बलता, ऊष्णता, उन्माद और हृदय की कमजोरी को दूर करता है। सन्निपात में मस्तिष्क को शान्त बनाने के लिये यह दिया जाता है। [रसतन्त्र सार से उद्धृत]

धान्यावलेह [भा. भै. र. ३२८७]

(च. सं.। चि. अ. २० पाण्डु)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—३२ सेर आमले के रस में ३ सेर १० तोले खांड और १ सेर पीपल का चूर्ण तथा १ सेर निर्बीज और पिसी हुई मुनक्का (दाख) मिलाकर पकावें। अवलेह के तैयार होने पर उसमे १०–१० तोले वंसलोचन, सोंठ और मुल्हैठी का चूर्ण मिला दें। शीतल होने पर २ सेर शहद मिलाकर रक्खें।

मात्राः—१–१ तोला। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कामला, पित्तविकार, पाण्डु, कास और हलीमक का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध यकृद दौर्बल्य के कारण होने वाले अनेक रोगों मे लाभकारीहै। यह अग्निवर्द्धक और अन्त्रज विष दोष नाशक, रक्तवर्द्धक, दाहनाशक, वात तथा शोषनाशक, नाडीपोषक और दुष्ट पित्त जन्य अनेक प्रकार के विकारो को नाश करती है। अन्त्र दौर्बल्य के कारण नाडी दोष उत्पन्न होते है, जिनमें मस्तिष्क दौर्बल्य प्रधानतया पाया जाता है। ऐसे रोगों के लिये आमले की बनावटो का सेवन रुचिकर ही नहीं अपितु रोगनाशक, शक्तिवर्द्धक ओर पोषक भी होता है। कितने ही रोगियों को आमले का चूर्णरूप मे सेवन अप्रिय लगता है, उनके लिये यह अवलेह अत्युत्तम है।

पिप्पल्याद्यवलेह [भा. भै. र. ४०३०]

(यो. र. । क्षय, कास, वृ यो. त । त. ७८, च. सं. । चि. स्था. अ. ३२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, मुल्हैठी और मिश्री १।–१। तोला, गाय का घी, दूध और ईख का रस २–२ सेर तथा जौ, गेहूं, मुनक्का, आमले का रस और तेल १०–१० तोले लेकर चूर्ण द्रव्यों का चूर्ण बनाकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। लेह के तैयार होने पर उसे शीतल करके घी और मधु मिलाकर रक्खे।

मात्राः—१–१ तोला। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से श्वास, कास, क्षय और हृद्रोग का नाश होता है।

यह वृद्ध और अल्प वीर्य पुरुषों के लिये हितकारी है।

सं. वि—क्षीणकाय पुरुषों मे शक्ति सचार करने के लिये यह अवलेह बहुत ही प्रशस्त है। आहार के अभाव या आहार के पोषणाभाव या अन्त्रों के आहार रस के ग्रहणाभाव के कारण शरीर मे वायु की वृद्धि हो जाती है, शरीर दुर्बल और क्षीण हो जाता है, तथा प्रत्येक धातु क्षीण होकर मनुष्य क्षय से पीडित दीखने लगता है ऐसी परिस्थिति मे इस अवलेह रूपी आहार का सेवन अत्युत्तम पौष्टिक और दोषनाशक सिद्ध होता है। यह औषध सब ही को समान लाभकारी है।

ब्राह्य रसायन [भा. भै. र. ४६५३]

(च. स. । चि. स्था. अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शालपर्णी, वनभंटा, पृश्निपर्णी, कटेली, गोखरू, बेल, अरणी, अरलू, खम्भारी, पाढल, पुनर्नवा (विसखपरा) मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला (खरैटी), अरण्ड, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी, शर, ईख, दाभ, कास, और शाली चावल, इन पच्चीस औषधियो मे से बडे वृक्षो की जड की छाल और शेष की जड १०–१० पल तथा हैड़ १००० और आमले ३००० लेकर सबको १० गुने पानी मे पकावे और दशवां भाग पानी अवशेष रहने पर छान ले। हरड और आवलो की गुठलियो को अलग करके अन्य द्रव्यो को छूद ले। तदनन्तर इस क्वाथ मे, हर्र, आमले और मण्डूकपर्णी, पीपल शंखपुष्पी, केवटी मोथा, नागर मोथा, बायबिडङ्ग, सफेद चन्दन, अगर मुल्हैठी, हल्दी, वच, नाग केसर, छोटी इलायची और दालचीनी का चूर्ण २०–२० तोले, खांड इन सबसे ६२॥ सेर अधिक, अर्थात् ६२॥+३॥=६६ सेर, और १६ सेर तेल तथा २४ सेर घी मिलाकर तावे के कढाव में मन्दाग्नि पर पकावे, जब अवलेह तैयार हो जाय तो उसे अग्नि से उतार रख दे।

उसके ठण्डा होने पर उस मे १२ सेर शहद मिलाकर चिकने पात्र में भर कर रख दें।

मात्राः—०॥ से १ तोला। अग्निबलानुसार

पथ्यः—औषध पच जाने पर सांठी के चावलो का भात और दूध का आहार कराना चाहिये।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से शरीर मे नवता का संचार होता है, पुरुष स्मृतिमान्, मेधावी और दीर्घजीवी बन जाता है तथा कास श्वासादि रोग शीघ्र दूर हो जाते है। यह सुन्दर रसायन है।

सं. वि.—"ब्राह्म्य रसायन" के निर्माण में इतने उत्तम और उच्च कोटि के द्रव्यो का उपयोग किया गया है कि उनके लिये विशेष व्याख्या की आवश्यकता किसी को भी प्रतीत नहीं हो सकती। सभी द्रव्य मेध्य, बल्य, हृद्य तथा वस्ति, कोष्ठ, मुख और वातस्थानो के शोधक, नाडी पोषक, परम्परागत धातुवर्द्धक, स्मृति, मेधा, ओज, वर्ण, कान्ति और व्यक्तित्व वर्द्धक है। यह रसायन सभी के लिये समान उपयोगी है। यह अतर्पितो के लिये (जिनके शरीर शुष्क, नीरस और क्षीण हों) अधिक लाभकारी है। निस्संदेह यह उक्त गुणो युक्त औषध है।

वृहद्गोक्षुरादि अवलेह [भा. भै. र. ७११६]

(वृ. नि. र. । मूत्रकृच्छा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—गोखरू और कुश की जड १००—१०० पल (प्रत्येक ६। सेर), पाषाणभेद ४० तोले, गिलोय २५ तोले, अरण्डमूल और शतावर ९०—९० तोले तथा कमलकन्द और असगन्ध १००—१०० तोले लेकर सबको एकत्र कूट कर ३२ सेर पानी मे पकावे। ८ सेर अवशेष रहने पर छान ले। तदनन्तर उसमें २ सेर गो घृत और १ सेर शिलाजीत मिलाकर पुनः पकावे और जब गाढा हो जाय तो उसमे तालमूली, सोया, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेडा, आमला, छोटी इलायची, भूतकेशी (जटामांसी), सुगन्धवाला, नागकेसर, पद्माक, जावित्री, दालचीनी, मुल्हैठी, वंशलोचन, जायफल, खस, निसोत, लालचन्दन, धनिया, कुटकी, जवाखार, सज्जीखार, पान, काकडासिंगी, पोखरमूल, कचूर, देवदारु, सीसाभस्म, लोहभस्म और वंगभस्म ५—५ तोले मिलाकर स्निग्ध पात्र मे भरकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—०॥ से १ तोला। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, २० प्रकार के प्रमेह, शुक्रदोष, धातुक्षय, ऊष्णवात और वात—कुण्डली का नाश होता है।

सं. वि.—यह अवलेह दोषानुलोमक, वस्ति शोधक, मूत्रल, कोष्ठ शोधक, दाह-नाशक, रक्तवर्द्धक, पाचक, शरीर दुर्गन्ध नाशक, वीर्य वर्द्धक, ग्रन्थि, दाह, शोथ तथा क्षोभ नाशक, वीर्य ग्रन्थि पोषक, मस्तिष्क दौर्बल्य नाशक और ज्ञानतन्तु शक्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से वातपित्त और कफ द्वारा उत्पन्न हुए विविध कोष्ठ और वस्तिगत ग्रन्थियों के विकार नष्ट होते है। यह वृक्क, मूत्र-नलिका, वस्ति, वीर्यग्रन्थि और अन्त्र के विकारों के लिये उपयुक्त औषध है।

———o———

भृगुहरीतकी [भा. भै. र. ४८६७]

(भा. प्र. । म. ख., कासा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर कटेली का पञ्चाङ्ग और १०० नग हैड ले। हैडो को कपडे की पोटली मे बांध ले और कटेली को अधकुटा कर लें। तत्पश्चात् दोनों को ३२ सेर पानी मे एकत्र पकावे और ८ सेर पानी शेष रहने पर क्वाथ को छान ले तथा हैडों तो अलग निकालले। ये हैंड और ६। सेर गुड मिलाकर पुनः पकावे। जब अवलेह तैयार हो जाय जो उसे अग्नि से नीचे उतार ले और ठण्डा होने पर उसमे सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर का ५–५ तोले चूर्ण एवं ६० तोले शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१–१ तोला। अग्निबलानुसार

शास्त्रोक्त गुण धर्मः—इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, सन्निपातज, क्षतज और क्षयज, कास, श्वास, पीनस और एकादश रूपयुक्त राजयक्ष्मा का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध दोषानुलोमक, आक्षेपनाशक, कफ, आम, वात, वातनाडी दौर्बल्य, श्वास–कास–नलिका विकार, अग्नि वैषम्य, दौर्बल्य, धातु वैषम्य, अनुलोम और प्रतिलोम शरीर विकार तथा धातु और कोष्ठ के दोष के कारण उत्पन्न हुये शरीर नाशकारी कारणों को दूर करती है। इसके सेवन से कास, श्वास, क्षय, श्वास–नलिका आक्षेप और वक्ष तथा फुफ्फुस कला के विकार दूर होते है।

———o———

माजून हजरुलयहूद [र तं. सा.]

(ति. अ.)

बनावटः—कद्दू, ककडी, खीरे और खरबूजे के बीजो का मगज और काकनुज ५–५ माशे और हजरुलयहूद ५० माशे ले। सबको एकत्र कूटकर कपडछन कर खरल में बारीक करे फिर चाटने लायक शहद मिलाकर माजून बनालें।

मात्राः—१ से २ माशे सुबह जल के अथवा गोखरू के क्काथ या चने के क्काथ के साथ दें।

उपयोग—यह माजून मूत्राशय की शर्करा (कंकडी) को निकालने में उपयोगी है। अश्मरी को तोड कर निकाल देती है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

माजून चोपचीनी [र. तं. सा.]

वनावटः—चोपचीनी २० तोले, असगन्ध १० तोले और मीठी सुरंजान ५ तोले लेकर वारीक चूर्ण करें। वाद मे ४ सेर शक्कर की अवलेह के समान चासनी बना, चूर्ण मिलाकर माजून बना ले।

मात्राः—१ से २ तोले दिन मे दो वार दूध के साथ।

उपयोग—इस माजून के सेवन से उपदश और सूजाक से होनेवाला रक्तविकार, संधिवात खौर कुष्ठ आदि रोग दूर होते है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

माजून उशवा [र. तं. सा.]

(ध. वै.)

वनावटः—सौफ, चन्दन, गिलोय, अमरवेल, हरड, वहेडा, जवा हरड, पित्तपापडा और कस्तूरी १–१ तोला, सनाय ४ तोले, उशवा मगरवी १२ तोले, चोपचीनी ८ तोले और मिश्री १०० तोले ले। काष्ठादि औषधियो का कपडछन चूर्ण करे। फिर चूर्ण और कस्तूरी को मिश्री की चाशनी में मिलाकर माजून वनाले।

मात्राः—१–१ तोला दिन मे २ वार गो दूध के साथ देवें।

उपयोग—यह माजून उपदंश विस्फोटक, सूजाक के उपद्रव और रक्तविकार को दूर करती है। [रसतन्त्रसार से उद्धृत]

राजावर्तावलेह [भा. भै र. ६१४४]

(र. रा. सुं। प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—राजावर्त भस्म, वैक्रान्त भस्म, ताम्र भस्म और अभ्रक भस्म २॥–२॥ तोले, तीक्ष्ण लौह भस्म १० तोले, शुद्ध शिलाजीत १० तोले, सुरमे के समान काला शुद्ध मण्डूर २० तोले तथा सोठ, मिर्च, पीपल, हैड, बहेडा, आमला, वायविडङ्ग, नागरमोथा, चीता, तालमूली, नागकेसर, सर्फेद चौटली और नागवल का चूर्ण १।–१। तोला एवं सेमल का स्वच्छ स्वरस और बकरी का दूध २–२ सेर तथा मत्स्याण्डका

(पतली राव) ०।। सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे और अवलेह तैयार हो जाने पर ठण्डा करके सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—२ से ६ रत्ती तक। चाटकर २।। तोले कौच की जड पानी मे पीसकर पीवें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से समस्त प्रकार के प्रमेह, गुल्म, हृद्रोग, ब्रध्न, अर्श, वृषणपीडा, शुक्राश्मरी, मूत्रघात और वीर्य विकार नष्ट होते है।

सं. वि.—यह अवलेह रस परिपूर्ण है। इसकी क्रिया ग्रन्थियों के दोषों को दूर करने में प्रशस्त होती है। अन्त्र द्वारा विकृत हुई रस वाहनियों मे दोष और दूष्य के संग्रह से, विविध श्लेष्म ग्रन्थियो में, जो दोष उत्पन्न हो जाते है, वे इसके सेवन से नष्ट हो जाते है। विशेषतया यह कफ एवं वात द्वारा होने वाले विकारो को नष्ट करती है। अग्निवृद्धि करती है, शुक्र ग्रन्थि दोष को दूर करती है और शुक्र प्रणालिकाओ के शोथ, शूल तथा उनके कारण होने वाले ब्रध्न आदि रोगो का नाश करती है। यह वस्तिशोधक, शूल नाशक, शक्तिवर्द्धक, हृद्य और वीर्यवर्द्धक है।

वासावलेह [भा. भै. र. ६७०७]

(वासाहरीतक्यवलेह)

(वृ. यो. त। त. ७५, भै. र रक्तपित्ता., यो. र.। क्षय; वृ. नि. र.। श्वासा.; ग नि.। लेहा. ५, यो. त.। त. २६, वृ. मा; वं. से.। रक्तपि.; च द.। रक्तपि.; यो. चि. म.। अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर वासे को १०० सेर पानी मे पकावें और २५ सेर पानी अवशेष रहने पर उसमें ४ सेर हरड का चूर्ण, ६। सेर खांड मिलाकर पुनः पकावे। जब लेह तैयार हो जाय तो उसे अग्नि से उतार कर उसमे १० तोले पीपल का चूर्ण और ५-५ तोले दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर का चूर्ण मिलावें। जब वह ठण्डा हो जाय तो ४० तोले शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

नोटः—(१) वृ. नि. र. मे पीपल आधा पल तथा वंशलोचन २ पल लिखी है। (२) यो. त. में तथा गद निग्रहमे ४ पल वंशलोचन और ८ पल शहद लिखा है, पीपल दोनो मे आधा पल ही है।

मात्राः—१-१ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से रक्तपित्त, क्षत, क्षय, कास, श्वास और विशेषतया यक्ष्मा का नाश होता है।

सं. वि.:—वासा स्वरवर्द्धक, कफ, पित्त और रक्तपित्त का नाशक है। इसका सेवन गले और फुफ्फुस के अधिकतर रोगों मे लाभप्रद सिद्ध हुआ है। अवलेह रूप में वासे के विशेष गुण इस में आ जाते है क्योंकि यह वातानुलोमक, पाचक और त्रिदोष नाशक बन जाता है अत: इसकी क्रिया हृदय, फुफ्फुस, कण्ठ आदि के विकारों पर स्वभावतः ही प्रशस्त होती है। क्षय, रक्तपित्त, कास और श्वास के लिये यह अवलेह सर्वदा उपयुक्त है।

विडङ्गाद्यवलेह [भा. भै. र. ६७१४]

(वा. भ. । उ. अ. २८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—वायविडङ्ग की गिरी, हैड, वहेडा, आमला और पीपल के चावल; सब द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण बनावें। उसमें १–१ भाग शहद तथा तेल मिला लें यह दैनिक अवलेह बनाकर चाटने का विधान है।

अवलेह निर्माण विधानः—उपरोक्त २ सेर चूर्ण को १६ सेर जल में ४ सेर अवशेष पर्यन्त पका–छानकर उसमें १/४ सेर उपरोक्त चूर्ण का कल्क और १ सेर तेल मिलाकर सहज गाढा होने तक पकावे और ठण्डा होने पर इसमे १ सेर मधु मिलाकर रक्खे।

मात्राः—०॥–०॥ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके चाटने से कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, क्षत और नाडीव्रण का नाश होता है।

सं. वि.—यह अवलेह विषघ्न, जन्तुघ्न, दाहनाशक और रक्तशोधक है। इसके सेवन से रक्त, मांस, त्वचा आदि धातुओं मे उत्पन्न हुए स्थानिक और सार्वत्रिक विकार नष्ट होते है।

व्याघ्री हरीतकी अवलेह [भा. भै. र. ६७२२]

(ग नि. । लेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर अधकुटी कटेली तथा कपडे में बंधी हुई १०० हैडो को ८ गुने पानी मे पकावे और चतुर्थांश अवशेष रहने पर छानकर उसमे ३ सेर १० तोले गुड और पोटली से निकाली हुई गुठली रहित उपरोक्त हैड डालकर पुनः पकावें। जब गाढा हो जाय तो उसे अग्नि से नीचे उतार कर उसमे दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, पीपल और काली मिर्च का चूर्ण ५–५ तोले तथा जवाखार ७॥ माशे मिलादे और जब वह शीतल हो जाय तो ६० तोले मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१-१ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कास का नाश होता है। यह स्वर, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करता है।

सं. वि.—यह अवलेह वात-कफ नाशक, अग्निवर्द्धक, दोषानुलोमक, कण्ठ शोधक- और स्वर तथा वर्णवर्द्धक है। इसके सेवन से कास और श्वास नलिकाओं में दीर्घकाल से वात कफ के कारण आनेवाले आक्षेप भी नष्ट हो जाते है।

शतावर्यादि अवलेह [भा. भै. र. ७३४८]

(ग. नि.। राजयक्ष्मा. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शतावर, विदारीकन्द, असगन्ध, हैड, पुनर्नवा, खरैंटी की जड, कंघी की जड, नागवला (गंगेरन) की जड और गोखरू समान भाग लेकर चूर्ण बनावें और उसमे घी तथा शहद मिलाकर चाटने योग्य बना लें।

क्वाथ, कल्क और घृत द्वारा भी इसका निर्माण करके, ठण्डा होने पर मधु मिलाकर प्रयोग मे ला सकते है।

मात्राः—०॥-०॥ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से क्षयका नाश होता है।

सं. वि.—यह अवलेह वीर्यवर्द्धक, मूत्रल, वात-कफ नाशक, दाह नाशक, शक्ति-वर्द्धक और धातुवर्द्धक है। इसके सेवन से अनुलोम ओर प्रतिलोम क्षय का नाश हो जाता है।

हरिद्राखण्ड [सि. यो. सं]

(भैषज्य रत्नावली से किञ्चित्परिवर्तित)

द्रव्य और निर्माण विधानः—हल्दी, निशोथ और हैड का दल प्रत्येक १६-१६ तोला, दारु हल्दी, नागर मोथा, अजवायन, अजमोद, चित्रकमूल की छाल, कुटकी, जीरा, छोटी पीपल, सोंठ, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, वायविडङ्ग, गिलोय, अडूसा, कूट, हैड का दल, वहेडा दल, आमला, चव्य (चव), धनिया, लोहभस्म और अभ्रक भस्म प्रत्येक ०॥-०॥ तोला तथा चीनी १६० तोला लेवे। प्रथम मिट्टी के नये बर्तन मे चीनी में थोडा जल मिलाकर चासनी करे। चासनी जब बूरा बनने योग्य हो जाय तब उसको अग्नि से उतार कर उसमे भस्में तथा अन्य द्रव्यो का कपडछन चूर्ण मिलाकर रख लेवे।

मात्रा और अनुपान—३–६ माशा दिन में दो तीन बार गरम जल से देवें।

उपयोग:—शीत–पित्त (पित्ती) के लिये यह उत्तम योग है। अम्लपित्त के लिये जो पथ्यापथ्य लिखा है, वह शीत–पित्त के लिये भी समझना चाहिये।

शुद्ध सज्जीखार या सोडा बाई कार्ब एक तोला २० तोला गरम जल में मिला उसमे महीन कपडा भिगोकर शीत–पित्त के ददोरे–धाफड पर फिराने से ददोरे शीघ्र बैठ जाते है।

[सि. यो. सं. से उद्धृत]

हरीतकी अवलेह [भा. भै. र. ८५२७]

(ग. नि. । लेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—दशमूल के ८ सेर क्वाथ मे १०० हैड (साबत) और ६। सेर गुड मिलाकर पकावे। जब लेह तैयार हो जाय तो उसमे दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल और जवाखार, प्रत्येक द्रव्य का १।–१। तोला सूक्ष्म चूर्ण मिला दे एवं शीतल होने पर ०॥ सेर मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

नोट—हैड के उसीज जाने पर गुठलियां निकाल ले और पकते अवलेह मे उन्हें भलीभान्ति मिला ले।

मात्रा—१–१ माशा।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रवृद्ध शोष, ज्वर, प्रमेह, गुल्म, कार्श्य, आमवात, अम्लपित्त, रक्तपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, अग्निवैषम्य, वीर्यदोष, श्वास, कास, अरुचि, प्लीहा, गरदोष और उदररोगों का नाश होता है।

सं. वि:—यह औषध वात–कफ नाशक, अग्निवर्द्धक, कोष्ठशोधक, रूचिकर, आक्षेप नाशक और ज्वर, रक्तपित्त, वस्तिदोष, उदररोग, गरविष आदिका नाश करने वाली है। यह सहज रेचक और मूत्रल है।

---

(२) पाक

औषध द्रव्यो के योग द्वारा, घृत तथा शर्करा आदि के साथ विधान पूर्वक परिपक्व किये जाने वाले द्रव्य पाक की संज्ञा प्राप्त करते है।

पाक अवलेह के समान ही बनाया जाता है। अन्तर केवल चासनी का होता है। अवलेह में चासनी ढीली होती है जब कि पाक में चासनी कठिन होती है। पाक

चासनी की कठिनता के कारण जम जाते है। पाक से यथावश्यक प्रमाण के टुकडे तैयार किये जा सकते है।

अवलेहो की तरह पाक की मात्रा निश्चित होती है। कार्य प्रणाली लगभग दोनो की समान ही है। दोनों ही औषध योगों से निर्मित होते है और दोनो के द्रव्य मधुर रस विशिष्ट है।

अश्वगन्धा पाक [भा. भै र. १५३]
(यो. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधिः—अश्वगन्धा का चूर्ण ५० तोला, सोंठ का चूर्ण २५ तोला, पीपलका चूर्ण १२॥ तोला, काली मिर्चका चूर्ण ५ तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात और लौग प्रत्येक का ५–५ तोला सूक्ष्म चूर्ण ले। तदनन्तर सबको ६। सेर भैस के दूध मे औटाकर उसमे ३ सेर १० तोला शहद, और १ सेर ४५ तोला घी, ५० तोला खांड लेकर, इन चारो को एकत्र मिलाकर मिट्टी के बरतन मे मन्दाग्नि पर पकावे। जब उबाल आ जाय तो अश्वगन्धा आदि के उपरोक्त समस्त चूर्ण को थोडे दूध के साथ पकाकर इसमे डाल दें और तत्पश्चात अग्नि पर इतना पकावे कि वह करछी से लगने लगे। तदनन्तर उसमें चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची) का २ तोला चूर्ण डालकर पकावे। जब उसमें चावल के समान दाने पडने लगें और घी अलग होने लगे तब उतारकर पीपला मूल, जीरा, गिलोय, लौग, तगर, जायफल, खस, सुगन्धवाला, सफेद चन्दन, बेलगिरी, कमल, धनियां, घाय के फूल, वंशलोचन, आमला, खैर, सार, कपूर, पुनर्नवा, वनतुलसी, चीता और शतावर प्रत्येक द्रव्य को ०॥–०॥ तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर मिलावे और एक बर्तन मे फैला दे। शीतल होने पर प्रमाणानुसार उसके टुकडे कर दे।

मात्राः—१ से २॥ तोले।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कफ, श्वास, अजीर्ण, वातरक्त, प्लीहा, मद, मेदरोग, दुर्जय आमवात, शोथ, शूल, वातार्श, पाण्डुरोग, कामला, ग्रहणी, गुल्मरोग, और अन्य वात–कफोद्भव विकार नष्ट होते है।

शास्त्रोक्ति है कि इसका १ मास प्रयोग करने से वृद्ध भी युवान बन सकता है। मन्दाग्नि के लिये यह बहुत ही हितकर है यह पाक शक्ति उत्पन्न करने वाला तथा बालकों के शरीरो को बढाने वाला है। इसके सेवन से स्त्रियां पुष्ट होती है और प्रसव काल में यदि उनको इसका सेवन कराया जाय तो स्तन्य की वृद्धि होती है। जबतक स्तन्य न बढे तबतक

दूध के साथ इसका सेवन करना चाहिये। क्षीण, अल्पवीर्य और मन्दाग्निवालों के लिये यह हितकर है। यह सर्व व्याधिनाशक पाक है।

---

० अहिफेन पाक [भा. भै. र. १५५]

(यो. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अकरकरा, केशर, लौंग, जायफल, भांग और शुद्ध सिंगरफ सब द्रव्य समान भाग तथा अफीम अकरकरे से ½ भाग लें। अफीम को दूध में पकावें और जब सख्त हो जाय तो उसमे उपरोक्त औषधे और अफीम से ६ गुणी चीनी मिलाकर मर्दन करें और ४–४ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्राः—२ से ४ रत्ती तक, यथाग्निबलानुसार, मुंह में रखकर चबायें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से कामशक्ति की वृद्धि होती है तथा वीर्यस्तम्भन होता है। इसका नित्यप्रति सेवन करने से शरीर हृष्टपुष्ट और बलवान होता है और क्षय रोग नष्ट होता है।

आम्रपाक [भा. भै. र. ४०५]

(भा. प्र. । उ. खं. २)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पके आंवले (आम्र) का रस ३२ सेर, चीनी ४ सेर, घी २ सेर, सोंठ ०॥ सेर, काली मिर्च २० तोला, पीपल १० तोला और जल ८ सेर लेकर सब औषधियों का चूर्ण कर, एकत्र मिलावें। तदनन्तर मिट्टी के बर्तन में पकाते हुए काष्ठमयी करछी से चलाते रहे। जब द्रव्य गाढा हो जाय तो उतारकर उसमें निम्न लिखित औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण मिलावे।

धनिया, जीरा, हैड, नागरमोथा, चीता, दालचीनी, बडा जीरा, पीपलामूल, नागकेसर, इलायची के बीज, लौंग और जावित्री प्रत्येक द्रव्य ५–५ तोला ले और तदनन्तर शीतल होनेपर १ सेर मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से ५ तोले तक भोजन से पूर्व यथाग्निबलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह अत्यन्त वाजीकरण, पौष्टिक, बलदायक; ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, रक्तपित्त और पाण्डु नाशक है। इसके सेवन से स्वास्थ्य बना रहता है।

सं. वि.—जिन मानवों के उदर अशक्त और जठराग्नि क्षीण है तथा यदाकदा

जिन्हे आमातिसार, प्रवाहिका आदि विकार हो जाते है अथवा जिनकी ग्रहणी अशक्त और क्षुब्ध है उनके लिये यह पाक बहुत ही प्रशस्त है। इसका सेवन करनेवाले, उदर रोगी वात विकारों से पीडित नहीं होते और ना ही आध्मान आदि रोग उन्हें सताते है।

आर्द्रपाक [भा. भै. र. ४०७]

(यो. चि. । पाका)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अदरक के (छीलकर) वारीक २ टुकडे करके लोहे या मिट्टी के पक्के बर्तन मे गोघृत मे भूनें। तदनन्तर अदरक के समभाग गुड मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे और करछी से चलाते रहें। पाक के तैयार होने पर उसमे सोंठ, जीरा, कालीमिर्च, नागकेशर, जावित्री, इलायची, दालचीनी, तेजपात, पीपल, धनिया, कालाजीरा, पीपलामूल और वायविडङ्ग का सूक्ष्म चूर्ण मिलावें।

मात्राः—२॥-२॥ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से श्वास, कास, स्वरभंग, अरुचि, हृद्रोग, ग्रहणीदोष, गुल्म, शूल और शोथ का नाश होता है। इसका सेवन शीतकाल मे करना चाहिए।

कुबेराक्षपाक [भा. भै. र. ८१५]

(वृ. नि र । शूले)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—करंजवो को ३ दिन तक कांजी मे भिगोये रक्खें। तदनन्तर उनमे १/४ भाग नमक मिलाकर पकावे। तत्पश्चात् अन्दर की गिरी निकालकर उसमें सेंधानमक और त्रिकुटे का चूर्ण भरकर निम्बु के रस मे भिगो दे। जब रस सूख जाय तो प्रयोग में लावे।

मात्राः—१/४ से १ तोले तक ऊष्ण जल के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—सब प्रकार के उदरशूल इसके सेवन से नष्ट होते है।

सं. नि.—करंजवा प्रसिद्ध शूलनाशक है। सैंधव या विडनमक के साथ इसका चूर्ण शूल के लिये प्रयोग मे लाया जाता है। उपरोक्त योग अम्लप्रधान होने के कारण विशेषतया वायुनाशक और सैंधव के योग से विशेष दोषचावक बन जाता है, अतः वात-जन्य आमाशय शूल, ग्रहणीशूल, उदरशूल, वस्तिशूल और अन्यत्र वातज आक्षेप के लिये यह स्वभावत: अचूक औषध सिद्ध होती है।

केशरपाक [भा. भै. र. ८१७]

(यो. र. । उ. खं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—त्रिकुटा, चातुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची), त्रिफला, लौंग, पीपल, अगर, चन्दन, तालमखाना, अकरकरा, जायफल, कौंच के बीज, मोचरस, खरैंटी, असगन्ध, गोखरू, मूसली, वायविडङ्ग, समन्दर सोख, विषपञ्जर, चमेली के फूल और कंकुबीज प्रत्येक १-१ भाग, केसर २० भाग, कस्तूरी ५६ भाग और खांड ४ भाग ले। यथाविधि पाक बनाकर उसमे वंगभस्म, पारद (रससिन्दुर), कान्तलोह भस्म और ताम्रभस्म १२-१२ भाग तथा २०० नग सोने के वर्क और २०० नग चांदी के वर्क तथा ८ भाग शुद्ध भांग मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा:—१/४ से १/२ तोले तक। दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है और समस्त व्याधियो का नाश होता है। यह अत्यन्त कामशक्तिवर्द्धक और वायुनाशक है। यह वातरक्त, अस्थिरोग, शिरोरोग और सन्धिरोग नाशक है। इसके सेवन से वृद्ध भी तरुण हो जाते है। यह आयु, आरोग्य, बल और कान्ति बढाता है।

सं. वि.—इस पाक का सेवन ऐसे पुरुषो के लिये ही अधिक उपयुक्त है जिनको वाजीकरण योगों की आवश्यकता है। इसका सेवन करते घृत एव दुग्धयुक्त आहार का यथेच्छ सेवन करना चाहिये।

कौंचपाक [भा भै र. ८१८]

(यो. चि. म. । अ. १)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—२ सेर कौंच के बीजो को ४ प्रहर तक गरम पानी में पकावें और फिर उन्हे किसी मजबूत कपडे मे बांधकर खूब मसले जिससे उनके छिलके पृथक हो जाय। तदनन्तर इन्हे सुखाकर चूर्ण करके ६२ सेर दूध मे पकावे और चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर उसमे ४ सेर घी डालकर पुन: मन्दाग्नि पर पकावें और पाक के अन्त मे अकरकरा, सोंठ, लौंग, गोखरू, केसर, शुद्ध शिंगरफ, तुनका सार, धनिया, कवावचीनी, बला बीज, वंसलोचन, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, द्राक्ष और मिश्री मिलावे।

मात्रा:—१ से २॥ तोल तक।

अपथ्य:—अम्ल द्रव्य।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वीर्य की वृद्धि होती है तथा प्रमेह का नाश होता है। यह पुष्टिकर, बल्य, वृष्य, बुद्धिवर्द्धक और वातरोग नाशक है।

सं. वि.—कौंच के बीज वाजीकरण और वीर्यवर्द्धक द्रव्य हैं। इस पाक में प्रयुक्त किये जानेवाले अन्य द्रव्य भी कौंच के समान ही बल्य, वृष्य और पुष्टिकर हैं। इसका सतत सेवन, प्रमेह, वीर्य क्षीणता और दुर्बलता के लिये सराहनीय है।

गोक्षुरकादि पाक [भा. भै. र. १३४७]

(यो. त. । त. ८०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१ प्रस्थ (१ सेर) गोखरू के सूक्ष्म चूर्ण को १ आढक (४ सेर दूध) मे पकाकर खोया बनाले। तत्पश्चात् समस्त औषधो के समान मिश्री की चाशनी बनाकर उसमें पूर्वनिर्मित खोया और खैर सार (कत्था), लौंग, लोहभस्म, कालीमिर्च, कपूर, सफेद आक के जड की छाल, समुद्रसोख, सफेद जीरा, काला जीरा, हल्दी, आमला, पीपल, नागकेसर, जावित्री, जायफल, अजवायन, खस, सोठ और करञ्जफल का चूर्ण, सब समभाग लेकर तथा भांग सबसे आधी लेकर, सबका बारीक चूर्ण बनाकर मिलावे।

मात्राः—१/२ से १ तोला। अग्निबलानुसार।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह पाक वीर्यस्तम्भक, पौष्टिक, वाजीकरण और अत्यन्त कामशक्तिवर्द्धक है।

सं. वि.—यह औषध वातनाशक, मूत्रल, रक्तशोधक, दाहनाशक, निद्राकर, पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक तथा कामोद्दीपक है। इसका सेवन करते हुए पौष्टिक द्रव्यो का प्रयोग हितावह है।

चोपचीनी पाक [भा. भै. र. १७६०]

(यो. र. । उपदंश., वृ. नि. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चोपचीनी का चूर्ण १२ पल (६० तोले), पीपलामूल, मिर्च, सोंठ, दालचीनी, अकरकरा और लौंग का चूर्ण १-१ कर्ष (१।-१। तोला) तथा इन सबके बराबर खांड लेकर और चासनी बनाकर उसमे समस्त चूर्ण को मिलाकर १-१ कर्ष (१।-१। तोले) के मोदक बनावे।

मात्राः—१/२ से १ मोदक। चोपचीनी के क्वाथ या ऊष्ण जल के अनुपान के साथ दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से उपदंश, व्रण, कुष्ठ, वातव्याधि, धातुक्षय से उत्पन्न हुई खांसी, प्रतिश्याय और यक्ष्मा का नाश होता है।

सं. वि.—चोपचीनी और अन्य कथित सभी द्रव्य वायुनाशक, जन्तुघ्न, शरीरपोषक, प्रतिलोम क्षयनाशक, प्रतिश्याय और उसके अनुबन्धियो को नाश करनेवाले है। इसके सेवन से फिरङ्ग, उपदंश आदि विकृत रोग नष्ट होते है।

त्रिफला पाक [२५२९]

(नपुंसकामृतार्णव त. ७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—आधे प्रस्थ (४० तोले) त्रिफला चूर्ण को स्वच्छ जल में भिगो दे। और उसके फूल जाने पर उसे पीसकर पिट्ठी सी बनादे। तत्पश्चात् उसे ४ पल (२० तोले) घी मे मन्दाग्नि पर भूनले। तदनन्तर १ प्रस्थ (८० तोले) खांड की चाशनी करके उसमें यह त्रिफला, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), गोखरू, इलायची, चीता और पोखरमूल का चूर्ण २—२ शाण (१० मासे), मोथा, दालचीनी, तेजपात और तुष (भूसी) रहित धनिये का चूर्ण २॥—२॥ तोले तथा ७॥ मासे शुद्ध शिलाजीत और केसर मिलाले और शीतल होने पर २० तोले मधु मिश्रित कर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २॥ तोले तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह नेत्ररोग, शिरोरोग और प्रमेह नाशक है।

सं. वि.—यह वृष्य, पौष्टिक, चक्षुष्य, नेत्ररोग नाशक, दोषानुलोमक, दाहनाशक, मूत्रल, अग्निवर्द्धक, कोष्ठशोधक, विषनाशक और मस्तिष्क शोधक है। इसके सेवन से वस्तिदोष, कोष्ठदोष और नेत्ररोगो का नाश होता है। यह प्रमेह के लिये अत्युत्तम औषध है।

द्राक्षापाक [भा. भै. र. ३०३२]

(वृ. नि. र., यो. र. । प्रमे.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बीजरहित १ सेर मुनक्का लेकर उन्हें पत्थर पर पीस ले। तदन्तर एक कढाई मे १ सेर दूध और १ सेर खांड तथा पीसे हुए मुनक्के डाल कर पकावे। अवलेह तैयार होने पर (करछी लगने लगे तब) उसमें २॥—२॥ तोले दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, कस्तूरी, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, केसर, जावित्री, जायफल, कपूर, चांदीभस्म, कुस्तुम्बरु और सफेद चन्दन मिलालें और शीतल होने पर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २॥ तोला। प्रातः काल दूध के साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से प्रमेह, पित्तरोग, मूत्राघात, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, नेत्ररोग और हस्तपादतलदाह का नाश होता है। यह स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक और सौख्य वर्द्धक है।

सं. वि.—द्राक्षापाक रेचक, रक्तवर्द्धक, स्तम्भक, शक्तिवर्द्धक, दाहनाशक, चक्षुष्य, वृष्य और स्निग्ध है। इसका सेवन सौम्य प्रकृति के पुरुषों के लिए बहुत ही लाभदायक है। इससे वीर्य, वर्ण, अग्नि, बल आदि की वृद्धि होती है।

धात्रीपाक [भा. भै. र. ३२८५]

(वृ. नि. र.; नि. र.। क्षय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—आंवले के पके फलों को लोहे की शलाका से गोदकर उन्हे अद्रक और बरने के पत्तों के साथ पानीमे पकावें। जब आंवलें उबल जांय तो उन्हें दूध में पकावें और फिर स्वच्छ पानी मे पकाकर धूप में उनका पानी सुखाकर शहद मे डाल दे। २० दिन बाद उस शहद को निकाल ले और उसमे नया शहद डाल दे। तत्पश्चात उस में मिश्री, आंवला, गजपीपल, लौंग, नागरमोथा, खरैटी, इलायची, वंशलोचन, लोहभस्म और वंगभस्म सबके चूर्ण को आंवलों का १६वां भाग लेकर मिलाकर रक्खें।

मात्राः—०॥ से १ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, पित्तप्रकोप और रक्तविकार का नाश होता है तथा बल और वीर्य की वृद्धि होती है।

सं. वि.—आंवले अत्यन्त पोषक, त्रिदोष नाशक, रक्तदोषनाशक, शक्तिवर्द्धक, वृष्य, चक्षुष्य और अग्निवर्द्धक है। इस अवलेह के सेवन से कोष्ठ शुद्ध रहता है तथा प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और रक्तपित्तविकार नष्ट होते है।

नारिकेलखण्डपाक [भा. भै. र. ३४७०]

(वृ. यो त.। त. १२२; वं से., वै. र.। अम्लपित्त, र. र.। शूला.; भा. प्र.। ख. २ अम्लपि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—४० तोले नारियल की गिरी (गोले) को पत्थर पर अत्यन्त बारीक पीसकर १० तोले घी मे भूने। तत्पश्चात इसे ६ सेर नारियल के पानी (अभाव मे गोदुग्ध) मे मिलावे और उसमे २० तोले खांड मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब द्रव्य गाढा हो जाय तो ठण्डा करके उसे चिकने बरतन मे भरकर रख लें।

मात्राः—१ से २॥ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से पुरुषत्व, निद्रा और बलकी की वृद्धि होती है तथा अम्लपित्त, रक्तपित्त और क्षय का नाश होता है।

पञ्चजीरक पाक [भा. भै. र. ४०१५]

(यो. र.; भा. प्र.; वृ. नि. र. । सूतिका.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जीरा, कलौंजी, सोया, सौंफ, अजवायन, अजमोद, धनिया, मेथी, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, हाऊबेर, विदारीकन्द, त्रिफला, कूठ और कमीला प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले लेकर चूर्ण करे। तत्पश्चात १०० पल (६। सेर) गुड को ४ सेर दूध मे घोलकर और उसमे ४० तोले घी मिलाकर पकावे। जब वह गाढा हो जाय तो उसमें उपरोक्त चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २ तोले।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्रसूता स्त्रियों को लाभ होता है तथा प्रसूत रोग, योनि-रोग, ज्वर, क्षय, कास, श्वास, पाण्डुरोग, कृशता और वातरोग नष्ट होते है।

पिष्टि पाक [भा. भै. र. ४०३३]

(नपुं. मृता. । त. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—उडद की छिलके रहित दाल की बारीक पिट्टी १ सेर, मूंगकी दाल की १॥ सेर तथा गेहूंका आटा ०॥ सेर लेकर सबको पृथक २ समान भाग घी मे भूने। तत्पश्चात् ३ सेर खांड की चाशनी बनाकर उसमें ये तीनो भुनी हुई चीजें अच्छी तरह मिलाकर, दोनों मूसली (सफेद और स्याह), तालमखाना, असगन्ध, शतावर, विधारा और कौंच के बीज ५-५ तोले और जायफल, जावित्री, अकरकरा, दालचीनी, लौंग, केसर,नागकेसर, वंगभस्म तथा अभ्रकभस्म १।-१। तोला मिलालें और जमाकर टुकडे बनावें।

मात्राः—यथाग्निवलानुसार १ से २ तोले तक।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से कमर का दर्द और कृशता नष्ट होकर बलवृद्धि होती है। यह उत्तम वाजीकरण है।

बादाम पाक [भा. भै. र. ४६४६]

(नपुं. मृता. । त. ४)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बादाम की ०॥ सेर गिरी को रात्रि के समय पानी में

भिगो दे और प्रातःकाल उसे छीलकर पत्थर पर पीस लें। तदनन्तर उसे १० तोले घीमें भूनकर ९ सेर खांड की चाशनी मे मिलादे और फिर उसमें छोटी वडी इलायची, जायफल, लौंग, केशर, दालचीनी का चूर्ण १।-१। तोला तथा पिस्ता और चिरौंजी ५-५ तोले एवं सोने और चांदी के वर्क १००-१०० नग मिलाकर और जमाकर प्रमाणानुरूप टुकडे करें।

मात्राः—१ से २॥ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह पाक वलवर्द्धक और उत्तम वाजीकरण है।

बाहुशाल गुड [आरोग्य प्रकाश]

(शा. ध.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—इन्द्रायणमूल, नागरमोथा, जमालगोटे की जड, हैड, निशोथ, कचूर, वायविडङ्ग गोखरू, चित्रक, सोंठ और तेजवल प्रत्येक १-१ तोला, जिमीकन्द (सूरण) १६ तोले, विधारा ४ तोले और भिलावा ८ तोला लें। इन सव द्रव्यो को थोडा सा कूटकर ८ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश अवशेष रहने पर छान ले और १२८ तोला पुराना गुड डालकर लड्डुओं की तरह की चाशनी बनावे। तत्पश्चात् उसमें चीता की छाल, निसोत, दन्तीमूल और तेजवल प्रत्येक २-२ तोले, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, वडी इलायची, आंवला और दालचीनी प्रत्येक द्रव्य ६-६ तोले का सूक्ष्म चूर्ण मिलालें। जव विल्कुल शीतल हो जाय तव ०॥ सेर मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—प्रातः सायं १-१ तोला बकरी के दूध या जलके साथ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से बवासीर, आमवात, संग्रहणी, प्रमेह आदि नष्ट हो जाते है और शरीर वलवान हो जाता है। बवासीर रोग मे वायु पेट मे एकत्रित हो जाती है, उसका अनुलोमन करने मे 'बाहुशालगुड' प्रशस्त है।

[आरोग्य प्रकाश से उद्धृत]

भार्गीगुड [आरोग्य प्रकाश]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—भार्गी की जड ४०० तोले, दशमूल ४०० तोले और हैड १०० नग लेकर सब द्रव्यो को कलईदार पात्र मे ४४ सेर पानी मिलाकर औटावें और ११ सेर जल अवशेष रहने पर उतार कर छान ले। हरड के अतिरिक्त सब द्रव्यों को फेंक दें और अवशिष्ट काढे में ४०० तोले गुड और उपरोक्त हैड मिलाकर पुनः औटावें।

गाढा हो जावे तो उसमें सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात और इलायची का ४–४ तोले चूर्ण और २४ तोले मधु मिलाकर रख लें।

मात्राः—१ हैड और ०॥ से २ तोले तक चटनी बकरी के दूध के साथ लें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह श्वास के लिये उत्तम औषध है। इससे सब प्रकार की खांसी भी ठीक हो जाती है। यह परीक्षित औषध है। [आरोग्यप्रकाश से उद्धृत]

महाकल्याणक गुड [भा. भै. र. ५१९५]

(ग. नि. । गुटिका; वृ. यो. त. । त. ६७; भा. प्र.; वं. से. । ग्रहणी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनिया, वायविडङ्ग, अजवायन, कालीमिर्च, हैड, वहेडा, आमला, अजमोद, नील की जड, जीरा, कालानमक, सेंधानमक, सामुद्र नमक, सज्जीखार, विडनमक, अमलतास, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कलैंजी, सोंठ और इन्द्रजौ का चूर्ण १।–१। तोला, मुनक्का (पत्थर पर पिसे हुए) २० तोला, निसोत चूर्ण ४० तोला, गुड ३ सेर १० तोला, तिल का तेल १ सेर और आमले का स्वरस ६ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब द्रव्य अवलेह के समान गाढा हो जाय तो उतारकर ठण्डा करके चिकने पात्र में भरकर रख दे।

मात्राः—अग्निबलानुसार ०॥ से १ तोला।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से समस्त ग्रहणी रोग, २० प्रकार के प्रमेह, उरःक्षत, प्रतिश्याय, निर्बलता, अग्निमांद्य, समस्त प्रकार के ज्वर, पाण्डु, रक्तपित्त और मलावरोध का नाश होता है। यह कान्ति, मति और बल की वृद्धि करता है।

जिनकी धातु क्षीण हो, जिनकी आयु क्षीण हो और जिनकी कामशक्ति क्षीण हो उनके लिये तथा क्षय के रोगी और वंध्या स्त्री के लिये यह गुड अत्यन्त उपयोगी है।

रसोन पाक [भा. भै. र. ५९३५]

(लशुन पाक)

(वृ. नि र. । वातव्य ।)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१ प्रस्थ (१ सेर) छिलके रहित लशुन को पीसकर १ कुम्भ (६१ सेर) दूध में मिलाकर उसमें ४० तोले घी मिलावे और फिर सबको मन्दाग्नि पर पकावें। जब द्रव्य पकते २ शहद के समान गाढा हो जाय तो उसमें २ सेर खांड मिला दें एवं

जब पाक लगभग तैयार हो जाय तब उसमें सोंठ, कालामीर्च, पीपल दालचीनी, इलायची, तेजपात नागकेसर, पीपलामूल, चव, चीता, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, हवुषा, विधारी, पोखरमूल, अजवायन, लैंग, पुनर्नवा, गोखरू, नीमकी छाल, रास्ना, सोया, शतावर, कचूर, असगन्ध और कौंच के बीज प्रत्येक द्रव्य का १।-१। तोला चूर्ण मिलाकर शीतल होने पर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—अग्निबलानुसार १ से २ तोले।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से समस्त वातजरोग, शूल, अपस्मार, उरःक्षत, गुल्म, उदररोग, वमन, प्लीहा, वध्म, वृद्धि, कृमि, विबन्ध, आनाह, शोथ, अग्निमान्द्य, बलक्षय, हिक्का, श्वास, कास, अपतन्त्रक, धनुर्वात, पक्षाघात, अपतानक, अर्दित, आक्षेपक, कुब्ज, हनुग्रह, शिरोग्रह, विश्वाची, गृध्रसी, खलीशूल, पङ्गुवात, सन्धिवात, वधिरता और सब प्रकारके शूल शीघ्र नष्ट हो जाते है। यह परम वातनाशक है तथा कफ का नाश करके बल, पुष्टि और स्मृति की वृद्धि करता है।

भैषज्य-सार-संग्रह

एकादश प्रकरण

आसव और अरिष्ट

ऋतु अनुसार अवस्थाओं को पार करते, यथा काल, अन्य प्राणियो के समान ही उद्भिद द्रव्य भी परिपक्वावस्था प्राप्त करते है। द्रव्यो का परिपक्व-काल उनका गुण-बाहुल्य-काल होता है। परिपक्व द्रव्य मे पक्वरस की परिपूर्णता, वीर्य की गहनता और क्रिया की प्रबलता होती है।

ऋतुओं की रस प्रधानतानुसार वनस्पति द्रव्यो में रस बहुलता पाई जाती है। जिस ऋतु का जो मुख्य रस होता है, उसी के अनुसार द्रव्यों में रसो का समावेश होता है और तद् रस प्रधान द्रव्य का उस काल में परिपाक हो जाता है। इस प्रकार रसो के अनुसार ऋतुओं के प्रभाव द्वारा द्रव्य वीर्यवान बनते है। जब द्रव्य परिपूर्ण वीर्य (गुण) वान हो तभी उसको, औषधोपयोग हेतु, ग्रहण करना शास्त्र सम्मत और युक्तियुक्त है।

यूं तो शास्त्रादेश का पालन करनेवाले सभी, प्रत्येक औषध के निर्माण के लिये, परिपक्व द्रव्य को ही ग्रहण करते है और उन्हीं द्रव्यो का प्रयोग करते औषधो का निर्माण करते है, तदपि चूर्ण, अवलेह, गुटिका आदि स्वरूपों मे द्रव्यों के वीर्य की आयु बहुत ही अल्प होती है, जबकि आसव और अरिष्ट रूप मे उस औषधवीर्य को अनन्त काल तक सुरक्षित रखकर परिवर्द्धित गुण प्राप्त करते प्रयोग मे ला सकते है। सम्भवत. इसी दृष्टिबिन्दु को लेकर पूर्वाचार्यों ने औषध के इस स्वरूप का निर्माण किया है। आसव अरिष्टो की शीघ्र क्रिया, रुचिकर स्वाद, आल्हादक गंध और प्रसादक तत्वो के कारण आज इस औषध स्वरूप का विपुल प्रचार है। अनेक नामो से इस प्रकार निर्माण होतीं ये औषधे वर्तमान काल में प्रत्येक देश में प्रयुक्त की जा रही है।

आसवारिष्टो की क्रिया, उनके औषध द्रव्यो के अनुरूप, उनमें उपस्थित मद्यार्क के कारण, त्वरित होती है और क्योंकि मद्य अधिकतर तीक्ष्ण, ऊष्ण और पाचक होते हैं अतः इन औषधियों का वात-कफ-प्रधान व्याधियों पर शीघ्र प्रभाव होता है।

आसव-अरिष्टों मे द्रव्यो के संयोग की सम्मूर्छित (आसुत) क्रिया द्वारा मद्यार्क की उत्पति होती है। यही मद्यार्क इन द्रव्यो को दीर्घकाल तक सुव्यवस्थित रखता है। मद्यार्क की उत्पति और औषध की श्रेष्टता द्रव्यो के संयोग, औषध परिपूर्ण घटकों के संधान और उनकी निर्वात सिद्धि पर आश्रित होती है। अधिक काल तक निर्वात स्थान मे सिद्ध होने से मद्यार्क की मात्रा अधिक उत्पन्न हो जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि औषध के निर्माण के लिए मद्यार्क को उस औषध मे डाला ही जाय। ऐसा करने से औषध शीघ्र तैयार हो जाती है परन्तु उसमे वे औषध गुण जो उसे निर्वात सिद्ध करने से प्राप्त होंगे, लभ्य नहीं हो सकते। यही कारण है कि आचार्यों ने प्रत्येक औषध का निर्माणकाल निश्चित करके लिख दिया है। निर्दिष्ट काल से पूर्व औषध को निकाल कर प्रयोग में लाने से वह हानिकारक सिद्ध होती है। निर्दिष्ट काल से अधिक समय तक सुरक्षित रखने से औषध विशिष्ट-गुणकारी हो जाती है।

आसवारिष्ट उपादान

आसव और अरिष्टों के अनेक उपादान होते है। द्रव्यभेदों से उनकी गणना करना सम्भव नहीं है, तदपि उपादान आधारों के अनुसार साधारणतया धान्य, फल, मूल, सार, पुष्प, काण्ड, पत्र, त्वक और शर्करा ये नौ आसवारिष्ट अथवा सर्व साधारण मद्यो के उपादान माने जाते हैं।

सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरय, मेदक, धान्याम्ल ये छः धन्यासव (धान्यो से निर्माण किए जानेवाले आसव-अरिष्ट या मद्य) है। मृद्विका, खर्जूर, काश्मर्य, धन्वन, राजादन, तृणशून्य, परुषक, अभया, आमलक, मृगलिण्डिका, जाम्बव, कपित्थ, कुवल, बदर, कर्कन्धु, पीलु, पियाल, पनस, न्यग्रोध, अश्वस्थ, प्लक्ष, कपीतन, उदुम्बर, अजमोद, श्रृङ्गाटक, शङ्खिनीभि ये २६ फल आसव है—अर्थात इन द्रव्यो के फलो से तैयार किये जाने वाले साधारणतया २६ आसवारिष्ट है।

विदारीगंधा, अश्वगंधा, कृष्णगंधा, शतावरी, श्यामा, त्रिवृत्त, दन्ती, द्रवन्ति, बिल्व, उरुबुक, चित्रकमूल ये ११ मूलासव है। आसव इन द्रव्यो की मूल त्वक में से तैयार किये जाते हैं। शाल, प्रियङ्गु, अश्वकर्ण, चन्दन, स्यन्दन, खदिर, सप्तपर्ण, अर्जुन, असन, अरिमेद, तिंदुक, किणिही, शमी, शुक्ति, शिंशपा, शिरीष, वंजुल, धन्वन, मधूक ये २० सारासव है अर्थात इन द्रव्यों का सार (Extract) निकाल कर उस सार का आसव निर्माण करे। पद्म, उत्पल, नलिन, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, मधूक, प्रियंगु, धातकी ये १० पुष्पासव है अर्थात इन द्रव्यों के आसवारिष्ट निर्माण में इन द्रव्यों के पुष्पों का प्रयोग करना चाहिए।

इक्षुकाण्ड, इक्षिव, इक्षुवालिक, पुण्डरीक इन के काण्डसव बनते है–अर्थात् इन चार द्रव्यो के आसव–अरिष्टो के निर्माण के लिए इनका काण्ड प्रयोग करें। पटोल, ताड इन दो द्रव्यो के पत्रो के आसवारिष्ट बनाये जाते है। तिल्वक, लोध्र, एलावालुक और क्रमुक, इन चार द्रव्यो के आसव अरिष्ट निर्माण में इन की त्वचा प्रयुक्त की जाती है।

उपरोक्त द्रव्य विभाजन से यह सहज ही विदित हो जाता है कि आसव–अरिष्ट निर्माण में द्रव्यों के उपयोगी भागो का ज्ञान आवश्यकीय है। सभी द्रव्यो की त्वचा, पुष्प, पत्र, काण्ड, मूल, सार इत्यादि काम मे नही आते। शास्त्रकारों ने जिन वनस्पति द्रव्यों के जो विभाग आसव–अरिष्ट निर्माण में ग्राह्य कहे है, उन्ही का प्रयोग करते औषधो का निर्माण किया जाय, तव ही वह औषध शास्त्रोक्त क्रिया करती है, अन्यथा नहीं।

आसवारिष्ट व्याख्या

आसव और अरिष्ट मे यह भेद है कि 'यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसव' अर्थात अपक्व (जल में नहीं पाकए हुए) औषधियो और जल के संयोग के सिद्ध करके तैयार किया गया मद्य आसव कहलाता है। 'अरिष्टः क्वाथ सिद्धः स्यात् सम्पकौ मधुरद्रवैः' औषधियो के क्वाथ, मधुर द्रव्य और तरल पदार्थों से सिद्ध मद्य अरिष्ट कहलाता है।

आसव अरिष्ट निर्माण विधि

आसवारिष्ट साधारणतः मिट्टी के मटको में तैयार किये जाते है। कहीं २ स्वर्णपात्रों में तैयार करने का विधान भी मिलता है। आज कल लकडी के बड़े पीपो (Drums) में निर्वात संधान करके आसवारिष्टो को बनाया जाता है।

जिस पात्र मे आसव अरिष्ट तैयार करना हो पहले उसे भली भांति साफ करलें, तदनन्तर जल से धो कर सुखालें और गंधादि द्वारा सुगंधित तथा अग्नि द्वारा शुद्ध करलें। तत्पश्चात् उस पात्र मे भीतर की ओर, ऊपर, नीचे और पार्श्वों में भली प्रकार घृत लगा दें जिससे कि पात्र सुचिक्कन हो जाय। अब इस पात्र मे धाय के फल के कल्क का या लोध्र के कल्क का लेप करे और सुखा ले।

उपरोक्त विधि से तैयार किए हुए पात्रो में आसव निर्माण के लिए शास्त्रोक्त मात्रा में द्रव्य लेकर जल मे मिश्रित कर और अरिष्ट निर्माण के लिए क्वाथ मे मिश्रित कर और गुड, मधु तथा कल्क द्रव्यों का चूर्ण आदि डालकर पात्रों के मुखो को स्वच्छ, धूपित, घृत प्रलिप्त और शरावो से अच्छी तरह ढक कर, उन पर कपड-मिट्टी का लेप इस प्रकार करे कि कहीं से वायु उन पात्रो में प्रविष्ट न होने पाये।

इस प्रकार संधान करके उन पात्रों को पात्रों की लम्बाइ-चौडाई से कुछ अधिक परिधिवाले गड्ढों मे नीचे जौ का भूसा डालकर रख दे और पार्श्वों तथा उपर भी जौ का भूसा डालकर गड्ढो को वंद करदे। इन गड्ढो मे, इन आसव अरिष्टों को, शास्त्र में वताए हुए समय तक परिपक्व होने दे। (कुछ का एक मास मे परिपाक होता है और कई १५ दिन में सिद्ध हो जाते है। इसका यथास्थान वर्णन किया जायगा।)

वायु के प्रवेश से आसवारिष्टों का परिपाक पूर्णतया नहीं होता अतः यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पात्रों मे वायु को प्रवेश न होने पाये।

यथा काल परिपक्व आसवारिष्टों का छान कर वोतलो में भर ले। यदि वोतलों में भरने पर औषधो मे जोग (उफान सा) आता दीखे अर्थात् डाट इत्यादि उडें तो समझें कि औषध अपक्व रही। ऐसे अपरिपक्व आसवारिष्टों को पुनः परिपाक के लिए गड्ढों मे रख दे।

प्रायशोऽभिनवं मद्यं गुरुदोष समीरणम्।
स्रोतसां शोधनं जीर्णं दीपनं लघुरोचनम्॥ (चं. सू. अ २)

अर्थात् प्रायः नवीन मद्य गुरु और वायु कारक होते है और पुराने होने पर स्रोत शोधक, दीपन और रुचि वर्द्धक होते हैं।

आसव-अरिष्ट सेवन विधि

मात्राः—आसवारिष्ट १। तोले से २॥ तोले तक की मात्रा में सेवन किए जाते है।

समयः—साधारणतः सभी आसव और अरिष्ट भोजन के पश्चात् पिये जाते है, परन्तु रोग और रोगी की परिस्थिति के अनुसार बुद्धि कुशल चिकित्सक समय मे यथा रुचि फेर फार कर सकते है।

आसव-अरिष्ट मे समान भाग पानी मिलाकर सेवन करना चाहिए क्योंकि पानी के साथ सेवन करने से इनका प्रभाव शीघ्र होता है, जब कि पानी रहित सेवन करने से कभी २ गले और छाती मे दाह आदि पैदा कर देते है।

आसवारिष्टों के सामान्य गुण

सभी मद्य पित्तकर, अम्ल, दीपन, रोचन, भेदन, कफ-वातनाशक, हृद्य, और वस्ति-शोधक होते है। पाकमें लघु, विदाही, उष्ण, तीक्ष्ण और मादक होते है। ये विकासी मूत्रल और सहज रेचक होते है। इनके गुण इनके द्रव्यो पर विशेष आश्रित है तदपि मद्यार्क की उपस्थिति के कारण साधारणतः सभी आसवारिष्ट पित्तवर्द्धक और वातकफ नाशक होते है।

———o———

आसव

अंगूरासव

द्रव्य

(१) ताजे, मधुर और परिपक्व अंगूर लेकर कपडे मे पोटली बांधकर हाथ से दबा दबा कर अथवा रस निकालने की मशीन में डालकर रस निकाल लें। यह रस १६ सेर।

(२) गुड–(पुरातन हो तो अधिक लाभकारी होगा)–१२॥ सेर ले।

(३) ४० तोले धाय के फूलों को जल के साथ घोटकर वनाया हुआ कल्क।

(४) प्रक्षेप द्रव्य–(सबका एकत्रित बनाया हुआ चूर्ण)–वायविडङ्ग, फूल–प्रियंगु, पीपल, दालचीनी, इलायची तेजपात, नागकेशर और काली मिर्च प्रत्येक द्रव्य का ५–५ तोल सूक्ष्म चूर्ण लें।

निर्माण विधान

विधि पूर्वक तैयार किए हुए तथा घृत प्रलिप्त मटके में प्रथम धाय के फूलों के कल्क का लेप करें। जलीयांश का शोषण करने के लिए मटके को कुछ काल धूप में रख ले। अब इस मटके में अंगूरों के रस को डालकर उसमे गुड को मिला दें। तत्पश्चात् कल्क द्रव्यो के चूर्ण को मिलाकर मटके के मुख को शराव द्वारा भलीभांति ढक दें। और ऊपर से कपड मिट्टी करके उसे सुखालें।

इस प्रकार भलीभांति संधान किए हुए मटके को निर्वात सिद्धि के लिए गढे में रख दें।

एक मास पश्चात् इस मटके को निकाल कर, साफ कर, कुशलता पूर्वक उसके मुख को खोल कर धीरे से (हो सके तो हिलाये बिना ही) मटके में स्थित द्रव को प्राप्त कर ले। यही अंगूरासव है। इसको छान कर प्रयोगार्थ बोतलो मे भर ले।

मात्रा:—१ से २॥ तोला तक भोजनोपरांत जल मिला कर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा और उरःक्षत का नाश होता है।

सं. वि.:—अंगूरासव दाहनाशक, रक्तवर्द्धक, पोषक और मूत्रल है। जहां अन्य मद्य अम्ल रस प्रधान होते है वहां यह मद्यार्क की उपस्थिति मे भी साधारण मधुराम्ल होता है।

यह विपाक मे लघु होता है। इसके सेवन से शोष, विषमज्वर, रक्तपित, उरःक्षत, कास, श्वास और क्षय का नाश होता है।

अंगूरासव पोषक और रक्तवर्द्धक है अतः इसके सेवन से रक्त हीनता और क्षीणता का नाश होता है। अंगूरासव विपाक मे लघु और श्रेष्ट पानक है अत. इसके सेवन से अजीर्ण का नाश होता और क्षुधा की वृद्धि होती है। यह अरुचि, नीरसता और कंठशोष को मिटाता है तथा कोष्ठबद्धता का नाश करता है।

अरविन्दासव [भा. भै. र. १९६]

(आ. वे. सं.; भै. र. । बालरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कमल, खस, खम्भारी के फल, मजिष्ठा, नीलोफर, इलायची, बला, जटामांसी, नागरमोथा, सारिवा (अनन्तमूल), हेड, बहेडा, वच, आमला, कचूर, काली निसोत, नील का पंचांग, पटोलपत्र, पित्त पापडा, अर्जुन की छाल, महुवा, मुलैठी और मुरामांसी। काली द्राक्ष (मुनक्का) १०० तोले, धाय के फूल १ सेर, पानी ६४ सेर, खांड ६। सेर और मधु १ सेर १० तोला ले।

द्रव्यों को कूट कूट कर सबको एकत्र मिला लें।

घृत लिप्त मटके में प्रथम ६४ सेर पानी भरे फिर खांड डालें, तत्पश्चात् मधु मिलावे और तदन्तर अन्य द्रव्यों के मिश्रित चूर्ण को उसमे डालें। यथाविधि संधान करके मटके को गड्ढे में दबा दे। १ मास पश्चात् निकाल कर छान कर प्रयोगार्थ शीशियों में भरकर रख लें।

मात्राः—०॥ से २ तोले तक बच्चो की आयु का विचार करके दिनमे २–३ बार जल मिलाकर दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह आसव बालकों के सम्पूर्ण रोगो का नाश करने वाला तथा बल, पुष्टि और अग्नि को बढाने वाला है।

सं. वि.ः—यह औषध-संयोग दाहनाशक, रक्तशोधक, मस्तिष्क पोषक, ज्वरनाशक, सहज रेचक, हृद्य, कृमिनाशक और अग्निवर्द्धक है। इसके सेवन से कुपथ्य, दुष्ट स्तन्य या मिट्टी इत्यादि अखाद्यो के खाने से उत्पन्न हुए उदर के विकार नष्ट हो जाते है। यह बालको के लिए सर्व सम्पन्न औषध है। इसका सतत सेवन करते रहने से बच्चों के शरीर निर्विकार बढते है तथा बच्चे सर्वदा प्रसन्न रहते है।

बालकों के शरीर वर्द्धन और सामान्य रोग के नाश के लिए 'अरविन्दासव' एक श्रेष्ठ औषध है। यह दाहनाशक, सहज रेचक और पोषक है। स्तन्यपायी शिशुओं

में अधिकतर उदर और कंठ के रोग हो जाते है। यह औषध कंठशोधक, अग्निवर्द्धक, कफ-वात प्रशमक, रुचिकारक और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से साधारण रक्तविकार भी मिट जाते हैं और इसका सतत सेवन करते रहने से बच्चों में रोग उत्पन्न ही नहीं होने पाते।

अहिफेनासव [भा. भै. र. २००]

(भै. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—महुवे की शराब (Rectified spirit) १२॥ सेर। अफीम २० तोला; नागरमोथा, जायफल, इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक ५-५ तोला। घृतलिप्त मटके में प्रथम मद्यार्क डालें, तत्पश्चात् उसमे अफीम और तदन्तर अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को डालकर मटके का भलीभांति संधान करके निर्वात सिद्धि के लिए गढे में रख दें। इसको इस प्रकार १ मास तक सुरक्षित रक्खे। तैयार होने पर निकाल छान कर प्रयोगार्थ शीशियों में भर कर रख लें।

मात्राः—१० से २० बूंद। जल मे मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से उग्रअतिसार और दारुण विसूचिका का नाश होता है।

सं. वि.—अहिफेनासव रोधक, मोहक, शोषक, संग्राहि, श्लेष्मघ्न और वातपित्त-कारक है। अतः इसकी अधिक मात्रा नहीं देनी चाहिए। यदि आध्मान के लक्षण माळूम होने लगे तो इसका प्रयोग बंद करके हिंग्वादि द्रव्यो का प्रयोग करें। इसके सेवन से रोगी मोहित होकर निद्रावश हो जाता है। ऐसी परिस्थिति मे परिश्रांत हुए शरीर के सभी अंग शिथिल हो जाते है। यदि अन्त्र शिथिल हो तो इसकी क्रिया लुप्त होते ही पूर्ववत अतिसार हो सकती है, इसलिए इसके सेवनकाल में अन्य पाचक, वातनाशक, मूत्रल और अन्य पोषक द्रव्यों का सेवन कराना अधिक हितकर होगा।

उशीरासव [भा. भै. र. ५०१]

(भै. र. । र. पि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्यः—खस, सुगंधवाला, कमल, खम्भारी, नीलोफर, फूल प्रियंगु, पद्माक, लोध्र, मजीठ, धमासा, पाठा, चिरायता, वड, गूलर, कचूर, पित्तपापडा, श्वेत कमल, पटोल-

पत्र, कचनार, जामुन की छाल और सेमल का गोंद (मोचरस) प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ५–५ तोला लेकर एकत्र मिश्रित करके रख लें।

स्वच्छ जटामांसी और मरिच से धूपित तथा घृतलिप्त मिट्टी के मटके में ६४ सेर स्वच्छ जल भर कर उसमें १०० तोला द्राक्षा (मुनक्का), १ सेर धाय के फूल, ६। सेर खांड और ६। सेर मधु मिलावे। अब इस मिश्रण में उपरोक्त कल्क को डाल दें और मटके का भली प्रकार संधान करके निर्वात सिद्धि के लिए गढ्ढे में दबाकर रख दें।

औषध के सुसिद्ध होने पर १ मास के पश्चात मटके को निकाल कर 'उशीरासव' को इसमें से निकाल लें और छानकर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः——०॥ से २॥ तोले तक। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह रक्तपित्त, पाण्डु, कुष्ठ, प्रमेह, अर्श, कृमि और शोथनाशक है।

सं. वि.—उशीरासव के सभी द्रव्य शीतवीर्य, रक्तशोधक, रक्तरोधक, दाहनाशक, सहज रेचक, पोषक और वात–पित्त शामक हैं। आसव होने के कारण यह कफ का भी संशमन करता है।

इसके सेवन से ऊर्द्ध, अधो और तीर्यक रक्तपित्त का नाश होता है। यह रक्तार्श, मूत्रदाह और मूत्राशयशोथ नाशक तथा मूत्राशय और जननेन्द्रियों के व्रणों को नष्ट करनेवाली, पित्तज्वर, दाहज्वर, रक्तदोषजन्य ज्वर और पित्तज तथा शोथ के कारण होनेवाले ज्वर का नाश करनेवाली औषध है।

यह रक्तवर्द्धक, यकृत-प्लीहातन्तु अन्तर्गत रक्तज और पित्तज शोथ को नष्ट करनेवाली, मलावरोध नाशक तथा पित्तज और विदग्ध जीर्णजन्य आन्त्रिक दोषों का संशमन करके पित्तज पाण्डु, उदरकृमि और अर्श रोग को नष्ट करनेवाली औषध है। इसके सेवन से गर्भाशय शोथ, गर्भाशय दाह, अधिक ऋतुस्राव, गर्भस्राव, रक्तप्रदर तथा गर्भाशय के अन्तर तन्तुओं का शोथ नष्ट होता है।

कनकासव (भा. भै. र. ८९०)

(भै. र. । हिक्का.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कुटे हुए धतूरे के पञ्चांग (शाखा, मूल, पत्र, फल, त्वक् सहित) और कुटी हुई वांसे की जड २०–२० तोला, मुल्हैठी, पीपल, कटेली, नागकेशर, सोंठ, भारंगी और तालीस पत्र प्रत्येक का चूर्ण १०–१० तोला। धाय के फूल १ सेर, मुनक्का १। सेर, खांड (चीनी) ६। सेर और मधु ३। सेर ले।

विधि पूर्वक तैयार किए मटके मे ६० सेर स्वच्छ जल भरलें। अब उसमें प्रथम खांड डाले, तत्पश्चात मधु और मुनक्का मिलावें, तदनन्तर धाय के फूलो का अधकुटा चूर्ण और फिर अन्य द्रव्यों के मिश्रित चूर्ण को उसमें डाल दे। साधारणतया आलोडित करके मटके का संधान करें और निर्वात सिद्धि के लिये गढे मे दबा दे। एक मास पश्चात् निकाल कर औषध को छान कर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—०॥ तोले से १। तोले तक, देश, काल और बल की उपेक्षा करते हुए, जल मिलाकर यथोचित उपयोग करे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—सब प्रकार के श्वास, कास, यक्ष्मा, क्षत, क्षीण, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और उरःक्षत का नाश करता है।

सं. वि.—यह औषध आक्षेप नाशक, कफ विलयक, शीतनाशक, कंठशोधक, वात-कफज शोष, शोथ संकीर्णता तथा जडता नाशक है। इसके सेवन से प्रतिश्याय, पीनस, नासिकाश्लेष्मकला शोथ, कास-श्वास-नलिकाआक्षेप, कास और कास-श्वास विकार जन्य तथा जीर्ण प्रतिश्याय तथा श्लेष्म प्रकोप जन्य ज्वर नष्ट होते हैं। यह श्लेष्म प्रकोप जन्य विकृत उदर श्लेष्मकलाओ के विकारों को नष्ट करता है। यह आमाशय अन्त्र और हृदयादि यंत्रो की श्लेष्मकलासंधियो के शोथों को नष्ट करता है और कफ प्रकोपजन्य फुफ्फुसावर्ण, हृदयावर्ण और यकृदावर्ण के विकारों को नष्ट करता है।

इसका सहज कफविकार जन्य अथवा श्लेष्मकला विकृति जन्य विकारों में प्रयोग किया जाता है। श्वास-कास, यक्ष्मा, उरःक्षत और ऊर्ध्वगत (हृदय और फुफ्फुस मे होनेवाले) रक्तपित्त में यह श्रेष्ठ लाभ पहुंचाता है।

इसका सेवन दीर्घकाल तक सतत करते रहने से श्लेष्म प्रकोपजन्य तथा वातजन्य श्लेष्मकलाओं के विकार अवश्य नष्ट होते है।

कर्पूरासव [भा. भै. र. ८९१]

(भै. र. । परिशिष्ट)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक स्वच्छ घृत लिप्त मृतिकाभाण्ड में १२॥ सेर प्रसन्ना सुरा (Rectified Spirit) भरें, फिर उसमे ०॥ सेर कपूर डाल दे। तत्पश्चात उसमे छोटी इलायची, नागरमोथा, सोठ, अजवायन और वायविडङ्ग प्रत्येक द्रव्य का ५-५ तोला सूक्ष्म चूर्ण डाल दे। मटके का मुख शराव से ढक कर कपडमिट्टी द्वारा उसका भलीभांति संधान करके उसे गढे मे निर्वात सिद्धि के लिए बंद कर दें। एक मास पश्चात मटके को

निकाल कर उसमें से सुसिद्ध औषध को निकाल कर छान कर शीशियों में भरकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१० बूंद से ०॥ तोला तक, दोष और बल की उपेक्षा करते हुए ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह विसूचिका की परम औषध है । इसके सेवन से और भी अनेक रोग नष्ट होते है ।

सं. वि.—इसका सेवन हृदयावर्ण और हृदयावसाद, वृक्कावसाद, क्षयजन्य गात्रस्वेद, शुक्राशय शैथिल्य के कारण होनेवाले प्रमेह और रक्तपरिभ्रमण अभाव आदि अनेक रोगों पर सर्वदा लाभप्रद होता है । इसका प्रयोग अन्तर्बाह्य दोनों ही प्रकार से कर सकते है । हृदयशूल, वक्षशूल और हृदय की मंद गति हो तब इसकी हृदय स्थान पर मालिश कर सकते है ।

यह औषध विष, क्षोभ और कीटाणु नाशक तथा नाडियों को उत्तेजित करने के पश्चात उनको मोहित करनेवाली है, अत. इसके सेवन से आक्षेप, शीत, श्लेष्मकला संकोच और शोथ आदि विकार नष्ट होते है । यह नाडियों के आक्षेप को दूर करती है और स्वेदग्रन्थियों को सक्रिय बनाती है । यह वात-श्लेष्मजन्य ज्वर नाशक है ।

इसके अधिक सेवन से आमाशय शूल, अरुचि, वमन, भ्रम, तन्द्रा आक्षेप, पक्षाघात, शीत, मूत्राघात, मूर्च्छा और मृत्यु तक हो सकती है, अत. इसका सेवन केवल आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए ।

यह कह देना अत्युक्ति नहीं होगी कि विसूचिका और संतापजन्य अतिसार मे यह एक अत्युत्तम औषध है ।

कालमेघासव

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक घृतप्रलिप्त शुद्ध मटके मे ५० सेर शुद्ध जल भरे और उसमें १२॥ सेर अधकुटी कालमेघ की छाल डाले । अब इस मटके मे १९॥ सेर गुड, २ सेर धाय के फूल और चिरायता, कुटकी, नीम की छाल, सोंठ, हैड, धमासा. पटोल पत्र, लाल चन्दन और खस प्रत्येक द्रव्य का १०-१० तोले सूक्ष्म चूर्ण एकत्रित कर डाल दे । मटके का भली प्रकार संधान करके गढे मे निर्वात सिद्धि के लिए रख दे। १ मास पश्चात् औषध को निकाल कर, छान कर और स्वच्छ शीशियो में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रख ले ।

मात्राः—०॥ तोले से १। तोला तक । जल मिलाकर भोजनोपरान्त अथवा आवश्यकतानुसार ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह यकृत्प्लीहावृद्धि, जीर्णज्वर, कोष्ठवद्धता आदि रोगों मे हितकर है।

सं. वि.—कालमेघ कषाय रस प्रधान ज्वरघ्न द्रव्य है। इसकी क्रिया किरातमूल के अनुसार ज्वरनाशक, कोष्टशोधक, यकृत-प्लीहावृद्धिनाशक, अन्त्र-शैथिल्यनाशक और जीर्णज्वरजन्य पाण्डुनाशक है। यदि लौह के योग के साथ प्रयुक्त किया जाय तो यह पाण्डु, कामला, रक्तहीनता आदि का नाश करता है और अन्त्र के शोष द्वारा उत्पन्न हुए विकारो का नाश करके अन्त्र को सक्रिय करता है।

सप्तपर्ण के कषाय या चूर्ण के साथ देने से यह अचूक अन्त्र शैथिल्य नाशक क्रिया करता है और इस योग के साथ इसकी यकृद-प्लीहावृद्धि नाशक क्रिया शीघ्र होती है।

कुमार्यासव (भा. भै. र. ८९५)

[ग. नि. । अ. ६]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर घीकुमार का रस, १ सेर ९ छटांक गुड; और तेजपात, दालचीनी, करंजवा, पीपल, कालीमिर्च, धाय के फूल, अकरकरा, वच, जावित्री और वायविडङ्ग प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ५-५ तोले और हैड का सूक्ष्म चूर्ण १० तोले लेकर सबको एकत्र मिश्रित कर एक शुद्ध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भर ले। मटके को यथाविधि संधान करके निर्वात सिद्धि के लिए गढे में रख दे। १५ दिन (या १ मास) के बाद औषध को निकाल कर और छानकर शीशियो में भरकर रख लें।

मात्राः—१। तोले से २॥ तोले तक। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से गुल्म, उदावर्त, अफारा, पसली का शूल, उदरव्याधि, कफ, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास, हिक्का, क्षय, यकृद्, प्लीहा, और शोथ का नाश होता है।

सं. वि.—घृतकुमार पित्त-निस्सारक वानस्पति औषध है अतः इसके सेवन से पित्त-क्षीणता द्वारा उत्पन्न हुई उदर की व्याधियां यथा-यकृदवृद्धि, प्लीहावृद्धि, आमाशय और अन्त्र-क्रिया हीनता, ग्रहणि शोथ आदि रोग सहज ही नष्ट होते हैं। पित्तवर्द्धक होने के कारण यह सहज रेचक, पाचक, कोष्ठशोधक, कफ और वाताजीर्ण को नष्ट करने वाला तथा अन्त्र शैथिल्य के कारण उत्पन्न हुए एकांग या सर्वाङ्ग शोथ को नष्ट करनेवाला है।

यह रक्तवर्द्धक, वात-कफ-पाण्डु नाशक और ग्रंथिशैथिल्य नाशक है।

जैसी इसकी क्रिया उदर की पाचक रसवाही ग्रंथियो पर होती है वैसी ही इसकी क्रिया डिम्बग्रंथियो पर होती है। इसके सेवन से डिम्बग्रंथिशोथ, डिम्बशैथिल्य, डिम्बग्रंथि-

आक्षेप और जरायु आक्षेप का नाश होता है। यह उदर विकारों के लिए एक सर्वसाधारण औषध है।

उदर शैथिल्य के कारण वात प्रतिलोम होकर कंठ, श्वास-कास नलिका तथा नासिका को अवरुद्ध कर देता है जिससे श्वास, कास, हिक्का आदि अनेक उपद्रवों की उत्पत्ति होती है, इसके सेवन से उपरोक्त कारणों से उत्पन्न हुए श्वास-कास नष्ट होते है।

कुमार्यासव नं. १ [भा. भै. र. ८९४]
(ग. नि. । अ. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक शुद्ध, धूपित, घृतप्रलिप्त मटके मे ३२ सेर घी कुमार का रस भरे। अब इस रस में १ सेर १४ छटांक काली द्राक्ष (मुनक्का), ४ सेर मधु, २५ सेर गुड और १२॥ सेर धाय के फूल मिलावे। फिर लौंग, कंकोल, श्वेत चन्दन, चतुर्जात, (दालचीनी, लैंग, तेजपात, नागकेसर), पीपल, कालीमिर्च, जावित्री, तेजपात, अकरकरा, कौंच, अजमोद, बच, खैरसार, चीता, जीरा, सुगंधवाला, सोंठ, नागरमोथा, धनिया, हैड, हाऊबेर तथा तिन्तडीक प्रत्येक का १-१ तोला सूक्ष्म चूर्ण लेकर एकत्र मिलाकर मटके में डाले। तदनन्तर दशमूल ३ सेर २ छटांक, पोखरमूल १ सेर ९ छटांक, चीता ६२॥ तोला गिलोय ०॥ सेर, हैड ०। सेर, लोध्र, आमला, चौलाई की जड, मजीठ, बहेडा, चव्य, कूठ, मुल्हैठी, कैथ, देवदारु, वायविडङ्ग, पीपल, भारगी, अष्टवर्ग, (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली और क्षीर काकोली), जीरा, सुपारी, रास्ना, कपूर, कचरी, रेणुका, काकडासिंगी, हल्दी, फूल प्रियंगु, जटामांसी, नागरमोथा, सारिवा, वासा, शतावरी, इन्द्रजौ, नागकेशर और पुनर्नवा प्रत्येक द्रव्य ४-४ सेर लेकर सबको एकत्र अधकुटा करके १९२ सेर जल मे पकावे और जब चतुर्थांश भाग अवशिष्ट रह जाय तब उतार कर, छानकर और ठंडा करके उपर्युक्त मटके मे डालदे और मटके का भलीभांति संधान करके निर्वात सिद्धि के लिए भूमि में गाढ दे। १ मास पश्चात मटके को निकाल कर औषध को छान कर शुद्ध शीशियों मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २॥ तोले तक। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसका ५ तोले की मात्रानुसार प्रातःकाल सेवन करने से धातुक्षय, खांसी, पांच प्रकार के श्वास, अर्श, वातव्याधि, संग्रहणी, पाण्डु, कामला, हलीमक, उदावर्त, पांच प्रकार के गुल्म, अफारा, कटिशूल, प्रत्याध्मान, गुदग्रह, अष्ठीला और हृद्रोग का नाश होता है।

सं. वि.—घृतकुमार के योग द्वारा जहां यह उदर के वात–कफज विकारों को नष्ट करता है, वहां भारंगी, अष्टवर्ग आदि के योग से श्वास–कास नाशक, हृद्य, वातनुलोमक, कफ नाशक और रक्तवर्द्धक युक्त है। इसकी क्रिया उदर, फुफ्फुस और हृदय की श्लेष्मकलाओ पर होती है। यह सम्पूर्ण धात्वाग्नियो का पोषण करके सर्व शरीर की श्लेष्मकलाओं को पुष्ट करता है। प्रतिलोम वात का अनुलोमन करता है तथा अपनी स्वाभाविक स्वेदन क्रिया द्वारा शरीर के प्रत्येक स्रोत का शोधन करता है।

यह कुमार्यासव पोषक, रक्तवर्द्धक, हृद्य और रसायन है। इसके सेवन से जिस प्रकार उदर, वक्ष और कंठ की ग्रन्थियों की क्रिया मे जागृति आती है उसीप्रकार वीर्यग्रन्थियां भी इसके सेवन से सक्रिय हो जाती है। यह कफ–वात–मेद नाशक तथा पुरातन संग्रहणी, श्वास, कास, क्षय, शोष और वातज हृद्रोगो का नाश करनेवाला है।

उदर, गुल्म, अर्श, पाण्डु, कामला, उदावर्त, आध्मान, गुदग्रह आदि रोगो के लिए तो यह पितनिस्सारक, अग्निवर्द्धक, वात–श्लेष्म नाशक तथा आमाशय, ग्रहणि और अन्त्रक्षोभ तथा अन्त्रशैथिल्य नाशक होने के कारण स्वाभाविक ही उत्तम औषध्र हैं।

कुष्माण्डासव [भा. भै. र. ८९७]
(ग नि. । अ. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक स्वच्छ, धूपित और घृतलिप्त मटके मे ३२ सेर श्वेत कुष्माण्ड (पेठे) का रस डालकर उसमें १६ सेर गुड मिलावे। फिर त्रिकटु, लवंग, चतुर्जात, कङ्कोल, जायफल, जावित्री, फलप्रियंगु, कैथ का गूदा, इन्द्रजौ, गोखरू, गिलोय सत्व, भारंगी, वला बीज, हपुषा (हाऊवेर), सुपारी, देवदारु, कस्तूरी, खैर सार, नागरमोथा, चीतामूल, रास्ना, मुल्हैठी, तुम्बरू, नागकेशर, पीपलामूल, अजमोद, कलौंजी, अजवायन, कायफल, वंशलोचन, अकरकरा, उटङ्गन के बीज, इन्द्रजौ, काकोली, शठी (कपूरकचरी), मोचरस, नागरमोथा अथवा कर्पूर, तालमखाने, कसेरु, सहदेवी, चिरायता, चविका, स्पृक्का, पद्माक, हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, देवदाली और विदारीकन्द प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ०।–०। तोला लेकर एकत्र मिश्रित करके मटके में डाल दे और फिर इसी मटके में ४० तोला लोह चूर्ण (लोह का वुरादा यदि भस्म का प्रयोग किया जाय तो औषध अधिक गुणकारी बनेगी) और ८० तोले धाय के फूलो का चूर्ण एकत्रित करके डाले। मटके को भलीभांति संधान करके गढे मे दाब दें। १५ दिन (अच्छा हो कि १ मास तक परिपाक होने दे) के बाद निकालकर औषध को छान ले और साफ सुथरी शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१। से २॥ तोले तक, भोजनोपरांत जल मिलाकर (शास्त्रादेश इसे प्रातः उठकर ५ तोले पीने का है)।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से धातुक्षय, मन्दाग्नि, प्रमेह, पाण्डुरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, प्लीहा, भगंदर, आमवात, रक्तपित्त, श्लेष्मरक्त, वातजरोग, मेद और स्थौल्य का नाश होता है।

सं. वि.—कुष्माण्डासव पित्तज विकारो को नष्ट करने के लिए श्रेष्ठ औषध है। इसमें इसके अतिरिक्त अन्य अनेक त्रिदोष शामक औषध हैं। इसके सेवन से प्रवृद्ध और प्रदुष्ट पित्त द्वारा होनेवाले विकार यथा पाण्डु, अर्श, ग्रहणीदोष, मन्दाग्नि, प्रमेह, प्लीहा, यकृद, भगंदर आदि रोग शीघ्र नष्ट होते है। मूत्राम्लता के कारण होनेवाले आमवात, वात विकार, मेद, स्थूलता को भी यह शीघ्र नष्ट करती है। श्लेष्मरक्त और रक्तपित्त में भी यह गुणकारी है।

यह औषध जिस प्रकार पित्तज व्याधि का नाश करनेवाली है उसी प्रकार वात-कफ नाशक, अग्निवर्द्धक और वृक्क शोधक द्रव्यों के संयोग से वात-कफ की व्याधि का नाश करनेवाली, पाचक और रक्तवर्द्धक है।

———o———

खदिरासव [भा. भा. र. १०९७]

(ग. नि. । ६. आसवा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर खैर सार को १२८ सेर पानी मे पकावें। जब ३२ सेर पानी बाकी रहे तो उतारकर छान ले और ठंडा होने पर उसमें १८। सेर मधु मिलावे; तथा त्रिकटु, त्रिफला, पिण्ड खजूर, नागकेशर, दालचीनी, बावची, गिलोय, वायविडङ्ग, पलाश और धाय के फूल प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ८-८ तोला लेकर एकत्र मिश्रित करके खैर सार के क्वाथ मे मिलावे। अब इस मिश्रित प्रवाही को १६ दिन तक इसी प्रकार मटके मे रखें और नित्य मटके को हिला दिया करे। (मटके को निर्वात रखना चाहिए)। १६ दिन के बाद इस प्रवाही मे १२॥ से मधु मिलावे और मटके का संधान करके गढे में दबा दे। १ मास पश्चात् इसे निकालकर औषध को छान लें और इस मे १ माशा कस्तूरी और २ माशे कपूर एक कपडे की पोटली में बांधकर डाल दें और मटके को पुनः सुरक्षित रख ले। आठ दिन बाद पुनः औषध को निकालकर छाने और साफ सुथरी शीशियों मे भरकर रखलें।

मात्राः—१। से २॥ तोला, भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से महाकुष्ठ का नाश होता है।

सं. वि.:—कुष्ठ के लिए खदिर सर्व श्रेष्ट औषध है। इस औषध में बावची, पलाश, पुष्प और गिलोय आदि द्रव्यों का संयोग औषध की कुष्ठ नाशक शक्ति को बढ़ाने के लिए किया गया लगता है। कर्पूर और कस्तूरी दोनों ही कीटाणु नाशक, रक्त परिभ्रमण वर्द्धक, व्यवायी और विकाशी हैं। संक्षेप मे यह औषध रक्तशोधक, कीटाणु और कीटाणु विष नाशक. त्रिदोष प्रशमक, दाहनाशक, मूत्रल, कोष्ठशोधक और त्वक्–रंध्रों को शुद्ध करने वाली है। इसका सेवन दुष्ट व्रण, वातरक्त और कुष्ट के सभी भेदो पर किया जाता है।

यह औषध जैसे कुष्ठ में लाभप्रद है वैसे ही किलास मे भी उपयोगी है। त्वचा के विकारों को नष्ट करती हुई यह त्वक् विवर्णता का नाश करती है।

चन्दनासव [भा. भै. र. १८११]

(भै. र. । प्रमेह)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सफेद चन्दन, नेत्रबाला, नागरमोथा, खम्भारी के फल, नील कमल, फूल प्रियंगु, पद्माक, लोध्र, मजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, कुटकी, बड के वृक्ष की छाल, कचूर, पित्त पापडा, मुलैठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनार की छाल, आम की छाल और मोचरस प्रत्येक द्रव्य ५—५ तोले लेकर सबको एकत्र जौकुट कर लें। इधर एक स्वच्छ, धूपित और घृत लिप्त मटके में ३२ सेर स्वच्छ जल लें और उपरोक्त चूर्ण को इसमे डाल दे। इस मिश्रण मे १६ पल (१ सेर) धाय के फूल, २० पल (१। सेर) द्राक्ष (मुनक्का) १०० पल (६। सेर) खांड और ५० पल (३ सेर २ छटांक) गुड डाल कर मटके का मुख बांधकर उसे निर्वात सिद्धि के लिए गढे मे दाब कर रख दे।

१ मास पश्चात औषध को निकालकर छान लें और साफ सुथरी शीशियों मे भरकर रखले।

मात्राः—१। से २॥ तोले। भोजनोपरांत अथवा यथोचित समय जल मिलाकर सेवन कराये।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह चन्दनासव शुक्रमेह नाशक, बलकारक, पौष्टिक, हृद्य और अत्यन्त अग्निवर्द्धक है।

अपथ्यः—शुक्रमेह रोग मे अभिष्यन्दि और तीक्ष्ण अन्न पान (दही, लाल मिर्चे, सुरा आदि), धूप, अग्नि तापना, स्त्री प्रसंग, मल मूत्रादि वेगो को रोगना, जागरण, क्रोध, शोक, दिवास्वप्न, लङ्घन, अधिक चिन्ता, अति आलस्य और असत्संग का परित्याग करना चाहिए।

पथ्यः—शीघ्र पचनेवाला (लघु) और शुक्रवर्द्धक अन्न पान, सत्संग, सत्कथा श्रवण, शान्ति और स्वाध्याय हितकारक है।

सं. वि.—पूयमेह, शुक्रमेह तथा अन्य पित्तज प्रमेहों में चन्दनासव की क्रिया बड़ी ही सराहनीय होती है। यह औषध मूत्रल, सहज रेचक, वातानुलोमक, अन्त्रशोधक, अन्त्रदाह और अंत्र शैथिल्य नाशक; मूत्राशय, मूत्रनलिका, पुरुषग्रंथि, शुक्राशय, शुक्र नलिका और शुक्र-ग्रन्थियों के शोथ, निष्क्रियता और उग्रता आदि रोगों को नष्ट करनेवाली तथा व्रणनाशक है।

वृक्क के दाह, पित्त और रक्तजन्य विकारों की पूर्व पश्चात अवस्थाओं में इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद रहता है। वृक्कावर्ण-शोथ, मूत्र नलिका शोथ और व्रण, मूत्राशयगत व्रण आदि रोगों मे निस्संकोच 'चन्दनासव' का प्रयोग हितकर होता है।

इसके सेवन से केवल शुक्र और मूत्र दोष ही नष्ट नही होते बल्कि वीर्यक्षीणता, शरीर मे अधिक संताप के कारण उत्पन्न हुई वीर्य तरलता तथा रक्त ऊणता के कारण उत्पन्न हुई रक्त विकृति भी नष्ट होती है।

चविकासव [भा भै. र. १८१३]

(ग. नि । आस., यो. र. । अजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चव्य आधा तुला (३ सेर २ छटांक), चीता पाव तुला (१ सेर ९ छटांक), काला जीरा, पोखर मूल, बच, हाऊबेर, कचूर, पटोल की जड, त्रिफला, अजवायन, कुडे की छाल, इन्द्रायन, धनिया, रास्ना और दन्तीमूल प्रत्येक १०-१० पल (५०-५० तोला) तथा वायविडङ्ग, मोथा, मजीठ, देवदारु और त्रिकटु प्रत्येक ५-५ पल (२५-२५ तोला) लेकर जौकुटा करके २५६ सेर पानी मे पकावें जब ३२ सेर क्वाथ बन कर तैयार (अर्थात ३२ सेर जल रह जाय) हो जाय तो उसे उतार कर छान ले और उसमें १८॥। सेर गुड, १। सेर धाय के फूल, ४० तोले चतुर्जात (तेजपात, इलायची दालचीनी और नागकेशर) तथा ५-५ तोले लौंग, त्रिकटु, और कंकोल का चूर्ण मिलावें। इस मिश्रण को स्वच्छ धूपित और घृत लिप्त मटके में भरकर उसके मुख को कपडमिट्टी से भलीभांति बंद करें और उसे गढे में दबा दे। औषध को एक मास तक निर्वात सिद्ध होने दे। एक मास पश्चात निकाल कर औषध को छान कर स्वच्छ शीशियों में भर कर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१। से २॥ तोले तक। भोजनोपरांत जल मिश्रित करके पीवें [शास्त्रादेशः—प्रातः सायं ४ पल (२० तोले) की मात्रानुसार सेवन करें।]

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—इसे प्रतिदिन प्रातःकाल ४ पल की मात्रानुसार सेवन करने से समस्त प्रकारके गुल्म, २० प्रकार के प्रमेह, प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्टीला, वातरक्त, उदर विकार और अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है।

सं. वि.:—**चव्य:**—ऊष्ण, कटु, लघु, दीपन और रुचिकर है। यह श्वास, कास, शूल, नाशक है। इसके सेवन से कफज अर्श मिट जाते है। यह भेदक और कफनाशक है।

चित्रकमूल:—कफ–वातनाशक, ग्राही, वात, अर्श, कफ और पित्त का संशमन करने वाला, पाक मे कटु, अग्निवर्द्धक, पाचक, लघु, और रुक्ष है। यह कुष्ट, शोथ, कृमि और कास का नाश करनेवाला है।

अन्य द्रव्य:—वातानुलोमक, कोष्टशोधक, ज्वरनाशक, आमनाशक, कीटाणुनाशक, रुचिकारक और वात–श्लेष्मनाशक तथा अग्निवर्द्धक है।

'चविकासव' उदर में प्रकुपित तथा संचित दोषो का नाश करने वाला, दोषानुलोमक, वातनाशक, ऊष्ण, कटु, लघु और दीपन होने से आमपाचक, आध्मान नाशक और अग्निवर्द्धक है।

इसके सेवन से अन्त्र शैथिन्य और अन्त्र–शैथिल्य के कारण होने वाले प्रमेह, रक्तक्षीणता, कास, श्वास, अष्टीला और अन्त्रवृद्धि आदि विकार नष्ट होते है।

दूषित अन्न और जल के सेवन से स्वभाविक ही अन्त्र दोष उत्पन्न हो जाते है। आम की वृद्धि; पाचन का अभाव और आलस्य आदि अन्त्रदोष के साधारण लक्षण है। आजकल अन्त्र के ऐसे आम और वातज विकार प्रचुर प्रमाण मे मिलते है 'चविकासव' का सेवन उत्पन्न हुए विकारों को नष्ट करता है और स्वस्थ कोष्ट पर प्रयोग किया जाय तो उदर को विकार विहीन रखता है।

द्राक्षासव [भा. भै. र. ३१३१]

(ग. । नि. आस., यो. र. । अर्श.; वृ. नि. र. । संग्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—१०० पल (६। सेर) स्वच्छ द्राक्ष (मुनक्का) को ४ द्रोण (१२८ सेर) पानी मे पकावें। चतुर्थांश (३२ सेर) अवशिष्ट रहने पर उतार कर छान ले। ठण्डा करके उसे एक स्वच्छ धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भर लें।

मटके में भरे द्राक्ष–क्वाथ मे १ तुला (६। सेर) खांड, १ तुला (६।) सेर मधु और ७ पल (३५ तोले) धाय के फूलों का चूर्ण मिलावें। तत्पश्चात् जावित्री, लौंग, कंकोल, लवली फल (हर फारवेरी), सफेद चन्दन, पीपल, दालचीनी, इलायची और तेजपात

प्रत्येक का २॥-२॥ तोला चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित कर उपरोक्त मटके में डालें और मटके का मुख कपडमिट्टी द्वारा भलीभांति बद करके उसे गढे मे दबा दे। ३ सप्ताह पश्चात् जब पेय द्रव्य तैयार हो जाय (परिपाक के लिए एक मास निर्वात रखना आवश्यक है) तब निकालकर, छानकर साफ-सुथरी शीशियो मे भरले।

मात्राः—१। से २॥ तोला। भोजनोपरांत यथाभिरुचि जल मिलाकर। अधिक मात्रा मे भी सेवन किया जा सकता है।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन करने से अर्श, शोथ, अरुचि, हृदयरोग, पाण्डु, रक्तपित्त, भगंदर, गुल्म, उदर रोग, कृमि, ग्रन्थि रोग, क्षत, शोष, ज्वर और वात-पित्त रोग नष्ट होते है। यह बल-वर्ण की वृद्धि करता है।

सं. वि.—परिपक्व द्राक्ष (मुनक्का) शीत, नेत्र हितकर, शरीरवर्द्धक, विपाक में मधुर, स्वर को शुद्ध करने और बढानेवाले और सहज रेचक तथा मूत्रल होते है। इनके सेवन से तृष्णा, ज्वर, श्वास, कास, वातरक्त, कामला, रक्तपित्त, भ्रम, दाह, शोष इत्यादि का नाश होता है। द्राक्ष वीर्यवर्द्धक और कफ-पित्त के रोगो का नाश करनेवाली होती है।

द्राक्षासव मधुर विपाकी, वात-पित्त-कफ नाशक, मूत्रल, पाचक तथा रक्तवर्द्धक, कोष्ठ शोधक, हृद्य और वृष्य है।

शास्त्र मे जिन २ रोगो पर इसको हितकर बताया है वे अधिकतर वात-कफ प्रधान है, रक्तहीनता के कारण उत्पन्न होते है और उदर विकृति उनका मूल है। द्राक्षासव वात-पित्त-कफ नाशक, रक्तवर्द्धक, अन्त्रकला-दोष नाशक, कोष्ठ शोधक, जीर्ण और नवीन दोनो ही प्रकार के आन्त्रिक ग्रन्थि दोषो को नष्ट करनेवाला तथा उनकी पुष्टि करके अन्त्र की कलाओं को सजग करनेवाला है। इसके सेवन से अन्त्र की शोषित कलाएं सक्रिय हो जाती है और अपने २ पाचक रसो द्वारा शरीर को नवपल्लवित बनाती है।

द्राक्षासव कोष्ठ शोधक और दाहनाशक है, अतः दीर्घ काल से संग्रहित दोष इसके सेवन से नष्ट हो जाते है तथा अन्त्रदोषो के विनाश के साथ २ अर्श भी नष्ट हो जाते है।

यह कण्ठशोधक, स्वरवर्द्धक, हृदयपोषक तथा चक्षु आदि इन्द्रियो को शक्ति प्रदान करता है। रक्ताभाव से होनेवाले जीर्णज्वर मे इसका सेवन लाभप्रद है। क्षय, उरःक्षत, कास और श्वास के लिए यह सर्वोपयोगी औषध है। इसका सेवन सर्व ऋतुओ में सामान्यतया सब ही कर सकते है। यह मधुर विपाकी और शीतवीर्य होने के कारण शरीर में दाह-संतापादि विकार नहीं करता बल्कि उनका नाश करता है।

द्राक्षासव अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर भी किसी प्रकार की मादकता उत्पन्न नहीं करता क्योंकि द्राक्ष मादकता नाशक, हृद्य, दाहनाशक और मस्तिष्क पोषक है ।

देवदार्वासव [भा. भै. र. ३१२७]

(ग. नि.; शा. ध. । आसवा.; भै. र. । प्रमे.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—देवदारु, तुलार्द्ध (३ सेर २ छटांक), वासा २० पल (१। सेर), इन्द्रजौ, दन्तीमूल, मञ्जिष्ठा, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, नागरमोथा, शिरीष का सार, वायविडङ्ग, खैरसार और अर्जुन की छाल प्रत्येक द्रव्य १०–१० पल (५०–५० तोला), गिलोय, चीता, सफेद चन्दन, अजवायन, रोहिणी और कुडे की छाल प्रत्येक ५–५ पल (२५–२५ तोला) ले । सब द्रव्यों को जौकुटा करके एकत्र मिश्रित करे ।

जलः—८ द्रोण (२५६ सेर)

क्वाथ्य द्रव्यों के मिश्रण को जल (२५६ सेर) में पकावें । पकते २ अवशिष्ट जल जब चतुर्थांश रह जाय अर्थात १ द्रोण (३२ सेर) रहने पर क्वाथ को उतार कर छान लें ।

क्वाथ को ठंडा करके एक शुद्ध, धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भर ले । इस क्वाथ में षोडष पल १ सेर (८० तोले) धाय के फूलो का चूर्ण, ३ तुला (१८॥ सेर) मधु, ४ पल (२० तोला) त्रिजात (दालचीनी तेजपात, इलायची), २ पल (१० तोला) त्रिकटु, २ (१० तोले) केशर तथा २ पल (१० तोले) फूलप्रियंगु का चूर्ण मिलावे ।

मटके के मुख का भलीभांति संधान करके उसे गढे मे निर्वात सिद्धि के लिए दाब दें।

१ मास पश्चात निकाल कर औषध को छान लें और स्वच्छ शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें ।

मात्राः—१। तोले से २॥ तोला । भोजनोपरांत अथवा यथोचित समय जल मिलाकर पिलावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह 'देवदार्वासव' प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, वातव्याधि, ग्रहणी विकार और अर्श को नष्ट करता है ।

सं. वि.—देवदारु स्निग्ध और ऊष्ण है । यह वात–श्लेष्म, आमदोष, विबंध, अर्श, प्रमेह और ज्वर का नाश करनेवाला है । अन्य सम्पूर्ण द्रव्य आम, वात, श्लेष्म, कीटाणु, विष, रक्तदोष, कोष्ठबद्धता, विबंध, अर्श, ग्रहणी विकार आदि रोगों का नाश करते है ।

'देवदार्वासव' स्निग्ध, ऊष्ण, आम पाचक, ग्रहणीदोष नाशक, वातानुलोमक, वात–कफज अर्श नाशक, विबंध, मूत्रकृच्छ्र और अन्त्र शैथिल्य नाशक है ।

इसका प्रयोग वात-कफज प्रमेह, वातोदर, वात-कफज अर्श, वात-कफ और आमदोष, विकृत ग्रहणी तथा वात-कफ द्वारा उत्पन्न हुए वस्ति विकारों पर करना चाहिए।

पत्राङ्गासव [भा. भै. र. ४१४९]
(भै. र. । स्त्रीरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक स्वच्छ धूपित और घृतप्रलिप्त मटके मे २ द्रोण (६४ सेर) जल भरें। इसमे १। सेर द्राक्ष (मुनक्का), १ सेर धाय के फूलों का चूर्ण, ६। सेर खांड और ३ सेर २ छटांक मधु मिलादें।

कल्क द्रव्यः—पत्रांग, खैर सार, वासा, सेमल के फूल, खरैटी, शुद्ध भिलावा, दोनो प्रकार की सारिवा, गुडहल की कलियां, आम की गुठली, दारुहल्दी, चिरायता, पोस्त के फल, जीरा, लौह, रसौत, वेलगिरी, भांगरा, दालचीनी, केशर और लौंग प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले लें। सब का सूक्ष्म चूर्ण बनावें और उपरोक्त मटके मे डालकर, मटके को भली प्रकार हिलादे जिससे सब द्रव्य जल मे मिश्रित हो जांय। अब मटके के मुख का संधान करके उसे गढे में निर्वात सिद्धि के लिए दबा दे। १ मास पश्चात औषध को निकालकर छानकर स्वच्छ शीशियों मे भरकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः— १। से २॥ तोला। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से पीडा युक्त श्वेत, रक्त, कृष्ण और पीत (सब प्रकार के) प्रदर तथा ज्वर, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि और अरुचि नष्ट होती है।

सं. वि.—पत्राङ्ग (पतंग) मधुर और शीतल है। यह पित्त, कफ, व्रण, रक्तस्राव और दाह का नाश करनेवाला है।

अन्य द्रव्यः—वात-पित्त-कफ नाशक, रक्तशोधक, रक्तरोधक, ज्वर-दाह नाशक, पाचक और शरीर पोषक है।

यह आसव उदर तथा गर्भाशय की कला के शोथ, क्षोभ और शोष का नाश करनेवाला, कोष्ठशोधक, पाचक, वात-पित्त नाशक, श्लेष्म शामक और श्लेष्मकालओ को सशक्त करके उनको दुष्टस्रावो के दोष से मुक्त करनेवाला है।

इसके सेवन से सब प्रकार के प्रदर, दाह, ज्वर, शोथ, पाण्डु, मन्दाग्नि और अरुचि का नाश होता है।

पलाश पुष्पासव

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

काथ्य द्रव्यः—पलाश पुष्प (ढाक के फूल अर्थात केसु) ६। सेर, मंजिष्ठा ६२॥ तोला, दर्भ (दाभ) ६२॥ तोला, पुनर्नवा ६२॥ तोला, गोखरू ६२॥ तोला, वरूणा-त्वक ६२॥ तोला, त्रिफला ६२॥ तोला। प्रत्येक द्रव्य को अधकुटा करें और सबको एकत्र मिलालें।

काथ के लिए जल—२५६ सेर। क्वाथ्य द्रव्यों को (२५६ सेर) जल में चतुर्थांश अवशेष पर्यन्त पकावें।

अवशेष—६४ सेर

अवशिष्ट क्वाथ को छान कर, ठंडा करलें और फिर उसे स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके में भर दें। फिर इसमे प्रक्षेप द्रव्य और कल्क द्रव्यों को मिलावे।

प्रक्षेप द्रव्य—द्राक्ष ३ सेर १० तोले, गुड १२॥ सेर, धाय के फूलों का चूर्ण १॥ सेर तथा यवक्षार ६। तोला।

कल्क द्रव्य—तज, नागकेशर और तमाल पत्र। प्रत्येक द्रव्य ५—५ तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावें और सबको एकत्रित करें।

मटके में भरे क्वाथ मे प्रक्षेप द्रव्य और कल्क द्रव्यों को डाल कर मटके को हिलाकर द्रव्यो को क्वाथ मे मिश्रित करदें। तत्पश्चात मटके के मुख का भलीभांति संधान करके उसे गढे में दबा दे। १ मास पश्चात् निकाल कर औषध को छान लें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१। से २॥ तोला। यथावश्यक समय पर जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह 'पलाश पुष्पासव' अश्मरी, मूत्र शर्करा, वृक्ककुप्पी शोथ तथा कोथ, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि रोगों का नाश करता है।

सं. वि.—यह औषध मूत्रल, कोष्ठशोधक, शोथ नाशक, दाहनाशक, अग्निवर्द्धक और रक्तशोधक है। इसके सेवन से दीर्घकाल से उत्पन्न हुए मूत्र मार्ग के अवरोधजन्य विकार यथा—मूत्राशय अश्मरि, वृक नलिकाश्मरि, वृक्काश्मरि, वृक्क—कुप्पी—प्रदाह तथा मूत्राघात और मूच्छकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं।

मूत्रावरोध के कारण उत्पन्न हुए उक्त दोष, त्वक् दोष, अजीर्ण, यकृद—प्लीहा विकार तथा आमाशय के विकार भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते है।

वृक्क शोथ की प्रारम्भिक अवस्था में इसका सेवन लाभकारी होता है, दाह और शोथ युक्त वृक्क विकार भी नष्ट हो जाते है।

पुनर्नवासव [भा. भै. र. ४१५६]

(भै. र. । शोथा, ग. नि. । आसवा. ६; यो. र. । शोथ; चं. सं. । चि. आ. ११, बृ. नि. र. । शोथ.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—सफेद और लाल पुनर्नवा, दोनो प्रकार के पाठा, दन्तीमूल, गिलोय और चीतामूल प्रत्येक १०-१० तोले तथा कटेली १५ तोले। सबको एकत्र कूट लें।

जल—१२८ सेर

क्वाथ्य द्रव्यों को जल में पकावें। चतुर्थांश जलीयांश रहने तक पकाकर उसे छान ले।

अवशिष्ट—३२ सेर

क्वाथ (अवशिष्ट) के ठंडे होने पर उसमें १२॥ सेर गुड और २ सेर मधु मिलावें। इस मिश्रित क्वाथ को शुद्ध, धूपित और घृत प्रलिप्त मटके में भरकर, उसका मुख बंद करके गढे में अनाज मे दबाकर रख लें। एक मास पश्चात निकालकर और छानकर उसमें कल्क द्रव्यों को मिलादें।

कल्क द्रव्य—नागकेशर, दालचीनी, इलायची, कालीमिर्च, सुगन्धबाला और तेजपात। प्रत्येक द्रव्य को २॥-२॥ तोला लेकर उनका सूक्ष्म चूर्ण बनावे। कल्क द्रव्यों को मिलाकर पुनः मटके में भरकर और उसका संधान करके रखदें और १०-१५ दिन पश्चात निकाल कर प्रयोग में लावें।

मात्राः—१। से २॥ तोला। जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे पुराना हो जाने पर छानकर सेवन करने से हृद्रोग, पाण्डु, प्रवृद्ध शोथ, प्लीहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगंदर, अर्श, उदररोग, खांसी, श्वास, संग्रहणी, कुष्ठ, कण्डु, शाखाश्रित वायु, मलबद्धता, हिक्का, किलास, और हलीमक नष्ट होते है।

सं. वि.—शोथ और शोथजन्य अन्य उपद्रवों के नाश के लिए पुनर्नवा और इस आसव के अन्य क्वाथ्य द्रव्य सभी उपयुक्त और प्रशस्त हैं। उदर शोथ या तो यकृद्-प्लीहा की अधिक परिवर्द्धित अवस्था में होता है या अन्त्रावरोध से। जलोदर वृक्कशोथ अथवा उग्र और नूतन उदरच्छद कला के दुष्ट विकार के कारण होता है। यह आसव जलीयांश को मूत्रल और विरेचक होने के कारण निकाल देता है और क्योंकि पुनर्नवा, गिलोय, दन्तीमूल, चित्रकमूल आदि सभी द्रव्य आमनाशक, यकृद्-प्लीहा विकार नाशक और वातानुलोमक, श्लेष्मकला दोषहारक और अन्त्र तथा उदर के अन्य अंगो की निष्क्रियता को नष्ट करनेवाले है, अतः इसके सेवन से शोथोत्पादक कारणों का नाश हो जाता है।

हृदयवृद्धि, हृदयस्फीति और हृदावसाद के शोथ को भी यह मूत्रल होने के कारण नष्ट करता है, परन्तु यदि इसके साथ हृद्रोग नाशक अन्य द्रव्यो का सेवन न कराया जाय तो शोथ का पुनरावर्तन सर्वथा सम्भव है।

वृक्कजन्य शोथ मे भी यह मूत्रल और वृक्ककला तथा वृक्क अन्तर्तन्तुगत विकारों को नष्ट करनेवाली होने के कारण उपयोगी है। वृक्कजन्य शोथ में इसका दीर्घकाल तक सेवन करने से सम्भवतः रोग का पुनरावर्तन नहीं होता।

शाथ के कारण होनेवाले मूत्र, अरुचि, प्रमेह, अर्श, भगंदर, श्वास, कुष्ट, संग्रहणी और अन्य रोगो का भी इसके सेवन से शोथ के साथ २ नाश हो जाता है।

यह एकाङ्ग या सर्वाङ्ग शोथ के लिए उपयुक्त श्रेष्ठ औषध है।

भृङ्गराजासव [भा. भै र. ४९०२]

(ग. नि. । आसवा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक शुद्ध, गंध धूपित और घृत लिप्त मटके में ३२ सेर भांगरे का रस भरकर उसमे १२॥ सेर गुड और ०॥ सेर हैड का चूर्ण मिलावें। मटके का भली प्रकार संधान करके उसे गढे में दवा दे।

१५ दिन पश्चात मटके को निकालें और उसके मुख को खोलकर औषधि को छानकर फिर उसमें भरदे तथा उसमें पीपल, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येक का १०–१० तोले चूर्ण डालकर पुनः उसका मुख वद कर दें और गढे मे दबा दें। १५ दिन पश्चात फिर मटके को निकालें और औषध को छानकर साफ–सुथरी शीशियों में भरकर रखदे।

मात्राः—१। तोले से २॥ तोले। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से धातुक्षय और पांच प्रकार की खांसी नष्ट होती है। यह कृश मनुष्यो को अत्यन्त पुष्ट कर देता है। यह बलकारक और कामोद्दीपक है। इसके सेवन से वंध्या स्त्री पुत्रवती होती है।

सं. वि.—भांगरा कटु, तिक्त, रूक्ष, ऊष्ण, वात–कफ नाशक, केश पोषक, त्वक्पुष्टि कर; कृमि, श्वास, शोथ, पाण्डुरोग का नाश करनेवाला और रसायन है। इसके उपयोग से दन्तरोग, कुष्ट, नेत्रदोष और शिरोरोग का नाश होता है। यह बलकारक है।

भृङ्गराज की तरह भृङ्गराजासव का प्रयोग शरीर की कान्ति वढाने के लिए किया जा

सकता है। यह रासायनिक क्रिया द्वारा दीर्घकाल के प्रयोग से बालों को काले बनाता है। इसके प्रयोग से अशक्त श्लेष्मकलाएं बलवान बनकर पाचक और रञ्जक रसों की उत्पत्ति करती हैं। इसके सेवन से पुष्ट बनी श्लेष्मकलाएं अपने २ स्थानो को शक्ति प्रदान करती है और उन अंगों की दूषित क्रियाओं का नाश करती है, इस प्रकार यह श्वास–कास, शिरोरोग, नेत्र विकार, दन्तरोग आदि का नाश करता है।

भृङ्गराज योनिविकारों के लिए बहुत ही हितकर है। भृङ्गराजासव के सेवन से योनिदोष नष्ट होते है। यह गर्भाशय की श्लेष्मकला के दोषों को नष्ट करता है, गर्भाशय के शोथ, शैथिल्य और दौर्बल्य को नष्ट करता है। इसके सेवन से गर्भाशय की दीवार का पोषण होता है। यह डिम्बग्रन्थियों की पुष्टि करता है और नष्टार्तवा मे आर्तव की उत्पत्ति करता है।

भृङ्गराजासव रसायन है। इसके सेवन से वीर्यग्रन्थियो में शक्ति उत्पन्न होती हैं। दीर्घ काल तक इसका सेवन करने से नपुंसकता नष्ट होती है।

बिल्वासव

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—अपक्व बिल्व फल की मज्जा १२॥ सेर लेकर २०० सेर पानी मे उबाले। जब उबलते २ चतुर्थांश अर्थात ५० सेर रह जाय तब उसे उतारकर छान ले और एक स्वच्छ, गंध धूपित तथा घृत लिप्त मटके मे भरले। इस क्वाथ में १८॥। सेर गुड, धाय के फूलों का चूर्ण २॥ सेर, नागकेशर १ सेर, कालीमिर्च ०॥ सेर, लौंग ०॥ सेर और कर्पूर १० तोला डाले। मटके को हिलाकर सबको भलीभांति क्वाथ मे मिलादे तथा मटके का मुख कपडमिट्टी से बंद करके उसे गढे मे दबादे। १ मास पश्चात निकालकर औषध को छानकर प्रयोग मे लावे।

मात्रा:—१॥ से २॥ तोला। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह पुरातन संग्रहणी, अतिसार, आमदोष, अन्त्रशैथिल्य, आमाजीर्ण आदि के लिए उपयोगी है।

सं. वि.—बिल्व की अपक्व मज्जा शोषक है। इसका प्रयोग पुरातन संग्रहणी, प्रवाहिका, आमसंग्रह आदि मे किया जाता है। ऐसी अपक्व मज्जा से निर्मित यह औषध शिथिल अन्त्र को पुष्टि द्वारा सक्रिय करती है, आमदोष का नाश करती है, पाचन शक्ति को बढाती है और ग्रहणि दोष की सभी अवस्थाओं मे प्रयोग मे लाई जाती है।

मृगमदासव [भा. भै. र. ५२३९]
(र. रा. सुं. । भै. र. । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक कांच के पात्र मे ५० पल (६। सेर) मृत-संजीवनी सुरा अथवा मद्यार्क (Rectified Spirit) भरकर उसमें २० तोले कस्तूरी मिलालें, तत्पश्चात उसमें ३ सेर १० तोले मधु, ३ सेर १० तोले पानी तथा काली मिर्च, लौंग, जायफल, पीपर और दालचीनी प्रत्येक का १०-१० तोला सूक्ष्म चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित कर पात्र मे डालदे।

पात्र का मुख बंद करके उसे सिद्धि के लिए सुरक्षित रख दे। एक मास पश्चात निकाल कर औषध को छानकर शीशियो में भरकर रख ले।

मात्राः—१० बूंद से ०॥ तोले तक कोष्ठबल को देखकर प्रयुक्त करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह आसव विषूचिका, हिक्का और सन्निपात ज्वर को नष्ट करता है।

सं. वि.ः—कस्तूरी—वमन, दुर्गन्ध, रक्तपित्त और कफनाशक है। यह कटु, तिक्त, ऊष्ण, शुक्रवर्द्धक, गुरु, शीतनाशक तथा वात और शोषनाशक है।

मद्यार्क (Rectified Sprit)—जंतुघ्न, तन्तु संकोचक, प्रसादक, संज्ञानाशक, जलीयांश शोषक, उत्तेजक, त्वक्दाहक, हृदयोत्तेजक, क्षुधावर्द्धक, वातानुलोमक, आमाशय-कला उत्तेजक, रक्तवाहनियो को उत्तेजना देनेवाला, दीर्घकाल तक प्रयुक्त किया जाय तो यकृद् तन्तुनाशक तथा यकृद् का वसामय परिवर्तन करनेवाला, पाचक, ज्वर नाशक, परिश्रान्ति नाशक सामान्य मात्रा मे वातनाडी उत्तेजक तथा अधिक मात्रा मे अतिनिन्द्रा और मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाला तथा सहज मूत्रल है।

युक्तिपूर्वक प्रयुक्त 'मृगमदासव' शरीर मे उत्तेजना पैदा करता है, अन्त्र की शिथिलता को दूर करता है, पाचक अग्नि को बढाता है, हृदय को उत्तेजित कर रक्त परिभ्रमण की वृद्धि करता है तथा हृदय को अवसाद से रोकता है। क्षीण ऊष्मा और शिथिल गात्र को रक्त परिभ्रमण द्वारा सतेज रखता है तथा अपनी अग्नि द्वारा क्रिया की वृद्धि करके मलो का परिपाक करता है।

यह ज्वर को नाश करनेवाला, संज्ञावाहनियो को सतेज कर मूर्च्छा को नष्ट करनेवाला, आमाशय, हृदय तथा श्वास-यन्त्रों को उत्तेजित कर हिक्का आदि को रोकनेवाला और मूत्र लानेवाला है।

विषूचिका की आक्षेपावस्था, सन्निपातावस्था, वृक्कावसादावस्था तथा गात्रकम्प और

मूर्च्छावस्था में भी इसका प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होता है। इसका प्रयोग कराते ही आक्षेप का नाश होता है, ऊष्मा की वृद्धि होती है और आमाशय तथा अन्त्र की श्लेष्मकलाओं को उत्तेजना मिलते ही पाचक रसो की उत्पत्ति होने लगती है।

यह औषध वातानुलोमक, ज्वरनाशक, मूत्रल, पाचक, शीतनाशक, आक्षेपघ्न तथा दौर्बल्य नाशक और उत्तेजक है।

रोहीतकासव [भा. भै. र. ५९७२]

(गदनिग्रह.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—६। सेर रुहेडे की छाल को ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर क्वाथ तैयार हो जाय (चतुर्थांश जल अवशेष रहे) तब उसे उतारकर छानलें।

इस क्वाथ मे ६। सेर गुड, ५ तोले त्रिफला चूर्ण, १५ तोले धाय के फूलों का चूर्ण और ५ तोले पञ्चकोल का चूर्ण मिलावे। तत्पश्चात् इस क्वाथ को शुद्ध, गंधधूपित और घृत से चिकने किए हुए मटके मे भरकर उसका संधान करें और गढे मे दवा दे। १५ दिन पश्चात् औषध को निकालकर छानले और प्रयोगार्थ साफ-सुथरी शीशियों मे भरकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—०॥ से १। तोला। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से ज्वर, गुल्म, अर्श, प्लीहा, अस्थिग्रह और पाण्डु रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध कृमिविकार, प्लीहा-वृद्धि, गुल्म और व्रण नाशक है। यह वातानुलोमक, पाचक और सहज रेचक है। इसके सेवन से वात द्वारा उत्पन्न हुए नेत्र के विकार, यकृद्-प्लीहा विकार, पाण्डु रोग, अर्श और अस्थिग्रह आदि विकार नष्ट होते है।

जिन मानवों में अन्त्र की वातज विकृति हो और इसके कारण उन्हे यदा कदा उदर-शूल, अपचा तथा आध्मान आदि हो जाते हों उन्हे 'रोहीतकासव' का सेवन लाभप्रद रहता है।

जिन शिशुओं के क्रूर कोष्ठ हो और कृमि के उपद्रव हो जाते हो उन्हें 'रोहीतकासव' का सेवन कराना चाहिए।

लोध्रासव (रोध्रासव) [भा. भै. र. ५९६९]

(ग. नि.। आसवा. ६, वा. भ.। चि. अ. १२ प्रमेहा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्य—लोध्र, कचूर, पोखरमूल, इलायची, मूर्वा, वायविडङ्ग, त्रिफला, अजवायन,

चव्य, फूलप्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चीता मूल, पिप्पली मूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, कुडे की छाल, नखी, तेजपात, काली मिर्च और नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य १।-१। तोला लेकर सबको एकत्र अधकुटा करले।

जल—३२ सेर।

उपरोक्त क्वाथ्य द्रव्यो को जल मे मिलाकर चतुर्थांश अवशेष पर्यन्त पकावें। इस अवशिष्ट ८ सेर क्वाथ को छानकर ठंडा करें और ४ सेर मधु मिलालें। तदनन्तर इस मिश्रण को शुद्ध, स्वच्छ, घृत से चिकने किये हुए मटके मे भरे, मटके का मुख भलीभांति वंद करे और फिर उसे गढे में दवा दे। १५ दिन पश्चात् निकालकर औषध को छान लें और शीशियों मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से २ तोले। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह रोध्रासव कफ-पित्त-प्रमेह को शीघ्र नष्ट करता है (१०-१० तोले के प्रयोग से)। पाण्डु, अर्श, अरुचि, ग्रहणीदोष, किलास और विविध प्रकार के कुष्टो का भी इसके सेवन से नाश होता है।

सं. वि.—यह 'आसव' शोषक, संग्राही, कृमिनाशक, कोष्ठशोधक, वातानुलोमक, रक्तदोष नाशक, दाह, ज्वर, आम, अजीर्ण और रस की विकृति को दूर करनेवाला है। इसके सेवन से रक्त मे रञ्जन की वृद्धि होती है, आम, कफ, रसदोष, कृमि विकार, रक्तदोष और अन्त्रवात तथा अन्त्र शैथिल्य का नाश होता है।

अन्त्रदोषहारक होने के कारण यह प्रमेह, प्रदर, शोथ, पाण्डु, अरुचि आदि रोगो का सहज नाश करता है तथा उदर की श्लेष्मकलाओ के दोषो का नाश करता है।

लोहासव [भा. भै. र. ६३००]

(शा. सं. । ख. २ अ. १०; र. का धे. । पाण्डु. गुल्मा, यो. चि. म. । अ. ७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—एक घृत से चिकने किए हुए स्वच्छ मृत्तिका पात्र में ६४ सेर शुद्ध जल भरे और फिर उसमे चूर्ण किए हुए २०-२० तोले लोह, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, वायविडङ्ग, नागरमोथा और चीतामूल के मिश्रण को मिलावें। मटके को भलीभांति हिलावें, फिर उसमे १। सेर धाय के फूलो का चूर्ण, २ सेर मधु और ६। सेर गुड़ मिलादें तथा मटके के मुख को कपडमिट्टी से वंद करके उसे निर्वात सिद्धि के लिए गढे में दाब कर रखदें।

एक मास पश्चात मटके को निकाले और औषध को छानकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।
मात्रा:—१। सेर से २॥ तोले । जल मिलाकर, भोजनोपरांत ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—यह लोहासव अग्निवर्द्धक और पाण्डु, शोथ, गुल्म, उदररोग, अर्श, कुष्ठ, प्लीहारोग, कण्डू, कफ, श्वास, भगंदर, अरुचि, ग्रहणीरोग और हृद्रोग का नाश करता है ।

सं. वि.—यह औषध आमनाशक, कोष्ठशोधक, वातानुलोमक, कृमिनाशक, अग्निवर्द्धक तथा रक्तवर्द्धक है ।

दूषित पित्त द्वारा होनेवाले यकृद्-प्लीहा विकार, अजीर्ण, दाह, पाण्डु, रक्तहीनता, अम्लपित्त, अरुचि, अर्श, संग्रहणी आदि रोगो में यह विशेष लाभकारी है एवं शीतवीर्य है । रक्तवर्द्धक, शोथनाश, अम्लता शोषक तथा दाह, ज्वर और यकृत ऊष्मा द्वारा प्रनष्ट-क्रिया उदर, यकृद, प्लीहा तथा वृक्क की श्लेष्मकलाओं को स्वस्थ करता है, अत उदर के विकृत ऊष्मा विकारो मे लोहासव श्रेष्ठ काम करता है । यह पित्त, विष और कीटाणुजन्य ज्वरो की पश्चात् अवस्था मे रक्तवर्द्धन, दाहनाशन तथा अग्निवर्द्धन के लिए उपयोग मे लिया जाता है ।

———०———

वासासव (वासकासव) [भा. भै. र. ६८३५]

(यो. र., वृ. नि. र. । शोथा; गदनिग्रह । आसवा. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—१२॥ सेर वासे को कूटकर ६४ सेर पानी मे पकावे और १६ सेर शेष रहने पर उतारकर छानले । अब इस क्वाथ को स्वच्छ, गंधधूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरले । फिर उसमे ६। सेर गुड, ४० तोले धाय के फूल तथा ५-५ तोले दालचीनी, इलायची, तेजपात, केशर, कक्कोल और त्रिकटु का सूक्ष्म चूर्ण डालें और मटके को भली प्रकार हिलाकर उसका मुख कपडमिट्टी से बंद करके गढे मे दबादे । १५ दिन इस प्रकार निर्वात सिद्धि के पश्चात इसे निकालकर औषध को छानकर काम मे लावे ।
मात्रा:—१। से २॥ तोला । जल मिलाकर यथोचित समयानुसार ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—यह वासासव सब प्रकार के शोथों को नष्ट करता है ।

सं. वि.—वासा तिक्त, कटु, शीत, कासनाशक, पित्तशामक तथा कामला, ज्वर, श्वास, कास और क्षय को नष्ट करनेवाला है । यह रक्तपित्त, विवर्णता, कुष्ट, अरुचि, तृष्णा आदि को भी नष्ट करता है अत. 'वासकासव' कंठशोथ, श्वासनलिका शोथ एवं संकोच तथा आक्षेप नाशक और कास, श्वास, रक्तपित्त, हृद्दाह, वक्षदाह, उर.क्षत आदि विकारों का नाश करवाला है ।

शास्त्रकारने इसे "सर्वश्वयथु नाशनः" कहा है, इसका तात्पर्य यही है कि स्वररज्जु, कंठ और श्वास-कास-नलिका तथा फुप्फुस, फुप्फुसावर्ण और हृदयार्णव के पित्तजन्य शोथो को नष्ट करनेवाला है।

हरीतक्यासव [भा. भै. र. ८५५४]

(ग. नि. आसवा. ६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्य—हैड की बकली ०॥ सेर, आमला २ सेर, दशमूल ३ सेर १० तोले, पोखरमूल १॥ सेर ५ तोले, चीतामूल १॥ सेर ५ तोले, धमासा ६२॥ तोले, गिलोय १। सेर, इन्द्रायन की जड २५ तोले, खैर सार ४० तोले, बिजौरे की छाल २० तोले तथा मजीठ, मुल्हैठी, कूठ, कैथ की छाल, देवदारु, वायविडङ्ग, चव्य, लोध्र, भारंगी, एलाबालुक, नागरमोथा, पीपल, सुपारी, कचूर, पद्माख, फूलप्रियंगु, सारिवा, जटामांसी, नागकेशर, रेणुका, निसौत, हल्दी, रास्ना, मेढासींगी, पुनर्नवा, सोया, कुटकी और दन्तिमूल प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोले। सब द्रव्यों को कूटकर एकत्र मिलावे।

जल—क्वाथ्य द्रव्यों के योग का अष्टगुणा अर्थात लगभग १४ सेर का अष्टगुणा = ११२ सेर, अर्थात उपरोक्त क्वाथ्य द्रव्यों को ११२ सेर जल में पकावे और जब जल पकते २ चतुर्थांश अर्थात २८ सेर रह जाय तब उतारकर छानलें।

ठंडा होने पर इस क्वाथ को स्वच्छ, गंधधूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरले। इस क्वाथ मे ३॥ सेर द्राक्ष (मुनक्का) कूटकर डालें, १ सेर ७० तोले धाय के फूलो का चूर्ण मिलादे, २५ सेर गुड और २ सेर मधु मिश्रित करदें।

कल्क द्रव्य—पीपल का चूर्ण १० तोले तथा जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर-प्रत्येक का चूर्ण १।-१। तोले और कस्तूर १। तोले ले। सब द्रव्यों के चूर्णो को एकत्र मिलाले।

उपरोक्त मटके वाले मिश्रण मे कल्क द्रव्यो के चूर्ण को मिश्रित करे। मटके को भली प्रकार हिलाकर द्रव्यो का घोल सा बना दें।

मटके का मुख बंद करके गढे में निर्वात सिद्धि के लिए रख दे। १५ दिन पश्चात मटके का मुख खोल कर उसमे १॥ तोला निर्मली के बीजों का चूर्ण डालकर पुनः मटके का

संधान करके रखदें और फिर १५ दिन बाद निकाल कर औषध को छान कर प्रयोगार्थ शीशियों में भरकर रख लें।

मात्राः—१। से २॥ तोला। भोजनोपरांत, जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन करने से धातुक्षय, ५ प्रकार की खांसी, ६ प्रकार का अर्श, ८ प्रकार के उदर विकार, प्रमेह, अरुचि, पाण्डु, वातव्याधि, आम, श्वास, वमन, १८ प्रकार का कुष्ठ, शोष, शूल, भगंदर, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी का नाश होता है।

यह कृशों को पुष्ट करनेवाला और अत्यन्त बल-वीर्य और काम शक्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री का वन्ध्यत्व नष्ट होता है (वन्ध्या स्त्री को पुत्रदा है)।

सं. वि.:—यह आसव त्रिदोषशामक, कोष्ठशोधक, रक्तवर्द्धक, आमशोषक, वात-कफ नाशक, अग्निवर्द्धक, ज्वरघ्न और अन्त्र तथा कोष्ठगत ग्रन्थियों के विकारों को नष्ट करनेवाला है। इसके सेवन से आम संग्रह, आध्मान या कफाजीर्ण के कारण उत्पन्न हुई यकृदावर्ण, उदरच्छदाकला और अन्त्रकला शिथिलता, शोथ और जीर्णता नष्ट होती है। यह मल को पचाकर निकालता है तथा अर्श और अर्श के कारण होनेवाले गुदा तथा अन्त्र के विकारों को नष्ट करता है।

यह आसव रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेधा, अस्थि और शुक्र तथा आर्तव पर्यन्त सम्पूर्ण धातुओं का शोधन करता है, धात्वाग्नियों का पोषण कर शरीर को सशक्त और मस्तिष्क को पुष्ट करता है।

यह आसव रसायन है। दीर्घकाल तक सतत सेवन करने वाले इसके रसायन गुण का यथार्थ लाभ उठाते हैं। इसका सेवन करने वाला जरा के दोषों से निर्मुक्त रहता है, क्योंकि इसका सेवन करते शरीर मे दोषों का किसी स्थान पर संग्रह नहीं होता और ना ही उनके विकार शरीर को शक्तिहीन, क्षीण, शिथिल और आलस्य पूर्ण ही बनाते है। यह शरीर को मेद, तन्द्रा, अनिद्रा, मद, भ्रम, मूर्च्छा, रक्तचाप की हीनता या वृद्धि आदि रोगों से सुरक्षित रखता है।

अरिष्ट

अभयारिष्ट [भा. भै. र. १९१]

(चं सं. । चि. अ. १४ । अर्श)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—**क्वाथ्य द्रव्यः**—हैड आध सेर, आमले १ सेर,

कैथ का गूदा दशपल (५० तोले), इन्द्रवारुणी अर्द्धपल (२॥ तोला) तथा वायविडङ्ग, पीपल, लोध्र, काली मिर्च और एलावालुक प्रत्येक द्रव्य २–२ पल (१०–१० तोले) लें; सव द्रव्यों को जौकुटा करके एकत्र मिला लें।

जल—चार द्रोण (१२८ सेर).

क्वाध्य द्रव्यो के जौकुट चूर्ण को जल में पकाकर क्वाथ तैयार करें। ३२ सेर अवशिष्ट रहे तब उतार कर छान लें।

क्वाथ के ठंडे होने पर उसमें १२॥ सेर गुड मिला दे और फिर उसे स्वच्छ, गंध धूपित और घृत लिप्त मटके में भर ले। मटके का मुख कपडमिट्टी से बंद करें और उसे निर्वात सिद्धि के लिए गढे मे दबा दें।

१५ दिन के बाद जब अरिष्ट तैयार हो जाय तब उसे निकालकर छान लें और प्रयोगार्थ शीशियों मे भरकर सुरक्षित रखले।

मात्रा—१। से २॥ तोले तक। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस अरिष्ट को यथोचित मात्रा में सेवन करने से अर्श नष्ट होते है। यह ग्रहणि विकार, पाण्डु रोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, कुष्ट, शोथ और अरुचि का नाश करता है और बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि करता है। कामला, श्वित्र, कृमि, ग्रथि, अर्बुद, व्यङ्ग [झाई], राजयक्ष्मा और ज्वर का नाश करने के लिए यह सिद्ध औषध है।

सं. वि.—अभयारिष्ट उदर रोगो के लिए उत्तम औषध है। उदर ही अधिकतर विकारो का जन्म स्थान है। रस के साथ मिश्रित दूष्य विभिन्न स्थानो में विविध प्रकार की विकृतियो को उत्पन्न करते है। आमाशय मे संश्रित दूष्य हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, नासिका, शिरोरोग और शाखाओ के विकार उत्पन्न करते है। ग्रहणी मे ये संग्रहणी, ग्रहणी शोथ, ग्रहणिगत व्रण, छर्दि, हृल्लास, यकृद्शोथ, पाण्डु, कामला आदि अनेक रोग उत्पन्न करते है। पक्वाशय मे स्थित कोष्ठबद्धता, उपान्त्र प्रदाह, शूल, गुल्म, उदावर्त, अर्श, अन्त्रवृद्धि, प्रमेह आदि अनेक रोगो को जन्म देते है। रस रक्तादि द्वारा शाखाओ मे प्रविष्ट हो कर ये ही दुष्ट धमनी, शिरा, वातनाडी, मांसपेशी, कण्डरा, लसिका आदि मे कुष्ठ, किलास, शोथ, वातरक्त, विवर्णता आदि विकार उत्पन्न करते है। अभयारिष्ट अपने पाचक, आमशोषक, कोष्ठशोधक, दाह, व्रण, शोथ और क्षोभ नाशक गुणों के कारण इन द्रव्यो की उत्पत्ति ही नहीं होने देता और उत्पन्न हुए दूष्यो को नष्ट करके दोषो का संशमन करता है अतः यह उदर के विकारों से उत्पन्न होनेवाले रोग और उनके अनुबंधियो का नाश करता है।

अर्श के लिए यह औषध अप्रमेय है। इसके सेवन से गुदवलियों के शोथ का नाश होता है, गुदांकुर नष्ट होते हैं और उदरदाह, कोष्ठबद्धता, अजीर्ण आदि का सहज ही नाश हो जाता है।

यकृद, प्लीहा, गुल्म, शूल और अजीर्णजन्य अन्य विकारों में भी यह समान लाभकारी है। जीर्णज्वर, शरीर दाह, त ह और पित्तजन्य रक्त विकारों के लिए यह श्रेष्ट औषध है।

इसका नित्य सेवन करनेवाले रोगों से मुक्त रहते हैं इतना नहीं बल्कि वे सर्वदा सुखी, अजर जीवन व्यतीत करते हैं। इसके सेवन करनेवाले को महामारियों का भी भय नहीं रहता।

अर्जुनारिष्ट (पार्थाद्यारिष्ट) [भा- भै. र. ४१५० [
(भै. र. । हृद्रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्य—अर्जुन की छाल ६। सेर, द्राक्षा (मुनक्का) ३ सेर १० तोले तथा महुवे के फूल २० पल (१। सेर) लेकर सबको एकत्र कूट लें।

जल—४ द्रोण (१२८) सेर।

क्वाथ्य द्रव्यो को जलमे पकाकर क्वाथ तैयार करें। ३२ सेर जल अवशिष्ट रहने पर उतारकर छानले। क्वाथ के शीतल होने पर उसे घृत से चिकने किए हुए स्वच्छ मटके में भरलें। अब इसमें १। सेर धाय के फूलों का चूर्ण और ६। सेर गुड मिलाकर मटके को भलीभांति हिलाकर प्रक्षिप्त द्रव्यो को क्वाथ मे मिला दे। मटके का मुख कपडमिट्टी से बंद करके उसे निर्वात सिद्धि के लिए गढे मे दबा दे। १ मास पश्चात औषध को निकाल कर छान लें और स्वच्छ शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१। से २।। तोला। भोजनोपरांत, जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह अरिष्ट हृदय और फुफ्फुस के समस्त रोगो को नष्ट करता और बल-वीर्य बढाता है।

सं. त्रि.—अर्जुन हृद्रोगो के लिए कीर्ति सम्पन औषध है। इसका अनेक रूप मे सेवन किया जाता है। धमनियों और रक्तवाहनियों मे अधिक ऊष्मा का प्रवेश हो, रक्त अधिक तरल और पोषक गुण विहीन हो गया हो, धमनि और शिराओं की दीवारों मे शिथिलता आ गई हो और हृदय, धमनी एव शिराओ में वातजन्य अवरोध या रक्तदोषजन्य अवरोध हो वहां पर अर्जुनारिष्ट का प्रयोग बहुत ही लाभप्रद होता है।

अर्जुनारिष्ट हृदय की गति को सर्वदा सम्पन्न रखता है। हृदावसाद, हृन्मांस कृच्छता, हृदमंदता, हृदावर्ण शोथ, क्षोभ और दाह मे इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होता है।

रक्तचाप की क्षीणता (Low Blood Pressure) मे अर्जुनारिष्ट का सतत सेवन शक्तिवर्द्धक, पोपक, श्रम, मूर्च्छा, संतापनाशक और आनन्दप्रद होता है।

यह जैसे हृदय की मन्दगति को बढाता है वैसे ही हृदय की अनैच्छिक एवं परिवर्द्धित गति को सम करता है। इसके सेवन से रक्तचाप वृद्धि (High Blood Pressure) में विकार की सम्भावना नहीं होती, बल्कि हृदय की पुष्टि होती है। यह नाडियो का भी पोषण करता है।

कास, श्वास, क्षय, उरःक्षत, हृदावसाद, श्वास–कृच्छता और हृदय तथा फुफ्फुस की दुर्बलता मे इसका प्रयोग लाभकारी है।

अमृतारिष्ट [भा. भै. र. १९५]

(आ. वे. सं. । ज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः–गिलोय ६। सेर और दशमूल ६। सेर, दोनो को जौकुटा करले।

जल–४ द्रोण (१२८ सेर)।

प्रक्षेप द्रव्य–गुड १८॥ सेर।

कल्क द्रव्यः–जीरा १ सेर, पित्तपापडा १० तोले, सप्तपर्ण की छाल, त्रिकुटा, नागरमोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस और इन्द्रजौ, प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ५–५ तोले लेकर क्वाथ्य द्रव्यो को जल (१२८) सेर में उबाले। जब चतुर्थांश (३२ सेर) जलीयांश अवशिष्ट रहे तब क्वाथ को उतार कर छानलें। क्वाथ के ठंडे होने पर उसे स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके में भरले।

अब इस क्वाथ मे प्रक्षेप द्रव्य (गुड १८॥ सेर) मिला दे और तदनन्तर उसमें कल्क द्रव्यों के मिश्रण को घोल दे।

मटके का मुख कपडमिट्टी द्वारा बंद करके उसे गढे में दबा दें। १ मास के बाद जब अरिष्ट तैयार हो जाय, औषध को निकाल कर छानलें और प्रयोगार्थ शीशियो में भरकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१। से २॥ तोले। यथोचित समय। जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह अमृतारिष्ट सब प्रकार के ज्वरो का नाश करता है।

सं. वि.—द्रव्य गुण निष्णातों ने गिलोय के अनेक गुण बताये है। इसके सेवन से ज्वर से लेकर भयंकर से भयंकर आमवात तक नष्ट होते है। इसका तात्पर्य यह है कि उदर विकारो के कारण अथवा खाद्य दोषो से उत्पन्न हुए रोगो में यह औषध लाभप्रद है और उनमें भी विशेषत: अन्त्र की ऐसी विकृतियों म जहां या तो अम्लत्व वृद्धि के कारण, दूषित विषसंग्रह से अथवा ग्रहणी के शोथ या क्षोभ के कारण आम का संग्रह होता हो और आम की वृद्धि से शरीर का अंग–प्रत्यंग शिथिल और निष्क्रिय हो जाता हो अथवा रक्त आम प्रधान रस से उत्पन्न होकर सम्पूर्ण शरीर की श्लेष्मकलाओं, कण्डराओ और संधियों में शोथ, शूल और जडता उत्पन्न कर देता हो।

गिलोय के ये गुण उसके आमनाशक, पाचक तथा रस, रक्त, मांस, मज्जा मेद, अस्थि आदि धातुशोधक और रसायन प्रभाव पर आश्रित है। गिलोय में कटु, तिक्त, और कषाय रस हैं, परन्तु उसका परिपाक मधुर होता है। यह संग्राही, लघु तथा ऊष्ण है। यह बल और अग्निवर्द्धक है।

गिलोय और दशमूल प्रधान 'अमृतारिष्ट' त्रिदोष शामक, आमपाचक, दाह, मेद, पाण्डुता, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, ज्वर, कृमि, प्रमेह, मेदज हृद और वक्ष की श्लेष्मकला शोथ तथा शीतजन्य श्वास, कास; आमजन्य हृद्रोग, वात कफज अर्श और शीत को नष्ट करनेवाला है। इसके सेवन से वात, कफज, द्वन्दज और त्रिदोषज्वर नष्ट होते है।

इसका सेवन एकाङ्ग और सर्वाङ्ग वात–कफज वेदना पर सर्वदा हितकर होता है।

अशोकारिष्ट [भा. भै. र. १९७]
(आ वे. सं.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—अशोक की जौकुट छाल ६। सेर।

जल—१२८ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—गुड १२॥ सेर और धाय के फूलो का चूर्ण १ सेर।

कल्क द्रव्य—जीरा, नागरमोथा, सोठ, दारुहल्दी, नीलोत्पल, त्रिफला, आम की गुठली की गिरी, काला जीरा, वासा और चन्दन। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ५–५ तोले लेकर एकत्र मिश्रित करले।

अशोक की छाल (६। सेर) को (१२८ सेर) जल मे पकावे। चतुर्थांश (३२ सेर) रहने पर उतार कर छानले और ठण्डा होने पर इस क्वाथ को स्वच्छ गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके में भरदे। इसमे गुड (१२॥ सेर) और धाय के फूलो का चूर्ण (१ सेर) और

कल्क द्रव्यो के मिश्रित चूर्ण को मिलादे। मटके के मुख का संधान करके उसे गढे मे दवा दे। १ मास के पश्चात इसे निकाल कर औषध को छान कर स्वच्छ शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखलें।

मात्राः—१। से २॥ तोला। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से मासिक धर्म संबधी विकार, प्रदर, ज्वर, रक्तपित्त, अर्श, मन्दाग्नि, अरुचि, प्रमेह और शोथ (सूजन) का नाश होता है।

सं. वि.—अशोकत्वक् तिक्त, कषाय, ग्राही, वर्ण प्रसादक, शीतल, हृदय पोषक, पित्त-दाह नाशक, रक्तरोधक, कृमि नाशक तथा गुल्म, शूल और उदर आध्मान नाशक है।

'अशोकारिष्ट' की क्रिया उदर और जरायु की श्लेष्मकलाओ पर विशेष होती है। यह दाह और पित्तजन्य शोथ का नाश करके उदर और गर्भाशय को सक्रिय और विकार विहीन करता है। उदरविकार नाशक होने के कारण यह वातदोष नाशक, वीर्य प्रणालिका, डिम्बग्रन्थि और डिम्बकोष तथा शुक्राशय के शोथ को नष्ट करता है। इसका सेवन स्त्री पुरुषों को समान हितकर है।

स्त्रियों मे यह गर्भाशयकला शोथ, गर्भाशय शोथ, दाह, व्रण और क्षोभ का नाश करता है तथा डिम्बशूल, ऋतुशूल और जरायु शोथ शूल नाशक है। इसके सेवन से अति ऋतुस्राव, रक्तप्रदर और वस्तिदाह का नाश होता है।

पुरुषो में यह वस्तिशोथ, आमवात, पुरुष ग्रन्थिशोथ, इन्द्रियगत व्रण, शोथ और दाह का नाश करता है।

यह औषध संग्राही, रक्तरोधक, शोधक और दाह तथा स्राव नाशक है।

अश्वगन्धारिष्ट [भा. भै. र. १९८]
(भै. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्य—असगन्ध ३ सेर १० तोला, सफेद मूसली १। सेर, मञ्जिष्ठा, हैड, दारुहल्दी, हल्दी, मुल्हैठी, रास्ना, विदारीकंद, अर्जुन की छाल, नागरमोथा और निसोत प्रत्येक ५०-५० तोले तथा अनन्तमूल, काली निसोत, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, बच और चित्रकमूल प्रत्येक ४०-४० तोले ले। सब द्रव्यो को अधकुटा करके एकत्र मिलाले।

जल—आठ द्रोण (२५६ सेर)।

प्रक्षेप द्रव्य—धाय के फूलो का चूर्ण १ सेर और गुड १८॥ सेर।

कल्क द्रव्य–त्रिकटु १५ तोले, त्रिजात (तेजपात, दालचीनी, इलायची) २० तोले, फूलप्रियंगु २० तोले, नागकेशर १० तोले, प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाले।

क्वाथ्य द्रव्यो को २५६ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश अवशिष्ट रहे (शास्त्र 'द्रोणशेषे कषाये' कहता है अर्थात ३२ सेर जल रखने का आदेश है परन्तु ऐसा करने से क्वाथ बहुत कम रह जायगा, अतः) तब उतार कर छान ले और ठण्डा होने पर स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरकर उसमे प्रक्षेप द्रव्य और कल्क द्रव्यो को मिश्रित करके मटके के मुख का भली प्रकार संधान करके गढे मे दबादे। १ मास पश्चात निकाल कर औषध को छानकर प्रयोगार्थ शीशियो मे भरकर सुरक्षित रखले।

मात्राः—१। से २॥ तोला। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस अरिष्ट को प्रतिदिन २॥ तोले की मात्रा में सेवन करने से मूर्च्छा, अपस्मार, शोष, दारुण उन्माद, कृशता, अर्श, अग्निमान्द्य और वातज रोगो का नाश होता है।

सं. वि.ः—यह अरिष्ट वीर्यवर्द्धक, रक्तशोधक, रक्तवर्द्धक, वातनाडी पोषक, हृद्य, दाह नाशक, अग्निवर्द्धक और कोष्ठशोधक है। इसके सेवन से वातदाह, प्रमेह, वीर्यस्राव, शरीरदाह, भ्रम, मूर्च्छा, मस्तिष्क दौर्बल्य और ओजक्षय का नाश होता है।

अश्वगंधारिष्ट का सेवन रक्तचाप की वृद्धि मे भी लाभप्रद है। इसके सेवन से शिरा और धमनियो की ऊष्माजन्य विकृति नष्ट होती है तथा हृदय को पुष्टि प्राप्त होती है। यह शरीर पोषक होने से अपतर्पण जन्य विकारों मे सर्वदा लाभप्रद है।

कुटजारिष्ट [भा. भै. र. ८९२]

(भै. र. । अति.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—कुडे की छाल ६। सेर, द्राक्षा (मुनक्का) ३ सेर १० तोले, महुवे के फूल और खम्भारी ५०–५० तोला। सबको एकत्र कर अधकुटा करले।

जल–४ द्रोण (१२८ सेर)।

प्रक्षेप द्रव्य—धाय के फूलो का चूर्ण १। सेर और गुड ६। सेर।

क्वाथ्य द्रव्यो को १२८ सेर जलमे पकावे। ३२ सेर अवशेष रहने पर क्वाथ को ठण्डा करलें। फिर उसे स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरकर उसमे प्रक्षेप

द्रव्यो को मिलावें और मटके का भली प्रकार संधान करके गढे में दबा दें। १ मास पश्चात औषध को निकाल कर स्वच्छ शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखले।

मात्राः—१। से २।। तोला। यथावश्यक समय जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते है। यह अग्निवर्द्धक है। यह असाध्य ग्रहणी और रक्तातिसार में श्रेष्ठ है।

सं. वि.:—कुटज त्वक् कटु, तिक्त, शीत, रुक्ष और दीपन है। यह अर्श, अतिसार रक्तपित्त, आम, कफ, तृष्णा और कुष्ठ नाशक है।

कुटजारिष्ट पाचक, संग्राही, दाहनाशक, ज्वरघ्न, आम–कफ–वात नाशक, वातानुलोमक और अन्त्रशोथ, क्षोभ, शैथिल्य तथा अन्त्रकला जडता नाशक है। इसके सेवन से आमातिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श और संग्रहणी का नाश होता है। पुरातन संग्रहणी, जीर्ण प्रवाहिका, आम विकार और ग्रहणी तथा अन्त्र शैथिल्य के लिए यह उत्तम औषध है।

जीरकाद्यरिष्ट [भा. भै. र. २०६४]

(भै. र. । स्त्री.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१२।। सेर जीरे को चार द्रोण (१२८ सेर) पानी में पकावे। जब पकते पकते १ द्रोण (३२ सेर) जलीयांश अवशिष्ट रहे तब उसे उतारकर छानकर ठण्डा करले। ठण्डा होने पर क्वाथ को स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरलें। अब इसमे १८।।। गुड, १ सेर धाय के फूलो का चूर्ण, १० तोले सोंठ का चूर्ण और जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, चतुर्जात, अजवायन, कंकोल और लौंग इन कल्क द्रव्यो के ५–५ तोले मिश्रित चूर्ण को मिलाकर घडे को भली प्रकार हिलावें और फिर घडे का संधान करके निर्वात सिद्धि के लिए गढे मे दबा दे। १ मास पश्चात जब औषध का परिपाक हो जाय तब उसे निकालकर, छानकर, प्रयोगार्थ शीशियो मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१। से २।। तोले। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह 'जीरकाद्यरिष्ट' सूतिकारोग, संग्रहणी, अतिसार और जठराग्नि के विकारों को नष्ट करता है।

सं. वि.—पाचन के लिए प्रयुक्त होता जीरा दैनिक उपयोगी स्वादिष्ट मसाला पदार्थ है। यह कटु, ऊष्ण, वातनाशक, दीपन, गुल्म, आध्मान, अतिसार नाशक तथा ग्रहणी विकार और कृमि को नष्ट करनेवाला है। यह गर्भाशय शोधक, ज्वरनाशक, वृष्य, बल्य, रुचिकर, नेत्र हितकर और कफ नाशक है।

'जीरकाद्यरिष्ट' के सेवन से आम का शोषण, वायु का अनुलोमन, अग्नि की वृद्धि और प्रसूति पश्चात गर्भाशय मे संग्रहित और प्रकुपित दोषो का नाश होता है।

जिन मानवो में आमसंग्रह और अजीर्ण के कारण आम की उत्पत्ति तथा वातसंग्रह और उत्पत्ति होती हो और यदा कदा प्रवाहिका अथवा अतिसार हो जाता हो उनके लिए यह अरिष्ट बहुत ही उपयोगी है।

अन्त्र शैथिल्य, मन्दाग्नि और वात-कफाजीर्ण मे इसका प्रयोग सर्वदा प्रशस्त है।

दशमूलारिष्ट [भा. भै. र. ३१२०]

(नपु. । ता. ९; भै. र. । वाजी.; ग. नि, शा. सं. । आसवा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

(१) **क्वाथ्य द्रव्य—**(क) दशमूल (बिल्व, श्योनाक, खम्भारी, पाटला, अग्निमंथ, शालपर्णी पृश्नपर्णी, छोटी कटेली, बडी कटेली और गोखरू) का प्रत्येक द्रव्य ५-५ पल (२५-२५ तोले) अर्थात दशमूल **३ सेर १० तोले**। (ख) चित्रकमूल और पोखरमूल प्रत्येक २५-२५ पल (१२५-१२५ तोले) अर्थात दोनों समान भाग मिश्रित ३ सेर १० तोले। (ग) लोध्र और गिलोय २०-२० पल (१००-१०० तोले या १।-१। सेर), आमला १६ पल (१ सेर), धमासा १२ पल (६० तोले), खैरसार, विजयासार और हैड प्रत्येक ८-८ पल (०॥-०॥ सेर) अर्थात इन द्रव्यो का मिश्रण ५ सेर ६० तोले। (घ) कूठ, मंजिष्ठा, देवदारु, वायविडङ्ग, मुल्हैठी, भारंगी, कैथ का गूदा, बहेडा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, फूलप्रियंगु, सारिवा, कालाजीरा, निसोत, रेणुका, रास्ना, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया, पद्माख, नागकेशर, इन्द्रजव, काकडासिंगी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि प्रत्येक द्रव्य २-२ पल (१०-१० तोले) अर्थात ये ३५ द्रव्य ३५० तोले (४ सेर ३० तोले)। क+ख+ग+घ चारो विभागों के द्रव्यो का योग = ३ सेर १० तोले [क] ३ सेर १० तोले [ख] ५ सेर ६० तोले [ग] ४ सेर ३० तोले [घ] = १६ सेर ३० तोले।

क्वाथ बनाने के लिए जल-पचेदष्ट गुणे जले (द्रव्यो से आठ गुणे जल मे पकावे)= १४० सेर। उपरोक्त द्रव्यो के अधकुटे चूर्ण योग को १४० सेर जल मे पकावे।

अवशेष—चतुर्थांश शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत-चौथा भाग अवशिष्ट रहे तब ठण्डा करके मटके मे भरदे अर्थात ३५ सेर जल अवशेष रहे तब उतार कर छानलें और ठण्डा करके स्वच्छ, गंध धूपित और घृत लिप्त मटके मे भरले।

[२] क्वाथ्य द्रव्य—६४ पल (४ सेर) द्राक्ष (मुनक्का) लें।

क्वाथ बनाने के लिए जल—पचेन्नीरे चतुर्गुणे = १६ सेर। अर्थात ४ सेर मुनक्कों को १६ सेर जल में पकावे।

अवशेष—त्रिपाद् (¾) शेषं, शीतञ्च पूर्व क्वाथं शृतं क्षिपेत्। अर्थात तीन चतुर्थांश (१२ सेर) जलीयांश रहने पर क्वाथ को उतार, छान और ठण्डा करलें और १ नम्बर के क्वाथ वाले मटके मे डाल दे।

प्रक्षेप द्रव्य—मधु ३२ पल (२ सेर), गुड ४०० पल (२५ सेर) और धाय के फूलों का चूर्ण ३० पल (१ सेर ७० तोले) लेकर इन प्रक्षेप द्रव्यों को मटके मे उक्त मात्रा मे डालकर क्वाथ में घोल दें।

कल्क द्रव्य—कंकोल, सुगंधवाला, श्वेत चन्दन, जायफल, लवङ्ग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और पीपल प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण २—२ पल (१०—१० तोले) अर्थात कुल मिलाकर १। सेर चूर्ण उपरोक्त मटके मे और मिलादे। मटके को हिलाकर सब द्रव्यों को भलीप्रकार मिश्रित करे और फिर इसमे से एक चमची मे मिश्रित क्वाथ लेकर, उसमे ५ मासे कस्तूरी मिलाकर उसे मटके मे डाल दे। अब मटके के मुख का संधान करके उसे गढे म दबा दे।

एक मास पश्चात मटके को निकालकर औषध को छान ले और उसमे निर्मली के फलों का चूर्ण मिलाकर रखदें और फिर ४—५ दिन वाद अरिष्ट के स्वच्छ होने पर उसे पुनः छानकर स्वच्छ शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखें।

ज्ञातव्य—[१] जिस दशमूलारिष्ट मे कस्तूरी डाली जाती है उसे 'कस्तूरी युक्त' कह कर वेचते है। जिसमे कस्तूरी नहीं डाली जाती वह केवल दशमूलारिष्ट के नाम से वेचा जाता है।

दशमूलारिष्ट मे स्वर्णपत्र भी डाले जाते है और ऐसे दशमूलारिष्ट को 'स्वर्णयुक्त' चिन्हित करके वेचते है।

[२] आजकल निर्मली के फलो का चूर्ण डालने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि फिल्टर मशीन द्वारा द्रव्य को कुछ ही क्षणो मे स्वच्छ रूप मे प्राप्त किया जा सकता है।

शुद्ध स्वर्णपत्र और कस्तूरी दशमूलारिष्ट को फिल्टर करने के बाद डालें जायं तो अधिक युक्तियुक्त होगा। फिल्टर किए हुए दशमूलारिष्ट मे कस्तूरी और स्वर्णपत्र डालकर उसे कांच के वडे पात्र मे भरकर और डाट लगाकर १ मास तक निर्वात रक्खा रहने दे और तत्पश्चात प्रयोग में लावें। ऐसा करने के औषध मे वास्तविक स्वर्ण और कस्तूरी के गुण लभ्य हो सकेगे। कल्क द्रव्यों के साथ कस्तूरी या स्वर्ण डालने से स्वर्ण भारी होने से वह कल्क द्रव्यों

के अघुलनशील अंशों के साथ मटके की तली मे बैठ जायगा और इस प्रकार औषध-परिपाक-क्रिया काल में वह परिपाक क्रिया के क्षेत्र से दूर पड जायगा। यदि कस्तूरी को क्वाथ मे घोलकर न डाला जाय तो उसकी दशा भी स्वर्णपत्रवत् ही हो सकती है।

मात्राः— दशमूलारिष्ट—१। से २॥ तोले।

कस्तूरी युक्त दशमूलारिष्ट—०॥ से १। तोले।

स्वर्ण और कस्तूरी युक्त दशमूलारिष्ट—०। से १। तोले।

जल मिलाकर, भोजनोपरांत अथवा यथावश्यक समय प्रयोग मे लावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह 'दशमूलारिष्ट' ग्रहणी, अरुचि, शूल, श्वास, कास, भगंदर, वातव्याधि, क्षय, छर्दि, पाण्डुरोग, कामला, कुष्ट, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। यह कृशों को पुष्ट करता है तथा वंध्याओं को पुत्र प्रदान करता है। इसके सेवन से तेज, वीर्य और बल की वृद्धि होती है।

सं. वि.—यूं तो अकेला दशमूल ही त्रिदोष नाशक है। इसके सेवन से शीत, वात और कफ द्वारा उत्पन्न हुई अधिकतर व्याधियां नष्ट हो जाती है, इतना ही नहीं, बल्कि फुफ्फुस, हृदय, आमाशय और पक्वाशय मे सचित, प्रकुपित और स्थान-संश्रित दोष भी नष्ट हो जाते है तथा कास, श्वास, शिर शूल, तन्द्रा, शोथ, पार्श्व शूल, उरस्तोय, अरुचि, आमाशय-आक्षेप, प्रतिश्याय, पूतिनस्य आदि अनेक वात-कफज व्याधियां भी इसके सेवन से नष्ट होती है।

दशमूल वात—कफज अर्थात शीत, स्निग्ध, और रुक्षता जन्य व्याधियों के लिये श्रेष्ट औषध है। यह श्लेष्मकलाओं की जडता को नष्ट करता है, अति श्लेष्मकलास्राव का शोषण करता है, मेद ग्रन्थियों के दोषों का विनाश करता है और उदर की शिथिलता, शोथ और क्रिया—विषमता का नाश करता है तथा यकृद—प्लीहा की निर्बलता, शोथ और संकीर्णता को मिटाता है। पाचन की वृद्धि करके निष्क्रिय स्थानों और धातुओ मे अग्निवृद्धि करता है और गर्भाशय—श्लेष्मकला, उदरच्छदाकला, यकृदावर्ण, फुफ्फुसावर्ण, हृदयावर्ण, कंठ, नासिका और मुख स्थित श्लेष्मकलाओं का पोषण करके इन स्थानों मे नवीन शक्ति का संचार करता है।

इस अरिष्ट के अन्य द्रव्य भी दोषनाशक, कोष्टशोधक, धात्वग्निवर्द्धक, धातुओं के विकारों को नष्ट करनेवाले, रक्तवर्द्धक, वीर्य, बुद्धि, बल, वर्ण और ओज को बढानेवाले तथा जीर्णज्वर, कंठकण्डू, जीर्णाजीर्ण, शोथ, रक्तदोष, अर्श, क्षय, प्रमेह, अश्मरी आदि का नाश करनेवाले हैं।

'दशमूलारिष्ट' पोषक, रस, रक्त, मांस आदि धातुशोधक, रक्तवर्द्धक, आक्षेपनाशक, आम-शोषक, वात—कफ नाशक, पित्तशामक तथा वात—श्लेष्म द्वारा उत्पन्न हुई शरीर की विविध

विकृतिओ को नष्ट करता है। यह मेद और मेदजन्य विकारो को नष्ट करके मेद से विकृत हुई ग्रन्थियो को सक्रिय करता है। प्रसूता को इसके सेवन से पोषण मिलता है तथा उसके प्रसूत पूर्व और पश्चात के विकार नष्ट हो जाते है।

दन्त्यारिष्ट [भा. भै. र. ३११९]

(च. सं. । चि. अ. १४; ग. नि. । आसवा.; च. द । अर्शा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

काथ्य द्रव्य—दन्तीमूल, चीतामूल, लघु पञ्चमूल और बृहत् पञ्च मूल का प्रत्येक द्रव्य १-१ पल (५-५ तोले) तथा त्रिफला १५ तोले लेकर सबको एकत्र अधकुटा करलें।

काथ बनाने के लिए जल—१ द्रोण (३२ सेर)।

अधकुटे काथ्य द्रव्यों को उक्त प्रमाण मे लेकर ३२ सेर जल में पकावे। जब चौथा भाग (८ सेर) जलीयांश अवशिष्ट रहे तब उतारकर छान ले और ठंडा करके स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरले। इस क्वाथ मे ६। सेर गुड मिलादे और मटके का मुंह कपडमिट्टी से बंद करके उसे गढे मे दबा दे। १५ दिन बाद मटके को निकालकर औषध को छान ले और स्वच्छ शीशियों मे भरकर रख ले।

मात्राः—१। से २॥ तोला। भोजनोपरांत जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से अर्श, ग्रहणी, पाण्डु और अरुचि का नाश होता है। यह अग्निदीपक और वायु तथा मल का अनुलोमन करता है।

सं. वि.—उदर के कोष्ठबद्धता द्वारा होनेवाले रोगो के लिए दन्तिमूल श्रेष्ठ औषध है। यह मलशोधक, वातानुलोमक, शूल, अर्श और मलबद्धता का नाश करनेवाली है।

चित्रकमूल पाचक, आमशोषक और दोषानुलोमक है। दशमूल त्रिदोषनाशक तथा दाह, ज्वर, अर्श, आम और विषनाशक है।

दन्त्यारिष्ट कोष्ठशोधक, आमपाचक, क्षोभ, दाह, अजीर्ण, अन्त्र-क्रिया विषमतानाशक और अर्श, पाण्डु, ग्रहणीदोष तथा शोथनाशक है।

क्रूर कोष्ठवालो को इसका सतत सेवन बहुत ही लाभप्रद है। इसके सेवन से वातप्रधान उदररोगी रोग मुक्त हो जाते है और धीरे २ उनकी पाचन शक्ति बढ जाती है।

धात्र्यारिष्ट [भा. भै. र ३३०९]

(च. दं. । पाण्डु; वै. क. द्रु. । स्कं. २ । पाण्डु; च. सं. । चि. अ. १६]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—२ हजार आमलों को कूट कर उनका रस निकालें।

इस रस में रस का आठवां भाग मधु, १० तोले पीपल का चूर्ण तथा ३ सेर १० तोले खांड मिलालें। अब इस मिश्रण को अग्नि पर रखकर एक उबाल आने तक गरम करे और फिर ठंडा करके स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके में भरदे। मटके के मुख का भली प्रकार संधान करके उसे गढे मे दबा दे। १५ दिन पश्चात निकालकर औषध को छानले और साफ सुथरी शीशियो में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—०॥ से १। तोला। भोजनोपरांत अथवा यथावश्यक, समय जल मिलाकर पीवे।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से पाण्डु, कामला, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, कास, हिचकी, अरुचि और श्वासरोग का नाश होता है।

सं. वि.:—षड्रसयुक्त, त्रिदोष नाशक आमले का सर्वत्र खूब प्रयोग होता है। इस पोषक और दोषनाशक औषधि के रस के सेवन से अम्लपित्त, आमाशय क्षोभ, आमाशय आक्षेप, अजीर्ण, अतितृप्ति और मेदविकार सहज ही नष्ट हो जाते है। वातरक्त और शरीर क्षीणता के लिए यह श्रेष्ठ औषध है।

'धात्र्यारिष्ट' के सेवन से कफ, पित्त और वात विकार नष्ट होते है। आमाशय-क्षोभ के कारण अथवा अम्लता के कारण अथवा वातप्रतिलोम के कारण उत्पन्न हुए विकारो मे इसका उपयोग सर्वदा लाभप्रद होता है। हाथ-पैरो के फटने, वातरक्त, कामला, पाण्डु, हृद्रोग और जीर्णज्वर में यह प्रशस्त है।

श्लेष्मकला के दोषो के कारण अर्थात आक्षेप, शोष, कफवृद्धि और वातावरोध से होने वाले विकारो को यह श्लेष्मकला का पोषण करके नष्ट करता है अतः श्वास, कास, हिक्का और अरुचि मे यह लाभप्रद है।

पिप्पल्यारिष्ट [भा. भै. र. ४१५३]

(ग. नि. । आसवा ६, वृ. यो त । त ७६, यो. र. । क्षय, यो. त । त. २७)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

द्रव्यः—पीपल, लोध्र, काली मिर्च, पाठा, आमला, एलावालुक, चव्य, चित्रकमूल, वायविडङ्ग, सुपारी, खस, सफेद चन्दन, नागरमोथा, फूलप्रियगु, लवली फल, हल्दी, सौंफ, केवटीमोथा, तेजपात, दालचीनी, कूठ, तगर और दालचीनी प्रत्येक द्रव्य २॥-२॥ तोले तथा द्राक्ष (मुनक्का) ६० पल (३ सेर ६० तोले) ले। सब द्रव्यो को एकत्र अधकुटा करले।

जल-६४ सेर।

द्रव्यो के अधकुटे मिश्रण को ६४ सेर जल मे मिलाकर उसमे ५० तोले धाय के फूलो का चूर्ण और १८।।। सेर गुड मिलादे । अब इस मिश्रण को स्वच्छ, गंध धूपित और घृत से चिकने मटके मे भरले । मटके का मुख कपडमिट्टी से बंद करके उसे गढे में दबा दें । २ मास पश्चात् औषध के सिद्ध होने पर उसे निकालकर छानले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१। से २।। तोला । भोजनोपरांत, जल मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से संग्रहणी, पाण्डु, अर्श, कास, गुल्म, उदररोग, ज्वर और अरुचि का नाश होता है ।

सं. वि.—यह आसव आमपाचक, अग्निवर्द्धक, वात–कफ नाशक, बल, पुष्टि और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से वात–कफ द्वारा उत्पन्न हुए उदर के विकार नष्ट होते है तथा पाचन की वृद्धि होती है ।

पुरातन ग्रहणी विकार में इसका सेवन सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होता है । यह विविध कोष्टाश्रित कफ और आम दोषो का विनाश करता है तथा श्वास–कास नलिकाओं का शोधन करता है।

बब्बूल्याद्यारिष्ट (बब्बुल्यासव) [भा. भै. र ४६९८]

(ग नि. । आसवा. ६, शा ध. । खं. २, अ. १०; भै. र. । अतिसारा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१२।। सेर बब्बूल की छाल को १२८ सेर पानी मे पकावे और जब ३२ सेर पानी शेष रहे तब उसे छानकर, ठण्डा करके स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरले और उसमें १८।।। सेर गुड, १ सेर धाय के फूलों का चूर्ण तथा १० तोले पीपल का चूर्ण और ५–५ तोले जावित्री, लौंग, कंकोल, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और कालीमिर्च का चूर्ण मिलादे । मटके को भली प्रकार हिलाकर सब द्रव्यो को क्वाथ मे मिश्रित करदें । मटके का सधान करके उसे गढे में दाब दे । १ मास पश्चात औषध को निकालकर छानले और प्रयोगार्थ साफ-सुथरी शीशियो मे भरकर सुरक्षित रक्खे ।

मात्राः—१। से २।। तोला । भोजनोपरांत, जल मिलाकर ।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—'बब्बूल्यारिष्ट' के सेवन से क्षय, कुष्ठ, प्रमेह, कास और श्वास का नाश होता है ।

सं. वि.:—बबूल (कीकर) की छाल कषाय–रस प्रधान, ऊष्ण, कफ नाशक, कास नाशक; आम, रक्तातिसार, पित्तार्श तथा दाह नाशक है ।

'बब्बूल्याद्यारिष्ट' संकोचक, कफनाशक, श्लेष्मकला व्रण, शोथ, दाह तथा शैथिल्य नाशक

है। इसके सेवन से अन्त्र की श्लेष्मकलाओ की कफ और आमजन्य शिथिलता दूर होती है, निष्क्रिय पडे अन्त्रो मे शक्ति का संचार होता है तथा अर्श का नाश होता है।

यह औषध कफ, आम और पितजन्य श्लेष्मकला तथा श्लेष्मप्रधान नलिकाओं के विकारो मे उपयोगी है।

बलारिष्ट [भा. भै. र. ४६९९]
(भै. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—(१) बला (खरैटी) की जड ६। सेर लेकर उसे जौकुट करे और फिर ६४ सेर जल मे मिलाकर पकावे,। जब १६ सेर जलीयांश अवशेष रहे तब उतार कर छानले। क्वाथ को ठण्डा करके स्वच्छ, गंधधूपित और घृत से चिकने किए मटके मे भरलें।

(२) असगन्ध ६। सेर लेकर उसका बलामूल वत ६४ सेर जलमे १६ सेर अवशेष पर्यन्त क्राथ बनावे और उसे छान एव ठण्डा कर बला-क्वाथ वाले (उपरोक्त) मटके में डालदे।

अब इस मिश्रित क्वाथ मे १८॥ सेर गुड, १ सेर धाय के फूलो का चूर्ण, १०-१० तोले क्षीर-विदारी और अरण्ड की छाल का चूर्ण तथा रास्ना, इलायची, प्रसारणी, लौंग, खस और गोखरू प्रत्येक का ५-५ तोले एकत्र मिश्रित किया हुआ चूर्ण मिलादे। मटके को हिलाकर द्रव्यो को क्वाथ मे मिलादें। मटके का मुख कपडमिट्टी से बद करके उसे गढे मे दबा दे। एक मास पश्चात् औषध को निकाले और छान कर स्वच्छ-साफ-सुथरी शीशियो मे भरले।

मात्राः—१। से २॥ तोले। भोजन के बाद जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इसके सेवन से प्रबल वातव्याधि नष्ट होती है तथा बल, पुष्टि और अग्नि की वृद्धि होती है।

सं. वि.—बलाः—तिक्त, मधुर, पित्तातिसार नाशक, बल, वीर्य और पुष्टिवर्द्धक तथा कफ नाशक है।

अश्वगन्ध—तिक्त, बलवर्द्धक, वातनाशक. कास, श्वास क्षय, व्रणनाशक, वीर्यवर्द्धक और रसायन है।

'बलारिष्ट' वात-नाडी पोषक, कफ नाशक तथा स्रोत शोधक है। यह संतर्पक औषध है। इसके सेवन से वीर्य अभाव के कारण क्षीण हुए मनुष्यो मे शक्ति का संचार होता है, शोष का नाश होता है और शरीर की सम्पूर्ण ग्रन्थियो मे क्रिया की वृद्धि होती है। शोक, भ्रम और किंकर्तव्यविमूढता के कारण विकृत हुई मस्तिष्क की नाडियां इसके सतत सेवन से पुष्ट होकर पुनः शरीर संचालन के योग्य हो जाती है। दौर्बल्य, अति व्यवाय,

कृशता तथा विमूढता के कारण उत्पन्न हुए नाडियों के विकार इसके सेवन से नष्ट हो जाते है।

यह रक्तचाप की वृद्धि, भ्रम, मूर्च्छा, उत्क्लेश, मांस पीडा, श्वास-कास और शोष में लाभप्रद है।

रक्तशोधकारिष्ट [र तं. सा.]

बनावटः—अनन्तमूल ४० तोले, मुनक्का ४० तोले; उसवा, कचनार की छाल, खैर की छाल और चोपचीनी २०-२० तोले; छोटी कटेली, इन्द्रायण की जड, सिरस की छाल, मंजिष्टा, चिरायता, पित्तपापडा, गिलोय, मुण्डी, सरफोंका, उन्नाव, शतावरी, बबूल की छाल, जवासे की जड, देवदारु तथा नीम और बकायन की अन्तर छाल १०-१० तोले लेवे। सबको मिला जौकुट कर २५६० तोले जल मिलाकर क्वाथ करें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर, उतार मलकर छानले। शीतल होने पर गुड २॥ सेर, शहद १। सेर, धाय के फूल २४ तोले, रक्त चन्दन का चूर्ण १२ तोले तथा पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर २-२ तोले मिला, मुख मुद्रा करके एक मास रख देवें, फिर छान लेवे।

मात्राः—२ से ४ तोले दिन में २ बार समान जल मिलाकर लें।

उपयोग—यह अरिष्ट रक्त मे लीन कीटाणु और विष को जलाकर शुद्ध बनाता है। उपदंश के उपद्रव, लाल काले धब्बे, संधिवात, कुष्ठ, वातरक्त, रक्त विकार, फोडा, फुंसी आदि को १ मास में दूर करता है। [रसतन्त्र सार से उद्धृत]

सं. वि.—यह औषध अधिकतर शीतवीर्य, पोषक, शोथनाशक, दाहनाशक, रक्तशोधक, मूत्रल और कोष्टशोधक औषधों के योग से बनी है। इसके सेवन से शरीरदाह, रक्त की ऊष्णता तथा ऊष्णताजन्य विकारो से होनेवाले रोग नष्ट होते है। गण्डमाला, व्रण, कण्डू, कुष्ठ, विसर्प, दद्रु तथा अन्य क्षुद्र विकारों के लिए यह उपयोगी औषध है।

रक्त में कीटाणुओं के विष द्वारा तथा कीटाणुओ द्वारा होनेवाले विकार इसके सेवन से नष्ट होते है। यह ज्वर, दाह, तन्द्रा, भ्रम और आलस्य का नाश करती है। यह रक्तवर्द्धक और कोष्ठशोधक है।

त्वक्दोषों मे इसका सेवन वस्तुतः लाभप्रद होता है।

विडङ्गारिष्ट (विडङ्गासव) [भा. भै. र. ६८३६]

(ग नि। आस ६; भै र., यो र। व्रणशो., शा. ध.। खं. २, अ. १०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—वायविडङ्ग, पीपलामूल, रास्ना, कुडे की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, एलावालुक और आंवले प्रत्येक द्रव्य २५-२५ तोले ले। अर्थात इनका एकत्र जौकुट चूर्ण २॥ सेर ले।

क्वाथ बनाने के लिए जल—८ द्रोण (२५६ सेर)।

क्वाथ्य द्रव्यो के जौकुट चूर्ण को २५६ सेर पानी मे पकावे। जब जलीयांश ३२ सेर रह जाय तब उतार छान और ठण्डा करके स्वच्छ, गंधधूपित और घृत लिप्त मटके मे भरले।

प्रक्षेप द्रव्य—१८॥। सेर मधु, १। सेर धाय के फूलो का चूर्ण, १०-१० तोले दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण, ५-५ तोले फूलप्रियंगु, कचनार की छाल और लोध्र का चूर्ण तथा ४० तोले त्रिकटु चूर्ण ले।

मटके मे भरे क्वाथ मे क्रमश· प्रक्षेप द्रव्यो को डालकर, घडे को हिलाकर उन्हें भलीभांति मिलादे, फिर घडे का संधान करके उसे गढे मे दबादे। १ मास पश्चात औषध को निकालकर छानें और स्वच्छ शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१। से २॥ तोला भोजनोपरांत, जल मिलाकर। बच्चो को कम मात्रा मे दें।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस अरिष्ट के सेवन से विद्रधि, उरूस्तम्भ, अश्मरि, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, गण्डमाला और हनुस्तम्भ का नाश होता है।

सं. वि.—यह औषध विष और कीटाणुजन्य विकारों को नष्ट करती है। यह आमशोषक, रक्तशोधक, वातानुलोमक, पाचक और वात-कफ तथा रक्तजन्य विकारो को नाश करती है।

बच्चों के उदररोगो के लिए यह प्रसिद्ध औषध है, कृमि रोगो मे इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद होता है। आमदोषो के कारण अथवा वातप्रकोप के कारण रक्त में विविध प्रकार के विकार सम्रहीन होकर गण्डमाला, विद्रधि आदि विकार उत्पन्न करते है। शिरा और धमनियो मे वातावरोध होकर शरीर मे अनेक प्रकार की ग्रन्थियों के विकारो का जन्म हो जाता है तथा रक्त मे कीटाणुओ की उत्पत्ति हो जाती है। इस औषध के सेवन से वे सब ही विकार नष्ट होते है। औषध का सेवन सतत और दीर्घ काल तक होना आवश्यक होता है।

उदर कृमियो के नाश के लिए विडङ्गारिष्ट का सतत सेवन किया जाना हितकर होता है।

शारिवाद्यारिष्ट [भा. भै र ७४३८]

(भैषज्य रत्नावलि। प्रमेह)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सारिवा, नागरमोथा, लोध्र, वरगद (न्यग्रोध) की छाल,

पीपल वृक्ष की छाल, कचूर, अनन्तमूल, पद्माक, सुगन्धवाला, पाठा, आंवला, गिलोय, खस, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, अजवायन और कुटकी, प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ५-५ तोले तथा छोटी इलायची, वडी इलायची, कूठ, सनाय और हैड, प्रत्येक का चूर्ण २०-२० तोले लें। सब द्रव्यों के चूर्णों को एकत्र मिश्रित करें।

एक स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे ६४ सेर शुद्ध जल भरें और उसमें उपरोक्त द्रव्यों के मिश्रण को डालकर घोल दें। अब इसमें १८॥। सेर गुड, ५० तोले धाय के फूल और ३॥। सेर द्राक्ष (मुनक्का) और मिला दे। मटके का मुख कपडमिट्टी से बंद करके उसे गढे में दवा दे।

एक मास पर्यन्त औषध को निर्वात सिद्ध होने द, तत्पश्चात उसे निकाल और छान कर प्रयोग में लावें।

मात्राः—१। से २॥ तोला। भोजनोपरांत, जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—इस 'शारिवाद्यासव' के पीने से २० प्रकार के प्रमेह, शराविकादि समस्त प्रमेहजन्य पीडिकाएं, उपदंश जन्य विकार, वातरक्त और भगंदर नष्ट होते हैं।

सं. वि.:—यह औषध शीतवीर्य और लघु विपाकी है। इसका प्रत्येक द्रव्य पित्तज और रक्तज विकारो का नाश करनेवाला, दोषानुलोमक, पाचक, कोष्ठशोधक, मूत्रल और पोषक है। इसके सेवन से रक्तगत, त्वचागत, ग्रन्थिगत तथा विविधाशयो मे वात पित्त द्वारा प्रविष्ट हुए दोष नष्ट होते है। यह प्रमेह, वातरक्त, भगंदर और उपदंश जन्य विकारों के लिए हितकर है।

शिरीषारिष्ट [भा. भै. र. ७४३९]

(भैषज्य रत्नावली। विषा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्यः—शिरस की छाल ३ सेर १० तोले।

क्वाथ वनाने के लिए जल—६४ सेर।

क्वाथ्य द्रव्य को जल मे पकावे जब चतुर्थांश (१६ सेर) बाकी रहे तब उतारकर छान ले और ठण्डा करके उसे स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके मे भरलें और उसमें प्रक्षेप द्रव्य और कल्क द्रव्यो को मिलादे।

प्रक्षेप द्रव्य—गुड १२॥ सेर।

कल्क द्रव्य—पीपल, फूलप्रियंगु, कूठ, इलायची, नील की जड, नागकेशर, हल्दी, दारुहल्दी और सोंठ प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ५–५ तोले लेकर सबको एकत्र मिलाले।

मटके को भली प्रकार हिलाकर सब द्रव्यो को क्वाथ मे मिश्रित करदें और फिर मटके का मुख कपडमिट्टी से बद करके उसे गढे मे दबादे। १ मास पश्चात् जब औषध सिद्ध हो जाय, तब उसे निकालकर औषध को छानले और शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्रा:—१। से २।। तोले, यथोचित अथवा यथावश्यक मात्रा में यथोचित समय जल मिलाकर प्रयोग मे लावे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म:—यह 'शिरीषारिष्ट' विष जन्य व्याधियों का नाश करता है।

सं. वि.:—'शिरीषं विषं हन्ति' एक प्रचलित लोकोक्ति है। जब किसी को विषैला जन्तु, सांप, शृगाल इत्यादि काट खाता है तब शिरीष के पत्तों और छाल का रस निकाल २ पिलाते है। देखा गया है कि वमन, विरेचन होकर विष का नाश हो जाता है और रोगी निर्विकार होकर दीर्घ काल तक जीवित रहता है।

शिरीष तिक्त, तुवर और मधुर रस युक्त तथा पाक में लघु है। इसके सेवन से विष, विसर्प, त्वग्दोष, स्वेद विकार और शोथ का नाश होता है।

शिरीषारिष्ट के सेवन से अन्तर्बाह्य विषो के कारण होनेवाले विकारों का नाश होता है और स्वेद ग्रन्थियो के अवरोध या उग्रताजन्य विकार नष्ट होते है। त्वक् मे विषो के प्रवेश के कारण उत्पन्न हुआ शोथ नष्ट होता है। विसर्प और क्षुद्ररोगो के लिए यह श्रेष्ठ औषध है।

सारस्वतारिष्ट [भा. भै. र. ८०१९]
(भै. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—

क्वाथ्य द्रव्य—ब्राह्म मुहूर्त में उखाडी हुई मूल–पत्र–शाखा युक्त ब्राह्मी १। सेर, पुष्य नक्षत्र मे उखाडी हुई शतावरी २५ तोले तथा विदारीकन्द, हैड, खस, अदरक और सौंफ प्रत्येक २५–२५ तोले लेकर सबको एकत्र अधकुटा करलें।

क्वाथ बनाने के लिए जल—३२ सेर।

क्वाथ्य द्रव्यों को जल (३२ सेर) में चतुर्थांश (८ सेर) पर्यन्त पकावे।

अवशेष—८ सेर।

क्वाथ को छानकर ठण्डा करे और उसे एक स्वच्छ, गंध धूपित और घृत प्रलिप्त मटके में भरलें। फिर उसमें प्रक्षेप द्रव्य और कल्क द्रव्य मिलावे।

प्रक्षेप द्रव्य—मधु १। सेर, खांड १२५ तोले और धाय के फूलों का चूर्ण १२५ तोले।

कल्क द्रव्य—रेणुका, निसोत, पीपल, लौंग, वच, कूठ, असगन्ध, बहेडा, गिलोय, इलायची, वायविडङ्ग और दालचीनी प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १।-१। तोला लेकर सबको एकत्र मिलालें।

सब द्रव्यों को डालकर मटके को हिलावें जिससे कि सब द्रव्य क्वाथ मे मिश्रित हो जांय। अब मटके का मुख कपडमिट्टी से बंद करके उसे गढे मे दबादें। १ मास पश्चात मटके को निकाले और औषध को उसमे से निकालकर छानले तथा मटके को साफ करके उसे गंध धूपित कर और घृत से चिकना करदे। छनी हुई औषध को इस मटके मे फिर डालें और उसमें सोने के शुद्ध सूक्ष्म पत्र (वर्क) डालें और मटके का संधान करके उसे पुनः गढे मे दबा दें। १५ दिन बाद निकालकर औषध को छान लें और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—५ माशे। भोजनोपरांत, जल मिलाकर।

शास्त्रोक्त गुणधर्मः—यह 'सारस्वतारिष्ट' अमृत के समान गुणकारी है। प्राचीन काल मे भगवान धन्वन्तरि ने इसे अपने शिष्यो के उपकारार्थ बनाया था।

इसके सेवन से आयु, वीर्य, धृति, मेधा, बल और कान्ति की वृद्धि होती है। यह वाणी की शुद्धि करता है और हृद्य तथा श्रेष्ठ रसायन है। बालक, वृद्ध और युवाओ के लिए सर्वदा हितकर है। स्त्री और पुरुष सब के लिए हितकर है। यह परम ओजवर्द्धक है। इसके सेवन से स्वर की कर्कशता और वाणी की अस्पष्टता नष्ट होती है तथा वाणीकोकिल सदृश मधुर हो जाती है। यह अरिष्ट रजोदोष और शुक्र दोषों को नष्ट करता है। अत्यधिक अध्ययन और गीत आदि से जिनकी स्मृति और शक्ति क्षीण हो गई हो उन्हें इसके सेवन से लाभ होता है।

इसके सेवन से चित्त को शान्ति प्राप्त होती है और स्मृति-शक्ति बढती है।

यदि अकाल मृत्यु से बचना चाहते हो, नारियो के प्रिय बनना चाहते हो, वाणी की शुद्धि और स्मृति बढाना चाहते हो तो आप इस अमृत का सेवन कीजिए।

सं. वि.—शास्त्रकारने 'सारस्वतारिष्ट' के गुणो का बडा ही विशद वर्णन किया है। इसमे ब्राह्मी को ब्रह्म मुहूर्त मे और शतावर को पुष्य नक्षत्र मे प्राप्त करने का आदेश दिया है। समय की विशिष्टताओ से तो सभी विज्ञानवादी परिचित है। समय के चूकने पर लब्धि की आशा भी बेकार होती है। जिन्होने इस औषध को शास्त्राज्ञा का पालन करते बनाया है वे ही इसके गुणो का सच्चा प्रमाण दे सकते है, तदपि मै यह कहते नही हिचकिचाता कि उपरोक्त सभी बात सत्य होनी चाहिएं क्योकि ब्राह्मी और शतावर दोनो ही अनन्त गुण युक्त द्रव्य है। दोनों ही रसायन है। ब्राह्मी मस्तिष्क विकारो के नाश के लिए और

बुद्धि की वृद्धि के लिए मुक्त हस्त से प्रयुक्त की जाती है। शतावरी वल्या, वृष्या और रसायनी है, अतः शरीर की प्रत्येक धातु का पोषण करती, वीर्य और ओज को बढाती तथा शरीर के अंग प्रत्यंग का पोषण करती है।

आजकल मस्तिष्क विकार (नाडी दौर्बल्य) अधिकतर मिलता है। हताश होकर कितने ही क्षीणबल, वीर्य और मेधा हो जाते है। कितने ही अति व्यवाय द्वारा कृशगात्र और क्षीणमेधा हो जाते है। कितनों ही को क्लेश दहन करके क्षीण देह और क्षीण मेधा कर देता है। इन सब कारणों से होनेवाले विकारो का प्रभाव मस्तिष्क को विकृत कर देता है। ऐसी परिस्थिति मे इस औषध का सेवन अति ही लाभप्रद होता है।

स्मृति, मेधा, वाणी, स्वर और कान्ति की वृद्धि तथा ओज वृद्धि के लिए 'सारस्वतारिष्ट' का सेवन सर्वदा लाभप्रद होता है।

भैषज्य-सार-संग्रह

द्वादश प्रकरण

शर्वत (Syrups)

जल में शर्करा के घोल का नाम शर्वत है। अर्थात औषधो के क्वाथ मे शर्करा का विधान पूर्वक का मिश्रण उन औषधियो का शर्वत कहलाता है, अथवा शर्करा और जल के विधिपूर्वक निर्माण किए हुए ऐसे घोल को कि जिसमें दीर्घकाल तक विकृति विहीन औषध तत्वो को क्रियाशील रखा जा सके उसे शर्वत कहते है। जिस शर्करा का शर्वत–निर्माण मे प्रयोग किया जाय, वह स्वच्छ अर्थात निर्मल होनी चाहिए। यदि कच्ची खांड से शर्वत बनाना हो तो शर्वत बनाने से पूर्व उसको शुद्ध कर लेना आवश्यक है।

शर्वत का विविध प्रकार से निर्माण किया जाता है। सर्व साधारण प्रकार तो अग्नि द्वारा चासनी बनाकर, जल और शर्करा का घोल तैयार करना और जब वह ठण्डा हो जाय तो उसमें औषध के जलीय या शुष्क तत्व का मिश्रण करना है। दूसरा प्रकार शुद्ध जल मे औषध तत्व और शर्करा डालकर मिश्रण के घटक को हिलाना, परन्तु इस विधान का उपयोग तब ही किया जाता है, जब औषध तत्वो का अग्नि संयोग से उड जाने का भय रहता हो। इस प्रकार शर्वत निर्माण के लिए रही (मथनी) का मंथन हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

साधारण शर्वत निर्माण में प्रयुक्त होते पदार्थः—

(१) जल

(२) शर्करा

शर्वत बनाने के लिए शुद्ध परिस्रुत सलिल अथवा व्योम सलिल (पृथ्वी को छूने से पूर्व सीधा आकाश से पडते प्राप्त किया हुआ जल) का प्रयोग किया जाता है। इसमे प्रयुक्त होती शर्करा भी उच्च जाति की निर्मल शर्करा होती है। निर्दोष जल और शर्करा का घोल अधिकांश मे नहीं बिगडता तथा स्वच्छ और पारदर्शक होता है।

कच्ची खांड की शुद्धि

कच्ची खांड या साधारण खांड का प्रयोग करने से पूर्व उसे शुद्ध करना आवश्यक है।

खांड की शुद्धि, खाण्ड को पानी मे घोलकर, उसमे दूध और जल के मिश्रण को डालकर, उबालने से होती है । इस क्रिया मे खांड और जल का ५ और १ का अनुपात होता है अर्थात १ सेर जल में ५ सेर खांड उबालें, उसमें १। सेर दूध और १। सेर जल को मिश्रण को छिडक २ कर डाले । ऐसा करने से खांड की मैली प्रति उबाल के साथ ऊपर आवेगी । इसे अलग हटाते जाएं अथवा दूध और जल के मिश्रण में कपडा भिगो भिगो कर उबलती खांड में डालते जाए, इस प्रकार खांड की सम्पूर्ण मैली कट कट कर ऊपर आ जायेगी। इसे पानी द्वारा हटा दे । फिर उपरोक्त विधि का पुनरावर्तन करें और मैली के झागो को हटा दे । इन क्रियाओ को तब तक करना चाहिए, जब तक खांड सम्पूर्णतया निर्मल न हो जाय । इस प्रकार तैयार की हुई खांड की चासनी शर्वत बनाने मे काम आती है ।

उबालकर शर्वत बनाने का विधान

५ सेर शुद्ध खांड अथवा मिश्री लीजिए। और १ सेर परिस्रुत जल भी ले। खांड को एक बडे बर्तन में रक्खे और उसमे गरम जल डालकर उसे हिलावें । यह खांड और जल का अनुपात शर्वत की घनता पर निर्भर है । फिर इस गरम गरम चासनी को कपडे में से छानलें । यह ध्यान रखना जरुरी है कि चासनी बनाने के लिए मंद अग्नि देनी चाहिए । शर्वत को अधिक अग्नि सह्य नहीं है, ऐसा करने से चासनी फटने का भय रहता है, अच्छा उपाय तो यह है कि खांड को ठण्डे जल में मिलाले और उसे कुछ घण्टे ढक कर मन्द्राग्नि पर रखदे, बीच बीच मे इसे हिलाकर देख ले कि, चासनी हो गई या नहीं ।

शर्वत की परीक्षा

शर्वत के लिए चासनी तैयार हुई है या नहीं इसके लिए समय समय पर परीक्षा करनी भी जरुरी है। जब तक जल और खांड के मिश्रण की पूरी चासनी न बन जाय तब तक अग्नि लगाते रहना चाहिए। चासनी की परीक्षा यह है कि पल्टे पर लेने से उसकी धार तेल की जैसी अटूट पडे अथवा उसकी एक बूंद अंगूठे पर रखकर, ठंडी करके देखने से उसमें से तार सा खिचने लगे । आज कल चासनी की परीक्षा के लिए ब्यूमका सैक्रोमिटर (Beaum's Saccrometer) प्रयोग में लाया जाता है । यह यन्त्र अपने आप चासनी की घनता या गुरुता बता देता है । सच बात तो यह है कि अन्य विषयो के समान ही इसमे भी कृतकर्मता (तर्जुबा, Experience) की आवश्यकता है ।

शर्वतों की सुरक्षा

यह तो आवश्यक है नहीं कि सारा शर्वत बने उसी दिन काम में आ जाए। औषधों

के शर्वत कभी २ वर्षों पडे रहते है, इस परिस्थिति मे शर्वत मे खटास (अम्लत्व) पैदा न हो और द्रव्य सुरक्षित रहें यह अनिवार्य हो जाता है। शर्वतो को ठण्डे (बहुत ठण्डे नहीं) स्थान मे रखने से भी वे नहीं बिगडते, अर्थात भली प्रकार बंद करके शर्वतो को ऐसे स्थान मे रखना चाहिए, जहां का तापक्रम बढे नहीं। बडे बर्तनो मे न भरकर उसे छोटे बर्तनो में रखना चाहिए, कारण कि, बडी शीशी मे खुला रखने से उसमें अम्लत्व उत्पादन का भय है।

शर्वत की शक्ति

निम्नलिखित तालिका साधारण शर्वत की शक्ति का प्रमाण, जल के माप और शर्करा के वजन के मिश्रण के अनुरूप बताती है:-

शर्करा	जल	प्राप्ति	गुरुत्व
१६ औंस	१२ औंस	२२॥ Q H Dr	१.२७३
१६ "	१० "	२०॥ "	१.२९८
१६ "	८ "	१८॥ "	१.३३०
१४ "	८ "	१७१/५ "	१.३११
१२ "	८ "	१६ "	१.२९०
१० "	८ "	१४॥ "	१.२६४
८ "	८ "	१३। "	१.२३१

शर्वत वनफसा

द्रव्यः— वनफसे के स्वच्छ पत्ते. २॥ सेर।
शुद्ध जल २० सेर।
मिश्री अथवा उच्च जातीय खांड . ५ सेर।

निर्माण विधिः— प्रथम तो पत्तों की धूल इत्यादि दूर करें, तदनन्तर उन्हे जल में डालकर निर्मल करे। अब इन पत्तों को कुछ काल जल मे भिगो रक्खे जिससे उनमे मृदुता आजाये और दूसरी ओर मिट्टी की एक हांडी में २० सेर जल उबलने को रखदें। इस उबलते हुए जल मे वनफसे के स्वच्छ और मृदु पत्तो को डालदे। इस क्वाथ को चतुर्थांश जल पर्यन्त उबाले अर्थात ५ सेर क्वाथ रह जाय तब उसे अग्नि से उतार कर छानलें।

इस क्वाथ को पुन. अग्नि पर चढादे और उसमें ५ सेर मिश्री का चूर्ण मिलावे। इस

घोल को ०॥-०॥। घण्टे धीमी अग्नि पर उबाले। शर्वत वनफसा को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर स्वच्छ बोतलो में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

मात्राः—१ से २ तोले, जल या दूध मे मिलाकर दिन मे २-३ वार पीवे।

उपयोगः—यह औषध कास, प्रतिश्याय, कण्ठशोष, कण्ठशोथ, रक्तदोष आदि के लिए हितकर है।

सं. वि.—वनफसा यूनानी औषध है। हकीम लोग इसका उपयोग ज्वर, कास, प्रतिश्याय और गले के अनेक विकारो पर करते है। देखा गया है कि रोग की साधारण अवस्था या प्रारम्भावस्था में देने से यह कण्ठ की दुष्ट अपचि (Cancer कैंसर) को भी मिटा देता है।

गले के अधिकतर ऊष्णता तथा रूक्षता जन्य रोगों में इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद होता है।

शर्वत वनफसे का रक्त शुद्धि के लिए भी प्रयोग किया जाता है। रक्तशोधक और कण्ठ प्रसादक गुण युक्त होने के कारण यह गले के रोगों मे हितकर है।

शर्वत ब्राह्मी

द्रव्यः—ब्राह्मी के स्वच्छ पत्ते २॥ सेर।
जल .... २० सेर।
मिश्री या शर्करा .... ५ सेर।

निर्माण विधिः—प्रथम ब्राह्मी के पत्तों को साफ करले, तदनन्तर उन्हें जल से धोले और फिर उन्हें पानी मे भिगोकर रखदे। इधर २० सेर जल को हांडी मे उबलने रखदे। जव जल उबलने लगे तब उसमे ब्राह्मी के पत्तों को डालदे। इस क्वाथ को जल के चतुर्थांश अवशिष्ट पर्यन्त उबाले अर्थात ५ सेर जलीयांश बाकी रहे तब क्वाथ को अग्नि से उतारकर छानलें। छने हुए क्वाथ को फिर उबलने रखदे और उसमे ५ सेर मिश्री का चूर्ण भी डालदें। इस शर्वतों को चासनी होने तक उवाले, अर्थात ०॥-०॥। घण्टे मन्दाग्नि पर उबाले। तैयार होने पर उतारकर छानले और ठण्डा होने पर उसे स्वच्छ शीशियो मे भरकर रखलें।

मात्राः—१ से २ तोला दूध या जल में मिलाकर दिन मे २-३ वार।

उपयोगः—ब्राह्मी शर्वत बुद्धि, स्मृति और ओजवर्द्धक है। अपस्मार, उन्माद और मस्तिष्क दौर्वल्य में यह विशेष हितकर है।

सं. वि.—ब्राह्मी शीतवीर्य, कषाय–तिक्त रस प्रधान, पित्तनाशक, सहज रेचक; बुद्धि, मेधा और आयुवर्द्धक तथा रसायन है।

ब्राह्मी शर्वत स्मृति, मेधा, आयु और ओज वृद्धि के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। अपस्मार, उन्माद और नाडी दौर्वल्य के रोगियों के लिए यह बहुत ही उत्तम पेय है।

शर्वत वसाका

द्रव्यः—अडूसा का पंचाङ्ग . ५ सेर।
यष्टिमधु का सार ... .. १० तोले।
जल .... ४० सेर।
मिश्री या खांड .... . १०॥ सेर।

निर्माण विधिः—अडूसा के पचाङ्ग को साफ करके पानी से धो डालें और फिर उसे पानी में भीगने के लिए डाल दे। इधर एक मटके मे ४० सेर जल उबालना शुरू करे। जब पानी उबलने लगे तब अडूसा के पंचाङ्ग को उसमे डालदे और इसका चतुर्थांश अवशिष्ट पर्यन्त क्वाथ बनावे अर्थात जब जलीयांश १० सेर रह जाय तब उसे उतारकर छानलें और छने हुए क्वाथ में यष्टिमधु (मुल्हैठी) का १० तोले सार डालकर उसे फिर उबलने को रखदें। यह क्वाथ जब १०–१५ मिनिट तक मन्दाग्नि पर उबल चुके तब उसमे १०॥ सेर मिश्री का चूर्ण डालदें और इस मिश्रण को ०॥ घण्टे धीमी अग्नि पर फिर उबलने दे। तैयार होने पर उतारकर छान ले तथा ठण्डा होने पर उसे शीशियो मे भरकर सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—१ से २ तोले दूध या जल के साथ दिन मे २–३ वार।

उपयोगः—यह शर्वत कास, गलरोग, रक्तपित्त, कण्ठ कण्डू, कण्ठशोष, कण्ठशोथ, स्वरक्षय आदि के लिए उत्तम है।

सं. वि.—**वासा** कफ पित्त और रक्त दोष को नष्ट करनेवाला, स्वर को शुद्ध करके बढानेवाला, श्वास–कास नलिकाओ के शोष, शोथ और कफ तथा पित्तज विकारों को नष्ट करनेवाला है।

यष्टिमधु–कण्ठ प्रसादक, दाहनाशक, कोष्ठशोधक और स्वर पोषक है।

शर्वत वसाका–कास की एक प्रचलित औषध है। यह पोषक दाहनाशक, कण्ठ–प्रसादक, स्वर शोधक, प्रतिश्याय, गलग्रह, कण्ठ कण्डू, श्वास–कास–प्रणाली दोष नाशक तथा नवीन और पुरातन कास मे हितकर है। इसके सेवन से गला बैठना, स्वरक्षय,

खांसी, प्रतिश्याय और गले के अन्य पित्त-कफ द्वारा होनेवाले रोग नष्ट होते हैं। क्षय की खांसी, रक्तपित और उरःक्षत मे इसका प्रयोग हितकर होता है।

सूचनाः-(१) सीरप वसाका मे सर्वत्र यष्टि मधु नहीं डाली जाती।

(२) सीरप वसाका मे अनेक अन्य गुणवर्द्धक द्रव्यों का योग भी दिया जा सकता है यथा-वसाका मे वंशलोचन या अन्य कैल्सियम का योग, अफीम के तत्वों का योग इत्यादि।

(३) वसाका में अन्य शर्वतों का योग देकर भी उसके गुणों को बढाया जाता है।

भैषज्य-सार-संग्रह

त्रयोदश प्रकरण

सार (Extracts)

वनस्पति द्रव्यों के औषध–तत्वों के निचोडवाहक द्रव्य 'सार' कहे जाते हैं। ये सार घन और प्रवाही रूप में दो प्रकार के होते हैं। घन सार या तो कठिन या मृदु लेही से अथवा शुष्क करके चूर्ण किए हुए होते हैं। घन सारों का, उनके मौलिक औषध तत्वो का रस रूप मे संग्रह कर और उनका जलीयांश उडाकर, निर्माण किया जाता है। मृदु लेही से घनसारो को शर्वत, मधु, हलवा आदि अनेक रूपों मे या उदर रसों की क्रिया से घुलनशील निष्क्रिय तत्वों के आवर्णवृत (कैप शूल्स) इत्यादि में भरकर भी सुरक्षित रक्खा जाता है अथवा उपयोग मे लाया जाता है। इनकी आवश्यकतानुसार कभी २ किन्हीं औषधो के योग से गोली भी बनाई जाती है। कभी २ इन लेही से सारों को इसी रूप में चिरकाल तक रखने के लिए उनमें ग्लीसरीन या अन्य तैल द्रव्यों का मिश्रण किया जाता है। घनसारों का चूर्ण, द्रव्यों के सारों को भलीप्रकार सुखाकर और उनमे अन्य आवश्यकीय द्रव्यो का मिश्रण करके, किया जाता है, यथा ब्राह्मी–घन में या गुडूची घन मे फल शर्करा या दुग्ध शर्करा का मिश्रण अथवा वंशलोचन के चूर्ण का मिश्रण इत्यादि।

घनसार निर्माण का सर्व साधारण विधान

आर्द्र औषधों के सारः—पर्याप्त औषध द्रव्य लेकर उस पर जल छिडकें। फिर उसे भली प्रकार पत्थर पर या पत्थर के खरल मे कूटे। अब इसे एक कपडे मे बांधकर निचोड कर इसका रस निकाल ले। औषध द्रव्य को पुनः उपर्युक्त विधि से कूटे और फिर उसे निचोड कर उसका रस निकाल लें। जब तक औषध में से सम्पूर्ण सार न निकले तब तक इस प्रकार कूटते और रस निकालते रहे। रस को एकत्रित कर उसे एक कढाई में गरम करने को चढादें। अग्नि तीव्र न दें, धीरे २ जलीयांश उड जायेगा। जब घन लेही जैसा हो जाय तब उसे उतार ले और घन होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

(आधुनिकों की पद्धति के अनुसार द्रव्य के रस को ८०° सेन्टीग्रेड तक गरम किया जाता है और जलीयांश का भाग इस प्रकार वाष्प रूपमें उडा दिया जाता है। तत्पश्चात बाकी रहे सार मे मद्यार्क (Alcohol) मिलाया जाता है (९० प्रतिशत)। २४ घण्टे बाद उसे हिला कर छान लिया जाता है. फिर अवशिष्ट तत्व में मद्यार्क (६९ प्रतिशत) मिलाकर

उसे बंद बर्तन में गरम किया जाता है। फिर उसे रख दिया जाता है। द्रव्य के अघुलन-शील तत्वों के तली पर बैठ जाने पर द्रव द्रव्य ले लिया जाता है और उसे पूर्व प्राप्त जलीयांश के साथ मिश्रित किया जाता है, फिर इसे छाना जाता है तथा वाष्प द्वारा जलीयांश उडाकर घन को प्राप्त किया जाता है।)

शुष्क द्रव्यों के सार:—औषध द्रव्य को लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे करले, फिर उसे अधकुटा करले। इस अधकुटे द्रव्य को १६ गुने जल में मिलाकर उबाले। जब चतुर्थांश जल अवशिष्ट रहे तब उसे उतारकर छानलें। छाने हुए क्वाथ को पुन: मन्दाग्नि पर गरम होने को चढा दे। धीरे २ जलीयांश उडकर घन द्रव्य बनता दीखेगा। साधारण ढीला रहे तब उसे उतार ले. थोडी ही देर में वह कठिन हो जायगा। यदि अधिक कठिन होने तक गरम किया जायगा तो घन जल जायेगा।

प्रवाही सार (अर्क–Liquid Exrtacts)

प्रवाही सारों का विविध प्रकार से निर्माण किया जाता है। द्रव्यो को क्वाथ बनाकर उसमे मद्यार्क उत्पन्न करनेवाले गुड आदि द्रव्यो को मिलाकर, उसे मटके में आसव-अरिष्ट के समान मद्यार्क की उत्पत्ति के लिए तथा निर्वात सिद्धि के लिए गढे मे १ मास पर्यन्त रक्खा जाता है (१) औषध क्वाथ मे मद्यार्क की पर्याप्त मात्रा मिलाकर उसे कुछ काल तैयार होने के लिए निर्वात स्थान में रक्खा जाता है (२) द्रव्य के अधकुटे चूर्ण को ६ गुने या १६ गुने जल में कुछ काल भिगोकर रखने के पश्चात नलिकायन्त्र (Distiller) द्वारा अर्क खींचा जाता है।

सभी वनस्पति–औषधों के सार बनाये जा सकते है। इन सारो को सावधानतया रखना आवश्यक है।

प्रवाही सारों की क्रिया जलीयांश के साथ शीघ्र ही होती है। ये शीघ्र पाची और सक्रिय होते हैं।

क्योंकि प्रत्येक वनस्पति द्रव्य का प्रवाही सार तैयार किया जा सकता है, अत. चरक सूत्रस्थान चतुर्थ अध्याय मे दिए हुए भिन्न भिन्न कषाय वर्गों के प्रवाही सार तैयार करके प्रयोग में लाये जांय तो संसार की अधिकतर औषध संख्या अनावश्यक प्रतीत होगी।

सभी प्रवाही सारो को तैयार करने का एक ही विधान है। प्रत्येक प्रवाही सार अपने २ द्रव्य के अनुसार क्रिया करता है और अन्य औषधो की अपेक्षा इनकी क्रिया शीघ्रतर ही होती है।

वनस्पति द्रव्य अनन्त हैं, वैसे ही उनके सार भी अनन्त ही होंगे। सार निर्माण करते, द्रव्यो के वे ही भाग प्रयोग मे लाने चाहिए जिनमें इच्छित गुण भरपूर हों। मूल, पत्र, त्वक, काण्ड, पुष्प, फल आदि साधारणत' ये सभी वनस्पतियों के अंग है। सर्वत्र सब अंगों का प्रयोग नहींहोता और ना ही सर्वत्र सम्पूर्ण अंगों को काट कूट कर प्रयोग मे लाना ही सम्भव है अतः यथा शास्त्रादेश द्रव्य अंग लेकर सार निर्माण करें।

किस सार का क्या गुण है यह जानने के लिए वनस्पतियो के गुणों का ज्ञान आवश्यक है। वनस्पति शास्त्र में वनस्पति द्रव्यों के गुणो का विस्तृत वर्णन लभ्य है। यहां सब वनस्पतियों का वर्णन करना विषयान्तर मे प्रवेश करने के समान है, अतः संक्षेप मे प्रचलित प्रवाही सारो के गुणों का संक्षिप्त परिचय ही दे देना पर्याप्त होगा।

प्रवाही सारों की मात्रा उनके आन्तरिक गुणो पर निर्भर है। अधिक उग्र, सविष, रेचक, वामक, और दाहक औषधो की मात्रा न्यून तथा सरल औषधों की मात्रा अधिक होती है। साधारणतया ०।तोले से १। तोले तक इनकी सामान्य मात्रा है।

अपामार्ग

यह क्षुप भारत मे सर्वत्र प्राप्य है। इसकी उत्पत्ति घास के मैदानों पर और पडतल भूमि मे होती है। इस क्षुप के विविध अंग भिन्न २ रोगों में और सम्पूर्ण क्षुप (पञ्चाङ्ग) प्रवाही सार निर्माण मे काम मे आता है।

अपामार्ग प्रवाही सार मूत्रल, कोष्ठशोधक, अग्निवर्द्धक, विषनाशक, शोथनाशक, आक्षेप नाशक और श्वास–कास नाशक है। इसके सेवन से कुत्ते के काटे का विष, सर्प विष तथा उदर मे खाद्य द्वारा उत्पन्न हुए विष नष्ट होते हैं।

वातनाडी विकार के कारण अथवा वात प्रकोप के कारण उत्पन्न हुए विकारो पर इसका सरलतया प्रयोग किया जाता है।

स्त्रियो के मानसिक विकारों से होनेवाले भ्रम, मूर्च्छा तथा योषापस्मार पर यह प्रवाही सार हितकर होता है।

अनन्त–मूल

अनन्तमूल की मूल का सार–निर्माण मे प्रयोग किया जाता है। इसकी मूल मधुर रस प्रधान, स्नेहल, ज्वरघ्न, मूत्रल और शक्तिवर्द्धक हैं। इसके प्रयोग से भूख लगती है। रुचि की उत्पत्ति होती तथा यह त्वक विकर, फिरङ्ग रोग तथा प्रमेह और प्रदर आदि मे हितकर है।

पाश्चिमात्य जहां सार्सापरिला का प्रयोग करते है वहां इस अनन्तमूल प्रवाही सार का प्रयोग श्रेष्ठ है। अनन्तमूल प्रवाही अपने मूत्रल गुणों के कारण वृक्क, वृक्क-नलिका और वस्ति शोधक है तथा यह पूयमेह और अन्य मूत्र विकारों मे लाभप्रद है।

अपने पोषक, दोषनाशक, दाहनाशक और मूत्रल गुणो के कारण यह औषध फिरङ्ग और फिरङ्गज विष का नाश करती है अत: पुरातन फिरङ्ग विकार, आमवात और आम तथा वाताजीर्ण मे यह हितकर है।

अर्जुन

प्रवाही सार निर्माण मे अर्जुन की छाल का उपयोग होता है। अर्जुन की छाल अनेक विधि औषधोपयोग मे आती है। इसके योग से निर्मित अधिकतर द्रव्य हृदय की व्याधियों में काम में लाये जाते है। हृदय के दोषों के लिए यह श्रेष्ठ औषध है।

अर्जुन की छाल बल्य, शोषक और शीत वीर्य है। इसका बाह्य उपयोग चोट, अस्थि-भग्न, व्रण आदि मे स्थानिक प्रक्षालन अथवा बंधन हेतु किया जाता है। ऐसे रोगों मे अर्जुन प्रवाही सार पीने से अस्थिभग्न इत्यादि का शीघ्र विनाश होता है। अर्जुन की छाल से फिरङ्गज व्रण को धोने से वह शीघ्र मिटता है। कैंसर और दुष्ट व्रणों इसके क्वाथ से धोने से लाभ होता है।

अर्जुन प्रवाही सार छाल के गुणो के आधार पर हृद्य, बल्य, अस्थि संधानक, हृदय के विकारो का नाश करनेवाला, आमाशय तथा वक्ष (फुफ्फुस और हृदय) की श्लेष्मकलाओं को निर्विकार करके उनको सशक्त करनेवाला, हृदय की मन्द गति को बढानेवाला, तथा उग्र गति को स्वस्थ करनेवाला, अवसन्न हृदय मे नवजीवन का संचार करनेवाला तथा रक्तचाप की मन्दता को ऊंचा लानेवाला है।

हृदय संचालक नाडियो पर अर्जुन प्रवाही सार की पोषक, शक्ति और क्रियावर्द्धक तथा बल्य क्रिया होती है, यही कारण है कि इसके प्रयोग से हृदय की गतिमन्द और रक्तचाप की वृद्धि होती है।

अर्जुन प्रवाही सार कास, श्वास और रक्तपित्त के लिए उत्तम औषध है।

हृदय की सम्पूर्ण व्याधियो में इसका प्रयोग निश्चिन्तता पूर्वक किया जाता है। हृदय-कपाट के परिवृद्ध रोगो मे भी जब कि हृदय अशक्त और निष्क्रिय हो जाय तथा रक्तचाप क्षीण और हृदय की वृद्धि हो जाय तब भी इसका प्रयोग सफल होता है।

नाडी की मंदता, हृदय की दुर्बलता और शरीर क्षीणता में यह अच्छा काम करता है।

अर्क-मूल

अर्कमूल प्रवाही निर्माण में आक की जड का ही प्रयोग करते है।

त्वचा के ऐसे दोषों में, जहां त्वचा के नीचे की स्वेद ग्रन्थियां और श्लेष्मकलाएं विकृत होकर अपनी क्रिया बंद करदे, अर्कमूल प्रवाही का प्रयोग लाभप्रद होता है। उदर वृद्धि (उदर की दीवार की वृद्धि), उदरगत कृमि विकार, कास, जलोदर और शोथ आदि मे इसका प्रयोग हितकर होता है।

अधिक मात्रा में यह प्रवाही वामक सिद्ध होती है। यह कोष्ठशोधक, रक्तशोधक, उपदंश, व्रण तथा अन्य विषज और कृमिज विकारों पर फलप्रद है। यह स्वेदल और कफनाशक है।

अश्वगंधा

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अश्वगंधा के क्षुप का पृथक्करण करके अनेक द्रव्यों को हस्तगत किया है। इसमे अनेक प्रकार के स्नेहल अम्ल प्राप्त हुए है।

अश्वगंधा प्रवाही रसायन, वाजीकरण, बल्य और वृष्य है। क्षय, नाडी दौर्बल्य, शोथ, और किलास पर इसका सफल प्रयोग होता है।

अश्वगंधा प्रवाही नाडियो की उग्रता का नाश करती है परन्तु हृदय पर किसी प्रकार का दुष्ट प्रभाव नहीं पहुंचाती, बल्कि रक्तचाप की वृद्धि के विकार से हृदय को बचाती है।

अश्वगंधा प्रवाही दुर्बलता, प्रमेह, क्षीणता और अकाल वृद्धावस्था को दूर करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

अशोक

अशोक की छाल का अशोक प्रवाही निर्माण मे प्रयोग होता है। अशोक प्रवाही जरायु पोषक, जरायु उग्रता नाशक तथा जरायु दोषनाशक है। अशोक प्रवाही की क्रिया श्लेष्मकला पर सराहनीय होती है। इसके सेवन से अन्तर-तन्तुओ की शिथिलता दूर होती है तथा ऋतुस्राव यथा नियम आता रहता है। गर्भाशय की श्लेष्मकला के विकारी स्राव इसके सेवन से दूर होते है तथा गर्भाशय की दीवार पुष्ट होती है।

इसके सेवन से गर्भाशय की क्रिया-विहीनता नष्ट होती है। अशोक प्रवाही शीतवीर्य,

कृमिनाशक, रक्तावरोधक, पित्तशामक, शोथनाशक तथा जरायु और अन्त्र के शूलों का नाश करनेवाली, आध्मान नाशक और आक्षेप तथा वात नाशक है।

प्रदर, रक्तस्राव, ऋतुशूल और ऋतु विकारों के लिए यह प्रभावशाली औषध है।

कुष्ट

सत्व निर्माण में कुष्ठ के मूल का प्रयोग होता है। कुष्ट वीर्य में ऊष्ण, कटु, विपाकमें लघु, रस में स्वादु-तिक्त रसयुक्त और प्रभाव में वीर्यवर्द्धक है। कुष्ट प्रवाही के सेवन से वातरक्त, विसर्प, कास, कुष्ट और कफ वातज रोगों का नाश होता है।

कुष्ट-मूल की तरह ही कुष्ट प्रवाही भी वाजीकरण, वल्य, वात कफज रोग यथा-श्वास, कास, श्वास-कास-नलिका आक्षेप तथा अपचि आदि नाशक है। कुष्ट प्रवाही वात का नाश करती है, कफ का विलयन करके निकाल देती है और इस प्रकार श्वास-कास रोग के लिए हितकर है। वातकफज ज्वर तथा कास, श्वास के अधिक उपद्रव से होनेवाले ज्वर में भी यह हितकर है।

कुष्ट प्रवाही का प्रयोग हृदयजन्य श्वास, वाताधिक्य जन्य श्वास और कास-श्वास नलिकाओं के वातावरोध जन्य श्वास मे बहुत ही लाभप्रद होता है।

कुष्ट का प्रयोग वातरक्त, कुष्ट और त्वचा के अन्य वातकफज रोगों पर किया जाता है। कुष्ट रोगों मे भी कुष्ट का प्रयोग हितकर है।

कुटज

कुटज (कुडा) अनन्त काल से प्रवाहिका, रक्तातिसार और अतिसार की प्रसिद्ध औषध है। यह रस में कटु, तिक्त और कषाय तथा वीर्य मे ऊष्ण है और प्रभाव मे अतिसारघ्न है। कुटज प्रवाही के सेवन से अर्श, अतिसार, अधोगत रक्तपित्त, आमातिसार, प्रवाहिका आदि रोगों का नाश होता है।

भारतवर्ष में अनन्त वर्षों से संग्रहणी और प्रवाहिका में कुटज की विविध औषधों का सेवन चला आ रहा है। आधुनिकों ने भी इसे संग्रहणी, आमातिसार और प्रवाहिका के लिए उत्तम कहा है। आजकल कुटज की विविध औषधे विभिन्न रूप मे सर्वत्र लभ्य है। कुटज त्वक ज्वरघ्न, कृमिघ्न और अतिसार नाशक है।

आधुनिकों ने कुटज त्वक में से तीन क्षार प्राप्त किए (२) कुर्चि साइन (२) होलेराइन और (३) कुर्चाइन। इन सभी क्षारों मे टैनिन भी विद्यमान है।

कुटज प्रवाही का गर्भाशय पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता अतः गर्भावस्था मे भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। कुटज त्वक् की तरह ही इसकी प्रवाही भी प्रसिद्ध औषध है।

कालमेघ

कालमेघ रस मे तिक्त और कटु, विपाक मे लघु और वीर्य मे शीत है। यह ज्वर नाशक और पेट के रोगों के लिए उत्तम औषध है।

कालमेघ प्रवाही किरात प्रवाही की तरह दाह, कण्डू, शोथ, यकृद्, प्लीहा और जीर्णज्वर नाशक है। इसके सेवन से पित्तज पाण्डु, यकृद्वृद्धि, उदर विकार जन्य शोथ, प्लीहा वृद्धि आदि रोगों का सहज नाश होता है। यह कोष्ठ शोधक, गर विष नाशक और पित्तज विकारों को नाश करनेवाली औषध है।

ज्वर की पश्चात् अवस्था मे कालमेघ का सेवन विशेष हितकर होता है। यह शरीर मे व्याप्त अवशिष्ट ज्वरांश का नाश करती है, यकृद, प्लीहा और अन्त्र में उत्पन्न हुई विकृति को मिटाती है तथा भूख लगने और रक्तवर्द्धन मे सहायभूत होती है।

किरात

विषम ज्वरो की सर्वश्रेष्ठ औषध चिरायता सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। किरात तिक्त, कफ–पित्त ज्वर नाशक, व्रणरोपक, अपथ्य दोषनाशक, कुष्ट, कण्डू और शोथ नाशक है। यह सहज रेचक, रुक्ष, वीर्य में शीत, विपाक में लघु और रस मे तिक्त है। इसके सेवन से सन्निपातज्वर, श्वास, पित्त, रक्त, दाह, कास, शोथ, तृष्णा, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और कृमि का नाश होता है।

किरात प्रवाही यकृद, प्लीहा, जीर्णज्वर आदि रोगो के लिए बहुमूल्य औषध है। इसके सेवन के यकृद में से पित्त का मुक्त स्राव होता है जिससे अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, नीरसता और आलस्य का नाश होता है।

ज्वर की सभी दशाओं में किरात प्रवाही का सेवन हितकर है। किरात प्रवाही या किरात की अन्य औषधों के सेवन से किसी प्रकार की पश्चात् विकृति नहीं रह जाती, बल्कि यकृद, प्लीहा, आमाशय और अन्त्र के विकारो का नाश होता है।

सुदर्शन चूर्ण मे अधिकांश किरात का है। सुदर्शन चूर्ण ज्वर के लिए कीर्ति सम्पन्न औषध है, अत: किरात ज्वर की विशिष्ट औषध है।

कुटकी (कटुका)

कुटकी ज्वर, दाह और कोष्टबद्धता के लिए एक प्रसिद्ध औषध है। कुटकी सारक,

रुक्षता और कफ नाशक, वीर्य में शीत, रस में अति कटु और तिक्त और प्रभाव में पित्त, रक्त, दाह, कफ तथा अरुचि नाशक और मलभेदक है।

कुटकीमूल आमाशय रोग नाशक और रेचक है। यह ज्वर और उदर के रोगों के लिए उपयोगी है। उदर की वातज पीडा मे कुटकी प्रवाही का प्रयोग हितकर होता है।

ज्वर की सभी दशाओं मे कुटकी का प्रयोग लाभदायी होता है। शोथ और जलोदर में कुटकी प्रवाही का सेवन बहुत ही लाभदायक है। जलोदर और शोथ दोनों म ही इसके सेवन से खूब प्रमाण मे जलीयांश निकल जाता है।

कंटकारी

सार निर्माण करते कंटकारी का सम्पूर्ण क्षुप (पञ्चांग) प्रयोग में लाया जाता है।

कण्टकारी रस मे कटु-तिक्त, विपाक में लघु, वीर्य में ऊष्ण और प्रभाव मे दीपनी, श्वास-कास नाशनी, प्रतिश्याय और कफ-वात ज्वर तथा मलशोधनी है।

कण्टकारी प्रवाही का प्रयोग कास, श्वास, प्रतिश्याय, वात-कफ उदर और फुफ्फुस विकार जन्य ज्वर, फुफ्फुसदोष, फुफ्फुस कला शोथ, उरस्तोय, हृदय शोथ, वात-कफज हृद्रोग तथा वात-कफज नाडी विकारों पर सदा लाभप्रद सिद्ध होता है।

श्वास और कास के लिए कण्टकारी प्रवाही उत्कृष्ट औषध है।

कण्टकारी प्रवाही आक्षेप नाशक, श्वास-कास-नलिका शोधक, श्लेष्म विलयक और श्लेष्मकला शोथ नाशक है। कण्टकारी के चूर्ण का प्रयोग श्वास-कास मे धूम्रपान के लिए किया जाता है। कण्टकारी प्रवाही अपने ऊष्मा द्वारा श्लेष्मकलाओ मे प्रकुपित शीत के प्रभाव को दूर करती है और कलाओ की निष्क्रियता को दूर कर अंगों को क्रियाशील कर देती है। कण्टकारी प्रवाही संवेदना नाशक भी है, अतः उग्र से उग्र श्वास-कास में भी शीघ्र लाभदायी सिद्ध होती है।

श्वास-कास और वातकफज वक्ष विकारो के लिए कण्टकारी प्रवाही श्रेष्ठ औषध है।

जीर्ण प्रतिश्याय के कारण नासिका रंध्रों की श्लेष्मकलाएं विकृत हो जाती है जिससे उनमे शुष्कता, संकोच और शोथ आदि उपद्रवो की उत्पत्ति होती है, कण्टकारी प्रवाही के दीर्घ काल तक सेवन से तथा व्याघ्री तेल के नस्य से नासिका की श्लेष्मकलाएं विकृति विहीन हो जाती है और पुरातन और जीर्ण प्रतिश्याय का नाश होता है।

कांचनार

प्रवाही निर्माण में कांचनार की छाल और मूल का उपयोग होता है।

काचनार की छाल कषाय, सग्राही, व्रणरोपण, दीपन, कफ वात नाशक और मूत्रकृच्छ्र नाशक है। कांचनार वीर्य मे शीत है। कांचनार प्रवाही के सेवन से कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रण का नाश होता है।

गण्डमाला में इसका प्रयोग प्रचुर प्रमाण में किया जा रहा है। इसकी क्रिया कुछ समय पश्चात् प्रारम्भ होती है परन्तु लाभ अवश्य होता है। दुष्ट व्रण और त्वचा के अन्य रोगों में कांचनार प्रवाही सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होती है। कृमिजन्य या कीटाणुजन्य अतिसार मे जहां अन्य औषधियां सिद्धिप्रद न हों वहां कांचनार प्रवाही शीघ्र फलप्रद होती है। कांचनार विष और कीटाणुज रोगों के लिए अन्य प्रचलित आधुनिक औषधों से अधिक लाभदायी है।

दूषित उदर के कारण मुख मे छाले हो गये हो अथवा अन्य विषो के कारण मुख आगया हो तो कांचनार प्रवाही का प्रयोग मुख के दोष को मिटा देता है। कुष्ट और वातरक्त मे कांचनार प्रवाही का उपयोग हितकर होता है। रक्तज प्रवाहिका में कांचनार को कुटज प्रवाही के साथ देने से लाभ होता है। उदर के वातकफज विकारों में कांचनार प्रवाही खूब उपयोगी है। आम द्वारा उत्पन्न होने वाले उदर के विकार कांचनार प्रवाही के सेवन से नष्ट होते है। उदर विकार जन्य वातकफज विकारो में काचनार का उपयोग लाभप्रद होता है।

खदिर

खदिर प्रवाही के निर्माण मे खदिर त्वक् का प्रयोग किया जाता है।

खदिर प्रवाही कुष्ट के लिए सर्वत्र उपयोगी है। विसर्प, किलास, रक्तदोष और त्वक् विकारो के लिए खदिर प्रवाही श्रेष्ठ औषध है।

खदिर त्वक् तिक्त, शीतल और दाह नाशक है। खदिर प्रवाही के सेवन से दुष्ट व्रण, ज्वर, प्रमेह, कण्डु और त्वक् प्रदाह का नाश होता है।

खदिर प्रवाही का त्वक्रोगो और विशेषतः कुष्ट पर अधिक प्रयोग होता है।

गुडूचि

गुडूचि अनेक रोगों की औषध है। जिस प्रकार गुडूचि-क्वाथ को विविध अनुपानो के साथ अनेक रोगों मे प्रयोग मे लाते है, वैसे ही गुडूचि प्रवाही भी प्रयुक्त की जाती है।

गुडूचि प्रवाही को घी में मिश्रित कर पीने से वात रोगों का नाश होता है। गुडूचि प्रवाही को गुड के योग से पीने से विबंध का नाश होता है। गुडूचि प्रवाही को मिश्री में मिलाकर पीने से पित्तज विकारों का नाश होता है। गुडूचि प्रवाही को मधु के साथ मिलाकर लेने से कफ रोगो का नाश होता है। समग्र वात का नाश करने के लिए गुडूचि प्रवाही एरण्ड तैल के साथ मिश्रित कर सेवन कराई जाती है। आमवात रोग का नाश करने के लिए गुडूचि प्रवाही मे सोठ का चूर्ण मिलाकर प्रयोग कराते हैं।

गुडूचि पित्तशामक है, परन्तु मद्यार्कयुक्त प्रवाही रूप में यह पित्तशामक नहीं रहती तदपि पित्त संशमन के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

अन्त्र की विकृत दशा मे गुडूचि प्रवाही का सेवन बहुत ही हितकर है। यह ज्वरघ्न, मूत्रल, मूत्राम्लता नाशक और रक्तदोष नाशक है।

विषम ज्वरो में गुडूचि प्रवाही श्रेष्ठ औषध है। ज्वरों के लिए गुडूचि प्रवाही को किरातादि ज्वर नाशक औषधों के साथ मिलाकर देनी चाहिए।

गुडूचि अमृत के समान हितकर है। इसके सेवन से अनेक भयंकर रोगों का नाश होता है। आमवात मे इसका सेवन मुक्तहस्त से किया जाता है।

चित्रक

चित्रक सार निर्माण मे चित्रक की मूल का प्रयोग किया जाता है।

चित्रकमूल क्षुधावर्द्धक, पाचक, अर्शनाशक तथा वाताजीर्ण, शोथ, अतिसार, त्वक्रोग और आमनाशक है।

चित्रकमूल का प्रयोग ग्रहणि के विकारों मे बहुत उपयोगी है। ग्रहणिशोथ, ग्रहणि शैथिल्य, ग्रहणिदाह, अन्त्रशोथ, आमज अन्त्र शैथिल्य, उदरच्छदाकला शोथ, उसकी जडता और वात प्रकोप और प्रसर मे चित्रक प्रवाही का प्रयोग प्रशस्त है।

वात-कफ के रोगों मे चित्रक प्रवाही का प्रयोग सर्वदा लाभप्रद होता है। यकृद्-प्लीहा और अजीर्ण विकारों मे न्यूनाधिक मात्रा मे अकेले या अन्य पाचक, वातनाशक, मूत्रल और ज्वरनाशक प्रवाहियो के साथ मिश्रित करके इसका प्रयोग किया जाता है। चित्रक पित्त का निस्सरण करनेवाला विशिष्ट द्रव्य है अतः पित्त क्षीणता और वात-पित्त वृद्धि मे इसका प्रयोग अवश्य लाभदायी है।

यदि चित्रक प्रवाही का पर्याप्त मात्रा मे दिन मे ४-६ वार प्रयोग किया जाय तो ऋतुशूल नष्ट होता है और ऋतुस्राव यथोचित होता है।

जम्बु

सार निर्माण के लिए जम्बु त्वक् का भी प्रयोग होता है और जामुन की गिरी (गुठली को फोड कर निकाली हुई गिरी) का भी। इन दोनो का भिन्न भिन्न निर्माण करके प्रयोग में लाना अधिक हितकर है। जम्बुत्वक् रस मे कपैली और मधुर है। इसके सेवन से श्रम, पित्त, दाह, कण्ठशोथ, कृमि, श्वास, कास आदि रोगो का नाश होता है तथा यह संग्राही है।

जम्बु के फल वातल, ग्राही, कफ–पित्त नाशक और रोचक है। जामुन की गिरियों का प्रवाही सार निर्माण करके प्रयोग में लाने से अनेक प्रचलित और प्रसिद्ध औषधों की अपेक्षा शीघ्र मधुमेह रोग का नाश किया जा सकता है।

जम्बुत्वक् सार को आम्रत्वक् सार और अर्जुनत्वक् सार के साथ मिलाकर प्रयोग में लाने से रक्तार्श, अति ऋतुस्राव, रक्तपित आदि रक्तपितज विकारों का नाश होता है।

जम्बु बीज प्रवाही का मधुमेह पर वर्षों प्रयोग कर देखा गया है कि बहुमूत्र, अजीर्ण, शरीर दौर्वल्य, आलस्य और मधुमेह के लिए यह वस्तुतः प्रशस्त औषध है।

जीवन रसायन अर्क [सि. यो सं.]

वनावट—कपूर १० तोले, पीपरमेंट के फूल ५ तोले, थाइमोल (अजवायन के फूल) ५ तोले, वेंजोइक एसिड (लोबान के फूल) २॥ तोले ले। पहले कपूर, पीपरमेंट और थाइमोल को मिलावे। जल हो जाने पर एसिड मिलादे।

मात्राः—२ से ५ बूंद तक दिन मे ३ से ४ वार बतासे मे या शक्कर के साथ या जल मे देवे।

अनुपान—हैजे में आध आध घण्टे पर बतासे मे देते रहें। जल बहुत थोडा थोडा (चमच्च से) पिलावे। और रोगों मे दिन में २ से ३ बार दे। दांत और दाढ के दर्द मे फोहा रखे और २ से ५ बूंद तक जल के साथ पिलावे। त्वचा रोग में ८ गुणा तिल का तेल मिलाकर मालिश करें और ३ बार २–४ बूंद जल मे मिलाकर पिलावे। कर्णरोग मे १ माशा तिल का तेल गरम करे, निवाया रहे, तब उसमे चौथा हिस्सा अर्क मिलाकर २–२ बूंद कान में डाले।

उपयोग—यह अर्क हैजा, अतिसार, मन्दाग्नि, खांसी, अरुचि, उदरशूल, वमन, रक्तविकार, आमवात, अजीर्ण, कर्णपीडा, शिरदर्द, ज्वर, कफविकार, जुकाम, डाढ मे चीस चलना, दांतो की पीडा, कण्डू आदि को दूर करता है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

ज्वरहर अर्क [सि. यो. सं.]

बनावट—नौसादर और चूना १०-१० तोले लेकर एक चीनी-मिट्टी के बरतन में डाले। ऊपर से ईख का सिरका या एसेटिक एसिड या सल्फ्यूरिक एसिड १०% २० तोले डाले। झाग उतर जाये तब जल २ सेर मिलाकर रहने दे। जल ऊपर से स्वच्छ हो जाय तब बोतल मे भर लेवें। [आ. नि. मा.]

मात्राः—१ से २ तोले तीन तीन घण्टे के बाद ३ बार सौंफ का अर्क अथवा जल मिलाकर पिलावे।

उपयोग—इस अर्क के सेवन से नवीन ज्वर पसीना आकर सत्वर उतर जाता है। पेशाब साफ आता है। कफप्रधान ज्वर, अजीर्ण ज्वर और इन्फ्ल्युएञ्जा में यह उपयोगी है।

तुलसी

तुलसी प्रवाही सत्व या घन तैयार करने के लिए या तो अकेले पत्रों का प्रयोग करे या सम्पूर्ण तुलसी क्षुप (पञ्चांग) को ही काम में ले।

तुलसी पत्र कफनाशक, कफ विलयक, श्लेष्मकला दोषनाशक, श्लेष्मकला शोथ नाशक, आमाशय क्षोभ, दाह, शोथ और ज्वर नाशक है। तुलसी प्रवाही के प्रयोग से पेट की मेदज ग्रन्थियो के विकारो का नाश होता है। वात-कफ ज्वर, आमवात ज्वर और कफ ज्वर के लिए तुलसी प्रवाही का प्रयोग सर्व श्रेष्ठ है। तुलसी प्रवाही आमवात ज्वर मे कालीमिर्च के चूर्ण के साथ दी जाय तो शीघ्र लाभ करती है।

तुलसी के पञ्चांग से तैयार हुई प्रवाही ज्वर नाशक, कीटाणुनाशक और मलेरिया के विष का नाश करनेवाली है। इसका प्रयोग श्वास-संस्थान के उपद्रवो, पूयज विकारो, विषमज्वरों, कालाज्वर, प्रतिश्याय, शीत व्याधि और अज्ञात कारण के ज्वरों पर होता है।

धमासा [धन्वयास]

धमासा रस में कटु, तिक्त, अम्ल, मधुर, क्रिया में क्षारीय, वीर्य मे ऊष्ण और प्रभाव मे वात-पित्त नाशक, ज्वर, गुल्म और प्रमेह नाशक है।

धन्वयास क्षुप सहज रेचक, मूत्रल और कफ विलयक है। धमासा प्रवाही का प्रयोग पित्तज्वर, वात-पित्त ज्वर, मूत्रकृच्छ्रता और कोष्ठबद्धता मे लाभप्रद है। मूत्रल और वातनाशक होने के कारण धमासे का प्रयोग वस्तिदाह, वस्तितोद और आध्मान मे भी किया जाता है।

नीम

प्रवाही निर्माण के लिए नीम की अन्तर्छाल और मूलत्वक् का प्रयोग करना चाहिए।

नीम अनेक गुणों के लिए प्रसिद्ध वृक्ष है। नीमकी छाल वीर्य में शीत, रस मे तिक्त, पाक में लघु और प्रभाव मे व्रण, कृमि, शोथ, कफ, विष और पित्त नाशक तथा हृद्दाह को शान्ति प्रदान करनेवाली है।

नीम प्रवाही का प्रयोग ज्वर, दौर्बल्य, रक्तदोष, हृद्दाह और गलगण्ड में किया जाता है। फिरङ्ग रोग की प्रारम्भावस्था मे इसके प्रयोग से फिरङ्ग का नाश होता है तथा इसकी अन्य अस्वथाएं शरीर में उत्पन्न नहीं होने पातीं। नीम प्रवाही शरीर में अनेक प्रकार से प्रविष्ट हुए विषो का नाश करती है।

पित्तज विकारों के लिए नीम प्रवाही का प्रयोग प्रशस्त है।

पर्पट

पर्पट पित्त, रक्तपित्त, श्रम, तृष्णा और कफ ज्वर नाशक है। यह संग्राही, शीतल, तिक्त और दाहनाशक है।

पर्पट प्रवाही वात-पित्त ज्वर में अधिक उपयोगी है और अधिकतर जहां वात और पित्त प्रकोप के कारण उदर मे क्षोभ उत्पन्न हो गया हो और वात नाडियों में उग्रता हो, वहां इसका प्रयोग सब प्रकार से हितकर है।

पर्पट प्रवाही का प्रयोग पाण्डु मे काल्मेघ प्रवाही के साथ, पित्तज्वरों मे चन्दन के क्वाथ के साथ और वातज्वर में गुडूची प्रवाही के साथ करना चाहिए। पर्पट पाण्डु के लिए श्रेष्ठ औषध है।

पाठा (अम्बष्ठा)

पाठा तिक्त, गुरु, ऊष्ण, वात पित्त ज्वर नाशक, भग्न संधानकारी; पित्त, दाह, अतिसार और शूलनाशक है।

पाठा प्रवाही का प्रयोग ज्वर, अतिसार और मूत्र रोगो मे किया जाता है। उदर की निर्बलता और पित्त विकृति में यह सर्वदा लाभप्रद है।

पाठा प्रवाही का प्रयोग मूत्र के पित्तज रोगों में हितकर है। ज्वर की ऐसी परिस्थिति मे जहां ज्वर की उग्रता और जीर्णता के कारण मूत्रपिण्ड, वस्ति और उदर की श्लेष्मकलाओ

मे दाह, क्षोभ और प्रदाह रह जाय, तब पर पाठा प्रवाही का अमृतारिष्ट के साथ प्रयोग करना चाहिए।

आमाशय के वात–श्लेष्मज विकारों में यथा आमाशय आक्षेप, आमाशय क्षोभ, आमाशय कोथ और आमाशय की ग्लानि में पाठा प्रवाही उपयोगी है।

वातज उदर रोगों मे चविकासव के साथ मिश्रित कर दे। पाठा प्रवाही आध्मान, अजीर्ण और अन्त्रक्षोभ का नाश करती है।

बिल्व

बिल्व फल का पका हुआ गूदा सहज रेचक है। इसके प्रयोग से उदर में दीर्घ काल से चले आने वाला वातज अजीर्ण नष्ट होता है।

बिल्व प्रवाही का निर्माण करते बिल्व फल का अपक्व गूदा प्रयोग में लाना चाहिए। अपक्व गूदा संग्राही है और आमातिसार तथा प्रवाहिका में बहुत ही उपयोगी है।

बिल्व प्रवाही उग्र और पुरातन संग्रहणी में लाभप्रद है। अतिसार, प्रवाहिका और आम संग्रह के कारण होनेवाले आमज क्षय में बिल्व प्रवाही प्रशस्त फल देती है।

बिल्व प्रवाही का प्रयोग अन्त्रातिसार और संग्रहणी जन्य शिथिलता पर बहुत फलप्रद होता है। जहां वातसंग्रह के कारण उदर मे आलोटन सा होता हो और आम द्वारा अवरुद्ध वात बाहर न निकलकर आध्मान उत्पन्न कर देती हो वहां पर भी बिल्व प्रवाही का प्रयोग लाभप्रद होता है।

संग्रहणी की उग्र अवस्था मे बिल्व प्रवाही को इन्द्रयव या कुटज प्रवाही के साथ मिश्रित करके प्रयोग मे लाना चाहिए।

ब्राह्मी

ब्राह्मी मस्तिष्क विकारों के लिए एक अति प्रसिद्ध औषध है। युगों पूर्व से आज तक इसकी क्रिया यथापूर्व होती चली आ रही है। ब्राह्मी को विविध औषध रूपो मे प्रयोग मे लाते है।

सार निर्माण के लिए ब्राह्मी के पत्रों का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त होता है। ब्राह्मी रस में तिक्त, कषाय, मधुर, वीर्य मे हिम, पाक में लघु, प्रभाव में मेधावर्धक और रसायन है। ब्राह्मी के सेवन से स्मृति बढती है। इसके सेवन से कुष्ट, पाण्डु, प्रमेह, रक्तपित और पितज–कास का नाश होता है।

ब्राह्मी प्रवाही वातनाडी पोषक, उन्माद, अपस्मार और कण्ठ कर्कशता नाशक है। मस्तिष्क के अधिकतर विकारो का नाश करने से लिए ब्राह्मी प्रवाही का उपयोग

हितावह है। इसके सेवन से मस्तिष्क की अस्थिरता, स्मृतिभ्रंश, मस्तिष्कदाह और मन-खिन्नता आदि रोगो का नाश होता है।

बुद्धि वृद्धि के लिए ब्राह्मी का सेवन सदा प्रगरत रहा है।

मुस्तक [भद्र मुस्तक]

प्रवाही सार निर्माण के लिए अनूपदेश मे उत्पन्न हुए नागरमोथे का प्रयोग करना चाहिए।

नागरमोथा रस में तिक्त-कषाय, वीर्य में शीत तथा प्रभाव मे पाचक, पित्तज्वर नाशक और ग्राही है।

मुस्तक प्रवाही हृद्य, आमाशय विकार नाशक, शोषक और ज्वरघ्न तथा मूत्रल है।

मुस्तक प्रवाही को मुण्डी प्रवाही के साथ मिश्रित कर अपस्मार मे देने से शीघ्र लाभ होता है। मुस्तक प्रवाही का प्रयोग पूयमेह और फिरङ्गज दाह मे भी उपयोगी सिद्ध होता है।

विविध प्रवाहियों के साथ मिलाकर मुस्तक प्रवाही का प्रयोग किया जाता है।

मञ्जिष्ठा

मञ्जिष्ठा रस में मधुर-कषाय, वीर्य में ऊष्ण, पाक मे गुरु तथा प्रभाव मे व्रण, प्रमेह, ज्वर, कफ, विष और नेत्ररोग नाशक तथा रक्तशोधक है।

मञ्जिष्ठा शोधक, संकोच नाशक, दाहनाशक तथा मूत्रमार्ग शोधक है।

मञ्जिष्ठा प्रवाही का रक्तशोधन के लिए प्रचुर प्रयोग होता है। फोडा, फुन्सी, रक्तदोष, रक्त विकृति जन्य दाह, रक्त विकृति जन्य ज्वर, रक्त विकृति जन्य नेत्ररोग और वात कफज विकारों को नष्ट करने के लिए इसका प्रयोग करते है।

मञ्जिष्ठा प्रवाही अनार्तव दोष, पाण्डु, रक्तपित, प्रदर और प्रमेह पर अच्छा प्रभाव दिखाती है। रक्तदोषो के लिए मञ्जिष्ठा प्रसिद्ध औषध है।

रास्ना

प्रवाही निर्माण के लिए रास्ना के मूल अथवा पत्रो का प्रयोग करना चाहिए।

रास्नामूल गंध युक्त तिक्त होती है। इसका प्रयोग आमवात और इसके अनुबंधियों मे किया जाता है। रास्ना प्रवाही वात-कफ रोगो मे प्रशस्त है। फिरङ्ग और पूयमेह की अन्तिम दशाओं मे जब उनका विष सर्व शरीर मे फैल कर अंग प्रत्यंग और विशेषतः संधियों

में वेदना, शोथ और वेदना युक्त शोथ उत्पन्न कर देता है तब रास्ना प्रवाही अपने आम-नाशक, संस्वेदक, कफ वात नाशक, पाचक और मूत्रल गुणों से शीघ्र और अच्छा लाभ पहुंचाती है। वातकफज अन्य रोगों मे इसका प्रयोग अन्य आवश्यक प्रवाहियों को मिलाकर किया जाता है।

रास्ना प्रवाही आमवात के लिय उत्तम औषध है।

लोध्र

लोध्र प्रवाही निर्माण मे इसकी छाल का प्रयोग करना चाहिए।

लोध्र की छाल रस मे कषाय, वीर्य मे शीत, पाक में लघु, प्रभाव में वात, कफ, रक्तदोष, चक्षु विकार, विष शोथ और ज्वर नाशक है।

लोध्र प्रवाही संकोचक, दाह शोथ नाशक, स्रावनाशक तथा श्लेष्मकला शोषक और व्रणरोपक है। इसके सेवन से उदर और गर्भाशय की श्लेष्मकलाओं के दूषित स्राव नष्ट होते है, व्रणशोथ का नाश होता है तथा श्लेष्मकला शैथिल्य द्वारा अंगों मे उत्पन्न हुई विकृति नष्ट होती है।

लोध्र प्रवाही अन्त्रकला शैथिल्य के कारण उत्पन्न होनेवाले आम विकार, अन्त्रकला के दुष्ट और अतिग्रन्थि स्राव तथा योनि श्लेष्मकला शैथिल्य से होनेवाले प्रदरादि विकार तथा व्रणं, शोथ आदि रोग नष्ट होते है। यह श्लेष्मकलाओं का संकोच करके उनमे शक्ति का संचार करती है।

लोध्र प्रवाही जिस प्रकार गर्भाशय और जरायु की श्लेष्मकला के शैथिल्य जन्य विकारों का नाश करती है वैसे ही यह मसूडों के शोथ, मुख पाक, मुख दुर्गंध आदि मुख श्लेष्म-कला विकार मे उत्पन्न होनेवाले रोगों का नाश करती है।

वच (वचा)

वच की गाठों का वच प्रवाही निर्माण मे प्रयोग किया आता है।

मस्तिष्क के विकारो को दूर करनेवाली वच एक प्रसिद्ध औषध है। 'वच को पचा जाने वाले मेघावी हो जाते है' यह अनेक शास्त्रकारो का कथन है।

वच तीक्ष्ण, कटु, ऊष्ण कफरोग, गन्थिदोष, शोथ, वातज्वर और अतिसार नाशक है। वचा वामक और उन्माद नाशक है।

वचा प्रवाही का १–२ मास सेवन करनेवाले स्मृतिभ्रष्ट पुरुष स्मरण शक्ति प्राप्त करते हैं तथा बुद्धिहीन मेधावी और तीव्र धारणा शक्ति वाले बन जाते है।

वच प्रवाही आक्षेप नाशक, वातनाशक, उदर दोष नाशक और कृमिनाशक है। इसके सेवन से कफ, आम, वात और कृमिदोष नष्ठ होते है।

मैने देखा है कि शीत द्वारा विकृत हुए कफ–वातज शोथ–युक्त और भंग–स्वर कंठ रोग में वच ग्रन्थियों को चूसने से अन्य औषधियों की अपेक्षा शीघ्र स्वरभंग नष्ट होता है, इसलिए यदि वचा प्रवाही का श्लेष्मकला शैथिल्य और स्वरभंग द्वारा उत्पन्न हुए कंठरोग, कास, मुख दुर्गंध आदि पर प्रयोग किया जाय तो अवश्य लाभ होगा।

वच प्रवाही य्योषापस्मार, नाडी विग्रह और उदर के वातप्रधान रोगों के लिए श्रेष्ठ है। इसका प्रवाहिका, जीर्ण संग्रहणी, मस्तिष्क दौर्बल्य और कंठदोष जन्य कास आदि रोगों पर प्रयोग किया जाता है।

वासा (अडूसा)

वासा प्रवाही के निर्माण के लिए वासा के पत्तों और मूल का प्रयोग करना चाहिए।

वासा वीर्य मे शीत, रस में तिक्त और कटु, पाक मे लघु, प्रभाव मे कासहर, पित्तजित, कामला, ज्वर, श्वास और क्षयरोग नाशक है। यह स्वर प्रसादक, रक्त पित्तनाशक, वर्ण कारक; अरुचि, कुष्ट, तृष्णा और वान्ति नाशक है।

वासा प्रवाही उपरोक्त रोगो को अपने प्रभाव द्वारा मिटाती है, यह कंठ पोषक, श्वास–कास–नलिका शोधक; जीर्णज्वर, प्रतिश्याय, जीर्ण कास–श्वास आदि नाशक और रक्तपित्त नाशक है।

उर्द्धगत रक्तपित्त मे वासा प्रवाही प्रसंशनीय काम करती है, अतः रक्तपात चाहे अलग २ कान, नाक, आंख और मुख से हो चाहे इन चारों से एक ही साथ हो, इसका प्रयोग शीघ्र लाभ पहुंचाता है।

वासा प्रवाही श्वास को अपने आक्षेप नाशक गुणों से विशेष लाभ पहुंचाती है। श्वास–कास संबंधि सभी विकारो पर इसका निश्चिन्तता पूर्वक प्रयोग किया जाता है।

वृद्ध दारु (वृद्ध दारकः)

प्रवाही निर्माण के लिए वृद्धदारु की मूल का प्रयोग किया जाता है।

वधारा पिच्छल, वात–कफनाशक, बलकारक, कास और आमदोष नाशक है।

वृद्धदारु–प्रवाही विष नाशक, दाह नाशक, वीर्यवर्द्धक, वातकफज व्याधि नाशक तथा दौर्बल्य नाशक है।

इस प्रवाही के सेवन से पुरातन पूयमेह और मूत्राशय शोथ तथा दाह का नाश होता है।

शतावरी

प्रवाही निर्माण में शतावरी मूल का प्रयोग किया जाता है।

शतावरी एक प्रसिद्ध वीर्यवर्द्धक औषध है। यह वीर्य मे शीत, रस में मधुर, पाक में गुरु और प्रभाव में वृष्य, पित्तनाशक तथा रसायन है।

शतावरी प्रवाही प्रसादक, मूत्र दाहनाशक, वाजीकरण, आक्षेप नाशक, शक्तिवर्द्धक, पित्तनाशक होने के कारण पित्तजन्य अतिसार और संग्रहणी नाशक तथा रसायन है।

वीर्य हीन क्षीण पुरुषों को इसका सेवन सर्वदा लाभप्रद होता है। इसके सेवन से शरीरभार की वृद्धि होती है, ग्रन्थियो का दाह नष्ट होता है और उनमे सक्रियता उत्पन्न होती है। यह विशेषतया पित्तप्रधान रोगियो के लिए श्रेष्ठ है।

शरपुंखा

प्रवाही निर्माण मे शरपुंखा की मूल, मूलत्वक और वीजो का प्रयोग होता है।

शरपुंखा रस मे कटु, वीर्य मे ऊष्ण, पाक मे लघु और प्रभाव मे कृमि और वातनाशक है। शरपुंखा प्रवाही वातानुलोमक, मूत्रल, कासनाशक, ज्वरनाशक तथा यकृद्-प्लीहा और वृक्क विकार नाशक है।

शरपुंखा प्रवाही साधारण कोष्ठ शोधक है अत' इसके सेवन से शूल, कोष्ठवद्धता अर्श और मूत्राशय के विकारो का नाश होता है।

शरपुंखा प्रवाही हृद्य है। इसके सेवन से रक्त की शुद्धि होती है तथा यह विष और कृमिनाशक है। यह शूल, आक्षेप, वक्ष-जडता तथा मूत्रावरोध के लिए उत्तम औषध है।

शंखपुष्पी

प्रवाही निर्माण के लिए शंखपुष्पी के सम्पूर्ण क्षुप (पञ्चाङ्ग) का प्रयोग किया जाता है।

शङ्खपुष्पी वीर्य मे शीत, रस मे तिक्त, पाक मे लघु, प्रभाव मे मेधावर्द्धक, स्वरवर्द्धक, सहज रेचक तथा मानसिक रोगो का नाश करनेवाली है।

शङ्खपुष्पी प्रवाही का प्रयोग कोष्ठशोधन, नाडी पोषण, बुद्धिवर्द्धन और अपस्मार, उन्माद तथा मस्तिष्क विकारों मे किया जाता है।

यह विविध स्वरूपो मे प्रचलित औषध है।

सर्पगन्धा प्रवाही

देश विदेशों मे सर्पगंधा की, विविध नाडी उत्तेजना जन्य विकारों पर शीघ्र और

प्रशस्त रोग प्रशमक क्रियागुण के कारण, दिनोदिन गति पूर्वक कीर्ति बढ रही है। हृदय की उग्र क्रिया, रक्तचाप की वृद्धि और क्रोध, आवेश या उद्वेगजन्य संताप के कारण अनिद्रा आदि रोगो पर इसकी जिस शुभ प्रकार से क्रिया होती है वह चिकित्सा जगत के लिए बहुत ही संतोष का विषय है।

सर्पगन्धा प्रवाही का निर्माण करते इसकी मूल का प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रवाही के प्रयोग से मस्तिष्क की दुर्बलता दूर होती है और नाडियो की उत्तेजना का नाश होता है।

चूर्ण या टिकडियो की अपेक्षा सर्पगन्धा प्रवाही अधिक लाभप्रद होती है, कारण कि इसके निर्माण मे उत्पन्न हुआ मद्यार्क हृदय और धमनियों को सर्पगन्धा की अवसादक क्रिया से सुरक्षित रखता है और उनकी आन्तरिक क्रिया–विकृति का विनाश करता है, इसप्रकार एक ओर यह रक्तचाप को कम करती है जबकि दूसरी ओर इसकी रक्तचाप नाशक तीक्ष्ण क्रिया से शरीर को सुरक्षित रहता है।

इस प्रवाही का प्रयोग मस्तिष्क की उत्तेजना से होनेवाले शारीरिक और मानसिक सभी विकारों पर किया जाता है। उग्रता जन्य विकारो पर अधिक मात्रा मे प्रयोग श्रेयस्कर होता है, जबकि शैथिल्योत्पादक विकारो पर इसको अल्प मात्रा में प्रयोग मे लाते है।

सर्पगन्धा प्रवाही का प्रयोग प्रबल ज्वर मे भी अच्छा काम करता है। यह उग्र संताप से होनेवाली अशान्ति, मोह और प्रलाप को दूर करती है तथा रोगी को गाढ निद्रा मे सुला देती है। इसकी इस निद्राकारक शक्ति से रोगी का ज्वर वेग भी कम हो जाता है।

व्योषापस्मार और मूर्च्छा पर इसकी क्रिया सराहनीय होती है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि वनस्पति अगणित है अतः प्रवाहियां भी इतनी अगणित बन सकती है। सम्पूर्ण वनस्पतियो के यथावश्यक अंगों की प्रवाहियां बनाकर प्रयोग मे लाई जा सकती है और यह भी अत्युक्ति नही है कि इनके गुण शीघ्र और बृहत्प्रमाण मे होते है।

सम्पूर्ण वनस्पतियो के विविध अंगो का प्रवाहियो के गुणो का वर्णन अवश्य वैद्य समाज के लिए कल्याणकारक होता, परन्तु स्थानाभाव के कारण यहां उदाहरण स्वरूप से ही कुछ का आंगिक वर्णन दे दिया गया है। यदि वैद्य समाज की रुचि इधर अधिक आकर्षित हुइ और ये प्रवाही सारो को अधिक प्रयोग मे लाने लगे तो अवश्य इनके लिए नई २ पुस्तको का निर्माण होगा। समय सर्वदा काया पलटता चलता है। औषध के

इतिहास को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि समय समय पर औषधों के विभिन्न स्वरूप बदलते और बढते रहे हैं, ये परिवर्तन केवल तत्कालिक समाज के जीवन, आहार विहार और खानपान के अनुरूप होते है।

प्रत्येक औषध तत्व के घन सार का गुण उसके प्रवाही सार के समान ही होता है, अन्तर केवल इतना होता है कि प्रवाही मद्यसार कीउपस्थिति के कारण शीघ्र क्रिया करते है और सभी न्यूनाधिक मात्रा मे पाचक और मूत्रल होते है। घन सार केवल अपने सत्व के आधार पर क्रिया करते है अतः इनकी क्रिया मन्द होती है, परन्तु एक बार प्रारम्भ होने के बाद ये भी प्रवाहियो की तरह ही लाभप्रद होते है।

अडूसी घन—(वासा घन)–कंठ शोधक, स्वरवर्द्धक, कास, श्वास, दाह, रक्तपित्त, तृष्णा, शोष आदि के लिए श्रेष्ठ है।

अशोक घन—प्रदर, प्रमेह, जीर्णज्वर, गर्भाशय–कला शैथिल्य आदि के लिए हितकर है।

कालमेघ घन—यकृद् प्लीहा विकार, अजीर्ण, जीर्णज्वर आदि मे हितकर है।

कुटज घन—अतिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका, रक्तातिसार, अर्श और अधोगत रक्तपित्त मे हितकर है।

कुटकी घन—रेचक, दाह, ज्वर, कोष्ठबद्धता, अन्त्र शैथिल्य आदि मे लाभप्रद है।

कुचलात्वक घन—वात नाडियो की शिथिलता या विक्रिया के कारण उत्पन्न हुए अन्त्र के रोग यथा–अग्निमान्द्य, निर्बलता, आध्मान, अजीर्ण आदि के लिए लाभप्रद है।

गुडूचि घन—जीर्णज्वर, वात–कफ ज्वर, आमवात, मूत्राम्लता आदि के लिए श्रेष्ठ है।

गुडूचि सत्व (तात्विक सार)—दाह, ज्वर, अम्लपित्त, प्रदर, भ्रम, मूर्च्छा, हृद्दौर्बल्य आदि का नाश करता है।

ब्राह्मी घन—मानसिक रोगों लिए श्रेष्ठ है तथा मस्तिष्क विकारो को मिटाता है।

दशमूल घन—वात–कफ विकारो का नाश करता है।

सप्तपर्णत्वक घन—विषमज्वर, दाह, उदर शैथिल्य आदि के लिए उत्तम है।

भैषज्य-सार-संग्रह

चतुर्दश प्रकरण

तैल (तेल)

संसार में दो प्रकार के द्रव्य है, कुछ चिकने (स्नेह युक्त) और कुछ रूखे (स्नेह हीन)। जिन द्रव्यों में चिकनाहट (स्नेह) है वे स्नेह युक्त कहे जाते है। स्नेह के चार भेद है, घृत–तेल–वसा और मज्जा। घृत का वर्णन घृत प्रकरण में किया गया है। यह तेल प्रकरण है। घृत और तेल में प्राप्ति से लेकर प्रयोग पर्यन्त अनेक प्रकार की भिन्नताएं हैं। घृत प्राणियों के दूध मे से या दूध को दही बनाकर मथन क्रिया पश्चात् प्राप्त होते है। तेल स्नेहल जन्तुओं और वनस्पतियों मे से पेलकर (कोल्हु या मशीन द्वारा अथवा अन्य विविध यान्त्रिक या रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा) निकाले जाते हैं। घृत सभी सौम्य और शीतवीर्य होते हैं, तेल लगभग सभी ऊष्ण और तीक्ष्ण होते हैं। घृत का प्रायः आन्तरिक प्रयोग होता है और तेल अधिकतर अभ्यङ्ग, परिषेक और अवगाह में प्रयुक्त होते है।

इस प्रकरण में हमारा विषय प्रचलित तेल से नितान्त भिन्न है। यहां केवल औषध तेलों का वर्णन किया जायेगा। औषध तेल अन्य तेलो से अपनी औषध क्रिया के कारण भिन्न है। तेलो को शास्त्रीय विधि पूर्वक औषधो के योग द्वारा परिपक्व किया जाता है और परिपाक क्रिया के पश्चात ये तेल उन औषध योगो का नाम ग्रहण कर लेते है अथवा अपने विशिष्ट गुणों के नाम से पुकारे जाते है। इन तेलों की परिभाषा इनके गुणों के अनुरूप सामान्य तेलों से भिन्न होती है। औषधो द्वारा परिपक्व तेल औषध तेल कहे जाते है, परन्तु, क्यों कि परिपाक पश्चात भी इनका स्वरूप तेल का ही रहता है अतः इन्हे संक्षेप में 'तेल' शब्द से पुकारते हैं।

साधारणतः आन्तरिक प्रयोग और बालो मे लगाने के लिए तेलो को सम्मूर्च्छित करके प्रयोग मे लाया जाता है, अर्थात तेलो को ऐसे द्रव्यो के साथ पकाया जाता है कि उनमें सर्वथा परिवर्तन हो जाय अथवा अपने अन्तर्बाह्य गुणो को छोडकर भिन्न गुणवाले बन जांय। इस क्रिया के लिए समान्यतः जल का प्रयोग किया जाता है। मन्दाग्नि पर तेल को कढाई में चढाकर उस पर जल को छिडका जाता है, इससे तेल फट जाता है अर्थात तेल किसी

मात्रा में अपने आन्तरिक गुणो का त्याग कर देता है। यथाः—सरसो के तेल को मूर्छित करने के लिए आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेल की छाल, अनार की छाल, नागकेशर, पीपल, जीरा, सुगधवाला और बहेडा आदि द्रव्यों को समभाग लेकर उन्हे पानी डाल डाल कर घोटे और चटणी (कल्क) तैय्यार होनेपर इस कल्क को (१ सेर तेल के लिए १। तोले कल्क) कढाई मे मन्दाग्नि पर चढाए हुए तेल में थोडा २ डालते जाये। इस क्रिया से तेल मूर्छित हो जायगा।

इसी प्रकार तिल तेल को सम्मूर्छित करने के लिए तेल को कढाई मे मन्दाग्नि पर चढावे और उसमे निम्नलिखित द्रव्यो का कल्क (पानी के साथ घोटकर बनाई हुई चटनी) तेल के प्रति सेर के हिसाब से १। तोला डालते जाये, कुछ ही समय मे तेल संस्कार युक्त हो जायेगा।

कल्क द्रव्यः—मञ्जिष्ठा, हल्दी, लोध्र, नागरमोथा, नलिका, हैड, घी कुमार, वड की जटा और सुगन्धवाला। इनमें से तेल का सोलहवां भाग मजीठ और मजीठ का चौथा भाग अन्य सब द्रव्य ले।

एरण्ड तेल सम्मूर्च्छन के लिए मजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, जयन्ती, सुगन्धवाला, खजूर, वड की दाढी, हल्दी, दारुहल्दी, नलिका, केतकी, दही और कांजी। १ सेर तेल मूर्छित करने के लिए इनमें से प्रत्येक वस्तु ४—४ माशे लेनी चाहिए।

तेलो का परिपाक घृतो के समान ही क्वाथ और कल्क के योग से होता है, यह सामान्य मार्ग है, परन्तु जहां परिपाक विशिष्ट प्रकार से किए जाते है वहां आचार्यों के उन तेलों के निर्माण के निर्दिष्ट मार्गों पर ही चलना होता है।

तेलों का प्रयोग अन्तर्बाह्य दोनो ही प्रकार होता है। अधिकतर वातदोषो के नाश के लिए तेलो को उपयोग मे लाया जाता है। वायु रूक्ष है, तेल स्निग्ध है। वायु शीत है, वातनाशक तेल सभी ऊष्ण है। तेल वात के विरुद्ध क्रिया करता है और यदि उसकी शक्ति वात की शक्ति से अधिक हुई तो वात पर विजय प्राप्त कर लेता है।

शीत तेल को पित्त संशमन के लिए प्रयोग मे लाते है। ब्राह्मी, भृङ्गराज, चन्दन इत्यादि द्रव्यो के योग से बनाये हुए तेल शीत क्रिया करते है अतः योगानुरूप तेल पित्तनाशक भी होते है।

रूक्ष क्रिया करने वाले तेल कफ नाश के प्रयोग मे आते है—सैंधवादि तैल, पिप्पल्यादि तैल इत्यादि तेलों का प्रयोग कफ संशमन के लिए होता है।

विधि पूर्वक बनाये हुए तैल सभी कीटाणुनाशक, व्रणरोपक, व्रणशोधक, त्वक प्रसादक, श्लेष्मकला पोषक और विकार नाशक होते है । यदि व्रणरोपण के लिए शास्त्र मे वर्णित व्रणरोपक तैलों का प्रयोग किया जाय तो ये आधुनिक व्रणरोपक औषधों की अपेक्षा शीघ्र लाभप्रद सिद्ध हो और किसी प्रकार की दाह, रुक्षता, विसर्प आद विकृतियां न होने पायें।

जिस प्रकार अन्य औषधियों के निर्माण मे शुद्ध द्रव्यो का उपयोग आवश्यक है वैसे ही इनके निर्माण के लिए भी शुद्ध, विकार रहित और सत्व युक्त पदार्थों को काम में लाना चाहिए। सत्व हीन पदार्थों के योग से बनाये हुए तैल शास्त्रोक्त क्रिया नही करते ।

अपामार्ग क्षार तैल [भा. भै. र. १८१]

(भै. र. । कर्णरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अपामार्गक्षार, अपामार्गक्षार का जल और तिल तैल।

प्रथम तैल में अपामार्ग क्षार का पानी मिला दे और उसे मन्दाग्नि अग्नि पर चढादें। जब कुछ काल तैल गरम हो जाय तब उसमें अपामार्ग क्षार कल्क रूप में डाले।

१ सेर तैल बनाने के लिए २ सेर अपामार्ग क्षार का जल और तैल का १६वां भाग (५ तोला) अपामार्ग क्षार कल्क के लिए लेना चाहिए । अपामार्ग-जल निर्माण के लिए २ सेर जल मे कल्क से चार गुणा (२० तोला) क्षार मिलाना चाहिए ।

प्रयोगः—यह तैल कर्णनाद और बहरेपन के नाश के लिए कान में डाला जाता है।

सं. वि.—अपामार्ग क्षार, ऊष्ण, दोष नाशक, कफ विलयक, वातनाशक और फुंसी इत्यादि का परिपाक करके फोडनेवाला है ।

तैल—वातनाशक, कण्डु, विसर्प, शोथ, रुक्षता, जडता, शिथिलता आदि का नाश करने वाला और व्रणशोधक तथा व्रणरोपक है ।

अपामार्ग क्षार तैल—वातनाशक, कफनाशक, शीतनाशक, दोषच्यावक और व्रणशोथ को पकाकर नष्ट करनेवाला है, अतः इसके प्रयोग से कान में उत्पन्न हुई वात-कफज विकृति शीघ्र नष्ट होती है ।

टिप्पणी—जिस तैल मे क्षार पडते है उन्हें बहुत बडे पात्र में पकाना चाहिए क्योंकि क्षार के कारण फेन अधिक आते है और तैल निकल जाने का भय रहता है । जब तैल मे फटे हुए दूध के समान छिछडे से दीखने लगें तब उसे सिद्ध समझना चाहिए। क्षार-सिद्ध-तैल की यही परीक्षा है ।

अर्क पत्र रस तैल [भा. भै. र. १८६]
(वृ. नि. र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सरसों का तैल १ सेर, आक के पत्तों का रस ४ सेर और हल्दी का कल्क २० तोला ले। तैल और अर्क पत्र रस को एकत्र कर मन्दाग्नि पर चढावें और कुछ क्षण पश्चात् (तैल-रस के मिश्रण में साधारण उवाल आने के वाद) इसमें कल्क (पानी डाल डाल कर सिल पर घोटकर वनाई हुई चटनी सी) को डालें। इस मिश्रण को तैल अवशेष पर्यन्त उवाले। जव पानी उड जाय (उवलते हुए द्रव्य की १-२ बूंद अंगार पर डाल कर देखे यदि बूंद पडते ही अंगार जल उठे तो तैल को पूर्ण सिद्ध समझें) तव तैल को उतार कर छानले और ठण्डा होने पर स्वच्छ शीशी मे भरकर रखले।

प्रयोगः—इस तैल के लगाने से पामा, कच्छु और विचर्चिका का नाश होता है।

सं. वि.—सरसों का तैल—रस मे कटु, वीर्य मे ऊष्ण, विपाक में कटु और प्रभाव में लेखन, दीपन, कफ, मेद और वातनाशक तथा कण्डू, कुष्ठ और कृमिनाशक है।

अर्कपत्र स्वरस—कटु, ऊष्ण, वातनाशक, दीपन; शोथ, व्रण, कण्डू, कुष्ठ नाशक और कृमिघ्न है।

हरिद्रा—कफ, पित्त, रक्तदोष नाशक तथा शोथ, कण्डू और व्रणनाशक है।

आंवले का तैल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

शुद्ध तिल तैल—१० सेर।

क्वाथ्य द्रव्यः—आवला ... ५ सेर।
खस .... . .१ सेर।
सुगंधवाला ...१ सेर।
नागरमोथा ....१ सेर।
सफेद चन्दन १ सेर।
जटामांसी ....१ सेर।

क्वाथ वनाने के लिए जल—१६० सेर।

कल्क द्रव्य—आमला .... ०॥। सेर।
खस ....१२ तोले।
सुगंधवाला.... .१२ तोले।
नागरमोथा .. .१२ तोले।

सफेद चन्दन ...१२ तोले।
जटामांसी ....१२ तोले।

क्वाथ्य द्रव्यो को जल में डालकर उबाले। जब उबलते जलीयांश पाव भाग (४० सेर) रह जाय तब उसे उतार कर छानलें।

इस क्वाथ मे तैल मिलाकर पुनः कढाई मे भरकर मन्दाग्नि पर चढाएं तथा कल्क द्रव्यों को पानी के साथ घोटकर इसमे डालदें और तैल अवशेष पर्यन्त इसे गरम करें। जलीयांश नष्ट होने पर तैल को उतारकर छानलें। तैल को ठंडा होने पर छाने और फिर शीशियों मे भरकर रखलें।

उपयोग—केशों को लम्बा करने, मस्तिष्क को शीतल, शान्त और आनन्दित रखने और मन को प्रसन्न रखने के लिए यह तैल हितावह है। बालो पर और खोपडी पर इसको घिसने से जू का नाश होता है, शिर पर उत्पन्न हुई फुंसी, व्रग और खुजली नष्ट होती है तथा मस्तिष्क शूल, मस्तिष्क दाह, मूर्च्छा, भ्रम, अनिद्रा आदि रोगो का नाश होता है।

आमला—शुष्क, तिक्त, अम्ल, कटु, मधुर, तुवर, केश्य और भग्न संधानक है। **उशीर**—शीतल, दाह हर, श्रम हर, पित्तज्वर नाशक और सुगंधिवर्द्धक है।

अन्य द्रव्य गंधवाहक, केश्य, मस्तिष्क पोषक, दाहनाशक और चक्षुप्रसादक है।

अरिमेदादि तैल [अरिमेदाद्यं तैलम्] (भा. भै. र. ८८६१)

(भै. र.; धन्वं. । मुखरोग; च. द.; यो. र.; वृ. मा. । मुख; शा. ध. । खं. २ अ. ९; ग. नि. । तैल; यो. त. । त. ६९)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—

क्वाथ्य—अरिमेद (कीकर-विलायती बबूल) की छाल ६। सेर लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे करें और उसे ३२ सेर जल मे चतुर्थांश (८ सेर) अवशिष्ट पर्यन्त पकाकर छानलें।

तैल—४ सेर (तिल तैल) ले

कल्क द्रव्य—मजीठ, लोध्र, यष्टि मधु, कीकर की छाल, खैर छाल, कायफल, लाख, बड की छाल, नागरमोथा, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्माक, लौंग, कंकोल, जायफल, पतंग की लकडी, गेरु, दालचीनी और धाय के फूल। प्रत्येक द्रव्य १।-१। तोले लेकर एकत्र पीसले।

उपर्युक्त क्वाथ में तैल मिलाकर उसे मन्दाग्नि पर चढादें और फिर उसमे कल्क डालकर धीरे २ करछी से हिलाते जांय। जब जलीयांश नष्ट हो जाय तब इसे उतार कर ठण्डा करे और छानकर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखले।

उपयोग—यह तैल मुख के रोगो के लिए श्रेष्ठ है। इसका गण्डूष धारण करने से जीर्ण विषज और दोषज मुखपाक नष्ट होते हैं तथा मुख की दुर्गन्धि मिटती है। इसके लगाने से मसूडे मजबूत होते है तथा दांतो और मसूडो के शीर्णदन्त, दन्त विद्रधि, शौषिर, शीताद, दन्त हर्ष, कृमिदन्त, चालन, दालन, अधिमांस और दुर्गंध आदि रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—मुख को स्वच्छ, दांतों को मजबूत और मसूडों को दृढ और स्वस्थ रखने के लिए तैल गण्डूष धारण करने का शास्त्रकारोंने अनेक स्थान पर आदेश दिया है। तैल स्नेह द्रव्य है। मुख की गुहा श्लेष्मकला प्रधान है। मुखके प्रत्येक स्थान को उदर और शरीर के स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ और स्वस्थ रखना आवश्यक है। प्रत्येक वस्तु में समान गुण द्रव्य संयोग से, गुण की वृद्धि होती है। श्लेष्मकलाएं स्नेहप्रधान है अतः मुख को शुद्ध और श्लेष्मकलाओ को शोथ, दाह और व्रण आदि विकारों से सुरक्षित रखने के लिए तैल गण्डूष सर्वदा लाभप्रद है। यह सामान्य तैल की बात है।

अरिमेदादि तैल विशिष्ट द्रव्यो से बना है। इसका प्रत्येक द्रव्य व्रणशोधक, व्रणरोपक, शोथनाशक, क्षोभनाशक, जीवाणुनाशक और विषनाशक है। इस कषाय रस प्रधान तैल के गण्डूष धारण से मुख मे श्लेष्म द्वारा उत्पन्न हुए विकार श्लेष्म के साथ २ नष्ट हो जाते है। दांत, मसूडे और लालाग्रन्थियों के दोष, इस तैल को मुख में धारण करने और लगाने से, नष्ट होते है।

अरिमेद—कषाय, ऊष्ण, तिक्त, भूतघ्न, मुखरोग, दन्तरोग, रक्तदोष, कण्डू, कृमि, कफ, शोथ, अतिसार, कास, विसर्प, कुष्ठ और व्रणनाशक प्रसिद्ध औषध है। इन्हीं गुणों से अन्य कल्क द्रव्य भी भरपूर है। अतः यह तैल, वात, पित्त, कफ, सन्निपात और भूतो के कारण उत्पन्न हुए मुख, दांत, मसूडे, लालाग्रन्थि आदि के विकारो के लिए श्रेष्ठ है।

कण्डुनाशक तैल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—४ सेर नवीन जीरा लेकर उसे साफ करके ३२ सेर जल में उबलने को चढादे। जब जलते २ जल चतुर्थांश (८ सेर) अवशिष्ट रहे तब उसे उतारकर छानले।

कल्क द्रव्य—सिंदुर १ सेर।

तैल—४ सेर (करंज तैल)।

क्वाथ मे तैल डालकर उसे मन्दाग्नि पर पकने के लिए चढादे, जब जलीयांश आधा रहे तव इसमे कल्क (सिंदुर १ सेर) मिलाकर पहले से भी अधिक मन्दाग्नि देकर पकाते

जाये और करछी द्वारा इस तैल को हिलाते जाय। जलीयांश के सूखने पर तैल को नीचे उतार ले और उसमे १ तोला शुद्ध मोम पिघला कर डालदें अथवा मोम रहित रहने दें। मोम के भाग से यह तेल मल्हम के समान हो जायगा और आसानी से लगाया जा सकेगा। ठण्डा होने पर इसे शीशियो में भरकर रखलें।

प्रयोग—यह तेल खुजली, दद्रु, जन्तु के काटने से उत्पन्न हुए शोथ या व्रण, विचर्चिका, कुष्ठ आदि के लिए उत्तम है।

सं. त्रि.—जीराः—ऊष्ण होने से द्रव (कण्डू इत्यादि के व्रणशोथ मे भरनेवाला तरल) का शोषण करता है, वात–कफ का नाश करता है और अपक्व व्रण का परिपाक करके फोड देता है।

करञ्ज तेल—तिक्त, सहज ऊष्ण, तीक्ष्ण, कुष्ठ, कण्डू, विचर्चिका और अन्य चर्मरोगो का नाशक है।

सिंदुर—ऊष्ण, विसर्प, कुष्ठ, कण्डू और विष नाशक है।

यह तैल त्वचा के रोगों के लिए उत्तम है। कण्डू की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अन्तिम दशा तक, परिपाक से लेकर शोधन और व्रणशोषण की सभी क्रियाओ के लिए यह हितकर है। इसका वात श्लेष्मजन्य विचर्चिका और विसर्प मे भी उपयोग करते है।

व्रण की सभी अवस्थाओं और भग्न द्वारा उत्पन्न हुए व्रणो पर भी रोपण के लिए इसका प्रयोग करते है।

---

० कनक तैल [भा. भै र. ८५२]

(भै र. । क्षुद्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—यष्टिमधु (मुल्हैठी) १ सेर लेकर अधकुटा करले और फिर उसे ४ सेर जल मे पकावे। जब १ सेर जल अवशिष्ट रहे तब उतार कर छानलें।

तैल—०। सेर (तिल तैल)।

कल्क द्रव्य—मुल्हैठी, फूल प्रियंगु, मजीठ, चन्दन, नीलोफर और केशर। प्रत्येक द्रव्य समान मिलाकर सब पांच तोले ले। इस कल्क द्रव्य के मिश्रित चूर्ण को सिल पर डालकर घोटें।

क्वाथ, तेल और कल्क को एक बर्तन मे एकत्र मिश्रित कर मन्दाग्नि पर पकावे। जब तैल अवशिष्ट रहे तब ठण्डा होने पर उसे छानलें और शीशी मे भरकर रखले।

उपयोग—इस तैल को नित्य रात को सोते समय मुख पर लगाने (मर्दन करने) से मुख की कान्ति बढती है तथा नीलिका और व्यंग (झांई) आदि सौन्दर्य नाशक विकारों का नाश होता है।

करञ्जादि तैल [भा. भै. र. ८५५]

(शा. ध. । म. खं. अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—करञ्ज, चीता, कन्हेर और चमेली प्रत्येक द्रव्य का अधकूटा चूर्ण १० तोला लें और उन्हें एकत्र मिश्रित कर ४ सेर जल में २ सेर जल अवशिष्ट रहने तक पकावें।

तैल—०॥ सेर (तिल का तैल) ले।

कल्क—करञ्ज, चीता, कन्हेर और चमेली प्रत्येक २॥-२॥ तोले, सिल पर जल के साथ घोटकर चटनी बनावें।

क्वाथ, तैल और कल्क को एकत्र कर पकावे। जलीयांश सूखने पर तैल को छानकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

उपयोग—इस तैल को खोपडी पर लगाने (मर्दन करने) से इन्द्रलुप्त (गञ्ज-बालों का गिरना) नष्ट होता है।

जिन स्त्री पुरुषों के बाल ऐसे ही उतरते हों उनके लिये यह लाभप्रद सिद्ध होगा।

कासीसादि तैल [भा. भै. र. ८६८]

(शा. ध. । म खं. अ. ९)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कासीस, कलिहारी, कूठ, सोंठ, पीपल, सेधानमक, मनसिल, कन्हेर, वायविडङ्ग, चीता, वासा, दन्ती, कडवी तोरई के बीज, धतूरा और हरताल, प्रत्येक द्रव्य १।-१। तोला ले एवं सेंहुड (सेड) और आक का दूध २०-२० तोला ले। इनके कल्क तथा ८ सेर गोमूत्र के साथ २ सेर तैल तैयार करें।

जलीय द्रव्य—गोमूत्र ८ सेर।

कल्क द्रव्य—कासीस, कलिहारी, कूठ, सोंठ, पीपल, सेधानमक, मनसिल, कन्हेर, वायविडङ्ग, चीता, वासा, कडवी तोरई के बीज, धतूरा और हरताल। प्रत्येक द्रव्य १।-१। तोले लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें और चूर्ण को आक के २० तोले दूध और २० तोले सेंहुड के दूध में मिला लें।

तैल—२ सेर (तिल तैल) ले।

गोमूत्र, कल्क द्रव्यों की पिष्टी और तैल को एकत्र कर पकावें। जलीयांश सूख जाने पर तैल को उतारकर छानलें और ठण्डा होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

उपयोग—इस तैल के लगाने से बवासीर के मस्से (अर्श) नष्ट हो जाते हैं।

इस तैल का उपयोग दीर्घ काल तक करने से अर्श नष्ट हो जाते हैं।

सं. वि.—इस तैल के द्रव्य दाहनाशक, व्रणशोथनाशक, कृमिनाशक, अर्श च्यावक शोषक तथा नाशक, वेदनान्तक तथा शोथ विलयक हैं। गुदा के बाहर निकले हुए अर्श पर गोमूत्र के साथ कल्क बनाकर इन द्रव्यों का प्रलेप करने से अर्श शुष्क होकर खर सकते हैं।

जिस अर्श रोग में मासांकुर बाहर निकल आयें और शोथ के कारण उनमें वेदना हो अथवा अर्श में वातरक्त या पित्त के विकार के कारण वेदना हो वहां कासिसादि तैल को गुदवलियों पर गुदा के अंदर और अर्श के ऊपर लगाते रहने से वेदना शीघ्र मिट जाती है।

पद्धति पूर्वक बनाये जाने पर यह तैल अवश्य शीघ्र फलप्रद सिद्ध होता है।

---

७ कुङ्कुमादि तैल [भा. भै. र. ८७०]
(यो. र. । क्षु. रो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—केशर, चन्दन, लोध्र, पतंग, लाल चन्दन,अगर, खस, मजीठ, मुल्हैठी, तेजपात, पद्माक, कमल, कूठ, गोरोचन, हल्दी, लाक्षा, दारु-हरिद्रा, गेरु, नागकेशर, पलाश कुसुम (टेसू), फूलप्रियंगु, वट के अंकुर (कोंपलें), चमेली के फूल, सरसों, तुलसी और वच तथा मोम। इनमें से पहले २६ द्रव्यों के अलग २ सूक्ष्म चूर्ण कर उनमें से १।-१। तोला लें और उन्हें एकत्र करके चटनी बनाकर रखलें। अन्तिम द्रव्य अर्थात मोम को दूध में शुद्ध करके अलग रख ले।

तैल—२ सेर।

जलीय द्रव्य—दूध ४ सेर, जल ४ सेर।

दूध, तैल, जल और कल्क द्रव्यों की पिष्टी सबको एकत्र कर मन्दाग्नि पर पकावें, जब जलीयांश शुष्क होते दीखे तब उसमें १। तोला मोम डालदे और बहुत मंद अग्नि दे। जब जलीयांश बिल्कुल उड जाये तब इस तैल को उतारकर कपडे से छानलें और अच्छी तरह ठण्डा होने पर चौडे मुंह की शीशी में भरकर रखले।

उपयोग—इस तैल को मुख पर लगाने से व्यंग (झांई), नीलिका, तिल, माष (मसे),

मुहांसे, पद्मिनि कंटक और जतुमणि का नाश होता है तथा मुंह चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर हो जाता है।

सं. वि.—इसकी मालिश रात को सोते समय मुख पर करे। मुहांसे, व्यंग, तिल, और पद्मिनि कंटक पर इसका कई बार प्रयोग करके देखा है कि अन्य लभ्य सौन्दर्यवर्द्धक और वर्ण-कारक द्रव्यों की अपेक्षा यह अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। दिनमे लगाने से, धूप के योग से यह त्वचा को श्याम कर देता है। इसके द्रव्य सभी वर्णकारक. त्वक्प्रसादक, दाहनाशक और सुचिक्कणता उत्पादक हैं।

गुञ्जा तैल [भा. भै. र. १३८८]

(वृ. मा.; र. र.; धन्वं; यो, र., भा. प्र.; भै. र.; वं. से.। क्षु. रो.; आ. वे. वि.। उत्तरा. अ. ८१)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—भांगरे के रस और गुञ्जा (चौंटली) के कल्क से सिद्ध करके तैल प्रयोग में लावें।

(४ सेर भांगरे के रस में १ सेर सरसो का तैल और गुञ्जा का कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर तैल शेष पर्यन्त पकावें फिर उसे उतार कर छानलें और ठण्डा करके शीशियों में भरलें।

उपयोग—इस तैल के प्रयोग से कण्डू, (खुजली), दारुण (दारुणक रोग—इसमें बालों वाला स्थान कठिन और रूखा हो जाता है तथा वहां खुश्की सी उडी दीखती है). कपाल (कपाल प्रदेश की कण्डराओं की जडता) तथा कुष्ठ रोग का नाश होता है।

गुडूचि तैल [भा. भै. र. १३९३]

(र. र.; वं. से.; भा. प्र.। वा. रं., ग. नि। तैला.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्काथ—६। सेर गिलोय के टुकडे कर इन्हें साधारण कूटलें और फिर ३२ सेर पानी में चतुर्थांश पर्यन्त पकावें एवं उतार कर छानलें।

प्रक्षेप द्रव्य—दूध १६ सेर।

तैल—४ सेर।

कल्क द्रव्य—मुलैठी, मजीठ. जीवनीय गण*, कूठ, इलायची, अगर, मुनक्का, जटामांसी

*जीवन्ति, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवक, ऋषभक और मुलैठी।

(वालछड), नख, नखी (सुगंध द्रव्य विशेष), रेणुका, मुण्डी, सोठ, पीपल, सोया, काकडासिंगी, सारिवा, दालचीनी, तेजपात, अर्जुन वृक्ष की छाल, वाराहकान्ता, शालपर्णी, भुई आमला, तगर, नेत्रवाला, नागकेशर, पद्माख, नीलोफर और लाल चन्दन प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १।–१। तोले ले। चूर्णो को एकत्र मिलाकर उनको जल के साथ घोटकर पिष्ठी (चटनी) बनाकर रखले।

क्वाथ, दूध और कल्क द्रव्य की पिष्ठी को एकत्र कर मन्दाग्नि पर जल सूखने तक पकावे और फिर तेल को छानकर ठण्डा होने पर शीशियो मे भरकर रखलें।

प्रयोग—इस गुडूच्यादि तेल का पान, मर्दन, अनुवासन और वस्ति द्वारा सेवन करने से समस्त धातुओं मे व्याप्त वातरक्त, स्वेद, कण्डू, शिरोकम्पन, अर्दित और व्रणदोष नष्ट होते है।

सं. त्रि.—यह तेल कृमि, कुष्ठ, व्रग, वातरक्त आदि अनेक रोगो के लिए प्रशस्त है। इन रोगों मे यह गरम दूध मे मिलाकर ०।–०। तोले की मात्रा मे पिया जाता है तथा दूषित स्थान पर इसका मर्दन किया जाता है।

त्वक् रोगो मे इसका सेवन वहुत ही लाभदायक है।

यह वर्णकारक, इन्द्रिय प्रसादक, दुष्ट व्रणशोधक और रोपक है।

चक्रमर्दादि सिंदूर तैल (भा. भै र. १७८५]

(वं. से.; भा. प्र. । म. खं. गण्ड., वृ. यो. त. । त. १०८)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—चक्रमर्द (पवांड) की जड के कल्क और भांगरे के रस के साथ मन्दाग्नि पर कटु तेल पकाकर, पाक के अन्त में सिंदुर डालकर उतार ले।

(४ सेर भांगरे के रस मे १ सेर तैल और पाव सेर पवांड की मूल का कल्क डालकर मन्दाग्नि पर जल सूखने तक पकावे। जव जल सूखता दीखे तब उसमें ०। सेर सिंदुर डालकर घोटें और उतार कर ठण्डा होने पर सुरक्षित रखले।)

उपयोग—यह तेल भयंकर गण्डमाला को अत्यन्त शीघ्र नष्ट कर देता है।

गण्डमाला पर इसकी मालिश करे और रुई का फोया इसमे भिगोकर गण्डमाला के ऊपर रखकर ऊपर से कपडा बांध दे।

चन्दनादि तैल (महा) [भा. भै. र. १७९०]

(भा. प्र. । उ. खं., वाजी, भै. र. । ध्वजभङ्ग, न. अ, । त. र., यो. र. । वाजी.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पतंग, काला चन्दन, अगर, देवदारु,

सरल (चीढ का बुरादा), पद्माख, सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी (मुश्कदाना), सिल्हक (शिला रस), नवीन केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, बडी इलायची, कंकोल का फल, स्पृक्का, तेजपात, नागकेशर (बरास), नेत्रवाला, खस, जटामांसी, दालचीनी, शुद्ध कपूर, छरीला, नागरमोथा, रेणुका, फूलप्रियंगु, श्रीवास, गूगल, लाख, नख, राल, धाय के फूल, ग्रंथिपर्णी (गठीवन), मजीठ, तगर और मोम । प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ५-५ मासे लेकर सबको घोटकर (जल डालकर चटनी सी बनाकर) रखले ।

जल—४ सेर ।

तेल--१ सेर (तिल का तेल) ।

पानी को मन्दाग्नि पर चढा कल्क की चटनी को उसमें घोल दे और फिर उसमे तैल डालदें । धीरे २ पकते २ जब जलीयांश शुष्क हो जाय तब तेल को उतार कर उसे भलीभांति छानकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस चन्दनादि तेल की मालिश से ८० वर्ष का वृद्ध पुरुष तरुण के समान वीर्यवान और युवति प्रिय हो जाता है । इस तेल के अभ्यङ्ग से वंध्या का वंध्यत्व नष्ट हो जाता है, वृद्ध पुरुष में तरुणता आ जाती है और अपुत्रों को पुत्र मिलता है।

यह महा चन्दनादि तैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, पसीना, दुर्गंध, कुष्ट और खुजली नाशक है तथा इसको व्यवहार मे लानेवाले व्यक्ति १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं ।

सं. वि.—जिन्होने इसको उग्र ज्वर, उरःक्षत, शरीर संताप, रक्तपित्त और आन्त्रिक सन्निपात आदि ज्वरो की उग्र दशा मे प्रयोग करके देखा है वे इसके प्रभाव से भलीभांति परिचित है । उग्र ज्वर मे वक्ष पर (हृदय स्थान पर) इसकी धीरे २ मालिश करने से शरीर का ऊष्मा कम हो जाता है, रोगी की तन्द्रा, मूर्च्छावस्था, विकलता और असह्य दाह आदि नष्ट हो जाते है। इसकी हृदय और मांस-पेशियों पर शीत क्रिया होती है। हृदय की संतप्त क्रिया मे परिवर्तन होते ही, हृदय का संचालक नाडी केन्द्र तथा परिभ्रमित रक्त की ऊष्माजन्य विकृत गति नष्ट होती है, रक्त की समता से अन्य अंगो की विषमता नष्ट होती है और कुछ काल मे ज्वर वेग नष्ट हो जाता है ।

क्षय के ज्वर मे इसकी क्रिया फुफ्फुस पोषक, व्रणरोपक, दौर्बल्य नाशक, संतापनाशक और मांसवर्द्धक गुणो के कारण बहुत ही प्रशंसनीय होती है । सतत कुछ काल (६ मास या १ वर्ष) तक इस तेल की छाती पर मालिश करने से जीर्ण से जीर्ण और विकृत से विकृत उरःक्षत, क्षयःक्षत तथा शोष का नाश होता है ।

पित्तज कास, हृदय की निर्बलता, अधिक धड़कन, हृत्कम्प आदि रोगों को दूर करने के लिए इस तेल की छाती पर मालिश बहुत ही लाभप्रद होती है।

उरःक्षत, रक्तपित्त, ऊष्माजन्य मूर्च्छा और रक्तचाप की वृद्धि का नाश करने के लिए इस तेल का नस्य और मर्दन अवश्य करना चाहिए।

ध्वजभङ्ग मे जननेन्द्रिय पर इसकी मालिश करनी चाहिए।

वंध्यत्व निवारण तथा योनिदाह, योनिकला शोथ, गर्भाशय शैथिल्य आदि को दूर करने के लिए इस तैल में फोए भिगोकर योनि में धारण करे तथा अन्दर बाहर इसकी मालिश करे।

जिन स्त्रियों की योनि में अति दाह हो, मासिक स्राव के समय बहुत दाह होता हो और स्राव भी बहुत ऊष्ण आता हो, वहां ऋतुस्राव के अनन्तर प्रतिमास ४—६ दिन इसकी, दूध मिश्रित कर, उत्तर वस्ति लें।

इस तेल के सभी द्रव्य पोषक, दाहनाशक, संताप नाशक, शोथहारी, व्रणरोपक, मांस पोषक तथा प्रभावशाली कला, नाडी और मांसपेशी दौर्बल्य नाशक है।

उग्र ज्वर में शतधौत् या सहस्रधौत् घृत और चन्दनादि तेल बहुत ही लाभकारी हैं। मदात्यय की अतिखिन्नावस्था मे इनमें से किसी की भी छाती और मस्तिष्क पर मालिश बहुत ही शीघ्र फलप्रद होती है।

इसी चन्दनादि तेल का प्रयोग सुगंधित तेल के रूप मे नित्य शिर पर मालिश करने के लिए भी किया जा सकता है परन्तु अच्छा तो यह हो कि शिर के लिए इस तैल का निर्माण करते और कल्क का यही प्रमाण रखते तेल की मात्रा ४ गुणी और जल का प्रमाण १६ गुणा करके परिपाक करे।

चन्दनबला लाक्षादि तैल [भा. भै. र. १७८९]

(वृ. नि. र., यो. र । ज्वर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—

क्वाथ—चन्दन, बलामूल (खरैटी की जड), लाख, लामज्जक (खस) प्रत्येक द्रव्य १—१ सेर लेकर अधकुटा करले और फिर इनके मिश्रित अधकुटे चूर्ण को ३२ सेर पानी में चतुर्थांश अवशिष्ट पर्यन्त (८ सेर रहे तब तक) पकावे तत्पश्चात उतारकर छानले।

तेल—२ सेर।

कल्क द्रव्य—श्वेत चन्दन, उशीर, मुल्हैठी, कुटकी, देवदारु, हरिद्रा, कूठ, मजीठ,

अगर, वालछड, अश्वगन्धा, वला, दारुहल्दी, मूर्वा, नागरमोथा, मूली, इलायची, नागकेशर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पक, पीतसार, सारिवा, विडनमक और सैधानमक प्रत्येक द्रव्य समान भाग सव मिलाकर ०॥ सेर ले। और इनकी वारीक पिष्टी तैयार करले।

दूध—४ सेर।

क्वाथ, तेल, कल्क-पिष्टी और दूध को एकत्र मिश्रित करके वर्तन में मन्दाग्नि पर पकावें। जव जलीयांश नष्ट हो जाय तव तेल को उतारकर छानले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल की मालिश सप्त धातुओं की वृद्धि के लिए हितकर है। यह तेल खांसी, श्वास, क्षय, छर्दि, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, पित्तकफज रोग, दाह, कण्डू, विस्फोटक, शिरोरोग, नेत्रदाह, सूजन, कामला और विशेषकर पाण्डुरोग तथा ज्वर का नाश करता है। यह वालक, वृद्ध, युवान, क्षीण वीर्य पुरुष, निर्वल और वातव्याधि से व्यथित रोगियों के लिए अत्यन्त हितकर है।

सं. वि.—इस तेल के द्रव्य शीत वीर्य, दाह, क्षोभ, शोथ, ज्वर, संताप नाशक और त्वक, श्लेष्मकला, मांसपेशी, कण्डरा और वात नाडी पोषक है।

पित्तप्रधान विकारों मे इस तेल का अन्तर्वाह्य प्रयोग सर्वदा हितकर है। ज्वर, संताप, रक्तपित, पाण्डु, कामला, सतापजन्य मूर्च्छा आदि रोगों में इसकी वक्ष पर (हृदय स्थान पर) मालिश की जाती है। भ्रम, शिरोरोग, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार और सतत मस्तिष्क दाह आद मे इसकी माथे पर मालिश की जाती है।

योनि विकार, योनि शोथ, व्रण, कण्डू आदि मे इसका स्थानिक प्रयोग हितकर है।

जीर्णज्वरों में यह तैल अभ्यङ्ग द्वारा बहुत लाभकारी सिद्ध होता है। कास, श्वास, आक्षेप, वमन आदि मे इसकी २—२ वार छाती पर मालिश लाभदायक है।

क्षय के रोगियों के लिए, इसकी छाती पर मालिश, कितनी ही अन्य वाह्य प्रक्रियाओं से कहीं लाभदायक है। आधुनिकों का मत है कि क्षत युक्त फुफ्फुस के क्षय मे छाती पर तेल आदि के अभ्यङ्ग से हानि पहुंचती है, परन्तु यह सत्य से कहीं विपरीत है। **लाक्षा** संधानक, व्रणरोपक, पोषक और कीटाणु नाशक है। **चन्दन** पोषक, दाहनाशक और शोथ नाशक है। अन्य द्रव्य पोषक, सताप नाशक और व्रणरोपक, त्वक्, मांस, रक्त प्रसादक और सप्त धातुवर्द्धक है। अभ्यङ्ग का अर्थ शक्ति पूर्वक मलना नहीं होता वल्कि अंग पर लगाना होता है। धीरे २ मालिश करने से तेल त्वचा के छिद्रो और त्वचा के स्नेहल अंशों द्वारा, जिस स्थान पर मर्दन किया जाय वहां के अन्तर्तन्तुओ को पुष्ट करता है, व्रण, शोथ आदि स्थानिक विकारों को नष्ट करके व्रण को शुद्ध करता है और क्षत को, अपने

पोषक, प्रसादक और संधानक गुणो द्वारा नष्ट करता तथा क्षत वाले अंग का पोषण करता है। इसके अभ्यङ्ग से उस यंत्र को सहज क्रिया करने का अवकाश मिलता है जिससे श्वास-प्रश्वास की शुद्धि से अंग मे से दूषित विषो के संग्रह का नाश होता है और स्थानिक दाह, श्वास, कास आदि विकारो का नाश होता है। क्षय के रोगियो के लिए इसकी मालिश बहुत ही लाभकारी है।

जिन २ अंगों का क्षय हो उन २ अंगो पर इस तेल की मालिश उन स्थानो के फैलते विकारो की अवरोधक सिद्ध होती है और दीर्घ काल सतत की जाने से रोगों का विनाश करती है।

जात्यादि तैल [भा. भै. र. २०५३]

(यो. र.; र. का. धे, वं. से. । व्र., शा. सं. । खं. २ अ. ९, भा. प्र. । म. खं.; वृ. यो. त. । त. ११२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल पत्र, करञ्ज के पत्ते, मोम, मुल्हैठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध्र, हैंड, नीलोत्पल, नीला थोथा, सारिवा और करंज के बीज। प्रत्येक द्रव्य समान भाग, सब मिश्रित १ सेर लेकर उनकी जल के साथ मर्दन करके पिष्टी करले। नीला थोथा और मोम अलग रखलें।

तेल—४ सेर।

जल—१६ सेर।

कल्क की पिष्ठी, तेल और जल को एक बर्तन मे भरकर मन्दाग्नि पर पकावे, इसमें नीले थोथा का चूर्ण डालदें। जब जलीयांश सूखता दीखे तब उसमें मोम डालदे और जल के सूख जाने पर तेल को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल के लगाने से विष, घाव, विस्फोटक, कच्छु, खुजली, विसर्प, विषैले कीडे का दंश, शस्त्रादि के लगने से उत्पन्न हुए तुरन्त के घाव, अग्निदग्ध, विद्धक्षत (कील आदि घुस जाने से) उत्पन्न हुए घाव तथा नख और दन्त के घाव और अवघर्षण से उत्पन्न हुई घरोट आदि को शीघ्र लाभ पहुंचता है।

सं. वि.—यह तैल विष नाशक, दाहनाशक, व्रणशोथ नाशक, कीटाणु नाशक और विविध प्रकार के विष, कीटाणु, शस्त्र, अग्नि आदि से उत्पन्न हुए व्रणो का आरोपण करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। शल्य क्रिया मे इसका प्रयोग बहुत ही गुणकारी सिद्ध होगा।

ज्योतिष्मति तैल

ज्योतिष्मति (माल कांगनी) लता जाति वनस्पति है। यह लता पीले रग की होती है और इस पर सुन्दर पीले रंग के ही फल आते है।

आषाढ के प्रथम पक्ष मे इसके उत्तम बीज लेकर तिलो की तरह इन्हे कोल्हू मे पिलवा कर अथवा इन बीजों को ओखली में डालकर मूसल से कूट २ कर दानों हाथों के बीच मे दाबकर (मुष्टि द्वारा) निचोडकर तेल निकलवा ले।

इस तेल को समान भाग दूध और चतुर्थांश मधु मे मिलाकर एक वर्तन मे भरकर मन्दाग्नि पर तेल अवशिष्ठ पर्यन्त पकावे और फिर उसे उतारकर छानलें। इसको ठण्डा करके एक मिट्टी की चिकनी मटकी में (या कांच की वरनी या चीनी की वरनी में) भरकर इसमें इसका चतुर्थांश कंकोल, कपूर, दालचीनी और जायफल का चूर्ण डालदें और वर्तन का मुख वंद करके उस पर कपडमिट्टी करके उसे अनाज के ढेर मे दबादें। (२१ दिन पश्चात निकाल लें)।

इस तैल को छानकर प्रयोग में लावे। इसमें से ५ तोले तेल सूर्योदय के समय पीना चाहिए। इसके पीने से मनुष्य वेहोश हो जाता है और जब होश में आता है तो वेचैनी के मारे चिल्लाता और रोता है। जब तक तैल सात्म्य नहीं हो जाता तब तक नित्य यही दशा होती है अर्थात तेल के सेवन से नित्य नशा हो जाता है।

इस प्रकार इस तेल को १ मास पर्यन्त सेवन करने से मनुष्य श्रुतधर हो जाता है, वह जो कुछ सुनता है वह उसे कंठस्थ हो जाता है। दो मास सेवन करने से सूर्य के समान कान्तिमान हो जाता है। तीन मास सेवन करने से उसे देवता भी अपना पूज्य मानने लगते है। चौथे मास मे उसका शरीर अदृश्य हो जाता है अर्थात उसे अन्य मनुष्य नहीं देख सकते। पांचवे मास मे उसे आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है, छठे मास मे उसे सिद्ध पुरुषों से भेट होती है। सात मास तक सेवन करने से विष्णु के एक दिन के समान आयु प्राप्त होती है और यदि आठ मास तक इसका सेवन किया जाय तो मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है। (र. र. स. । उ. ख., अ. २६)

दशमूल तैल [भा. भै. र. ३०९०]

(वृ. मा., यो. र.; ग. नि.; धन्व; र. र.; च. द., भै. र. । कर्ण.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—२ सेर दशमूल के अधकुटे चूर्ण को १६ सेर जल में पकावें। जब जल जलते जलते ४ सेर अवशिष्ट रहे तब उसे उतारकर छानलें।

तेल—१ सेर।

कल्क द्रव्य—०। सेर दशमूल के चूर्ण की पानी डाल २ कर पिष्टी तैयार करें।

क्वाथ, तेल और कल्क पिष्टी को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर जल के सूख जाने तक पकावे। तैयार होने पर तेल को उतारकर छानले और ठण्डा करके शीशियों मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

प्रयोग—इसे कान में डालने से बधिरता नष्ट हो जाती है। वाधिर्य के लिए यह परम औषध है।

सं. चि.—दशमूल के सभी द्रव्य विशेषतः कफ और सामान्यतः कफ-वात नाशक है। श्लेष्म का स्थान आमाशय, वक्ष, कण्ठ और शिर है। शीत, अति सान्द्र, स्नेहयुक्त, पिच्छिल, भारी, मधुर आदि पदार्थों के सेवन से कफ की वृद्धि होती है। रुक्ष और शीत द्वारा वायु वृद्धि होती है। इन दोनों के प्रकोप से कंठ की द्वार ग्रन्थि, लालाग्रन्थि तथा नासिका की श्लेष्मकलाओ मे शोथ हो जाता है, जिससे इन स्थानों और इनके पश्चात कान, श्वास-नलिका आदि स्थानो की श्लेष्मकलाएं कठिन हो जाती है। कर्ण-मुख-श्लेष्मकलामय नलिका-मार्ग की कला और भी जड हो जाती है। कर्ण के आन्तरिक आवरण की जडता के कारण ध्वनि का कर्ण मे प्रवेश बढ हो जाता है अत. वाधिर्य उत्पन्न हो जाता है। दशमूल तेल अपने ऊष्ण गुण द्वारा वात-कफ दोष का नाश करता है और श्लेष्मकलाओ को सतत ऊष्मा प्रदान करके जडता को दूर करता है तथा क्रियाशक्ति को बढाता है, इसलिए इसके प्रयोग से वाधिर्य का नाश होता है। कर्णनाद, कर्णजडता और वातकफज कर्णशोथ व्याधि मे दशमूल तेल का प्रयोग हितावह है।

नपुंसकता नाशक तैल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—जायफल ५ तोला, शुद्ध जैपाल ५ तोले, कबूतर की विष्टा १० तोला, अक्कलकरा ५ तोला, जावित्री ५ तोला, शुद्ध कुचला ५ तोला, पलास पापडा ५ तोला। इन द्रव्यों को जौकुट करके १६ सेर जल मे चतुर्थांश अवशेष पर्यन्त पकावे। फिर क्वाथ को उतारकर छानले।

दूध—४ सेर।

तैल—२ सेर तिल का तैल तथा २ सेर मालकांगनी का तैल।

कल्क द्रव्य—जायफल, जैपाल, अक्कलकरा, जावित्री, शुद्ध कुचला, पलास पापडा प्रत्येक ०॥-०॥ तोला तथा कबूतर की विष्टा १ तोला। सबको एकत्र घोटकर पिष्टी बनावें।

क्वाथ, दूध, तेल और कल्क द्रव्यों को एकत्र कर भलीप्रकार जलीयांश सूखने तक पकावें। तैयार होने पर तेल को छानले और ठण्डा होने पर शीशियों में भरकर रखले।

प्रयोग—पुरुष जननेन्द्रिय की शिथिलता, छोटापन और उत्तेजना हीनता को दूर करने के लिए इसका प्रयोग करे।

इसकी मालिश से लिङ्ग की मांसपेशियो में रक्त का परिभ्रमण बढेगा और उसके प्रत्येक अंशमें शक्ति का संचार होगा। लिङ्ग शैथिल्य और निर्माण संबधि विकृति मे भी यह हितकर है। अपने ऊष्मा और पोषक गुणों द्वारा यह तेल अच्छा लाभ करता है।

नारायण तैल × (मध्यम) [भा. मै. र. ३५०२]

(शा. ध. । म. अ. ९, वृ. नि. र.; च. द., वृ. म., धन्वं.; र. र.; भा. प्र. । वात-व्या ; ग. नि. । तैला)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्काथ—अश्वगन्धा, बला (खरैटी), वेल छाल, पाटला (पाढल), छोटी कटेली, बडी कटेली, गोखरू, अतिबला (कंघी), नीम की छाल, स्योनाक (अरलु), पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी। प्रत्येक द्रव्य ५०–५० तोले लेकर अधकुटा करले और १२८ सेर जल मे डालकर उबाले। जब जल चतुर्थांश (३२ सेर) अवशिष्ट रहे तब इसे उतारकर छानले।

तैल—८ सेर। (तिल तैल)

अन्य द्रव्यः—(१) शतावर का रस ८ सेर।
(२) गाय का दूध ३२ सेर।

कल्क—कूठ, श्वेत चन्दन, मूर्वा, वच, जटामांसी, सेधानमक, असगन्ध, बला, रास्ना, सोया, देवदारु, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और तगर। प्रत्येक द्रव्य १० तोला ले। सबको एकत्र कूटकर जल के साथ पिष्ठी बनाले।

क्वाथ, तेल, अन्य द्रव्य और कल्क को एकत्र कर मन्दाग्नि पर पकावें। जलीयांश का शोषण होने पर तेल को उतारकर छानले और ठण्डा होने पर शीशियों मे भरकर रखले।

प्रयोग—इस तेल का नस्य, अभ्यङ्ग, पान और वस्ति द्वारा प्रयोग करे। इस प्रकार इसके सेवन से पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, खालित्य (गंज), वधिरत्व, गतिभङ्ग (चलते समय अस्तव्यस्त पैर पडना या लडखडाना), गात्रशोष, इन्द्रिय ध्वंस (इन्द्रियों की

×च. द., वृ. मा.; धन्व, र. र, ग. नि, और योग चिन्तामणि में कल्क द्रव्य में खरैंटी और मूर्वा के स्थान में शैलेय और पुनर्नवा लिखा है।

शक्ति का नाश, असृक शुक्र (वीर्य के साथ रक्त आना), ज्वर, क्षय, अण्डवृद्धि, कुरण्ड, दन्तरोग, शिरोग्रह, पांगुल्य (पंगुता), बुद्धिमन्दता, गृध्रसी तथा अन्य सर्वाङ्ग में व्याप्त भयङ्कर वातरोग नष्ट होते हैं। इसके प्रभाव से वंध्या स्त्री के भी पुत्र उत्पन्न होता है। इसकी मालिश न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि हाथी और घोडे के लिए भी हितकर है।

सं. वि.—महा नारायण तेल एक अत्यन्त प्रसिद्ध तेल है। सभी प्रकार के वातरोगियों पर इसका प्रयोग किया जाता है। यह तेल अत्यन्त बल्य, वृष्य और पोषक है। इसके सेवन से शरीर में प्रविष्ट वात, ऊष्णता और स्निग्धता का, स्पर्श पाते ही स्थान भ्रष्ट होने लगता है। ज्यों २ इसके गुणों की शरीर में वृद्धि होती है त्यों २ वायु द्वारा विकृत, शोषित, जड, निष्क्रिय और भग्न अंगों में शक्ति का संचार होता है। वायु से उत्पन्न हुए सभी अंगों के रोग पर इसका प्रयोग हितकर है।

यह अन्त्र के वातज रोगो मे वस्ति द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। गर्भाशय के शोष, जडता और वात वेदना आदि मे उत्तर वस्ति द्वारा प्रयोग मे लाया जाता है। पुरुषग्रन्थि शोथ, शोष और वृद्धि को दूर करने के लिए यह पुरुष जननेन्द्रिय मे वस्ति द्वारा चढाया जाता है।

पक्षाघात मे इसको नस्य, पान, वस्ति और अभ्यंग चारों ही प्रकार से प्रयोग मे लाने से लाभ होता है। मन्यास्तम्भ और हनुग्रह में इसका नस्य और पान लाभकारी है। गलग्रह में इसका पान और गण्डूष लाभप्रद है तथा अन्य वातज रोगों मे इसका अभ्यङ्ग लाभप्रद है।

बाल पक्षाघात मे यदि इसका सतत पान और अभ्यङ्ग द्वारा दो मास सेवन कराया जाय तो शीघ्र लाभप्रद सिद्ध होता है।

नारायण तैल [भा. भै. र. ३५०३]

(भै. र. । वा. व्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्काथ—बिल्व की छाल (जड की), असगन्ध की जड, बडी कटेली की जड, गोखरू की जड, अरलू की जड की छाल, खरैटी की जड, फरहद (बरगद) की जड की छाल, पुनर्नवा मूल, अतिबला (कघी) की जड, अरणीमूलत्वक, प्रसारणी और पाढल की जड की छाल प्रत्येक द्रव्य १।–१। सेर ले और सब को अधकुटा कराके २५६ सेर पानी मे डालकर उबलने के लिए चूल्हे पर चढादें। जब उबलते २ क्काथ चतुर्थांश (६४) सेर अवशिष्ट रहे तब उसे उतार कर छानले।

तेल—१६ सेर (तिल का तेल)।

अन्य द्रव्य—(१) गाय या बकरी का दूध = १६ सेर।
(२) शतावर का रस = १६ सेर।

कल्क द्रव्य—रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूठ, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, मुद्गपर्णी, मापपर्णी, अगर, नागकेशर, सेंधानमक, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, भूरिछरीला, सफेद चन्दन, पोखर मूल, इलायची, मजीठ, तगर, नागरमोथा, तेजपात, भांगरा, जीवक, ऋषभक (दोनों के अभाव में शतावर), काकोली, क्षीर काकोली (अभाव मे असगन्ध), ऋद्धि, वृद्धि (दोनों के अभाव मे वाराही कंद), सुगन्धवाला, वच, पलाश (ढाक) की जड की छाल, गठीवन, श्वेत पुनर्नवा और चोरक। प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोले लेकर चूर्ण करके जल के साथ पिष्टी बनावे।

क्वाथ, तेल, अन्य द्रव्य और कल्क पिष्टी को एकत्र कर मन्दाग्नि पर पकावे। जब पकते २ जलीयांश नष्ठ हो जाय तब तेल को उतार कर छानले और उसमे सुगन्ध के लिए कपूर, केशर और कस्तूरी प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला मिलादे तथा ठण्डा होने पर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल समस्त वातव्याधियों को नष्ट करता है। एकाङ्ग वात, अर्दित (लकवा), गात्रकम्प, पंगुता, पीठ विसर्पता, बाधिर्य, शुक्रक्षय, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ और शिरःपीडा को नष्ट कर बल वर्ण आदि की वृद्धि करता है। इस तेल के सेवन से वंध्या स्त्री पुत्रवती होती है।

यह तेल शाखा और कोष्ठगत वायु, अण्डवृद्धि, जिह्वागत वायु, दन्तशूल, कुब्जता, उन्माद और वातज्वर को भी नष्ट करता है।

इस तेल को सेवन करनेवाला मनुष्य सुन्दर, सशक्त और वीर्यवान होता है। वृद्ध पुरुष भी इस तेल के सेवन से दीर्घ काल तक युवावत् जीवित रहता है।

सं. चि.—यह तेल स्नायु, अस्थि आदि के विकारों को दूर करने के लिए श्रेष्ठ है। इसके सेवन से भग्न हुई अस्थियां जुड जाती है तथा वात द्वारा शुष्क मांसपेशियां पुनः पुष्ठ और सक्रिय हो जाती है।

यूं तो तेल लगभग सभी वातनाशक है, सभी तेल स्नेहन युक्त है और सभी में शरीर को पुष्ट करने के गुण है, तदपि नारायण तेल अपने विशिष्ठ गुणो के कारण अधिक प्रशस्त है। इसका सेवन अन्तर्वाह्य सभी प्रकार किया जाता है। वात विकारों मे शरीर के सभी अंगो पर कुछ न कुछ विकृति हानी सम्भव है और केवल मर्दन सब अंगो पर समान क्रिया न

भी करे यह सर्वथा सम्भव है अतः जिन्हें तेल सात्म्य है उन्हे मर्दन के साथ २ इसका गरम दूध या गरम जल मे मिलाकर प्रयोग कराया जाय तो अवश्य शीघ्र लाभ होता है।

शरीर की साधारण वेदना से लेकर पक्षाघात, संधिच्युति, अस्थिभग्न, शूल, मांस-कृच्छता, मांस-जडता, सुप्तता, निष्क्रियता, कम्प, वातज शोथ, नाडी दौर्बल्य, तोद, क्षोभ और शरीर दौर्बल्य पर इसका प्रयोग लाभप्रद होता है। स्नायु, कण्डरा, शिरा, धमनी, श्लेष्मकला और ग्रन्थियो के वातज विकारों पर इसको प्रयोग मे लाया जाता है।

नारायण तेल का प्रयोग व्रणो पर भी किया जाता है। यह तेल दोषनाशक, मांसवर्द्धक; शिरा, स्नायु, कण्डरा आदि पोषक; मेद नाशक और रक्त परिभ्रमण सहायक है। इसका सेवन सर्वदा वात विकार प्रशमक और अग्निवर्द्धक है।

मात्राः—१० बूंद से लेकर ०॥ तोला तक, गरम दूध या गरम जल के साथ। आभ्यन्तरिक प्रयोग के लिए।

पञ्चगुण तैल [सि. यो. सं.]

द्रव्य और निर्माण विधिः—हैड, बहेडा, आंवला प्रत्येक ५–५ तोला तथा नीम और संभाळ की पत्ती प्रत्येक १५–१५ तोले ले। सबको एकत्र जौकुटा कर, आठ गुने जल मे पका, चौथाई जल बाकी रहने पर कपडे से छान, उसमें तिल का तेल ८० तोले मोम, गंधबिरोजा, शिलारस, राल और गृगल प्रत्येक ४–४ तोला डालकर मन्द आंच पर पकावे। पकते २ खर पाक होकर तेल अलग हो जाय तब कपडे से छानकर थोडा गरम रहते उसमें कपूर का मोटा चूर्ण ५ तोला डाल, चमचे से हिलाकर मिलादे। ठण्डा होने पर इसमें तार्पीन का तेल, युक्लिप्टस का तेल और केजोपुटी का तेल २॥–२॥ तोला मिलाकर शीशी में भरले।

उपयोग—संधिवात और शरीर के किसी भी अवयव के शूल–दर्द मे हलके हाथ से मालिश करें। कर्णशूल मे कान मे डाले। सब प्रकार के व्रणो मे व्रण को नीम और संभाळु की पत्ती के क्वाथ से धोकर उस पर इस तेल मे भिगोया हुआ स्वच्छ कपडा रख उसके ऊपर केला, समुद्र शोष, धाय का पत्ता अथवा बड का पत्ता रखकर बांध दे। यह तेल उत्तम वेदना हर (पीडा शामक) और व्रण शोधन–रोपण करनेवाला है।

[सिद्धयोग संग्रह से उद्धृत]

पिण्ड तैल [भा. भै. र. ४१२४]

(र. र.; वृ. मा.; यो. र.; भा. प्र.; वं. से.; ग. नि. । वा. र.; च. सं. । अ. २९ वातरक्त; वा. म. । चि. अ. २२; च. द. । वातर.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सारिवा, राल और मुल्हैठी प्रत्येक ५–५ तोला लेकर, बारीक चूर्ण करें और इस चूर्ण को २ सेर एरण्ड तेल मे मिश्रित कर और उसमे ८ सेर दूध मिला मन्दाग्नि पर पकावे । जब जलीयांश का पर्याप्त शोषण हो जाय तब इसमे ५ तोले मोम मिलादे और जलीयांश सूखने पर तेल को उतार कर ठण्डा होने पर विना छाने ही शीशियों मे भरकर रखलें ।

विशेष ज्ञातव्य—कुछ ग्रन्थो में दूध का अभाव है तथा एरण्ड तैल न लिख कर केवल तेल शब्द लिखा है ।

उपयोग—इस पिण्ड तेल की मालिश से वातरक्त का नाश होता है ।

सं. वि.–स्वादु, अम्ल और लवण रसो के योग से वायु, कषाय, स्वादु, तिक्त के योग से पित्त (यहां रक्त) । रक्तशोधक, वातनाशक, पोषक, विष, दाह और शोषनाशक द्रव्यों के योग से तैयार हुआ तेल वात–पित्तज रक्तदोष, शिरा सकोच, मांस क्लेद, मांस दाह, दुष्ट व्रण और वातरक्त के लिए बहुत ही उपयोगी है । रक्त के अपूर्ण परिभ्रमण मे मर्दन के सहारे त्वचा, कला, कण्डरा, मांसपेशी नाडी और शिराओ मे प्रविष्ट हो कर वहां के शोष, कोथ और क्षोभ की स्थानिक विकृतियो को दूर करके, शिराओं को सशक्त और सक्रिय करता है । वृद्धावस्था मे शिराओ के (विकार से) अवरुद्ध होने से उत्पन्न हुए वातरक्तज आदि विकारो के लिए यह तेल प्रशस्त है तथा इसका प्रयोग दूरस्थ अगो के वातरक्त व्रणो पर किया जाय तो शीघ्र लाभ होता हैं ।

प्रमेह मिहिर तैल [आरो. प्र.]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—देवदारु, नागरमोथा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मूर्वा–मूल, कुष्ठ, असगन्ध, चन्दन, रक्त चन्दन, निर्गुण्डी बीज, कुटकी, मुल्हैठी, रास्ना, दालचीनी, इलायची, भारंगी, चव्य, धनिया, इन्द्रयव, करंज बीज, अगर, तेजपत्र, हैड, बहेडा, आंवला, नलिका, नेत्रबाला, बला, अतिबला, मजिष्ठा, वासा, त्वक, तगर, सरल काष्ठ, पद्मकाष्ट, लोध्र, सौंफ, वच, जीरा, खस और जायफल प्रत्येक द्रव्य २–२ तोले लेकर सबको एकत्र अधकुटा करें। इस अधकुटे चूर्ण को २० सेर पानी मे मिलाकर मन्दाग्नि पर चतुर्थांश (५ सेर) पर्यन्त पकावें और तैयार होने पर क्वाथ को छानले ।

उपरोक्त क्काथ में तिल का तेल २॥ सेर, शतावरी स्वरस २ सेर, दूध २॥ सेर और दही का तोड ८ सेर मिलाकर पकावे और जब जलीयांश सूख जाय तब उतार कर छानले और ठंडा होने पर शीशियों मे भरकर प्रयोगार्थ रक्खे।

उपयोग—इस तेल के पान और अभ्यङ्ग से त्रिदोष द्वारा होनेवाला प्रमेह विकार नष्ट होता है।

मात्राः—०। से ०॥ तोला गरम दूध या जल में मिलाकर।

सं. वि.—यह तेल सम्पूर्ण वातानुलोमक, मांसपोषक, ग्रन्थिदोष—नाशक, कफशोषक और पित्तशामक द्रव्यों के योग से बना है। इसकी क्रिया अन्त्र, वस्ति, श्रोणि, शुक्रग्रन्थि, शुक्राशय और शुक्र तथा मूत्र प्रणालिकाओं से लेकर सम्पूर्ण शरीर की ग्रन्थियों पर होती है। इसके अभ्यंग से मांसगत दोषो का विनाश होकर स्थानिक रक्त का परिभ्रमण बढता है और उस स्थान के मांस को पोषण मिलता है।

इस तेल की मालिश से प्रमेह विकार का नाश होता है तथा यह इन्द्रिय दौर्बल्य, नपुंसकता और शैथिल्य के लिए उपयोगी है।

प्रमेह मिहिर तैल कफज प्रमेहों को, वस्ति की क्रिया को बढाकर, अनावश्यक मेद का शोषण कर और पुरुषग्रन्थि, शुक्राशय, अण्डकोष और मूत्राशय की विकृतियो का नाश करके, नष्ट करता है। पित्त प्रमेहों मे यह वस्तिदाह, शोथ और ग्रन्थिशोथ का नाश करता है तथा वातज प्रमेह मे यह स्नेहन क्रिया, वातानुलोमक गुण और पोषक तत्वों द्वारा हितकर है।

प्रसारणी तैल [भा. भै. र. ४१४२]

(ग. नि. । तैला. २)

द्रव्य तथा निर्माण प्रकारः—

क्काथ्य द्रव्यः—प्रसारणी ६। सेर, बलामूल ३ सेर १० तोले, शतावरी, असगन्ध, सोया, पुनर्नवा, गिलोय, दशमूल, चित्रकमूल, मैनफल और शठी, प्रत्येक द्रव्य ५–५ तोले लें। सबको एकत्र अधकुटा करले।

क्काथ बनाने के लिए जल प्रमाण—३२ सेर।

क्काथ्य द्रव्यो के अधकुटे चूर्ण को ३२ सेर जल मे चतुर्थांश अवशिष्ठ पर्यन्त पकावें।

अवशिष्ट क्काथ—८ सेर।

कल्क द्रव्य—रास्ना, सोया, मुल्हैठी, पीपल, सोंठ, वच, कूठ, रेणुका, जटामांसी, फूलप्रियंगु, इन्द्रयव, विडनमक, सैंधानमक, अद्रक, यवक्षार, चित्रकमूल, मूर्वा और नख।

प्रत्येक द्रव्य ५—५ तोले लेकर सबको एकत्र करके शिल पर पीसले (चटनी सी बनालें)।

तेल—८ सेर (तिल तेल)।

अन्य द्रव्यः—कांजी ८ सेर, दूध ८ सेर।

उपरोक्त क्वाथ, कल्क, तेल और अन्य द्रव्यो को एकत्र मिश्रित कर मन्दाग्नि पर तेलावशेष पर्यन्त पकावें और उतार कर ठण्डा करके छानलें तथा शीशियों में भरकर सुरक्षित रखलें।

उपयोग—इस तेल का अभ्यंग, नश्य और अनुवासन वस्ति द्वारा प्रयोग किया जाता है।

प्रसारणी तैल गृध्रसी, अग्निमांद्य, अपस्मार, उन्माद और विद्रधि का नाश करता है। जो व्यक्ति (कण्डरा, मांस या नाडियो की स्थानिक दुर्वलता अथवा अपुष्टि के कारण) मन्द गति से चलते है, उनको इस तेल के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है और कुछ दिन भली प्रकार मालिश कराकर वे गतिपूर्वक चल सकते है।

त्वचा, शिरा और संधियो के वात विकारों का इसके अभ्यंग से, यदि मस्तिष्क के ये विकार हो तो नश्य से और जो श्रोणि प्रदेश, वस्ति, गुदा या बृहदन्त्र के विकार हों तो अनुवासन द्वारा इस तेल से लाभ होता है।

वात विकारो से पीडित मनुष्यो के लिए ही नहीं बल्कि वातजर्जरित घोडो के लिए भी लाभदायी है। यह तेल बालो को स्थिर करनेवाला, वलिपलित नाशक, इन्द्रिय बलवर्द्धक और शरीर सौन्दर्य को वढानेवाला है।

यह तेल वल्य, प्रजाकर और वृद्धावस्था में भी बल की वृद्धि करनेवाला है। इसको कुछ काल पीने के बाद पंगु भी दौडता हो जाता है।

पीने के लिये मात्राः—१० बूंद से ०॥ तोले तक गरम दूध या गरम जल मे मिलाकर।

सं. वि.—वातवृद्धि द्वारा होनेवाले सर्वाङ्ग या एकाङ्ग संकोच, शैथिल्य, पक्षाघात, अर्दित, पगुत्व, खञ्जत्व, वलिपलित आदि विकारो में इसकी मालिश बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होती है।

आंख, नाक और कान के वातज विकारो को यह नश्य, कर्णपूरण और अभ्यङ्ग द्वारा लाभ पहुंचाता है।

आन्तरिक वात या नाडी विकारो मे इसको पीने से लाभ होता है। मस्तिष्क शैथिल्य, शिरा, धमनि, कण्डरा, मांसपेशी और आन्तरिक अवयवों की संधियो के विकारो को नष्ठ करने के लिए यह अपनी आन्तरिक क्रिया के कारण बहुत ही लाभप्रद है।

गर्भाशय विकारो मे इसको अल्प मात्रा मे दूध के साथ मिलाकर उत्तर वस्ति द्वारा प्रयोग में लाने से गर्भाशय संकोच, गर्भाशय शैथिल्य और गर्भाशय श्लेष्मकला शोष, डिम्ब ग्रन्थि शोष और योनि दोष दूर होते है तथा वन्ध्यत्व का नाश होता है।

नपुंसकत्व के लिए इसका अन्तर्वाह्य प्रयोग हितावह है। आन्तरिक प्रयोग में गरम दूध मिलाकर पीवे और वाह्य उपयोग मे इसकी इन्द्रिय पर मालिश करे।

वात द्वारा होनेवाली अवयवो की निष्क्रियता और शिथिलता इसके सेवन से दूर होती है।

प्रसारणी तेल की मालिश से स्नेहन और स्वेदन दोनो क्रियाएं एक ही साथ पूरी हो जाती है। यह ऊष्ण, पोषक, त्वक, वर्ण, नाडी, मांस, कण्डरा, धमनी, शिरा आदि प्रसादक और शैथिल्य नाशक है। इसका सेवन सभी देशो मे, सभी ऋतुओ मे और सभी प्रकार के प्राणियो पर वातज रोगो के नाश के लिए हितावह है।

वाल विल्वादि तैल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अपक्व विल्व का २ सेर गूदा लेकर उसे गोमूत्र मे भिगोकर रक्खे। इस प्रकार ३–४ दिन गोमूत्र में भावित कर इस विल्व गर्भ को ८ सेर तेल मे मिलावे तथा इसमे ८ सेर गोदुग्ध और ८ सेर पानी मिलाकर मन्दाग्नि पर परिपक्व होने के लिए रखदे। जब जलीयांश शुष्क हो जाय तब तेल को उतार, छान और ठण्डा करके शीशियो मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

उपयोग—यह कर्ण विकार और वधिरता के लिए उपयोगी है।

सं. वि.—वाल बिल्वादि तैल कर्ण शुष्कता, कर्णकण्डू, कर्णनाद, कर्ण वातावरोध तथा वाधिर्य के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। जिन लोगो मे यकृदावर्ण जडता, कठिनता या शोष और शोथ के कारण कान में वात निरोध होकर कर्णनाद और वधिरता हो जाती है, उनमें यह तेल बहुत ही प्रभावोत्पादक क्रिया करता है।

वातप्रधान कर्ण विकारो मे इसका प्रयोग सर्वदा लाभप्रद सिद्ध होता है।

ब्राह्मी तैल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१६ सेर ब्राह्मी के पत्तों का स्वरस निकालकर उसमें ४ सेर तिल का तेल और २ सेर ब्राह्मी के पत्तो का कल्क डालकर तेल शेष पर्यन्त मन्दाग्नि पर पकावे। तत्पश्चात ठण्डा होने पर छानले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

नोटः—यह केवल ब्राह्मी द्वारा निर्मित तेल होगा। बहुत से निर्माता ब्राह्मी के तेल का

निर्माण करते जटामांसी का भी उसमें प्रयोग करते है और तेल के तैयार होने पर उसमें ब्राह्मी का अन्य गहन सुगंधित इतर (Scent) भी डालते हैं ।

उपयोग—मस्तिष्क के लिए ब्राह्मी प्रसिद्ध पोषक द्रव्य है, अतः इसके द्वारा तैयार किया हुआ तेल मस्तिष्क दौर्बल्य, अनिद्रा, मस्तिष्क दाह, पित्तजशिरः शूल, नेत्रदाह पित्तोन्माद, शिरोभ्रम, तन्द्रा आदि विकारो में शिर पर मालिश करने के लिए श्रेष्ठ होता है । इन रोगों में इस का नश्य और कर्ण पूरण के लिए भी उपयोग किया जाता है ।

———०———

बृहती तैल [भा. भै. र. ४६९६]

(नपुं. मृता. । ता. ६]

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—बडी कटेली के पचाङ्ग को कूट छान कर कई दिन तक बकरी के दूध मे घोटें और फिर उसकी गोलियां बनाकर, सुखाकर पाताल यन्त्र द्वारा उसका तेल निकाल ले और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे ।

उपयोग—इसकी २१ दिन तक मालिश करने से हस्तदाष जनित विकार (इन्द्री की शिथिलता, टेढापन, शिराओं का दीखना तथा इन्द्री का क्षीण होना इत्यादि) नष्ठ हो जाते है।

सं. वि.—यह इस तेलका प्रभाव है कि हस्तदोष जन्य विकारों का इसकी मालिश से शीघ्र नाश हो जाता है । कंटकारी ऊष्ण वीर्य है इसमें कफ दोष को नाश करने की विशिष्ट शक्ति है । बकरी के दूध की भावनाओं से इसमें सौम्यता आती है और जब इसी पञ्चाङ्ग का पाताल यन्त्र द्वारा तेल निकाला जाता है तो वह तेल आग्नेय गुण भूयिष्ट होता है । हस्तदोषादि से विकृत इन्द्री मे रक्त परिभ्रमण का अभाव हो जाता है, इसमें वात और पित्त क्षीण हो जाते है और श्लेष्म की वृद्धि होकर अंगों मे शिथिलता हो जाती है । इस तेल की मालिश से कफ का नाश, वातनाडियो की शक्ति मे वृद्धि और रक्त परिभ्रमण में वृद्धि होती है, अतः यह तेल अभ्यङ्ग द्वारा इन्द्री शैथिल्य विकारो को नष्ट करता है और सर्वदा विश्वास पूर्वक काम मे लाने योग्य है ।

———०———

बृहन्मरिच्यादि तैल [भा. भै. र. ५२८८]

(च. द. । कुष्ठा; यो. चि. । अ. ६, व. से.; भै. र; बृ. मा । कुष्ठ; भा. प्र. । वातरक्ता.; र. चि. म. । स्त. ३.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—कालीमिर्च, त्रिफला, (पाठान्तर के अनुसार त्रिवृता अर्थात निसोत),

दन्तीमूल, आक का दूध, गोबर का रस, देवदारु, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, जटामांसी, कुष्ठ, सफेद चन्दन, इन्द्रायण की जड, कनेर की जड, हरताल, मनसिल, चीतामूल, कलिहारी की जड, लाख (पाठान्तर के अनुसार मुस्ता—मोथा), वायविडङ्ग, पवांड, सिरस की छाल, कुडे की छाल, नीम की छाल, सप्तपर्ण की छाल (पाठान्तर के अनुसार धतूरा), थोहर (स्नुही), गिलोय, अमलतास, करंज की छाल, खैर छाल, (पाठान्तर के अनुसार बावची), वच और मालकांगनी प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ५—५ तोले और वच्छनाग का चूर्ण १० तोले लेकर एकत्र मिश्रित कर कल्क (चटनी सी) बनावे।

तेल—कडवा (सरसों का) तेल ८ सेर।

अन्य द्रव्य—गोमूत्र ३२ सेर।

उपरोक्त कल्क, तेल और गोमूत्र को एकत्र कर मिट्टी या लोहे के पात्र मे भरकर मन्दाग्नि पर पकावें। जलीयांश शुष्क होने तक उबाले, तत्पश्चात उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर तेल को शीशी मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल का प्रयोग करने (लगाने) से कुष्ठ के व्रण, पामा, विचर्चिका, कण्डू, दाह, विस्फोटक, वलिपलित, छाया, नीलिका और व्यङ्गादि का नाश होता है और त्वचा मृदु होती है।

यदि स्त्री को किशोरावस्था में इसकी नस्य दी जाय तो वृद्धावस्था मे भी उसके स्तन शिथिल नहीं होते।

यह तेल बैल, घोडे और हाथी के वातज विकारों को नष्ट कर देता है।

नोटः—र. चि. म. में वच्छनाग का अभाव है तथा २० पल घृत एवं १ आढक कटु—तेल को एकत्र कर पाक करने का विधान है, एवं इस योग का नाम भी 'मरिच्यादि घृत' लिखा है। इसके गुणो का वर्णन भी इसी प्रकार किया है।

सं. वि.—बृहन्मरिच्यादि तैल कटु, ऊष्ण, तीक्ष्ण, कृमिनाशक, जन्तुघ्न, व्रणनाशक, त्वक् प्रसादक और त्वक्रोग नाशक है। इसके सभी द्रव्य वात-श्लेष्म नाशक और पित्तशामक हैं। इसके अभ्यंग से रक्त परिभ्रमण गतिपूर्वक होता है और तत्स्थान का पोषण होकर है तथा इस तेल के शोधक, रोपक, जन्तु नाशक गुणो से, वहां की त्वचा कोमल और पुष्ट हो जाती है। इसका सेवन त्वचा की विवर्णता, वली-पलित, छाया, नीलिका, व्यङ्ग आदि का नाशक होने से इसकी मालिश करनेवाले मनुष्य सर्वदा सुन्दर और सुकुमार रह सकते है।

इसके नस्य से स्त्री शरीर मे दुग्ध ग्रन्थियो—स्तनो-का पोषण होता है। श्लेष्मकलाओं मे वात वृद्धि होने से वहां शोष हो जाता है और उन अवयवों मे जीर्णता आ जाती है।

इसके नस्य से श्लेष्मकलाओ की वात का नाश होता है और उनमें रक्त का परिभ्रमण प्रचुर मात्रा में होता है, इससे श्लेष्म ग्रन्थियों और श्लेष्मकलाओ का परिपूर्ण पोषण होता है, इसलिए स्तन इसके नस्य से मुरझाने नहीं पाते। जो क्रिया किशोरावस्था मे इसके नस्य से सम्भव है वही क्रिया यौवन पश्चात अभ्यङ्ग से होनी सम्भव है। अतः ढीले और मुरझाये हुए स्तनों पर इसकी मालिश बहुत लाभप्रद सिद्ध होनी चाहिए।

———o———

वृहदविष्णु तैल [भा. भै. र. ६८१२]

(भै. र., धन्वं.। वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—असगन्ध, नागरमोथा, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीर काकोली, जीवन्ती, मुल्हैठी, सौंफ, देवदारु, पद्मकाष्ट, भूरी छरीला, जटामांसी, इलायची, दालचीनी, कूठ, वच, लाल चन्दन, केशर, मंजिष्ठा, कस्तूरी, सफेद चन्दन, रेणुका, मुग्दपर्णी, मांषपर्णी, कुन्दरु, गूगल और नखी प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ५—५ तोले लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके कल्क तैयार करें।

तेल—(तिल तेल) ८ सेर।

अन्य द्रव्य—शतावरी का स्वरस ८ सेर।

दूध—८ सेर।

उपरोक्त कल्क, तेल, शतावरी स्वरस और दूध को एकत्र मिश्रित कर मन्दाग्नि पर पकावे, जलीयांश का शोषण होने पर तेल को उतार कर छानले शीतल होने पर शीशियो में भरकर सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल ऊर्ध्व वात, वात, अंगुली-ग्रह, शिरोगत वात, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, सन्धिवात, मज्जागत वात, पक्षाघात, निष्क्रियता आदि अनेक वात—पित्तज विकारो के लिए श्रेष्ठ है। जिसका कोई अंग सूखता जाता हो या जो लडखडा कर चलता हो उसके लिए यह तेल हितावह है।

सं. चि.—वृहत् विष्णु तेल अपने द्रव्यो के आधार पर पोषक, शोष, क्षय, वातवृद्धि, अङ्गसंकोच, अङ्गावसाद, नाडीशैथिल्य, पक्षाघात, संधिशैथिल्य, अस्थि, मज्जा, धमनी, शिरा, श्लेष्मकला आदि गत वात को नाश करने के लिए श्रेष्ठ है। इसका वाह्य और आन्तरिक दोनों ही प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

वात क्षय, पित्तक्षय और कफवृद्धिजन्य विकारो का नाश इसके सेवन से शीघ्र होता है। उर्ध्वजत्रुगत विकारो के लिए इसका प्रयोग सर्वदा हितकर होता है।

वातक्षय से होनेवाले शरीरावसाद के लिए यह श्रेष्ठ औषध है।

नाडी, शिरा, धमनी, कण्डरा, मांसपेशी आदि की शिथिलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग दूध मे मिलाकर करें और शरीर पर मालिश भी करे।

मेरे विचारो से वातक्षय के विकारो मे यह श्रेष्ठ लाभप्रद सिद्ध होता है कारण कि इसके सेवन से शरीर मे अग्निवृद्धि होती है, नाडियों की क्रिया मे वृद्धि होती है और अंगों को पोषण मिलता है।

क्षीणकाय और क्षीण मेधा मनुष्यो के लिए यह उत्तम औषध है।

वृहत् सोमराजी तैल [भा. भै. र. ८००८]

(भै. र., र. र. । कुष्ठा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—(१) ६। सेर बावची को अधकुटा करके ३२ सेर पानी में पकावे और चतुर्थांश (८ सेर) बाकी रहने पर उतारकर छानले।

(२) ६। सेर पवांड के बीजो को कूट कर ३२ सेर पानी मे पकावे और ८ सेर शेष रहने पर उतारकर छानले।

८ सेर सरसो का तेल, उपरोक्त दोनो क्वाथ और ८ सेर गोमूत्र तथा निम्नलिखित कल्क को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। पानी के सूख जाने पर तेल को छान कर, उसके ठण्डा होने पर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

कल्क द्रव्य—चीतामूल, लांगली की जड, सोठ, कूठ, हल्दी, करंज बीज, हरताल, मनसिल, अस्फोता, आक की जड, कनेर की जड, सतौने की छाल, गाय का गोबर, खैर छाल, नीम के पत्ते, काली मिर्च और कसौंदी प्रत्येक का चूर्ण १।—१। तोला लेकर कल्क तैयार करले।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल के उपयोग से समस्त प्रकार के कुष्ठ, कृमि, दुष्ट व्रण (या कृमियो से दूषित व्रण—Septic ulcers), किटिभ, दाह, शरीर की निर्बलता, पाण्डु, कण्डू और कुष्ट—विसर्प आदि रोगो का नाश होता है।

इस तेल के अभ्यंग से त्वक्रोग नष्ट होते है।

भृङ्गराज तैल (बृहत्) [भा. भै. र. ४८९९]

(भै. र. । क्षुद्ररोगा, ग नि. । तैला.; बृ. मा. । क्षुद्ररोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—आनूप देश (जल प्रायः स्थान) में उत्पन्न हुए भांगरे को एकत्रित करके साफ करें और फिर जल से भलीप्रकार धो डालें। इस स्वच्छ भांगरे को कूटकर उसमें से निचोड २ कर ८ सेर रस निकाल लें।

उपरोक्त भांगरे के ८ सेर रस मे २ सेर तिल का तेल और निम्नलिखित द्रव्य मिलाकर उसे मन्दाग्नि पर पकावे और जब पकते २ तैलावशेष रहे तो तेल को छान कर ठण्डा होने पर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

कल्क द्रव्य—मजीठ, पद्माक, लोध्र, सफेद चन्दन, गेरू, खरैटी, हल्दी, दारुहल्दी, केसर, देवदारु, फूलप्रियंगु, मुलैहठी, प्रपौण्डरीक, कमल, कूठ, तगर, उडद, सरसों, अगर, नागरमोथा, छार छरीला और कपूर प्रत्येक द्रव्य ५—५ तोले। सबका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एकत्र कर दूध मे मिलाकर पीस ले।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसकी नस्य लेने से बालों का गिरना, शिरः शूल, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, अकाल पलित, भयंकर दारुण नामक शिरोरोग, कर्णरोग और नेत्ररोग नष्ट होते हैं।

यदि एक मास तक इसकी नस्य ली जाय और केवल दूध पर रहा जाय तो खालित्य और इन्द्रलुप्त नष्ट होकर घने, स्निग्ध और घुंघराले बाल निकल आते हैं।

नोट—भै. र. और बृ. मा. मे देवदारु तथा कूठ से लेकर कचूर तक की औषधिया नहीं लिखी है।

सं. वि.—भृङ्गराजः—कटु, तिक्त, ऊष्ण, वात—कफ नाशक, केशवर्द्धक, त्वक्रोग नाशक, कृमि, श्वास, कास, शोथ, आम, पाण्डुनाशक और रसायन है। इसके विधिपूर्वक के उपयोग से अन्त्ररोग नष्ट होते हैं और अन्त्रों मे शक्ति की वृद्धि होती है। यह कुष्ठ, नेत्ररोग और शिरोरोग नाशक है। जिसप्रकार वात—कफ नाशक भृङ्गराज है वैसे ही इस तेल के अन्य द्रव्य भी वात—कफ नाशक, रक्तशोधक, दाह नाशक, मस्तिष्क पोषक, शक्तिवर्द्धक, त्वक् प्रसादक, नाडी शक्तिवर्द्धक, नेत्र हितकर, मस्तिष्क पोषक और केश्य हैं।

भृङ्गराज को अकेले ही तेल मे पकाकर उस तेल को बालो मे लगाने से बाल काले हो जाते है और यदि भांगरे के रस के साथ मण्डूर, त्रिफला, उत्पल, सारिवा आदि द्रव्यों को तेल मे मिलाकर पकाया जाय तो वह तेल अवश्य केशो को काला तथा घुंघराले करनेवाला बन जाता है।

वलिपलित, दारुण शिरोरोग और नाडियो के वात विकार द्वारा होनेवाले कान, दांत और आंख के रोगो में भृङ्गराज तेल का निस्संकोच प्रयोग करना चाहिए। यह चक्षु प्रसादक, मस्तिष्क तर्पक, त्वक्दोष नाशक तथा पलित नाशक है।

महामाष तैल [भा. भै. र. ५३०४]
(व. से. । वातव्या.]

द्रव्य तथा निर्माण विधान—

क्वाथ्य द्रव्य—उडद १६ सेर; असगन्ध, प्रसारणी, दशमूल, कैंाच के बीज, बला, और अरण्डमूल प्रत्येक द्रव्य ५०–५० तोले। सब द्रव्यो को एकत्र मिलाकर जौकुट करलें।

जल—१२८ सेर।

अवशेष—क्वाथ्य द्रव्यों के मिश्रण को १२८ सेर जल मे पकावे। जब द्रव्य ३२ सेर अवशिष्ट रहे तब उतारकर छानले।

कल्क द्रव्य—मुल्हैठी, देवदारु, कूठ, इलायची, रास्ना, जटामांसी, खरैटी, वच, सोया, कौंच के बीज, असगन्ध, सफेद चन्दन, कचूर, अरण्ड, तिंतर्डीक, सोंठ, मिर्च, पीपल, अगर, पुनर्नवा, निर्गुण्डी* के पत्ते, विदारीकन्द, प्रसारणी, शतावर, विधारा मूल, अतिबला, विडङ्ग और सरल काष्ट। प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ५–५ तोला लेकर सबको एकत्र कर चटनी सदृश कल्क बनाले।

स्नेह द्रव्य—तिल तेल ८ सेर।

अन्य द्रव्य—गाय का दूध ८ सेर।

उपरोक्त क्वाथ, कल्क, तेल तथा गो दुग्ध को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब जलीयांश उड जाय तब तेल को छानले और शीतल होने पर उसे शीशियो में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखलें।

×अनेक स्थानों पर टीकाकारों ने यहां पर सैन्धव शब्द का प्रयोग किया है परन्तु मेरी दृष्टि से यह युक्तियुक्त नही लगता। इसका १ कारण यह है कि दूध को नमक फाडता है अतः कल्क रूप मे दूध को विकृत करनेवाले पदार्थ का उपयोग औषध निर्माताओ की दृष्टि में उपयोगी नही हो सकता। २. महामांष तेल जिन २ रोगों के लिए उपयोगी है उन सब मे सैन्धव का विशेष उपयोग नही किया जाता जबकि निर्गुण्डी इन सभी रोगों के लिए उपयोगी कही गई है। निर्गुण्डी वात–कफ–पित्त द्वारा उत्पन्न हुए विष, शूल, ज्वर, मेद, प्रतिश्याय, गृध्रसि, शिरोरोग, सन्धिवात, शोथ, आम, नेत्रविकार आदि को नष्ट करती है तथा स्मृतिपदा, नेत्रहिता, केश्या, लघु और अग्निदीपनी है और क्योंकि सिन्धु के विस्तृत प्रदेश थाना (बम्बई प्रदेश) में बहुतायत से होती है अत. इसे सिंधुद्भव भी मान लेते है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—आवश्यकतानुसार इसे पिलाने, भोजन में खिलाने, वस्ति द्वारा प्रयोग करने तथा नस्य लेने और मालिश करने से अर्दित, कर्णशूल, शिरोरोग, हनुग्रह, मुखरोग, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, मन्दश्रवण, बधिरता, कर्णरोग, पीनस, दृग्रोग, गृध्रसि, आमवात, कटिग्रह, जंघाशूल, उरूशूल, पृष्ठशूल, प्रवृद्धपार्श्वशूल, अन्त्रवृद्धि, अण्डवृद्धि, वातरक्त, विश्वाची, खंजवात और पंगुता आदि ८० प्रकार के वातरोग, वलि-पलित, खालित्य (गंज) और बालो का गिरना आदि रोग नष्ट होते है। यह तेल शक्ति, मांस तथा शुक्र की वृद्धि करनेवाला है तथा सतानप्रद और गर्भिणियो के लिए हितकर है। यह हाथी पर चढने से और व्यायाम से टूटी हुई संधियों को जोडता है और शिथिल संधियों को शक्तिशाली बनाता है।

यह भगवान कृष्णात्रेय द्वारा निर्मित तैल है।

आन्तरिक प्रयोग के लिए मात्रा—रोग और रोगी के बलाबल को देखते १० बूंद से ०॥ तोले तक गरम जल या गरम दूध में मिलाकर पिलाना चाहिए।

सं. वि.—महामाष तेल के क्वाथ्य द्रव्य, कल्क और अन्य द्रव्यों के योग को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तेल पौष्टिक, बल-मांस-वीर्यवर्द्धक और वातनाशक है। अतः वात प्रतिलोम विकारों मे अथवा अति स्त्री प्रसंग या अन्य कारणों से वीर्य के क्षीण होने के कारण उत्पन्न हुई शरीर की कृशता और शोष को दूर करने के लिए इस तेल का अन्तर्बाह्य प्रयोग बडा ही हितकर है। कान, आंख, मुख, नाक और त्वचा इन पांचो ज्ञानेन्द्रियों मे वायु द्वारा उत्पन्न हुए विकारों के नाश करने के लिए अपने पोषक और शक्तिवर्द्धक गुणो के आधार पर यह तेल बहुत ही हितकर है। अत जिन २ विकारो की उत्पत्ति वायु के रुक्ष गुण से प्रकुपित होने के कारण अथवा शरीर मे शरीर कृशता के कारण दुर्बलता से हुई हो वहां इसका प्रयोग हितावह है। कान, आंख, पीनस, गृध्रसि और पार्श्व शूलो मे यह सर्वदा लाभकारी सिद्ध होता है।

वात-प्रतिलोम द्वारा शुक्र ग्रन्थियों के शोष के कारण उत्पन्न हुई वीर्य क्षीणता और क्लीवता मे स्थानिक मर्दन और आंतरिक सेवन के लिए यह प्रशस्त औषध है।

वातवृद्धि के कारण जिन रुग्णाओ का गर्भाशय शिथिल, शुष्क और भ्रष्ट-बन्धन या निष्क्रिय हो गया हो अथवा डिम्ब कोष शुष्क होकर निष्क्रिय हो वहां इस तेल का प्रयोग वस्ति द्वारा ०। तोला को ५ तोले दूध और १० तोले समशीतोष्ण जल मे मिलाकर करना चाहिए और आवश्यक मात्रा मे ऊष्ण दूध के साथ प्रातः-सायं इसे पिलाना चाहिए।

यह तेल रसायन और वाजीकरण गुणो से युक्त है अतः शरीरवर्द्धन और शुक्रादि धातुओ की उत्पत्ति के लिए इसका सेवन करना चाहिए।

महाशुष्क मूलादि तैल

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ्य द्रव्य—सूखी हुई मूली, सुहांजने की छाल, धतूरे के पत्ते, हरड की छाल, निर्गुण्डी, करञ्ज. वरुणे की छाल और पुनर्नवा प्रत्येक द्रव्य १—१ सेर ले और सबको जौकुटा कर एकत्र मिलावें।

क्वाथ बनाने के लिए जल—१२८ सेर (४ द्रोण)।

उपरोक्त जौकुट द्रव्यों के मिश्रण को १२८ सेर जल में मिश्रित कर उसे अग्नि पर जल के चतुर्थांश अवशेष पर्यन्त (३२ सेर) पकावे और तैयार होने पर क्वाथ को छाने।

कल्क द्रव्य—सोंठ, मिर्च, सैंधानमक, पुनर्नवा, काकमाची, चित्रकमूल, पीपल, गजपीपल, कायफल, पुष्करमूल, काकडासिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, करञ्ज, नाटा करञ्ज, श्यामलता और अनन्तमूल प्रत्येक द्रव्य ४—४ तोले लेकर सबके सूक्ष्म चूर्णो को एकत्र मिश्रित कर जल मे घोटकर कल्क बनावें।

पाकार्थ तेल—४ सेर (तिल का तेल)।

उपरोक्त क्वाथ मे कल्क द्रव्यों की पिष्टी और तेल को मिश्रित कर मन्दाग्नि पर जलीयांश उडने तक पकावे। एवं उतार कर ठण्डा होने पर छानकर साफ सुथरी शीशियो में भरकर सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल की मालिश से सब प्रकार के शोथ रोग, व्रण, कामला, पाण्डु और उदर रोगों का नाश होता है।

पथ्यापथ्य—जिस रोग के कारण शोथ उत्पन्न हुआ हो, उस रोग का नाशक हो इस प्रकार का पथ्य प्रयोग में लाना चाहिए। शोथ रोग में अन्न त्याग कर केवल दुग्धाहार ही दिया जाय तो रोग शीघ्र मिटता है। दूध के साथ २ ताजे फल और शाकों का भी प्रयोग किया जा सकता है। गरम जल से स्नान, मूंग की दाल, परवल आदि के शाको का प्रयोग हितकर होता है।

सं. वि.—महाशुष्कमूलादि तेल मूत्रल, व्रणरोपक, विषनाशक, कीटनाशक, दाहनाशक, वातानुलोमक, रक्तशोधक और कोष्ठशोधक द्रव्यो के योग से निर्मित होने के कारण हृदय, वृक्क, यकृद् विकार, उदर शोथ और पतन या आघात द्वारा उत्पन्न हुए विकारों के शोथों का नाशक है। यह औषध त्वचा के अंदर प्रवेश कर जलीयांश या रक्त के वैकारी संग्रह का या तो शोषण कर लेती है या उसका प्रस्तार कर देती है। जहां जलीयांश, शिराओं मे, शक्ति के अभाव के कारण एकत्रित हो जाता है वहां इस तेल का मर्दन बहुत ही उपयोगी

सिद्ध होता है। त्वचा के रंध्रो द्वारा तेल अन्दर प्रविष्ट होकर शिराजाल की शिथिलता को नष्ट करता है और शिराओं को यथापूर्व कार्य निमग्न कर देता है।

हृदयजन्य शोथ, जो प्रारम्भ मे पैरों पर उत्पन्न होता है, इस तेल के उपचार से शीघ्र नष्ट होता है। वातज हृदय रोग मे या हृदयवृद्धि जन्य शोथ मे इस तेल का पीने के लिए भी उपयोग किया जाता है और हृदय की उन विकृतियों को यह शीघ्र दूर करता है। वृक्कजन्य शोथ जब वात विकारों के कारण उत्पन्न हो यथा—वृक्क संन्यास तब यह तेल केवल ऊष्ण दुग्ध के साथ पीने को दिया जाय तो रोग मिट जाता है, यकृद और उदर विकारों पर इसका मर्दन उपयोगी सिद्ध होता है।

शोथ रोगों की किसी भी दशा मे महाशुष्कमूलादि तेल सर्वदा लाभकारी सिद्ध होता है।

महावज्रक तैल [भा. भै. र. ६७७८]
(ग. नि., तैल २; वा. भ. । चि. अ. १९; व. से.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—एरण्डमूल, रसौत, नागरमोथा, अशोक की छाल, कदम्ब की छाल, भारंगी, कमीला, वायविडङ्ग, कलिहारी की जड, इन्द्रवारुणि की जड, संभालु, भिलावा, मुरामांसी, चोक (सत्यानाशी की जड), श्रीवेष्ट (धूप), गूगल, मन्सिल, सैधानमक, हरताल और सोठ प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण ४-४ तोले लेकर सबको एकत्र मिलाकर जल के साथ घोटकर कल्क तैयार करे।

४ सेर सरसो के तेल में उपरोक्त ४ सेर कल्क, २६ सेर पानी, ४ सेर थूहर का दूध और ४ सेर आक का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब जलीयांश नष्ट हो जाय तब तेल को उतारकर छानले और ठण्डा होने पर शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल श्वित्र, अर्श और गण्डमाला को नष्ट करने मे अत्यन्त प्रभावशाली है।

सं. वि.—इस तेल के कल्क और अन्य द्रव्यो पर साधारण दृष्टिपात करने से भिलावा, थूहर और आक जैसे द्रव्यो पर वैसे ही शोधक दृष्टि पडती है जैसी मन्सिल, हरताल, रसौत, श्रीवेष्ट (धूप) आदि पर। पहले अर्थात् भिलावा आदि दाहक, दोषनाशक, दोष संग्रह भक्षक, और दूषित स्थानों को अपनी अग्निप्रधान क्रिया द्वारा शुद्ध करनेवाले है, जबकि मन्सिल, हरताल आदि द्रव्य रोपक, सकोचक, शोधक, व्रणनाशक, त्वक्रञ्जक और त्वक्दाह, शोष, शोथ आदि नाशक है। यह तेल अपने योग के अनुसार त्वकदोष, व्रण ग्रन्थि शोथ, अर्श

और दुष्ट व्रणों के लिए उपयोगी है। जहां दाहक, विषनाशक, व्रणरोपक, कृमिनाशक औषधियों की आवश्यकता हो वहां निस्संकोच इसका प्रयोग करना चाहिए। दुष्ट व्रणों और क्षुब्ध ग्रन्थियों पर इसना प्रलेप; कुष्ट, श्वित्र और ग्रन्थियों पर इसका मर्दन और अर्शों पर इसका लेपन करना चाहिए।

रसोन तैल [भा. भै. र. ५९५६]

(वं. से; वृ. मा. । वाता; ग. नि.; वाता. १९; च. द. । वातव्या. २२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—१ मन लशुन का रस निकालकर उसमें १० सेर तिल का तेल और २॥ सेर लशुन के पानी के साथ घोटकर तैयार किया हुआ कल्क मिलावे और मन्दाग्नि पर लोहे की कढाई मे इसे उबलने के लिए रखदे। जब जलीयांश सम्पूर्णतया नष्ट हो जाय तब उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर इसे शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखलें।

मात्राः—१ माशा से ०॥ तोले तक देश, काल, बल, आत्म्य, सात्म्य, प्रकृति और रोगी तथा रोग का बलाबल देखकर गरम जल में मिलाकर पिलावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके सेवन से वातज रोग शीघ्र ही नष्ठ हो जाते है।

सं. वि.–लशुनः–ऊष्ण, कटु, पिच्छल, स्निग्ध, गुरु, बल्य और मधुर रसवाली सुन्दर औषध है। इसके सेवन से वीर्य, मेधा, स्वर और वर्ण की वृद्धि होती है तथा यह चक्षु, अस्थिभग्न आदि के लिए हितकर है। हृद्रोग, जीर्णज्वर, पार्श्वशूल, विबंध, गुल्म, अरुचि, आमजशोथ आदि को नाश करनेवाली, कुष्ठ, वायु, कफ और जन्तुओ को नाश करनेवाली है।

अम्ल रस के अभाव में रसोन पांच रसो युक्त है। लशुन को ज्वर, कास, अर्श, कुष्ठ आदि रोगो में प्रयोग में लाते है। यह मूत्रल, क्षुधावर्द्धक, पित्तवर्द्धक और बल्य है। जहां वातनाडी विकार हों वहां इसका प्रयोग बडा लाभप्रद सिद्ध होता है। लशुन के अनेक प्रयोग पाए जाते है। जिसप्रकार यह अन्य प्रयोगों में लाभकर है उसी प्रकार यह तेल के साथ परिपक्व हुआ भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

वातरोगों में रसोन तेल रसोन से भी अधिक लाभप्रद सिद्ध इसलिए होता है क्योंकि वायु की तीक्ष्णता और ऊष्णता को दूर करने के लिय यह स्निग्ध और गुरु गुणों से विशेष कार्यकर है। इसका सभी प्रकार के वातज विकारों में और विशेषतः आमाशय आक्षेप, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, हृच्छूल आदि रोगों मे प्रयोग हितावह है।

रतिवल्लभ तैल [भा. भै. र. ५९५४]
(वृ. यो. त. । त. १७४.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—तिल तेल ८ सेर, दही ३२ सेर, नागरमोये का क्वाथ ८ सेर, लाख का पानी ८ सेर और निम्न लिखित कल्क द्रव्यों को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें । जब जलीयांश नष्ठ हो जाय तब तेल को उतारकर छानलें और शीतल होने पर शीशियों में भरकर सुरक्षित रखले ।

कल्क द्रव्य—सफेद चन्दन, अगर, केशर, देवदारु, सिल्हक, सारिवा, कस्तूरी, लाल चन्दन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, कुंदरु, धनिया, तगर, एलावालुक, चोर, कूठ, पतंगकाष्ठ, दालचीनी, लैंग, कपूर, खस, पीला चन्दन, मजीठ, तेजपात, नागकेशर, जावित्री, मुरामांसी, खस, इलायची, नख, सुपारी, खट्टासी, जटामांसी, वच, पीली खस और जायफल प्रत्येक २ तोले २ माशे के प्रमाण में लेकर एकत्र चूर्ण कर जल मिलाकर चटनी सी तैयार करके कल्क बनावें ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल की मालिश करने से शीघ्र ही दीर्घकालीन नपुंसकता नष्ठ हो जाती है । यह कामशक्ति की वृद्धि करता है ।

सं. वि.—अधिक उत्तेजना के कारण इन्द्रियों में जो निष्क्रियता उत्पन्न होती है वह भी एक प्रकार की शक्तिहीनता ही है । मानसिक विकृत चिंतन से जिन पुरुषों की लिंगेन्द्रियां सतत उत्तेजना का आभास प्रतीत करती है, कालान्तर मे वे इन्द्रियां निष्क्रिय हो जाती है । इसी प्रकार हस्तदोष, अति मैथुनकामता और अति स्त्रीप्रसंग से भी इन्द्रियो मे शिथिलता आ जाती है। यह शिथिलता उन मनुष्यों मे जो अपने विचारो को और अपने भावो को बदलकर अन्य कार्यों में संलग्न होकर इन्द्रिय लोलुपता को भूल जाते है, कभी २ स्वाभाविक ही दूर हो जाती है, परन्तु जिनकी वृत्तियों मे परिवर्तन नहीं हो पाते, जो अति कामी होते है, उनमें तो नपुंसकता ही आजाती है । ऐसी परिस्थिति मे यदि वे बडी उग्र, ऊष्ण और उत्तेजक औषधियो का प्रयोग करते है, तो क्षणिक उत्तेजना होने के बाद वे इन्द्रियां पुन: शिथिल हो जाती है कारण कि, उनमे वही उत्तेजना, जिसके कारण वह दुर्बल हुई है, पुनः प्रगट होती है और नाडियो तथा मांसपेशियों मे निष्क्रियता और कम्प उत्पन्न कर देती है । अतः उत्तेजना द्वारा विकृत हुए नपुंसकता के रोगियो के लिए स्थानिक प्रलेप के लिए ऐसी औषधियां होनी चाहिएं जैसी रतिवल्लभ तेल ।

रतिवल्लभ तेल नाडियों के शोथ, नाडियों की जडता और अधिक काल से उत्पन्न हुई उत्तेजना के कारण इन्द्रिय-मांस मे उत्पन्न हुई कृच्छ्रता को दूर करता है । यह नाडीपोषक,

मांसपोषक, मांसवर्द्धक, शोथनाशक, दाहनाशक और अनावश्यक उत्तेजना को नाश करनेवाली औषध है । इस औषध के सभी द्रव्य पौष्टिक, दाहनाशक और समशीतोष्ण प्रकृति के हैं ।

रतिवल्लभ तेल का प्रयोग दूध के साथ पीने के लिए भी किया जा सकता है । इसके आन्तरिक प्रयोग से शरीर के जिन अंगो में बैचेनी और अनावश्यक उत्तेजना रहती है वे शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं । यह हृद्य, रसायन, शक्तिवर्द्धक और स्थैर्यकर औषध है ।

लक्ष्मीविलास तैल [भा. भै. र. ६२७६]
(यो. र. । क्षय.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—छोटी इलायची, सफेद चन्दन, रास्ना, लाख, नखी, कपूर, कंकोल, नागरमोथा, सुगन्धवाला, दालचीनी, देवदारु, अगर, तगर, जटामांसी और कूठ प्रत्येक द्रव्य १—१ भाग तथा काली राल सम्पूर्ण द्रव्यो के योग से तीन गुनी लें। सब द्रव्यो का अलग २ चूर्ण करके सबको मिलावे, फिर इस चूर्ण का पाताल यन्त्र या डमरु यन्त्र द्वारा तेल निकालें ।

आधुनिक यन्त्रो द्वारा इस तेल को बडी आसानी से निकाला जा सकता है । एक कांच या लोहे के रिटोर्ट में उपरोक्त औषध-चूर्ण को भरकर रिटोर्ट के मुख में एक डाटवाली द्विमुखी नलिका लगादे । इस नलिका के मुंह का, एक अन्य कांच पात्र मे कि जो पानी के द्रोणि में रखा हुआ हो, प्रवेश करादे । अब रिटोर्ट के नीचे मंद २ अग्नि देता हो इसप्रकार का एक सुराप्रदीप या अन्य प्रकार का ज्वलन साधन द्रव्य रक्खें । रिटोर्ट मे स्थित द्रव्य में राल एक द्रव्य है । यह द्रव होकर वाष्प रूप मे परिणित होता है उपरोक्त योग मे यह अन्य द्रव्यो से तीन गुना है अतः अग्नि का स्पर्श पाते ही यह द्रवित होकर अन्य द्रव्यो को अपने मे समा लेगा और इसप्रकार अन्य द्रव्य इस आर्द्र द्रव मे घुलकर उसकी उडनशील प्रकृति से समिश्रित होकर वाष्परूप मे रिटोर्ट में से नलिका द्वारा द्रोण स्थित पात्र में एकत्रित होगा और शनैः २ शीत का स्पर्श करते यह वाष्प तरल रूप में परिणित हो जायगा। क्योकि मिश्रण के साथ यह वाष्प उडकर आता है और राल स्नेह युक्त है अतः सम्पूर्ण वाष्प सस्नेह होगी और तरल स्नेह द्रव्य बन जायगा । इसी को लक्ष्मीविलास तेल के नाम से प्रयोग में लावें । इस तेल मे सुगन्धित पुष्पों को बसाले ।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल वातजन्य अनेक रोगो का नाश करता है । इस तेल

को पान में रखकर खाने से अग्नि प्रदीप्त होती है। इसकी मालिश से अर्श, दाह और क्षय का नाश होता है।

सं. वि.—यह लक्ष्मीविलास तेल गन्धयुक्त, वातनाशक, पोषक, नाडीदोष नाशक और दुर्गन्ध नाशक तथा कृमिनाशक द्रव्यों के योग से निर्मित है। अग्नि के योग द्वारा यह अग्निगुण भूयिष्ठ बन जाता है। अतः यह तेल वात, कृमि, दुष्ठ गन्ध आदि विकारों को नष्ठ करने मे प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग, अग्निवर्धन के लिए ऐसे द्रव्यों के साथ जो शीघ्र अग्निवर्द्धक हों और आग्नेय तत्वों को लेकर प्रविष्ठ होते हों, प्रयोग करना चाहिए। कृमि द्वारा उत्पन्न होनेवाले रोगों अथवा ऐसे रोग कि जिनकी अंतिम या मध्य अवस्था मे जन्तुओं की उत्पत्ति होती हैं, यह तेल सफलतया प्रयोग में लाया जा सकता है। दाह, खुजली, वल्मीक (एक्जिमा), दुष्ठ जन्तुघ्न व्रण आदि विकारो मे यह उपयोगी है। अग्निवर्धन के लिए इसको लवंग क्वाथ, ताम्बूल स्वरस या ताम्बूल मे रख कर खा सकते है।

लाक्षादि तैल [भा. भै. र. ६२८५]

(वृ. नि. र. । विषमज्वर)

द्रव्य तथा निर्माण प्रकारः—

कल्क द्रव्य—लाख १२॥ तोले, मजीठ ६। तोले, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, दालचीनी, तेजपात, सुगन्धवाला, मुरामांसी और नागरमोथा प्रत्येक द्रव्य ५–५ तोला तथा चिरायता, निसोत, सोठ, गिलोय, पीपर, पित्तपापडा, कटेली, वायविडङ्ग, अतिविष, आमला, वासा, काकोली, हल्दी, वरणे की छाल और सम्भालु प्रत्येक ०॥–०॥ पल ले। और सबका एकत्र चूर्ण करके पानी के साथ पीसकर कल्क बनावें।

अन्य द्रव्यः—गोदुग्ध १८॥। सेर।
तिल तेल १२॥ सेर।

उपरोक्त कल्क, गोदुग्ध और तिल तेल एकत्र एक कढाई में मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब जलीयांश सूख जाय तो तेल को उतारकर छानलें और ठण्डा होने पर प्रयोगार्थ शीशियो में भरकर सुरक्षित रक्खे।

इस तेल की मालिश से परिश्रांत शरीर का श्रम नष्ठ हो जाता है, मन और शरीर प्रसन्न होते है तथा परिश्रांति से उत्पन्न हुआ श्रम नष्ठ होता है।

इस तेल की नित्य मालिश करने से शरीर कांति बढती है, अस्थियो की वेदना भी नष्ठ हो जाती है और गहरी नींद आती है।

सं. वि.—लाखः—तिक्त—कषाय रसप्रधान श्लेष्म और पित्त का नाश करनेवाली तथा रक्तदोष और विषमज्वर नाशक है। इस तेल के अन्य द्रव्य ज्वरघ्न, ज्वरपित्तघ्न, विषघ्न, कफनाशक, कीटाणुनाशक, श्लेष्मकला शैथिल्य और श्लेष्मदोष नाशक है। अतः इस तेल के मर्दन से पित्तजदाह, श्लेष्मज शैथिल्य और अनावश्यक ऊष्मा नष्ट होते है तथा यह श्लेष्म कला और मांस के आंतरिक दोषजन्य ऊष्मा और शैथिल्य का नाश करता है। यह अंगों मे सक्रियता उत्पन्न करता है और रक्तपरिभ्रमण को बढाकर शरीर को सम और स्थिर करता है।

विषमज्वर, पित्तजज्वर, रक्तषदोज्वर, व्रणजज्वर, विषजज्वर कौर कीटाणुजन्य ज्वरों में इसका मर्दन बडा उपयोगी है। क्षय रोग में और विशेषतः फुफ्फुस क्षय में जहां क्षय का प्रारम्भ हो या फुफ्फुसो में श्लेष्मज कोथ हो, वहां इसका प्रयोग बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है। फुफ्फुस में जहां व्रण अधिक या दीर्घाकार हों वहां भी बहुत हल्के हाथ से इसको छाती पर लगा सकते है। क्षय के व्रणों पर इसका उपयोग बहुत ही फलप्रद सिद्ध होता है।

वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल [भा. भै. र. ६७८८]

(भै. र. । धन्व.; वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्वाथ—(१) ६। सेर बला (खरैटी) को जौकुटा करके १०० सेर पानी में पकावे और २५ सेर पानी अवशेष रहने पर उतार कर छानलें।

(२) ६। सेर दशमूल को अधकुटा करके १०० सेर जल में पकावें और २५ सेर अवशेष रहने पर उतार कर छानले।

पाकार्थ—तिल तेल २ सेर।

कल्क द्रव्य—मजीठ, लाल चन्दन, कुष्ठ, इलायची, देवदारु, भूरी छरीला, सैन्धव, वचा, कंकोल, पद्मकाष्ठ, काकडासिंगी, तगर, गिलोय, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावरी, अनन्तमूल, काली सारिवा, सोया और पुनर्नवा, प्रत्येक द्रव्य २—२ तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण बनाकर जल के साथ घोटकर कल्क तैयार करें।

उपरोक्त दोनो क्वाथ, तेल और कल्क को एकत्र मिश्रित कर मन्दाग्नि पर पकावें। जब जलीयांश उड जाय तब तेल को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर प्रयोगार्थ सुरक्षित रखे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल स्त्री और पुरुष दानो के वात विकारों के लिए समान हितकारी है, विशेषतः शुक्र क्षीणता और आर्तव हीनता में इसका अन्तर्वाह्य प्रयोग लाभप्रद

होता है। इसकी मालिश करने से और पीने से चित्त विकृति, आक्षेपक, मर्मगत वात, श्रमजनित गात्रकम्प तथा हिक्का, श्वास, कास, वातपित्तज अपस्मार और उन्माद नष्ट होते हैं।

इस तेल का निर्माण श्रीमान गहननाथ ने किया था।

आन्तरिक सेवन के लिए मात्रा:—०। से ०॥ तोला, ऊष्ण दूध या ऊष्ण जल मे मिलाकर।

सं. वि.—यह तेल रुक्ष, शीत, लघु आदि स्वगुणो से प्रकुपित वायु को, शरीर के कण २ में प्रविष्ठ होकर, विनष्ठ करता है। अधिकतर यह अंगों की शिथिलता और श्लेष्मकलाओं की रुक्षता को दूर करने में, स्नेहन और ऊष्ण गुण युक्त होने से, लाभकारी है। जिस प्रकार यह वातजदोषो मे ऊष्ण दूध या जल के साथ पिया जा सकता है, उसीप्रकार वातज योनिदोषो मे अर्थात् योनिसंकोच, संकीर्णता, आक्षेपक, गर्भाशय और शोषित जरायुकला को दूर करने के लिए दूध के साथ मिश्रित कर वस्ति रूप मे लिया जा सकता है।

रक्तचाप की वृद्धि मे इसका उपयोग बडा ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। मस्तिष्क, शंख तथा कपाल प्रदेशो पर इसकी मालिश उग्र रक्तचाप का संशमन करती है तथा उत्तेजित मस्तिष्क को शांत निद्रा देती है। वन्ध्याओं और शुक्र क्षीणो के लिए यह अन्तर्वाह्य प्रयोग द्वारा हितकर है।

व्याघ्री तैल [भा. भै. र. ६८२८]

(भै. र.; वं. से; वृ. नि. र, यो. र.; वृं. मा., वै. र.। नासा., वृ. यो. त.। त. १३०.; ग. नि.। नासा. ४; भा. प्र.। म. खं. २.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान:—कटेली, दन्तीमूल, वच, सुहांजने की छाल, तुलसी, त्रिकटु और सैन्धव। प्रत्येक द्रव्य ११॥–११॥ तोले लेकर जल मे घोटकर चटनी सी कल्क बनावें।। इस कल्क को ४ सेर तिल तेल में मिश्रित कर, मिश्रण में १६ सेर पानी मिलावे। अब इसे मन्दाग्नि पर पकाने के लिए चढादे। जलीयांश नष्ठ होने पर शीशियो मे भरकर रखले।

नोट—इस तेल का पाक करते हुए यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि आवश्यकता से अधिक तेल का पाक न हो।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके नश्य से पूतिनस्य रोग नष्ट होता है। यह तेल शीत द्वारा उत्पन्न हुए कलाओं के दोष को दूर करने में बहुत ही उपयोगी है। किसी कारण से भी वायु की वृद्धि होकर नासा शुष्क हो जाय और उसकी श्लेष्मकलाएं कर्कश होकर जड हो जाएं तथा उनमे जडता के कारण सतत शीत का प्रभाव बना रहे और नासा की घ्राण

शक्ति मन्द हो जाय तथा सतत प्रतिश्याय सा प्रतीत होता हो वहां इस तेल का नस्य बडा उपयोगी सिद्ध होता है। नासार्श और अन्य नाक के विकारों मे भी इसका प्रयोग किया जाता है।

---

७ वातारि तैल [भा. भै. र. ६७८६]
(ग. नि. । परि. तैला. २)

द्रव्य और निर्माण विधानः—

क्काथ्य द्रव्य—६। सेर शतावरी और ६। सेर गोखरू को एकत्र मिलाकर जौकुट करले।

क्काथ बनाने के लिए जल—५६ सेर।

अवशेष—उपरोक्त क्वाध्य द्रव्य को ५६ सेर जल में उबाल कर १४ सेर शेष रहने पर उतार कर छानलें।

अन्य द्रव्य—एरण्ड के पत्तों का स्वरस ६० तोला।

कल्क द्रव्य—एरण्ड की जड, सुहांजने की जड, अरणी, सफेद सम्भालू, धतूरा, नीलिका, गठिवन, करञ्ज और भांगरा प्रत्येक द्रव्य ४॥–४॥ तोले तथा गूगल ३० तोले ले। गूगल के अतिरिक्त अन्य कल्क द्रव्यो को जल मे घोटकर कल्क बनालें।

तेल—३ सेर २ छटांक तिल तेल और ३० तोले (६ छटांक एरण्ड) तेल।

उपरोक्त क्वाथ, कल्क द्रव्य, गूगल और दोनो प्रकार के तेलो को एक लोह कढाई में मिश्रित कर मिश्रण को मन्दाग्नि पर उबालें। जब जलीयांश नष्ट हो जाय तब भलीप्रकार घोटकर तेल को नीचे उतार लें और ठण्डा होने पर छानकर शीशियो में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल के अभ्यङ्ग और पान से कुब्जता, आक्षेपक, पंगुता, सुप्तता, मन्दगामिता, पक्षाघात, हनुस्तम्भ, सन्धिरोग आदि का नाश होता है।

पानार्थ मात्रा—३ माशे से १ तोले तक ऊष्ण दूध या ऊष्ण जल मे मिलाकर।

सं. वि.—यह वातारि तेल पोषक, तीक्ष्ण, स्नेहन, वातानुलोमक, नाडी, शिरा, कण्डरा, और मांसपेशी को पोषण देकर वातविकार विहीन करनेवाला है। यह तेल अन्य वातनाशक तेलों की अपेक्षा अपने शरीरवर्द्धक, मूत्रल, पोषक और वात के शीत, रुक्ष, लघु और सूक्ष्मता आदि गुणो को अपने ऊष्ण, तीक्ष्ण, स्नेहन और गुरु प्रभाव से नष्ट करता है।

इसका अभ्यंतर प्रयोग आमवात, वातज उदरशूल, कोष्ठबद्धता, उदर वातज शोथ,

आध्मान और रुक्षता आदि विकारों के लिए बहुत ही लाभप्रद है। इसके सेवन से उदर नित्य नियमित साफ होता है, वात का अनुलोमन होकर अन्त्र की क्रिया-शक्ति बढ़ती है और पाचक अंग अपनी क्रिया में संलग्न होकर शरीर वृद्धि में सहायभूत होते हैं।

इसका वाह्य मर्दन प्रयोग भी सब प्रकार से लाभकारी है। धतूरे आदि के संवेदना नाशक गुणों के कारण जिन वातज विकारों में वेदना होती हो उनमें यह फलप्रद सिद्ध होता है।

अधिकतर वातज विकारो में इसका सेवन लाभकारी है। पुरातन रक्तचाप वृद्धिजन्य पक्षाघात तथा वातपीडित अंगों की निष्क्रियता पर इसका प्रयोग सर्वदा लाभ के लिए किया जाता है।

विषगर्भ तैल [भा. भै. र. ६८०४]

(वृ. नि. र. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

स्वरस—संभालु का रस २ सेर, भांगरे का रस २ सेर, धतूरे का रस २ सेर, और गोमूत्र २ सेर।

तेल—तिल तेल २ सेर।

कल्क द्रव्य—वच, कूठ, धतूरे के बीज, बडी मालकांगनी और कायफल प्रत्येक द्रव्य २॥-२॥ तोले और वच्छनाग (मीठा तेलिया) सबके मिश्रण के समान अर्थात् १२॥ तोला, सबका एकत्र चूर्ण करके जल के साथ घोटकर कल्क बनावे।

उपरोक्त स्वरस, तेल और कल्क द्रव्य को एकत्र एक कढाई में मिश्रित कर मन्दाग्नि पर जलीयांश नष्ट होने तक उबालें। तत्पश्चात् तेल को छानकर ठण्डे होने पर शीशियों मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसकी मालिश से समस्त वात रोग नष्ठ होते है।

सं. वि.-यह तेल वात द्वारा होनेवाले मांसशूल, वस्तिशूल, कण्डरा संकोच, अंग की शुष्कता, अंग में पोषण का अभाव, आमवात आदि रोगों के लिए उपयुक्त है। इस तेल के सम्पूर्ण द्रव्य वेदना नाशक, रक्त परिभ्रमण वर्द्धक और वातनाशक है। यह मांस और कण्डराओं के संकोच को भी दूर करता है।

विष तैल [भा. भै. र. ६८००]

(भै. र.; धन्व.; यो. र.; च. द. । कुष्ठा; ग. नि. । कुष्ठा. ३६; वृ. मा.; व. से.; वृ. नि. र.; र. र. । कुष्ठा; वृ. यो. त. । त. १२०.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—करंज बीज, हल्दी, दारुहल्दी, आक के जड की छाल, तगर, कन्हेर, वच, कूठ, कोयल, लाल चन्दन, चमेली के पत्ते, सम्भालु, मजीठ और सप्तपर्ण की छाल, प्रत्येक द्रव्य २॥–२॥ तोले लें तथा मीठा विष (वच्छनाग) ५ तोले लें।

तेल—२ सेर (तिल तेल) और गोमूत्र ८ सेर।

कल्क, तेल और गोमूत्र को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर जलीयांश शोषण पर्यन्त उबालें. फिर तेल को उतार कर छानलें और प्रयोगार्थ शीशियों मे भरकर सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल श्वेत कुष्ठ, विस्फोटक, किटिभ, कुष्ठ, मकडी आदि विषैले कृमियों के दंश या स्पर्श से उत्पन्न पीडिका, विचर्चिका, कण्डू, कच्छुरिका और विष दूषित व्रणों को नष्ट करता है।

सं. वि.—विष तेल के सम्पूर्ण द्रव्य विषनाशक, व्रणशोधक, त्वक्दोष नाशक, त्वक् विवर्णता नाशक, कृमिनाशक, कुष्ठनाशक और शोधक आदि गुणी से युक्त है, अतः इस तेल का प्रयोग विष, कृमि और त्वचा के भयंकर दोषों से उत्पन्न हुए विकारों पर किया जाता है।

श्री गोपाल तैल [भा. भै. र. ७४२६]

(भै. र.; वाजीकर. ।

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

द्रव पदार्थ—(१) शतावरी का रस ८ सेर, पेठे का रस ८ सेर और आमलों का रस ८ सेर।

(२) ६। सेर असगन्ध को ३२ सेर पानी में पकाकर ८ सेर अवशेष रक्खें।

(३) सहचर (झिण्टिमूल) ६। सेर लेकर ३२ सेर पानी मे पकाकर ८ सेर अवशेष रहने पर उतार कर रक्खे।

(४) बला (खरैटी) की जड ६। सेर लेकर ३२ सेर पानी मे पकावें और ८ सेर रहने पर छानकर रखलें।

(५) बेल छाल, अरलु की छाल, खम्भारी की छाल, पाढल छाल, अरणी, कटेली की जड, मूर्वामूल, केवडे की जड, खट्टाशी (जुन्द वेदस्तर) औ पारिभद्र (फरहद) की छाल प्रत्येक ५०–५० तोले लेकर सबका अधकुटा चूर्ण बनालें और ३२ सेर पानी में ८ सेर अवशेष पर्यन्त पकाकर छानलें।

तिल तेल—८ सेर।

कल्क द्रव्य—असगन्ध, चोर पुष्पी (चोर होली), पद्माक, कटेली, बला, अगर, नागरमोथा, खट्टाशी, शिलारस, अगर, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, त्रिफला, मूर्वा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, मुग्दपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुल्हैठी, त्रिकटु, खट्टाशी, केशर, कस्तूरी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, छार छरीला, लखी, नागरमोथा, मृणाल (कमलनाल), नीलोत्पल, खस, जटामांसी, मुरामांसी, देवदारु, वच, अनार की छाल, धनिया, ऋद्धि, वृद्धि, दमनक और छोटी इलायची प्रत्येक द्रव्य २॥—२॥ तोला लेकर कल्क बनावे।

उपरोक्त द्रव पदार्थ, तेल और कल्क को एकत्र एक बडी कढाई में मिश्रित करके मन्दाग्नि पर जलीयांश उडने तक पकावे। फिर छानकर ठण्डा होने पर तेल को शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस तेल के मर्दन से वातज, पित्तज और कफज सम्पूर्ण रोग नष्ट होते है। यह स्मृति, मेधा, धृति तथा बुद्धिवर्द्धक है। इसके सेवन से वातरोग और विशेषतः बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। यह तेल गर्भ संस्थापक तथा शूलनाशक है। मूत्रकृच्छ्र, अपस्मार, उन्माद आदि रोगों में यह हितकर है। इस तेल के प्रयोग से जराजीर्ण वृद्ध पुरुष भी १०० स्त्रियों से रमण करने में समर्थ हो जाता है। यह श्रीगोपाल तेल जन्तुनाशक भी है।

इस तेल का निर्माण अश्वनिकुमारों ने किया था।

सं. त्रि.—यह अन्तर्वाह्य दोनों ही प्रकारो से प्रयोग मे लाया जा सकता है। ध्वजभंग और वंध्यत्व के लिए इसका अन्तर्वाह्य प्रयोग बहुत ही हितकर है। ध्वजभंग आदि विकारों मे इसकी कुछ बूंदो का मर्दन अवयव को शक्ति प्रदान करता है तथा मांस की यथेच्छ वृद्धिकारक है। वंध्याओं मे इसका प्रयोग ३ माशे से १ तोले की मात्रा मे ऊष्ण दुग्ध को शीतकर उस मे मिलाकर अथवा अशोक या लोध्र की छाल के क्वाथ मे मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग मे लाना चाहिए।

यह तेल शक्तिशाली स्नेह्य, वातनाशक, शक्तिवर्द्धक, वृष्य, बल्य, पोषक तथा मांसवर्द्धक द्रव्यों के योग से निर्मित हुआ है, अतः इसके सेवन से क्षीण और जराजीर्ण शरीर भी नवता प्राप्त कर सकते है। केवल धैर्यपूर्वक इसका अन्तर्वाह्य प्रयोग करके ऐच्छिक शक्ति प्राप्त होने तक निश्शंक क्रियाएं करते रहना चाहिए। अभ्यङ्ग द्वारा क्लीवता, संकीर्णता, पोषणाभाव और क्रियाहीनता के लिए यह अत्युत्तम है।

निर्माताओं की दृष्टि से तो यह तेल भयंकर से भयंकर भूतोपसर्ग (Bacterial Infection) को नष्ट करता ही है, परन्तु इसके वास्तविक गुण भी इतने ही उच्च कोटि के है। जिन स्थानिक या अन्तर्विकारो मे जन्तुओ का समावेश हो अथवा जो विकार जन्तुओं के द्वारा उत्पन्न हुए हों उनके नाश के लिए इसका उपयोग सराहनीय है।

शूलगजेन्द्र तैल [भा. भै. र. ७४२०]
(भै. र.; धन्व. । शूला)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

क्राथ्य द्रव्य—२५ तोले एरण्ड मूल और २५ तोले दशमूल लेकर दोनों को मिश्रित कर अधकुटा करलें।

जल—१० सेर।

उपरोक्त क्वाथ्य द्रव्यों को १० सेर जल में चतुर्थांश अवशेष पर्यन्त पकावे और छान कर रखलें।

अन्य द्रव्य—(१) जौ का क्वाथ ८ सेर (४ सेर जौ को ३२ सेर पानी में पकावे और ८ सेर अवशिष्ट रहने पर छानलें।

(२) दूध—८ सेर।

तिल तेल—४ सेर।

कल्क द्रव्य—सोठ, जीरा, अजवायन, धनिया, पीपर, वच, सैधानमक और बेरी के पत्ते प्रत्येक १०-१० तोले। सबका एकत्र चूर्ण बनाकर जल के साथ कल्क तैयार करें।

उपरोक्त २॥ सेर क्वाथ, १६ सेर अन्य द्रव्य, ४ सेर तेल और कल्क को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब पानी का भाग जल जाय तो तेल को उतार कर छानले।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल उपद्रवयुक्त हो तो भी आठो प्रकार के शूलों को नष्ट करता है। यह अग्निवर्द्धक, वमन नाशक तथा श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा, गुल्म आदि रोगो को नष्ठ करना है।

यह तेल श्रीमद् गहननाथजी द्वारा निर्मित हुआ है।

सं. वि.—एरण्ड और दशमूल तथा यव (जौ) और दूध इन सबके गुणो पर दृष्टिपात करें तो यह तेल वात-कफ नाशक उदर और वस्ति शोधक, सहज वातानुलोमक और मूत्रल है।

अष्टशूलों के लिए परिणामशूल, यकृतशूल, ग्रहणिशूल, नाभिशूल, वृक्कशूल, दक्षिण अन्त्रमोड का वातनिरोधज शूल, वाम अन्त्रमोड का वातनिरोधज शूल और मूत्राशय और मूत्रनलिका के

अश्मरी निरोधक शूलों पर सहज ही दृष्टि पडती है। अधिकतर ये शूल सभी वातनिरोध, मूत्रनिरोध, अजीर्ण, आक्षेप और आम इत्यादि द्वारा उत्पन्न होते है। आमाशय का शूल, आमाशय श्लेष्मकला का संकोच, आमाशय आक्षेप और आमाशय की निष्क्रियता के कारण उत्पन्न होता है। अधिकतर यह भोजनान्तर होने के कारण परिणाम शूल के नाम से जाना जाता है। ग्रहणी, अन्त्र और नाभि इन स्थानों पर होनेवाले शूल वात के अवरोध के कारण या वात प्रतिलोम के कारण होते है। यकृत शूल पित्ताशय मे पित्त के अवरोध के कारण या यकृतावर्ण में वात के निरोध के कारण उत्पन्न होता है। वृक्कशूल, वृक्क मूत्रनलिका शूल और वस्तिशूल अधिकतर अश्मरी की उपस्थिति के परिणाम स्वरूप या इन अंगो में स्थानिक विकृतियों के कारण पाए जाते है, जो वात निरोधज, आक्षेपजन्य या पित्तकफज शोथ जन्य होते है। इन सबकी चिकित्सा मे वातानुलोमक, कोष्ठशोधक, आक्षेपनाशक. मूत्रल और पाचक द्रव्यों का उपयोग लाभदायी सिद्ध होता है।

शूलगजेन्द्र तेल मूत्रल, वातानुलोमक, कोष्ठशोधक, पाचक और आमशोषक है, अतः उपरोक्त शूलों में यह सम्पूर्ण औषध है। इन शूलों में वातप्रतिलोम के कारण जो २ उपद्रव होते हैं, यह उनको भी उसी शीघ्रता से मिटाती है जिसप्रकार मूल रोग को। वमन, श्वास. कास, अरुचि, ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा, गुल्म तथा मन्दाग्नि उपरोक्त शूलो की किसी न किसी अवस्था के उपद्रव रूप उत्पन्न हो तो अवश्य ही इस तेल के सेवन से ये मिट जाते है।

मात्राः—३ से ६ माशा। रोगी और रोग का बलाबल देखकर ऊष्ण जल मे मिलाकर दे।

षडबिन्दु तैल [भा. भै. र. ७७६२]

(ग. नि. । तैल. २.; र. र; वृ. मा. । शिरो; यो. चि. म. । अ. ६; वै. र.; धन्वं. । शिरो.; वृ. यो. त. । त. १३२; यो. त. । त. ७३; च. द; शिरो. ५९; भै. र.; वं. से.; भा. प्र. । म. खं. २ । शिरोरोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—एरण्ड की जड, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सेंधानमक, भांगरा, वायविडङ्ग, मुलैठी और सोंठ प्रत्येक द्रव्य ८–८ तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण बनावें और फिर जल के साथ घोटकर कल्क तैयार करें।

काले तिलों का तैल—४ सेर।

अन्य द्रव्य—भांगरे का रस १६ सेर और बकरी का दूध ४ सेर।

उपरोक्त कल्क और अन्य सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें जब

जलीयांशसूख जाय तब तेल को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर शीशिकों में भरकर सुरक्षित रखलें।

उपयोग—इस तेल की ६ बूंद नित्यप्रति नासिका में डालने से समस्त शिरोरोग नष्ट होते हैं। इसके प्रयोग से बालों का गिरना बन्द हो जाता है और उनकी जडें मजबूत हो जाती है तथा दांत दृढ हो जाते हैं और दृष्टि शक्ति तीव्र तथा बाहुबल की वृद्धि होती है।

सं. वि.—षड्बिन्दु तेल नाक के विकारो के लिए बहुत उपयोगी है। श्लेष्माधिक्य के कारण नासिका की श्लेष्मकला में उत्पन्न हुए दोष इस तेल के सेवन से नष्ट होते है। जीर्ण प्रतिश्याय, पूतिनस्य, नासिकाकला संकोच, नासार्श और नासिका विभाजकपत्र दोष इसके नस्य से शीघ्र ही दूर होते है। यह तेल ऊर्ध्वजत्रुगत अवयवो मे वात के निरोध को मिटाता है, उनकी नाडियों, मांसपेशियो और श्लेष्मकलाओ को दृढ बनाता है तथा उनमें अधिक क्रियाशक्ति उत्पन्न करता है।

इस तेल के सम्पूर्ण द्रव्य वात—कफ नाशक, कीटाणुनाशक और श्लेष्मकला प्रसादक हैं।

सैंधवादि तैल [भा. भै. र. ८००४]

(भै. र. । आमवाता; भा. प्र. । म. खं. २ । उरुस्तम्भ)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—

कल्क द्रव्य—सैंधानमक, कूठ, सोंठ, वच, भारंगी, मुल्हैठी, शालपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनिया, पीपल, कायफल, पोखरमूल, अजवायन, अतीश, एरण्डमूल, नील का पंचांग और नीलकमल प्रत्येक द्रव्य २—२ तोले लेकर सबको एकत्र कूटकर जल के साथ घोटकर कल्क बनालें।

इस कल्क को २ सेर तेल और ८ सेर कांजी में मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब जलीयांश उड जाय तो तेल को उतार कर छानलें।

उपयोग—इसे पीने, इसकी मालिश करने और इसकी नस्य लेने से आमवात, कृमि, गुल्म, प्लीहोदर, शिरदर्द, अग्निमान्द्य, पक्षाघात, संधिवात, अण्डगत वात और उरुस्तम्भादि रोगों का नाश होता है।

मात्राः—३ से ६ मासे ऊष्ण जल में मिलाकर।

सं. वि.—सैन्धवादि तेल आम और वात के लिए च्यावक, वातानुलोमक, नाडी-प्रसादक, कोष्ठशोधक और मांसपेशी, कण्डरा तथा श्लेष्मकलाओं की उग्रता को नाश करने वाला होने के कारण वातनाडी, कण्डरा और मांसपेशी के उग्रता जन्य विकारों को नष्ट करता है।

यह तेल कृमि, वात और संधिशोथ को नष्ट करनेवाला है। इसके मर्दन से संधिवात पक्षाघात, उरुस्तम्भ और आमवात का नाश होता है। इसके पीने से कृमि, गुल्म, प्लीहोदर, और अग्निमान्द्य का नाश होता है तथा इसके नस्य से शिरदर्द, आक्षेप और नाडियों की आक्षेपिक दशा का नाश होता है।

हिमसागर तैल [भा. भै. र. ८५४९]

(भै. र.; धन्वं. । वातव्या.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

द्रव पदार्थ—शतावरी का रस २ सेर, विदारीकन्द का रस २ सेर, सफेद पेठे का रस २ सेर, आमले का रस २ सेर, गोखरू का क्वाथ २ सेर, नारियल का पानी २ सेर, केले का रस २ सेर और दूध ८ सेर।

तिल का तेल—२ सेर।

कल्क द्रव्य—सफेद चन्दन, तगर, कूठ, मंजिष्ठा, सरल काष्ट, अगर, जटामांसी, मुरामांसी, शैलज (भूरी छरीला), मुल्हैठी, देवदारु, नखी, हैड, पूतिका (खट्टाशी–क्षुन्द वेदस्तर), हल्दी के पत्ते, कुन्दरु, नलिका, शतावरी, लोध्र, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जावित्री, सौंफ, कचूर, लाल चन्दन, गठीवन और कपूर प्रत्येक द्रव्य १।–१। तोला लेकर कल्क बनावें।

उपरोक्त द्रव पदार्थ, तेल और कल्क द्रव्य को एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जलीयांश उडने पर तेल को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर उसे शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तेल ऊंचे स्थानों से या घोडे, हाथी या ऊंट पर से गिरने से उत्पन्न हुई वातज वेदना को नष्ट करता है, पत्थर आदि पर पडने से लगी हुई चोट को मिटाता, पंगुता, पीठ–सर्पिता, एकांग शोष (किसी अंग का सूखना) और सर्वाङ्ग शोष में यह तेल हितकर है। क्षत, शुक्रक्षय, राजयक्ष्मा, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, निर्बलता, तुतलाना, मिनमिनाना, दाह, क्षीणता, वातविकार, पित्तजरोग, शिरोरोग और शाखाओं की व्याधियों में यह उत्तम क्रिया करता है।

सं. वि.–यह तेल शरीर पोषक, नाडीदोष नाशक, रक्त परिभ्रमण सहायक, शोथनाशक, मूत्रल, वातानुलोमक तथा वेदना नाशक द्रव्यों के संयोग से निर्मित होता है, अतः इसके प्रयोग से शरीर के किसी भी भाग में मांस कण्डरा या नाडियों पर पतन, मार या वातज

विकार के कारण वेदना हो तो इसकी मालिश से या इसके पान से शान्ति हो जाती है। ऐसी दशा में कि जब किन्हीं कारणो से शरीर सूख गया हो, यदि इस तेल का अन्तर्बाह्य प्रयोग किया जाय तो शरीर में मांस की वृद्धि होती है और शुष्कता नष्ट हो जाती है। इसीप्रकार जब कभी नाडियो में वाताधिक्य या वातक्षय के कारण निष्क्रियता आ जाय और किन्हीं अंगों में जरता अथवा जडता के लक्षण प्रतीत होने लगे तब इस तेल का अन्तर्बाह्य प्रयोग लाभप्रद सिद्ध होता है। जीभ के अटकने और कानों में रूक्षता आदि विकारो मे यह तेल बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होता है।

हिमसागर तेल का प्रयोग शरीर को पुष्ट और निरोगी बनाता है। बचपन से ही यदि इस तेल को प्रयोग में लाया जाय तो बालकों मे होनेवाले अधिकतर शोषादि उपद्रव कभी न हों और बच्चे सदा सुपुष्ट रहे।

बाल पक्षाघात में इस तेल का अंतर्बाह्य प्रयोग लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

हिंग्वादि तैल [भा. भै र. ८५४७]

(ग. नि. । नासा. ४; वृ. नि. र.; यो. र.: वृ. यो. त. । त. १३०; यो. त. । त. ७२.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

कल्क द्रव्य—हींग, त्रिकटु, वायविडङ्ग, कायफल, वच, कूठ, छोटी इलायची, लाख, स्वर्ण-जीवन्ती, इन्द्रजौ और तुलसी के फूल प्रत्येक द्रव्य ३—३ तोले लेकर, सबको एकत्र मिश्रित कर, चूर्ण बनावें और फिर उसे जल के साथ घोटकर कल्क तैयार करें।

इस कल्क को २ सेर सरसो के तेल में मिश्रित करे और तेल मे ८ सेर पानी मिलाकर उसे मन्दाग्नि पर जलीयांश नष्ट होने तक उबालें। फिर तेल को उतारकर बारीक कपडे से छानलें और ठण्डा होने पर शीशियो मे भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे नासिका द्वारा पीने से नासारोग नष्ट होते है।

सं. वि.—हिंग्वादि तेल के द्रव्य वात, कृमि, कफ, व्रण शोथ और शोषनाशक है। अतः यह तेल स्वभावतः वात-कफ नाशक, कृमि और व्रण नाशक है। यह पूतिनस्य, नासार्श, नासिकारंध्रों म शीत या शोथ के कारण उत्पन्न हुए व्रण, नासापत्र शोथ या व्रण आदि विकारों को नष्ट करता है। इस तेल को रुई, चमचा या कांच की पिचकारी के सहारे नाक में चढाना चाहिए। यदि मुख में इसके खींचने से अरुचि इत्यादि हो तो गर्म पानी में नमक डालकर उसके कुल्ले कराने चाहिए।

• क्षार तैल [भा. भै. र. ८७३०]
(ग. नि. । तैला. २; यो. त. । त. ७०)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—

द्रव पदार्थ—बिजौरे निम्बु का रस ४ सेर, केले का रस ४ सेर।

तिल तेल—२ सेर।

कल्क द्रव्य—सूखी मूली का क्षार, हींग, सोंठ, सोया, वच, कूठ, देवदारु, सुहांजने की छाल और रसौत प्रत्येक द्रव्य ४–४ तोले लेकर सबको मिश्रित कर चूर्ण बनावें और जल के साथ घोटकर कल्क तैयार करें।

उपरोक्त द्रव पदार्थ, तेल और कल्क को एक कढाई में एकत्र मिश्रित कर उसे मन्दाग्नि पर पकावें। जब जलीयांश नष्ट हो जाय तो तेल को उतार कर छानलें और ठण्डा होने पर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसे कान में डालने से कर्णशूल, कर्णनाद, बधिरता, पूय निकलना और कर्ण-कृमि आदि कान के रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—क्षार तेल के द्रव्य वातनाशक, व्रणशोधक, संकोचक, रोपक और स्राव शोषक है। अतः इसे कान मे डालने से वात द्वारा उत्पन्न हुए शूल, बधिरता, कर्णनाद और व्रण तथा पूयस्राव आदि विकार नष्ट होते है।

इस तेल का कण्ठ-शोष, नासा-शुष्कता और कर्णगुंज मे भी, कान मे डालने के लिए, प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से मुख का सूखना, कण्ठ का शोष, नासा की शुष्कता और शीतयुक्त रुक्षता नष्ट होते हैं। बच्चों में सप्ताह में एक वार ऐसे तेल को अवश्य कान में डालना चाहिए।

भैषज्य-सार-संग्रह

पंचदश प्रकरण

अञ्जन

आंखों में आंजने के लिए प्रयोग में आने के कारण, आंखों में लगाए जांय, ऐसे द्रव्यों को अंजन कहकर पुकारा जाता है। ये अंजन पांच प्रकार के होते है। (१) सौवीरांजन, (२ रसांजन, (३) स्रोतांजन, (४) पुष्पांजन और (५) नीलांजन।

सौवीरांजन धुंए का सग्रह है। इसका अंजन रक्तपित्त का अवरोध करने के लिए किया जाता है। स्रोतांजन का प्रयोग विष, हिक्का, अक्षिरोग आदि के नाश के लिए किया जाता है। ये स्रोतांजन आंखों के व्रण को शोधनेवाले ओर उनका रोपण करनेवाले भी होते हैं। स्रोतांजन पीले होते है, जबकि पुष्पांजन सफेद और नीलांजन नीले वर्ण के होते है।

ये अंजन कालिका–पुराण के अनुसार ६ प्रकार के माने गए हैं। (१) सौवीर, (२) जाम्वल, (३) मयूर, (४) श्रीकर, (५) रत्न और (६) मेघनील।

जिस अंजन को घी आदि में मिलाकर और ताम्रादि पात्रों में गर्म कर काम में लाया जाय उसे दर्विका कहते हैं।

नेत्रों के मल को दूर करने और नेत्रों की व्याधियों को मिटाने के लिए अंजनों का प्रयोग किया जाता है। रूप और निर्माण-भिन्नता के कारण ये ३ प्रकार के होते है। (१) रस, (२) वटी और (३) चूर्ण। इनकी शक्ति यथापूर्व अधिक मानी जाती है अर्थात सबसे अधिक शक्तिशाली रसों के योगों से निर्मित अंजन होते है। रस और औषध द्रव्यों के क्वाथ या रसों के द्रव्यों से निर्मित वटिकाओं की शक्ति द्वितीय श्रेणी की गिनी जाती है। तीसरी श्रेणी में औषध द्रव्यों के और कहीं २ इनके साथ मिश्रित रसादि के चूर्ण को लेते है।

उपरोक्त तीनो प्रकारों के अंजन अपनी अपनी क्रियाओं के कारण प्रत्येक ३ प्रकार के होते है। (१) लेखन, (२) रोपण और (३) स्नेहन।

लेखन क्षार, तीक्ष्ण और अम्ल द्रव्यों के योग से तैयार होते है। नेत्रवर्त्म, शिराजाल, स्रोत्र, शृंगाटक आदि में स्थित विकारों को मिटाने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। इनके आंख में लगाने से दोष मुख, नाक और आंख आदि में से स्रवित होकर निकल जाते हैं।

रोपण—अंजन कषाय, तिक्त और स्नेह-युक्त द्रव्यो से निर्मित होते है। इनके प्रयोग से आंखों की गर्मी दूर होती है, नेत्रशक्ति बढती है और दृष्टिशक्ति भी बलवान होती है।

मधुर द्रव्यों और स्नेह के योग से स्नेहाञ्जन तैयार होते हैं। ये अंजन दृष्टिदोष को मिटाने के लिए, नेत्रों को सुस्नेह्य करने के लिए और नेत्रप्रसादन के काम में आते हैं।

अंजनों का सभी देश और सभी काल में प्रयोग किया जा सकता है।

ये ही अंजन जल के साथ निर्मित करके नेत्रबिन्दु रूप मे प्रयोग मे लाए जाते हैं। नेत्र में एकत्रित हुए दोष इन द्रव औषधों की क्रिया द्वारा शीघ्र स्रवित हो निकल जाते है। आधुनिक इन औषध योगो को कोलेरिया (Collyria) और गटी (Guttae) कहते है।

संसार में सर्वत्र ही नेत्रों की समान महिमा मानी जाती है। इनके होते हुए ही संसार की विविधताओं के दर्शन जहां तहां कर सकते है। इनके न हाने से विश्व की वर्णमयी व्यवस्था का होना न होना समान ही है, अतः नेत्रों को जितना भी विकारों से बचाकर सुरक्षित रक्खा जाय उतना ही सुखकारी होता है। प्रयोग के समय भी नेत्रों को विशेष सावधानी के साथ काम मे लाना चाहिए। एकदम दृष्टि को सतत गडाकर देखने से दृष्टि में दोष आने संभव है, इसलिए निर्निमेष न देखकर सनिमेष देखना चाहिए। नेत्रों का उपयोग सरल, सीधा और सुचारु हो तभी नेत्रज्योति अधिक काल तक सुस्थित रह सकती है। आजकल प्राय: नेत्रों को बिगाडने के अधिक साधन बढते चले जा रहे है। सिनेमा का इन नेत्र घातक साधनो में सर्व प्रथम स्थान आता है, कारण कि लोग कई घण्टे तक कुतुहल वश इसे निर्निमेष दृष्टि से देखते हैं और चित्र संचालक ज्योति (विद्युत), जो पर्दे पर उग्र और तीक्ष्ण रूप में व्याप्त रहती है, नेत्रों को बहुत परिश्रांत करके दृष्टि शक्ति को दूषित कर देती है। इसी प्रकार के अन्य भी अनेक दृष्टि विनाशक साधन है, यथा—क्षारीय और अम्लीय द्रव्यो के धूम्र, सतत धूम्रमय स्थान में निवास और चकाचौंध भरे दृश्यों का निहारना।

पूर्वकालीन साहित्य के देखने से पता चलता है कि कर्णतर्पण, नेत्रप्रसादन, शरीर तेल मर्दन, मुखशोधन, दन्त प्रसादन आदि क्रियाएं लोग नित्य किया करते थे। मध्यकाल में इन प्रथाओ का अभाव सा प्रतीत होता है और आजकल भी इन प्रथाओं में से कुछ केवल स्त्रियों मे ही मिलती है।

रात को सोते समय यदि स्नेहांजन का स्वस्थ नेत्रों पर प्रयोग किया जाय तो नेत्रों की ज्योति दीर्घकाल तक बलवान रहती है। रोगों की दशा मे तो इन अंजनों का अनिच्छा

होते हुए भी सबको प्रयोग करना ही पडता है। प्रायः नेत्र के शोथज रोगो में जलबिन्दुओं की अपेक्षा चूर्ण, रस या गुटिका अंजनों का प्रयोग शीघ्र लाभकारी होता है, कारण कि ये अधिक काल तक दूपित स्थानो पर रहकर क्रिया कर सकते है।

नेत्रों को उज्ज्वल, वलवान और निर्विकार रखने के लिए अंजनो का सार्वकालिक उपयोग सर्वदा हितकर है।

उन्मादभंजनी वर्ति (गुटिका) [भा. भै. र. ४९३]
(र. सा. सं. । उन्माद.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध मनसिल, सैंधानमक, कुटकी, वच, सिरस के बीज, हींग, सफेद सरसों, करंजे की गिरी, त्रिकुटा और कवूतर की वीट; सब द्रव्यों को समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एकत्र मिश्रित करें और इस मिश्रण को गोमूत्र के साथ घोटकर नोंकदार इन्द्रजौ के आकार की तथा इसके बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

प्रयोग विधि—१ गाली का आवश्यक प्रमाण; सुवह, शाम और रात को मधुरादि गण के रस या जल में घिसकर अंजन करें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका अंजन करने से चौथिया बुखार, अपस्मार और उन्माद का नाश होता है।

सं. वि.—इस उन्माद भंजनी वर्ती के अधिकतर द्रव्य क्षारीय, कटु और तीक्ष्ण रस प्रधान हैं। अतः यह अंजन लेखन गुण विशिष्ट है। इसका अंजन करने से आंख, नाक आदि से पानी स्रवित होता है और वात–कफ की प्रधानता से होनेवाले दोष नष्ट होते है। वात या कफ या वातकफज उन्माद और अपस्मार का इस अंजन का उपयोग करने से नाश होता है। इसकी क्रिया नाडियो पर नेत्र नाडी के संसर्ग में आकर होती है और क्योंकि यह तीक्ष्ण और कटु है इसलिए नाडीमंडल में एकदम सक्रियता उत्पन्न कर देती है जिससे नाडियो में शीत के प्रभाव द्वारा जो शिथिलता होती है वह नष्ट हो जाती है और वे सक्रिय और सावधान हो जाती है।

अधिकतर चातुर्थिक ज्वर अस्थि और मज्जा में ज्वरांश के प्रवेश के कारण उत्पन्न होते है और उनमें वात–कफ की प्रधानता पाई जाती है, और क्योकि उन्माद भंजनी वर्ति वात कफ नाशक है, अतः चातुर्थिक ज्वर पर यह सफलता पूर्वक कार्य करती है।

कतकफलादि अंजन [भा. भै. र. ९२३]

(यो. र. । नेत्र)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—कतक के फल (निर्मली के फल), शंख, सैधानमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहद, वायविडङ्ग और मनसिल सब द्रव्यों को समभाग लेकर तथाचूर्ण बनाकर एकत्र मिश्रित करें और इस मिश्रण को स्त्री के दूध में घोटें। वर्ति बनाने के लायक गीला रह तब इन्द्रयवाकार वर्ति बनाकर छाया में सुखाकर प्रयोग में लावें अन्यथा सुखाकर चूर्ण रूप में ही प्रयोग में लावें।

प्रयोग विधि—यदि वर्ती बनाई हो तो दिन या रात मे जल के साथ घिसकर नेत्र में आंजलें, यदि चूर्ण रूप में हो तो शलाका द्वारा आंख में लगावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस अंजन के प्रयोग से तिमिर, पटल, काच (मोतियां विन्दु), अर्म, शुक्र (फूला), खुजली, क्लेद (चिकनाहटवाला पानी सा पडना) और अर्बुदादि नेत्ररोगो का नाश होता है।

सं. वि.—यह अंजन शोधक, सुखकर, व्रणरोपक और शोथनाशक है। इसके प्रयोग से नेत्र के पटल के विकार, दृष्टिविकार, दृष्टि में जडता आना, दृष्टि की अस्थिरता, आंख का फूला और आंख के आंतरिक अन्य भागो पर चोट आदि से उत्पन्न हुए व्रण शीघ्र नष्ट होते है। यह अंजन दृष्टि मार्ग के चारों ओर भरे हुए जलीयांश के दोष को नष्ट करता है और आंखों मे खुजली आदि विकार होने से उनमें होनेवाले क्लेद को मिटाता है।

गुटिकांजन [भा. भै. र. १४६४]

(वै. र. । नेत्ररोग; वृ. यो. त. । त. १३२)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—पीपल, त्रिफला, लाख, लोध्र और सैधानमक; सब द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण रूप में समान भाग में मिश्रित करें और मिश्रण को भांगरे के रस में घोटें तथा वर्तियां बनाकर छाया मे सुखालें।

प्रयोग विधि—इन वर्तियो को पानी में घिसकर आंख में आंजे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—गुटिकांजन के प्रयोग से अर्म, तिमिर, कांच, खुजली, फूला और अर्जुनादि नेत्ररोग निस्संशय मिट जाते हैं।

सं. वि.—यह औषध तिक्त और कटु द्रव्यो से निर्मित हुई है। ये द्रव्य स्रावक, घ्यावक, शोधक और दाहक है। भांगरे के रस की भावना इस औषध को नाडीपोषक, दृष्टिशक्तिवर्द्धक, वातप्रकोप नाशक और वात-कफ विकार प्रशमक बना देती है।

तिमिर, अर्म, कांच, शुक्र और अर्जुनादि रोग दृष्टि और श्वेत मण्डल में होनेवाले रोग है। इन रोगों में अधिकतर कफ का प्रकोप होता है इस औषध के द्रव्य कफ विरुद्ध क्रिया करते हैं अतः शुक्ल और दृष्टि मण्डल मे होनेवाले कफप्रधान विकारो के लिए यह श्रेष्ठ औषध है।

चन्द्रकला वर्ति [भा. भै. र. १८५३]

(वृ. यो. त. । त. १३१., यो. त. । त. ७१)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—मोती की भस्म, मिश्री, अभ्रकभस्म, गुग्गुल, शुद्ध खर्पर, श्वेत सुरमा, कस्तूरी, नीलाथोथा, समुद्र फेन, शंखनाभि, पीपल, भांगरा, हैड, वहेडा और आमले की गुठली (मज्जा) की गिरी का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर एकत्र मिलावें और मिश्रण को जल के साथ खरल कर वर्तियां बनावें।

उपयोग—जल मे घिसकर नेत्र मे बूंद रूप में डालें या सलाई से लगावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस अंजन के प्रयोग से तिमिर, खुजली, मण्डल, काच, शुक्र, जलस्राव और पिल्लादि नेत्र रोगों का नाश होता है।

सं. वि.—इस अंजन के संपूर्ण द्रव्य दोषशामक, चक्षुपोषक, दाहनाशक, शोथनाशक, व्रणशोधक, रोपक और स्राव शोषक है।

चन्द्रोदयावर्ति (चन्दनादिवर्ती) [भा. भै. र. १८५०]

(भै. र.; वं. सं.; धन्व. । नेत्ररोग)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—सफेद चन्दन, त्रिफला, सुपारी और ढाक का गोंद; प्रत्येक द्रव्य का समान भाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित कर जल के साथ घोटकर गोलियां (वर्तियां) बनालें।

प्रयोग विधि—जलमे घिसकर बूंद रूप में आंख मे डालें अथवा शलाका से आंजे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके प्रयोग से प्रत्येक प्रकार के तिमिर का नाश होता है।

सं. वि.—तिमिर दृष्टिगत रोग है। यह दृष्टिपटल मे विविध प्रकार के दोषों के प्रवेश से होता है। जब दोष दृष्टि के प्रथम पटल मे प्रवेश कर जाते है तब रोगी उपस्थित द्रव्यो के अव्यक्त रूप देखने लगता है। यदि दोष द्वितिय पटल में प्रवेश कर जाते है तो दृष्टि में विह्वलता आ जाती है। तृतीय पटल मे दोषों के प्रवेश होने से आंख के सामने मक्खी, कीडे, जाल, केश, पताका, किरण, कुछ गोलाकार, कुछ बादलाकार, अन्धकार और दूर की चीज पास और समीप की वस्तु दूर दीखती है। तात्पर्य यह है कि तृतीय पटल में दोषो के प्रविष्ट होने से चक्षु इन्द्रिय में विभ्रम हो जाता है। प्रयत्न करने पर भी इस रोग से पीडित सुई के छेद को नहीं देख सकता।

इन रोग मे कर्ण, नाक आदि विपरीत से दिखने लगते है। चतुर्थ पटल में दोष के प्रवेश से एक के दो, दो के तीन और तीन के बहुत से आकार दिखलाई देते हैं अर्थात् इस रोग में दृष्टिनाडी मे चांचल्य आता है, एवं इसका कारण वात की प्रधानता है और यह वातप्रधानता रुक्षता के कारण या रुक्ष द्रव्यों के अति सेवन, अति मैथुन, अति सूक्ष्म पठन आदि कारणों से होता है और चन्दनादि वर्ति सस्नेह गुणयुक्त, नेत्रपोषक, दृष्टि प्रसादक और तर्पक है अतः दीर्घकाल तक इसका प्रयोग करने से तिमिर रोग का नाश होता है।

दृष्टिप्रदांजन (वर्ति) [भा. भै. र. ३१७३]

(र. का. धे. । अधि. ५६)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—धतूरे के बीज, लाल चन्दन, लाख, मुल्हैठी, सफेद चन्दन, नीलकमल, रुद्राक्ष, आमले की गुठली की गिरी, महुए के फूल, मनसिल, वायविडङ्ग, समुद्र फैन, छोटी इलायची, शंख की नाभि और रसौत प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करे और मिश्रण को पानी के साथ खरल करके वर्तियां बनाले।

प्रयोग विधि—जल से घिसकर बूंद रूप मे या शला द्वारा प्रयोग में लाए।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस दृष्टिप्रदा वर्ति को नित्यप्रति आंखों में आंजने से पटल, तिमिर, शुक्लिका, अजिका, शुक्र और अन्य शुक्ल पटलगत दुस्तर रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—नेत्रो के ऐसे रोगो मे जो श्वेत मण्डल और दृष्टि मण्डल मे उत्पन्न होते है। यथा—तिमिर, फूला, अजिका जिनमें दृष्टि विभ्रम हो जाता है, दृष्टिनाडी की क्रिया अस्थिर और सम्मोहित रहती है। दृष्टि सदा उग्र और चल रहती है वहां दृष्टि नाडी की चंचलता को दूर करने, शुक्लगत व्रण आदि का संकोच करने और दृष्टि की उन्मत्तता का अवरोध करने के लिए दृष्टिप्रदावर्ति का प्रयोग लाभकारी होता है कारण कि दृटष्प्रिदावर्ति के द्रव्य संकोचक, प्रसादक, रोपक, मार्दवकर, उग्रता नाशक, स्थैर्यकर, जन्तुघ्न और दृष्टि शक्तिवर्द्धक है। इसमें कनक अर्थात् धतूरे की अपनी ही विशेषता है। अकेला धतूरा पहिले नाडियों में उग्रता उत्पन्न करता है और फिर उनमे स्थिरता लाता है, परन्तु यहां कनक के साथ अन्य द्रव्यों का जो योग किया गया है वह कनक की प्राथमिक क्रिया का अवरोध करके उसकी अन्तिम क्रिया को करने में सहायभूत होता है। यहां कनक अर्थ से स्वर्ण का प्रयोग तो इतना उपयोगी सिद्ध नही हो सकता, जितना धतूरे के बीजों का, तिमिर रोग मे दृष्टि का विभ्रम होता है और धतूरे के बीज स्थिरता उत्पन्न करते है।

नागार्जुनी वर्ति [भा. भै. र. ३५८४]

(र. का. धे; र. र.; धन्वं; वं. से; भै. र.; वृ. मा.; च. द., ग. नि. । नेत्ररोगा.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—हैड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधानमक, मुल्हैठी, नीलाथोथा, रसौत, प्रपौण्डरीक, (कमल भेद, पुण्डलिया), वायविडङ्ग, लोध्र और ताम्रभस्म; इन चौदह द्रव्यो के समान भाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिश्रित करें, तैयार होने पर वर्तियां वनाकर छाया शुष्क करे और प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

प्रयोग विधि तथा शास्त्रोक्त गुणधर्म—(१) इन वर्तियों को स्त्री के दूध में घिसकर लगाने से नवीन नेत्रपाक, अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२) केशुओ (पलाश पुष्प) के स्वरस के साथ घिसकर अंजन लगाने से पिल्ल, पुष्प और रक्तता (सूर्खी) नष्ट होती है।

(३) लोध्र के पानी के साथ पिसकर अंजन करने से नवीन तिमिर नष्ट होता है।

(४) इसे वकरे के मूत्र के साथ घिसकर लगाने से बहुत समय से बन्द आंखे आसानी से खुल जाती हैं और आंखे स्वच्छ भी हो जाती है।

सं. वि.—यह औषध आंख की सर्वगत व्याधियों के लिय अर्थात मण्डल, सन्धि और पटल के सभी रोगों के लिए उपयोगी है, केवल प्रयोग विधि मे अन्तर है सो इसके निर्माता नागार्जुन ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है।

यह औषध चक्षुष्य, लेख्य, शोथनाशक, जन्तुघ्न, शोधक, रोपक और नेत्र प्रसादक है। इस औषध को विभिन्न शास्त्रोक्त द्रव्यों के साथ घिसकर बिन्दु रूप में नेत्र में डालने से शीघ्र लाभ की आशा की जा सकती है।

नयनामृतांजन [भा. भै. र. ३५७८)

(वृ. नि. र.; वं. से; यो. र.; वै. रह, र. चं;। नेत्र., भा. प्र.। खं. १ । नेत्रप्रसादने वृ. यो. त. । त. १६१; यो. त.। त. ७१; यो. चि.। अ. ३०, वा. भ. । उ. अ. १७; र. मं. । अ. ८; र. र. स. । अ. २३)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—अष्टादश संस्कारित या अष्ट संस्कारित पारद और शुद्ध किया हुआ शीशा १–१ भाग, शुद्ध सुरमा ४ भाग और कपूर पारे का चतुर्थांश भाग लें। सबको एकत्र घोटकर सूक्ष्म अंजन बनावे और शीशिया मे भरकर सुरक्षित रक्खें।

प्रयोग विधि—स्वच्छ ताम्र शलाका भरकर आंजना चाहिए।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसके लगाने और पथ्य पालन करने से तिमिर, पटल, काच, शुक्र, अर्म, अर्जुन और अन्य नेत्ररोग भी नष्ट होते है।

सं. वि.—इस अंजन के निर्माण पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शुद्ध किए हुए शीशे को पिघलाकर खरल में रखे हुए संस्कारित पारद पर धार बांधकर डालें और डालते हुए घोटते जांय, घोटने की गति जितनी तीव्र होगी उतना ही दोनों का मिश्रण शीघ्र होगा इसके सम्यक मिश्रण के पश्चात इस मिश्रण में अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मिश्रण को पुनः भलीभांति घोटे।

यह औषध रसेन्द्र के योग से निर्मित है और शास्त्र का इस विषय में कथन है कि संसार में ऐसा कोई भी रोग नही है जिसका रसेन्द्र नाश न कर सके। यहां संस्कारित रसेन्द्र का प्रयोग किया गया है अतः निश्शंक ही रसेन्द्र सर्व रोगघ्न होकर क्रिया करेगा। शुद्ध शीशा भी इतना ही गुणकारी है कारण की यह कज्जल प्रधान है और कृष्ण पटल के रोगों पर यह विशेष क्रिया करता है। सुरमा स्वभावतः ही नेत्र हितकर और नेत्रप्रसादक है। कपूर दाहनाशक, कृमिनाशक, अन्तर्तन्तु शोथनाशक और चक्षुप्रसादक है, अतः स्वभावतः ही यह औषध दृष्टि, कृष्ण और श्वेत मण्डल के विकारों को शीघ्र और पुनः आवर्तन न हो इस प्रकार नष्ट करने मे समर्थ है।

प्रयोग करते नेत्र को हानि न हो इसप्रकार के वायुमण्डल में निवास करना चाहिए अर्थात् धूम्र, धूल, आतप, वृष्टि और अति शीत से बचकर रहना चाहिए। इसीप्रकार नेत्र को हानि पहुंचाए ऐसे द्रव्यो को नहीं खाना चाहिए। कटु, तिक्त और कषाय रस इसमे विशेष हानिकारक हैं। दृष्टि को गडाकर निर्निमेष या प्रतिकूल द्रव्यो पर नही डालना चाहिए।

नयन शोणाञ्जन [भा. भै. र. ३५७५]

(भा. प्र. । ख. २; यो. र. । नेत्र)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—पीपल, सैधानमक, कालीमिर्च, रसाञ्जन, काला सुरमा, समुद्रफेन, मिश्री, श्वेत पुनर्नवा मूल, हल्दी, लाल चन्दन, मुल्हैठी, नीलाथोथा, हैड, मनसिल, नीम के पत्ते, लोध्र, फिटकरी, शंखनाभि और कपूर, प्रत्येक द्रव्य का समान भाग सूक्ष्म वस्त्रगालित चूर्ण लेकर सबको लौह खरल में एकत्र मिश्रित करे और फिर उसमे मधु डालकर ताम्र मूसली से घोटे। जब सूक्ष्म चूर्ण हो जाय तो वस्त्रगालित कर स्वस्छ शीशियों में भरकर सुरक्षित रक्खें।

प्रयोग विधि—ताम्र शलाका से आंजे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह तिमिर, पटल और पुष्प को नष्ट करता है।

सं. त्रि.—यह सर्व चक्षुरोगघ्न औषध है। इसमें प्रयुक्त किए हुए सभी द्रव्य नेत्र हितकर, दृष्टिशक्तिवर्द्धक, दोषनाशक, शोथनाशक, स्रावशोषक, दाहनाशक और विकार प्रशमक हैं।

यह औषध ऐसे नेत्ररोगों में, कि जो नेत्र के अतिप्रयोग और दुष्टप्रयोग द्वारा उत्पन्न हुए हों, अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

नेत्रप्रकाशांजन

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—धतूरे के बीज, लाल चन्दन, लाख, मुलैठी, सफेद चंदन, नीलकमल, वायविडङ्ग, रुद्राक्ष, आंवले की गुठली की गिरी, महुए के फूल, मनसिल, समुद्र फेन, छोटी इलायची, शंख की नाभि और रसौत, प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करें और मिश्रण को पानी के साथ खरल कर छाया मे सुखाकर सूक्ष्म वस्त्रगालित कर प्रयोग में लावें।

प्रयोग विधि— शलाका से आंख मे आंजे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस अञ्जन को नित्यप्रति आंखों मे आंजने से पटल, तिमिर, शुक्लिका, अजिका, शुक्र और अन्य शुक्लपटलगत आंख के रोग नष्ट होते हैं।

सं. त्रि.—नेत्रों के ऐसे रोगों मे जो श्वेतमण्डल और दृष्टिमण्डल मे उत्पन्न होते हैं, यथा—तिमिर, फूला, अजिका, कि जिनमे दृष्टि विभ्रम हो जाता है, दृष्टिनाडी की क्रिया अस्थिर और सम्मोहित रहती है, दृष्टि सदा उग्र और चल रहती है, वहां दृष्टि नाडी की चंचलता को दूर करने, शुक्लमण्डल गत व्रण आदि का संकोच करने और दृष्टि की उन्मत्तता का अवरोध करने के लिए नेत्रप्रकाशाञ्जन का प्रयोग लाभकारी होता है, कारण कि नेत्रप्रकाशाञ्जन के द्रव्य संकोचक, प्रसादक, रोपक, मार्दवकर, उग्रतानाशक, स्थैर्यकर, जन्तुघ्न और दृष्टि शक्तिवर्द्धक है। इसमे कनक आदि धतूरे की अपनी ही विशेषता है। अकेला धतूरा पहले नाडियों में उग्रता उत्पन्न करता है और फिर उनमे स्थिरता लाता है परन्तु यहां कनक के साथ अन्य द्रव्यों का जो योग दिया गया है वे कनक की प्राथमिक क्रिया का अवरोध करके उसकी अंतिम क्रिया को करने मे सहायभूत होते हैं। यहां कनक के अर्थ मे स्वर्ण का प्रयोग इतना उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता जितना धतूरे के बीज। तिमिर रोग में दृष्टि का विभ्रम होता है और धतूरे का बीज स्थिरता उत्पन्न करता है।

पुष्पाक्षारादि रस क्रिया [भा. भै. र. ४२४१]
(यो. र. । नेत्ररो.)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—जसत का फूल, रसौत, मिश्री, समुद्रफेन, शंख, सैंधानमक, गेरू, मनसिल और काली मिर्च, प्रत्येक का समानभाग सूक्ष्म चूर्ण लेकर एकत्र मिश्रित करें और मिश्रण को मधु के साथ (लौह खरल में ताम्र मूसली के साथ) घोटें और तैयार होने पर वस्त्रगालित कर शीशियों मे भरकर प्रयोगार्थ रखलें।

प्रयोग विधि—ताम्र शलाका से आंख में आंजे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इसका अंजन करने से अर्म, कांच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्म रोग नष्ट होते है।

सं. वि.—यह औषध वर्त्म, श्वेत, दृष्टि और कृष्ण मण्डल के रोगों के लिए हितकर है। इसके द्रव्य शोथनाशक, व्रणरोपक, दृष्टिशक्तिवर्द्धक, दोषस्रावक और विकार शोषक हैं।

मुक्तादि महाञ्जन (भा. भै. र. ५४४९)
(वृ. यो. त. । त. ३३१; यो. र.; वृ. नि. र.; वं. से. । नेत्र.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—मोती, कपूर, काच, अगर, काली मिर्च, पीपर, सैंधानमक, शैलवाल (एलवालु), सोठ, कंकोल, कांसे की भस्म, बंगभस्म, हल्दी, मनसिल, शंख नाभि, अभ्रकभस्म, नीलेथोथे की भस्म, मुर्गी के अण्डे के छिलके, बहेडा, केसर, हैड, मुल्हैठी, राजावर्त, चमेली के फूल, तुलसी की नवीन मंजरी, तुलसी के बीज, करंज बीज, नीम के बीज (निम्बोली), सुरमा, नागरमोथा, ताम्रभस्म और रसौत, प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १-१ माशा लेकर सबको मिश्रित कर ४ तोले मधु के साथ घोटकर अञ्जन बनावें।

प्रयोग विधि—ताम्र शलाका से आंख में आंजे।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह अंजन नेत्रों में होनेवाले सब प्रकार के विकारों को नष्ट करता है।

सं. वि.—इस औषध में लेखन, प्रसादन, दृष्टिशक्तिवर्धन, स्नेहन आदि गुणों युक्त द्रव्यों का वैज्ञानिक विधान से मिश्रण किया है। सम्पूर्ण योग नेत्र के विविध विभागों में होनेवाले विभिन्न रोगों को नष्ट करने के लिए श्रेष्ठ औषध है। जो नेत्र रोग अन्य प्रक्रियाओं और औषधों से साध्य न हों उनको मिटाने के लिए यह औषध उपयोग में लाई जाती है।

मोती का सुरमा (सफेद)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध श्वेत सुरमा १ सेर, कपूर २५ तोला, सफेद मिर्च २॥ माशा और मोती भस्म १ तोला; सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को उक्त प्रमाण में मिश्रित कर मिश्रण को एक गहरे-चौडे पत्थर के खरल मे गुलाबजल मिलाकर घोटें। जब औषध भलीप्रकार घुट जाय तब छाया में सुखालें और फिर घोटकर कपडछन करें तथा शुद्ध स्वच्छ शीशियों में प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

प्रयोग विधि—रात को सोते समय ताम्र या जसतकी शलाका से आंखों में आंजे।

गुणधर्म—नेत्र की दाह, दृष्टि क्षीणता, धुंधलापन और नेत्र में अनावश्यक जलीय स्राव के लिए हितकर है।

सं. वि.—यह औषध पोषक, शोधक, स्रावशोषक और दृष्टिशक्तिवर्द्धक है। यह पित्तशामक द्रव्यों के योग का निर्माण है अतः रक्त और पित्त द्वारा उत्पन्न हुए नेत्र के रोग इसके उपयोग से शीघ्र नष्ट होते हैं। पित्ताभिष्यंद और रक्ताभिष्यंद मे इसका प्रयोग शीघ्र क्रिया करता है, वैसे ही पित्तज और रक्तज नेत्र के अन्य उग्र दोषो मे भी यह हितकर है। तीव्राग्नि के सामने रहने से या बैठने से तथा चकाचौंध उत्पन्न करनेवाले उतप्त प्रकाश के प्रभाव से विकृत नेत्र इसके प्रयोग से शीघ्र स्वस्थ हो जाते है। धुएं, रज और निदाघ की रज से उत्पन्न हुए रक्तज और पित्तज नेत्र विकारों के लिए भी यह हितकर है।

मोती का सुरमा (काला)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—शुद्ध काला सुरमा १ सेर, कपूर ५ तोले, सफेद मिर्च १ तोला और मोती भस्म १ तोला, सब द्रव्यो के सूक्ष्म चूर्णों को उपर्युक्त मात्रा में एकत्र मिश्रित कर मिश्रण को एक पत्थर को खरल में गुलाबजल मिलाकर घोटें और तैयार होने पर छाया में सुखालें और जब सूख जाय तब सूक्ष्म वस्त्रगालित चूर्ण करके प्रयोग में लावें।

प्रयोग विधि—ताम्र या जसत की शलाका से आंखो में आंजे।

गुणधर्मः—यह दृष्टिवर्द्धक, नेत्रदोषनाशक, नेत्र दाहनाशक और मस्तिष्क पोषक है।

सं. वि.—इसमे और मोती के सफेद सुरमे में क्रिया की दृष्टि से विशेष अंतर नहीं है, अंतर केवल बाह्य रंजन मे है। श्वेत सुरमा केवल नेत्रो की व्याधियो का नाश करता है जबकि काला सुरमा नेत्र सौंदर्यवर्धन में भी काम आता है। इसके लगाने से दृष्टि और

नेत्रों का प्रसादन तो होता ही है इसके अतिरिक्त यह नेत्र के निम्न पटलों को कृष्ण बनाकर रंजन की मात्रा बढा देता है। यह रंजन प्रयोक्ता और द्रष्टा दोनों के लिए रञ्जक है।

रसकेश्वर गुटिका [र. तं. सा.]

बनावट:— शुद्ध खर्पर या जसद् भस्म, सेंधानमक, नीलेथोथे का फूला, सुहागे का फूला, सोंठ, मिर्च और पीपल, सबको समान मिला, नींबू के रस में ७ दिन खरल करके वर्ति बनालें। फिर शहद मे घिसकर अंजन करे। (वैद्यामृत)

उपयोग— यह गुटिका फूला, धुन्ध, जाला, नये मोतिया बिन्दु और नेत्रवायु आदि सब रोगों पर लाभकारी है। इसके अतिरिक्त इस अंजन से सन्निपात की बेहोशी दूर होकर रोगी जल्दी होश मे आ जाता है। [रस तन्त्र सार से उद्धृत]

श्वेत नेत्रांजन

द्रव्य तथा निर्माण विधान:— विधिपूर्वक निर्मित यशद की श्वेत भस्म ८ तोला, शुद्ध और स्वच्छ फुलाई हुई फिटकडी २ तोला, मिश्री ८ तोला, शुद्ध तुत्थ भस्म २० रत्ति; इन सब द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को एकत्र मिश्रित करें और मिश्रण को सूक्ष्म और मृदु चूर्ण पर्यंत घोटकर शीशियों में भरकर प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

प्रयोग विधि— यशद् की शलाका से नेत्रों में आंजे।

गुणधर्म— नेत्राभिष्यद, पोथकी, कृमिग्रन्थि, पूयालस, स्राव, वर्त्म शर्करा, प्रक्लिन्नवर्त्म, पक्ष्मकोप आदि रोगों के लिए उत्तम औषध है।

सं. वि.— यह औषध शोथनाशक, दोषप्रशमक, विपस्रावक, दाहनाशक और व्रणशोषक औषधियों के योग से निर्मित होने के कारण पक्ष्म और वर्त्म के रोगों के लिए हितकर है। कृमि, ग्रन्थि शोथ, पूय, पक्ष्मव्रण और अञ्जन नामक व्याधि के लिए यह अंजन इतना ही हितकर है जितना वात-पित्त या रक्त अभिष्यंद के लिए। विषज और कृमिज नेत्र व्याधियों पर इसका सर्वदा सफलता पूर्वक प्रयोग किया जाता है।

भैषज्य-सार-संग्रह

षोडश् प्रकरण

क्षार

छेदन, भेदन और लेखन क्रियाओं में सफलता पूर्वक उपयोग में आनेवाले क्षार द्रव्य अपनी विशिष्टता के कारण आयुर्वेद में शास्त्रानुशास्त्र रूप में भी अनेकश: प्रयोग में आते है।

"क्षणात् क्षरणाद्रा क्षार:" सुश्रुताचार्य की क्षार की यह परिभाषा क्षार के गुण कर्मों का समास मे वर्णन कर देती है। शरीर मे किसी भी कारण से अप्रयुक्त पडे रहनेवाले या क्षोभ उत्पन्न करनेवाले पदार्थ, यथा-सडी हुई त्वचा, मांस, कण्डरा, अर्श, विद्रधि, व्रण आदि को अन्तर्बाह्य प्रयोग द्वारा छेदन, भेदन या च्यावक क्रिया द्वारा जो पदार्थ नष्ट करदें उसे क्षार कहते हैं। क्षारो की ये क्रियाएं उनके विशेष क्रियाकर और त्रिदोष शामक गुणों पर आश्रित है।

क्षारों में त्रिदोषनाशक शक्ति उनके अनेक द्रव्यों के संयोग से निर्मित होने के कारण अन्तर्निहित होती है।

यह क्षारों की ही विशेषता है कि स्वेत और सौम्य होने के अतिरिक्त भी ये दहन, पचन, दारण आदि क्रियाओं के सर्जक होते है।

क्षार आग्नेय औषध गुण भूयिष्ट होने के कारण कटु, ऊष्ण, तीक्ष्ण, पाचन, विलयन, शोधन, रोपण, स्तम्भन, लेखन आदि गुणों युक्त तथा कृमि, आम, कफ, कुष्ठ, विष, मेद आदि नाशक और अधिक प्रमाण में प्रयोग मे लाएं तो पुंसत्व का भी घात करनेवाले होते हैं।

प्रतिसारणीय और पानीय भेद से क्षार के स्वभाविक ही दो भेद है। प्रतिसारणीय क्षार कुष्ठ, किटिभ, दद्रु, किलास, मण्डल, भगन्दर, अर्बुद, अर्श, दुष्टव्रण, नाडी चर्मकील, तिल, कालक, न्यच्छ, व्यंग, मशक, वाह्य विद्रधि, कृमि, विष आदि मे रोपण या चूर्ण रूप में छिडकने के काम में आते हैं; मुख के अन्तर्गत उपजिह्वा, अधिजिह्वा, उपकुश, दन्तवैदर्भ, आदि सात रोगों पर और तीन रोहिणियों पर क्षार का अनुशस्त्र रूप में प्रयोग किया जाता है। अर्थात् पद्धति के अनुसार शुद्ध सत्व रूप में निर्मित किए हुए छेदन और भेदन गुण युक्त क्षार युक्तिपूर्वक प्रयोग में लाए जांय तो मुख के उपजिह्वा आदि और कण्ठ के रोहिणी आदि रोगों का नाश करनेवाले होते हैं। पानीय क्षारों का उपयोग विष, गुल्म, अग्निसंग, अजीर्ण,

अरुचि, आनाह, मूत्रशर्करा, अश्मरी, अभ्यंतर विद्रधि, अन्नविष, कृमि और अर्श के विनाश के लिए किया जाता है।

क्षार अहितकर सिद्ध होते हैं।

रक्तपित्त, ज्वरित, पित्त प्रकृति, वाल, वृद्ध, दुर्वल तथा भ्रम, मद, मूर्च्छा, तिमिर आदि रोगों से पीडित और अन्य इसीप्रकार के रोगियों को क्षार नहीं देने चाहिएं। इन रोगों में क्षार अहितकर होते हैं। यदि इनका प्रयोग भूल से हो भी जाय तो विकृत स्थानों को भेद कर ये रोग का विस्तार कर देते हैं।

क्षार के गुण-शक्ति विभागानुसार भेद

गुण-शक्ति के विभाग से क्षार मृदु, मध्य और तीक्ष्ण तीन प्रकार के होते हैं।

नव्य चिकित्सा में क्षार का प्रयोग

आधुनिक नव्य चिकित्सा पद्धतियों में लगभग सर्वत्र ही क्षारों का एक या अनेक रूप में प्रयोग किया जाता है। वहां ये क्षार सेंद्रिय द्रव्यों के सक्रिय नेत्रजनित तात्विक पदार्थ (Active Nitrogenous principles of organic body) कहे जाते है। अधिकतर द्रव्यों के क्षारों का निर्माग करके नव्य चिकित्सक सूक्ष्म से सूक्ष्म और अधिक से अधिक मात्रा मे इन औषधों की तीक्ष्णता और सौम्यता के अनुरूप इन्हें प्रयोग में लाते हैं।

आयुर्वेद का क्षारों के विषय में मत

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार क्षार द्रव्यों का अति प्रयोग अहितकर होता है। क्षारों का अति प्रयोग केश (बाल), आंख, हृदय और पुरुषत्व का घातक सिद्ध होता है और जो इन क्षारों का अधिक प्रयोग करते है वे अंधे, षण्ड (नपुंसक) गंजे, खालित्य-पालित्य और हृदय के रोगों से पीडित होते है। प्रायः अधिक मात्रा मे इन औषधों का सेवन करनेवाले सभी इन दोषों से न्यूनाधिक मात्रा मे पीडित रहते है, और इन औषधियों के सेवन मे सबसे अधिक विशेषता यह है कि व्यसन की भांति ये प्रयोगी के गले पड जाती हैं।

क्षार निर्माण विधि

जिन द्रव्यों का क्षार निर्माण करना हो उनके पंचांग लेकर अथवा जिन द्रव्यों के जिन अवयवों का क्षार प्राप्त करना हो उनको प्राप्त कर एवं उनके छोटे २ टुकडे करके एकत्र करें और उसके ऊपर थोडा चूना और वजरी डालदे। अब तिल की नाल को जलाकर उस एकत्रित द्रव्य का दहन करें। जब सम्पूर्ण द्रव्य की भस्म हो जाय तब बजरी और चूने को निकालकर फेंक दे और भस्म को एक पात्र मे एकत्रित करले। इस १६ सेर भस्म को ९६ सेर पानी में या गोमूत्र मे मिश्रित करे। अब इस मिश्रण को ४-६ घण्टे

या इससे भी अधिक समय निश्चलतापूर्वक रक्खा रहने दें, तत्पश्चात् ऊपर के नितरे हुए जल को धीरे से निकाल ले (विस्रावयेत) और इस जल को अन्य पात्र मे फिर स्थिर होने के लिए रख दें। अब इस नितरे हुए जल को पुनः धीरे से निकाल ले (विस्रावयेत) और अन्य पात्र में फिर स्थिर होने के लिए रख दे। इसप्रकार इस क्रिया का २१ बार आवर्तन करें और अंतिम बार के जल को लोहे की कढाई मे भरकर तीव्र अग्नि पर जलीयांश को उडाने के लिए गर्म करें। जब द्रव्य रक्तवर्ण और चिकना हो जाय तो उसे उतार कर वस्त्रगालित करें और जो भाग वस्त्र के ऊपर रह जाय उसे फेक दे। जो जलीयांश वस्त्र में से निकलकर छानकर बाहर आ जाए उसे कढाई मे भरकर बहुत ही मंद अग्नि पर पकावें और जब जलीयांश किंचित मात्रा में अवशिष्ट रहे तब उसे अग्नि पर से उतार ले और वस्त्र से ढककर सूर्यातप में रख छोडें। इस विधि से कुछ काल में अवशिष्ट जलीयांश शुष्क हो जायगा और श्वेतवर्ण क्षार कढाई मे से प्राप्त होगा। यही क्षार है।

इस विधान से कुटज, ढाक, अश्वकर्ण, पारिभद्र, बहेडा, अमलतास, तिल्वक, अर्क, स्नुहि, अपामार्ग, पाटला, नक्तमाल, वासा, चित्रकमूल, इन्द्रजौ, सप्तपर्ण, अग्निमंथ आदि द्रव्यों के मूल, फल, शाखाओं सहित क्षार बनाते हैं।

क्षार के गुण

न अति तीक्ष्ण, न मृदु, शुक्ल, श्लक्ष्ण, पिच्छल, अभिष्यंदि, शिव और शीघ्र क्रियाकर, ये क्षार के आठ गुण है।

क्षार के दोष

अति मार्दवता, श्वैत्य, औषण्ड, तैक्ष्ण्य, पैच्छिल्य, सर्पिता, सांद्रता, अपक्वता और हीन द्रव्यता ये क्षार के दोष हैं।

आजकल खाद्य द्रव्य यथाः—चावल, दाल इत्यादि को पकाने के लिए कितने ही वंशों में क्षार का प्रयोग किया जाता है। यह अति निंदनीय और स्वास्थ्य घातक मार्ग है। क्षारों का प्रयोग यथाशक्य अल्प प्रमाण मे और यदाकदा ही करना चाहिए और जहां भी इनका प्रयोग लाभदायी हो वहां कौनसा क्षार किस अवस्था में उपयोगी है इस पर ध्यानपूर्वक विवेचन करके उसे प्रयोग में लाना चाहिए।

अपामार्ग क्षार

द्रव्य के विविध पर्याय—अपामार्ग (संस्कृत), चिरचिटा (हिन्दी, अघेडो (गुजराती), अघाडा (महाराष्ट्री), अपांग (बंगाली), Achyranthes Aspera (अंग्रेजी)।

निर्माण विधानः—अपामार्ग के शाखा, मूल, पत्र, फल और पुष्प अर्थात् इसका पंचांग लेकर स्वच्छ करलें। फिर जल में धोकर इसे शुद्ध स्थान में सुखालें। तत्पश्चात् जब यह सम्पूर्णतया सूख जाय तब इस द्रव्य को जमीन मे एक गढा खोदकर उसके किनारे पर रख दें और स्वयं अपने हाथ में इस शुष्क द्रव्य का कुछ भाग लें और दूसरे हाथ में तिल नाल जलाकर उसकी अग्नि से इस शुष्क द्रव्य को जलाते जाएं और गढे में डालते जाएं। जब नीचे पर्याप्त ज्वलित ज्वाला प्रगट हो जाय तब गढे के किनारे रक्खे अन्य शुष्क द्रव्य को थोडा २ करके डालते जांय। कुछ ही काल में सम्पूर्ण द्रव्य भस्मीभूत हो जायगा। २–४ घण्टे इस अग्नि को शांत होने तक और अपक्व द्रव्य के परिपूर्ण परिदहन तक गढे को किसी मिट्टी या पत्थर से ढककर रक्खे। भस्म के शीत हो जाने पर उसे गढे मे से निकाल ले और उसको तोल लें।

एक भाग भस्म को ६ भाग जल में मिलावें और ४–६ घण्टे पानी को स्पर्श किये विना ऐसे स्थान में कि जहां वायु भी उसका आलोडन न कर सके, रखदें। जल को, स्थिर होने पर धीरे २ नितार ले और इस जल को एक अन्य पात्र मे भर लें और उसे भी स्थिर होने दें। जब अघुलनशील द्रव्य पात्र की तली पर बैठ जाय और जल नितर जाय तब इस जल को धीरे से अन्य पात्र में उडेल लें। इसप्रकार इस क्रिया का २१ वार पुनरावर्तन करें। अंतिम वार प्राप्त किए हुए जल को कढाई मे भर दें। अब इस क्षारोदक को अग्नि पर चढादे और जब पकते २ जलीयांश रक्तवर्ण और चिकना हो जाय तब उसे उतार कर वस्त्रगालित करें और जो भाग वस्त्र के ऊपर रह जाय उसे फेंक दे। जो जलीयांश वस्त्र मे से छनकर निकलकर बाहर आ जाए उसे कढाई मे ही भरकर बहुत मन्द अग्नि पर पकावें और जलीयांश किंचित मात्रा मे अवशिष्ट रहे, तब उसे अग्नि पर से उतार लें और वस्त्र से ढककर सूर्यातप में रख छोडे। इस विधि से कुछ काल में अवशिष्ट जलीयांश शुष्क हो जायगा और श्वेतवर्ण का क्षार कढाई में प्राप्त होगा अथवा कढाई में अन्त मे बचे हुए द्रव्य को पुनः जल में मिश्रित करें और उसे फिर छानें। इस छाने हुए जल को मन्दाग्नि पर पकाकर श्वेत द्रव्य को प्राप्त करें। यही अपामार्ग क्षार है।

दूसरी विधिः–स्वच्छ, धौत और शुष्क किए हुए अपामार्ग के पंचांग को एक ढेर रूप में जमीन पर रख दें। इस ढेर के ऊपर चारों ओर चूना और रेत की बजरी लगादें और नीचे की ओर से तिल की नाल जलाकर अपामार्ग के इस ढेर में अग्नि प्रज्वलित करदें। भस्म हो जाने पर और भस्म के शीत हो जाने पर बजरी और चूने को हटाकर भस्म का ऊपर कथित क्षार निर्माण विधिवत् क्षार बनावें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—अपामार्ग क्षार तिक्त, ऊष्ण, कटु, कफघ्न तथा कृमि, कास, श्वास, शूल, गुल्म आदि का नाश करनेवाला है।

मात्राः—२ से ६ रत्ति तक।

प्रयोग विधि—एक चीनी की प्याली में क्षार से ६ गुना जल लेकर उसमें क्षार को मिलावें और उसे पी जाएं।

सं. वि.—यह क्षार आग्नेय गुण विशिष्ठ है। यह कटु, ऊष्ण, तीक्ष्ण, पाचन, शोधन, शोषण, लेखन आदि गुणोंयुक्त और कृमि, आम, मेद, कफ आदि का नाश करनेवाला है। इसके प्रयोग से कास और श्वास में परिश्रम से निकलनेवाला कफ शीघ्र पतला होकर निकल जाता है तथा इसके सेवन से श्वास–कास नलिकाएं प्रकुपित और दूषित वात–कफ से मुक्त होती है तथा श्वास और कास के विकार नष्ट हो जाते हैं। इसीप्रकार अपामार्ग क्षार का सेवन करने से उदर में एकत्रित आम, वात और कफ या तो पक्व होकर बाहर निकल जाते हैं अथवा कोष्ठ–शुद्धि क्रिया में मल के साथ २ ये भी बाहर निकल जाते हैं।

अपामार्ग क्षार कास, श्वास, उदरशूल, उदर गुल्म आदि विकारों के लिए उत्तम औषध है।

अभयालवण [भा. भै. र. ६४]

(भै. र. । प्ली. चि.)

द्रव्य तथा निर्माण विधान—परिभद्र (फरहद), ढाक, आक, थूहर, चिरचिटा, चीता, बरना, अरणी, सफेद आक, गोखरू, दोनों कटेली, करंज, आस्फोत (कचनार), कुडे की छाल, कडवी तुरई और पुनर्नवा। इन सब औषध वृक्षों के मूल, पत्र, शाखा लेकर साधारण ओखली मे कूटकर तिल नाल की अग्नि से भलीप्रकार जलावें। जब भस्म (राख) शीतल हो जाय तो उसमें से १ सेर लेकर १६ सेर जल मे मिलाकर पकावें। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाय तो उसे २१ बार कपडे मे से छान ले और फिर इस क्षारोदक मे सेंधानमक १ सेर, हैड ०॥ सेर और क्षारोदक के बराबर गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब पकते २ यह क्षारोदक गाढा हो जाय तब उतार कर गरम २ मे ही निम्न लिखित प्रक्षेप द्रव्यों के चूर्णों को मिश्रित करे:–

प्रक्षेप द्रव्य—जीरा, त्रिकुटा, हींग, अजवायन, पोखरमूल और कपूर प्रत्येक द्रव्य का २॥–२॥ तोले चूर्ण लें।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—इस अभयालवण को यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से उदर रोग, यकृत और प्लीहा विकार, आध्मान, गुल्म, अष्ठीला, मन्दाग्नि, शिरोरोग, हृद्रोग और शर्कराजन्य पथरी का नाश होता है।

मात्राः—०। से ०॥ तोला, गरम जल के साथ।

सं. नि.—अभयालवण, कोष्ठशोधक, वातानुलोमक, मूत्रल, यकृत्प्लीहा-वृद्धि नाशक, वात, पित्त और कफ शामक, अजीर्ण नाशक और उदर के विविध प्रकार के त्रिदोष जन्य विकारों को नष्ट करनेवाले द्रव्यों से निर्मित होने के कारण उदर के विकारों के लिए विशेष लाभकारी है।

अभयालवण मूत्रल और सहज रेचक होने से दीर्घकाल के प्रयोग से वृक्काश्मरी तथा मूत्रनलिकागत अश्मरी और मूत्राशय की अश्मरी को भी भेदन करके मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निकाल देता है।

कोष्ठ के वातप्रधान विकारों में जब मल के शुष्क होने से आध्मान और कोष्ठ जड़ता की परिस्थिति उत्पन्न हो जाय तब अथवा वातोदर की प्रारम्भिक अवस्था से ही अभया-लवण का नित्य सेवन बहुत ही फलप्रद सिद्ध होता है। जो क्रूरकोष्ठ उदर रोगी नित्य कोष्ठ शोधन के लिए औषधों का प्रयोग करते हों उन्हें कुछ काल इसका प्रयोग करके उदर को सक्रिय कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् स्वभाविक ही कोष्ठ शुद्ध रहेगा।

अभयालवण प्लीहा और यकृद्‌वृद्धि विकारों के लिए अत्यन्त उत्तम औषध है।

यवक्षार

द्रव्य—यव (संस्कृत), जौ (हिन्दी), Hordeum Hexastichum (लेटिन), Barley (अंग्रेजी), जौ, जव (गुजराती), जव (बंगला), जभासातु (मारवाडी), जव (महाराष्ट्री)

उत्पत्ति स्थान—उत्तर भारत।

निर्माण विधानः—जौ का पचांग लेकर स्वच्छ करें और धूप में सुखाकर सबको काटकर एक ढेर बनालें। इस ढेर को ऊपर चारों ओर से चूने और बजरी से ढक दें और नीचे की ओर एक छोटा सा गढा खोदे कि जिसका सम्बन्ध सीधो जौ के साथ हो। अब इस ढेर को तिल नाल की अग्नि से परिदहन करें। जब यह ढेर सम्पूर्ण जलकर क्षार हो जाय तब चूने और बजरी को निकाल दे और भस्म को एकत्रित कर उसे एक पात्र के अन्दर भस्म से ६ गुने जल या गोमूत्र मे मिश्रित करें। ४—६ घण्टे इस घोल को स्थिर रहने दे और फिर नितरे जल को निकाल लें और दूसरे पात्र में भरकर फिर ३—४

घण्टे इसीप्रकार स्थिर रहने दे। इस क्रिया का २१ बार आवर्तन करें। अन्तिम बार प्राप्त किए हुए जल को लोहे की कढाई में भरकर अग्नि पर चढावें, जब जलते २ जल कुछ अंश मे अवशिष्ट रहे और रक्तवर्ण एवं चिकना हो जाय तब उसे उतार लें और कपडे मे से छानें। कपडे पर के अवशिष्ट द्रव्य को फेंक दे एवं जलीयांश को जो कपडे मे से छनकर नीचे वर्तन में एकत्रित हो, पुनः एक कढाई मे भरकर मन्दाग्नि पर गरम करें। पानी धीरे २ सूख जायगा। कढाई को उतार ले और इसमे से अवशिष्ट शुष्क पदार्थ को निकाल लें। यदि यह आवश्यक प्रमाण मे श्वेतवर्ण न हुआ हो तो इसे पुन जल या गोमूत्र मे घोलकर एवं छानकर छने हुए जल को पुनः गरम करे। शुष्क हुए द्रव्य को एकत्रित करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खे। यही यवक्षार है।

यवक्षार के पर्यायः—यवाग्रजः, यवलासः, यवशूकम्, यवमालजः, यवजः, यवशूकजः, यवाह्वः।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह कटु, उष्ण, कफ, वात, उदररोग, आम, शूल, अश्मरी और विष को नाश करनेवाला है तथा सारक है। यवक्षार लघु, स्निग्ध, सूक्ष्म और अग्नि दीपक है।

मात्राः—२ से ८ रत्ति तक, जल मे मिलाकर या यथावश्यक अन्य औषध योगो के साथ।

सं. वि.—यव स्निग्ध तथा सहज पाचक है यही कारण है कि यव का प्रयोग रोगियों के लिए हितावह माना जाता है। यव की भांति यवक्षार भी पाचन क्रिया में सहायक और उससे अधिक वातानुलोमक है। यह मूत्रल, पाचक और आमदोष नाशक है। यवक्षार का प्रयोग अनेक रोगों में विविध अनुपानों के साथ किया जाता है यथाः—

(१) यदि यवक्षार को समान भाग मिश्री मे मिलाकर पिलाया जाय तो समस्त प्रकार के मूत्रकृच्छ्रों को नष्ट करनेवाला सिद्ध होता है।

(२) सज्जीक्षार, चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नीम की जड, सेंधानमक, कालानमक, विडनमक, काचनमक और समुद्रनमक, यदि इन द्रव्यो के साथ समान मात्रा में यवक्षार मिलाकर और इस योग को घी मे मिलाकर चटाया जाय तथा ऊपर से गरम पानी पिलाया जाय तो यह योग समस्त प्रकार के उदरशूलों का नाश करनेवाला होता है।

(३) यवक्षार को मधु में मिलाकर चटाने से तालुपाक का नाश होता है।

(४) यवक्षार को घी में मिलाकर पिलाने से मक्कलशूल नष्ट होता है।

(५) यवक्षार और सोंठ को समान भाग मिश्रित कर प्रातःकाल जल में मिलाकर चाटने से क्षुधा की वृद्धि होती है।

(६) इसी चूर्ण को ऊष्ण जल के साथ सेवन करने से किसी स्थान के जल का दुष्ट प्रभाव नहीं होता।

(७) यवक्षार के साथ अजवायन, सेंधानमक, अम्लवेतस, हैड, वच, और घी में भुनी हुई हींग मिलाकर ऊष्ण जल के साथ सेवन करने से उदरशूल और उपद्रव युक्त गुल्म भी नष्ट होते है।

संक्षेप मे पाण्डु, अर्श, ग्रहणी रोग, गुल्म. आनाह, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि आदि रोगों के लिए यवक्षार वातानुलोमक और पित्तशामक होने के कारण उपयोगी सिद्ध होता है।

---

*वज्रक्षार [भा. भै. र. ६५८८]

(रसे. सा। गुल्म; र. र. स.। पू. अ. १६, यो. र.। गुल्म; यो. चि. म.। अ. २; र. रा. सु.। यकृ., भै. र.। गुल्म; यो. र.। यकृ, वृ. यो. त.। त. १०५; र. का धे.। गुल्म)

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—समुद्र नमक, सेंधानमक, कांच लवण, यवक्षार, संचल (काला नमक), सुहागा और सज्जीक्षार प्रत्येक द्रव्य समान भाग ले और सबका एकत्र चूर्ण बनावे, फिर इस चूर्ण को आक तथा थूहर के दूध की धूप मे ३-३ भावना दे और एक गोला बनाकर सुखालें। गोले के सूखने पर उसे आक के पत्तों में लपेटकर हांडी मे बन्द कर पुट दे और हांडी के शीतल होने पर गोले को उसमें से निकाल ले।

इस गोले का सूक्ष्म चूर्ण बनावे और उसमे सोंठ. मिर्च, पीपल, हैड, बहेडा, आमला, अजवायन, जीरा और चीता प्रत्येक द्रव्य का समान भाग चूर्ण मिश्रित करे। इसको भलीभांति खरल करके प्रयोगार्थ सुरक्षित रक्खें।

मात्राः—४ रत्ति से २ माशे तक।

अनुपान—साधारण जल। विशेष वात अधिकता मे ऊष्ण जल के साथ, पित्त की अधिकता में घृत के साथ, कफज रोगो मे गोमूत्र के साथ और सन्निपातज रोगों मे कांजी के साथ लेना चाहिए।

---

* इस प्रयोग के बहुत से पाठान्तर है। किसी किसी ग्रन्थ में:-(१) अजवायन के स्थान में हल्दी पाठ है।

(२) चूर्ण तैयार होने पर उसमें एक भाग नीम्बूका रस मिश्रित करने का विधान है।

(३) अजवायन, जीरा और चीते के स्थान में चव, राई, वायविडग और हींग लिखी है।

(४) आक के पत्तों पर अर्कमूल के रस का लेप करने का विधन है।

(५) त्रिकुटा आदि नौ द्रव्यों का चूर्ण क्षार से अर्धभाग लेने के लिए लिखा है।

शास्त्रोक्त गुणधर्म—यह चूर्ण गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ प्रत्येक प्रकार के उदररोग, अग्निमान्द्य और प्लीहावृद्धि को नष्ट करता है। अजीर्ण और इसके फल स्वरूप उत्पन्न हुए अन्य अनेक विकारों में उपयोगी है।

सं. वि.—वज्रक्षार तथा इसमें मिश्रित होनेवाले द्रव्य सभी पाचक उष्ण, वातानुलोमक, अग्निवर्द्धक, आमनाशक, मूत्रल, सहज रेचक और शूल, गुल्म, आनाह, अजीर्ण आदि रोगों को नष्ट करनेवाले हैं।

भगवान शंकर द्वारा प्रचारित यह वज्रक्षार अजीर्ण तथा उसके फलस्वरूप होनेवाले अन्य विकारों को शीघ्र नष्ट करता है।

उदर रोगों में जो वातज, पित्तज अथवा श्लेष्मज विकार से उत्पन्न हुए हो अथवा जहां इन दोषों का उदर में प्रकोप, प्रसार और संग्रह हो अथवा ये दोष शूल, गुल्म आदि रूप में उदर में स्थान संश्रित हो गए हों वहां यह औषध लाभकारी सिद्ध होती है।

श्वेत पर्पटी

द्रव्य तथा निर्माण विधानः—(१) फिटकरी १ भाग, सेंधानमक ४ भाग और कल्मी शोरा १६ भाग लें। इन सब द्रव्यो को एकत्र कर मिट्टी की एक चौडी और बडी हांडी में डालकर अग्नि पर चढादें, धीरे २ सब द्रव्य द्रव होकर एकत्र मिश्रित हो जायंगे।

(२) जमीन पर गाय का गीला गोबर फैलालें और उसके ऊपर केले के अखण्ड पत्र आवश्यकतानुसार २–३ या १ बिछाले।

अब हांडी के द्रव को इन केले के पत्तों पर फैला दें और द्रव के ऊपर और केले के पत्ते बिछादें तथा उन पत्तों पर साधारण गोबर फैलादे।

कुछ काल में ही पत्ते पर डाला हुआ द्रव ठण्डा होकर पर्पटी रूप में जम जायगा। ऊपर के केलों के पत्तों को हटाकर पर्पटी रूप मे निर्मित द्रव्य को ग्रहण करें। इसको चाहे चूर्ण करके शीशियो मे भरलें चाहे पर्पटी रूप मे रक्खें। यही श्वेत पर्पटी है।

मात्राः—४ से ८ रत्ति।

अनुपान—शीतल जल, कर्पूर मिश्रित जल, नारियल जल या जौ का पानी।

उपयोग—प्लीहावृद्धि, यकृदवृद्धि, अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोगों के लिए श्रेष्ठ औषध है।

सं. वि.—यह औषध मूत्रल, वातानुलोमक, कोष्ठशोधक, पित्तशोधक, आमनाशक

और पाचक है। इसके सेवन से बढी हुई प्लीहा और यकृद शीघ्र स्वस्थ रूप धारण कर लेते हैं। मूत्रल होने के कारण यह सब प्रकार की अश्मरियों के लिए उपयोगी है। अश्मरीजन्य पित्ताशय शूल, पित्ताश्मरी, पाण्डु, वृक्काश्मरि, मूत्रनलिका तथा मूत्राशय अश्मरी, उपान्त्र शूल, परिणाम शूल और उदर गुल्म आदियों के लिए यह उपयुक्त औषध है। अम्लपित्त मे इसका प्रयोग जल में मिश्रित कर बडा ही लाभदायी सिद्ध होता है।

श्वेत पर्पटी अन्य क्षारों की अपेक्षा अपने निर्मायक द्रव्यों के कारण कुछ अंशों में भिन्न है, जहां अन्य क्षार ऊष्ण, तीक्ष्ण और दाहक होते हैं वहां यह औषध समशीतोष्ण और स्निग्ध क्रियाकर प्रतीत होती है। इसके सेवन से वात और आम द्वारा उत्पन्न हुए तथा पित्ताजीर्णजन्य विकार सहज ही नष्ट हो जाते हैं। परिणामशूल, पित्तशूल और ग्रहणी शूल में इसकी क्रिया सर्वदा सराहनीय होता है।

आमाशय. ग्रहणी और अन्त्र के व्रण विकारों में अल्प मात्रा मे इसकी क्रिया कई औषधों की अपेक्षा शामक, सारक, व्रणशोधक, दाहनाशक और व्रणनाशक सिद्ध होता है।

यकृद और प्लीहा वृद्धि में और विशेषतः इन अंगों के उन विकारों मे जो पुरातन या नवीन विषम ज्वरों के कारण उत्पन्न होते हैं, यह औषध अल्प मात्रा में जल के साथ प्रयोग में लाने पर शीघ्र उपकारकारक सिद्ध होती है।

मूत्रदोषों में जहां मूत्रदाह, मूत्राशय शोथ, मूत्राम्लता आदि विकारों से रोग की उत्पत्ति हो, इस औषध का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होता है।

चिकित्सा–पथ–प्रदर्शनी

प्रावेशिक प्रवचन

शरीर के विकारों का संशोधन, संशमन या विनष्ट करनेवाली क्रियाओं को चिकित्सा कहते है। ये क्रियाएं अनेक प्रकार से की जाती है, यथा बढी हुई धातुओ, दोषों और मलों को वमन–विरेचन–नस्य–निरुह–अनुवासनादि पंचकर्म द्वारा संशमन करके, शस्त्र क्रिया द्वारा संशोधन करके, लंघन द्वारा अतर्पण करके और वर्द्धितो को अपनी आंतरिक क्रिया द्वारा समावस्था मे ला करके। ये सब क्रियाए औषधो द्वारा की जाती है। ऐसी औषधो का उपयुक्त काल पर्यन्त सेवन करने से विकारो की शान्ति होती है। इसीप्रकार क्षीण दोष–धातु–मलों की संतर्पण क्रिया द्वारा, निश्चिन्तता, आनन्दमयता और सुखद स्थान मे निवास करने से और पोषक, मनोरंजक और इंद्रिय प्रसादक द्रव्यो का उपभोग करने तथा रसायन, क्षीण दोष–धातु--मलों के वर्द्धक, समान गुणधर्म वाले पदार्थों का सेवन करने और ह्रास के कारण का अवरोध करने से विकारों का नाश होता है। इसीप्रकार मन और शरीर को सदा सुख और अजर रख सके ऐसे आहार–विहार, विचार आदि का सेवन समयानुसार तथा ऋतुओं की उपेक्षा करते, सात्म्यासात्म्य की परीक्षा करके सरल, मधुर और सामान्य जीवन जीने के नियमो का पालन तथा विषाद की छाया से दूर सदानंदमयी क्रिया द्वारा भी विकार विहीन रहा जा सकता है और यदि विकार हो भी गए हो तो विकारोत्पादक कारणों का त्याग करके नियमित जीवन व्यतीत करने से पुनः स्वास्थ्य लाभ हो सकता है।

संक्षेप मे विकारनाशक क्रिया का नाम चिकित्सा है और वह किस विधि से की जा सकती है इसका ज्ञान शास्त्रो के अध्ययन, उन क्रियाओ मे पारंगतों के पास रहकर शिक्षण लेने और कृत योग्यता प्राप्त करने से मिलता है।

शास्त्रकारों ने अनेक क्रियाओं को संक्षिप्त कर, दीर्घ अनुभव से, शरीर में होनेवाले विकारो के कारणो का संशय रहित ज्ञान प्राप्त करके, कुछ ऐसे द्रव्यो की शोध की कि जिनके सेवन से रोगों का नाश हो सके। इन द्रव्यो को मौलिक स्वरूप में पाने के लिए उन्होंने प्रकृति के विशाल क्षेत्र को तीन विभागों में विभक्त किया (१) जङ्गम, (२) उद्भिद और (३) पार्थिव। उन्होने इन द्रव्यों की अनेक क्रियाओं का अनुभव किया और वहां जिस प्रकार से उन्हे लाभप्रद पाया, प्रयोग करके गुण–क्रिया नामानुसार, उसका नामकरण किया। जहां शास्त्रकारो को इन द्रव्यों के संयौगिक निर्माण की आवश्यकता पडी वहां आवश्यकतानुसार द्रव्यों को मिश्रित कर भिन्न गुण–कर्मवाला द्रव्य तैयार किया और अनेकशः प्रयोग करके सर्वदा समान लाभकारी सिद्ध होने पर उन्हे संसार के कल्याणार्थ शास्त्रों में संग्रहीत

किया। इन मौलिक एवं यौगिक रासायनिक द्रव्यों को उन्होंने औषध नाम प्रदान किया। ये ही औषध द्रव्य रोगो के विनाश के सुन्दर साधन बने और चिकित्सा मे निश्चित क्रियाओं के आधार पर अनंत काल से व्यवहार म आ रहे हैं, अत रोग विनाशक तत्वो के ये द्रव्य अंग बन गए है।

चिकित्सा केवल औषधो से ही नहीं होती। रोगी, वैद्य और परिचारक भी उसमें मुख्य क्रिया करते है, अत चिकित्सा के चार पाद माने जाते हैं। ये चारो ही पाद गुणवाले हों तभी चिकित्सा सफल होती है।

रोगी कैसा हो? वैद्य के गुण क्या हैं? औषध कैसी और किन तत्वोंवाली होनी चाहिए तथा परिचारक किन लक्षणोंवाला हो? ये चारो ही प्रश्न चिकित्सा जगत के लिए सदा महत्व के रहे है। इन चारों चिकित्सा उपयोगी पादो का गुणवान होना आवश्यक है। रोगी धैर्यशील, वैद्य की इच्छानुसार चलनेवाला, आयुष्यवान, सत्ववान, द्रव्यवान और आस्तिक होना चाहिए। परिचारक प्रेमाल, बलवान, व्याधित पर दया करनेवाला, रोगी की सब प्रकार से रक्षा करने मे तत्पर और वैद्य की आज्ञा का पालन करनेवाला हो। औषध स्वच्छतया निर्मित और गंध-वर्ण युक्त रसवाली, दोषनाशक और विकारविहीन द्रव्यों के योग से निर्मित होनी चाहिए। वैद्य इन चारों से अधिक उपयोगी है—भयंकर से भयंकर व्याधि को अपनी उत्तम बुद्धि द्वारा वश में करले तथा तत्व का ज्ञाता, शास्त्र के अर्थ को जाननेवाला, दृष्टकर्मा, कृतयोग्य, स्वयकृत, लघुहस्त, शुचि, शूर, औषध-संग्रह रखनेवाला तथा युक्ति-तर्क का आश्रय लेकर क्रिया करनेवाला होना चाहिए।

भैषज्य-सार-संग्रह मे सभी प्रकार की, अनत काल से सद्वैद्यों द्वारा प्रयुक्त, औषधों को चुन २ कर स्थान दिया है अतः ये औषधे आवश्यक गुण युक्त होने से औषध पाद की पूर्ति करनेवाली सिद्ध होगी। इस चिकित्सा पथ प्रदर्शिनी मे केवल भैषज्य-सार-संग्रह मे वर्णित औषधो को दिया गया है। इससे वैद्यों को इन औषधो के द्रव्य, गुण, क्रिया, मात्रा आदि के देखने मे सरलता रहेगी और किस रोगी की चिकित्सा मे किन द्रव्यो का प्रयोग किस अवस्था तक किया जाय और कब अन्य औषधो की आवश्यकता पड़ेगी इसका ज्ञान हस्तामलकवत् हो जायगा।

एक २ औषध कहीं २ अनेक रोगों पर व्यवहृत है और वह वस्तुत ही सर्वत्र समान उपयोगी है। शास्त्रकारो ने उसे उन रोगो पर प्रयोग करके देखा है और आज भी उसके उन गुणों मे किसी प्रकार का अभाव नहीं हुआ है। स्थानाभाव के कारण यहां पर उन औषधों का विशिष्ट २ रोगों मे ही प्रयोग बताया है, अत. औषधो के विशेष योगो और प्रयोगों के इच्छुकों को उन औषधो का पूर्ण अध्ययन करना चाहिए।

शास्त्र अनन्त है, औषधियां अनन्त हैं, द्रव्यों की और द्रव्यों से युक्त औषधियों की क्रियाएं अनंत है। कोई भी इस अगम्य सागर का पूर्ण ज्ञाता नहीं हो सकता। जहां जो उपयोगी समझीं और जिन्हे वस्तुत. लाभकारी पाया उन्हे उन रोगो पर प्रयोगार्थ यहां सूचित किया है।

यदि चिकित्सा मार्ग दर्शिका चिकित्सकों और व्याधितों को रोगनाशक और रोग मुक्ति क्रियाओं मे किसी भी प्रकार सहायक सिद्ध हो सकी तो मै अपने प्रयास को सफल मानूंगा।

विनयावनत
हरस्वरूप शर्मा

(अ)

अग्निमांद्य

रस—अग्निकुमार रस, अग्नितुण्डि रस, अग्निमूत रस, उदरामय कुम्भ केशरी, कल्पतरु, ग्रहणिका मद वारण रस, रामवाण रस, वडवानल रस, वडवामुखी गुटिका, वात विध्वंसन रस, शीघ्र प्रभाव रस, श्लेष्म कालानल रस, क्षुद् बोधक रस।

भस्म—कौडी भस्म, कांश्य भस्म, यशद भस्म, ताम्र भस्म, नाग भस्म, शंख भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म।

वटी—अग्निगर्भा वटी, विषतिन्दुक वटी, शंख वटी, संजीवनी वटी।

चूर्ण—ज्वालामुखी चूर्ण, बृहत् नायिका चूर्ण, लवण भास्कर चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण।

सार—चित्रक सार। घन—कुचलात्वक घन।

अङ्गताप

रस—शीतांशु रस।

भस्म—जहर मोहरा भस्म, पन्ना भस्म।

घृत—बृहत् शतावरी घृत।

अङ्गमर्द-अङ्गपीडा

रस—वेदनान्तक रस। तैल—नारायण तैल।

अङ्गभंग-अङ्गभेद

रस—वेदनान्तक रस।

अङ्ग विभ्रंश

तैल—नारायण तैल।

अङ्ग विक्षेप

तैल—नारायण तैल।

अङ्गशूल-गात्रतोद

रस—वेदनान्तक रस।

अङ्ग सदन

रस—वेदनान्तक रस।

अङ्गसाद

रस—महावात विध्वसन रस, वेदनान्तक रस।

वटी—अमृत नाम गुटिका, संचेतन वटिका।

अङ्गसुप्ति

वटी—अमृतनाम गुटिका।

तैल—नारायण तैल।

अग्रमांस

रस—उदरामय कुम्भ केशरी रस, ज्वरगर्याभ्र रस।

अजगल्लिका-अजगल्ली

रस—कफ चिंतामणि।

अजीर्ण

रस—अग्निमुख रस, अग्निसंदीपन रस, अग्निसूत रस, अजीर्ण बल कालानल रस, अजीर्णारि

रस, क्रव्याद रस, पंचामृत रस, पाशुपत रस, बुभुक्षु वल्लभ रस, भास्कर रस, महाक्रव्याद रस, महोदधि रस, राजवल्लभ रस, रामबाण रस, वडवानल रस, हुताशनि रस ।

भस्म—स्वर्ण वंग ।

व.ी—अग्नि प्रदीपक वटी, गन्धक वटी, धनंजय वटी, विडलवण वटी, वृहत् भक्तपाक वटी, भस्म वटी, शंख वटी (वृहत) ।

चूर्ण—अग्निमुख चूर्ण, ज्वालामुखी चूर्ण, पंचामृत चूर्ण, लवण भास्कर चूर्ण, वडवानल चूर्ण, समशर्करा चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण।

क्षार—श्वेत पर्पटी ।

अतिसार

रस—अगस्ति सूतराज रस, अभय नृसिंह रस, अश्विनिकुमार रस, आनदभैरव रस (भा. भै. र. ४३८), आनंद रस, कर्पूर रस, गंगाधर रस, ग्रहणी गजकेशरी रस, जातिफलादि रस, ग्रहणी कपाट रस, ज्वालानल रस, तृप्तिसागर रस, नागसुन्दर रस, नृसिंह पोटली रस, पंचामृत पर्पटी रस (भा. भै. र. ४२८३), पंचामृत पर्पटी रस(भा. भै. र. ४२८४), पियूषवल्लि रस, महागन्धक रस, लवंगाभ्रक योग, शंखोदर रस ।

वटी—कर्पूर सुंदरी वटिका, कुंकुम वटी, कुट्जादि वटी, कुट्जघन वटी, जातिफलादि गुटिका ।

चूर्ण—कपित्ताष्टक चूर्ण, नागकेसरादि चूर्ण (पित्तातिसार), वृहन्नायिका चूर्ण, वृद्ध गंगाधर चूर्ण ।

क्वाथ—वत्सकादि क्वाथ ।

अवलेह—कुटजावलेह ।

आसव—अहिफेनासव, कुट्जारिष्ट, बबूलारिष्ट,

सार—कुट्जसार, बिल्व सार ।

अत्यार्तव

भस्म—यशद भस्म । अरिष्ट—अशोकारिष्ट ।

अर्दित (वातरोग)

रस—एकांगवीर रस, खंजनिकारी रस ।

अर्धांगवात

रस—अर्धांगवातारि रस, एकांग वीर रस, कम्पवात हर रस, नव ग्रहराज शिरोभूषणरस।

अधि मांसक-तोन्सिल शोथ

रस—अमृतार्णव रस, कफ चिंतामणि रस ।

अनिद्रा

रस—निद्रोदय रस । भस्म—मुक्ता पिष्ट ।

वटी—सर्पगन्धा घन वटी ।

सार—सर्पगन्धा प्रवाही ।

तैल—वायुच्छाया सुरेन्द तैल ।

अंतर्गत ज्वर

रस—जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३)

अन्त्र विद्रधि

रस—एकादशायश रस ।

अन्त्र कूजन

रस—अंत्र शोषान्तक रस (र यो. सा.)

अन्त्र शोष

रस—अंत्र शोषान्तक रस (र. यो. सा.), गगनपर्पटी रस, विजय पर्पटी रस, सुवर्णपर्पटी, हिरण्यगर्भ रस ।

भस्म—स्वर्णमाक्षिक भस्म ।

अन्त्र शैथिल्य
रस—पंचामृत पर्पटी रस (चंद्रोदयी), विजय पर्पटी रस ।
कुप्पीपक्व—रौप्य सिंदुर। भस्म—स्वर्णवंग।
वटी—विषमुष्टिक गुटिका। आसव—बिल्वासव।
सार—चित्रकसार, लोध्र सार ।

अन्त्र शोथ
रस—विजय पर्पटी रस, सुवर्ण पर्पटी रस ।
भस्म—स्वर्णभस्म ।

अन्त्रवृद्धि
रस—एकादशायश रस, नित्यानंद रस, नृपति वल्लभ रस, महालक्ष्मी विलास रस, लक्ष्मी विलास रस, शशिशेखर रस ।
वटी—अंत्र वृद्धिहर गुटिका, वृद्धि बाधिका वटी।

अण्ड वृद्धि
रस—एकादशायश रस । भस्म—स्वर्ण भस्म ।
वटी—वृद्धिबाधिका वटी ।

अन्नद्रव शूल-परिणाम शूल जरत्पित्त शूल-पक्ति शूल
रस—गुडादि मण्डूर रस, तारा मण्डूर रस, पानीय भक्त वटी रस, प्राणेश्वर रस (भा. भै. र. ४४८१), रसराक्षस रस।
भस्म—कौडी भस्म, शंख भस्म, भीम मण्डूर, शूल वर्जिनी वटी ।
चूर्ण—नारिकेल योग चूर्ण ।

अपची
रस—सर्वेश्वर पर्पटी। गुग्गुल—कांचनार गुग्गुल।

अपतन्त्रक
रस—ब्राह्मी वटी ।
वटी—ब्राह्मी वटी, अपतन्त्रकारि वटी।

अपबाहुक-अवबाहुक
रस—वात गजाकुंश रस। तैल—महामाष तैल।

अपस्मार
रस—आनंद भैरव रस, उन्माद भंजन रस, उन्माद गज केशरी रस, कृष्ण चतुर्मुख रस, बाल सूर्योदय रस, पंचलौह रसायन, चतुर्मुख रस, चिंतामणि चतुर्मुख रस, प्रचण्ड भैरव रस, भूत भैरव रस, वातकुलान्तक रस, स्मृति सागर रस।
भस्म—चांदी भस्म, स्वर्ण भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म ।
वटी—अमर सुन्दरी वटी, इन्द्र ब्रह्म वटी ।
चूर्ण—शंखावली चूर्ण, सरस्वति चूर्ण ।
क्वाथ—धान्यपंचक क्वाथ, मांस्यादि क्वाथ।
घृत—ब्राह्मी घृत, सारस्वत घृत ।
अरिष्ट—अश्वगंधारिष्ट, सारस्वतारिष्ट ।
शर्बत—शर्बत ब्राह्मी । सार—ब्राह्मी सार ।
तैल—ज्योतिष्मती तैल, प्रसारणी तैल, ब्राह्मी तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, श्रीगोपाल तैल ।
अंजन—उन्माद भंजनी वर्ति ।

अभिषङ्ग
रस—अष्ट मूर्ति रस ।

अम्लपित्त
रस—चतुर्मुख रस, छर्द्यान्तक रस, ताम्र कल्प रस, त्रिफलादि मण्डूर रस, धात्रि लौह, पित्तान्तक रस (भा. भै. र.४४०७), बृहत् शतावरि मण्डूर रस, मुक्तापर्पटी

रस, लीला विलास रस, सूतशेखर रस, संशमनी वटी नं. २ ।
चूर्ण-अविपत्तिकर चूर्ण, त्रिकट्वादि चूर्ण ।
अवलेह-कुष्माण्डावलेह, खमीरे गाव जुवां (अमृत), हरिद्राखंड, हरीतकी अवलेह।
पाक-नारिकेल फल पाक।

अरुचि

रस-आरोग्यसागर रस, चंद्रसुधा रस, तरुणानद रस, रामवाण रस, शीघ्र प्रभाव रस, चंद्रोदय रस ।
भस्म-अभ्रकसत्व भस्म,
वटी-अमृत वटी, गंधक वटी ।
चूर्ण-द्राक्ष्यादि चूर्ण, पंचकोल चूर्ण, महाखाण्डव चूर्ण, यवानि खाण्डव चूर्ण, स्वादिष्ट चूर्ण ।
क्वाथ-गुडूच्यादि क्वाथ, ह्रीवेरादि क्वाथ ।
अवलेह-अमृतप्राश्यावलेह। पाक-आम्र पाक।
सार-जीवन रसायन अर्क ।

अरोचक

रस-सुलोचनाभ्र रस।

अर्जुनरोग (नेत्ररोग)

अंजन-गुटिकांजन, नयनामृतांजन, नेत्रप्रकाशांजन, पुष्पाक्षरादि रस क्रिया ।

अर्श

रस-अग्निमुख लौह, अर्श कुठार रस, अभ्रक हरीतकी रस, महापर्पटी रस ।
भस्म-कहरुवा भस्म, कासीस भस्म, खर्पर भस्म, ताम्र भस्म, नाग भस्म, शंखद्राव।
वटी-त्रिफलादि गुटिका, प्राणदा गुटिका, प्राणप्रद मोदक, वृहत सुवर्ण वटक, सूर्यचंद्रप्रभा गुटिका ।
गुग्गुल-त्रिफला गुग्गुल ।
घृत-दशमूलषट्पल घृत ।
मल्हम-गुलाबी मल्मह, भगन्दर नाशक मल्हम ।
पाक-वाहुशाल गुड । आसव-द्राक्षासव ।
अरिष्ट-अभयारिष्ट, दंत्यारिष्ट ।
तैल-कासीसादि तैल, महाव्रजक तैल ।

अर्वुद

गुग्गुल-कांचनार गुग्गुल ।

अश्मरी-पाषाणरोग

रस-अश्मरी कण्डन रस, त्रिविक्रम रस, पाषाण भेदी रस ।
भस्म-खर्पर भस्म, शुक्ति भस्म, शंखद्राव ।
गुग्गुल-गुडूच्यादि गुग्गुल ।
क्वाथ-अश्मरी हर कषाय ।
अवलेह-कुशावलेह, वृहत् गोक्षुरादि अवलेह, माजून हजरुल यहूद ।
आसव-पलाश पुष्पासव ।

अष्ठीला

वटी-अग्निगर्भा वटी, गुल्म वज्रिणी वटी ।
आसव-कुमार्यासव नं. १ ।

अस्थिगत-ज्वर

रस-जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३)।

अस्थिभङ्ग

भस्म-स्वर्ण भस्म ।
गुग्गुल-त्रयोदशाग गुग्गुल ।
लेप-अस्थिसंधानक लेप ।
तैल-नारायण तैल, लाक्षादि तैल

अस्थि-शोथ

भस्म-स्वर्ण-भस्म ।

(आ)

आखुविष

रस-आखुविषान्तक रस ।

आढ्यवात (वात-रक्त)

रस-कुब्जविनोद रस, कृष्ण चतुर्मुख रस, चिंतामणि चतुर्मुख रस ।

आध्मान-आनाह

रस-महावातविध्वंस रस, सामुद्रिक लौह, प्रवाल पंचामृत ।

भस्प-स्वर्णवंग, शुक्ति भस्म ।

वटी-कम्पिल्यादि वटी, गैसहर वटी, राजवटी, लसुनादि गुटिका ।

गुग्गुल-लवंगादि गुग्गुल ।

चूर्ण-नारायण चूर्ण, यवानिखाण्डव चूर्ण, शुण्ठी पुट्पाक, सामुद्रादि चूर्ण, हिंग्वादि चूर्ण।

लेप-दारुषट्कादि लेप । घृत-हिंग्वादि घृत।

आसव-चविकासव ।

सार-चित्रक सार, सरपुंखा सार ।

घन-कुचलात्वक घन ।

क्षार-श्वेत पर्पटी ।

आमवात रोग

रस-आमवातारि रस, आमवातेश्वर रस, त्रिमूर्ति रस, वात गजेन्द्र सिंह रस, विडंगादि लौह।

कुप्पीपक्व-त्रिपुरभैरव रस ।

वटी-अमृत नाम गुटिका, आमराक्षसी गुटिका, आमवात प्रमथिनी वटी, रसोनपिण्ड, वातहर गुटिका, संधिवातारि गुटिका ।

गुग्गुल-अमृतादि गुग्गुल, दशांग गुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल ।

चूर्ण-पंचसम चूर्ण, रास्नादि चूर्ण ।

क्वाथ-रास्नासप्तक क्वाथ ।

पाक-अश्वगंधा पाक, बाहुशाल गुड ।

सार-गुडूचि सार, रास्ना सार ।

घन-गुडूचि घन ।

तैल-पंचमूल तैल, सैन्धवादि तैल ।

आमज्वर

रस-गदमुरारि रस, गदमुरारि रस (भा. -भै. र. १५०८).

आमरोग-आमशूल

रस-जातिफलादिग्रहणीकपाट रस, ज्वर-मातंगकेशरी रस, श्लेष्म कालानल रस ।

कुप्पीपक्व-पचभूत रस ।

भस्म-जहरमोहरा भस्म ।

गुटिका-कन्या लौहादि गुटिका ।

वटी-चित्रकादि वटी, बृहत पाक वटी, लवण वटी ।

चूर्ण-दाडिमाष्टक चूर्ण, पंचकोल चूर्ण, बिल्वादि चूर्ण, शुण्ठी पुट पाक चूर्ण ।

आसव-बिल्वासव, हरीतक्यासव ।

अरिष्ट-पिपल्यारिष्ट ।

सार-कुटजसार, वृद्धदारक सार ।

आमातिसार

रस-अग्निकुमार रस ।

आर्तव-दोष

भस्म-कांतपाषाण भस्म ।

आमाशय शैथिल्य (आमाशय जडता)

रस—कफकेतु रस, कफकर्तरी रस, त्रिपुर सिन्दुर रस, मुक्तापर्पटी रस ।

चूर्ण—षड्धरण योग ।

सार—पाठा सार, मुस्तक सार ।

आमाशय गत व्रण

रस—त्रिपुरसुन्दर रस ।

आक्षेप-आक्षेपक

रस—आखुविषान्तक रस, लक्ष्मीनारायण रस, वातराक्षस रस ।

वटी—ब्राह्मी वटी । क्वाथ—मांस्यादि क्वाथ ।

सार—अपामार्ग सार (प्रवाही), कुष्ठ सार ।

तैल—वातारि तैल ।

(इ)

इन्द्र लुप्त-ऐन्द्र लुप्तिका

तैल—करंजादि तैल ।

(उ)

उदावर्त

रस—उदरारि रस, लौह पर्पटी, श्वासकुठार रस, सर्वेश्वर पर्पटी रस, सुधाधर रस ।

गुग्गुल—योगराज गुग्गुल । आसव - कुमार्यासव ।

उन्माद

रस—उन्माद गजकेशरी रस, उन्माद गजांकुश, उन्मादभंजन रस, कामदुधा रस (भा. भै. र. ९४८७), कृष्णचतुर्मुख रस, भूतभैरव रस, स्मृति सागर रस ।

कुप्पीपक्व—समीर पन्नग रस । स्वर्ण भस्म ।

चूर्ण—सर्पगन्धा योग, सारस्वत चूर्ण ।

घृत—ब्राह्मी घृत ।

अवलेह—खमीर गाव जवां (अमृत), दीवालमुश्क ।

अरिष्ट—अश्वगन्धारिष्ट । शर्बत—शर्बत ब्राह्मी ।

सार—ब्राह्मी सार, शंखपुष्पी सार, सर्पगन्धा प्रवाही सार ।

तैल—ज्योतिष्मति तैल, प्रसारिणी तैल, ब्राह्मी तैल, वायुच्छायासुरेन्द्र तैल, श्री गोपाल तैल ।

अंजन—उन्माद भंजनी वर्ति ।

उरःक्षत रोग

रस—कुर्श कहरुवा, श्री डामरेश्वराभ्र रस ।

उदरशूल रोग

रस—अग्नि संदीपन रस, अग्निसूत रस, गजकेशरी रस, चण्डभास्कर रस, तारामण्डूर रस, भुवनेश्वर रस, रसराज रस, विद्याधर रस (भा. भै. र. ७०४४), विश्वरूप रस, वैश्वानर लौह, शूल कुठार रस, शूल गज केशरी रस, शूल दावानल रस, शूलांतक रस, शूलारि रस, सामुद्रिक लौह. प्रवाल पंचामृत रस ।

भस्म—शुक्ति भस्म, शंख भस्म, हीरा भस्म ।

वटी—अग्निप्रदीपक गुटिका, आदित्य गुटिका, शूलवज्रिणी वटिका, शूलहरण योग, सूर्यप्रभा वटी, हिंग्वादि वटी ।

चूर्ण—चतुस्सम चूर्ण, त्रिकटुकादि चूर्ण, नारायण चूर्ण, यवक्षारादि चूर्ण, सौवर्चलादि चूर्ण ।

क्वाथ—दशमूलादि क्वाथ, पथ्यादि क्वाथ ।

घृत—दशमूल षटपल घृत, हिंग्वादि घृत ।

पाक—कुबेराक्ष पाक ।

आसव—कुमार्यासव, द्राक्षासव, हरीतक्यासव ।

अरिष्ट-अभयारिष्ट, जीरकाद्यारिष्ट ।

सार-अर्कमूल सार, सरपुंखा सार

तैल-महाशुष्कमूलादि तैल, शूलगजेन्द्र तैल।

क्षार-अभयालवण, भस्म क्षार, वज्रक क्षार, श्वेत पर्पटी ।

उपदंश

रस-उपदंश कुठार रस, रस शेखर ।

कुप्पीपक्व-त्रिपुर भैरव रस, व्याधिहरण रस ।

भस्म-तुत्थ भस्म । चूर्ण-चोपचिन्यादि चूर्ण ।

क्वाथ-वृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ ।

मल्हम-काशीसादि घृत (मल्हम) ।

अवलेह-माजूम हजरुल यहूद, माजून उशवा।

पाक-चोपचीनी पाक । अरिष्ट-सारिवाद्यारिष्ट।

उपान्त्र शूल

रस-शूल दावानल रस, शूलगजकेशरी रस, शूलांतक रस, शूलारि रस, सामुद्रिक लौह ।

उरःक्षत

रस-कल्याण सुन्दर रस ।

अवलेह-अमीरी जीवन । आसव-अंगुरासव ।

तैल-चंदनादि तैल, लाक्षादि तैल ।

उरस्तोय

रस-कल्याण सुन्दर रस, हेमाभ्रक रससिन्दुर।

कुप्पीपक्व-पंचसूत रस ।

क्वाथ-भार्ग्यादि क्वाथ। सार-कण्टकारी सार।

(ऊ)

ऊरुस्तंभ

रस-गुंजाभद्र रस, पाण्डु पंचानन रस, पाण्डु गजकेशरी रस, वातगजांकुश रस, हंस मण्डूर ।

वटी-वातहर गुटिका । अरिष्ट-विडंगारिष्ट ।

तैल-सैन्धवादि तैल ।

ऊर्ध्वजत्रुगत रोग

भस्म-वंग भस्म । तैल-आंवला तैल ।

(ए)

एकाङ्गवात

रस-नवग्रहीराजशिरोभूषण रस, कस्तूरी भूषण रस ।

तैल-नारायण तैल ।

(ऐ)

ऐकाहिक ज्वर

रस-ज्वर कुंजरपारिंद्र रस, शीतांकुश रस ।

(क)

कटिशूल

रस-वातराक्षस रस ।

कटि-ग्रह

रस-वातराक्षस रस, श्वाशांकुश रस

वटी-वातहर गुटिका ।

गुग्गुल-त्रयोदशांग गुग्गुल। पाक-पिष्टि पाक।

कण्ठमाला

कुप्पीपक्व- त्रिपुरभैरव रस ।

मल्हम-सिंदुरादि मल्हम ।

कण्ठ शोष

शर्बत-शर्बत ब्राह्मी, शर्बत बनफशा, शर्बत वसाका ।

कण्ठ शोथ

वटी-अडूसा घन वटी ।

चूर्ण-कट्फलादि चूर्ण ।

शर्बत-शर्बत बनफ्शा, शर्बत वसाका ।

कण्डू

भस्म-तुत्थ भस्म, सौराष्ट्रि भस्म ।

चूर्ण-मदयन्त्यादि चूर्ण ।
लेप-अवल्गुजादि लेप ।
मल्हम-काशीसादि घृत (मल्हम), गुलाबी मल्हम ।
तैल-कण्डूनाशक तैल, गुंजा तैल, गुडूचि तैल, बृहन्मरिच्यादि तैल, बृहत् सोमराजी तैल, विष तैल ।

कफ ज्वर

रस-कफकुठार रस, कफचिंतामणि रस, कल्पतरु रस, महालक्ष्मी विलास रस, श्लेष्म कालानल रस, श्लेष्म शैलेन्द्र रस ।
भस्म-त्रिवंगभस्म, नागभस्म, पित्तल भस्म ।
क्वाथ-दशमूल क्वाथ, पथ्यादि क्वाथ ।
पाक-अश्वगंधा पाक ।

कम्पवात

रस-कम्पवातहर रस ।
तैल-नारायण तैल (भा. भै. र. ३५०३) ।

कमठ

रस-ताम्र कल्प ।

कर्ण-कण्डू

तैल-क्षार तैल ।

कर्णनाद

वटी-इन्दु वटी । तैल-क्षार तैल ।

कर्ण-विद्रधि

वटी-सारिवादि वटी ।
गुग्गुल-रास्नादि गुग्गुल ।

कर्णशूल

वटी-सारिवादि वटी ।
तैल-अपामार्ग क्षार तैल, पंचमूल तैल, महामाष तैल, क्षार तैल । दशमूल तैल, बाल बिल्वादि तैल, महामाष तैल ।

कर्णस्राव

तैल-क्षार तैल ।

काच

Affection of optic nerve or gutta serene
अंजन-कतक फलादि अंजन, गुटिकांजन, नयनामृतांजन, नेत्रप्रकाशांजन, पुष्पक्षारादि रस क्रिया ।

कांश्य क्रोड

रस-ताम्र कल्प ।

कामोद्दीपक

रस-गुंजाजीवन रस ।

कामला

रस-कामला हर रस, चंद्र सूर्यात्मक रस, दुग्धादि वटी । (भा. भै र. ३२१२) लोह रसायन ।
भस्म-कांतलौह भस्म ।
अवलेह-धात्र्यावलेह ।
तैल-महाशुष्कमूलादि तैल ।

कार्श्य

रस-बृहत्सुवर्णमालिनी वसंत, लोकनाथ रस ।
कुप्पीपक्व-पूर्ण चंद्रोदय रस ।
भस्म-अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म ।
वटी-क्षार गुटिका । चूर्ण-कमलाक्ष्यादि चूर्ण ।
घृत-कुमार कल्याण घृत ।
अवलेह-अश्वगंधावलेह, च्यवनप्राशावलेह, हरीतकी अवलेह ।
सार-अश्वगंधासार ।

कामज्वर

रस—बृहत्कस्तूरीभैरव रस ।

कास

रस—अग्नि रस, अमृत मंजरी रस, अचिंत्य शक्ति रस, उन्मत्तभैरव रस, कफ केतु रस, कफ चिन्तमाणि रस, कफकर्तरीरस, कल्पतरु रस, कस्तूरी भूषण रस, कास कर्तरी रस, कास केशरी रस, कास कुठार रस, कास संहार रस, कासारि रस, कासश्वासविधूनन रस, चंद्रामृत लौह, तरुणानंद रस, त्र्यंबकाभ्र रस, दर्देश्वर रस, नाग रस, पुरंदर वटी, भूतान्तक रस, रसेन्द्र गुटिका, वसंत तिलक रस, श्रृंगाराभ्र रस, श्री डामरानंदाभ्र रस, श्वासांतक रस, सम शर्कर लौह, चंद्रोदय रस ।

कुप्पीपक्व—दरद सिंदुर, शिला सिन्दुर, ताम्रसिन्दुर ।

भस्म—ताम्र भस्म, नीलम भस्म, श्रृंगभस्म, स्वर्ण भस्म ।

वटी—कर्पूरादि वटी, कास मर्दनी वटी, दरदादि वटी, बब्बूलादि गुटिका, भागोत्तर गुटिका, मरीचादि गुटिका, माणिक्य रसादि गुटिका, लवगादि वटी ।

चूर्ण—तालिसादि चूर्ण, लवगादि चूर्ण ।

अवलेह—अगस्त हरीतकी अवलेह, कंटकार्यावलेह, च्यवनप्राशावलेह, पिप्पलाद्यवलेह, वासावलेह, व्याघ्रि हरीतकी अवलेह ।

पाक—भार्गी गुड ।

आसव—भृंगराजासव, हरीतक्यासव ।

शर्बत—शर्बत वनफशा, शर्बत वसाका ।

सार—कण्टकारी सार ।

घन—अडूसा घन । तैल—बृहन्मरिच्यादि तैल, बृहत् सोमराजी तैल ।

क्षार—अपामार्ग क्षार, यवक्षार ।

कुब्जता

तैल—नारायण तैल, प्रसारिणी तैल, वातारि तैल ।

कुष्ट

रस—अमृतांकुर लौह, उदयादित्य रस, कुष्ट कुठार रस, कुष्ट शैलेन्द्र रस, गलित कुष्टारि रस, माणिक्य रस, तालसिंदुर ।

भस्म—ताम्र भस्म, तुत्थ भस्म, नीलम भस्म, पित्तल रसायन, स्वर्णमाक्षिक भस्म ।

गुग्गुल—कैशोर गुग्गुल, पंचतिक्त घृत गुग्गुल ।

लेप—कुष्टघ्न लेप ।

क्वाथ—बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ ।

मल्हम—काशीसादि घृत (मल्हम) ।

आसव—खदिरासव, लोध्रासव ।

सार—खदिर सार ।

तैल—कण्डूनाशक तैल, गुंजा तैल ।

कृमिरोग

रस—उदरघ्न रस, कीटमर्द रस, कृमि कुठार रस, कृमि मुग्दर रस, कृमिहर रस, मुस्तादि योग, योगराज रस ।

भस्म—ताम्र भस्म, पित्तल रसायन ।

वटी—आयुष्य वर्धिनी गुटिका, कम्पिल्यादि वटी, कृमिहर गुटिका, कृमिघातिनी गुटिका, वृद्धि वाधिका वटी ।

क्वाथ-क्रिमिघ्न क्वाथ । अवलेह-विडंगावलेह ।
अरिष्ट-रक्तशोधकारिष्ट, विडंगारिष्ट ।
सार-कांचनार सार, नीम सार, वच सार ।
तैल-वृहत् सोमराजी तैल ।

कृशता

रस-कार्श्य हर लौह ।

किलास

आसव-लोध्रासव ।

क्रोष्टुक शीर्ष

रस-वात गजांकुश रस ।
गुग्गुल-त्रयोदशांग गुग्गुल ।

क्लैब्यम्

रस-अनंग विलास रस, कस्तूरी गुटिका, नारीमत्त गजांकुश रस, पंचबाण रस, महाराज मृगांक रस, महौषधि राजवंग, कामिनी विद्रावण रस ।
कुप्पीपक्व—पूर्णचंद्रोदय रस ।
भस्म-अभ्रक भस्म, अभ्रक सत्व भस्म, कांत पाषाण भस्म, माणिक्य भस्म, वंग भस्म, सप्तरत्न भस्म, हीरा भस्म ।
वटी-अनंगमेखला मोदक, कामेश्वर मोदक, मदन मंजरी वटिका, शिलाजीत्वादि वटी।
घृत-कामदेव घृत, फल घृत ।
अवलेह-अश्वगंधावलेह ।
आसव-भृंगराजासव ।
तैल-चंदनादि तैल, नपुंसकता नाशक तैल, बृहती तैल, रतिवल्लभ तैल ।

क्लम

अवलेह-अभयामलकी रसायन (अवलेह) ।

कोष्ट बद्धता

रस-अश्व चोली रस, इच्छाभेदी रस, कफकुंजर रस, चिंतामणि रस (भा. भै. र. १९३४), नाराच रस, भुवनेश्वर रस, महावह्नि रस, मेघनाद रस, सामुद्रिक लोह ।
वटी-अभयादि मोदक, प्रभावती गुटिका, विरेचन वटी ।
चूर्ण-त्रिकट्वादि चूर्ण, दीनदयाल चूर्ण, शिवाक्षार पाचन चूर्ण, स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण ।
क्वाथ-तरुण्यादि क्वाथ । अरिष्ट-दंत्यारिष्ट ।
सार-कुटकी सार । घन-कुटकी घन ।

क्लोम-विकार

वटी-सूर्यचंद्रप्रभा गुटिका ।

(ख)

खंजवात

रस-खंजनिकारि रस ।
गुग्गुल-त्रयोदशांग गुग्गुल, पथ्यादि गुग्गुल ।

खालित्य

तैल-नारायण तैल (मध्यम) (भा. भै. र. ३५०२) ।

(ग)

गण्डमाला

रस-गण्डमालाकण्डन रस ।
भस्म-कांतलौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म ।
गुग्गुल-कांचनार गुग्गुल ।
लेप-शर्षपादि लेप ।
सार-कांचनार सार ।
तैल-चक्रमर्दादि तैल, महावज्रक तैल ।

गद्गदता (मिन्मनः)

घृत—सारस्वत घृत । तैल—हिमसागर तैल ।

गर्भाशय विकार

भस्म—चांदी भस्म, स्वर्ण भस्म ।

गर्भिणी विकार

रस—इन्दुशेखर रस, गर्भचिंतामणि रस, गर्भपाल रस, गर्भ पीयूषवल्लि रस, गर्भविनोद रस, गर्भविलास रस, रत्नभागोत्तर रस ।

गलगण्ड

रस—प्राणवल्लभ रस । सार—नीम सार ।

गलशोथ

रस—लक्ष्मीविलास रस । शर्बत—शर्बत वसाका ।

गलाङ्कुर

शर्बत—शर्बत वसाका ।

गलित कुष्ट

रस—गलित कुष्ठारि रस, चंद्रशेखर रस, माणिक्य रस ।

गात्रकम्प

वटी—विषतिन्दुक वटी ।

गुदभ्रंश

रस—अग्निमुख लौह, नागसुन्दर रस । ग्रहणी गजेन्द्र वटिका । वटी—काशीसादि गुटिका ।

गुल्म

रस—गुल्म कालानल रस, प्रवाल पंचामृत रस, गुल्मकुठार रस, गुल्मभेदभसिंह रस, विद्याधर रस, (भा. भै. र. ७०४४) ।

भस्म—नागभस्म ।

वटी—शंख वटी, कांकायन गुटिका, गुल्म वज्रिणी वटी, प्रभावती गुटिका, क्षार गुटिका ।

गुग्गुल—लौह गुग्गुल ।

चूर्ण—नारायण चूर्ण, विडंगतण्डुल चूर्ण, सामुद्रादि चूर्ण, हिंग्वादि चूर्ण ।

घृत—दशमूलषट्पल घृत, हिंग्वादि घृत ।

आसव—कुमार्यासव, चविकासव ।

तैल—शूल गजेन्द्र तैल ।

क्षार—अभयालवण, भस्म क्षार ।

गृध्रसी

रस-एकांग वीर रस, वात गजांकुश रस ।

गुग्गुल—त्रयोदशांग गुग्गुल, पथ्यादि गुग्गुल ।

तैल—प्रसारणी तैल ।

ग्रंथि विकार

भस्म-माणिक्य भस्म, स्वर्णभस्म ।

गुग्गुल—कांचनार गुग्गुल । आसव—द्राक्षासव ।

सार—वच सार ।

(च)

चतुर्थिका (चातुर्थिक ज्वर)

रस—चातुर्थिकारी रस, ज्वरकुंजरपारिंद्र रस, ज्वरशूलहर रस, शीतांकुश रस, अष्टमूर्ति रस ।

अंजन—उन्माद भंजनी वर्ति ।

चर्म कुष्ट

रस—चर्मभेदी रस ।

(छ)

छर्दी

रस—छर्द्यन्तक रस, महावातविध्वंस रस, वान्तिहृद् रस ।

भस्म—पन्ना भस्म, पुष्पराज भस्म ।

चूर्ण—ऐलादि चूर्ण । क्वाथ—गुडूच्यादि क्वाथ ।

(ज)

जलोदर

रस-उदरारि रस, चिंतामणि रस (भा. भै. र. १९३४), जलोदरारि रस।

सार-कुटकी सार।

जतुमणिका

तैल-कुंकुमादि तैल।

जडता

घृत-सारस्वत घृत।

जलदोष

रस-ज्ञानोदय रस।

जिह्वास्तम्भ

रस-लक्ष्मीविलास रस।

कुप्पीपक्व-पूर्ण चंद्रोदय रस।

अवलेह-कल्याणावलेह।

जीर्णज्वर

रस-चिंतामणि रस (भा. भै. र १९३२), जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३), जीर्णज्वरांकुश रस, जीर्णज्वरारि रस, ज्वरसंहार रस, ज्वरारि रस, बृहत् सुवर्णमालिनी रस, महाराज मृगांक रस, मुक्तापंचामृता रस, सर्वतोभद्र रस, सिद्ध लक्ष्मीविलास रस, सुवर्ण वसंतमालती रस।

भस्म-पन्ना भस्म, मुक्तापंचामृत, रौप्य माक्षिक भस्म, लौहाभ्रक भस्म।

चूर्ण-अमृत चूर्ण।

ज्वर

रस-अमृत कलानिधि, कनक सुन्दर रस, कफ कुठार रस, गज मुरारि रस (भा. भै. र. १५०७) चक्रिका रस, चण्डेश्वर रस, ज्वरमुरारि रस, ज्वरमातंग केशरी रस, ज्वरारि रस, ज्वराशनि रस, त्रिपुर भैरव रस, त्रिभुवन कीर्ति रस, नीलकण्ठ रस, दुर्जलजेता रस, नारायण रस, ज्वरांकुश रस, पंचवक्र रस, बृहत् सर्वज्वरहर लौह, बृहत् चिंतामणि रस, मंथान भैरव रस, मृत्युंजय रस, मृतोत्थापन रस, रत्नगिरि रस (भा. भै. र. ६४४२), लघुवसंत मालिनी रस, लक्ष्मीविलास रस, विद्याधर रस (भा. भै. र. ७०४३), विश्वेश्वर रस (भा. भै. र. ७०६८), वैताल रस, सर्वतोभद्र रस, संजीवनाभ्र रस, सुवर्णवसंतमालती रस, स्वल्पकस्तूरीभैरव रस, ज्ञानोदय रस, अष्टमूर्ति रस।

कुप्पीपक्व-शिलासिन्दुर।

भस्म-गोदन्ती हरताल भस्म, स्फटिक मणि भस्म, स्वर्णभस्म।

वटी-ज्वरघ्न गुटिका, महाराज वटी, मण्डूर वटी, सप्तपर्ण वटी, सर्वज्वरांकुश वटी, सुदर्शन घन वटी।

चूर्ण-आमलक्यादि चूर्ण, ज्वरनागमयूर चूर्ण, तालिसादि चूर्ण, सुदर्शन चूर्ण।

क्वाथ-अभयादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ।

अरिष्ट-अभयारिष्ट, अमृतारिष्ट।

सार-किरातसार, कुटकी सार, गुडूचि सार, ज्वरहर अर्क, तुलसी सार।

घन—गुडूचि घन, सप्तपर्ण त्वक घन ।

तैल—चदनवलालाक्षादि तैल ।

ज्वरातिसार

रस—कनक सुन्दर रस, कर्पूर रस, कारुण्य सागर रस, दरदादि पुटपाक (वटी), पंचामृतपर्पटी रस (भा. भै. र. ४२८३), मृतप्राणदायी रस, मृत संजीवनी वटी । सिद्ध प्राणेश्वर रस, हिंगुलेश्वर रस ।

तमक श्वास

रस—श्वासकासचिंतामणि रस ।

ताण्डव रोग

रस—ताण्डवारि लौह । भस्म—कान्तलौह भस्म ।

तिमिर

रस—पार्वती रस, सप्तामृत लौह ।

वटी—त्र्यूष्णादि गुटिका । घृत—त्रिफला घृत ।

अंजन—कट्फलादि अंजन, गुटिकांजन, चंद्रकलावर्ति, चंद्रोदय वर्ति, दृष्टिप्रदांजन, नागार्जुनी वर्ति, नयनामृतांजन, नयन षडांजन, नेत्र प्रकाशांजन, पुष्प क्षारादि रस क्रिया ।

तृष्णा

रस—चंद्रसुधा रस, तृष्णाभ्रंश रस, पार्वती रस ।

भस्म—चांदी भस्म ।

वटी—आमलक्यादि गुटिका, ऐलादि गुटिका, प्लीहारि वटिका ।

अवलेह—खमीरे सन्दल, जीरकावलेह ।

सार—पर्पट सार ।

त्रैहिक ज्वर

रस—ज्वरकुंजरपारिंद्र रस, तरुण ज्वरारि रस, शीतांकुश रस, अष्टमूर्ति रस ।

त्वग्दोषः

भस्म—तुत्थ भस्म, नीलम भस्म ।

सार—खदिर सार ।

(द)

दद्रु-दद्रुकः

मल्हम—काशीशादि घृत (मल्हम) ।

लेप—कुष्टघ्न लेप । तैल—दद्रुनाशक तैल ।

दन्तभेद

भस्म—मुक्तापिष्ट । तैल—अरिमेदादि तैल ।

दन्तविद्रधि

तैल—अरिमेदादि तैल ।

दन्तवेष्टज रोग

भस्म—सौराष्ट्री भस्म । वटी—खदिरादि गुटिका ।

तैल-अरिमेदादि तैल ।

दन्तशूल

तैल—अरिमेदादि तैल ।

दन्त-शैथिल्य

भस्म—सौराष्ट्रीभस्म । तैल—अरिमेदादि तैल ।

दन्तशोफ-दन्तार्बुद रोग

तैल—अरिमेदादि तैल ।

दालनः

भस्म—सौराष्ट्री भस्म ।

वटी—खदिरादि गुटिका ।

तैल—अरिमेदादि तैल ।

दारुण

तैल—गुंजा तैल ।

दाह ज्वर

रस—प्राणेश्वर रस (भा. भै. र. ४४८२) ।

द्वयाहिक ज्वर

रस—तरुणज्वरारि रस, शीतांकुश रस। अष्टमूर्ति रस।

(ध)

धनुर्वात

रश—एकांगवीर रस, नाग रसायन।

ध्वजभंग

रस—कामाग्निसंदीपन रस, नष्ट पुष्पांतक रस, पंचबाण रस।

तैल—चंदनादि तैल, नपुंसकता नाशक तैल, बृहती तैल, रतिवल्लभ तैल।

(न)

नक्तांध

घृत—त्रिफला घृत।

नष्टार्तव

रस—नष्ट पुष्पांतक रस।

नाडीव्रण-नालीव्रण

रस—लक्ष्मीविलास रस।

भस्म—तुत्थद्राव।

वटी—अमृतनाम गुटिका, सूर्यचंद्रप्रभा गुटिका।

मल्हम—काशीशादि घृत (मल्हम), जात्यादि घृत (मल्हम)।

नवज्वर या नवीन ज्वर

रस—ज्वर धूमकेतु रस, ज्वर संहार रस, ज्वर शूलहर रस, त्रैलोक्याडम्बर रस, ज्वरारि रस, नवज्वरेभसिंह रस, विश्वतापहर रस।

वटी—ज्वरारि वटी।

नासापरिस्राव-नासास्राव

तैल—व्याघ्री तैल, षड्बिन्दु तैल, हिंग्वादि तैल।

नासा प्रतिनाह

तैल—व्याघ्री तैल, षड्बिन्दु तैल, हिंग्वादि तैल।

नासापरिशोषः

तैल—व्याघ्री तैल, षडबिन्दु तैल, हिंग्वादि तैल।

नाशापाक

तैल—व्याघ्री तैल, षड्बिन्दु तैल, हिंग्वादि तैल।

नाभि शूल

रस—श्वासांकुश रस। गुग्गुल—योगराज गुग्गुल।

नाडी दौर्बल्य

शर्बत—ब्राह्मी शर्बत।

नीलिका

तैल—कनक तैल, कुंकुमादि तैल, बृहन्मरिच्यादि तैल।

नेत्रपाक

रस—सप्तामृत लौह।

भस्म—तुत्थद्राव, मुक्ता पिष्ट।

अंजन—नागार्जुन वात।

नेत्राभिष्यन्द

रस—सप्तामृत लौह।

नेत्र रोग

रस—सप्तामृत लौह।

भस्म—अभ्रक भस्म, काशीश भस्म, कांस्य भस्म, खर्पर भस्म, यशद् भस्म, ताम्र भस्म, तुत्थ भस्म, मुक्ता भस्म, मुक्ता पिष्ट, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सौराष्ट्रीभस्म।

चूर्ण—त्रिफला चूर्ण। घृत—त्रिफला घृत।

पाक—त्रिफला पाक।

तैल—आंवले का तैल, भृंगराज तैल।

अंजन—कतकफलादि अंजन, गुटिकांजन, चंद्र-

कला वर्ति, चंद्रोदय वर्ति, नागार्जुन वर्ति, नयनामृतांजन, नयनषडांजन, नेत्र प्रकाशांजन, पुष्पाक्षारादि रस क्रिया, मुक्तादि महांजन, मोती का सुरमा (सफेद), मोतीका सुरमा (काला), रस-केश्वर गुटिका, श्वेत नेत्रांजन ।

(प)

पद्मिनी कंटक

तैल—कुंकुमादि तैल ।

पटल रोग

घृत—त्रिफला घृत ।

अंजन—कतकफलादि अंजन, दृष्टिप्रदांजन, नयनषडांजन, नयनप्रकाशांजन, पुष्प क्षारादि रसक्रिया ।

पक्षाघात

रस—खंजनिकारी रस, नवग्रहराजशिरोभूषण रस, वात गजांकुश रस, वात राक्षस रस ।

वटी—रसादि गुटिका ।

गुग्गुल—पक्षाघातारि गुग्गुल ।

तैल-नारायण तैल (सादा, भा. भै. र. ३५०२), बृहत् विष्णु तैल ।

पाण्डु

रस—अग्निमुख लौह, अष्टादशांग लौह, आनंदोदय रस, आरोग्य सागर रस, उदय भास्कर रस, कालमेघ नवायस रस, किरातादि मण्डूर, गगन पर्पटी, चतुर्मुख रस, चंद्र सूर्यात्मक रस, तक्र मण्डूर, ताम्र पर्पटी, ताप्यादि लौह, त्रिकट्वादि लौह, दुग्धादि वटी (भा. भै. र. ३२१२), नवायस लौह, पंचानन रस, पाण्डु पंचानन रस, पित्त पाण्डवारि रस, मण्डूरवज्रवटक, मदेभसिंह रस, योगराज रस, राजशेखर वटी, लौह रसायन, शोथोदरारि लौह, हंस मण्डूर ।

भस्म-कांतपाषाण भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, मण्डूर भस्म, मधुमण्डूर भस्म, राजावर्त्म भस्म, लौह भस्म, लोहाभ्रक भस्म, लोहाभ्रक रसायन, हीरा भस्म ।

वटी—अष्टादशांग गुटिका, जया वटी, निम्बादि गुटिका, पुनर्नवादि मण्डूर, मण्डूर वटी (स्पेशियल) ।

अवलेह—धात्र्यावलेह ।

आसव—कुमार्यासव नं. १, कुष्माण्डासव, रोहितकासव, लोध्रासव, लोहासव ।

अरिष्ट—धात्र्यारिष्ट, पिप्पल्यारिष्ट ।

सार—कालमेघ सार ।

पामा

रस—वज्र वटी ।

चूर्ण—पामारि चूर्ण, मदयन्त्यादि चूर्ण ।

मल्हम—गुलाबी मल्हम ।

तैल—अर्क-पत्र-रस तैल, बृहन्मरिच्यादि तैल।

पार्श्व शूल

रस—गुल्मकुठार रस, विषाण भस्म योग ।

भस्म—शृंग भस्म ।

वटी—पानीयभक्त वटी, सूर्यचंद्रप्रभा गुटिका।

क्वाथ—भार्ग्यादि क्वाथ। तैल—महामाष तैल ।

पित्तजज्वर (रोग)

रस—चंद्रकला रस, ज्वरार्यभ्र रस, पित्तान्तक रस (भा. भै. र. ४४०७), पित्तान्तक

रस (भा. भै. र. ४४०७), लघुवसंत मालिनी रस, सूतशेखर रस, (भा. भै. र. ७६३८)।

भस्म-अकीक भस्म, कहरुवा भस्म, खर्पर भस्म, गोदन्ती हरताल भस्म, चांदी भस्म।

अवलेह-कुष्माण्डावलेह। पाक-द्राक्षा पाक।

आसव-उशीरासव।

सार-धमासा सार, पर्पट सार, मुस्तक सार।

तैल-ब्राह्मी तैल।

पित्तप्रकोप

रस-चंद्रकला रस।

पिनस-पीनस-पौति नासिक्यम्

रस-लक्ष्मीविलास रस, हिरण्यगर्भ पोटली रस।

वटी-महाभ्र वटी, व्योषादि गुटिका।

अवलेह-भृगु हरीतकी अवलेह, व्याघ्री हरीतकी अवलेह।

अरिष्ट-दशमूलारिष्ट।

पिल्ल

घृत-त्रिफला घृत।

अंजन-गुटिकांजन, चंद्रकला वर्ति, नागार्जुनी वर्ति।

पूतनस्यम्

रस-महलक्ष्मीविलास रस, मणिपर्पटी रस, श्लेष्म शैलेन्द्र रस। घन-दशमूल घन।

पूयमेह

कुप्पीपक्व-सुवर्णराज वंगेश्वर।

वटी-चंदनादि वटी, चंद्रप्रभा गुटिका।

प्रतमकः-(श्वासरोग भेद)

रस-महालक्ष्मी विलास रस, महाश्वासारि लौह।

भस्म-यशद भस्म।

प्रतितूणी-प्रतूणी

चूर्ण-अजमोदादि चूर्ण।

प्रतिश्याय

रस-प्रतिश्यायहर रस, महालक्ष्मी विलास रस, मणिपर्पटी रस, श्लेष्म शैलेन्द्र रस।

क्वाथ-गुडूच्यादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ।

शर्बत-शर्बत बनफसा।

सार-कण्टकारी सार, तुलसी सार।

घन-दशमूल घन।

प्रतीनाहः-(कर्णरोग)

रस-महालक्ष्मीविलास रस।

प्रत्यष्ठीला

अरिष्ट-विडंगारिष्ट।

प्रदर

रस-खर्पर रसायन, प्रदरारि रस, प्रदरान्तक रस, प्रदरारि लौह, महा पर्पटी रस।

भस्म-खर्पर सत्व भस्म, यशद् भस्म, त्रिवंग भस्म, तुत्थ द्रव, नाग भस्म, रौप्य माक्षिक भस्म, वंग भस्म।

वटी-गुडूच्यादि मोदक, चंद्रप्रभा गुटिका नं. १, संजीवनी वटी न. १।

चूर्ण-चंदनादि चूर्ण।

क्वाथ-दार्व्यादि क्वाथ।

घृत-अशोक घृत, शीत कल्याणी घृत।

आसव-लोध्रासव। अरिष्ट-अशोकारिष्ट।

सार-अशोक सार।

घन-अशोक घन, गुडूचि सत्व।

प्रमेह

रस-कामदुधा रस (भा. भै. र. ९४८६), चंद्रोदय रस, नागवल्लभ रस, नागेन्द्र

गुटिका, पच लौह रसायन, प्रमदानंद रस, प्रमेह गजकेशरी रस, प्रमेह चिन्तामणि रस, प्रमेहबद्ध रस, वंगाष्टकम्, वंगेश्वर रस, बृहत् वंगेश्वर रस, महोषधि राजवंग, मेहमुद्गर रस, योगराज रस, वसंत कुसुमाकर रस, सुवर्ण राज वंगेश्वर रस, सोमेश्वर रस, हरिशंकर रस, हरगौरीसृष्टि रस, हिमांशु रस, हेमनाथ रस ।

कुप्पीपक्व-सुवर्णराज वगेश्वर ।

भस्म-कांश्य भस्म, चतुर्वंग भस्म, त्रिवंग भस्म, नागभस्म, राजावर्त्म भस्म, वग भस्म, वंग रसायन, स्वर्णमाक्षिक भस्म, हीरा भस्म ।

वटी-इन्दु वटी, इन्द्र वटी, गुडूच्यादि मोदक, चंद्रप्रभा गुटिका नं. १, चंद्रप्रभा गुटिका न २, सजीवनी वटी नं. १ ।

क्वाथ-प्रमेह हर क्वाथ ।

अवलेह-राजावर्तावलेह ।

पाक-कौंच पाक, त्रिफला पाक, द्राक्षा पाक।

आसव-चंदनासव, देवदार्वासव ।

अरिष्ट-सारिवाद्यारिष्ट । सार-अश्वगंधा सार।

तैल-प्रमेह मिहिर तैल ।

प्रलाप

रस-ब्राह्मी वटी । वटी-संचेतनी वटी ।

क्वाथ-तगरादि क्वाथ । अवलेह-दिवाल मुश्क।

प्रसूत

चूर्ण-पुष्यानुग चूर्ण। क्वाथ-देवदार्वादि क्वाथ।

पाक-पंचजीरक पाक ।

प्रवाहिका

रस-अश्वनिकुमार रस, लवंगाभ्रक योग ।

भस्म-जहर मोहरा भस्म ।

वटी-कुंकुम वटी, कुटजादि वटी, हिंगुल वटी।

चूर्ण-बिल्वादि चूर्ण । अवलेह-कुटजावलेह ।

सार-बिल्व सार । घन-कुटज घन ।

प्लीहोदर

रस-प्लीहारि रस, प्लीहाशार्दूल रस, प्लीहान्तक रस, बृहत् यकृदरि लौह, महामृत्युंजय रस, महामृत्युंजय लौह, रसराज रस, विद्याधर रस (भा. भै. र. ७०४३), गोथारि मण्डूर ।

वटी-अग्निगर्भा वटी, तामेश्वर गुटिका, प्लीहारि गुटिका ।

चूर्ण-विडंग तण्डुल चूर्ण, सामुद्रादि चूर्ण ।

घृत-दशमूल षट्पल घृत ।

आसव-रोहितकासव ।

सार-कालमेघ सार, शरपुंखा सार ।

क्षार-अभयालवण ।

(फ)

फिरङ्ग रोग

रस-अमीर रस, केसरादि (देवकुसुमादि) रस, फिरंगारि रस ।

कुप्पीपक्व-त्रिपुर भैरव रस, व्याधिहरण रस ।

भस्म-तुत्थ भस्म, तुत्थद्रव, स्वर्ण भस्म ।

वटी-सवीर वटी । मल्हम-हिंगुलादि मल्हम।

सार-अनन्तमूल सार ।

फुफ्फुस शोथ

रस-अचिंत्यशक्ति रस ।

(ब)

बहु मूत्र

रस—तारकेश्वर रस, तृष्णाभ्रंश रस, बहुमूत्रान्तक रस, सोमनाथ रस, हेमनाथ रस।

वटी-चंद्रोदय वटी, अहिफेनादि गुटिका, जया वटी। सार—जम्बू सार।

बाल रोग

रस—कुमार कल्याण रस, दन्तोद्भेद गदान्तक रस, बाल संजीवनी रस, बाल रस, (सि. यो. सं.) बालार्क रस (भा. भै र. ४७४५), बाल ज्वरांकुश रस, बाल रोगान्तक रस, बालवसंत रस, बाल यकृदरि लौह, बाल सूर्योदय रस, रस पीपरी रस।

भस्म—खर्पर भस्म, प्रवाल भस्म।

वटी—अतिविषादि गुटिका, कैल्शियम पिल्स, नागादि वटी, बालार्क गुटिका, बाल रक्षक सोगठी, बाल जीवन वटी, माणिक्य रसादि वटिका, मुक्तादि वटी।

चूर्ण—कृष्णादि चूर्ण, बालपंचभद्र चूर्ण, बालचतुर्भद्र चूर्ण, मालती चूर्ण, मृत्तिका विरेचन चूर्ण, शृङ्ग्यादि चूर्ण।

घृत—कुमार कल्याण घृत।

आसव—अरविंदासव।

(भ)

भगन्दर

रस—कालाग्नि रस, भगन्दरारि रस, लक्ष्मी विलास रस।

भस्म—तुत्थदव।

गुग्गुल—त्रिफला गुग्गुल, सप्तविंशति गुग्गुल।

मल्हम—काशीशादि घृत (मल्हम), भगन्दर नाशक मल्हम।

अरिष्ट—शारिवाद्यारिष्ट।

भस्मक

रस—त्रिफला लौह, लौह पर्पटी।

भूतोन्माद

रस—उन्माद गज केशरी, उन्माद गजांकुश, उन्माद भंजन रस, चण्ड भैरव रस।

भ्रम-भ्रान्ति

रस—कामदुधा रस (भा. भै. र. ९४८७), ब्राह्मी वटी, मूर्च्छान्तिक रस।

भस्म—मुक्ता भस्म, सप्तरत्न भस्म, स्वर्ण भस्म।

चूर्ण—सर्पगन्धा योग।

अवलेह—अभयामलकी रसायन (अवलेह), खमीरे सन्दल, दिवाल मुश्क।

अरिष्ट—सारस्वतारिष्ट। घन—गुडूचि सत्व घन।

तैल—ज्योतिष्मति तैल, ब्राह्मी तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, श्री गोपाल तैल।

(म)

मज्जागत ज्वर

रस—जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३)

मण्डल कुष्ठम्

रस—माणिक्य रस।

मतिविभ्रंश-मतिविभ्रांति

शर्बत—शर्बत ब्राह्मी।

सार—ब्राह्मी सार, वच सार, शंखपुष्पी सार।

घन—ब्राह्मी घन।

तैल—आंवले का तैल, ज्योतिष्मती तैल, ब्राह्मी

तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, श्री गोपाल तैल ।

मदरोग-मदात्य रोग-मदात्ययः

रस-चंद्रसुधा रस, राजावर्त रस ।

भस्म-राजावर्त भस्म, चांदी भस्म, अष्टांग कल्प ।

चूर्ण-सर्पगन्धा योग ।

मधुमेह

रस-प्रमेहगजकेशरी रस, प्रमदानंद रस, वृहत् सोमनाथ रस, वसंत कुसुमाकर रस, सुवर्ण राजवंगेश्वर रस ।

भस्म-खर्परसत्व भस्म ।

वटी-अहिफेनादि गुटिका, आकारकरभादि गुटिका, इन्द्र वटी, मधुमेहान्तक वटी, शिलाजत्वादि वटी। सार-जम्बू सार ।

मनो विभ्रम

शर्वत-शर्वत ब्राह्मी ।

सार-ब्राह्मी सार, वच सार, शंखपुष्पी सार ।

घन-ब्राह्मी घन ।

तैल-आंवले का तेल, ज्योतिष्मति तेल, ब्राह्मी तेल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तेल, श्री गोपाल तेल ।

मन्यास्तम्भ

रस-वातगजांकुश रस, वातराक्षस रस ।

तैल-नारायण तैल मध्यम [भा. भै. र. ३५०२], नारायण तैल (भा. भै. र. ३५०३), वृहत् विष्णु तैल, भृंगराज तैल ।

मसूरिका

भस्म-स्वर्णमाक्षिक भस्म ।

क्वाथ-निम्बादि क्वाथ ।

महाकुष्ट-महकद्रुम्

आसव-खदिरासव ।

मांसगत ज्वर

रस-जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३) ।

मांस तोद

भस्म-कान्तलौह भस्म ।

मुखपाक

वटी-खदिरादि वटी ।

मानस ज्वर

शर्वत-शर्वत ब्राह्मी ।

मुख रोग

रस-पार्वती रस, सप्तामृत रस ।

गुटिका-त्र्यूषणादि गुटिका ।

चूर्ण-दशन संस्कार चूर्ण ।

क्वाथ-सप्तच्छदादि क्वाथ ।

मुखव्यङ्ग (गण्डगत क्षुद्ररोग)

तेल-कनक तैल, कुंकुमादि तैल, वृहन्मरिच्यादि तैल ।

मूर्च्छा

रस-चंद्रोदय रस ।

भस्म-कांतपाषाण भस्म, सप्तरत्न भस्म, स्वर्ण भस्म ।

चूर्ण-सर्पगन्धा योग। अवलेह-खमीरे सन्दल।

अरिष्ट-अश्वगन्धारिष्ट ।

तैल-ब्राह्मी तेल, श्री गोपाल तेल ।

मूत्रकृच्छ्र

रस-पंचलौह रसायन, मूत्रकृच्छ्रान्तक रस, योगेश्वर रस, वरुणाद्य लौह ।

भस्म-अभ्रक-सत्व भस्म, काशीश भस्म, चतुर्वंग भस्म, प्रवाल भस्म, प्रवाल पंचामृत रस, शंखद्राव ।

वटी-अहिफेनादि गुटिका, चंदनादि वटी, शिलाजित्वादि वटी ।
गुग्गुल-गुडूच्यादि गुग्गुल ।
चूर्ण-रसायन चूर्ण। घृत-बृहत् शतावरी घृत।
अवलेह-गोक्षुरादि अवलेह । पाक-द्राक्षापाक।
आसव-देवदार्वासव ।
सार-अपामार्ग सार (प्रवाही), धमासा सार, पाठा सार, वृद्धदारुक सार ।
क्षार-श्वेत पर्पटी ।

मूत्रनिरोध

सार-वृद्धदारुक सार ।

मूत्रदाह

चूर्ण-रसायन चूर्ण ।

मूत्र शर्करा

रस-अश्मरि कण्डन रस, त्रिविक्रम रस ।
भस्म-शुक्ति भस्म । आसव-पलाश पुष्पासव ।

मूत्रघात

रस-तालकेश्वर रस, वरुणाद्य लौह ।
भस्म-प्रवालभस्म । वटी-चंदनादि वटी ।
गुग्गुल-गुडूच्यादि गुग्गुल ।
अवलेह-कुशावलेह, राजावर्तावलेह ।
पाक-द्राक्षा पाक । क्षार-श्वेत पर्पटी ।

मूत्रातिसार

रस-वंगाष्टक रस, बृहत् वंगेश्वर रस ।

मेदगत ज्वर

रस-जयमंगल रस (भा भै. र. २१०३) ।

मेद रोग

रस-आरोग्यवर्द्धिनी गुटिका, तारामण्डूर, त्रिमूर्ति रस, महापर्पटी रस, लक्ष्मीविलास रस, लौह रसायन ।
भस्म-कांतपाषाण भस्म, ताम्र भस्म, त्रिवंग भस्म, हीरा भस्म ।
वटी-शिलाजित्वादि वटी, सूर्यचंद्रप्रभा गुटिका।
गुग्गुल-दशांग गुग्गुल, महायोगराज गुग्गुल ।
क्वाथ-बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ ।
पाक-अश्वगंधा पाक ।

(य)

यकृद्दाल्युदर

रस-उदरारि रस, उदरघ्न रस, शोथारि मण्डूर।
भस्म-मण्डूर भस्म ।

यकृत प्लीहा वृद्धि

रस-उदरामय कुम्भ केशरी रस, उदरघ्न रस, कालमेघ नवायस रस, कार्श्यहर लौह, चण्डभास्कर रस, चन्द्रसूर्यात्मक रस, ताम्रकल्प, पाण्डु पचानन रस, पाण्डुगज केशरी रस, प्राणेश्वर रस (भा. भै. र. ४४८१), प्राणवल्लभ रस, बृहत् लोकनाथ रस, महामृत्युंजय रस, बृहत् यकृदरि लौह, यकृत्प्लीहारि लौह, रोहितक लौह, शोथ कालानल रस, शोथारि रस, शोथारि मण्डूर, शोथारि लौह, सर्वतोभद्र रस ।
भस्म-कांतलौह भस्म, पित्तल भस्म, मण्डूर भस्म, लौह भस्म, लोहाभ्रक भस्म, शुक्ति भस्म ।
वटी-अग्निगर्भा वटी, तामेश्वर गुटिका, मानकादि गुटिका ।
आसव-कालमेघासव, कुमार्यासव, लोहासव,
सार-कालमेघ सार । घन-कालमेघ घन ।
क्षार-वज्र क्षार ।

यकृत् शूल

रस–शतावरि मण्डूर, मदेभसिंह रस ।

यक्ष्मा

रस–कालवञ्चक रस, कुमुदेश्वर रस ।

योनि कण्डू

रस–चण्डांशु रस ।

योनिकंद–योन्यर्श

रस–खर्पर सत्व रसायन ।

भस्म–चतुर्वंग भस्म. तुत्थद्रव. सौराष्ट्री भस्म ।

सार–लोध्र सार ।

योनिक्लेद

रस नष्टपुष्पान्तक रस ।

योनिभ्रंश

रस–खर्पर सत्व रसायन ।

योनिरोग

रस–खर्पर रसायन, रत्नभागोत्तर रस ।

भस्म–चांदी भस्म, रत्नप्रभा गुटिका ।

गुग्गुल––त्रयोदशांग गुग्गुल ।

चूर्ण–पुष्यानुग चूर्ण ।

घृत–फलघृत (बृहत्), शीत कल्याण घृत ।

अवलेह–जीरकावलेह ।

पाक–पंचजीरक पाक । आसव–पत्रांगासव ।

सार–अशोक सार ।

योनिशूल

रस–खर्पर रसायन, खर्पर सत्व रसायन, चंद्रांशु रस, सोमनाथ रस ।

वटी–कन्यालोहादि गुटिका ।

घृत–अशोकघृत, बृहत् शतावरी घृत ।

योनिशोथ

भस्म चतुर्वंग भस्म ।

घृत–अर्जुन घृत, बृहत् शतावरी घृत ।

सार–अशोक सार ।

योनिसंवरण

रस–खर्पर सत्व रसायन ।

योनिविक्षेप

रस–चद्रांशु रस ।

यौवन पीडिका

भस्म–तुत्थद्रव, सौराष्ट्री भस्म ।

तैल–कनक तैल, कुंकुमादि तैल ।

(र)

रजःशूल

रस–खर्पर रसायन, ताप्यादि लौह ।

भस्म–कांतलोह भस्म, खर्पर-सत्व भस्म ।

वटी–कन्या लौहादि गुटिका, बोलादि वटी, रजोदोषहर वटी ।

घृत–शीत कल्याण घृत ।

अरिष्ट–अशोकारिष्ट, सारस्वतारिष्ट ।

सार–अशोक सार ।

रक्तगुल्म

रस–खर्पर रसायन । भस्म–खर्पर सत्व भस्म ।

वटी–कांकायन गुटिका ।

रक्तपित्त

रस–अर्केश्वर रस, गुल्ममदेभ सिंह रस, छर्द्यन्तक रस, बोल पर्पटी, रक्तपित्त कुल कण्डन रस, रसामृत रस, रक्तपित्तान्तक लौह, रक्तपित्तान्तक रस ।

भस्म–कहरुवा भस्म, कांतपाषाण भस्म, स्फटिक मणि भस्म, स्वर्णमाक्षिक सत्व भस्म ।

वटी–एलादि गुटिका, गुडूच्यादि मोदक ।

चूर्ण-चंदनादि चूर्ण ।
घृत-बृहत् शतावरी घृत, शीतकल्याण घृत ।
अवलेह-अमृतप्राश्यावलेह, कुष्माण्डावलेह, वासावलेह ।
पाक-नारिकेल खण्ड पाक ।
आसव-उशीरासव, कुष्माण्डासव ।
अरिष्ट-अशोकारिष्ट । शर्बत वसाका ।
सार-पर्पट सार, मंजिष्ठा सार, वासा सार ।
तैल-चंदनादि तैल, चंदन बला लाक्षादि तैल ।

रक्तप्रदर

रस-बोलबद्ध रस, बोल पर्पटी ।
भस्म-अकीक भस्म, खर्पर भस्म ।
चूर्ण-पुष्यानुग चूर्ण । क्वाथ-दार्व्यादि क्वाथ ।
तैल-चंदनबला लाक्षादि तैल ।

रक्तचाप वृद्धि

रस-कृष्ण चतुर्मुख रस, चिंतामणि चतुर्मुख रस ।
सार-सर्पगन्धा प्रवाही ।

रक्तमेह

रस-बोलबद्ध रस ।

रक्तविकार

रस-गंधक रसायन । घृत-पंचतिक्त घृत ।
अवलेह-माजून उशवा । पाक-धात्रि पाक ।
अरिष्ट-रक्तशोधकारिष्ट ।
शर्बत-शर्बत बनफसा ।
सार-अनन्तमूल सार, मंजिष्ठा सार ।

रक्तस्थज्वर

रस-खर्पर रसायन ।

रक्तहीनता

भस्म-मण्डूर भस्म, लौहाभ्रक रसायम ।

रक्तातिसार

रस-इन्दुशेखर रस, कर्पूर रस, त्रैलोक्य चिंतामणि रस ।
वटी-आकारकरभादि गुटिका, कुटजादि वटी।
चूर्ण-नागकेशरादि चूर्ण ।
अवलेह-कुटजावलेह । सार-कुटज सार ।
घन-कुटज घन ।

रक्तार्श

रस-अश्वचोली रस, बोल बद्ध रस ।
वटी-अर्शोघ्नि वटी । चूर्ण-चंदनादि चूर्ण ।

रसायन

रस-अभ्रक कल्प, गंधक रसायन, चिंतामणि चतुर्मुख रस, त्रैलोक्य चिंतामणि रस (भा. भै. र. २७६४), धातुबद्ध रस, पुष्पधन्वा रस, बृहत् चंद्रोदय रस, मकरध्वज रस, महाराजमृगांक रस, महाबल विधानाभ्रक रस, योगेन्द्र रस, रत्नगर्भ पोटली रस, रत्नगिरि रस (र. रा. सु.), लक्ष्मी विलास रस, लक्ष्मणा लौह, लौह रसायन, लोहाभ्र रसायन, वसंत कुसुमाकर रस, वसंत तिलक रस, विलासिनि वल्लभ रस, वैक्रांत रसायन, शुक्र वल्लभ रस, शृंगाराभ्रक रस, सिद्ध मकरध्वज रस, सिद्ध लक्ष्मीविलास रस, सुवर्ण राजवंगेश्वर रस, सुवर्ण माक्षिक सत्वाभ्र रसायन, सूतराज रज, सूर्यसिद्धि रस, क्षेत्रीकरण रस, अष्टावक्र रस, चंद्रोदय रस ।
कुप्पीपक्व-पूर्ण चंद्रोदय रस, पूर्ण चंद्रोदय रस (सुवर्ण सहित पिसा हुआ), पंचसूत

रस, मकरध्वज वटी, मकरध्वज रस, रस सिंदुर, रौप्य सिंदुर, सुवर्ण सिंदुर ।

भस्म—अभ्रक भस्म, मरकत (पन्ना) भस्म, मुक्ता भस्म, माणिक्य भस्म, चांदी भस्म, रौप्य माक्षिक भस्म, लौहाभ्रक भस्म, वैक्रांत भस्म, सप्तरत्न भस्म, स्वर्ण भस्म, स्वर्ण माक्षिकसत्व भस्म, स्वर्णमाक्षिकसत्वाभ्र रसायन, हीरा भस्म ।

वटी—चंद्रप्रभा गुटिका नं. १, शिलाजत्वादि वटी ।

गुग्गुल—षड्शीति गुग्गुल ।

चूर्ण—अश्वगंधा चूर्ण, कमलाक्ष्यादि चूर्ण ।

घृत—कामदेव घृत ।

अवलेह—अगस्त्य हरीतकी अवलेह, अभयामलकी रसायन (अवलेह), अमीरी जीवन, एलादि मंथ(अवलेह), च्यवनप्राशावलेह, ब्राह्य रसायन ।

पाक—आम्र पाक । अरिष्ट—सारस्वतारिष्ट ।

सार—अश्वगंधा सार ।

राजयक्ष्मा

रस—कांचनाभ्र रस, कालवंचक रस, कुसुदेश्वर रस, गगन पर्पटी रस, चतुर्मुख रस, चंद्रामृत रस, ताम्र पर्पटी, त्रैलोक्य चिंतामणि (भा.भै.र. २७६५), नारसिंह रस, वृहत् कांचनाभ्र रस, मृगांक रस, यक्ष्मान्तक लौह, यक्ष्मारि लौह, रत्नगर्भ पोटली रस, राजमृगांक रस, लोकनाथ रस, वसंतकुसुमाकर रस, शिलाजतु योग, सर्वांगसुन्दर रस, सुवर्ण भूपति रस, सूतराज रस, हेमाभ्रकरससिन्दुर, क्षय केशरी रस, क्षय कुलान्तक रस, क्षेत्रीकरण रस ।

भस्म—अभ्रक भस्म, अभ्रकसत्व भस्म, अभ्रक कल्प, वैक्रांत भस्म, सप्तरत्न भस्म, शृंगभस्म, हीरा भस्म ।

वटी—महाभ्र वटी ।

अवलेह—एलादि मंथ (अवलेह), च्यवनप्राशावलेह, शतावर्यादि अवलेह ।

आसव—अंगूरासव ।

रात्रिस्वेद

रस—नारसिंह रस, वृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत, क्षय कुठार रस ।

भस्म—यशद् भस्म ।

वंध्यत्व

रस—जयसुंदर रस, रत्नभागोत्तर रस ।

भस्म—अभ्रक भस्म, अभ्रक सत्व भस्म, वंग भस्म ।

वटी—शिलाजत्वादि वटी ।

घृत—फल घृत (वृहत्), शीतकल्याण घृत ।

तैल—चंदनादि तेल ।

वृक्क शोथ

रस—अमृताङ्कुर लौह, अभ्रक हरीतकी रस, त्र्यूषणादि लौह, नाग रसायन ।

भस्म—लौह भस्म ।

वस्तिकुण्डलिका

अवलेह—वृहत् गोक्षुरादि अवलेह ।

वलिपलित

रस—कृष्ण चतुर्मुख रस, चतुर्मुख रस, लौह

रसायन, क्षेत्रीकरण रस, अष्टावक्र रस।
भस्म—अभ्रकसत्व भस्म।
तैल—बृहन्मरिच्यादि तैल।

वल्मीक

मल्हम—पारदादि मल्हम।

व्रण

भस्म—सौराष्ट्री भस्म।

वह्निवेगज्वर

रस—जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३)।

वक्ष शूल

रस—गजकेशरी रस, गुल्म कुठार रस, क्षय कुठार रस।
कुप्पीपक्व—त्रिपुर भैरव रस।
भस्म—श्रृंगभस्म।

वाजीकरण

रस—नारीमत्त गजांकुश रस, पंचसायक रस, प्रमदेभाकुंश रस, पुष्पधन्वा रस, पूर्ण चंद्र रस, वृहत् चंद्रोदय मकरध्वज रस, वृहत् पूर्णचंद्र रस, मदनानंद मोदक, मन्मथाभ्र रस, लक्ष्मणा लौह, लौह रसायन, वसंत कुसुमाकर रस, वसंत तिलक रस, शुक्रवल्लभ रस, श्रृंगाराभ्र रस, कामिनी विद्रावण रस, पूर्ण चंद्रोदय रस, पूर्ण चन्द्रोदय रस (सुवर्ण सहित पिसा हुआ), मकरध्वज रस, मकरध्वज वटी।
कुप्पीपक्व—रससिंदुर, रौप्यसिंदुर, सुवर्णसिंदुर।
भस्म—अभ्रक भस्म, माणिक्य भस्म, हीरा भस्म।
वटी—भोग पुरदरी वटिका, मदनमंजरी गुटिका, शिलाजत्वादि वटी।
गुग्गुल—षड्शीति गुग्गुल।
चूर्ण—गोक्षुरादि चूर्ण, शतावर्यादि चूर्ण।
घृत—कामदेव घृत।
पाक—अहिफेन पाक, आम्र पाक, केशर पाक, गोक्षुरादि पाक, पिष्टि पाक, बदाम पाक। सार—शतावरि सार।
तैल—चंदनादि तैल, श्री गोपाल तैल।

वातगुल्म

रस—अन्त्रशोषान्तक रस (र. त.)।

वातरक्त-वातशोणित

रस—गलित कुष्टारि रस, बोलबद्ध रस, माणिक्य रस, वातरक्तांतक रस।
गुग्गुल—अमृतादि गुग्गुल, कैशोर गुग्गुल, पथ्यादि गुग्गुल, महायोगराज गुग्गुल, स्वायम्भुव गुग्गुल।
क्वाथ—बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ।
घृत—वृहत् शतावरि घृत।
मल्हम—काशीशादि घृत (मल्हम)।
अरिष्ट—सारिवाद्यारिष्ट।
तैल—गुडूचि तैल, पिण्ड तैल।

वातव्याधि

रस—अर्धांग वातारिरस, कम्पवातहर रस, कालारि रस, कुब्जविनोद रस, चिंतामणि चतुर्मुख रस, त्रैलोक्य चिंतामणि रस (भा. भै र. २७६४), नवग्रहराज शिरोभूषण रस, नाग रसायन, वृहत् वातगजांकुश रस, वृहत् वात चिंतामणि रस, महावात विध्वसन रस, महावात राज वटी, मार्तण्डेश्वर रस, योगेन्द्र रस,

रसादि गुटिका, लक्ष्मीनारायण रस, वात गजांकुश रस, वात विध्वंसन रस, वातारि रस, व्याधिगजकेशरी रस, शीतारि रस, शीतांकुश रस, समीर गजकेशरी रस।

कुप्पीपक्व-दरदसिंदुर रस, पंचसूत रस, समीर पन्नग रस, हरगौरी रस।

भस्म-नाग भस्म।

वटी-अमरसुन्दरी वटी, अमृतनाम गुटिका, इन्दु वटी, दशसार वटी, मल्लसिंदुर वटी, रसादि गुटिका, रसौन पिण्ड, शिलाजत्वादि वटी, संधिवातारि गुटिका।

गुग्गुल-त्रयोदशांग गुग्गुल, पंचामृत लौह गुग्गुल, पथ्यादि गुग्गुल, महायोगराज गुग्गुल, षड्शीति गुग्गुल।

क्वाथ-महारास्नादि क्वाथ।

घृत-सारस्वत घृत।

पाक-कौंच पाक, चोपचीनी पाक, रसोन पाक।

अरिष्ट-दशमूलारिष्ट, बलारिष्ट।

तैल-नारायण तैल, (भा. भै. र. ३५०३), बृहत् विष्णु तैल, महामाष तैल, रसौन तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, वातारि तैल, विषगर्भ तैल, हिमसागर तैल।

वाधिर्य्य

तैल-दशमूल तैल (सादा) [भा. भै र. ३५०२], बाल बिल्वादि तैल, क्षार तैल।

विचर्चिका

भस्म-खर्पर भस्म, यशद भस्म।

मल्हम-यशद मल्हम, काशीशादि घृत (मल्हम)।

तैल-अर्कपत्र-रस तैल, कण्डूनाशक तैल, बृहन्मरिच्यादि तैल, विष तैल।

विद्रधि

रस-प्लीहाशार्दूल रस, सर्वेश्वर पर्पटी।

वटी-सूर्यचन्द्रप्रभा गुटिका।

तैल-प्रसारणी तैल।

विबन्ध

रस-विद्याधर रस (भा. भै. र. ७०४३)।

विश्वाची

रस-एकांगवीर रस। चूर्ण-अजमोदादि चूर्ण।

विषज्वर रोग

कुप्पीपक्व-दरदसिंदुर रस।

भस्म-खर्पर भस्म, पन्ना भस्म, पुष्पराज भस्म, शंख भस्म, सप्तरत्न भस्म, स्वर्ण भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म।

अवलेह-हरीतकी अवलेह।

अरिष्ट-शिरीषारिष्ट।

सार-अपामार्ग सार (प्रवाही)।

विषमज्वर

रस-अपूर्वमालिनी वसंत रस, कस्तूरी भूषण रस, कालमेघ नवायस रस, चंदनादि लौह, चिंतामणि रस (भा भै. र. १९३२), जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३), ज्वर शूलहर रस, महाराज मृगांक रस, रत्नगिरि रस (भा. भै. र. ६४४२), रोहितक लौह, वातेभकेशरी रस, विषमज्वरारि रस, विषम ज्वरान्तक लौह, विषम ज्वरांतक लौह (पुटपक्व), वैष्णव रस, सुवर्ण-मालिनी वसंत रस।

भस्म-खर्पर सत्व भस्म, नीलम भस्म।

वटी—मलेरिया वटी ।

क्वाथ—पटोलादि क्वाथ । सार-तुलसी सार ।

घन—सप्तपर्ण त्वक् घन । तैल—लाक्षादि तैल ।

विषदोष

रस—क्रव्यादि रस, विषवज्रपात रस ।

विष्टब्धाजीर्णम्

रस—अश्वचोली रस, इच्छाभेदी रस, कफ कुंजर रस, चिन्तामणि रस (भा भै. र. १९३४), नाराच रस, भुवनेश्वर रस, महावह्नि रस, मेघनाद रस, सामुद्रिक लौह ।

वटी—अभयादि मोदक, प्रभावती गुटिका ।

चूर्ण—दीनदयाल चूर्ण ।

विसर्प

भस्म—कांतलौह भस्म, सौराष्ट्री भस्म ।

लेप—चंदनादि लेप, दशांग लेप ।

मल्हम—काशीशादि घृत (मल्हम) ।

तैल—बृहत् सोमराजी तैल ।

विसूचिका

रस—अग्निकुमार रस, अग्निमुख रस, कल्पतरु रस, ग्रहणी गजकेशरी रस, ग्रहणीमद-वारणसिंह रस, महावात विध्वंस रस, शूल निर्मूलन रस ।

वटी—आमराक्षसी गुटिका, संजीवनी वटी, सुधा वटी, हिंगुल वटी ।

भस्म—शंखद्राव ।

आसव—अहिफेनासव, कर्पूरासव, मृगमदासव ।

सार—जीवन रसायन अर्क ।

वृक्कशोथ

रस—शोथारि रस (भा. भै. र. ७६७४), शोथांकुश रस, शोथारि मण्डूर, शोथारि लौह ।

भस्म—स्वर्ण भस्म ।

क्वाथ—मूत्र विरेचनीय दशक महाक्वाथ ।

सार—अनन्तमूल सार ।

वृक्क शूल

रस—त्र्यूष्णादि लौह । भस्म—कांतलौह भस्म ।

चूर्ण—हजरुल यहूद चूर्ण ।

व्रण

भस्म—त्रिवंग भस्म, तुत्थद्रव, नाग भस्म ।

गुग्गुल—सप्तविंशति गुग्गुल ।

लेप—दशांग लेप, निम्बादि लेप ।

मल्हम—यशद मल्हम, जात्यादि घृत (मल्हम) पारदादि मल्हम, व्रणामृत मल्हम, हिंगुलादि मल्हम ।

सार—कांचनार सार, नीम सार ।

तैल—कण्डूनाशक तैल, गुडूचि तैल, जात्यादि तैल, बृहन्मरिच्यादि तैल, बृहत्सोमराजी तैल, विष तैल ।

व्यूची

लेप—कुष्ठघ्न लेप ।

व्रण शोथ

अरिष्ट—रक्तशोधकारिष्ट, विडंगारिष्ट ।

(श)

शतारुष्क

रस—चंद्रशेखर रस ।

शिरःकम्प

रस—चतुर्भुज रस ।

शिरःशूल

रस—चंद्रकान्त रस, लक्ष्मीविलास रस, शिरो-

रोगारि रस, शिरःशूलान्तक रस, सूर्योदय रस ।
भस्म-मुक्तापिष्ट, मुक्ता भस्म ।
वटी-त्र्यूष्णादि गुटिका, शिरःशूलादि वटी ।
गुग्गुल-निम्बादि गुग्गुल ।
लेप-कुष्ठादि लेप ।
घृत-बृहत् शतावरि घृत ।
पाक-त्रिफला पाक ।
सार-जीवन रसायन अर्क ।
तैल-आंवले का तैल, नारायण तैल, भृंगराज तैल, महामाष तैल ।

शीतपित्त

अवलेह-हरिद्रा खंड ।

शीतपूर्वकज्वर

रस-चातुर्थिकारी रस, चैतन्य भैरव रस, तरुण ज्वरारि रस, प्राणेश्वर रस, शीतभंजी रस, शीतांकुश रस ।
वटी-मल्लादि वटी ।

शीताद (दंतरोग विशेष)

तैल-अरिमेदादि तैल ।

शुक्लिका

अंजन-दृष्टिप्रदांजन, नेत्र प्रकाशांजन ।

शुक्रगतज्वर

रस-जयमगल रस (भा. भै. र. २१०३), बृहत् कस्तूरी भैरव रस ।

शुक्ररोग (षण्डत्व रोग)

वटी-त्र्यूष्णादि वटिका ।

शुक्रमेह-शुक्रक्षय

रस-कामधेनु रस, प्रमेहगज केशरी रस, कामिनी विद्रावण रस, शुक्रवल्लभ रस ।
कुप्पीपक्व-मल्लसिंदुर रस ।
भस्म-पन्ना भस्म, मुक्ता भस्म, वंग भस्म ।
वटी-अनंग मेखला मोदक, वीर्यशोधक वटी, शुक्रमातृका वटी, शुक्र संजीवनी गुटिका ।
चूर्ण-गोक्षुरादि चूर्ण, रसायन चूर्ण, विदारी चूर्ण ।
घृत-बृहत् शतावरि घृत ।
अवलेह-अश्वगंधावलेह ।
आसव-चंदनासव ।
सार-शतावरि सार ।

शुक्राश्मरी

अवलेह-राजावर्तावलेह ।

शुक्र

अंजन-कतकफलादि अंजन, चंद्रकलावर्ति, दृष्टिप्रदांजन, नयनामृतांजन, नेत्रप्रकाशांजन, पुष्पक्षारादि रसक्रिया ।

शुष्कार्शः-नेत्ररोग विशेष

अंजन-कतकफलादि अंजन ।

शोणितार्बुदम्-शूकरोग

मल्हम-काशीशादि घृत (मल्हम) ।

शोथ

रस-अग्निमुख लौह, आरोग्य सागर रस, चण्ड भास्कर रस, तक्र मण्डूर, त्र्यूष्णादि लौह, त्रिमूर्ति रस, त्रिनेत्राख्य रस. दुग्ध वटी (भा. भै. र ३२१३), नवायस लौह, पाण्डुगज केशरी रस, मण्डूर पर्पटी रस, यकृत्प्लीहारि रस (भा. भै. र. ७६७५), शोथारि रस (भा. भै. र. ७६७४), शोथोदरारि लौह, शोथांकुश रस, शोथारि मण्डूर, क्षीर वटी, क्षेत्रपाल रस ।

भस्म—खर्पर सत्व भस्म, प्रवाल भस्म, मण्डूर भस्म, लौह भस्म, स्वर्ण भस्म, हीरा भस्म ।
वटी—अष्टादशांग गुटिका, तक्र वटी ।
गुग्गुल—पुनर्नवादि गुग्गुल ।
चूर्ण—अजमोदादि चूर्ण, पुनर्नवादि चूर्ण ।
लेप—दशांग लेप, दोषघ्न लेप, वचादि लेप ।
क्वाथ—पुनर्नवादि क्वाथ ।
आसव—पुनर्नवासव ।
सार—कुटकी सार ।
तैल—महाशुष्क मूलादि तैल ।

शोष

रस—पित्तान्तक रस (भा. भै. र ४४०८), वृहत् सुवर्ण मालिनी वसंत ।
भस्म—अभ्रक भस्म, त्रिवंग भस्म, चांदी भस्म, वैक्रांत भस्म, स्वर्ण भस्म ।
अवलेह—हरीतकी अवलेह ।
तैल—हिमसागर तैल ।

श्लीपदम्

रस—नित्यानंद रस, महालक्ष्मी विलास रस ।
वटी शिलाजत्वादि वटी, सूर्यचंद्र प्रभा गुटिका ।
गुग्गुल—स्वायम्भुव गुग्गुल ।
लेप—मंजिष्ठादि लेप ।
क्वाथ—वृहत्मंजिष्ठादि क्वाथ ।

श्वास

रस—अमृतार्णव रस, आनंद भैरव रस (भा भै. र. ४५०), कस्तूरी भूषण रस, त्रैलोक्य चिंतामणि रस (भा. भै. र. २७६५), पिप्पल्यादि लौह, भैरव रस, महाकालेश्वर रस, महालक्ष्मी विलास रस, महाश्वासारि लौह, रसेन्द्र गुटिका, श्वासकास चिंतामणि रस, श्वास कुठार रस, श्वासांकुश रस, श्वासांतक रस, सूर्यावर्त रस, सोमयोग रस, हेमगर्भ पोटली रस, हेमादि पर्पटी रस, चंद्रोदय रस ।
कुप्पीपक्व—ताम्रसिंदुर, दरद सिंदुर, मल्ल सिंदुर, शिला सिंदुर ।
भस्म—अभ्रक भस्म, अभ्रक कल्प, यशद् भस्म, ताम्र भस्म, नीलम भस्म, वैक्रांत भस्म, श्रृंग भस्म, स्वर्ण भस्म ।
वटी—बब्बूलादि गुटिका, मल्लसिंदुर वटी, श्वासरोगांतक वटी, सूर्य चंद्र प्रभा गुटिका ।
क्वाथ—गुडूच्यादि क्वाथ, दशमूलादि क्वाथ ।
अवलेह—अमृतप्राश्यावलेह, च्यवनप्राशावलेह, वासावलेह ।
पाक—आर्द्र पाक ।
आसव—कुमार्यासव नं. १ ।
अरिष्ट—दशमूलारिष्ट, बब्बूलाद्यारिष्ट ।
सार—कुष्ट सार, कण्टकारी सार ।
क्षार—अपामार्ग क्षार, भस्म क्षार ।

श्वास-कास

रस—कस्तूरी भूषण रस, अचिंत्य शक्ति रस, कास श्वास विधूनन रस, मार्तण्डेश्वर रस, श्वास कास चिंतामणि रस ।
भस्म—अभ्रक भस्म, अभ्रक कल्प, यशद् भस्म, मुक्ता भस्म ।

वटी-अर्क अहिफेनादि गुटिका ।
चूर्ण-अष्टांग अवलेहिका (चूर्ण), सितोपलादि चूर्ण ।
क्वाथ-कफहर क्वाथ ।
अवलेह-अमीरी जीवन, च्यवनप्राशावलेह ।
आसव-अंगूरासव, कनकासव, वासासव ।
सार-अपामार्ग सार (प्रवाही), अर्कमूल सार ।

श्वसनक ज्वर

रस-अचिंत्य शक्ति रस ।
क्वाथ-भार्ग्यादि क्वाथ ।

श्वसनक सन्निपात

रस-अचिंत्य शक्ति रस, वातेभ केशरी रस ।

श्वित्र

भस्म-काशीश भस्म, तुत्थ भस्म, पित्तल रसायन, सौराष्ट्री भस्म ।
तैल-महावज्रक तैल ।

श्वेत कुष्ट

रस-तालकेश्वर रस ।
तैल-विष तैल ।

(ष)

षण्ड-षण्ढ-षाण्ड्यम्

रस-अनंग विलास रस, रत्नभागोत्तर रस ।

(स)

संग्रहणी

रस-अभ्रकादि वटी, अर्क लोकेश्वर रस, अंत्र शोषान्तक रस (र. त.), कल्पलता वटी, क्रव्यादि रस, गगन सुन्दर रस, गंगाधर रस, ग्रहणी कपाट रस, ग्रहणी वज्र कपाट रस, ग्रहणीगज केशरी रस, ग्रहणिका मद वारण सिंह रस, ग्रहणी गजेन्द्र वटिका, चतुर्मूर्ति रस, जाति फलादि ग्रहणी कपाट रस, ज्वालानल रस, तृप्ति सागर रस, नृपति वल्लभ रस, पंचामृत पर्पटी रस [चंद्रोदय युक्त], पंचामृत पर्पटी रस (भा. भै. र. ४२८३) पंचामृत पर्पटी रस (भा. भै. र. ४२८४), प्राणेश्वर रस, (भा. भै. र. ४४८१), पियूषवल्लि रस, ब्राह्मी वटी, वृहत् नृपति वल्लभ रस, महा गंधक, मण्डूर पर्पटी, रस पर्पटी, लोकनाथ रस, लौह पर्पटी, विजय पर्पटी, शीतांशु रस, शीघ्र प्रभाव रस, संग्रहणी रस, सुवर्ण पर्पटी, हिरण्यगर्भपोटली रस, क्षार ताम्र रस, क्षेत्रपाल रस ।
भस्म-कहरुवा भस्म, ताम्र भस्म, नाग भस्म ।
वटी-कामेश्वर मोदक, कुटज घन वटी, ग्रहणी शार्दूल गुटिका, तक्र वटी, त्रिफलादि गुटिका, पारदादि वटी, महाभ्र वटी, सुधा वटी ।
चूर्ण-ग्रहणी शार्दूल चूर्ण, जातिफलादि चूर्ण, दाडिमाष्टक चूर्ण, वृहन्नायिका चूर्ण, भूनिम्बादि चूर्ण, लाई चूर्ण, सिंहराज चूर्ण ।
पाक-महाकल्याण गुड ।
सार-कुटज सार ।

सतत ज्वर

रस-ज्वर कुंजर पारिन्द्र रस ।

सन्तत ज्वर

रस-ज्वर कुंजर पारिंद्र रस ।

सन्तमक (तमकश्वास)

रस-महाश्वासारि लौह, श्वास कासचिंतामणि रस।

संताप

भस्म-पुष्पराज भस्म, मुक्ता भस्म, रौप्य माक्षिक भस्म, स्फटिकमणि भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म।

वटी-कैल्शियम पिल्स, मधुरान्तक वटी. संशमनी वटी नं. २।

सार-शतावरि सार।

घन-गुडूचि सत्व घन।

तैल-ब्राह्मी तैल।

सन्धिमुक्त-भग्नम्

गुग्गुल-आभा गुग्गुल।

सन्धिरुक

वटी-संधिवातारि वटिका।

गुग्गुल-लाक्षा गुग्गुल।

सन्निपातज्वर

रस-अर्ध नारी नटेश्वर रस, कफ कुंजर रस, कालारि रस. चक्रिका रस, चैतन्य भैरव रस. जयमंगल रस (भा. भै. र. २१०३), जयमंगल रस (भा. भै र. २१०५), ज्वरशूल हर रस, ज्वरारि रस, त्रिभुवन कीर्ति रस, वृहत् कस्तूरी भैरव रस, महाकालेश्वर रस, वैष्णव रस, सन्निपात भैरव रस, सन्निपात विध्वंसक रस. स्वच्छंद भैरव रस।

कूपीपक्व-समीर पन्नग।

भस्म-पन्ना भस्म, स्वर्ण भस्म. हीरा भस्म।

वटी-ब्राह्मी वटी, संचेतनी वटी, हिंगुकर्पूर वटिका।

क्वाथ-अभयादि क्वाथ, ग्रन्थिकारि क्वाथ, द्वात्रिंशदाख्य क्वाथ।

अवलेह-भृगुहरीतकी अवलेह।

आसव-मृगमदासव।

समस्त नेत्ररोग

रस-नयनामृत लौह।

सर्व धातुगत ज्वर

रस-धातुज्वरांकुश रस, नवज्वरेभसिंह रस, लघु वसंत मालिनी रस।

वटी-महाराज वटी।

सर्वांग शोथ

रस-शोथांकुश रस, शोथारि मण्डूर रस।

सूतिका रोग

रस-गर्भ चिंतामणि रस, गर्भ पियूष वल्लि रस, गर्भ विनोद रस, गर्भ विलास रस, नारसिंह रस, प्रताप लंकेश्वर रस, वृहत् सूतिका विनोद रस, महाशार्दूल रस. शार्दूल रस, लक्ष्मी नारायण रस, लौह पर्पटी, सूतिकाभरण रस. सूतिकारि रस, सूतिका हर रस।

भस्म-कांत लौह भस्म।

वटी-महाभ्र वटी, रत्नप्रभा गुटिका, सौभाग्य वटी।

क्वाथ-अर्कादि क्वाथ। अरिष्ट-जीरकाद्यरिष्ट।

सूर्यावर्त

रस-चंद्रकांत रस, शिरोरोगारि रस, सूर्योदय रस।

भस्म-यशद भस्म।

सोम रोग

रस—कामदुधा रस (भा. भै. र. ९४८७), खर्पर रसायन, बृहत् सोमनाथ रस. सोमेश्वर रस ।

स्तन पीडा-(स्तन रोग)

भस्म—अभ्रक भस्म ।

स्तन्य शोष

भस्म—अभ्रक भस्म ।
अवलेह—जीरकावलेह ।
पाक—अश्वगंधा पाक ।

स्तंभन

रस—कामिनी विद्रावण रस, शुक्र वल्लभ रस।
भस्म—अभ्रक भस्म, वंग भस्म ।
वटी—अनंग मेखला मोदक, कामेश्वर मोदक, भोग पुरंदरी वटिका ।
चूर्ण—गोक्षुरादि चूर्ण ।
पाक—अहिफेन पाक, आर्द्र पाक, गोक्षुरादि पाक ।

स्मरोन्माद

रस—चद्रांशु रस ।

स्वर भंग

रस—गुल्ममदेभ सिंह रस, तरुणानद रस, श्री डामरानंदाभ्रम्।
गुटिका—ऐलादि गुटिका, कण्ठ सुधारक वटी, मरिचादि गुटिका।
अवलेह—कल्याणावलेह, व्याघ्री हरीतकी अवलेह ।
सार—वच सार । शर्बत—शर्बत वसाका ।
सार—वासा सार । घन—अडूसी घन ।

स्नायु रोग

गुग्गुल—त्रयोदशांग गुग्गुल, पंचामृत लौह गुग्गुल ।

(ह)

हनुस्तम्भ

रस—वात गक्षस रस । अरिष्ट—विडंगारिष्ट ।
तैल—नारायण तैल (सादा) [भा. भै. र. ३५०२], नारायण तैल (भा. भै. र. ३५०३), हिमसागर तैल ।

हलीमक

रस किरातादि मण्डूर रस, चंद्र सूर्यात्मक रस, पंचानन रस, पाण्डु पंचानन रस, पित्तान्तक रस (भा. भै. र. ४४०७), शोथोदरारि लौह, हस मण्डूर रस ।
भस्म—स्वर्णमाक्षिक भस्म ।
वटी—अष्टादशांग गुटिका ।
अवलेह-धात्र्यावलेह ।

हृद्दाह

रस—मुक्तापर्पटी रस, लीला विलास रस ।
भस्म—जहरमोहरा भस्म ।

हिक्का

रस—कफकर्तरी रस, कृष्ण चतुर्मुख रस, चंद्रसुधा रस, डामरेश्वराभ्र रस, त्र्यम्बकाभ्र रस, पिप्पिल्यादि लौह, शंखचूड रस, श्वास कुठार रस, हिक्कान्तक रस, हिक्काहर रस ।
भस्म—खर्पर सत्व भस्म, प्रवाल भस्म, राजावर्त्म भस्म ।
आसव—कनकासव, मृगमदासव ।

हृदामय-हृद्रोग।

रस-अर्जुनाभ्र रस, कल्याण सुंदर रस, जवाहर मोहरा, त्रिनेत्र रस, नागार्जुनाभ्र रस, वसंत तिलक रस, विश्वेश्वर रस (भा. भै. र. ७०७०), सूतराज रस, हृदयार्णव रस, हृदयरोग रसायन, हृद्रोगहर रस।

कुप्पीपक्व-ताम्र सिंदुर, रौप्य सिंदुर।

भस्म-अभ्रक सत्व भस्म, अकीक भस्म, ताम्र भस्म, मुक्ता भस्म, मुक्तापिष्टि, चांदी भस्म, स्वर्ण भस्म, हीरा भस्म।

वटी-प्रभाकर वटी, शंकर वटी, सूर्य चंद्र प्रभा गुटिका।

चूर्ण-हृद्य चूर्ण।

घृत-अर्जुन घृत।

अवलेह-अमीरी जीवन, खमीरेगांव जुवां (सादा), च्यवनप्राशावलेह,

आसव-द्राक्षासव। अरिष्ट-अर्जुनारिष्ट।

सार-अर्जुन सार।

हृल्लास

रस-ज्वालानल रस। घन-गुडूचि सत्व।

हृदमांस शूल

रस-गुल्म कुठार रस, गुल्म मदेभसिंह रस।

वटी-पानीय भक्त वटी।

कुप्पीपक्व-ताम्र सिंदुर।

भस्म-अभ्रक कल्प, शृंग भस्म।

हस्त कम्प

रस-चतुर्भुज रस।

(क्ष)

क्षयः

रस-कांचनार रस, कुमुदेश्वर रस, चिंतामणि रस (भा. भै. र. १९३२), त्रिकट्वादि लौह, त्रैलोक्य चिंतामणि रस (भा. भै. र २७६४), दर्देश्वर रस, प्राणदा पर्पटी, प्राणनाथ रस, बृहत सुवर्ण मालिनी वसंत रस, रत्नगर्भ पोटली रस, राजमृगांक रस, शंख गर्भ पोटली रस, सिद्ध लक्ष्मी विलास रस, क्षय मर्दनी रस, हेमगर्भ पोटली रस।

कुप्पीपक्व-रौप्य सिंदुर।

भस्म-अभ्रक भस्म, अभ्रक सत्व भस्म, अभ्रक कल्प, ताम्र भस्म, मुक्तापिष्टि, सुवर्ण माक्षिक सत्व भस्म।

अवलेह-अगस्त्य हरीतकी अवलेह, अमीरी जीवन, अमृतप्राश्यावलेह, च्यवनप्राशावलेह, पिप्पल्याद्यवलेह, भृगु हरीतकी, वासावलेह।

पाक-धात्रिपाक, नारिकेल खण्ड पाक।

अरिष्ट-पिपल्यारिष्ट। सार-वासा सार।

तैल-चदनादि तैल, चंदनबला लाक्षादि तैल, लक्ष्मी विलास तैल, लाक्षादि तैल।

क्षय कास

रस-क्षय मर्दनी रस।

क्षय ज्वर

रस-कांचनार रस।

क्षुद्र कुष्टम्

तैल-भृंगराज तैल।

क्षुद्र रोग

तैल-भृंगराज तैल।